

महाकवि माघ

महाकवि माघ

उनका जीवन तथा कृतियाँ

(राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी० एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डा० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, एम. ए. (हिन्दी),
एम ए (संस्कृत) पी एच डी (संस्कृत)

अध्यापक, संस्कृत-विभाग

सनातन धर्म गवर्नमेण्ट कालेज, ब्यावर राज

नवयुग प्रकाशन

दिल्ली-१

प्रकाशक : लक्ष्मण प्रकाशन
बंगलोर रोड दिल्ली ६

लक्ष्मण प्रकाशन

प्रथम संस्करण : सितम्बर १९६६

मूल्य ६० पैसे

मुद्रक हरिहर प्रेस दिल्ली ६

समर्पण

समर्पणम्

प्राच्या प्रतीच्यापि सतीव माया

मकत्या स्वमर्त्तारमिवाभिता यम् ।

श्रीमज्जयन्नाथ गुरोः पदाब्जे

प्रत्योऽस्य माधार्कं करायतां मे ॥१॥

ग्रन्थकृतु ब्रह्मपरिचय

राज्ये साहपुरा मिधानप्रपिते सङ्ख्या जनि यः सुधी ,
 श्रीमद् राजगुरो कृते प्रतिभयाऽसीत् शिक्षकः शामकः ।
 काव्यं “वीरतरङ्ग रङ्ग” मकरोद् यो माघ-कल्पः कविः,
 सोऽयं कीर्तिकलेवरेण यमुनावत्तः धिया राजताम् ॥१॥
 एतस्यानुज एव पङ्क्ति जगन्नाथो गुणी मे पिता,
 हिन्द्यामाङ्गलवान्नि काव्यकलने यः सिद्धहस्तः कविः ।
 माता धी बिजया मिधा गुणवती व्यासान्वयामूपणा,
 प्रासूतेह यदादिमं गुणनिधिं श्री भागवत्तं सुतम् ॥२॥
 सस्यानुजोऽहं मनमोहमाख्यो द्वे मे जगिन्यो गुणकर्मशीले ।
 जनुर्ममाष्टर्गुनिधीन्दु संख्ये (१२६८) वर्षेऽभवद् विक्रमतः प्रवृत्ते ॥३॥
 श्री मेघपाटाधिपमुक्तामत्रो विद्वान् धनीरः यामद- गोविनाथः ।
 प्रदाय मे पाशुमिमां सुपुत्रोमियेप मां द्रष्टुमिहात्मसुत्यम् ॥४॥
 एम् ए. पदं संस्कृतवान्नि हिन्द्या मया यदाप्तं स्वसुरस्तदा मे ।
 प्राध्यापकं मां प्रसमीक्ष्य हृष्टो मनोरथान् स्वान् सफलागमस्त ॥५॥
 रविर्महेन्द्रः कमला प्रमोदो बिनोद एते तनुजाः प्रवीणाः ।
 सदाहमीयामुदयामितापी विश्वेश्वरं प्रार्थयते जनोज्यस् ॥६॥

ग्रन्थ परिचयः

माघस्य जीवनमहो ! प्रथितं सुरम्यं माघाणवे विततकाव्यरसोष्मिरङ्गम् ।
 आनन्ददं समबलोक्य मुदम्प्रयान्तु, घाट्टेय सया प्यकरवं यदिव क्षमस्व ॥१॥
 स्फुरत्पत्तार्कं किम काव्यलोके विसोक्य भार्यं कमनीय काव्यम् ।
 संगृह्य सारं सुखदं सुरम्यं सज्जीवनं संप्रथितं मयेतत् ॥२॥
 विचारधैर्यं निपुणं निरीक्ष्य सन्नीशतो ग्रन्थममु परीक्ष्य ।
 प्रामाणिक शोधयुतं विधाय पी एच डि मानेन सभाजितोऽहम् ॥३॥
 मयाऽत्र यद्वर्णितमस्ति वस्तु प्रकाशित तत् सकल तथैव ।
 दोषान्दोषानपहाय दोषान् गुणान् ग्रहीष्यन्ति मुधा दयार्त्रा ॥४॥

ग्रन्थकर्तृ वंशपरिचयः

राज्ये ब्राह्मपुरा भिषानप्रपिते सख्या जनि यः सुधी ,
 श्रीमद् राजपुरोः कुले प्रतिभयाऽसीत् शिक्षकः शासकः ।
 काव्यं "वीरतरङ्ग रङ्ग" मकरोद् यो माघ-कव्यः कविः,
 सोम्यं कीर्तिकसेवरेण यमुनावत्त धिया राजताम् ॥१॥
 एतस्यानुज एव पठित जगन्नाथो गुणी मे पिता,
 हिन्द्यामाङ्गसवाचि काव्यकलने यः सिद्धहस्तः कविः ।
 माता श्री बिजया भिषा गुणवती व्यासान्वयासूपणा,
 प्रासूतेह यदादिमं गुणनिधिं श्री भामुदत्त सुतम् ॥२॥
 तस्यानुजोऽहं भममोहनाक्यो द्वे मे भगिन्यौ गुणरूपक्षीमे ।
 अनुर्मनाष्टुनिधीन्तु संख्ये (१२६८) वर्षेभ्यवद् विक्रमतः प्रवृत्ते ॥३॥
 श्री मेघपाटाभिपमुक्ताम-त्री विद्वान् धनीः मायद गोपिताय ।
 प्रदाय मे बाधुमिनां सुपुत्रीमियेप मो द्रष्टुमिहात्मतुल्यम् ॥४॥
 एम् ए पर्व संस्कृतवाचि हिन्द्या मया यदाप्तं स्वसुरस्तवा मे ।
 प्राध्यापकं मां प्रसमीक्ष्य हृष्टो मनोरयान् स्वान् सफलानर्मस्त ॥५॥
 रविर्महेन्द्र कमलः प्रमोहो विमोह एते तनुजाः प्रबीणाः ।
 सदाहृणीयामुदयामिसापी विश्वेश्वरं प्रार्थयते जमोभ्यम् ॥६॥

ग्रन्थ परिचयः

माघस्य जीवनमहो ! प्रयितं सुरम्यं माघाणवे विततकाव्यरसोष्मिरङ्गम् ।
 घानन्दवं समवसोक्ष्य मुदम्प्रयान्तु, घाष्ट्य तथा प्यकरवं यदिवं क्षमस्व ॥१॥
 स्फुरत्पताक किञ्च काव्यलाके विसोक्ष्य माघं कमनीय काव्यम् ।
 सगृह्य सारं सुखदं सुरम्यं तज्जीवनं संप्रयितं मयैतत् ॥२॥
 विचारक्षेत्रीं निपुण निरीक्ष्य सर्वोद्यतो ग्रन्थममु परीक्ष्य ।
 प्रामाणिक घोषयुतं विशार्य यो एष हि मानेन सम्मानितोऽहम् ॥३॥
 मयाऽत्र यद्वर्णितमस्ति वस्तु प्रकाशित तत् सकल तथैव ।
 दोषानदोषानपहाय दोषान् गुणान् ग्रहीष्यन्ति बुधा दयार्द्रा ॥४॥

धामुस

धनुषी उपनामों एवं प्रसादमयुरा वाली द्वारा संस्कृत-साहित्य की रस-सरिता को प्रवाहित करने वाले कवि-सम्राट् कालिदास के रघुसुत कुमारसम्भव और मेघदूत काव्य को जिस भाँति लघुजयी की संज्ञा दी गई है। मारवि-कृत किरितार्जुनीय माघ-कृत सिधुपासवध और श्री हर्ष-कृत नयनीय भरित काव्यों की गणना भी कृहृषयी में इसी भाँति अभिष्यक्त की गई है। 'उपमा कालिदासस्य' से जग विधुत कालिदास 'भारवेरर्ष गौरवम्' लोकोक्ति को चरितार्थ कर अत्यन्त मनोहारी रचना वंसी से विद्वानों में समादरणीय मारवि एवं 'नयने पद साहित्यं तथा अन्य इति' से 'प्राज्ञ मन्वमना हूतेन पटिटी धारिमन्' उस 'उसतु' से जुगौठी देने वाले श्री हर्ष का नाम जहाँ परम योरव के साथ विद्वानों में सिपा बाठा है वहाँ महाकवि माघ का नाम भी अपनी काव्यवश विधेयताओं तथा छत्तियों के कारण अधिन लोक प्रसिद्ध है।

इस लोक प्रसिद्धि के सबर्मे में ध्यात से जगमग १२ बयें पूर्ब जब मैं वरवार निजिस स्कूल साहपुरा (मिबाक) में क्या वस्तु का एक साधारण-सा छात्र था और 'बड़े माघ की पण्डित धामे हैं' इस वाक्य से जब अध्यापक पं० श्री भाषुसास शर्मा द्वारा ध्यम्य में छात्रों के सम्मुख पुनः पुनः उच्चरित किया जाता था मेरे शिषु-हृदय में उस महाकवि के सम्बन्ध में पूर्ण आनकारी प्राप्त करने की अभिलाषा हुई थी किन्तु अन्ततोगत्वा वास्तव-कामीन माघ नावें ही तो थी जो सह्रों की भाँति छत्तीं धीर लुप्त हो जाती थीं। वासना रूप में लुप्त वे हृदयत माघ अन्त में अंति-अंति में संस्कृत का अध्ययन साहपुरा में स्कूल के प्रबन्धकों पर घर ही रहकर अपने पूज्य पिता जी के चरणों में बैठ कर मधवा कास्य में कासेजीय संस्कृत का अध्ययन परिपक्व बुद्धि होने पर स्व० मंडेय प्रो० श्री जगन्नेश्वर जी पांडेय के निकट सम्पत्त में धाकर करने लगा था 'काव्येषु माघ' 'माघे सति त्रयो मुखा' 'मेघे माघे गतं वय' 'मुरारिपव विन्ता केतु तथा माघे रति क्रुह धारि धारि भूक्तिर्मो को पाकर एक बार धीर धमि में घुत का कार्य कर गये। वासना रूप में निहित बावों को मूर्तरूप देने का कार्य धामय बिना सम्भव कहाँ? विभाव, अनुभाव, सचारी भावों के योग से रघोत्पत्ति कही गई है। विभाव का अनुभव कराने वाले सोमाम्यवश मेरे हितैपी मित्र एवं पत्र प्रदर्शक महाराजा कामेश, जयपुर के तत्कालीन संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रोफेसर श्री प्रवीण अन्त जैन सहसा माघय रूप में मुझको उस समय प्राप्त हुए जब मैं बयों से पी० एच० डी० वाली मानना को 'विहारी' विषय लेकर हिन्दी में ही साकार करने का अभिलाषी था। इस प्रस्ताव को लेकर सम्मति ग्रहण करने के लिए उनके विवास स्थान पर परमोत्कंठा के सहित गया था। प्रसिप्त जैन जीसे व्याप्ति मुझको बिरसे ही दृष्टिगत होते हैं जो अपने कार्य का

प्रतिबिम्बित सामाजिक, राजनीतिक जीवन परवर्ती संस्कृत हिन्दी भाष्य पर भाष का प्रभाव, भाष काव्य पर तुलनात्मक दृष्टि प्रचलित सम्प्रतियों पर विचार, भाष का महाकवियों में स्थान आदि बातों की आलोचना की गई है। इसी उत्तराख के अन्त में एक परिचित भाग भी कुछ विशेष बातों की जानकारी हेतु एक बिना बना है जिसमें महाकाव्यों की परम्परा, सिधुपामन्य के अन्त नरुबंवादि हैं। अन्त में काव्य के अध्ययन में उपयोगी मारु की विभिन्न स्थितियों का प्रदर्शन करने वाले मानचित्र भी पाठकों की सुविधा के लिए दिये गए हैं।

महाकवि भाष के जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जा सका है वह पाठकों के लिये ध्यान से पढ़ने की एक चीज है। इससे महाकवि भाष के काम और काम क्षेत्र आदि के सम्बन्ध में प्रचलित मान्यताओं में आवश्यक परिवर्तन हो मरगा एका मेरा विस्वास है। कवि के काम तथा काव्य क्षेत्र का समुचित निर्णय हो जाने से साहित्यिक और राष्ट्रीय समाज के सांस्कृतिक इतिहास को भी इस समीक्षा से घनापास हो प्रामाणिक महत्ता मिल सकेगी। इतिहास के उन छात्रों के लिये तो यह भाष प्रबोधन है जो संघर्षकार मृग बहुर ब्रह्माद हर्ष के पदचार की स्थिति बतलाने में पूर्ण सक्षम हैं। कविमृग सम्बन्धी प्रतिबिम्बिता की भूमिभूमि में पड़े हुए पाठकों के लिये यदि इस प्रयत्न से कुछ भी मार्ग समझ हो सके तो लेखक इसके अपने आपको कृतकृत्य समझेगा।

मेरी यह ही कामना है कि भाष के जीवन तथा काव्य के सम्बन्ध में इस कदम में लिखा हुआ राजस्थान विश्वविद्यालय की पी एच डी के लिये स्वीकृत प्रथम पात्र अन्त भाष सम्बन्धी संशोधन का नाम रखने में सहायक सिद्ध हो।

पुस्तक लेखन में मुझे अपने मार्ग दर्शक हितैषी ईंगर कामेश जीकावेर के विभिन्न प्रयोग की प्रवीणता जैन के सतत परामर्श और प्रोत्साहन से कम लिखा है जब राजस्थान पुरातन विभाग के सहायक अधिकारी की बहुर से अनेक ग्रन्थ प्राप्त कर समय-समय पर इन बातों में सहयोग प्राप्त हुआ है। महाकाव्य संस्कृत कामेश जमपुर के उद्यम विद्वान् प्रोफेसर की अपरीक्षित की साहित्यिकार्य आभिनव ने विवेचन की विविध दृष्टि प्रतिकों को संका समायान द्वारा सुलभ किया है। श्री जैन के प्रिय दिव्य की बोधपनमान बहू एम ए एमबीसीन विमान समा जमपुर पुस्तकालयाम्बल से तो पुस्तक संग्रह तथा विभिन्न पत्रों का दान करके उनकी भूमि में सुचारु से सब पत्र सहायता प्राप्त हुई है अथ इस महानुमाओं के प्रति अत्यन्त बड़ा व्यक्त करना मैं अपना परम पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। इनके प्रतिबिम्बित विषय से सम्बन्धित विविध विचारकों और विद्वान् साहित्यकारों की इच्छाओं से वा प्रभाव प्राप्त हुई है, उसके लिये मैं उनका फिर आशीर्वाद हूँ।

मैं अपनी समस्त भूमि कृतियों और श्रुतियों के लिए धन्यवादना करना हुआ सहृदय सुखी पाठकों से प्रार्थना करने का कि वे सर्व पूर्वक आलोचनात्मक इस ग्रन्थ का रूप तथा तत्परता बरि उनका परितोष हो सका तो मैं अपना धन सफल समझूँगा।

हनुमन्तपत्नी,

२०२० वि

विश्वामापरितोषाम

साधु मन्त्रे प्रयोग विज्ञानम्।

राजपुर डॉ. बलदास...

प्रथम खण्ड

महाकवि माघ के जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं अन्य प्रकार की सामग्री—

प्रथम अध्याय	पृष्ठ
महाकवि का कैसा हुआ यद्य—	१-१
बहि साक्ष्य —	
(१) बसन्तमङ्ग का शिलालेख—इस लेख का काल—	४-१३
(२) भोज प्रबन्ध की छापी	१६-१८
(३) प्रबन्धचित्तमणि की छापी	२०-२७
(४) पुरातन प्रबन्ध संग्रह की छापी	२८-२९
(क) पुरातन प्रबन्ध-संग्रह में माघ वर्णित प्रबन्ध—	२९
(ख) प्रबन्धचित्तमणि बुम्पिष्ठ कतिपय प्रबन्ध संश्लेष—	३०-३२
(५) प्रभावक भरिष की छापी	३३-४१
(६) चिह्नपि की प्रचलित	४२-४६
(७) हरिमट्ट सूरि सम्बन्धी जीवनवृत्त	४७-५१
(८) बरमट्ट सूरि भरिष (प्रभावक भरिष में ११वीं प्रबन्ध)	५२-५४
(९) बनराज चामड़ा से सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्य	५५-५७
(१०) श्रीमान (भीनमान) नगर की अवस्थिति उसका उत्कालीन संरक्षित है निर्माण में योग माघ के साथ उसका सम्बन्ध—	५८-६३
(११) माघ का भोज से सम्बन्ध भोज इस नाम के अनेक शाखाओं की स्थिति —	६६
(क) परमार राजा भोज	६६-७१
(ख) भोज (कथ)	७१
(ग) मिहिर भोज का परिचय	७२-७३
(घ) भोज का चित्तौड़गढ़ दुर्ग पर अधिकार	७३-७६
(ङ) मिहिरनाम और माघ	७७-८२
(१२) प्रबन्धों का प्रामाण्य	८३-८०
जनकापीन तथा परवर्ती साहित्य में माघ का उल्लेख	८१-८२
माघ के काल के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत	८३-८५

द्वितीय खण्ड

(क) भाग

प्रथम अध्याय	पृष्ठ
महाकाव्य (शास्त्रीय दृष्टि)	२३३ २४६
विष्णुपालवच एक महाकाव्य (पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार)	२४७
विष्णुपालवच एक महाकाव्य (भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार)	२४७-२५०
विष्णुपालवच महाकाव्य की कथा के स्रोत	२५१
महाभारत (समाप्त)	२५१ २५३
भागवत के दसम स्कंध में विष्णुपाल की कथा	२५४ २५६
पुराणों में वर्णित कथा	२५७-२५८
किराताजु'नीय का कथानक (माघ काव्य के कथा विकास के लिए स्रोत)	२६० २६४
द्वितीय अध्याय	
माघकाव्य की कथा (संक्षेप)	२६५ २८४
तृतीय अध्याय	
सर्गबद्ध कथा के अनुसूचन से प्राप्त तथ्य	२८५ २८६
स्रोतों से प्राप्त कथाओं की माघकाव्य की कथा से तुलना	२८७ ३०८
कथानकों की तुलना	३१० ३१२
दोनों में सम्य	३१३
माघ के वैशिष्ट्य का सौन्दर्य	३१३ ३१४
विष्णुपालवच की कथा—परिवर्तन उत्पन्न शीघ्रतया तथा नयि का वैभव	३१४ ३१८
चतुर्थ अध्याय	
माघ काव्य के प्रमुख संवाद	३२०-३२३
उद्धव और मुनिष्ठिर के वक्तव्य की तुलना तथा अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण	३२४ ३४१
विष्णुपालवच महाकाव्य के हृदय (मीथीभक्त आचार पर)	३४२ ३४८

(ख) भाग

पंचम अध्याय	
महाकवि का काव्य सौष्ठव	३४० ३४२
महाकाव्य का कला पक्ष	३४२ ३४४
सुभाषितों की शक्ति	३४४ ३६०

द्वितीय अध्याय

अन्तः साक्ष्य —

५३

—विद्युत्साक्ष्य में कविबोधस्थिति	६५
—विद्युत्साक्ष्य का कविनायक काव्यनाम नामावलीका स्थान	६५-६७
—टीकाकारों का अभिप्राय	६८-१००
—काव्य में भाई हुई अन्तर्कर्मधारियों से सम्बन्ध पटनाई और समसामयिक व्यक्ति	१०१-११०
—मायकाव्य में पूर्वकालीन कवियों का प्रसंग	१११-११४

तृतीय अध्याय

अभिप्राय —

—माय से सम्बन्ध युगों की सांस्कृतिक वृद्धिमान इतिहासों के आधार पर—	११५-११६
(क) युग समय का सांस्कृतिक इतिहास	११६-११८
(ख) हर्षकाल	११८-१२२
(ग) राजपूत काल	१२३-१२६
—उत्तरी भारत के राज्यों का परिचय इस काल का राजनीतिक जीवन सामाजिक स्थिति धार्मिक जीवन में कला की अभिव्यक्ति	१२६-१४३
—पूर्वकालीन ऐतिहासिक तथ्यों में व्याप्त माय युग की सांस्कृतिक स्थिति	१४३-१४७
—परम्परागत भारतीय वैद्यकशास्त्र तथा मायकाव्य में उसका स्थान :	१४८-१५२

अन्तर्गत्त अध्याय

—कवि माय का जीवन चरित्र (प्राप्त सामग्री पर आधारित) —	
(क) युग की दलितकारीय मायें	१५६-१५८
(ख) युग की विभिन्न प्रवृत्तियाँ	१५८-१७१
—संस्कृत साहित्य में कवि परिचय सम्बन्धी जनमानस	१७१-१७६
—माय का जन्म स्थान	
—माय का कुल	१७७-१८३
—पिता	१८३
—भोज परिचय	१८६-१८९
—राज्याध्यक्षी माय	१८९-२०१
—देहाटल	२०१-२०५
—माय की युवावस्था	२०५-२१४
—माय की वृद्धावस्था	२१४-२१६
—माय की सन्तति	२१७-२१८
—माय की पर्ये स्थिति	२१९-२२४
—माय की रचनाएँ	२२५-२२८
— महाकवि माय की संक्षिप्त जीवनी तथा जनता व्यक्तित्व	२२९-२३२

द्वितीय खण्ड

(क) भाग

प्रथम अध्याय	पृष्ठ
महाकाव्य (शास्त्रीय दृष्टि)	२३१ २४६
शिघुपासबध एक महाकाव्य (पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार)	२४७
शिघुपासबध एक महाकाव्य (भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार)	२४७-२५०
शिघुपासबध महाकाव्य की कथा के स्रोत	२५१
महामारुत (समा पर्व)	२५१ २५३
भागवत के दशम स्कंध में शिघुपास की कथा	२५४ २५६
पुराणों में बख्तिर कथा	२५७-२५८
किष्किणुर्नीय का कथानक (माघ काव्य के कथा विकास के लिए स्रोत)	२६० २६४
द्वितीय अध्याय	
माघकाव्य की कथा (सर्गवार)	२६३ २८४
तृतीय अध्याय	
सर्गबद्ध कथा के अनुशीलन से प्राप्त तथ्य	२८५ २८९
स्रोतों से प्राप्त कथाओं की माघकाव्य की कथा से तुलना	२८२ ३०८
कथानकों की तुलना	३१० ३१२
दोनों में साम्य	३१३
माघ के वैशिष्ट्य का संक्षेप	३१३ ३१४
शिघुपासबध की कथा—परिवर्तन उनका शीघ्रत्व तथा कवि का कीर्तन	३१४ ३१८
चतुर्थ अध्याय	
माघ काव्य के प्रमुख संवाद	३२० ३२३
उद्धव और युधिष्ठिर के वक्तव्य की तुलना तथा अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण	३२४ ३४१
शिघुपासबध महाकाव्य के हृदय (भौतिक माध्यम पर)	३४२ ३४८

(ख) भाग

पंचम अध्याय	
महाकवि का काव्य सौष्ठव	३४० ३४२
महाकाव्य का कला पक्ष	३४२ ३४४
शुभापोन्दिनी अथवा सूर्यस्त	३४४ ३६०

द्वितीय अध्याय

अन्तः साक्ष्य —

५४

—दिगुपासबब में कविर्वाक्याति	१३
—दिगुपासबब का कविनाम व काव्यनाम वाला चम्बरस्य स्तोत्र	१३-१७
—टीकाकारों का अभिमत	१४-१००
—काव्य में पाई हुई अन्तर्कथाओं से सम्बद्ध भट्टमार्थ और समसामयिक व्यक्ति	१०१-११०
—मायकाव्य में पूर्वकाशीन कवियों का प्रसंग	१११-११४

तृतीय अध्याय

अभिसाक्ष्य :—

—माय से सम्बद्ध युगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इतिहासों के माबार पर—	११५-११६
(क) मुग्न समय का सांस्कृतिक इतिहास	११६-११८
(ख) हर्षकाल	११८-१२२
(ग) राजपूत काल	१२३-१२६
—उत्तरी भारत के राज्यों का परिचय इस काल का राजनीतिक जीवन सामाजिक स्थिति धार्मिक जीवन में कला की अभिव्यक्ति	१२६-१४३
—पूर्वर्वाह्य ऐतिहासिक तथ्यों में व्याप्त माय युग की सांस्कृतिक चेतना	१४३-१४७
—परम्परागत भारतीय चेतना तथा मायकाव्य में उसका चित्र ।	१४८-१६२

चतुर्थ अध्याय

—कवि माय का जीवन चरित (प्राप्त सामग्री पर आधारित) —

(क) युग की उल्लेखनीय बातें	१६६-१६८
(ख) युग की विभिन्न प्रवृत्तियाँ	१६८-१७१
—संस्कृत साहित्य में कवि परिचय सम्बन्धी उल्लेख	१७१-१८६
—माय का जन्म स्थान	
—माय का कुल	१८७-१८८
—पिता	१८८
—मोक्ष परिचय	१८८-१८९
—सम्भाव्य माय	१८९-२०१
—दृष्टान्त	२०१-२०३
—माय की कुलवस्था	२०४-२१४
—माय की कुलवस्था	२१४-२१६
—माय की चरित	२१७-२१८
—माय की चरित चेतना	२१८-२२४
—माय की रचनाएँ	२२४-२२८
—वहाकवि माय की संक्षिप्त जीवनी तथा उसका व्यक्तित्व	२२८-२३२

महा कवि माघ के जीवन के सम्बंध में प्राप्ता ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं अन्य प्रकार की सामग्री

— ० ० —

महाकवि का पसा हुआ यश—

संस्कृत के महाकवियों में जिन धादरघ्न और घोरब के साथ महाकवि कासिदास और भारवि का नामोन्धार किया जाता है वह धादरघ्न और घोरब महाकवि माघ की नहीं मिल सका है। प्राज्ञ कांबुकुस गुरु कालिदास अपने उपमा बीजब से भारवि अपने अर्थ गांभीय से और बंड़ी अपनी सुविष्ट मद्य रचना से संस्कृत साहित्य के सभी सहृदय पाठकों को प्रभावित कर रहे हैं। एक विद्यालय महाकाव्य की रचना करने के बाद भी महाकवि माघ से वे इतने प्रभावित क्यों नहीं हो सके—यह एक प्रश्न है जिसका समाधान आवश्यक है।

महाकवि माघ एक प्रकाण्ड पण्डित थे। कई विषयों का बहुत ऊँचा ज्ञान उन्हें प्राप्त था। उनके शिषुपास वह महाकाव्य को समझने के पूर्व कई विषयों की जानकारी (बहुसता) की आवश्यकता होती है। व्याकरण और शास्त्राव शक्तियों का ठोस ज्ञान तो और भी अधिक अपेक्षित है। इस पृष्ठभूमि के बिना कोई भी पाठक इस महाकाव्य के साथ स्याय नहीं कर सकता। इस प्रसंग में यह कह देना आवश्यक न होगा कि प्राज्ञ पाठ्यक्रम में इस महाकाव्य के प्रथम एक या दो सर्गों को स्थान देकर महाकवि के संबंध में पूरी जानकारी की प्रवधा करनी जाती है। अगले भागों को उसकी अपनी विरोधता वाली विस्तृता के कारण स्थान नहीं दिया जाता। मारद के चार जाने व परचात् भीदृष्ट बलराम और उद्यम के संवाद माघ को पढ़ने वाला वह विद्यार्थी जिसने भारवि व किरतावृणीय के श्रोत्री, भीम और सुविष्टर के संवाद को पढ़ लिया है इस संवाद में किसी विस्तृता का अनुभव नहीं कर पाना और कबल यह धारणा बना लेता है कि यह तो भारवि के संवाद का एक अनुकरणमात्र है। इस प्रकार व धमुरे पाठ से माघ काव्य के सुस्थावन की शक्ति पट्टी है। यह बात स्पष्ट है कि जिन महान् विद्वानों ने इस महाकाव्य का प्राधोपान्त परीक्षित किया है उनकी सम्मतिया दूसरी ही प्रकार की रही हैं। यह सम्मतियाँ रीमाग्य से बार-बार दुहराई गयी हैं। इनमें से कुछ को धति प्रिय है व ये हैं —

(१) उपमा कासिदासग्य भारवेर्यगौरवम् ।

दण्डिन पन्थानिस्थ माघे सन्ति त्रयो गुणा ॥

(२) काव्येषु माघः कवि कासिदास

विचल	पृष्ठ ११०-१११
काव्य में रस पक्ष	११४-११८
रस-पक्ष	११६-१२०
भक्ति भावना	१२०
भाव-पक्ष के द्वायवर्त महाकवि की भक्ति का स्वस्व	१२१-१२३
प्रकृति-वर्णन	१२३-१२८
भाव की विह्वल एवं व्यापक बहुलता	१२८-१२९
भाव की सीमा	१२९-१३०
चिमुपासक काव्य में प्रतिबिम्बित राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन	१३०-१३१
पद्य अध्याय	

आशान प्रवात—

(क) महाकवि भाव पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव	१३३-१३४
(ख) महाकवि भाव का परवर्ती संस्कृत तथा हिन्दी काव्य पर प्रभाव	१३८-१४१
सप्तम अध्याय	

भाव काव्य पर तुलनात्मक दृष्टि—

(क) भाव और अस्वभाव	१४२-१४३
(ख) भाव और कामिभाव	१४३-१४७
(ग) भाव और भाववि	१४८-१४९
(घ) भाव और भक्ति	१४९-१५४
(ङ) भाव और कुमारवास	१५४-१५६
(च) भाव और श्री हर्ष	१५६-१५८
भाव पर अनुकरण का बोध	१५८-१६०
भाव के विषय में प्रचलित सम्मति	१६०-१६४
संस्कृत के महाकवियों में भाव का स्थान	१७१-१७६

परिशिष्ट भाग

महाकाव्य की परम्परा	१७७-१८१
चिमुपासक महाकाव्य के रस और अर्थकार	१८४-१८६
चिमुपासक का अर्थकार	१८६-१८७
(क) रस	
(ख) अर्थकार	
भाव के चित्रण	१८०-१८३
काव्यपात्र तथा उसके काव्य पर प्रभाव	१८३-१८४
भाव काव्य में वैयक्तिक कथाएँ	१८८-१८९
रस वरिष्ठ	१८९-१९४
अध्ययन रसों की सूची ।	१९५

साथ की जाने लगी । फलतः आलोचना के सिद्धांतों में अधिक विस्तार और स्पष्टता आयी । भारतीय काव्य-साहित्य के विकास को जो स्वरूप देने को मिला उसके कारणों के अनुसंधान में इस वर्षा से बड़ी सहायता मिली ।

इतना सब होते हुये भी मातृकाव्य पर आलोचकों की सर्वांगीण दृष्टि नहीं पड़ पाई और वह कभी घाब तक भी एक बड़ी कमी के रूप में मानी नहीं गई ।

मातृ के संबंध में जो सूक्ष्म-सामग्री मिली है, उसका परिचय दे देना सर्वप्रथम आवश्यक है ।

- (३) तावद्वमा भारवेर्भाति यावग्माषस्य मीयय
 (४) मुरारिपदधिस्ता चेत्तदा माषे रतिं कुह ।
 मुरारिपदधिस्ता चेत्तदा मान्वे रतिं कुह ॥
 (५) हस्तप्रबोधकृद्वाणी भारवेरिष भारवे ।
 माघेनेष च माघेम बभ्य कस्म न जायते ॥
 (६) माघेन विष्णोस्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।
 स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥
 (७) मघे माघे गत बयः
 (८) नवसर्गमते माघे नवशब्दो न विद्यते ।

इन सम्मतिषों को ध्यान-ध्यान लेकर देखें तो दृष्टिकोण की एकांगिता मिलेगी । पर यदि इन सबको धिक्काकर देखें तो महाकवि माघ की उन बहुत सी विशेषताओं का निर्देश हो जायगा जिसका सम्बन्ध रस भाव मूर्ति, धर्मकार और वही सभी से है और जिन्हें महाकवियों की, कालिदास और भारवि जैसे पद्य-कवियों की और वही तथा बाव जैसे बच कवियों की रचनाओं में बताया जाता है ।

ये सम्मतिषों माघोत्तरवर्ती युगों में माघकाव्य के प्रवर्तकों द्वारा कही गई हैं, और इनका अपना एक मूल्य है । माघकाव्य की प्रशंसा के लिए न तो यही आवश्यक है कि उनसे पूर्ववर्ती महाकवियों की निम्ना की बात और न यही आवश्यक है कि उसके दोषों पर दृष्टि ही न डाली जाय । कोई भी काव्य निर्दोष नहीं हो सकता और एक प्रबल काव्य में तो दोषों का न होना आवश्यक है । दोषों का होना सर्वथा स्वाभाविक है । इसीलिए तो काव्याचार्यों ने—

कीटानुबिद्ध रत्नादि माघारण्येन काव्यता

जैसी व्यवस्थाएं प्रस्तुत की हैं ।

किन्ती भी कारण से यही माघकाव्य की जड़ उपेक्षा होने लगी उसका व्यवस्थित निरादर किया जाने लगा तब महान धर्मोपदेशों को उसकी प्रशंसा कालिदास भारवि और वही जैसे लक्ष्यभक्ता महाकवियों की तुलना में करनी ही पड़ी । इनका तुल्य भाव तो यह हुआ कि माघकाव्य का अध्ययन और अध्यापन अधिक व्यापकता व महानुभूति के साथ होने लगा और उसकी बचना प्रसिद्ध महाकाव्यों में कर ली गयी । काव्य रसिक पाठकों और काव्य मर्मज्ञ धर्मोपदेशों में माघ कवि का नाम न केवल प्रशंसा से प्रस्तुत बल्कि से भी किया जाने लगा । जब इन काव्य का व्यापक अध्ययन हुआ तब के किन्ती एक भाग में ही नहीं बल्कि सभी भागों में हुआ तो उसके आधार ने काव्य-अध्ययनी चिंतना को भी व्यापकता मिली । तब और काम का काव्य-रचना पर भी प्रभाव पड़ा करता है उसकी चर्चा और पहचान के

साध की जाने लगी । फलतः आलोचना के सिद्धान्तों में अधिक विस्तार और स्पष्टता आयी । भारतीय काव्य-साहित्य के विकास को जो स्वल्प देखने को मिला उसके कारणों के अनुसंधान में इस चर्चा से बड़ी सहायता मिली ।

इतना सब होते हुये भी माधकाव्य पर आलोचकों की सर्वांगीण दृष्टि नहीं पड़ पाई और यह कमी आज तक भी एक बड़ी कमी के रूप में मानी गयी है ।

माध के सन्दर्भ में जो सूक्ष्म-सामग्री मिली है उसका परिचय दे देना सर्वप्रथम आवश्यक है ।

(१) बहि साक्ष्य

एवं प्रथम हम बहि साक्ष्य को सेंगे जिससे पाठकों को जब माय सम्बन्धी बहुत गो बातों का ज्ञान होने लग जायेगा फिर व अन्त साक्ष्य में प्रविष्ट हों ही स्वतः अनुभव करने लगेंगे कि माय का यही दृग है । कविमय वर्णन में कवि न कमल नाम का प्रयोग किया है जो बगलगढ़ वाले शिवासेन में भी आया है अतः सबप्रथम उन्हीं शिवासेन को प्रस्तुत किया जाता है जिससे बहुत सी बातों का पता चलेगा । उस पर कुछ टीका टिप्पणी करते हुए उसके सारांश को पाठकों के विचारार्थ रख कर हम संबंधित निबन्धों पर आ जायेंगे । इस भाँति हमें अपने इस अपने महाकवि के व्यक्तिगत जीवन पर ध्यान के पूर्व कुछ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को रखते समय सात्त्विक राजाध्या महाराजाध्या विद्वानों कविपौ एवं उस समय की सामाजिक धार्मिक एवं साम्प्रतिक बधाघो पर प्रकाश डालेंगे जिससे पाठक स्वतः माय कवि के जीवन पर अपनी सम्मति प्रकट कर सकें ।

(१) बतन्तपङ्क का शिवासेन—इस लेख का काल (विक्रम संवत् १८२)

१—यों नय ॥ चातुर्वर्षा योगनिद्रा (जलन)—(पत्मा) कृतिस्त्रिस्वदीन

⁴ कैलाशोन्नादकधिहृग प्रतिनियतमुवाबाधिनोर्द्धाङ्गसन्ता (कृ) या

२—पविस्त्रिर्लोकके स्मृतिरभि च सतां या भुति बह्विणीता सा देवी दुर्गमपु प्रदिपानु

⁵ जयत महाराणीहृ दुर्गा ॥ (१) नियतमति प्रकृतिपर—

⁶ ३—रयाजी यागे कृपाफलपुष्पकृतम (१) जेमाव्या जयकरी विद्यापु सिद्धानि

⁷ नस्सत्त (२) जयति जय सरमसजितवज्रस्वसगपित धियाधार. (१)

४—धी बर्म्मसात भूपति—पतिरजनेरधिक बसनाम्य ॥ (३) कविस्त्रिस्वदीनैरति

⁹ ¹⁰ विसदपव मुखया पारबन्ध्या बहिष्काम्य प्रकाम प्रतिबन्धन गुतेष्ट (१) (यय)

जानैरजल (कृ)

५—यमे के मन्त्रमासे कृतवसिगुहकमू तिष्ठानम चाग्ये निमय तामरेन्द्रतगनुचरता

¹¹ गामिता भूमिगामा (४) तस्याधोपधिते (५)

६—योग रहितागुप्ताति मस्तया गुणान् (१) नाम्ना बध्ममटति मृत्युपदवीमाधिरम

यत्यापय (१६) स्यात कीर्तिमतामसध्यचरित अध्यातुरप्यम्जन दिग्म

७—(जा) तनुच प्रमुह्यवतस्गुणोवच संरसा ॥ (११) (५) तस्य गुरुरधिक

प्रिय — प्रियै — प्रथमादि सप्तोष्महासुर्ग (१३) राज्ञिभोभवरसेपराज
 व्याप्तकीर्ति

८—रमणे कुन्त गुण (११*) (*) ब्राह्मणातिवि-मृत्वादिद्रव्यावस्तु विशेषा- (१*)
 गोमिह १९ नयिषै २० धस्ववटे २१ वीगवनामते ॥ (७*) गरिमयाजनि देव्यानामनि
 राजसं

९—महाकरस्त्वाने (१*) गोप्या कारितमेतद्भवन भूवनस्य चिह्नमिव । (८)
 कारापकस्तु सुनु पितामहारव्यस्य सत्त्वदेवाम्भ (१*) गोप्या प्रसादपरमा
 निष्पिठो ॥

१०—(भ) ना स वनिह् । (११) (१) बावन्मेरोस्तदामि प्रचुरहिम कषोनु ग
 मैसाविपराह स्वनि (गी) बावदु (कषा) वपगतक (सु) पा- (*)
 बावन्मन्त्रार्कमास—

११—(स्तु) तरमजसधे (६) र्मयो बावदुषैस्ताव (६) बावसं (निस्त्रि)
 तमिह २३ भवनु वेयस पीरजामा ॥ (१०*) विरसीरवपिके कावे वणा वपगतोस्तरे
 (१*) ब्रह्मभानु—

१२—(रिह) २ (य) नं स्वा (पि) तं (पो) प्ठिषु वरै ॥

(११) विवाकरमुत्तस्येव भूतपक्षेद्विजमन (१*) पुषादिमृदुभिर्धर्म्म प्रोत्कीर्णा
 नायमुचिहना (११) (१२) ॥ ॥ ॥

१३—(गो) विकाम (१) राजित । बकट । वमूक । प्रतिहारकोटन ।
 राजस्थानीवादिममत । जा (१) व (१) र्ज । मानुसासंजनदेव । कुमरर्जन ।
 धनदत्त (व) सु (१)

१४—बुध । वीम्बकपुत्रसत्यदेव (ककिमन) धनदत्त । गोमिह । हरिपुष्ट । (४)
 पन । गपेह । सत्यदेव । रेमिमाक । रतिदाग । तरुण । - दत्त

१५—बृहमुर । धनमर । वपावादि । राजद । भद्रदेव । रूक । वनविम्ब
 भातकुप । विमकु । धार्मदिह । वासु ।
 गणारुटनाम—

१६—त-तर । विममासक । सत्तमदेव ।

वंगसत । वीवातागनिकाकूटानामी ॥ ॥ एकमेवा योयिजाराणां ना

१७—

बनस्पतः वा यद् राजा वनसात सम्बन्धी विमानेभ्य ऽथ भव्य धनमेव मेघजीन के
 राजपूताना मृदियम के वनीनरव प्राचीन भूतिवो एक वन्य विमानेभ्यो के वाय मुरगित है ।

धर्मशास्त्र (शास्त्र) के निकट बसता पड़ है। उसी के समीप प्राप्त हुआ यह प्राचीन चिन्तालेख पिडबाबा के दक्षिण मार्ग में लगभग ५ मील की दूरी पर मिला। जनश्रुति के अनुसार यह चिन्तालेख बाबा परम्पर उसी मंदिर के लया हुआ था। बरतगढ़ इस समय उजड़ा हुआ है किन्तु यात्री देवी (बीमेलमाता या शैलमती) के दर्शनार्थ आया करते हैं। देवी की मूर्ति की बेलमान समीपस्थ निवासी भीत ही करते हैं। वे भीत उस परम्पर का उपयोग अपने मीठारों पर (भासा बर्छी कटाई बाबू बाबि) बार लपाने के लिए करते हैं। पण्डित मुजानमबी को इस चिन्तालेख की प्राचीनता का पता लगा। उन्होंने उस चिन्तालेख को सुरक्षित स्थान पर धर्मशास्त्र के समीप स्टेट सिरोही में रखा दिया।

इस चिन्तालेख में १७ पंक्तियाँ हैं। यद्यपि सभी उत्कीर्ण अक्षर लगभग अच्छी अवस्था में हैं किन्तु बाहिना नाम धीनों के मीठारों से बिच जाने के कारण कुछ क्षतिग्रस्त हो गया है। उस पत्थर के १ या २ मास तक के हुए हैं। इससे १ २ १० और ११ पंक्तियों के अक्षरों पर प्रभाव पड़ गया है। अक्षरों की मोटाई $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ तक कम होती गयी है। इन अक्षरों की लंबि ७ बी या ८ बी सवाली में प्रचलित होगी। इस चिन्तालेख की रचना स्लोकमयी है। जैसे प्राचीन काल में चिन्तालेखों को श्लोकमय लिखने की प्रथा सी थी। प्रथम अक्षर विरल ही हों ऐसा नहीं कहा जा सकता। म्यारहवाँ पक्ष इस चिन्तालेख की स्थापना की तिथि की स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट कर रहा है जिसकी आधा व्याकरण सम्मत् है। चिन्तालेख में धर्मशास्त्र बहुत ही अलंकारों के मत्वापुसार इन शब्दों के स्थानों पर जिन पर हमने संकेतों में संदर्भों के संक लिख दिये हैं निम्न उक्त होने चाहिए —

४—बीलासोन्नापम्पु पढ़िये।

५—दुर्गा पढ़िये—यह सागराछन्द है।

६—किष्ठा पढ़िये।

७—धार्मी छन्द है और इसके बाद बाबा भी आया है।

८—ध्याधार रूपित है छन्द के अनुसार भी ठीक नहीं बैठता।

९—पद्मस्तुतिया पढ़िये।

१०—मन्त्रा पढ़िये।

११—सागरा छन्द है।

१२—मन्त्रा पढ़िये।

१३—‘प्य’ अक्षर ‘र’ के साथ उसी पंक्ति में नहीं लिखा हुआ है जिसमें ‘ज’ भी है किन्तु ‘र’ और ‘ज’ इन दो अक्षरों के ठीक नीचे उत्कीर्ण हैं।

२४—‘ज’ के स्थान पर कहावित् ‘ज’ हो।

१५—सार्धनविश्रित छन्द है।

१६—धुपि पढ़िये।

१७—रमोदरा छन्द है।

१८—विशेष पढ़िये।

१९—इतिहास पढ़िये।

२०—धर्मशास्त्र पढ़िये।

२१—अमुष्यु छन्द है ।

२२—आर्या छन्द है और इसके बाद का भी वही छन्द है ।

२३—'य' अक्षर पङ्क्ति ने नीचे उत्कीर्ण है ।

२४—अम्बरा छन्द है ।

२५—अक्षर, रिबं बहुत ही अस्पष्ट है ।

२६—स्लोक है ।

२७—राष्ट्रिय अथ पङ्क्ति ।

२८—बीष्टिका अथ पङ्क्ति ।

२९—नामानि पङ्क्ति ।

चिन्तासेन के प्रथम दो श्लोक क्रमशः दुर्गा और श्वेमार्या (श्रीमेलमाता) से मंगल कस्यायकारिणी बातों की प्राप्ति के लिए लिखे गये हैं । अतः इन दो में स्तुति मात्र है । तृतीय पद्य में राजा बर्मसात की प्रशंसा की गई है एवं अतुल्य भी इसीलिए लिखा गया है । प्रथम श्लोक निर्देश करता है कि राजा बर्मसात के बन्धन सत्याभय नाम वाला एक जागीरदार था । वह देवी का भक्त था तथा हिमालय के पुत्र धनु बाधस (धनु) के प्रदेश का स्वामी था और उसकी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ था । पष्ठ श्लोक में कहा गया है कि बन्धन सत्याभय का पुत्र रात्रिजल था जो बाह्यालों की धृतिवियों तथा सेवकों को बन्धनकारों को अत्यधिक बल सम्पत्ति देने के कारण स्वल्प बटनगर (बटनगढ़) में कुबेर के रूप को धारण किए हुए था । सप्तम श्लोक में कहा गया है कि बर्मसात के शासन कास में बढाकर स्वाम पर श्वेमार्या देवी का मन्दिर पंचों (कोष्ठी) द्वारा बनाया गया है । अष्टम श्लोक में विवामह नाम वाले किसी व्यक्ति के पुत्र को जो एक बन्धक था गत्यदेव जिसका नाम था पंचों द्वारा इस भवन के निर्माण के लिए कारागार के रूप में रखा गया । नवम श्लोक बताता है कि उन नगर-निवासियों के कस्यायार्थ वह मन्दिर, जब तक सुमेरु पर्वत मधियों सूर्य तथा चन्द्रमा इस पृथ्वी पर रहें स्थित रहे । आखिर में समय दिया गया है कि पंचों द्वारा यह मन्दिर १८२ में बनाया गया । (यह सम्भव हमारी बुद्धि के अनुसार विक्रम संवत् या शक संवत् ही होगा यद्यपि चिन्तासेन में १८२ वर्ष ही लिखे हैं । शक संवत् या विक्रम या किसी अन्य प्रचलित सम्वत् की ओर इसका कोई निर्देश नहीं है । यदि विक्रम सम्बत् है तो इसके अनुसार सन् १९५ ई० का है ।) आखिर श्लोक में कहा है कि यह प्रशस्ति दियाकर के पुत्र धूर्तराज बाह्याल द्वारा लिखी गई और भाग मुद्रित ने इन अने हुए श्लोकों को चिन्ता पर उत्कीर्ण किया । तेरहवाँ श्लोक नहीं है फिर तो अन्त तक पंचों के नाम दिये गये हैं उनमें तीन उत्प्रेषणीय हैं । प्रथम बूडा नाम वाली स्त्री थी या तो उस मन्दिर से सम्बन्ध रखती हो यथवा उस मन्दिर की माता का ही नाम हो । दूसरा नाम प्रतिहार बौद्ध का है । प्रतिहार या पट्टहार एक राजपूतों की शाखा है । तृतीय नाम है राजस्थानीय आतिथ्यनन्द । राजस्थानीय का अर्थ तो राजस्थान का निवासी है । (स्मरण रखना है कि यदि वह मुसलमानों का समय था तो वैसे राजपूत या राजस्थान के लिए भी मोम्हा भी और अन्य इतिहास विद्वेदों का कथन है कि इस राज्य की उत्पत्ति ही मुसलमानों के आगमन के परचात हुई थीक है किन्तु मुसलमानों के आगमन के पूर्व ही राजस्थान अल्प मिलने लग गये तो फिर राज

स्नान शब्द यदि प्राचीन है जो विचारणीय है।) वहाँ पर बमलात राज्य करता था वह सीमा कदाचिद् गुजरात या मासके के ही अजिमेर में भी उसका राजस्नान के अन्तर्गत होता इस शब्द से प्रमाणित नहीं होता। प्रो. किमहार्म या मण्डाकर माने हुए विज्ञान ॥। ने इस शब्द के लिए (राजस्नानीय) विदेश सचिव (Foreign Secretary) का अर्थ स र्हे है जो विचारणीय है। जैन परम्पराओं इतिहास में प्रतिहारों की उत्पत्ति भीयों में कही गई है— (वेत्तिये वी प इ सलक त्रिपुटी महाराज पृ० ११५)

वसन्तपङ्क के विमानेख पर इतना भित्त पुरुने के परचात् हमनो अयोमिक्षित तथ्यों की उपसम्भि हुई —

(१) प्रथम श्लोक देवी से सम्बन्धित है जिसकी बीबी पंक्ति 'सा देवी दुर्गमेण प्रविशतु अगते मंत्रसानीह दुर्गम्' इस बात की ओर संकेत कर रही है कि जिस स्नान में वह स्नाना लेक लयाया गया था वहाँ के अधिकार विवाही देवी के उपासक होने। किसी का दृष्ट विष्णु है तो किसी का शिव इसी भाँति नगर निवासियों की दृष्ट यह देवी होनी। इसका एक प्रमाण यह भी है कि दूसरे श्लोक में उसी देवी की तो स्तुति गायी गई है। किन्तु देवी के मंदिर में चूँकि वह विशालीय स्थापित किया गया था अतः क्षेम करी (क्षीमेस माता जो प्रायः बहुमाती है) से प्रार्थना की गई है कि वह हमारा सर्वत्र ही कल्याण करती रहे। यदि उसी मंदिर वाली देवी के लिए प्रार्थना की जाती तो फिर एक श्लोक ही पर्याप्त था। जो सं पुनरुक्ति है ठीक नहीं लपटी अतः प्रथम में नगर निवासियों की बी (बीबी) की ओर संकेत है और कदाचित्त वह नगर भी उसी क वरदान स्वस्व बना हो अतः उसको प्रथम प्रणाम करने के पश्चात् उसी क साकार रूप को स्थापित कर क्षेमकरी मंदिर की देवी क्षेमाय्या (क्षेमदारी) से प्रार्थना की गई हो।

(२) उस स्नान का शासक अत्यन्त बलवान् श्री वर्ममात या जिसके अधीन माण्डसिक राजा थे उनमें अक्षयमट नाम वाला अत्याश्रय की पत्नी को पारण करने वाला अर्जुनाश्रम (प्राय) की रक्षा के लिए नियत किया गया था। अक्षयमट देवी का परम भक्त था।

(३) अक्षयमट के पुत्र का नाम राजिखल था। वह ब्राह्मण अनिधि पादि को विपुल दान दे कर सरकार करने से कुम्हार के समान प्रसिद्ध था।

(४) बटाकर स्नान में मंदिर तो बना दिया गया किन्तु मूर्ति की प्रतिष्ठापना का कोई नाम नहीं मिला प्रतीत होता है कि मूर्ति तो पूर्व से ही उस स्नान पर थी किन्तु भवन की जब प्रावस्थकता हुई और उस मंदिर के पमाने के लिए व्यय कहाँ से किया जाय उसका रक्षक कीर्त हो पादि प्रदान सामन पाए तब मगर क राजा ने भवन निर्माणोपरान्त कुछ व्यक्तियों की एक बोटी स्थापित कर दी जिसको प्राय की भाषा में ट्रस्ट (Trust) कहते हैं। उस बोटी में कौम-कीर्त ने उनके नाम अर्पण से दे दिये गये हैं।

(५) मंदिर पर विमानाश्रम लगाया गया था उसका समय ९८२ वर्ष गिना हुआ है। विक्रम संवत् ५५५ या ५५६ ईसवी में मंदिर नहीं। (हमारा मत है कि काठियावाड़ गुजरात मासका मारवाड आदि की ओर उस युग में अक्षयमट का अधिक प्रचार

या । जीमे हृद्गमा गांध (पाठ्यावाह) में मन् संवत् ८३६ का एक शतपत्र
मिला है जिसमे ज्ञात होता है कि अश्वमेध म धर्मवीरराष्ट्र का राज्य था जो घोषडा
यंग का प्रतिहार का सामन्त था । इस भाति एक मन्त्र के एक सही घोषडा प्रमाण
है । यदि यन् मान संवत् का है तो फिर मन् ७६० ई० का हुआ किन्तु ऐसा अश्व
या योगीशकर हीराचन्द्र का है कि मन् विजयी मन्त्र का है तो फिर मन् ८२५
ई० हुआ ।

(५) सिमायेज ने गजबानीय' और प्रतिहार राज्य हम दिता मे बड़े उपयोगी है। राजस्थान की उत्पत्ति और प्रतिहार वा साधारण प्रयोग।

‘बसन्तगढ़’ का विभाजित पर उपर्युक्त स्थलों की उपस्थिति के पश्चात् अब हम को उनकी परीक्षा आभाषाचारमक दृष्टि से करनी है। सर्व प्रथम हम यह देखें कि बसन्तगढ़ का विभाजित पर निम्न गये वर्ण के अनुसार उसका कौन सा मन् होना चाहिए।

(१) विश्वासार्थ में स्पष्ट है—

द्वि रणीरयधिके कान्ने पञ्चमां वपन्तोसरे

इस भाँति प्रिमात्मन का समय ६८२ सम्बत है। महा मङ्गोपाध्याय ५० वीं गीशकर द्वारा रचें धोम्रा इस भाँति प्रिमात्मन का समय विष्णु संवत् होना मानत है। उनका कहना है कि इसकी ओर इसी विप्रर्षी संवत् का प्रचलन प्राम्यधिक था किन्तु उन्होंने इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। यदि हमको विप्रर्षी संवत् स्वीकार कर लिया जाय तो फिर इन वर्षों में ५७ वर्ष विकास देने पर ईस्वी संवत् ६२५ का जाना है। इस भाँति धी धोम्रा उस प्रिमात्मन का समय ६२५ ई० स्वीकार करते हैं। धोम्राजी की देखा-देखी प्राम्य विद्वानों ने भी यह मत बिना किसी तर्क के स्वीकार कर लिया है।

हिस्ट्री प्राप सिराही स्टेट परिषदेद पठ का उद्देश्य हम निम्नलिखित रूप में
 है :—

The Chaoras of Bhimtal had included Sirohi in their dominions. A stone inscription dated 682 Vikrama Era (625 A. D.) of the time of Raja Varmalata found in Basantgarh mentions his feudatory Rajil son of Vajrabhatta Satyashraya as being ruler of Arbud Desh.

(१) बसिय पृष्ठ की दायां छत द्वितीय कक्ष धरतीहा पृष्ठ २८७ में अधिकारिक का प्रथम मुख्य पत्र लिखी हुई लिखते हैं कि गुजरात में बरतमी राजाओं का राज्य या जत राज्य १८ अधिकारी नियत थे। जिनमें राजस्थानीय भी एक अधिकारी था जो बिदेगी राजमन्त्री के रूप में होता था। जो किमद्वार भी बराबरी इतने लोग प्रथम अधिकारी की बात को ध्यान में रखते हुए लिख रहे हैं जो विचारणीय है।

(२) — संस्कृत साहित्य की कल्पना — बौद्धोपर पांडित्य संस्कृत साहित्य का इतिहास —
मीतागम जयराज कोशी, संस्कृत साहित्य का इतिहास — बसदेव उपाध्याय संस्कृत
साहित्य का इतिहास — डा० भयंकरदेव ।

The inscription does not say to what race Varmalata belonged or what country he governed, but the famous poet Magh who was a native of Bhinmal writes in his *Shishupatya* that his grandfather Suprabha Deva was the Chief Minister of Raja Varmalata possibly a ruler of Bhinmal. Brahma Gupta also writes that Vyaghramukh was then ruling in Bhinmal in Shak Samvat 550 (628 A. D.) Vyaghramukh thus appears to have been successor of Varmalata. The Chinese traveller Hsien Tsang states that Bhinmal was the capital of the territory of the Gurjara.

In 821 V. E., the Chaura King Vanraj founded the city of Anhilpura and made it his capital. There the Chauras ruled till 1017 V. E. (960 A. D.) but Sirohi was never included within their dominions.

Basantgarh —Basant Garh lies nearly three miles to the south of Ajari. It is also called Basantpur or popularly Vasantpura Garh which seems to be a corrupt form of Vasantpur Garh. This is probably one of the most ancient places in the state as the oldest inscription bearing date 682 V. E. (625 A. D.) has been founded here. The place seems to have been the site of the fort built on the top of a hill by Maharaja Kumbha of Mewar. A temple dedicated to the godless Keshmari (Keshmariya) was erected on a hill by Satyadeva in 682 V. E. (625 A. D.) The temple has recently been restored. The inscription pertaining to this temple was found buried under a heap of stones. This shows that when this temple was built the country around was governed by Raja Varmalata and the territory round about Abu was under his feudatory chief Rajaji son of Vajrabhatta Satyashrya. It is not clear to what race Varmalata belonged, but there is reason to believe that he was of the Chaura clan which claims to be a branch of the Parmara and their capital was Bhinmal (Shrinjal) now in Jodhpur territories.

(see vol IX. page 191 Epigraphy India)

उपर्युक्त उद्धरण लिखने का हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि सोमराजी की सेवा देखी किन्तु भक्ति विरोधी के इतिहास से भी निष्क्रम सं १८२ दिया गया है। विरोधी के इतिहास लेखक से तो पूरी भाषा की जाती कि वह विवेचना के पश्चात् अपनी सीमा वाले विमानेख के कार्य को स्थिर करते क्योंकि जीनमास (मास की जन्मपूर्ति) विरोधी स्टेट ही के तो धर्मवर्ध है। कुछ भी हो हम उद्धरण से भी हमारा कार्य कुछ निष्कर्ष ही जिसका प्रकाश हम बाद में जानेंगे यद्यपि इसकी बहुत सी बातें हमारे विमानेख वाली ही हैं।

उपर्युक्त १८२ वर्ष निष्क्रम संवत् न होकर हमारे मत से एक संवत् ही होना चाहिए, इसके निम्नलिखित कारण हैं —

(1) History of Mediaeval Hindu India vol II Rajputs by C V Vaidya Chapter XII contemporary Arab writers—Paragraph 2—

Sulaiman further says that every prince in India is master in his own state — the Rashtra Kutas always use the Saka era (Saka Samvat) in their inscriptions but possibly their coins had only regal years — the Kanauj empire extended into Kathiawar — we know that Bhoj first struck coins called the Adivabha drama.

(१) उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि राष्ट्रकूट संवत् का प्रयोग सर्वत्र ही अपने दिमानेकों व सारंगपत्रों में करते थे किन्तु सिक्कों पर उस समय के राजा का सही संवत् ही रखा जाता था। कर्नाट का साम्राज्य काठियावाड़ तक विस्तृत था और मोज ने ही प्रथम अपने सिक्कों पर बादिराह सुवर्णाया था।

- (१) बाठकों की पुष्टि के लिए तब तक जब तक कि बसन्तमङ्ग का विमानेक संवत् का ही हो सकता हम तब तक संवत् के विमानेकों की सूची रख रहे हैं (देखिये जैन साहित्य और इतिहास लेखक काशूराम प्रभो)
- (२) काठियावाड़ के हड्डाला ग्राम में विनायकपात्र के शेष आता महिपाल के समय का एक सं ८३१ (वि सं २७१) का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि बडवाल में उसके सामन्त बापवडी बरलीबराह का अधिकार था।
- (३) प्रतिहार राजा महिपाल के समय का एक शिलालेख हड्डाला ग्राम (काठियावाड़) के एक संवत् ८३८ का मिला जिसमें उस समय बडवाल में बरलीबराह का अधिकार होना मिला है जो बापवडी वड का था और प्रतिहारों का सामन्त था।
- (४) एक संवत् ८३३ बडवाल में हरिवेल आचार्य ने कपाकोश की रचना की जो पुनः संवत् के थे जिसमें जिनसेन हुए हैं।
- (५) राष्ट्रकूटों से पूर्व चौलुक्य सार्वभौम राजा थे जिनका अधिकार काठियावाड़ पर भी था। उनसे यह सार्वभौमत्व एक संवत् ९०२ के समय राष्ट्रकूटों ने छीना था।
- (६) बडीरा में गुजरात के राष्ट्रकूट राजा कर्नराज का एक संवत् ७३८ का सारंगपत्र मिला है उसमें कीर्तिवर्मा महाबराह को हरिल बना दिया लिखा है (इंडियन एन्टिकेरी) पृष्ठ १२ वृ १३८)
- (७) एक संवत् ७०० में कुजलवामा को उज्जैन शूर ने जावलिपुर या जालोर (मारवाड़) में एक दिन बंधे रहने पर समाप्त किया है।
- (८) एक संवत् ७०५ में हरिवंश की रचना हुई।
- (९) सोमदेव ने दशरत्नचक्र चम्पू को एक संवत् ७०६ में बुरा किया और बादिराव ने एक संवत् ८४७ में चारुचक्र चरित को पूरा किया।
- (१०) मुलमुल भारवाड़ जिसे की तहसील गहरा में जहाँ पर इस समय भी चार जैन मन्दिर हैं उनमें एक संवत् ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, १०३३ ११६७ १२७५, १२८७ के विमानेक हैं।
- (११) उत्तरभारत गुजरात मालवा में दोनों संवत्तों को भी लिखने की प्रथा रही है किन्तु बहिल वाले तो एक संवत् ही लिखते थे। जिनसेन ने अपने एक रचना का समय एक संवत् में दिया है किन्तु हरिवेल ने एक और किन्तु दोनों में।

ब्रह्मसामा गौतम (वाडियाबाद में है) में एक संवत् ८३६ का नाम पत्र प्राप्त हुआ है जिसमें प्राप्त होता है कि ब्रह्मसाम गौतमीयगह का अधिकार था जो वादरा रत्न का था और पतिगर्भों का सम्बन्ध था।

एक मोति चक्र संवत् ४११ में भी ब्रह्मसामा प्राप्त है। एक संवत् ७३४ का नाम गदा कर्तव्य का नाम प्राप्त है जिसमें मोतिगर्भ द्वितीय को शक्ति बनाए का उल्लेख करने का नाम स्मृत है। एक संवत् ६७५ में राक्षसों ने सार्वभौमत्व जीत लिया।

ब्रह्मसामा के नाम पत्र से यह ज्ञात होता है कि प्रतिहार बड़ी गव विस्तृत के और पाग (बाबदा) बघ का उनके साथ कितना सम्बन्ध था। बाबदों में प्रतिहारों में बनिष्ठ सम्बन्ध था। ये दोनों दुर्बल बघ थे। ब्रह्मसामा में एक दूसरी गुर्जरों की नामा जो बनिष्ठ या बाबदा या बाग कर्तव्य है संवत् ७४६ में स्थापित हुई। बनिष्ठ के नामोपरांत ही इसकी प्रसिद्धि हुई। ये गुर्जर प्रतिहारों के समीपस्थ थे।

(See A Political & Cultural History of India. Vol I by R. Sathianathan) नामधृ प्रथम (सं ७२५-७४) प्रतिहार बघ का स्थापक माना जाता है।

इसी का दूसरा प्रमाण एक और सीबिये। मिरोही स्टेट के इतिहास परिच्छेद पष्ठ ५ बाबदा बघ वर्णन के अन्तर्गत लेखक लिखते हैं कि—

Brahma Gupta compiled his Brahmasphuta in Skidhanta in Saka 560 (629 A.D.) Vyaghrasimha of Chap clan was then ruling in Bhinmal (in Marwar) Dhananivara of the Chap clan and a feudatory of the Parthar (Pratihara) Raja Mahipal of Kanauj was a ruler of a part of Mathurwar in 971 V.E. (813 A.D.) Tod is of opinion that the chapas or chaoras were Sakas or Scythians. In modern researches the opinion is advanced that they are Gujars. The Chaoras of Bhinmal had included Sirohi in their dominions.

उपपुस्तक उद्धरण में ब्रह्मसूत्र सिद्धान्त के रचयिता भी ब्रह्मसूत्र के विषय में एक संवत् वाली बात व्यक्त की है। इसके लिए तो श्री श्रीरामचंद्र हीराचन्द्र श्री श्रीराम श्री लिखते हैं कि वह एक संवत् है क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कदाचित् उसके प्रचलन में अविकलता या बर्त हो ता वस्तुतः नाम में लिखा ही तो वास्तव में ही क्या है इससे बिना संवत् के मान लिया जाय। वास्तविक संवत् भी चल रहा है और इसी संवत् की किन्तु बड़ी पर ई० संवत् का प्रचलन प्रारम्भ ही हुआ था ऐसे समय में यदि किसी में लिख दिया २०० तो वह वर्ष बिना ही माना जावेगा क्योंकि भारत के अधिक भाग पर बिना सं० का तो प्रचलन था और ई० संवत् तो नवीन रूप में ही आया। हम पर भी एक संवत् का लेखक ब्रह्मसूत्र भीनमाल का निवासी था यह बड़ी पर एक संवत् का ही प्रचलन होगा अधिक संभव है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि जब राजा कर्मसात के विस्तार का समय संवत् ६२२ ई. स्थापित कर दिया तो ब्रह्मसूत्र सिद्धान्त के रचयिता ब्रह्मसूत्र का संवत् से नाम बनीव ब्रह्मसूत्र के भीनमाल में वास्तविक नाम का सम्बन्ध कीम रत्न मकता है। ५२० एक संवत् न ता ६२८ ई. का ही समय हुआ। ६०४ ई० व ६२४ ई. बीच ही वर्ष का अन्तर होना भी भी बतावे हुए करते हैं कि इन तीन वर्षों में भीनमाल का भीन प्राप्त

हुया ? घासक कोई भी हो बर्माभारत किसी भी बंध का हो हमको घभी इसरो कोई तात्पर्य नहीं । हमें तो घासकर्म इस बात का है कि क्या तीन बर्ष में ही उसी स्थान का सबत्-परि बतन हो जाया करता है ? एक ओर तो यह कहना कि उस ओर सबत् का प्रचार हो गयो वा धीर दूसरी ओर यह कहना कि तीन बर्ष में ही उसी का प्रचार हो गया वास्तवि क्या से मेस नहीं लाता । हमारी समझ मे जब भिस्समानसाधार्य ने एक संबत् स्पष्ट रूप में सिखा है तो फिर इस पिसालेक पर भी एक सबत् का होना ही प्रकट होता है । यह सभी प्रदेश का वादी वा जिस प्रवेक के पिसालेक का हमने घभी तक इतना बर्णन किया है ।

(१)' इमरी बात प्रतिहार शब्द की है। प्रतिहार शब्द का प्रयोग ही कदाचित् शास्त्री गौरी म भावा । प्रतिहारों का संस्थापक नामयट का जिसका अस्तित्व ही सन् ७२५-४० तक रहा जाता है : उसके पश्चात् ही प्रतिहार शब्द का प्रयोग नाम के साथ होने लगा यदि हम सिमासेन को ६८२ वि० स० का मानकर सन् ६२५ का निर्दिष्ट करें तो फिर सिमासेन के पोम्भिवकाज राजसिंहासने पर आयेगा। बकटः खडकः प्रतिहारकोशकः राजस्थानीय साहित्य में इन नामों से प्रतिहार राज्य का प्रयोग कैसे किया जाता ? इससे भी प्रतीत हो रहा है कि वह ६८२ सन्तति विक्रम न होकर एक सन्तति ही था जिसका सन् ७६० होता है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह प्रतिहार शब्द शास्त्री वल्लभाजी के पूर्व या ही नहीं जाहे सोम सकय तिकास राम के अनुग्रह लक्ष्मण से क्यों न माएँ। लक्ष्मण राम के प्रतिहार (DOOR KLEPER) के किन्तु यह वाचना बहुत पीछे की है। शास्त्री गौरी म मध्य राष्ट्रकूट राज के उद्भव में यज्ञ करने जाने पर बुद्धर राजाधर्म ने प्रतिहार का नाव भार सम्भाला या सभी स यह प्रतिहार शब्द कदाचित् बुद्धर राजाधर्म के साथ प्रयुक्त होने लगा हो। (देखिय An Advanced History of India by Majumdar Raschaudhari Datta Page 169 The Pratihar Empire) नामयट्ट प्रथम प्रतिहारराज्य का संस्थापक सम्राट् था। ८३६ ई० के लगभग भोज प्रथम की सक्तीयता से प्रतिहार क्षत्रिय पुन आयात हुई।

उपहु नत्र बिचार इली मत की पुष्टि करता है कि इस भिन्नामस में जो संवत् दिया है
 पर विक्रम संवत् नहीं है। मग सन् ११११ ई० जिसका अर्थ यह हुआ कि वह ७६० ई० सन् का
 है म कि १२५ सन् का ।

इस बात की निश्चित कर लेने के पश्चात् कि शिवालय सम् ३९० ई० का था हमारे गणगुण द्वारा प्रशन राजा वर्मनाथ का था जाता है कि वह फिर क्या था । श्रद्धालु स्वर्णित प्रह्लादसुत शिवालय २४ में दृष्ट्याय गु० ४ ७ में सिंगन है —

भी आपब्रजलोक भी व्याधमुग नृगे दक्षमृपासात् पत्न्यामत् गगुस्त्रवपार्त्त

पंचभिरतीर्थैः ब्रह्मसकुण्डिहान्त मग्गमगणित्र मोनविप्र्रीत्य विमदगम कृ॥ निष्पु
मुन ब्रह्मपुनम इति गेरानुपारेम सप्त २१० प्रादुरभूत् ।

(१) देसिये जैन परंपराओं इतिहास भाग १ मिपुटी महाराज का वृ २३४ सीयं बहिरार प्रतिहार सीयंका भाषी प्रतिहार बंधा नीकनरी छै । ते प्रतिहार बंधा किछा भाषी करे छै । भिन्नभाषा छगे कालीजनी गद्दी ओ आम्हा छै । तेभा घरा रात्राओं बंध बंधो य बंध धम प्रमो यवा छै । तेनी रात्राओं में भाषाबलो ब भाषाबट ते भीनभाषा ओ रात्रा हतो ।

हिस्ट्री आफ सिरोही स्टेट के अध्याय १ में 'बाबबाब' थोरपेक में लिखा है कि बड़ा-पुष्ट ने बड़ापुष्ट सिंहाल को १२८ ई. में भीममाल का शासक थाप बंधीय व्याघ्रमुख थाप के समय में लिखा था। यद्यपि सन् १२८ ई० का भीममाल का शासक थाप बंधीय व्याघ्रमुख ही था इसमें तो कोई संदेह नहीं है। इतिहास का कहना है कि हुयेनसांग जब ६४१ ई० में भारत यात्रा में आया तो उसने भीममाल में एक २० वर्षीय क्षत्रिय युवक को शासक के रूप में देखा। इतिहास विद्वानों का कहना है कि वह धीरे-धीरे नहीं था सिवाय व्याघ्रमुख के पुत्र के। एक द्वापद्वय बालुब सामन्त पुनकेही का कलचुरी सन् ४६० (७४० ई०) का प्राप्त हुआ है जहाँ वह प्रत्यक्ष आया है कि धरनों ने उसी समय के शासक थाप बाबबाब के राज्य को लूट लिया था। यदि वे भीममाल के बाबबाब ही थे तो कहना पड़ेगा कि ७१२ और ७४० के मध्य भाग में उन पर यह आक्रमण हुआ। इन बातों के पक्ष में ही हम भीममाल प्रतिहारों का शासन देखते हैं। यह तो निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन प्रतिहारों के भीममाल के बाबबाबों को कब भीममाल में निकाल बाहर किया। नागबल्लोच या नागमत प्रथम ही प्रथम प्रतिहार शासक भीममाल का था जिसके राज्य की सीमा कसीब बंमाल मध्यभारत व पंजाब तक थी। बी सी बी बीच का कहना है कि यह धरम प्राक्रमण सन् ७१२ के समीप हुआ। कुछ भी हो भीममाल में व्याघ्रमुख व उसके पुत्र के पश्चात् थापबंधीय राजा का कोई नाम नहीं था। थापबंधीय राजा धीरे-धीरे शासक दोनों प्रकार के थे किन्तु हुयेनसांग का तो कहना है कि बड़ा २ वर्षीय युवक राजा बुद्ध बर्म के नियमों का पालनेवाला कट्टर बौद्ध विश्वासी था। हो सकता है कि राजा बर्मसात उसी २ वर्षीय युवक राजा के पुत्र या पौत्र रूप में ही जो अपने पिता या पितामह की भाँति ही शासक होते हुए भी बौद्ध धर्म का पालन करने वाला हो धर्मशासक अपने महाकाव्य सिद्धुपालन में कविबंध बचन में गीते लिखा श्लोक कभी न कहते। वे लिखते हैं —

काले मित्रं तथ्यमुत्कर्षम्य तत्तागतस्यैव जन सचेता ।

विनानुरोधात्सन्निहितैश्चन्द्रम महीपतिर्यस्य बचत्प्रकार ॥

उपयुक्त में तत्तागत जनमान्य बुद्ध के उपदेश की भाँति मान के पितामह भी सुप्रमद के की बातों को बर्मस राजा बिना किसी संकोच के मानता था। इससे तो तात्पर्य यही हुआ कि राजा बुद्ध बर्म का भी अनुयायी या धीरे-धीरे विशालेख की माया व निधि की इस बात का पर्याप्त प्रमाण दे रही है कि भीममाल में उस समय बौद्ध धर्म का रूप प्रतिमाबस्था का था या तथा बर्म बर्म का विकास था और जहाँ लोग देवी की पूजा तथा सूर्य और विष्णु की भी पूजा करने लग गये थे। हमारा निष्कर्ष राजा के विषय का यही निकला कि वह थाप बंधीय या जो बौद्ध धर्म का भी पालन करता था यद्यपि बंध परम्परा से वह पूर्ण शासक था। संकर की स्त्री स्त्री दुर्गा का उसने इष्ट था और भीममाल की माय्य भी (धर्मार्थ) को उसका हमारा रूप कह कर वह उसकी उपासना करता था।

यसन्तगढ़ के सिमामेल का सारांश

राजाबर्मस (बर्मसात) भीममाल के गम्भीर धरमारी थे जन्मगत १ मील दक्षिण की ओर बल्लु बुरपड (बल्लुगड) का शासक था। शेरकरी (शेरमार्ग) देवी का मन्दिर तत्प

र द्वारा सन् ७६० ई० में बसन्तपुर की पहाड़ी पर बनाया गया। जब इस मंदिर का भवन
न कर पूर्ण हुआ उस समय उसका सिलालेख वहाँ के राजा बर्मसाठ ने सन् ७६० ई० में
स्थापित किया। इसमें पर्वों के नाम भी दिये गये। राजा उस मंदिर का प्रधान रक्षक था।
राष्ट्रपर्वत समीप में ही है। राजा बर्मसाठ का सामन्त बन्धुवट खत्यायव का पुत्र राजिजन उस
देव का स्वामी था। राजा बर्मसाठ के मन्त्रीन ऐसे कितने ही सामन्त थे। राजा चाप बंध
न था।

सिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि राजा बर्मसाठ के समय तक 'प्रतिहार' और
राजस्थानीय' छद्मों का प्रयोग होने लग गया था। राजस्थान का प्रान्त उस समय मुर्जरभूमि
के बाम्ब कोने मारवाड़ (मरुधर) से लेकर प्रायः पर्वत का था।^१ भीममाल कदाचित् इस
समय बाबड़ों के हाथ से निकल कर प्रतिहारों के हाथ जा चुका था। इस समय बापबंस
मनहिसपाटन व भीममाल के पासपास के छोटे बड़े राजाओं के साथ हो रहा। हमारे मत
में यह बापबंस का अन्तिम राजा था जो भीममाल से मनहिसपाटन की ओर गये हुए राजा
के ही बंस का था। मनहिसपाटन काका ज्येष्ठ भाई हो और बर्मसाठ कनिष्ठ। यह कनिष्ठ
अपनी छोटी सी जागीर को रक्षते हुए बसन्तपुर को ही प्रधान राजधानी स्थापित कर रखा
था जब कि धारों के अधियाग या परस्पर विग्रह प्रारम्भ हो गये थे। यह राजा क्षान्त
महर्षि का था अथवा कुछ इसको मान्य था उसी में संतुष्ट रह कर अपना सेव जीवन
जन्मे समाहकारों के मतानुसार बिता रहा था।

(१) प्रो० मुबारक प्रिविरी वरीन्स कागेज बमरस सन् १६०२ बजापूर सिद्धान्त की धूमिका
में लिखते हैं—

अर्धे भिममालकाका जामी मुर्जर देशोत्तर सीन्धि मालव (मारवाड़) देशतः बजिल
जाये प्रायःपर्वत मुर्लीनम्भीर्मम्य तन् पर्वतान् बायुकोले बधयोवमान्तरे सम्प्रति
प्रतिष्ठा।

हिस्ट्री आफ सिरोही स्टेट के अध्याय ९ में 'बाबबाब' शीर्षक में लिखा है कि बड़ा पुन्ट ने ब्रह्मपुत्र सिन्धु को १२८ ई० में भीममाल का शासक बाप बख्शीय ब्याधमुल बाप के समय में लिखा था। अतः सन् १९८ ई० का भीममाल का शासक बाप बख्शीय ब्याधमुल ही था इसमें तो कोई संदेह नहीं है। इतिहास का कहना है कि हुवेनसांग जब ६४१ ई० में मारठ यात्रा में था तो उसने भीममाल में एक बर्षीय अग्रिय मुखक को शासक के रूप में देखा। इतिहास विद्वानों का कहना है कि वह और कोई नहीं था सिवाय ब्याधमुल के पुत्र के। एक तात्पर्य बाबुबय मामन्त पुनकेसी का कलचुरी सम्वत् ४८० (७४० ई०) का प्राप्त हुआ है उसमें यह प्रत्यक्ष थाया है कि घरकों ने उसी समय के बांस पास बाबड़ा बंध के राज्य को गदत किया था। यदि वे भीममाल के बाबड़ी ही थे तो कहना पड़ेगा कि ७१२ और ७४० के मध्य भाग में उन पर यह शासन हुआ। इन बापों के पश्चात् ही हम भीममाल प्रतिहारों का शासन देखते हैं। यह तो निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन प्रतिहारों के भीममाल के बाबड़ों को कब भीममाल से निकाल बाहर किया। नागार्जुन या नागभट्ट प्रथम ही प्रथम प्रतिहार शासक भीममाल का था जिसके राज्य की सीमा कभीन बंमाल मध्यभारत व पंजाब तक थी। श्री सी० बी० बीट का कहना है कि यह घरब भास्करमज सन् ७१२ के समीप हुआ। कुछ भी हो भीममाल में ब्याधमुल व उसके पुत्र के पश्चात् बापबख्शीय राजा का कोई नाम नहीं थाया। बापबख्शीय राजा ही और शासक दोनों प्रकार के थे किन्तु हुवेनसांग का तो कहना है कि वह २० बर्षीय मुखक राजा बुद्ध बर्म के निमर्गों का पालनपाला कट्टर बौद्ध ब्रिक्कासी था। हो सकता है कि राजा बर्मसात उसी २० बर्षीय मुखक राजा के पुत्र या पौत्र रूप में ही जो अपने पिता या पितामह की प्रति ही शासक होते हुए भी बौद्ध बर्म का पालन करने वाला हो चय्यका भाव अपने महाकाव्य क्षिप्रपालवच में कविबंध बचन में जीके धिया रत्नोक कभी न कहते। वे लिखते हैं —

काले मित्रं तप्यमुदकपथ्यं तयागतस्तेष्व जन सचेता ।

विनानुरोधात्स्वस्थिरेच्छम्यस्य महीपतिर्म्यस्य वचःशकार ॥

अपदुक्त मैं तत्तामस भवमान् बुद्ध के उपदेश की प्रति मान के पितामह श्री सुप्रम देव की बातों की बर्मल राजा बिना किसी संकोच के मानता था। इसके दो सालमें मही हुआ कि राजा बुद्ध बर्म का श्री धनुषासी का और धिनातिक की भाया व लिपि भी इस बात का पर्याप्त प्रमाण है रही है कि भीममाल में उस समय बौद्ध बर्म का रूप प्रतिमाबस्या का सा था तथा जन बर्म का विवास या घोर बही लोभ देवा की पूजा तथा सुर्म और विष्णु की भी चर्चना करने सब गये थे। हमारा निष्कर्ष राजा के विषय का यही निकला कि वह बाप बख्शीय या जो बौद्ध बर्म का भी पालन करता था अथवा बंस परव्यरा से वह पूर्ण शासक था। शंकर की स्त्री देवी दुर्गा का उसकी इष्ट या और भीममाल की भाव्य श्री (क्षेमार्वा) को उसका दूसरा रूप कह कर वह उसकी उपासना करता था।

समुत्तमगढ़ के शिवालोक का सारांग

राजाबर्मन (बर्मसात) भीममाल के समीप प्रवारी से लगभग ३ मील दक्षिण की ओर बसन्त पुरबद्ध (बसन्तगढ़) का शासक था। सोमकरी (सोमार्वा) देवी का धर्मिर सत्य

देव द्वारा सन् ७६० ई० में बसन्तपुर की पहाड़ी पर बनाया गया। जब इस मंदिर का भवन बन कर पूर्ण हुआ उस समय उसका सिक्कालेख बहाँ के राजा बर्मसात ने सन् ७६० ई० में स्थापित किया। उसमें पत्थों के नाम भी दिये गये। राजा उस मंदिर का प्रधान रखक था। धाबू पर्यंत समीप में ही है। राजा बर्मसात का सामन्त बप्पभट्ट सत्यामय का पुत्र राज्ञित उस प्रदेश का स्वामी था। राजा बर्मसात के अधीन ऐसे कितने ही सामन्त थे। राजा बाप बंस का था।

घिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि राजा बर्मसात के समय तक प्रतिहार और 'राजस्थानीय' राज्यों का प्रयोग होने लग गया था। राजस्थान का प्राप्ति उस समय पुर्बूरभूमि के बापय्य कोने मारवाड़ (मरवाड़) से लेकर धाबू पर्यंत का था।^१ भीममाल कदाचित् इस समय बापय्य के हाथ से निकल कर प्रतिहारों के हाथ आ चुका था। इस समय बापय्य से यह बापय्य का अन्तिम राजा था जो भीममाल से अलहमपाटन की ओर गये हुए राजा के ही बंस का था। अलहमपाटन नामा ज्येष्ठ माई हो धीरे बर्मसात कमिष्ट। यह कमिष्ट अपनी छोटी सी जमीन को रखते हुए बसन्तपुर की ही प्रधान राजधानी स्थापित कर रक्षा का जब कि घरों के अधिवास या परस्पर विरोध प्रारम्भ हो गये थे। यह राजा क्षान्त प्रकृति का था घट जो कुछ इसको प्राप्ति का जहाँ में संतुष्ट रह कर अपना देव भीजन पण्डे सताहकारों के मतानुसार बिठा रहा था।

(१) श्री० गुप्ताकर डिप्टी कमीस्यर कालेज बनारस सन् १९०२ अजरपुर सिद्धांत की भूमिका में लिखते हैं—
धर्म निमजलनामा धामी पुर्बूर बैसोतर सीमि मातय (मारवाड़) बैसत बलितय
भाये धाबूपर्यंत मुलीमध्योर्मध्य तन् पर्वतान् बापुकोसे पंचयोजनान्तरे सम्प्रति
प्रतिष्ठ।

(२) भोज प्रथम्य की राक्षो

बत्सास पण्डित राक्षसिते भोजप्रथमेभ्यम् प्रथयो हृष्यते

पुनश्च बत्सासनुप प्रथयार मग दही । एव तत्रैव दित्त कामिदास । यशान्तरे
भारतमयाभोज प्रथय द्वारपाक प्राह । देव मुञ्जरेमात् माचनामा पण्डितवर आगत्य नगर
द्विहिगस्ते । तत च स्वपत्नी राजद्वारि प्रपिता । राजा सो प्रबधयस्वाह । ततो मायपत्नी प्रवे
क्षिता या राजद्वारे पत्र प्रायच्छत् । राजा तदाशय बाधयति जनमपि श्री मदन्नाज-पण्ड
त्पण्डित मुञ्जरेमात् प्रीतिमयश्चन्द्राक । उदयमहिगदमिर्मात दीतापुरस्त हत विधिपनितागा
ही विधिको विपाक ॥

इति राजा तदयत् प्रजातवर्जनमाकर्ण्य त्वा माचपत्नीमाह । मातृगिं भोजनाय
दीयते प्रातर्हं माचपण्डितभामत्य ममस्वर्य पुर्णमनोरय करिष्यामीति । तत सा तदाशय
स्वस्थानमागच्छन्ती पाचकबातास्वगतु चारवचमकिरणनीरागुणाभुत्वा तम्यो माचकेम्यो
निलिप्तमपि चारेन्द्रवत् वित्तं दत्तवती । दत्त्वा च माचपण्डित प्राह—‘माच राजा भोजेमाहं
बहुमानिता धन वातिपूरि दत्तम् । मया च मार्ग आयास्या पाचकमुळेभ्यो भोकोत्तरास्वास्ता-
स्तत्त्वं बुभुक्षाकथ्य तन्मिजिसमपि वित्तं पाचकेभ्यो दत्तम् । माच प्राह-वेदि साह कृतम् ।
परमन्त्र पाचका आयास्य तम्य कि वातभ्यम् । ततो माचपण्डितं बत्सासयेप विपित्वाकोऽन्वर्षी
प्राह —

आदकास्य पवतकुस्त तगनोष्मनप्त
मुहामन्त्रविधुराणि , च कानगानि ।
मानान्तीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोर्प्रति यज्जमन् तैव नवोभगा श्री ॥

ततो माय पत्नी प्राह—

अर्था न सन्ति न च मुर्गणि मा दुग्गाणा
त्यागाग्न सनुयति दुयतिन मनो ग ।
यांका च साधवन्त्री ग्वदये च पाप
पाग्ना स्वय द्रजत वि नु विमन्दिनेन ।
नारिष्टामसयसाग पास्त रातोपचारिगा
याचकादाविधातास्तर्दाह केनोपशाम्यत

देवि कि बहुत । किसे कष्ट किमपि नास्ति । परं तथाप्युच्यते—

“न मिता दुर्मितो पतति पुरमस्था कथमूनां
समग्रे कर्माणि द्विजपरिवृत्तान्कारयति क ।
अवस्यैव धांस ग्रहपतिरसावस्तमयते
वययाम किं कुर्यां गृहिणि । गहनो जीवमविधि

ततस्तथाविधायमवस्थां माघस्य विलोभय सर्वे यावका यथास्थानमनुः । याचरेषु
वयास्थानं मण्डलसु माघं प्राह—

‘अजत अजत प्राणा दक्षिणि व्यर्षतां गते
पश्चादपि हि गन्तव्यं स्व सार्धं पुनरीहृष ॥

ततो माघवस्त्री स्वामिनि परलोके प्राप्ते प्राह—

सेवन्वे स्म गृहं यस्य दासवत्तममुज पुरा ।
हास मार्यासहायोय मृतो वे माघपण्डित ॥”

ततो राजा माघपण्डित विपन्नं विदित्वा निबन्धनपराङ्मुखाङ्गचछतावृत्तौ मीनी पद्म्यामेव
उपायात् । ततो माघवस्त्री राजानं वीक्ष्य प्राह—“राजन्, यदि पण्डितस्तत्र वैशं प्रान्तस्तद्धि
कृमेव प्रातः । ततो वैशेन कार्येषु सम्भवसंपादनीयम् । राजा तु विपन्न माघपण्डितं मर्मदा
तीरं प्रापयामास । सा च माघवस्त्री तेन सह वङ्गिनेषु कृतवती । ततो राजा माघवस्त्रीतरङ्गिणां
पुत्र इव वन्दे । ततो दिवं गते माघे राजा शोकाकुलो विशेषतः कामिवासविरह्येन तथा सक्रम
विह्वलप्रवसनेन च दिने दिने कार्श्येन प्रतिपन्नमग्रा कृतिरामात् ।

वस्त्रासङ्गत भोजप्रवण्य ये माघ विषय लेख को पढ़ने पर हमारे सम्मुख निम्न
लिखित बातें घटी हैं—

(१) माघ पुत्रराज प्रातः क किसी देश के निवासी थे ।

(२) पुत्रराज में बुद्धिज पड़ा ।

(३) माघ अत्यन्त दानी थे अतः राज के कारण कदाचित् सब कुछ दुर्मित दीदितों
को वे दिया हो परिक्राम स्वरूप दरिद्रता से पीड़ित होकर राजा भोज के द्वार पर अपनी
पत्नी को एक वस्त्र दे कर सेवा वित्तमं ‘मुमुक्षुमवर्षमि’ नामा श्लोक था ।

(४) राजा भीज ने बर्चिता से बुझी होने वाले माघ के लिए उसी समय तीन
नास रुपया दिया यह कहते हुये कि यह तो मैं भोजन के लिए दे रहा हूँ । प्रातःकाल में
स्वयं जाऊँगा ।

(५) मार्ग में जिसक माघ के हाथ की अति प्रशंसा कर रहे थे वो माघ की पत्नी
से प्रसन्न होकर यह सब इन्ध मार्ग में ही मित्रों को दे दिया ।

(६) पत्नी को दुष्प्र हाथ लौटी देखकर माघ के कारण पूछा तो उसने स्पष्ट कह
दिया कि आपके गुणों की प्रशंसा सुन कर उन्हीं प्रशंसक मित्रों को भान सहित दिये हुए
वस्त्र को वितरण कर दारूँ । माघ धीरे धी प्रसन्न हुये किन्तु इतना ही दुःख हुआ कि दोर
पाने वाले मित्रों को क्या दिया जायगा जबकि वस्त्रमात्र व्यवहोय है ।

(७) इतना होने पर भी बापको को फिर भी कुछ बैस की इच्छा माग रखते ही है यदि किसी भीति कही से बन प्राप्त हो जाय परन्तु मानना अपने बापको मौरव से निराना है और इस दशा में यदि धारमनात किया जाय तो वह भी महान् पाप है। दरिद्रता से वे डुबी है एसा नहीं क्योंकि उनको दरिद्रता तो संतोष से बाँध हो सकती है परन्तु भिक्षुको की माहा न पूर्ण कर सकते से बनको मरीच कष्ट है।

(८) स्त्री के प्रवास में स्पष्ट है कि माग बड़े घनी थे। राजा सोन जिसके यहाँ रहा करते थे घास थे केवल स्त्री के सहारे ही रह कर स्वर्ग गये। मरते समय कोई न था।

(९) सोन बारण किये हुए वैश्व ही ली बाह्यनों को साथ लेकर माग पत्नी के निकट जब मोक्ष गया तो माग-पत्नी ने मृत-पति के लेप कार्य को स्वर्ग की ही सम्पन्न करने के लिये कहा। सब नर्मदा तीर पर से जाया गया जहाँ पर माग-पत्नी भी पिता में प्रवेश कर गई। मोक्ष ने माग की उत्तर किया पुत्र-सुख की। मोक्ष माग के सर जाने से डुबी रहा और विशेषकर कालिदास आदि विद्वानों के प्रवास कर जाने से उनके विरह से और अधिक डुबी रहा।

ये बातें मोक्ष प्रबन्ध से निकलीं। तर्क की कड़ी पर कठने से निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध हैं—

(१) राजा मोक्ष विद्वान् वा विद्वानों का सम्मान करता था अतः यदि माग से भी उसका पूर्ण परिचय हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसी परिचय की देख कर ही दरिद्रता से सदासे हुए सुशामा की भीति से कृष्ण सम मोक्ष के निकट गये। अन्तर केवल इतना सा ही था कि जहाँ पर स्वर्ग सुशामा गया था किन्तु यहाँ वे अपनी पति सहित थे। नवरी में पहुँचे पर राज-द्वार पर पत्नी ही गई।

(२) बनी व बानी होने के साथ-साथ माग स्वामिमान से मुक्त एवं नर्मदाहिम्न गये।

(३) कर्मकाण्ड का समय वह अवश्य रहा होगा। भिक्षु कुरा भी नगर में होंगे। पूर्वोक्त माग से इसी लिये सुव्यस निकालते हैं।

(४) ये गुजरात के निवासी थे। (मीनमास गुजरात की सीमा पर है) जहाँ पर कुम्भिल पड़ने पर वही के अनुष्ण कथावित् गुजरात छोड़ कर मानवे की ओर प्रस्थान कर गये।

(५) बनी इतने थे कि राजा भी जिसके यहाँ गए आवा जावा करते थे।

(६) माग के कोई पुत्र न था। उक्त समय गनी प्रथा की रीति की दत्त माग पत्नी पिता से प्रविष्ट कर गई।

(७) माग बाह्यन अवश्य थे इसी लिए माग मृत्यु समाचारी का ध्वन करत ही एक सौ बाह्यनों को साथ लेकर घटनास्थल पर पहुँच गये।

भोजप्रबन्ध का सारांश (माग को चार्ता)

माग गुजरात के निवासी थे। गुजरात में कुम्भिल पड़ जाने से इनको मानवे को ओर जाना पड़ा जहाँ पर राजा भीज राज्य कर रहा था। वह बड़े कवि थे, इसीलिये एक

स्तोक मोक्ष को लिखकर पत्नी द्वारा मन्त्रा घीर तीम लाख रुपये प्राप्त किये । पत्नी भी माच की भाँति दाभी निकली जिससे समस्त बग मार्ग में जाए हुए विष्णुकों को बाँट दिया । माच बरिजाबस्या में प्रान्त में स्वर्ग सिंघार यये घीर उसकी पत्नी भी उम्हीं के साथ चिता में बलकर मरम् हुो गई । इसके कोई पुत्र न जा । माच की पत्नी के नाक्य इस बात का स्मरण बिसाते हैं कि वे किसी समय हुने धनी थे कि राबरा तक उनके घर पर दाया करते थे । बनी हुने के साथ ही वे नाविक बाभी स्वाभिमायी एवं कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे ।

(३) प्रबन्धचिन्तामणि की साधो

यद्यपि श्रीमोक्ष श्रीमाधवपञ्चविंशतिप्रवृत्तां पुण्यवत्तां च सततमाह्वयं तद्वर्तमानेषु कृत्या रात्रिरेव सततं प्रेक्ष्यमानैः श्रीमाधवनगराद्विभक्तमये समानीयतः सन्नतमानं श्रीमन्मार्गिणि सत्कृत्य तदनु रात्रौचित्यान्विमोक्षान्बन्धन् रात्रावारात्रिकावद्युत्तरान्तरं सन्निहिते स्वसन्निभे पश्यति माधवपञ्चिंशं निधोम्य सत्ये स्वपीठरत्नामुपनीय प्रियासापांश्चिरं कुर्वाण मुक्तं मुञ्चन् वृष्याप । प्रातर्मामिस्मनूर्धनिर्धोर्ध्वनिर्धो नृप स्वस्थानगममात्रं माधवपञ्चिंशं द्यापृष्टवान् । विस्मयापन्नं हृदयेन रात्रां दिने मोक्षनाम्नाकाशविद्युत् पृष्टं स कश्चनसदस्यवाणीमिरतं धीतमारेण भ्रातृ विन्नपयन्निष्कमानेन रात्रा कथं कथयिदमुक्तात् पुरोपबन्ध माह्वयुमुक्तानुमन्यमानं माधवपञ्चिंशेन स्वायमनप्रसादेन सम्प्राप्तनीयोऽस्मिन्नि विन्नप्यो नृपानुक्तात् स्व पथं गेहे । तदनु कतिपयवर्तिनं श्रीमोक्षस्तद्विभक्तमोक्षसामर्थीविद्युत्तया श्रीमालनगरं प्रापत् । माधवपञ्चिंशेन प्रत्युद्यमानादिमोक्षित भक्त्याऽऽवृत्तं स सौम्यस्तम्भानुगायां मयी । स्वयं तु माधवपञ्चिंशस्य सौधमभ्यासं सञ्चारकं मुञ्चं काचनवद्भानवलोकेन स्नाभावानु देवतावसथोभ्या मधिमरकतकुट्टिमसौवर्तनस्तरीयुन्मल-
भ्रातृया बीटान्मरीचं संवृण्वन् सौवर्तितकेन ज्ञापितवृत्तान्तस्तदैव तद्देवताचार्गमन्तरं निवृत्ते मन्त्रावसरेऽन्धनसमयसमावर्ता रसवतीमात्वाद्यन् आकाशिकैरेवैराज्यं चरन् प्रसादिमिषिचरीय-
मानमानसं संस्कृतपत्रं खानिद्यानिनी रसवती माकण्डमुपपुन्य मोक्षनान्ते चन्द्रासामाविष्यत्वा मुतापुन्यपूर्वकाभ्य कथाप्रबन्धप्रेक्ष्यादीनि प्रेक्षमाणं विचिरसमयं प्रि सञ्चारकस्मिन्मरीच्यभ्रातृया सौवर्तितस्वचन्द्रावसनस्तावन्मुक्तं रैरनुचरैर्जीव्यमानोऽमन्त्रचन्द्रनासेपनेपय्यं सुखनिद्रया तां
अनन्तां क्षणमिवादिवाह्यं प्रत्युक्ते संकलितस्वनादिगतमिन्द्रो विमसमये श्रीमन्मन्त्रारम्भतिकरो माधव पञ्चिंशेन ज्ञापितं प्रतिष्ठमयं धर्मिस्मय कति दिनान्यवस्थाव स्वदेवचन्द्रनामापृच्छन् स्वयं
करिष्यमाणमभ्यनोक्तस्वामिप्रसाद्यप्रवृत्तपुण्यो मालवमण्डलं प्रतिप्रवृत्ते । उवा निवर्तन्महिने
चन्द्रकेन नैमित्तिकान्वातके कार्यमाने पूर्वमुक्षितोक्षितसमुद्रिभूत्वा प्राप्ते गलितविभव किञ्चि
ज्वरज्वरोरादिभूतस्यमृद्विकारं पंचत्वमाप्यति इति । मिमित्तविद्या निवर्तिता विम्वसंमोक्ष
तां ग्रहगति निराधिकीर्णना माधवपिना सौवर्तारगतप्रमाणं मनुष्यामुपि पदविन्द्यसहस्राणि
दिनानि भविष्यन्तीति विमुक्त्य नागकर्पात्पुनर्जन्तावत्सद्वयान् हारकान् कारितमम्यकोशैर्गु
निधेय तदधिको परां भूतिं गतया समप्य प्रवृत्तमाधवनाम्ने मुताम कुलोचिता सिद्धा विनीय
हृतहृदयमानिना तेन विवेहे । तदनन्तरमुत्तराद्यापतिरिष प्रज्यसाभ्राज्यो विद्वन्ब्रह्मैव्यं विद्यं
तद्विष्णुवा वच्छन्नमार्गैर्द्विचिन्तां कृतापैयंस्तौनविधिभिः स्वयमानुपायवतारमिव दर्शयन्
विचिन्तितमुपायवतारमिधानमहृकाभ्यवमत्कृतविद्वज्जनं स प्राप्ते पुण्यभयास्तौनविधितो
विपत्तिपाठे स्वविषये स्वातुमप्रभूषणुं सन्मन्त्रो मालवमण्डले यत्वा परायां कृतावात् पुस्तक
ब्रह्मकारिणपुर्वकं श्रीमोक्षारिक्पयसि ब्रह्ममानेयमिति तत्र पत्नीं प्रस्थाप्य माधवतावद्या

मायपण्डितविभरं तत्त्वो । तावत्तथावस्थां श्रीभोजस्तत्पत्नी विभोज्य सर्वभ्रमं यथाकाम्यातेन
तत्पुत्रकमुत्पन्नं काव्यमब्रवीत् ॥

कुमुदवनमपधि भीमयम्भोजयण्ड

त्यजति मुवमुसुक् प्रीतिमांश्चक्रमाक

उदयमहिमगन्धिर्याति श्रीताक्षुरस्त

हृत्विधिमसितानाही विविभोजिपाक ॥ १ ॥

अथ काव्यार्चमवयम्य का कथा ग्रन्थस्य केषुचनस्यैव काव्यस्य विस्वम्भराभूतमप्यम् ।
सप्तशोचि—तस्यानुच्छिद्यस्य 'ही' शब्दस्य पारितोषिकं विहितपितृव्यश्रम्य द्वितीयं ताम्
ससर्ज । तापि तत् संवरन्ति विहितमायपण्डितपत्नी कैविभद्राविभिर्याज्यमाना तत्पारि
तापिकं तेभ्यः समस्तमपि वितीर्य यथावस्थिताग्रहपुत्रेषुपि तद्भूतास्त विज्ञापनापूर्वं किञ्चित्क
रमस्तुरच्छोध्य पत्ने निवेदयामास । अथ त्वमेव मे छरीरिणी कीर्तिरिति वक्राधमानस्तवा
स्वहृद्भावं कर्मणि निक्षुप्तं बीज्यं भुवने तनुचितं किमपि देयमवदमन् संजातनिर्भ
इवमादीवत् ॥

अर्था न सन्ति न च मूर्धति मां कुराणा

दामादि सकुचति दुर्मसित करो मे ।

योथा च मायवकरी स्ववधे च पाप

प्राणा स्वयं व्रजत किं परिदेवितेन ॥ १ ॥

दारिद्र्यमानसताप भ्रान्तं सरोपवारिणा ।

दीनाशामगन्धमा तु केनायमुपसाम्यतु ॥ २ ॥

वज्रत व्रजत प्राणा अर्थिनि व्यर्थतो गते ।

पश्चादपि हि गन्धम्य क्व सार्धं पुनरीहता ॥ १ ॥

नमिका दुर्मिसे पतति कुरवस्था न्यमृणं

समन्ते कर्माणि सिति परिवहान्कारयति च ।

अदत्वापि शासं ग्रहपनिरसावन्तमयते

क्व माम किं कुर्मो गृहिणि गहना जीवितमिधि ॥ २ ॥

दुःखाम पवित्रोमनीयमयमं पृच्छन्कुतोऽप्यागत

तस्मिन्नेहिमि किञ्चिदस्ति यदयं मुञ्चते मुमुक्षुतुर ।

पाचास्तीरयमिधाय नास्ति च पुनः प्राक्तं विनयादरे

मूलमूलमविलासलोचनजसौर्वाण्याम्भसां जिन्दुमि ॥ ३ ॥

इति तडाक्याप्त एवं स मायपण्डित पंचत्वनवाप । प्रातस्तं वृत्तान्तमवयम्य श्रीयोजेन
भीमासेषु वक्रादिषु अनवत्पु सत्पु तस्मिन्पुष्परत्ने विनये वृथावाचिते अति मिथ्यामाम इति
वज्रात् नाम निर्धमे ॥

प्रवक्त्र विमतामधि के उपर्युक्त उद्धरण से ठी प्रतीत होता है कि राजा भीम ने माय
की विद्वता और शान्तिमिता का द्वारा भुगकर एक समय वीरकाम में उन्हे भीमाल से अपने
यहां जाने के लिए आनमित्र किया था । माय के वही पट्टवने पर राजा भीम ने उनके आन
पान और शान्तिमिता आराम का सब भाँति से उचित प्रवक्त्र करना दिया । परन्तु माय ने

दूसरे दिन सोकर उठते ही नर सीट जाने की आज्ञा मांगी । यह देख कर राजा को महान् भारभर्य हुआ और उसने माध से जाने पीने और आराम के प्रबन्ध के विषय में पूछा । इस पर माध ने कहा कि जाना तो जैसा कुछ भी बुरा नसा था ठीक था परन्तु मैं तो राजा में सीट के मारे ठिठुर गया हूँ । यह सुनकर राजा को उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी और वह उनको नगर के बाहर तक पहुँचा आया । भर लौटते हुए माध ने भी भोज से एक बार अपने यहाँ आने की प्रार्थना की । इसी के अनुसार जब राजा माध अपने इसबन सहित उनके यहाँ पहुँचा, तब उनके बीच नर और प्रबन्ध को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । वहाँ पर सर्वों ने भी उसे सीट प्रसीत न हुआ । माध ने उसका उत्कार करने में कोई बात उठा न रखी । कुछ दिन वहाँ रह कर जब भोज लौटा तब इस घटिधि उत्कार के कल में उसने अपने बने हुए 'भीमस्वामी के मन्दिर का पुण्य' माध को दिया ।

कहते हैं माध के जन्म के समय क्योटियिबो ने उनके पिता से कहा था कि यहवातक पहले तो बीजबझापी होया परन्तु अन्त में खिजी हो जायेगा और वीरों पर सुजन आकर मरीया यह सुनकर माध के पिता ने सोचा कि पुण्य की आयु १०० वर्ष की होसी है और उन १०० वर्षों में ३९ हजार दिन होते हैं । इसलिए उसन उसने ही पुण्य पुण्य मढ़े करवा कर उनसे बहुमूल्य हार आदि रख किए और वो कुछ बच रहा वह माध को दे दिया । माध भी जब और भोज से अपने जीवन को सफल बनाते हुये अन्त में आत्म की कुटिलता से खियावस्था की पहुँच गये और जब उनके लिए अपने नगर में रहना असंभव हो गया तब उनकी होकर मार की ओर से चल पड़े । वहाँ पहुँचने पर अपनी स्त्री की अन्ता बनाया हुआ भिक्षुपालक नामक नष्टकाय्य लेकर राजा भोज के नाल मेजा । भोज भी माध-पत्नी की सहज ऐसी अवस्था देखकर आश्चर्य बकित हुआ । तबन्तर जब उसने पुस्तक की जैसे ही खोलकर देखी तो प्रथम ही उसकी दृष्टि कुमारनमपधि श्रीमद्भोज जन्म वाले श्लोक पर पड़ी जो प्रजातर्जन में काव्य में व्याहर्ष स्य में आया है । राजा ने कविता के चमत्कार से और मुख्यतया चतुर्विध के ही अर्थ के परिचित्य से बसध होकर माध की स्त्री की एक साज खये दिये । परन्तु जैसे ही माध की पत्नी सीट कर पति के निकट जाने लगी वैसे ही कुछ माधको ने उसकी पहिचान लिया और उसके समीप आकर दान दीये लगे । इस पर उसने ॥ समस्त ब्रह्म उन्हें दे जाला और माध के निकट पहुँच कर सम्पूर्ण बुत्तान्त उन्हें कह सुनाया । यह सुनकर माध ने उसकी बड़ी प्रशंसा की । उस समय माध का अन्तिम समय निकट था जाने के कारण उनके वीरों पर कुछ-कुछ सुजन ही लगी थी । इतने में माध और भी एक माधक वहाँ पर आ पहुँचा परन्तु माध के पास उस समय पैर को कुछ भी न था इस लिये उन्होंने अपने प्राण लेकर ही अपनी दागधीलता का निर्वाह किया ।

जब भोज का इस बटना की सूचना प्राप्त हुई तब उसको महान् दुःख हुआ और उसने माध की जाति वालों का जो धीनाल के नाम से प्रसिद्ध है और जिन्होंने कभी होन पर भी माध जैसे विद्वान की ऐसी बसा में कुछ सहायता न की नाम परिवर्तन कर 'भिक्षपाल' कर दिया ।

नीचे अब हम प्रबन्ध चित्तमणि व भोज प्रबन्ध के लघ्यों को एकत्र करते हुए प्रबन्ध चित्तमणि व भोज प्रबन्ध में कितना साम्य है अन्त में इन दोनों के बसा सार निकला धादि वालों को लिखकर फिर चिह्निके प्रबन्ध को देंगे ।

(१) भोज प्रबन्ध महाकवि माघ को गुजरात प्राप्त थे भाषा दुधा निर्दोष कर रहे हैं और प्रबन्ध चित्तमणि स्पष्ट रूप से श्रीमाम का निवासी बतला रही है। भोज न माघ की विद्वता को सुनकर शीतकाल में उन्हें श्रीमाल में अपने यहाँ पर आने के लिये आमन्त्रित किया जा और अन्तिम समय में श्री जब भोज ने हरिद्रावस्था में भग्न क सभाय से दुखी हो कर प्राण त्यागने की माघ मागधी बात सुनी तो उन्होंने श्रीमास के स्थान पर भिन्नमान नाम रम दिया।

उपर्युक्त पंक्तिओं से स्पष्ट है कि माघ गुजरात प्राप्त में मित्रमास के थे। वे बड़े विद्वान थे। राजा भोज के यहाँ पर वे उपस्थित हुए। इस बात का कोई संकेत नहीं है कि कौन से मुख वाले थे भोज राजा का। मासका प्राप्त की बात दोनों प्रबन्धों में बतला कर बाप नयरी क राजा भोज की और प्रबन्ध संकेत किया है किन्तु प्रसिद्ध भाराभीष्ट का राज्यकाल राष्ट्रीय ११ वीं शताब्दी का अन्त है। (१०६२ ई. पू. देखिए सबसमिध बंमला मिषान) धनी भी के तो अन्तिम समय हरिद्रावस्था कष्ट पूर्वक बीती क्योंकि इन्होंने वानी प्रकृति होने के कारण सब कुछ बान कर दिया था। वे बाँटें वानों प्रबन्धों में समान हैं।

ये माघ कवि जिस जाति के थे इस पर भी पूर्ण संदेह है। भोजप्रबन्ध तो स्पष्ट रूप से ब्राह्मण होने का संकेत कर रहा है धर्मका राजा भोज की मृत्यु समाचार सुनते ही एन सी ब्राह्मणों को उस बटनास्थल पर ले जाने की आवश्यकता ही क्या थी? जातिवादी क यहाँ जातिवादा ही जब बाह्य संस्कार में सम्मिश्रित हो सब अष्ट समझ जाता है। माघ ब्राह्मण थे इन्हीं लिए जातिवादा ही संस्कार के लिए ले जाये गये। प्रबन्ध चित्तमणि तो कुल रूप में माघ को भी मासी ब्राह्मण उद्धोषित ही कर रही हैं। कुछ भी हो वे ब्राह्मण अवश्य थे अन्यथा हम ब्राह्मणों से कर्मकाण्ड इस युष्काल में कौन करायेंगे ऐसी बात स्मोक में माघ के द्वारा नहीं कहलाई गई होती। इस पर भी सूर्य के लिए भोजन-समय प्राप्त रखना भी ब्राह्मणत्व का पोंड़ा बहुत छोटक अवश्य है यद्यपि ऐसा तो अन्य जातिवासे भी करते हुए देखे गये हैं। मय ब्राह्मण सुमोपासक होते हैं जो भीममाम में है कदाचित् माघ भी मय दिखें।

(२) दोनों प्रबन्धों से यह भी बात होता है कि वे बड़े धनी थे वैभवशाली थे। प्रबन्ध चित्तमणि में तो, इनका कहा है कि इनके पिता भी धनी थे अन्यथा ज्योतिषियों से अतिमावस्था हरिद्रता में निकलेगी ऐसा सुनकर १०० वर्ष की आयु में १६ हजार दिवस होत है इसलिए जतने ही मन्त्रे पुष्क पुष्क भुजवा कर उनमें बहुमुख्य द्वार रखवा दिये कैसे जाते? इससे तो यह भी प्रमाणित होता है कि माघ के पिता भी धनी थे अन्यथा इतना धन माघ के पिता के पास भी कैसे था खरता था। मुद्रावस्था में ही प्रायः गए होने इसका प्रमाण इससे भी प्राप्त किया जा सकता है कि पिताजी ने ज्योतिषियों से ऐसी बात सुनी और कुसोपित जिज्ञा प्राप्त करना भी तो साधारण बात नहीं है। कम से कम २३ वर्ष तक विद्याध्ययन किया ही होगा फिर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर माना प्रकार के वैभवशाली जिनको इन्होंने प्रबन्ध देखे धर्मका राजा भोज धारणवैवाहित करीकर हो जाता। यहाँ पर भिन्न प्रकार के घटुष्ट पूर्व काल कदा प्रबन्ध एक और वे ता ज्युष्टों के अनुसार यहाँ पर वे सब बातें थीं। ये सब बातें बड़े धनुज के पश्चात् ही आया करती हैं। भोज ने जब अष्टसाता पर आठेहम करन काव्यों कवायों, इतिहासों और भाटकों को देखा उस समय तक ता 'चिमुपानवय महा-

काव्य' का कोई अस्तित्व ही न था अथवा माघ अथवा भोज इन दोनों में से किसी एक के द्वारा इस विषय की खोज अवश्य सिद्धी होती भवत' सिद्धपालवचन महाकाव्य उस समय तक तो कम्प्रेसा में ही नहीं आया था। कदाचित् सिद्धपालवचन महाकाव्य राजा भोज के समीप प्राप्ति के अन्तिम समय में जाने तक प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया हो। प्रबन्ध चिन्तामणि इस बात को स्पष्ट रूप से रख रही है कि माघ कुबेर की मूर्ति विनाश समृद्धि पाकर, विद्वज्जनों को उसकी इच्छानुसार धन देने लगे। अपरिमित धन से धर्मिकता को हठार्थ करते हुए भौर भोग विनाश में तल्लीन रहते हुए, उन्होंने सिद्धपाल वच नामक महाकाव्य बनाया। इस काव्य को लेकर विद्वानों का मन अमरकृत हो गया। अन्त में पुष्प शत्रु हो जाने पर वह उनका धन लीन हो गया और विपत्ति का समय आ गया तो उन्होंने अपने देश में रहना अनुक्त समझ कर अपनी स्त्री के साथ मालवर्मजल में जाकर वाराणसी में बास किया। यह सिद्धपालवच महाकाव्य कैसा है इस पर भी भोज की सम्मति द्वारा पूर्ण संकेत मिल रहा है कि सारे धर्म की तो बात ही क्या है इस एक काव्य के भूख के लिए पुष्पी भी वे ही बाय तो वह कम है। समवोचित और अनुच्छिष्ट इस 'ही शब्द के पारि टोपक में ही एक साक्ष अपने देकर राजा ने उनकी पत्नी को बिना दिया। इससे सिद्ध होता है कि सिद्धपालवच महाकाव्य में जो कुछ लिखा गया है समवोचित तो है ही किन्तु कवि ने जैसे 'ही शब्द के प्रीतिम्य पर ध्यान दिया है इस मूर्ति स्नान स्नान पर शब्द और शर्म के प्रीतिम्य पर भी ध्यान दिया गया है और इसी एक प्रीतिम्य गुण के कारण ही यह कवि अन्य कवियों की अपेक्षा ऊपर उठ जाता है।

(४) यह बानी से और यह गुण कदाचित् पिता और पितामह से प्राप्त होता है। वर्षाती गुण छूट नहीं जाता। यही ह्रास इनका था।

(५) कदाचित् यह पिता के इकलौते पुत्र के अथ नाथ प्यार से पाले गये।

(६) इनके कोई पुत्र न था यदि होता तो वह भी प्राप्ति में आन होता।

(७) प्रबन्ध चिन्तामणि का लिखना है कि कुछ दिन वहाँ पर रत्न कर जब भोज भौटा तब इस प्रतिधि-सत्कार के कल में उसने अपने बगते हुए भोजस्थानी के मन्दिर का पुष्प माध को दिया।

'राजा भोज' लेखक 'विश्वेश्वरनाथ देव' अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि भोज बड़े धार्मिक थे अतः उसके बगवे हुए स्थानों में बिछीड़ के किसी पर सिद्ध का मन्दिर है। उसमें प्रतिष्ठित की गई सिद्ध की मूर्ति का नाम अपने नाम पर भोजस्थानि-देव रक्खा। यह बात बिछीड़ से प्राप्त हुए वि सं १९२५ के लेख में लिखे 'श्री भोजस्थानी देव वसति' इस काव्य से सिद्ध होती है। राजा भोज का उपनाम (उपाधि) त्रिभुज नारायण था इसलिए इस सिद्धमूर्ति को 'त्रिभुज नारायण देव' भी कहते हैं। बीरवासे में लिखे वि सं १९१० के लेख में लिखा है —

श्री त्रिभुज नारायण देव पितृकामायता।

श्री भोजराज रचित त्रिभुवननारायणस्य देव गृहे।

यो विरचयतिस्म सदाशिव परिचर्या स्वशिव लिप्सुः॥

(विप्लवा घोरेन्द्रक जर्नल भा २६, पृ १४१)

प्रायःकम मंदिर प्रयत्नशील (प्रयत्नशील) का मन्दिर महाराष्ट्र मोकमजी ने बीर्गोडार ई० सं० १४२८ में कराया था अथ मोकमजी का मन्दिर कहलाता है ।

उपर्युक्त से हमारी यह धारणा बनती है कि बिर्गोडार पूर्ण प्रति प्राचीन है । मीर्गो ने भी यहाँ पर राज्य किया था फिर बप्पा रावल के संघर्ष मेवाड़ बालों का राज्य रहा । मेवाड़ वाले अपने को एकसिद्ध का दीवान मानते हुए प्रायः तक भी था रहे हैं । उनका इष्ट दिग्गज है अथ बिर्गोडार में यह दिग्गज की मूर्ति प्रति प्राचीन है इसका बीर्गोडार एक ने नहीं कितनों ही ने कराया है । जिस जिस राजा ने बीर्गोडार कराया उसी ने अपने नाम को मंदिर के नाम के साथ जोड़ दिया । बिर्गोडार पर भी भोज ने शासन किया जो गुहमोद बखीय बाप्पा की सत्ता में से था । चारवाले भोज व मिहिर भोज का भी यहाँ तक प्राप्ति पाया था । पाठकों को निर्णय करना है कि प्रायः के साथ किस भोज का सम्पर्क है । बिर्गोडार से भीममास समीप ही है । बार बिर्गोडार दूरी पर नहीं ।

“माजस्वामी क मंदिर का पुष्प प्रायः को दिया” इससे दूसरी धारणा यह बनती है— राजा भोज स्वयं बिष्णु का सूर्य का उपासक था जो प्रतिहार भोज क नाम से प्रख्यात है जिसकी मिहिर भोज भी कहते हैं । मिहिर का अर्थ ही सूर्य है । इसका अर्थ तो यह हुआ कि उसने सूर्य मन्दिर की स्थापना की जो जगत् स्वामी का मन्दिर भी कहलाता है इससे ही विजयन (बबत्) नाथसम भी कह दिया जाय तो कोई बर्गीकरण न होगा ।

“The Glory That Gujardesh Has—Part—III” में लेखक श्री कन्हैयालाल नाथिक नाथ मुन्शी ने लिखा है कि भीममास में मय ब्राह्मण रहते हैं जो सूर्योपासक हैं वह मय सम्ब फरसी मयी का रूप है । ये ब्राह्मण ईसा की छठी सताब्दी तक तो भीममास में ही वे उत्तरप्रायः यहाँ पर नहीं बन सक । यज्ञधर जगत्स्वामी का मन्दिर (सूर्यमन्दिर) यहाँ पर है ।

हमने यह भी देखा कि ‘न निष्ठा-नुमिक्त नाम वनोक्त में ‘अवर्त्तव्य ज्ञातं ग्रहपति (सूर्य) रक्षावस्तमपत्तं, प्रायः स्वयं कह कर पराजित कर रहे हैं । भोजन करने के पूर्व सूर्य के लिए प्रायः निष्ठा-नुमिक्त इस बात का क्या बोधक नहीं है कि प्रायः सूर्योपासक व । ऐसा होने क बाते क्या हम प्रायः को मय ब्राह्मण विचार कर दें ? भीममास तो भीममास के रहने से ही ही मय वैसे बाह्यमय क्षेत्र के निवासी या यहाँ से निकले हुए ब्राह्मण बाहिमा है ही (बाहिमय बाहिमय, बाहिमा, बाहिमा) । भीममास से भीममास वैसे बाहिमय से बाहिमय । प्रायः सूर्योपासक से मिहिर भोज भी सूर्योपासक फिर सूर्य मन्दिर का पुष्प प्रायः को ही देना था ।

भी मुन्शी उसी पुस्तक में बप्पा या काल भोज का समय (७३६-७३९) का बता रहे हैं जब उन्होंने बिर्गोडार को मीर्गो से छीन लिया । इतिहासकेषा बताते हैं कि बापा रावल का शासन ७६३ ई० में समाप्त हो चुका था । उसके बरबाद गुहमोद गरी पर बैठे उत्तरप्रायः भोज नाम वाले शासक फिर महेन्द्र नाथ दीक्षित भयंकर द्वितीय फिर कामजी (८३९ ई०) । हम इस पर भोज के विषय में निम्नलिखित विचार करने कि

काव्य' का कोई अस्तित्व ही न था अथवा मात्र प्रबन्ध भोज इन दोनों में से किसी एक के द्वारा इस विषय की चर्चा प्रबन्ध लिखी होती अथ सिधुपालबन्ध महाकाव्य उस समय तक तो रूपरेखा में ही नहीं आया था। कदाचित् सिधुपालबन्ध महाकाव्य राजा भोज के समीप प्रापति के अन्तिम समय में आने तक प्रसिद्धि को प्राप्त हो नया हो। प्रबन्ध विस्तारम्बि इस बात की स्पष्ट रूप में रख रखी है कि माव कुबेर की मति विद्याल समृद्धि पाकर, विद्वज्जनों की उसकी इच्छासुसार बन देने लगे। अपरिमित दान से अविद्यमानों को कृतार्थ करते हुए और भोज विनाश में लसीन रहते हुए, उन्होंने सिधुपाल बन्ध नामक महाकाव्य बनाया। इस काव्य को लेकर विद्वानों का मन अमस्कृत हो गया। अन्त में पुष्प बन्ध हो जाने पर जब उनका मन क्षीय हो गया और विपत्ति का समय आ गया तो उन्होंने अपने देश में रहता प्रयुक्त समय कर अपनी स्त्री व साध मातृवर्मलन से आकर वारामणरी में आस किया। यह सिधुपालबन्ध महाकाव्य कैसा है इस पर भी भोज की सम्मति द्वारा पूर्ण संकेत मिल रहा है कि घारे पंथ की तो बात ही क्या है। इस एक काव्य के मुख्य के लिए पुष्पी भी वे ही काय तो बहु कम है। समर्पणित और अनुच्छिष्ट इस 'ही राज्य व पारि दीपक में ही एक साक्ष उपये देकर राजा ने उनकी पत्नी को विवा किया। इससे सिद्ध होता है कि सिधुपालबन्ध महाकाव्य में जो कुछ लिखा गया है समर्पणित तो है ही किन्तु कवि ने जैसे 'ही राज्य के श्रीचिरय वर ध्यान दिया है इस माति स्थान स्थान पर अम्ब और अम्ब के श्रीचिरय पर भी ध्यान दिया गया है और इसी एक श्रीचिरय पुत्र के कारण हो यह कवि राज्य कवियों की अपेक्षा ऊपर उठ जाता है।

(४) यह शानी वे और यह नुन कदाचित् पिता और पितामह से प्राप्त होता है। वर्षादी गुण हट नहीं जाता। यही हम इनका था।

(५) कदाचित् यह पिता के इकमति पुत्र के अथ भाइ प्यार से पाले गये।

(६) इनके कोई पुत्र न था यदि होता तो वह भी प्रापति में साध होता।

(७) प्रबन्ध-विस्तारम्बि का सिद्धना है कि कुछ दिन बहा पर रत्न कर जब भोज सीटा सब इस प्रतिधि-अरकार के फल में उसने अपने बनते हुए भोजस्वामी के मन्दिर का पुष्प माव को दिया।

'राजा भोज' के एक 'विद्वज्ज्वरमाध देव' अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि भोज बड़े शक्ति के अथ उच्च बनते हुए स्थानों में बितीड़ के किरी पर धिब का मन्दिर है। उन्ने प्रतिष्ठ की कई धिब की मूर्ति का नाम अपने नाम पर श्रीवस्थाधि-देव रखा। यह बात बितीड़ से प्राप्त हुए कि स १५२५ के लेख में लिखे 'श्री श्रीवस्थाधी देव अर्पति इस वाक्य से सिद्ध होती है। राजा भोज का उपनाम (उपाधि) त्रिभुज नारायण था इसलिए इस धिबमूर्ति को 'त्रिभुज नारायण देव भी कहते हैं। श्रीवस्था में लिखे कि स १५१० के लेख में लिखा है —

श्री विजकूट दुर्गे लसाराता य पितृकामयता।

श्री श्रीवस्था रचित त्रिभुजनारायणकाव्य देव गृहे।

यो विरचयतिस्म सदातिव परिचर्या स्वधिव सिन्धु ॥

(विष्णु धोरिण्टन जर्नल भा २१, पृ १५१)

भावकस मन्दिर परबबबको (भद्रपुत्रजी) का अथवा महाराजा मोकलजी ने बीमोंद्वार ई० ७५२३ में कराया या अथवा मोकलजी का मन्दिर कहलाता है ।

उपर्युक्त से हमारी यह धारणा बनती है कि चित्तौड़ दुर्ग अति प्राचीन है । मीरों ने भी यहाँ पर राज्य किया था फिर बप्पा राजन के बख्त मेवाड़ वालों का राज्य रहा । मेवाड़ वाले अपने को एकसिमा का दीवान मानते हुए आज तक भी आ रहे हैं । उनका इष्ट सिव है अथवा चित्तौड़ में यह सिव की मूर्ति अति प्राचीन है इसका बीमोंद्वार एक ने नहीं कितनों ही ने कराया है । जिस जिस राजा ने बीमोंद्वार कराया उसी ने अपने नाम को मन्दिर के नाम व साथ जोड़ दिया । चित्तौड़ पर भी भोज ने शासन किया वो मुहम्मद बंदोस बप्पा की सत्ता में थे था । बारबासे भोज व मिहिर भोज का भी यहाँ एक धाबि पत्त रहा था । पाठकों को निर्णय करना है कि माघ के साथ किस भोज का सम्पर्क है । चित्तौड़ से भीमसास समीप ही है । बार बिजयी दूरी पर नहीं ।

‘भोजस्वामी के मन्दिर का मुख्य माघ को दिया’ इससे दूसरी धारणा यह बनती है— राजा भोज स्वयं विष्णु का सूर्य का उपासक था वो प्रतिहार भोज के नाम से प्रख्यात है जिसको मिहिर भोज भी कहते हैं । मिहिर का अर्थ ही सूर्य है । इसका अर्थ तो यह हुआ कि उसने सूर्य मन्दिर की स्थापना की जो अब स्वामी का मन्दिर भी कहलाता है इससे ही विष्णुन (बपत्) नाचयण भी कह दिया जाय तो कोई धर्मीयत्त्व न होगा ।

‘The Glory That Guzzardeth Has—Part—III’ में लेखक श्री कन्हैयालाल पाणिपत नाम मुन्शी ने लिखा है कि भीमसास में अब ब्राह्मण रहते हैं जो सूर्योपासक हैं वह सय सय फरसी मसी का रूप है । वे ब्राह्मण ईसा की छठी सताब्दी तक तो भीमसास में ही व ठहरावा नहीं पर नहीं बन सक । बसकू शीर बपत्स्वामी का मन्दिर (सूर्यमन्दिर) यहाँ पर है ।

इसने यह भी देखा कि न भिक्षा-पुत्रिष्ठ वाले ब्लोक में ‘अबलैव घासं ग्रहपति (सूर्य) रसावस्तमयते’ माघ स्वयं कह कर पश्चात्ताप कर रहे हैं । भोजन करने के पूर्व सूर्य के लिए घास निकालना इस बात का क्या खोतरक नहीं है कि माघ सूर्योपासक थे । ऐसा होने के नाते क्या हम माघ को अब ब्राह्मण विचार कर दें ? धीमासी तो भीमसास के रहने से ही हो गये जैसे वाचिमय क्षेत्र के निवासी या बहों से निकले हुए ब्राह्मण दाहिमा हैं ही (वाचिमय वाचिमय, दाहिमा, दाहिमा) । भीमसास से भी मासी जैसे वाचिमय से वाचिमय । माघ सूर्योपासक थे मिहिर भोज भी सूर्योपासक फिर सूर्य मन्दिर का मुख्य माघ को ही देना था ।

भी मुन्शी उसी पुस्तक में बप्पा या काल भोज का समय (७५२।७५३) का बता रहे हैं जब उन्होंने चित्तौड़ को मीरों से छीन लिया । इतिहासवेत्ता बताते हैं कि बापा राजन का शासन ७५३ ई० में समाप्त हो चुका था । उसके पदस्था मुहम्मद गरी पर बैठे उत्तराध्या भोज नाम वाले शासक फिर महेन्द्र नाम धीम बपत्विष्ठ, महेन्द्र द्वितीय फिर कालभीम (८२९ ई०) । हम हम पर भोज के विषय में जिससे समझ विचार करेंगे कि

माप के समय में बिसौड़ की गद्दी पर बीन से शासक थे । क्या वहाँ पर छील के परमात्माने मोख अपना नाम मोख ? मारा-नगरी के प्रसिद्ध मोख तो हो ही नहीं सकते ।

(८) बुजरात में बुधिस पड़ा इसलिए माप को भीर के समीप अपनी रानी को रानीर या सिधुपालक के रूप में उपस्थित कराया । यहाँ यह प्रश्न उठता है—भीममाल ने कब बुधिस पड़ा ? बुधिस पड़ने के समय का देखने के पूर्व हम कब कब यह पता पता पया हम पर निर्भर है ।

काव्यमीमांसा भाग द्वितीय के लेखक आचार्य हेमचन्द्र की भी महावीर जैन विद्यालय इन्वर्सिटी पुस्तक में रचित नाम पारिक की बुधिस का निम्न लेख की इस विषय में कुछ प्रकाश डालता है —

According to the dates preserved by the local tradition, the first temple of Jagat Swami or the Sun was built in 223 B V (166 A.D.) The city was destroyed in B V (209 A.D.) In B V 404 (438 A.D.) the city was sacked second time by a Rakshasa. In B V 700 (643 A.D.) the city was rebuilt. In B V 900 (844 A.D.) it was destroyed for the third time. In B V 955 (896 A.D.) the city was again restored and it was followed by a period of prosperity till the beginning of the 14th century (B.G.P. 143)

"Albureni Days (A.D. 1020) that the ब्रह्मकुटुम्बविद्यालय was composed by ब्रह्मकुटुम्ब the Son of विष्णु from the town of मिममाल between मुलतान and मल्लिकार्जुन

इस उद्धरण से भी स्पष्ट है कि भीममाल जो बुजरात की सीमा पर है अबका बुजरात में है किन्तु भीर बार उलझा और बनाया गया । सन् ८४४ में यह नगर तीसरी बार उलझा अबस्था में रहा । फिर तो सन् ८८९ में यह अपनी अपनी अबस्था पर पहुँचा । सन् ८८४ में प्रसिद्ध भिखार मोख का राज्य था । घरों के आक्रमणों की दो समाप्ति हो चुकी थी प्रथम बाहरी आक्रमण में यह नगर नष्टभ्रष्ट कर दिया गया हो ऐसी तो कोई बात बिलम्बाई नहीं पड़ती और पारस्परिक राज्यों के भी कलह अब बीस न के बितते भीममाल नगर नष्टभ्रष्ट कर दिया गया हो । हो सकता है कि भीममाल में उस समय महाभारत बुधिस अपना कोई ऐसा बीबीप्रकोप आया हो जिससे भीम मार्गवाड़ की सीमा को छोड़ कर मालव भूमि की ओर उबर भरन के निमित्त जाने लगे गये हों जैसे घाब भी मारवाड़ी पशु-पालक लोग अपनी बाँधों से तो पशुओं आदि को लेकर यरसी की जात में उस बरतन्य भूमि में जाने जाते हैं । भूमि उलझ ही जाती है । यदि वही अबस्था सन् ८४४ के भीममाल की हो और माप भीममाल को छोड़ कर किसी के आश्रय की खोज में गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं है । वह स्थान बार ही हो अपना बिसौड़ या कपिल किन्तु तब से अबस्थ होंगे और इस समय तक के बृहद्बला में कट्युर्ध्व बरिष्ठा के दिनों की बिना रहे होंगे । भीममाल सेक को धार दिया गया है इसमें स्पष्ट है कि ८३४ ई० से भीममाल गुजरात की राजधानी न

रहा^१ कभीन राजधानी हो गया अतः वह शही शही बीमहीन तो हो ही गया था फिर ८४४ की इस घटना ने उसे और भी नष्ट कर दिया होगा। इसके परिणित शही घाटी से गुजरात की राजधानी पाम्पु हो गति में व वहाँ की श्रीबुद्धि होने से हजारों कुटुम्बों ने यहाँ से उबर जाना प्रारम्भ किया होगा। गभी ने गुजरात के इतिहास में श्रीमान व पोराबई शही का प्रभाव बढ़ने लगा होगा इस भाति उबर इस नगर व श्रीहीन होने व यहाँ के लोगों के गुजरात की ओर जाने के निर्देश से इस बात की तो पुष्टि हो जाती है कि श्रीमान के स्थान पर अब वह निम्नमान हो गया शही भोज ने मात्र वशि की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कहा था।

इस बातों को देखते हुए महाकवि भाव नवम सदी के पूर्वार्द्ध तक प्रवरय जीवित होने चाहिये। धाने किन्हे नये प्राचार्यों के जीवन से भी इस बात की पुष्टि में सहायता मिलेगी।

१ See *Harvamsasana* by Acharya Hemchandra Vol II Part I Introduction by B C Parikh Page XCIX—In the Copperplate grant of the Chalukya Samanta Pulakesin of the Kalachuri Samvat 490 (740 A.D.) there is a reference to Chautakas being attacked by the Mussalmans. If they were the Chapas of Bhinnamala, we can say that Bhinnamala must have been attacked between the year 732 & 740 A.D. After the Chautakas we find Pratiharas reigning in Bhinnamala. It is not known when the Chapas were displaced by the Pratiharas. Pandit Gauri Shankar Oza puts this event between 740 & 809 A.D. Page C—Vatsa Raja conquered the Gauda Kings of Bengal. Vatsa Raja succeeded by his son Nagabhatta II. He was also called Nagavaloka. He defeated Chakra Pala the King of Kanauj & thus became the lord of an empire. We know from the Gwalior inscription that he conquered the kings of Andhra, Saindhava, Vidarbha, Kalinga and Vanga and took the mountain-Castles of Anarta, Maenya, Kirgta, Turushka, Vatan and Matsya. We have an inscription of him V S 772 (=716 A.D.) found from Buchakala a village in the Jhoddpur State. He was a great devotee of Bhagavati. This Nagabhatta is also called Ama by the Jaina writers. According to Prabhavakacharita he died in V S 800 (=834 A.D.) Probably it was in his time that Bhinnamala ceased to be the capital of Gurjara empire and only remained a provincial capital. The seat of Gurjara empire then became Kanvakhya.

माघ के समय में बिसौड़ की यही पर कीम स शासक ने । क्या वही पर कीम के परचाप
वाले भोज भयवा काल भोज ? भार-नगरी के प्रसिद्ध भोज तो हा ही नहीं सकते ।

(८) मुबरात में बुजिस्त पड़ा इसलिए माघ को भोज के समीप अपनी स्त्री को
स्त्रीक या विद्युत्पातक कर उपासक कराया । यही यह प्रदत्त उद्धृत है—भीनमाल में
कब बुजिस्त पड़ा ? बुजिस्त पड़ने के समय की देखने के पूर्व हम कम कम यह उद्धृत न
बनाया गया हम पर लिखेंगे ।

काव्यमीमांसा नाम द्वितीय के लेखक प्राचार्य हेमचन्द्र की की महावीर जैन विद्यालय
बम्बई वाली पुस्तक में रसिकमाल पारिष की भूमिका का निम्न लेख भी इस विषय में कुछ
प्रकाश डालता है —

According to the dates preserved by the local tradition, the first
temple of Jagat Swami or the Sun was built in 222 B V (166 A.D.) The
city was destroyed in 6 V (200 A.D.) In B V 494 (438 A.D.) the city
was sacked second time by a Rakshasa. In B V 700 (643 A.D.) the city
was rebuilt. In B V 900 (844 A.D.) it was destroyed for the third time.
In B V 985 (896 A.D.) the city was again restored and it was followed
by a period of prosperity till the beginning of the 14th century
(B.G.P. 143)

"Albureni Days (A.D. 1020) that the ब्रह्मकुटुम्बिदास was composed
by ब्रह्मकुटुम्ब the Son of बिष्णु from the town of भिन्नमाल between मुसतान
and पल्लिकबाद

इस उद्धरण से भी स्पष्ट है कि भीनमाल जो मुबरात की सीमा पर है प्रचया
मुबरात में है किछी ही बार उद्धृत कीर बनाया गया । सन् ८४८ में यह नगर तीसरी
बार उद्धृत भयस्वा ने रहा । फिर तो सन् ८२९ में यह अपनी प्रचयी भयस्वा पर पहुँचा ।
सन् ८८४ में प्रसिद्धार मिहिर भोज का राज्य था । प्रचयी के प्रचयको की तो समाप्ति हो
चुकी थी प्रत बाहरी प्रचयन न यह नगर नष्टभष्ट कर दिया गया हो ऐसी तो कोई बात
विनमई नहीं कहती और पारस्परिक राज्यो के भी उद्धृत था जैसे न के जिनमे भीनमाल
नगर नष्टभष्ट कर दिया गया हो । ॥ लफ्ता है कि भीनमाल में उस समय महामारी
बुजिस्त प्रचया कोई ऐसा ईश्वरकोप प्राया हो जिसने भोज मारबाड़ की सीमा की छोड़-२
कर मासव भूमि की और उद्धृत नरन के भिमिल जाने लय गये हों जैसे प्राय भी मारबाड़ी
पशु-पातक भोज अपनी बाघों जहाँ पशुधर्म प्राय को लेकर परमी की श्रुति में उस सरतम्भ
भूमि में जाने पाते हैं । भूमि उद्धृत सी जाती है । बचि बड़ी भयस्वा सन् ८४८ के भीनमाल
की हो और माघ भीनमाल को छोड़ कर किसी के राज्य की भोज में गये हों तो कोई
प्राचय नहीं है । यह स्थान बार ही हो प्रचया बिसौड़ या कभीन किन्तु गये ने प्रचय हैं
और हम समय तक के बुद्धावस्था में कष्टपूर्ण बरिद्धता के दिनों की भिन्न रहे होंगे । 'भीनमाल
लेख को जाने दिया गया है उद्धृत स्पष्ट है कि ८४८ ई० से भीनमाल मुबरात की राजधानी न

रहा' कभीन राजधानी हो गया था वह खर्च धनी बँसबहीन तो हो ही गया था फिर ८८४ की इस बटना ने उसे भीर भी मर्त कर दिया होगा । इसके प्रतिरिक्त २१वीं शती से गुजरात की राजधानी पाय्पु हो जानि में व वहाँ की भीबूदि होने से हजारों कुटुम्बों ने यहाँ से उबर जाना प्रारम्भ किया होगा । तभी में गुजरात के इतिहास में भीमान व पोरनाइ जैनों का प्रभाव बढ़ने लगा होगा इस भाँति उषर इस नगर के भीहीन होने व यहाँ के लोगों के गुजरात की ओर जाने के निर्वेद से इस बात की तो पुष्टि हो जाती है कि भीमान के स्वाम पर एक बहु मिलभास हो गया जैसा मोन ने भाष कथि की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कहा था ।

इन बातों को देखत हुए महाकवि भाष नवम शती के पूर्वादि तक पदपद जोरित होने चाहिये । आगे लिखे गये आचार्यों के आचन से की इस बात की पुष्टि में सहायता मिलेगी ।

1 See *Jayamansana* by Acharya Hemchandra Vol II Part I Introduction by B. C. Parikh Page XCIX.—In the Copperplate grant of the Chalukya Samanta Pulakesin of the Kalachuri Samvat 490 (740 A.D.) there is a reference to Chastakas being attacked by the Mussalmans. If they were the Chapas of Bhinnamala we can say that Bhinnamala must have been attacked between the year 732 & 740 A.D. After the Chastakas we find Pratiharas reigning in Bhinnamala. It is not known when the Chapas were displaced by the Pratiharas. Pandit Gauri Shankar Oza puts this event between 740 & 800 A.D. Page C—Vatsa Raja conquered the Gauda Kings of Bengal. Vatsa Raja succeeded by his son Nagabhatta II. He was also called Nagavaloka. He defeated Chakrj yajha the King of Kanauj & thus became the lord of an empire. We know from the Gwalier inscription that he conquered the kings of Andhra, Saindhava, Vidarbha, Kalinga and Vanga and took the mountain-Castles of Anarta, Macava, Kirata, Turushka, Vatan and Matsya. We have an inscription of him V S 772 (=716 A.D.) found from Buchakala a village in the Jhodbpur State. He was a great devotee of Bhagavati. This Nagabhatta is also called Ama by the Jaina writers. According to Prabhavakacharita he died in V S 890 (=834 A.D.) Probably it was in his time that Bhinnamala ceased to be the capital of Gurjara empire and only remained a provincial capital. The seat of Gurjara empire then became Kanyakubja.

(४) पुरातन प्रबंध-संग्रह की साक्षी

पुरातन-प्रबंध-संग्रह में माध पंडित प्रबंध —

नोट—प्रबंध चिंतामणी प्रबंधों के साथ सम्बन्ध धीरे समानता रखने वाले प्रत्येक नेक पुरातन प्रबंधों का संग्रह ।

अथ दत्तमनोर्मास्योच्यते । माधस्य जन्मनि । नावातकं कारितम् । प्रायुर्बर्षाणां यत्पु रसीति । परं प्राप्ते चरणसोफेन मुस्यु । पिता ऋद्धिप्राप्तमारुमिरेव बोद्धवर्षां पूर्णं दिनरित सम्बन्धी लङ्घितो हारको ब्रम्हाणां भुक्त । प्रतिव्ययवागपीयता मुक्तं निर्बहिष्यते । स प्रीतिः सन् पठितु प्रवृत्तः । कवित्वं कृत्वा पितुर्बर्षयति । ईदृशानि कवित्वानि कुर्वते पूर्वं कवित्वानां यतोऽन्याप न प्रमत्तः । पुत्रश्च सिद्धपालवको नामकाध्यं कृत्वा वृत्तकोपरिष्कलनं वृत्तम् । एकदापितुं पुस्तकं श्रीर्षप्रायं भूमेन कृत्वा रक्षितम् । पिता बाधन् शिरोऽवभूतम् ग्राह-वत् । ईदृशानि कवित्वानि ज्ञिन्तः । ऐनोक्तम् तात । मय्यानि ? किमुच्यते । तद्धि मया कृतानि । वनकनोक्तम् मया कृतं कृतोऽस्तं इमता कवित्व-सीमा जाता । यत परतव कवित्वं न । स प्रवीतव पितुर्मुपयते विज्ञमित प्रवृत्तः जन्मपत्तिकां वृद्ध्या सविधं हारकं व्ययीकृते ।

तत्त्व भोजपत्तिना मामवाधीयेन मीमी जाता । एकदा श्रीभोजेन मिमितुमाकारितो मावस्तव मत् । नृपेय सवीर्यं वचनपुष्टे स्वापित । स्नान कुर्वता पंडितेन मुक्तं कृतितम् । नृपेय भोजमुपविष्टस्व विम्वरसवतीसमागा रसवती परिवेषिता । स मुक्तमेव कृतयति । नृपेय चिन्तितम्—स्वपुष्टे किम धी मुनक्ति । जलितः । पुष्टो नृपेय—रसवती की कृषी ? देव । कवचनेनोवरंपूर्तम् । मय्यसीतरता पार्ष्णे हसतिका च राज्ञी पुष्ट । पंडितो नृपस्व मातिद्वारे । राज्ञी पंडितं सम्मामा पुनः पुनः पार्ष्णेजात करोति । नृपेय—किमसी धुनक्ति कवं केतेऽस्य कृष्टे ? अवलोकनीयं मत्वा एतत् । प्रातर्बलिते नृपेय पुष्टम्—पुष्टेन निद्रा समामाता ? देव । रासमवद्वारितानां निद्राभुतः । दिनवतुष्वं स्विता पंडितेन नृपो मुक्तमाचितः । राज्ञा श्रीमाने भोजत्वाभिज्ञतायाः कारितः । तत्त्व पुष्टं पंडितस्य प्रभाव पंडितः सम्प्रेषितः । पंडितेनोक्तम्—देव । कदाचिन्मोपरि प्रसाधं विद्यायास्मत्पुरे पावमवचारवीमम् । एवमित्व निवाच सम्प्रेष्य नृपः प्रत्याभुतः । स्वहृहमावात । इतो द्वितीयं श्रीतती नृपः प्रीति कटकैत श्रीमानं प्रापः । मायैव सम्पुष्टं नत्वा नृपः स्वपुष्टे एव सकम्प्युत्तारितः । नृपस्तु पावाद्यव वलोकितुं प्रवृत्तः । स्थाने स्थाने विधिवत्कीतुकानि पदवन्, स्थाने स्थाने नृपवटीपरिमसमा विज्ञान, संचारपुमितीय परिमलाह्या वृद्ध्या पुष्ट्याम्—क्रियेय वैवतासरोपवरकः देव ? एव संचारकोऽविक्रमः । नृपोत्तजितः । इतो मन्त्रावतरे पूर्व मर्दनिर्दमर्दनं दत्त मया नृपो अतिरंजितः । स्नानपीठे स्वर्णमये महाविष्णुत्वा स्नानं कारितः । तदनु वैवद्व्यसमानि नाठा निः स्वाद्यहारीधि वस्त्राभ्यागन्तुः । महद्व्ययानिदेवान् नत्वा योक्तुमुपवेष्टितः । स्वर्णस्वाने ज्ञानिप्राप्त्यनोर्माकृतं पंडिते श्रीरम्यं पक्वान् परिषेष्टितम् । श्रीरतनुमनः कृतः । एवं कटकाम्यपि तत्त्वैव । यपराणि नानाव्यंजनाणि परिवेषितानि । नृपविजयति स्म-वर्द्धपु रत

वती भुवन्ति तस्यमे रसवती कम रोवती । भुवतोत्तर पञ्चमुगम्बिनाम ताम्बूने बाते बाठा
 विववती रात्रिरवति । छर्षोपपित्तनभूमौ नृपाय पश्यक संजितम् । रात्रोक्तम्-मित्र । शीतकाम
 न बामीव ? । देव । बामीव । अन्धम सञ्जितम् । नृपस्तत्र सीवामर्षवके । तत्र महान्
 तापवचनमवदितम् । तान्नृत्तैकज्यमानस्य निद्राऽऽमाता । प्रातः पंडितेन पृष्टम्-देव ।
 शीतकाम इत्याकाशी वा ? उष्णकाल इति प्रत्युत्तर ददौ । पंडितग्री वा किमस्ति विनामि
 तिवत्सा मुत्कटाप्य नृप स्वपुरी यवी ।

क्रमेणैवविमलत पंडितस्व धन क्षीण बाह्यवर्षमपि जातम् । इतः पंडितेन प्रिया
 वत्सा—

‘न मित्रा दुर्मित्रं पठति दुरवत्सा —’

इति निर्वाहमविमृश्येता मायेन माघकाण्यपुस्तकमपेक्षित्वा प्रिया वास्तूबाहेवी माम्नी
 गापवा नृपसमीपे प्रहिता—मममु इच्छं ब्रह्मके ग्रंथीकृत्य लक्षयव इम्माणा ददत । मातत्र यता
 नृपेन सुखि पृष्टा । पुस्तकमपितम् सञ्जयवी वाचिता । रात्रा वत्साका श्रेयिता । प्रातर्वर्जनि
 पंडितस्वस्वपूजकं कार्यं निस्तुतम् । कुमुदवनमपनि श्रीमदरमोदकच्छं नृपेन विमृश्य
 ‘है’ इति—मकरत्वं लक्षयव इतम् । ग्रन्थस्थावत् दूरेऽस्तु कार्यं च । पंडितपत्न्या नृपकुलादु
 तारत्वा पंडित विस्वाम्बरीवामागो मक्षकम्पि दत्तम् । नृपेन पुनराहूयोक्ता—पुनर्द्वयं ब्रह्मे
 त्युक्तोवाच—अधिकं नामावितमरोऽर्जु न ब्रह्मे । सा क्रमेण स्वबुद्धं प्राप्ता । बवा मता तथा
 धामता । पंडितेनोक्तम्—पुस्तकं रात्रा किमिति नातम् ? तयामूर्धं उक्ते पंडितेनोक्तम्—सत्यं
 मावर्षोवोनी विविता कृत । मक्षत्वं परीक्षाबुद्धा निबुद्धा । पतावन्ति विनामि वेतस्येव निक्षप
 वातीम् यमे नेहिनी यमाभुक्ता न वा मक्ष सम्बेहो मम्मस्तव वामेन । यस्वया ब्रह्मोत्पत्त्यं न
 वनितम् । यवी न सन्ति न च मुचति वा कुपता । इतो बर्षस्तत्परमुत्तं चरणयो
 प्लवबुद्धाव । अस्मिन्नवतरे कोऽपि विप्र क्षुपावी पंडिता-वाते प्रविष्टः । मोक्षनं वाचितम् ।
 पंडितेनोक्तम्—‘सुत्थाम’ पवित्री मरीय भुवनं पृच्छन् ब्रह्मोऽप्यमानन ।

इतोऽप्यी विमुञ्चीमूय यत । पंडित प्राह—

‘व्रजत ब्रह्म प्राचा वाचिनि पार्श्वेतांगते —’ ।

इति कवनादनु प्रार्थैत्यत्यजे । पस्वानुलहमममवावि । इतः श्री मोक्षरात्रो वितान्त्र
 करवीर्षत्वा स्वरितमाययो । पृष्टम्—पंडित वन ? । कनीकृत्यमुक्तम् । नृप प्राह नेरे इर्ष्यो मावं
 न मित्रमातनिदम् । वन मम निक्षप यदि मायमि कैमाप्युद्यारकेपि किमपि नावितम् ।
 यत्र पुण्यवि(द्य)विनिदम् । वाव वार्यावि तत्पार्श्वस्य वायेन विधावति विमुचन् यनति—

पाणिदिवाकरमोर्षं हृषीकन गजभुजगविहृगमवधयनम् ।

मतिमतां च गमोक्ष्य दरिद्रतो विधिगृहा जमयामिनि म मणि ॥

क्रमेण स्वपुरी यतः ।

‘उरपति यदि भामु पविचमायां दिवायां विकसति यदि पद्मं पर्वनाथ रिमाका प्रच
 नति यदि मेकः पीततां याति बह्वं तदपि न जलतीव भाविनी कर्मरेणा ॥

तस्य श्रीभोजभूपास बास मित्र कृतीस्वरः ।
 श्री माघो नदनो ब्राह्मीस्यदमः शीतनन्दन ॥ १५ ॥
 ऐदंयुगीनलोकस्य सारसारस्वतायितम् ।
 सिधुपासबधः काव्य प्रशस्तिर्यस्य सास्वती ॥ १६ ॥
 श्री माघोस्तामधी वसाध्यः प्रशस्यः कस्य नाभवत् ।
 चित्तपाङ्कजहरा यस्य काव्यगगोमिनिभूय ॥ १७ ॥
 तथा धूमकरध्वेष्टी बिम्बविम्बप्रियकरः ।
 यस्य दानादमुतीर्गतेर्ह्येवमो हर्षभूरभूत् ॥ १८ ॥
 तस्याभूद्गोहिनी मरुमीलकमीलकभोपतेरिव ।
 यया सत्यापिता सत्यः सीताद्या बिम्बविभ्रुता ॥ १९ ॥
 नदनो नदनोत्तमः कस्यभुव इवामरः ।
 यथेष्टदातव्योऽपिभ्यः प्रार्थितः सिद्धनामसः ॥ २० ॥
 अनुकम्पकुला कन्या धन्या पित्रा विवाहितः ।
 मुक्ते वैपयिक सौम्य बोधुवग इवामरः ॥ २१ ॥
 दुरोदरमरोवारो वाराचारपरामुखः ।
 अन्यदासोऽग्नयः कर्म पुत्र्य विभुपामपि ॥ २२ ॥
 पितृमातृगुरुस्निग्धबन्धुमित्रैर्निवारितः ।
 अपि नैव न्यवर्तिष्ट कुर्वार व्यसन यतः ॥ २३ ॥
 भगूढातिप्रख्येऽस्मिन्नहर्निष्ठमसीऽवसः ।
 तदेकचित्तभूतानाम् सवाचारवसूदहि ॥ २४ ॥
 सपिपासोक्षनायासि क्षीतोऽप्याञ्च विमर्षितः ।
 योगीव क्षीनचित्तोऽग्न व्यत्रस्यत्साधुवाक्यतः ॥ २५ ॥
 निशीघातिक्रमे राजावपि स्वकगृहागमी ।
 बध्ना प्रतीक्ष्य एकस्मास्तया नित्यः प्रतीक्ष्यते ॥ २६ ॥
 अन्यदा राजाजागर्यानिर्गतिवपुरुषमायम् ।
 गृहव्यापारकृत्स्नेषु विसीमागस्त्विति सतः ॥ २७ ॥
 ईहकः ज्ञातेयसम्बन्धवधककैशवाग्भरम् ।
 स्वभूरभूणि भुजन्ती बधू प्राह सगदगदम् ॥ २८ ॥
 ममि सत्या पराभूति कस्ते कुर्यात्ततः स्वयम् ।
 विद्यते कुबिकल्पेस्त्वं गृहकर्म मरामसा ॥ २९ ॥
 स्वभुरोऽपि न ते व्यग्रो यदा राजकुमाविह ।
 प्रागता न ततो वेनावसरादावसज्जिते ॥ ३० ॥
 मामेवाक्रोक्ष्यति त्वं तत्तप्यम् मम निवेदय ।
 यथा द्राघुमवदीयातिप्रतीकार करोम्यहम् ॥ ३१ ॥
 सा न किंचिदिति प्रोष्य स्वधुर्निबन्धतोऽवदत् ।
 युष्मत्पुत्रोऽर्द्धराजातिक्रमेऽप्येति करोमि किम् ॥ ३२ ॥

युत्वेत्याह तदा स्वयं किं नाग्रेऽप्यसि मे पुरः ।
 सुत स्व बोधयिष्यामि वचनं कर्कशप्रियं ॥ ३३ ॥
 अथ स्वपिहि वत्से त्वं मिद्विन्ताहम् तु जागरम् ।
 कुर्वे सर्वं भलिष्यामि नात्र कार्याधुसिस्त्वया ॥ ३४ ॥
 शोमित्यथ स्तुवाप्रोक्ते रात्रौ सद्वारि तस्त्रुपी ।
 विनिद्रा पश्चिमे यामे रात्रे पुत्रः समागमत् ॥ ३५ ॥
 द्वारम् द्वारमिति प्रौढस्वरोऽसौ यावद्विबान् ।
 इयद्रात्रौ कं भागन्ता मातावादीदिति स्फुटम् ॥ ३६ ॥
 सिद्धं सिद्ध इति प्रोक्ते तेन सा कृतकम्पुषा ।
 प्राह सिद्धं न जानेऽहमप्रस्तावविहारिणम् ॥ ३७ ॥
 अघुनाहं क्व यामीति सिद्धेभोक्ते जनन्यपि ।
 अयदा शीघ्रमायाति यथास्मात्कर्कशं जगौ ॥ ३८ ॥
 एतावत्यां निशि द्वारं विवृतं यत्र पश्यसि ।
 तत्र याया समुद्राटद्वारा सर्वापि किं निशा ॥ ३९ ॥
 भवत्वेवमिति प्रोक्ते सिद्धस्तस्मात्प्रिरीय च ।
 पश्यन्नावृतद्वारे द्वारेगादनगारिणाम् ॥ ४० ॥
 सदाप्यनावृतद्वारं शालायां पश्यति स्म स ।
 मुनीनं विविधधर्मासु स्थितान्निष्पृष्यदुर्ममान् ॥ ४१ ॥
 काश्चिद्द्वैरात्रिकं कालं विनिद्रस्य गुरोः पुरः ।
 प्रवेवयत् उत्साहान्काश्चित्स्वाध्यायराङ्गिणः ॥ ४२ ॥
 उत्कटिकासनान् काश्चित् काश्चिद्गोदोहिवासनान् ।
 वीरासनस्थितान् काश्चित्स्रोऽपश्यन्मुनिषु गवान् ॥ ४३ ॥
 अर्चितयज्जमसुभानिभूरि निर्बरा इव ।
 सुस्तावशीतला एते तृष्णाभीता मुमुक्षवः ॥ ४४ ॥
 मादृक्षा व्यसनासक्ता भ्रमक्ता स्वगुरुष्वपि ।
 मनोरथद्रहस्तेषां विपरीतविहारिणः ॥ ४५ ॥
 चिग्वन्नेवमिहामुत्र दुर्यशो दुर्गसिप्रदम् ।
 तस्मात्सुवृत्तिनी वेत्ता यत्रैते दृष्टिमोक्षरा ॥ ४६ ॥
 भ्रमीषां दर्शनात्कोपिन्याप्युपकृतं मयि ।
 जननुया दीरमुत्तप्तमपि पित्तं प्रणाशयेत् ॥ ४७ ॥
 ध्यायन्तिरयग्रतस्तस्यै नमस्तेभ्यश्चकार स ।
 प्रदत्तधर्मसामाक्षीनिर्धाय प्रमुराह च ॥ ४८ ॥
 को भवामिति तैः प्रोक्ते प्रकटं प्राह साहसी ।
 धुमंकरारमभं सिद्धो द्यूतान्मात्रा निषेधितः ॥ ४९ ॥
 उद्राटद्वारि यायास्त्वभोक्सीयग्महामिति ।
 इयन्ती वाचना दत्ता प्रावृतद्वारि सगतः ॥ ५० ॥

तच्च प्रभृति पूज्यानां चरणी शरणी मम ।
 प्राप्तं प्रवहणे को हि निस्तितीर्यति नाङ्गुलिम् ॥ ५१ ॥
 उपयोग श्रुते दत्त्वा योग्यताहृष्टमानसा ।
 प्रभावकं भविष्यत् परिज्ञायाच्च तेऽवदन् ॥ ५२ ॥
 अस्मद्वेपम् विना नैवास्मत्पाश्वर्षे स्वीयतेतराम् ।
 सदा स्वेच्छाविहाराणां दुर्ग्रहं स भवादृशाम् ॥ ५३ ॥
 धार्यं ब्रह्मघृतं घोरं कुण्डरं कातरैर्नरैः ।
 कापोतिका तथा वृत्तिं समुदानापरामिषा ॥ ५४ ॥
 दास्युः केशलोचोऽथ सर्वाङ्गीणव्यपाकरः ।
 सिद्धार्थिबन्धनाय निरास्त्रादस्त्रं संयमः ॥ ५५ ॥
 उज्ज्वावचानि वाक्यानि नीचानां धामकष्टका
 सोढव्या दशनैश्चर्वणीया मोहमया यवाः ॥ ५६ ॥
 उग्रं पष्ठाष्टमादय उत्तापं कार्यं सुबुद्धरम् ।
 स्वाद्यास्वाधेपु सन्धेपु रामद्वेपौ न पारणे ॥ ५७ ॥
 इत्याकम्पविदत्सिद्धो भस्महृग्न्यसनस्थितः ।
 छन्नकर्णोऽप्लनासादिवाहुपादयुगा नराः ॥ ५८ ॥
 क्षुधाकरामितामिक्षा चौर्यविवृतिचारिणः ।
 अप्राप्तसमनस्थाना परभूता निर्वैरपि ॥ ५९ ॥
 नाथ किं तदवस्थायामपि किं कुण्डरो भवेत् ।
 संयमो विश्ववन्द्यस्तन्मूर्ध्नि वेही कर मम् ॥ ६० ॥
 यदवदत् न गृह्णीमो वयं तस्मात्स्थिरो भव ।
 दिनमेकमथा बिज्ञापयामः पैतृकं तव ॥ ६१ ॥
 ततः प्रमाणमावेक्ष्य हस्युक्त्वा तत्र सुस्थिते ।
 परं हर्षं दधौ सूरिः सुविनेयस्य सामतः ॥ ६२ ॥
 इतः क्षुभंकरमेष्टी प्रातः पुनः समाह्वयत् ।
 शब्दादाने च संभ्रान्तः पश्यन् पत्नीं नताननाम् ॥ ६३ ॥
 अथ रात्रे कथं नागात्सिद्धं हस्युक्त्वा सती ।
 भज्जानन्नावदद् द्यूती शिशितोऽथ सुतो ययौ ॥ ६४ ॥
 मेष्टी दभ्यो महेशाः स्युः तागधिपणा ध्रुवम् ।
 न कर्कशं बभोयोग्ये व्यसमी शिष्यसे शनैः ॥ ६५ ॥
 ईषत्करं ततः प्राह प्रिये भव्यं त्वया कृतम् ।
 वयं किं प्रवदामोऽत्र वणिजां नोषितं ह्यवः ॥ ६६ ॥
 गुहाद्बहिरेष निर्गम्य प्रियासांगी कृतः स्थितः ।
 व्यसोकयत्पुरं सर्वमहो मोहं पितुः सुते ॥ ६७ ॥
 इतदपरिजिज्ञासायामसाक्षुपक्षमोमिमि ।
 धाम्पुतोऽपूर्वसंस्थानं ततोऽवादि च तेन सः ॥ ६८ ॥

यद्येव धमिसामीप्यमिति पस्यामि ते सुत ।
 प्रमृतेनेव सिध्येत नन्दनानन्दनस्थिते ॥ ६६ ॥
 दूतव्यसनिनां साध्यापारासीत कुबेरिणाम् ।
 संगतो मम हृदयुः सहेतुः केतुरिव ग्रहः ॥ ७० ॥
 प्रागण्ड्य वत्स सोत्पष्टा तव माता प्रतीक्षते ।
 किञ्चिन्मद्वचनद्वेना सतप्ता निर्गमास्तव ॥ ७१ ॥
 स प्राह तात पर्याप्तं मेहागमनकर्मणि ।
 मम स्तीन गुरो पादार्थवदे हृदय ध्रुवम् ॥ ७२ ॥
 अनदीसाधरो मार्गं मार्गं निष्पतिकर्मतः ।
 आचरिष्यामि तन्मोहो भवदिमर्मा विधीयताम् ॥ ७३ ॥
 याया अपावृत्तद्वारे वेदमनीत्यविकाशम् ।
 धमिसंनिध्यवस्थान मत्त मस्तद्वयूढम् ॥ ७४ ॥
 मावज्जीव हि विद्ये यद्यह तत्कुलीनता ।
 भक्तता स्यादिव जिते सम्यक्तात विवितम् ॥ ७५ ॥
 यथाह सन्नामाज्ज्वेष्टी किमिदं वस्तु चिन्तितम् ।
 प्रसंख्यजविज्ञेय जन कः सार्यमिष्यति ॥ ७६ ॥
 विसस त्व यथा सौख्यं विदेहि निजयेच्छया ।
 मविमुचनसदाचार सतां हलाप्यो भविष्यति ॥ ७७ ॥
 एकपुत्रा तवाम्ना च निरपत्या वदस्तथा ।
 गतिस्तयोस्त्वमेवासीजीर्णं माजीगणस्तु माम् ॥ ७८ ॥
 पित्रेत्पमुदिते प्राह सिद्ध सिद्धशमस्थितिः ।
 संपूर्णं सोमिवाणीमिस्तत्र मे धृतिरधृतिः ॥ ७९ ॥
 ब्रह्मणीव मनो स्तीन ममातो गृहपादयोः ।
 निपत्य ब्रह्मि दीक्षां हि पुनस्त्य मम यच्छ्रव ॥ ८० ॥
 इति निर्वैषतस्तम्य तथा चक्रे शुभकरः ।
 गुरुं प्रादात्परिषज्यां तस्य पुण्ये स्वरोदये ॥ ८१ ॥
 दिनैः कतिपयमसिमाने तपसि निर्मिते ।
 शुभे त्वने पञ्चमहाव्रतारोपणपर्वणि ॥ ८२ ॥
 दिग्यन्त्रं थावयामास पूजतो गच्छ सन्ततिम् ।
 सत्प्रभुं धृणु वत्स त्वं श्रीमान् बन्धुप्रभुं पुरा ॥ ८३ ॥
 सञ्छिद्यव्यवहारेनस्याभूद्विनेयपुण्डरीकम् ।
 मार्गोन्ने निवृत्तिरश्च त्रं स्यातो विद्यापरस्तथा ॥ ८४ ॥
 आसीन्निवृत्तिरश्च त्रं स्यातो विद्यापरस्तथा ॥ ८५ ॥
 तद्विनेयस्थं गर्गपिरहं दीक्षागुस्तव ॥ ८६ ॥
 धीमांगानां महत्प्राणि त्वयाष्टादश निभरम् ।
 बोद्धव्यानि विविद्याममात्रात्यन्तं हृद ॥ ८७ ॥

भोमिति प्रतिपद्याय तप तत्र भरतसौ ।
 ग्रथ्येता वर्तमानानां सिद्धान्तानामजायत ॥ ८७ ॥
 स चोपदेशमासाया वृत्तिं बासावबोधिनीम् ।
 विदधेऽवहितप्रज्ञ सर्वज्ञ इव गीर्भरे ॥ ८८ ॥
 सूरिर्वाक्षिप्यचद्राक्ष्मो गुरुभ्रातास्ति यस्य ॥
 कथां कुबलयमासी चक्रे शृङ्गारनिर्भराम् ॥ ८९ ॥
 किञ्चित्सिद्धकृतग्रन्थसोत्प्राप्तं सोवदतादा ।
 भित्तिरै किं नबोध्यस्तववस्त्रागमाकरे ॥ ९० ॥
 शास्त्रम् श्रीसमरादित्यचरितं कोत्यते भुवि
 यत्रसोमिप्सुता जीवा क्षतुर्दार्ढ्यं न जानते ॥ ९१ ॥
 अथोत्पत्तिरसाधिक्यसारा किञ्चित्कथापि मे
 ग्रहो ते मेखकस्येव ग्रन्थं पुस्तकपूरणं ॥ ९२ ॥
 अथ सिद्धकविं प्राहु मनो हूनोपि (पि) नो खरम् ।
 वयोतिर्कातपाठानामीहृषी कविता भवेत् ॥ ९३ ॥
 का स्पर्धा समरावित्यकवित्वे पूर्वसूरिणा ।
 तद्योतस्येव सूर्येण माहममन्दमतेरिह ॥ ९४ ॥
 इत्थमुद्वेजितस्वातस्तेनासी निर्ममे बुधः ।
 ग्रन्थदुर्बोधसर्वबद्धी प्रस्तावाष्टकसंभूताम् ॥ ९५ ॥
 रम्यामुपमितमवप्रपञ्चास्यां महाकव्याम् ।
 सुबोधकवितां विद्वदुत्तमांगविभूतनीम् ॥ ९६ ॥
 ग्रन्थव्याख्यानयोग्यं यदेन चक्रे समाश्रयम् ।
 अथ प्रभृति संघोऽत्र व्याख्यातुर्विदुः ददौ ॥ ९७ ॥
 वक्षितायास्म तेनाथ हसितुं स घतोऽबदत् ।
 ईदृकं कवित्वमाधेय त्वदगुणाय मयोदितम् ॥ ९८ ॥
 ततो व्यञ्जितमत्सिद्धो ज्ञायते यदपीह न ।
 तेनाप्यज्ञानता तस्मादभ्येतव्यं ब्रुव मया ॥ ९९ ॥
 तर्कग्रन्था मयाभीता स्वपरेऽपीह ये स्थिता ।
 बौद्धप्रमाणशास्त्राणि न स्मृताहेषमन्तरा ॥ १०० ॥
 भाषप्रच्छेदे गुरु सम्मण्डितवचनैस्तथा ।
 प्रान्तरस्थितवेषेषु गमनायोग्यमामित ॥ १०१ ॥
 निमित्तमवलोकयाय श्रीतेन विधिना सप्त ।
 सवातस्यभुवाभाय नाथ प्रायमकल्पिकम् ॥ १०२ ॥
 असन्तोषं शुभोऽध्याये तस्य किञ्चिद्वदामि तु ।
 स त्वमत्र न सत्त्वानां समये प्रमये धिया ॥ १०३ ॥
 भ्रान्तं चेत् कदापि स्यादेत्वाभासस्तदीयकं ।
 अर्धी तवाणमभेदे स्वसिद्धान्तपराङ्मुखा ॥ १०४ ॥

उपाजितस्य पुण्यस्य नाद्य त्वं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ।
 निमित्तत इदं मन्ये तस्मात्मात्रोद्यमी भव ॥ १०५ ॥
 अथ चेदबन्धेपस्ते गमने न निवर्तते ।
 तथापि मम पार्श्वे स्वभागा वाचा मर्मकदा ॥ १०६ ॥
 रजोहरणमस्माकं प्रतीगं न समर्पये ।
 इत्युक्त्वा मौनमातिच्छद्गुरु चित्तव्यथाधरः ॥ १०७ ॥
 ब्राह्म सिद्धं श्रुती श्रद्धादयित्वा शान्तं हि कस्मपम् ।
 अमंगलं प्रतिहतमकृतज्ञं क ईदृशं ॥ १०८ ॥
 अक्षुब्धादितं येन मम ज्ञानमयं मुदा ।
 पुनस्त्वद्यामयेत्कोहि धूमायितपरोक्तिम् ॥ १०९ ॥
 अन्त्यं वचः कथं नाथ मयि पूज्यैरुदाहृतम् ।
 क कुमीनो निजगुरुकर्ममुग्धं परित्यजेत् ॥ ११० ॥
 मनः कदापि गुप्येत चेदतूरभ्रमादिव ।
 तथापि प्रमुपादनामादेनं विदधे ध्रुवम् ॥ १११ ॥
 इत्युदित्वा प्रणम्याथ स जगाम यथेप्सितम् ।
 महाबोधामिधं बोधपुरमव्यक्तवेषमृतम् ॥ ११२ ॥
 कृधाप्रीयमतेस्तस्याक्लेशेनोपि प्रबोधत ।
 विद्वदुन्नेदशास्त्राणि तेषामासीष्वभक्तुः ॥ ११३ ॥
 तस्यांगीकरणे मन्त्रस्तेषामासीद्वरसदः ।
 समस्युद्योतको रत्नमाप्य माध्यममाययेत् ॥ ११४ ॥
 सादृशवचःप्रपञ्चैस्तेर्वर्द्धकैर्गर्द्धकैरपि ।
 तं विप्रसम्भयामासुर्मीनबद्धीवरः रसात् ॥ ११५ ॥
 सनैर्भ्रातृमनोवसिर्वसूबासी यथा तथा ।
 तदीयवीक्षामादत्त जैनमार्गतिनिस्पृहः ॥ ११६ ॥
 अन्यथा तैगुरुत्वेऽसी स्याप्यमानोऽबदन्नु ।
 एष्वेल मया पूर्वं सवीक्ष्या गुरवो ध्रुवम् ॥ ११७ ॥
 इति प्रतिश्रुतं यस्मात्तदग्रे सत्प्रतिषेधम् ।
 सत्यसंघस्यजेशास्वस्तत्र प्रहिरणुताथ माम् ॥ ११८ ॥
 इति सत्यप्रतिज्ञास्वमतिपादः च सीगते ।
 मन्यमानास्ततः प्रपुः स आगादगुस्तन्निधौ ॥ ११९ ॥
 गत्वाथोपाधये सिंहासनस्य वीक्ष्य तं प्रपुम् ।
 ऊर्ध्वस्थानमुमा यूयमित्युक्त्वा मौनमास्थितः ॥ १२० ॥
 गर्गम्यामी व्यमृशन् सज्जो तदिदं कुलम् ।
 अग्निमित्तम्य जैनीवाग् नाम्यया भवति ध्रुवम् ॥ १२१ ॥
 अस्माकं ग्रहवैषम्यमिदं जजे यदीदृशः ।
 सुविनेयो महाविद्वान् परसाम्प्रप्रसमितः ॥ १२२ ॥

भोमिति प्रतिपद्यात् तप सप्त चरससी ।
 ध्येता वर्तमानानां सिद्धास्तानामजामत ॥ ८३ ॥
 स चोपदेशमाभाया वृत्तिं बामावबोधिनीम् ।
 विदधेऽबहितप्रज्ञ सर्वज्ञ इव गीर्भरे ॥ ८४ ॥
 सूरिर्वाशिष्यश्चाश्वो गुरुभ्रातास्ति यस्य स ।
 कथां कृत्वत्यमासां भक्ते शृङ्गारनिर्भराम् ॥ ८५ ॥
 किञ्चित्सिद्धकृत्सग्रन्थसोत्प्राप्तं सोवदत्तदा ।
 लिसिती किं नयोऽग्न्यस्तदवस्थागमाक्षरं ॥ ८६ ॥
 शास्त्रम् भीसमरावित्यपरितं कीर्त्यते भुवि ।
 यत्रसोभिप्सुता जीवाः सत्पुत्राश्च न जानते ॥ ८७ ॥
 अपोत्पत्तिरसाधिक्यसारा किञ्चित्कथापि मे
 महो ते मेसकस्येव ग्रन्थं पुस्तकपूरणम् ॥ ८८ ॥
 अथ सिद्धकविः प्राहु मनो धूनोपि (पि) नो क्षरम् ।
 बयोसिद्धातपाठानामीहृषी कविता भवेत् ॥ ८९ ॥
 का स्पर्धा समरादित्यकवित्वे पूर्वसूरिणां ।
 सद्योतस्येव सूर्येण माहृगन्धमतेरिह ॥ ९० ॥
 इत्यमुद्वेजितस्वातस्तेनासी निर्ममे बुधः ।
 ग्रन्थदुर्बोधसंघर्षा प्रस्तावाष्टकसमूहाम् ॥ ९१ ॥
 रम्यामुपमितभगप्रपञ्चाख्यां महाकथां ।
 सुबोधकवितां विद्वदुत्तमांगविद्वन्नीम् ॥ ९२ ॥
 ग्रन्थव्याख्यानयोग्यं यत्नेन चक्रे शमाश्रयम् ।
 अतः प्रभृति संघोऽत्र व्याख्यातृविरूढ ददौ ॥ ९३ ॥
 दक्षिताचास्य तेनाथ हसितुं उ ततोऽबदत् ।
 ईदृक् कवित्वमाधेय त्वत्पुणाय मयोदितम् ॥ ९४ ॥
 ततो व्यञ्जितयत्सिद्धो ज्ञायते यदपीह न ।
 तेनाप्यज्ञातता तस्मादध्येतव्यं ध्रुव मया ॥ ९५ ॥
 तर्कग्रन्था मयाभीता स्वपरेऽपीह ये स्थिता ।
 बौद्धप्रमाणशास्त्राणि न स्युस्तद्देशमन्तरा ॥ ९६ ॥
 आप्रपञ्चे गुरु सम्यग्विनीतवचनैस्ततः ।
 प्रान्तरस्थितवैशेष्यं ममनायो मनायितम् ॥ ९७ ॥
 निमित्तमवलोकयाथ भीतिग विधिमा ततः ।
 सवात्सल्यमुवाचाथ नाथ प्राथमकल्पिकम् ॥ ९८ ॥
 असन्तोषं धुमोऽध्याये वत्स किञ्चिद्वयामि तु ।
 स त्वमत्र न सत्त्वार्तां समये प्रमये धिया ॥ ९९ ॥
 भ्रान्तं चेत् कदापि स्याद्वेत्ताभासैस्तदीयकैः ।
 अर्थां तदागमभेदे स्वसिद्धान्तपराङ्मुखः ॥ १०० ॥

उपाजितस्य पुण्यस्य मार्गं त्वं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ।
 निमित्तत इव मन्ये तस्माग्मात्रोद्यमी भव ॥ १०५ ॥
 अथ वेदवलेपस्ते गयने न निवर्तते ।
 तथापि मम पार्श्वे त्वमाणा वाचा ममेकदा ॥ १०६ ॥
 रजोहरणमस्माकं व्रतांग न समर्पये ।
 इत्युक्त्वा मोहमातिच्छेदयुतं चित्तव्यवाधरः ॥ १०७ ॥
 प्राह सिद्धं धृतीं च्छावयित्वा क्षान्तं हि कस्मप्यम् ।
 धर्मगतं प्रतिहृतमकृतज्ञं कं ईदृशं ॥ १०८ ॥
 अक्षुब्धादित येन मम ज्ञानमयं मुदा ।
 पुनस्तद्गुणमयेत्कोहि धूमामितपरोक्तिभिः ॥ १०९ ॥
 अत्यं बभूव कथं नाथ मयि पूज्यं हवाहृतम् ।
 कं कुसीनो निजगुरुमयुगलं परित्यजेत् ॥ ११० ॥
 मन कदापि मुप्येत वेदतुरगमादिन ।
 तथापि प्रभुपादनामादेशं विदधे ध्रुवम् ॥ १११ ॥
 इत्युक्त्वा प्रसूयमाथ स जगाम यथेष्टितम् ।
 महाबोधामिमं बौद्धपुरमव्यक्तवेपम् ॥ ११२ ॥
 कुशाग्रोयमवेत्तस्याकलेष्टेनापि प्रबोधतः ।
 विद्वद्बुधैर्दद्यात्स्त्राणि तेषामासीच्चमत्कृतिः ॥ ११३ ॥
 तस्याङ्गीकरणे मन्त्रम्येषामासीद्वरस्रवः ।
 तमस्युद्योतको रत्नमाप्य भाष्मस्युपमाधयेत् ॥ ११४ ॥
 तादृग्वधः प्रपद्येन्तुर्वन्द्यैर्गर्जैर्गैरपि ।
 तं विप्रमन्त्रयामासुर्मीनवद्धीवरः रसात् ॥ ११५ ॥
 धनेर्भ्रातृमनोवृत्तिर्वभूवासी यथा तथा ।
 तदीयदीक्षामादत्त जन्ममार्गादिनिस्पृहः ॥ ११६ ॥
 मन्यदा तैर्मुक्तेषुषीं स्वाप्यमानोऽबलन्नु ।
 एष्वेवं मया पूर्वं सवीर्या गुरवो ध्रुवम् ॥ ११७ ॥
 इति प्रतिधृतं यस्मात्तदग्रे तत्प्रतिधृतम् ।
 सत्यसंस्तप्यजेशत्कस्तत्र ब्रह्मिण्युताथ माय ॥ ११८ ॥
 इति सरयवतिज्ञत्वमतिपाठं च सीगते ।
 मन्यमानास्ततः प्रपु स चागादगुरुस्तन्निधौ ॥ ११९ ॥
 गत्वायोपाश्रये सिंहासनस्थं वीर्यं स प्रभुम् ।
 ऊर्ध्वं रक्षामद्युषा भूयमित्युक्त्वा मौनमास्थितः ॥ १२० ॥
 गर्गस्वामी ध्यामृषाञ्च सज्जते तदिदं कुतम् ।
 अनिमित्तस्य जीर्णान् नाग्यथा भवति ध्रुवम् ॥ १२१ ॥
 यस्मात्तं ग्रहैर्बध्यमिन् जज्ञे यदीहृदा ।
 सुविनेयो महाविद्वान् परदास्त्रप्रसंमिन् ॥ १२२ ॥

तदुपायेन केनापि बोध्योऽसौ यदि भोत्स्यते ।
 तदस्माकं प्रियं भाग्यैरुदितं किं बहुविधमि ॥ १२३ ॥
 ध्यात्वेत्युत्पायं गुरुभिस्तं निवेष्ट्यासनेऽर्पिता ।
चैत्यवदनसूत्रस्य वृत्तिर्नसितविस्तरा ॥ १२४ ॥
 ऊर्ध्वं च यावन्नायाम कृत्वा चैत्यनति मयम् ।
 ग्रन्थस्तावदयं वीक्ष्य हृत्पुक्त्वा तेऽगमन् बहिः ॥ १२५ ॥
 ततः सिद्धश्च तं ग्रन्थं वीक्ष्यमाणो महामतिः ।
 व्यमृशत्किमकार्यं तस्म्यारम्भमचिन्तितम् ॥ १२६ ॥
 कोऽन्य एवविधो माहगणिभारिसकारकः ।
 स्वार्थं च तं पराख्यातैर्मणि काचेन हारयेत् ॥ १२७ ॥
मदोष्कारी स धीमान् हरिमद्रप्रभुर्यतः ।
मदर्थमेव येनासौ प्रयोऽपि निरामाप्यतः ॥ १२८ ॥
 प्राचार्यो हरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुरुः ।
 प्रस्तावे भावतो हन्त स एवाद्य निवेष्टितः ॥ १२९ ॥
 भनागत परिज्ञाय चैत्यवदनसंभया ।
मदर्थं निर्मिता येन वृत्तिर्नसितविस्तरा ॥ १३० ॥
 विषं विनिर्घूय कुवासनामयं व्यधीचरुहं कृपया महाशये ।
 अचिन्त्यवीर्येण सुवासनामुखां नमोऽस्तु तस्मै हरिमद्रसूरये ॥ १३१ ॥
 किं कर्ता च मया क्षिप्याभासेमाद्यं गुरुर्मम ।
 विज्ञायैतन्निमित्तेनोपकर्तुं त्वाङ्गयन्मिपात् ॥ १३२ ॥
 तव हृदयस्य भौलिं पावयिष्येऽधुना निघ्नम् ।
 आगं स्व कथयिष्यामि गुरुः स्यान्महानीहस्तः ॥ १३३ ॥
 तथागतमतिभ्रान्तिर्यन्ता मे ग्रन्थतोऽमुतः ।
 कोद्वयस्य यथा क्षुद्राघाततो मदनभ्रमः ॥ १३४ ॥
 एवं चिन्तयतस्तस्य मुखाद्वाह्यमुवस्ततः ।
 आगतस्तद्वद पश्यन् पुस्तकस्थं मुखं यथो ॥ १३५ ॥
 नैपेयिकी महाशब्दं द्युत्खोदं सभमावभूतः ।
 प्रणम्य कृशायामास शिरसा तत्पदद्वयम् ॥ १३६ ॥
 उवाच किं निमित्तोऽयं मोहस्तव भयि प्रभो ।
 कारयिष्यन्ति चैत्यानि पश्चार्त्तिकं माहसोऽपमा ॥ १३७ ॥
 चन्मीमादूपकास्फोटस्फुटवेदमविग्रहः ।
 स्वादविघ्नावयसा दन्ता कुशिव्याद्यं गताद्युभा ॥ १३८ ॥
 भाहूतो मिसनभ्याजोद्वीचार्येव द्रुव प्रभो ।
 हारिभद्रस्तथा ग्रन्था भवता विदधे करे ॥ १३९ ॥
 भग्नभ्रमं कुशास्त्रेषु प्रभु निक्षपते ततः ।
 स्वस्मान्तेवासिपादास्य पृष्ठे हस्तं प्रदेहि मे ॥ १४० ॥
 देवगुर्धायतोत्पमहापापस्य मे तथा ।

प्रायश्चित्तं प्रयच्छाद्य दुर्गतिश्छिद्य कृपां कुरु ॥ १४१ ॥
 अथोवाच प्रमुस्तः कस्तृणाधारणाक्षयः ।
 ध्यानं दायुपरिश्रुत्या परितस्तन्नोत्तरीयकः ॥ १४२ ॥
 मा खेदः बलं कार्पास्य को वनी वद्यतेनया ।
 पानशौण्डे रिवान्यस्तकुतर्कमवबिह्वली ॥ १४३ ॥
 नाहं स्वां धूर्तिं मन्ये यद्वज्रो विस्मृतं न मे ।
 मदेन विक्रमः कोऽपि स्वां विना प्राप्स्युतं स्मरेत् ॥ १४४ ॥
 बेपादिधारणं तेषां विद्यासायापि सम्भवेत् ।
 अतिभ्रान्तिं च नात्राहं मानये तब मानसे ॥ १४५ ॥
 प्रख्यातवक्त्रकप्रज्ञा ज्ञातसास्वार्थममकः ।
 कः सिध्यस्त्वाहो मन्त्रेऽस्तु मन्त्रेऽस्तु मन्त्रेऽस्तु ॥ १४६ ॥
 इत्युक्तिमिस्तमानन्दः प्रायश्चित्तं तदा गुरु ।
 प्रवदेत्य निजे पट्टे तथा प्रासिद्धिपञ्च तम् ॥ १४७ ॥
 स्वयं तु भूत्वा निस्तंगस्तुंगदं गमुष तदा ।
 हिरवा प्राञ्चपिपीलीयं तपसेऽरम्भमाधयत् ॥ १४८ ॥
 कायोत्सर्गं कदाप्यस्यावुपसर्गसिद्धिद्वयाधी ।
 कदापि निनिमेषादां प्रतिमाभ्यासमावहे ॥ १४९ ॥
 कणाचित्पारणे प्रान्ताहारवारितशंखरम् ।
 कदाचिन्मासिकाद्यैश्च तपोभिः कर्म सोऽस्तिपत् ॥ १५० ॥
 एव प्रकारमास्थाय चारित्रं दुष्यत तदा ।
 धातुरते विद्यायाश्चानन्दान् स्वयं यो सुधी ॥ १५१ ॥
 इतश्च सिद्ध्याभ्यासात् विद्यात् सर्वतोमुखे ।
 पाण्डुरये पण्डितमन्यपरसासनजिम्बरः ॥ १५२ ॥
 समन्तशासनोद्योतं भुर्वन्मूय इव स्फुटम् ।
 विप्रेततोऽवदानेस्तु कृतानिबृत्तिनिबृत्तिः ॥ १५३ ॥
 अमन्यतीषमात्रादिमहोत्साहं प्रमादना ।
 नारमदात्मिकं सिद्धो बभूव सिद्धिं परां दधी ॥ १५४ ॥
श्रीमत्सुप्रभदेवनिर्मलकृतानन्दकारणुद्धामणिः ।
श्रीमन्माधवकीदवरस्य सहकप्रेथापरीक्षानिधिः ।
 तद्वत् परिचिन्त्य कुग्रहपरिष्वयं नयं पितृभिसि
 प्रागस्मादपि सगतं त्यजत भो लोकदये सिद्धये ॥ १५५ ॥
 श्रीचन्द्रप्रभमूरिपट्टसरसीर्हसप्रभः श्रीप्रभा
 चन्द्र सूरिर्मेन वेतसि कुते श्रीरामसन्मीशुवा
 श्रीपूर्वपिपरित्रोहणगिरी सिद्धपिपुस्ताभ्यया ।
 श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विद्यदित गृह्णो जगत्संन्यया ॥ १५६ ॥

(६) सिद्धिनि की प्रशस्ति

शोतित्वास्मिन्भावार्थं सदम्भ्याम्प्रबोधकम् ।
 सूर्य (यः) चार्थोऽभवद्दीप्त साक्षादिव दिवाकरः ॥ १ ॥
 स निबृत्तिकुम्भोद्भूतो साट देशनिभूपणम् ।
 आचार्यचक्रोद्भूत प्रसिद्धो जगतीतले ॥ २ ॥
 अभूद् भूतहितो वीरस्ततो देस्त्वमहतरः ।
 ज्योतिर्निमित्तशास्त्रज्ञ प्रसिद्धो देशविस्तरे ॥ ३ ॥
 ततोऽमुदुत्ससत्कीर्तिर्ब्रह्मगोत्रनिभूपणम् ।
 दुर्गस्वामी महाभाग प्रख्यात पृथिवीतले ॥ ४ ॥
 प्रवज्यागृह्णता येन गृह सदनपूरितम् ।
 हित्वा सद्धर्ममाहारम्य श्रियैव प्रकाशितम् ॥ ५ ॥
 यस्य तज्ज्वरित वीर्यं दृष्टांककर निर्मलम् ।
 बुद्धास्तत्प्रत्ययादेव भूयांसो जन्तवस्तदा ॥ ६ ॥
 सहीक्षादायक तस्य स्वस्य चार्हं गुरुत्तमम् ।
 नमस्त्वामि महाभाग गर्गपिमुनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥
 क्लिष्टेऽपि कृपमाकाशे यः पूर्वमुनिचर्यया ।
 विजहारेव नि संगो दुर्गस्वामी चरातले ॥ ८ ॥
 सहैश्वर्यामृतिर्लोकैः शोतित्वा भास्वरूपमः ।
 श्रीमिस्त्वमासे यो वीरः गतोऽस्त सद्धिमानत ॥ ९ ॥
 तस्मादतुल्योपशम सिद्ध (सह) पिरभूदनाविस्मयनस्करः ।
 परहितनिरतैकमतिः सिद्धान्तनिर्निर्माणा ॥ १० ॥
 विपन्नमन्त्रगतं निपतितजन्तुशताभ्युदयान् दुर्लभितम् ।
 दक्षिणास्मिन् योपकुम्भोऽपि सततं कल्पपरीतमना ॥ ११ ॥
 यः सप्तहकरणरत सप्तपद्मह्निरतमुद्धिरतबरतम् ।
 आत्मन्यतुल्य भुण्णगणैर्गणधरकुट्टि विधापयति ॥ १२ ॥
 बहुविधमपि यस्य मनो निरीक्ष्य कुन्वेत्युनिशब्दमद्यतना ।
 मन्यते विमलधियः सुसाधुगुणवर्णक सत्यम् ॥ १३ ॥
 उपमितिमन्त्रप्रपञ्चा कथेति तज्ज्वरणरेणुक्षपेन ।
 गीर्देवतया विहिताभिहिता सिद्धाभिधानेन ॥ १४ ॥
 आचार्यहरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुरुः ।
 प्रस्तावे भावतो हन्त स एवासे निवेदित ॥ १५ ॥

विपं विनिर्भूयकुवासनामयं, व्यभीषरथ कृपया मदाशये ।
 मन्त्रिन्त्यभीषेण सुवासनासुधा, नमोऽस्तु तस्मै हरिमद्र सूरये ॥१६॥
 घनागत परिज्ञाय चैत्यवदन सश्रया ।
 मदर्थेव कृतायेन वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥ १७ ॥
 यन्नातुसरययात्राधिकमिदमिति सख्यवरजयपताकम् ।
 निक्षिप्त सुरयुवममध्ये सततं प्रमदजिनेन्द्र गृहम् ॥ १८ ॥
 ययार्थंष्टं कृपासायां धर्मं सद्देवधामसु ।
 कामोसीतावतीशोके सदास्ते त्रिगुणोमुवा ॥ १९ ॥
 तत्रेय तेनकथा कविना निरूपेण गुणगुणाधारे ।
 श्रीमिस्त्रिमासनगरे गदिताग्रिम मण्डपस्थेन ॥ २० ॥
 प्रथमादर्शसिद्धिं साध्याश्रुतवेवतानुकारिण्या ।
 दुर्मन्त्राभीगुह्यां शिष्यकयेयं गणामिदया ॥ २१ ॥
 संवत्सर षातनबके द्विपष्टिसंहितेऽतिलंघिते चास्या ।
 ज्येष्ठे सित पंचम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत् ॥ २२ ॥
 ग्रन्थाग्रमस्या विज्ञाय कीर्तयन्ति मनीषिण ।
 अनुष्टुमां सहस्राणि प्रायसं सन्ति योऽहं ॥ २३ ॥

'सिद्धहस्त मुद्रप्रधान श्री सिद्धार्थ' लेखक मोतीचंद निरन्तरालास शापड़िया की बुधरायी नापा व तिथि में यह पुस्तक देखने को प्राप्त हुई। इसमें उपर्युक्त प्रवृत्ति थी। प्रवृत्ति के हरिमन्त्रवाले श्लोक सिद्धार्थ के प्रभाव वाले श्लोकों से धार्मिकता मिल रहे हैं। प्रवृत्ति में— प्रथम तरह श्लोकों में पूर्व गुरुओं, (गुरुओं) के विषय में कुछ कहा गया है कि मन्त्रों प्रदेष्ट के इच्छा-उत्तर काट प्रदेष्ट है। सूर्यचार्म वा सूर्याचार्य उस क्षेत्र के अति प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। उन्हीं सूर्याचार्य के सिष्य वेस्वामहस्तर ज्योतिष शास्त्र में पारंगत थे। उनके पीछे गुरुस्वामी हुए जो जन्म से ब्राह्मण थे। बीसा होने पर उन्होंने 'वन' से परिपूर्ण घर को छोड़ दिया। वर्मणि सिद्धार्थ के बीसाप्रभावक पुत्र थे। व 'पि के पास उन्होंने बीसा ली। प्रवृत्ति में गुरुस्वामी की प्रशंसा में उन्होंने १, ९ श्लोक लिखे हैं और अपने को उनका वरगरेणु कल्प सिखा है, जबकि वर्मणि को उन्होंने केवल एक श्लोक में गमस्कार मान किया है। शाप में गुरुस्वामी की भी बीसा देने वाले वर्मणि को ही बताया गया है अतः कहावित् वर्मणि मूल सूर्याचार्य के सिष्य और वेस्वामहस्तर के भाई हैं और गुरुस्वामी को उन्होंने शिक्षित किया हो। सिद्धार्थ को भी उन्होंने या तो गुरुस्वामी के ही नाम से बीसा दी होनी अथवा अपने नाम से बीसा देकर भी उनको गुरुस्वामी के अधीन कर दिया होगा जिससे शास्त्राभ्यास आदि सब कार्य उन्होंने उन्हीं के पास किया होगा और इस कारण से सिद्धार्थ ने मुख्य कर उन्हीं को गुरुत्वं से स्वीकृत किया होगा। इस भाँति सिद्धार्थ के पुत्र गुरुस्वामी हुये। प्रवृत्ति के १४ वें श्लोक में सिद्धार्थ ने 'उपमिति भवप्रपञ्च कथा' रची इसका अर्थ स्पष्ट है। श्लोक ११-१७ हरिमन्त्र संबंधी हैं। हरिमन्त्रसूरि को सिद्धार्थ वर्म का बीसा करने वाले पुत्र मानते हैं। बात भी सत्य है क्योंकि सिद्धार्थ जब बीजाचर्म में आस्था रखने वाले हो गये थे तब गुरु वर्मणि ने इनको हरिमन्त्रसूरि की 'अमिषि विस्तर' नाम वाली पुस्तक पढ़ने के लिए दी। उसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि सिद्धार्थ फिर जैन धर्म में शिक्षित हुए। 'अनापत्त परित्राय' तथा 'वर्म बीजकरो मुक्त' इन शब्दों से स्पष्ट है कि हरिमन्त्रसूरि सिद्धार्थ से पूर्व हुए हैं। श्लोक १८-२० में 'उपमिति भव प्रपञ्च कथा' शब्द लिखने का स्थान भिन्नमान बताया है। श्लोक २१ में गुरुस्वामी की पिप्प्या तथा नाम की छाप्पी ने इस 'उपमितिभव प्रपञ्च कथा' को प्रथम ही सिखा। श्लोक २२ में कहा है कि संवत् १२९ विष्ट बुधला पंचमी गुरुवार को पुनर्बन्धु नमन के योग में यह शब्द समाप्त हुआ।

सिद्धार्थ पर आलोचनात्मक दृष्टि:—

प्रभावक चरित में सिद्धार्थ का प्रबंध है और सिद्धार्थ संबंधी प्रवृत्ति ऊपर दी गई है। इसके आधार पर तथा कुछ अन्य शब्दों के आधार पर सिद्धार्थ के संबंध में आवश्यक तथ्य प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

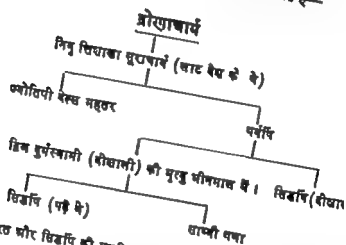
उत्ता वर्मलाठ के मुद्रप्रदेष्ट नामवाला मंत्री था। भीममाल वर्मलाठ का राज्य था। मुद्रप्रदेष्ट के दो पुत्र थे दत्त और सुबंकर। दत्त का बालमित्र इतीश्वर राजा भोज था। उसी

रुठ के शिशुपासबन काम्य के कला माच कबि ब्राह्मी के गर्म से हुए । दूसरे पुन शुभंकर
 भेन्डी (विश्व को प्रिय सगनेबाले एवं दानी व्यक्ति) की सखी नामबासी लकी के गर्म से
 सिद्धनामबाजा पुन उत्पन्न हुआ । इसी सिद्ध का विवाह सन्मा नामबासी प्रति रूपवती लकी
 के माच हुआ । यौवन, प्रभुता तथा भगसम्पत्ति से सिद्ध के जीवन को दोषपूर्ण कर दिया ।
 कुपारी तथा बेवयाधामी यह सिद्ध रात्रि को बड़ी देर से घाने लगा । सन्मा पतिव्रता थी ।
 यह मन ही मन व्यथा से परिपुत्र रहती । एक दिन सिद्ध की माता सखी ने देर से घान
 बाले अपने पुत्र सिद्ध के लिए किबाड़ नहीं बोले और कहा कि जहाँ पर तुम्हारे लिए इस
 समय द्वार खुले हैं वहीं पर चले जाओ । सिद्ध एक जैन उपाधय में चले गये जहाँ पर द्वार
 खुले पड़े थे । प्रातः काल शुभंकर उसे दूढ़ते २ उपाधय में आ पहुँचे । सिद्ध ने घर में जाकर
 पिता से बीसा के लिये माया लेने की सब हठ की तो शुभंकर ने घन्ट में माया दे दी थी ।
 बख्तबानी के शिष्य बख्खेन के चार शिष्य थे — योनेत्र निबू ति चन्द्र और बिद्याधर । इन
 चारों से चार शाखायें निकलीं, उनमें निबू ति छात्र से सूरदास्य हुए । सूरदास्य के शिष्य
 वर्तमान हुए हैं और इन्होंने वर्तमान से सिद्ध ने बीसा लेकर सिद्धि नाम प्रसिद्ध किया । सिद्धि
 ने प्रसिद्ध सन्मा उपमिषिमन प्रपंच कहा लिखी । इन सिद्धि के गुरुमाई 'कुबलयमाता' सन्मा
 के रचयिता दालिप्य चन्द्र जिनका उपनाम उद्योतनसूरि है । इनकी रचना की समाप्ति एक
 सन् ७०० में जब एक दिन कम का हुई (सन् १११६ के जैनकल्प १४) उत्सेवकर्ता ने स्वयं
 प्रवृत्ति में लिखा है—
 मन्वान होत सम्मान ।।

सगकाले बोलीये वरिसाण सएहि सतहि गएहि ।
 एगबिले एगरोहि एत समता वरव्णुमि ॥
 प्रमावकचरितकार ने बौद्धिप्य चन्द्र और सिद्धि के सन्मा बार्तालाप करवाया है ।
 कुछ विद्वानों का कहना है कि यह काल्पनिक है । दोनों व्यक्ति समकालीन हो नहीं सकते
 क्योंकि दोनों के सन्मा पर्याप्त बयों का अन्तर है ।
 बात यह है कि इत्योत्तमराचार्य उद्योतनसूरि ने जब 'कुबलयमाता' नामक प्राकृत
 कथा को बाबासिपुर (बासीर मारवाड़ की जीनमास के समीप है) में समाप्त किया था
 उस समय मारवाड़ का अधिकारी बलराज या ऐसा कहा जाता है । हरिवंश की रचना के
 समय (सन् ७०१) तो मारवाड़ इन्द्रायुध के अधिकार में था और कुबलयमाता की रचना
 के समय (सन् ७०० में) मारवाड़ पर अभिपति बलराज था । (१) बलराज का पुत्र
 नामगट था । सन् ७०० से तो विजय सं० ८११ जाता है अतः उस समय इतिहास के
 अनुसार वल का राज्य होना चाहिए त्रिमने केवल २५ वर्ष राज्य किया । दालिप्यचन्द्र
 (उद्योतनसूरि) और सिद्धि में इस भाँति १२७ वर्ष का अन्तर पाता है किन्तु डा० मिरोनी
 (Dr. Mikronow) ने Bulletin de l'Académie Impériale des Sciences de St.
 Petersburg 19 में सिद्धि पर लिखते हुए चन्द्रकवता चरित्रनाम सन्मा के दो रसोंकी
 को उद्धृत किया है—
 वस्यद्रुनेयु (५१८) मिते बयें थी सिद्धापिरिदं महत् ।
 प्राक् प्राकृत्यपरिवादि चरित्र संस्कृतं व्यासात् ॥

तस्मात्प्रानार्थसंदोहाकुलतेयं कथाम् च ।
म्यूनाधिकान्ययामुक्तेर्मिथ्या पुष्कलमस्तु मे ॥

इस श्लोकों के अनुसार सिद्धिपि ने संवत् १६८८ में प्राकृत भाषा में बने हुए पूर्व के श्री जयदेवजी अरित से संस्कृत में नया अरित बनाया था । कुछ विद्वानों का मत है कि यह पुष्प संवत् है अथ १७६६ वर्ष मिला देने से १८४७ हो जाता है और यह समय १६९९ जाता है । इस भाँति सिद्धिपि के समय के विषय में विभिन्न मत प्रचलित हैं ।
और परंपरागत इतिहास भाषा १ शैलक मुनि श्री वर्धन ज्ञान, स्वामि विजय (मिपुटी महाराज) के पुष्प १६९९ में आचार्य सिद्धिपि की पुनर्परंपरा इस भाँति है—



प्रभावकरित और सिद्धिपि की प्रशस्ति के अनुसार हरिवरचरि भी सिद्धिपि के वर्ण बोल कराने वाले नुब कहलावे । सिद्धिपि हरिवरचरि रावपुणेहि पिपीड के मानजेंगी कहे जाते हैं । यदि कुवलवमाना के शैलक वासिष्ठाचिह्न (पयोत्तमचरि) ने पुर्ण स्वामी से सिद्धिपि क साथ साथ ही विद्या पढ़ी तब ये सिद्धिपि के नुब बार्द हो जाते हैं ।

देख—

- (१) देविये और साहित्य और इतिहास नागुराम श्री पुष्प ४२६
- (२) और साहित्य संगोष्ठी भाषा १ संक १ पुष्प ३४

(७) हरिमव सूरि संघषी खीयमबुस

हरिमवसूरि : जैन साहित्य संशोधक माग १ धक १ पूना में मुनि श्री जिन विजयजी वृष्ट ४४ पर लिखते हैं कि हरिमव को एक सवत् ७०० वर्षात् विक्रम संवत् ८११ ई० सं० ७५८ से दो सत्रांशिन किसी तरह नहीं मान सकते । अतः सिद्धांति के समकालीन हरिमवसूरि नहीं ठहरे । यह रूप नीचे समय सम्बन्धी बातें लिखेंगे—

(१) सिद्धांति author of उपमिश्रवप्रबंध कथ्य which he wrote in the year 962 From the fact that he tells us 3 App P 148 that हरिमव wrote his ललितविस्तर for his edification it would appear that this is the Vira date and that book was therefore written in 962 V Samvat 592, A. D 536 (Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society XLIXA. N p C. XXIX.

(२) मेस्तु नाथार्य उचित विचार बोधी में लिखा है कि वि० सं० १८१ में हरिमव सूरि का स्वर्णवास हुआ, देखिए—

पचसए पणसीए विवकमकामाप्रो भक्ति धरधमिधो ।

हरिमवसूरि सूरि भविद्याणं विसव कल्लाणं ॥

विक्रम सं० १८१ में हरिमवसूरि कभी पूर्व वस्तु हो गया । मेस्तु नाथार्य ने अपना ग्रन्थ चित्तामणि वर्ष सं० १३१० में समाप्त किया । विचार बोधि में वि० सं० १३७१ में समरसाह ने छत्रुब्ध का उद्धार किया ।

(३) मुनिबुधर सूरि ने हरिमव सूरि को मानवेवसूरि (हिंतीव) का मित्र कहा है । मानवेव का समय छठी सदी समझा जाता है । मुनिबुधर सूरि तपाबन्ध की पद्यबद्ध पुर्वावली (सं० १४६६) के लेखक हरिमव के लिए कहते हैं

अमृद् गुरु श्रीहरिमवमित्र, श्रीमानवेव पुनरेव सूरिः ।

यो मानवतो विस्मृतसूरिमित्रं, सेभेयुम्विकाम्यासपसोज्ज्वलन्ते ॥

(४) प्रभावकर सूरि ने विक्रम सं० १३३४ में प्रभावकरचरित ग्रन्थ की रचना की उसमें नवम प्रबंध हरिमवसूरि का है । उसके अनुसार हरिमव चित्तोद (देवाद) के निवासी थे और वहां के राजा के थे पुरोहित थे अतः वे ब्राह्मण थे । वाष्पिनी नायिका साध्वी के मुख से क्लोद बुन कर विचार में वह गये फिर जैन धर्म की सीखा सी । प्रभावकर चरित में सिद्धांति का ग्रन्थ आया है उसमें इनको सिद्धांति (१६२) को धर्म का बोध कराने वाला गुरु बताया है । अतः सिद्धांति से पूर्व के ग्रन्थ हैं । सिद्धांति के वे परम्परा गुरु से प्रभाव उपदेश करते होते गुरु इनके लिए जीई प्रमाण नहीं है ।

(१) हरिमन्न ने अपने पूर्व के अनेकों विद्वानों के नाम लिखे हैं, किन्तु संकराचार्य के लिए वे मौन हैं जो अपने समय के अग्र्य विद्वानों से शीघ्रतम थे। क्या हरिमन्न ऐसे योग्य व्यक्ति की अपेक्षा कर सकते थे यदि वे हरिमन्न के समय में रहे अथवा हरिमन्न उनके पीछे हुए? संकर का काव्य ७८८-८२० कहा जाता है। संकराचार्य के विचारों का सम्बन्ध या सम्बन्ध करने का बहाना तो हरिमन्न को स्वतः ही मिल जाता क्योंकि छाटीरक भाष्य के दूसरे अध्याय के द्वितीय पाद में बाबरायण के मेकस्मिन्नसम्भवात् ॥१॥ पूर्व चात्या कार्तस्वम् ॥३॥ न च पर्यायस्यविरोधो विकारविध्यम् ॥१॥ धर्मवाचकिते पञ्चमयमित्यन्वाह विद्येय ॥१॥

इन उपर्युक्त सूत्रों से संकर ने जैन धर्म के मूल धीरे मुख्य [सिद्धान्त स्याद्वाह (अनेकान्तवाद) के ऊपर धोके धसतु धाज्ये किए हैं। क्या हरिमन्न अनेकान्त धर्मपरायण के वैचारिक होते हुए संकर के लिए मौन रहते? (देखिए हरिमन्न सूरि का समय निर्णय जैन साहित्य संशोधन पृ १७) संकर के पहले मामाबाह अज्ञातावस्था में था। संकराचार्य के पुत्र बीरपाद ने ही इसकी स्थापना की थी।

(१) पट्टिनाम बम्ह की एक प्राकृत पट्टावली को देखने से ज्ञात होता है कि मुनि जनविजयजी ने 'अतुर्व स्तुतिनिर्णय संकोधार' पुस्तक में कहा है कि हरिमन्न सूरि बीरपाद के बड़े भाई दादा थे। गर्वाचार्य ने हरिमन्न को कहा कि ऐसा उपाय किया जाय जिससे सिद्धार्थ का मन जैन धर्म में स्थिर हो जाय। हरिमन्न ने तत्काल 'मनिसविस्तर' पुस्तक इसी निमित्त बनायी और फिर मूल्य को प्राप्त हो गये। मूल्य समब उस बुद्धि का गर्वाचार्य को सौंप दी यह कहते हुए कि यदि सिद्धार्थ आवे तो उसे यह पुस्तक पढ़ने के लिए दी जाय। गर्वाचार्य ने भी ऐसा ही किया सिद्धार्थ जैन धर्म में दीक्षित हो गये। इसी लिए हरिमन्न को अपना बृद्ध मानते हुए उस वनिस विस्तर के लिए कहा है 'मयर्न निमित्ता'। इससे तो ज्ञात होता है कि सिद्धार्थ से हरिमन्न का छायास्कार तो नहीं हुआ किन्तु प्रबन्ध-कोष कहता है कि सिद्धार्थ को हरिमन्न ही से दीक्षा मिली थी। गर्वमुनि का कोई सम्बन्ध ही न था।

(७) सिद्धार्थ हरिमन्न के भागिनेय (भागेय) थे ऐसा जैन श्वे० काम्पेन्द हेरुड नामवाची मासिक पत्रिका के अग १९१४ के जुलाई अक्टोबर मास के संयुक्त अंक में मुबयरी में उपानन्द की अपूर्व पट्टावली है उसमें हरिमन्न का वर्णन किया गया है।

(८) हरिमन्न सूरि के ग्रन्थों में जिन शार्ङ्गिकों और शास्त्रकारों के नाम आये हैं उन्हें भी पाठक देखें तो ज्ञात समझ में आ जायगी।

भर्तृहरि—वैयाकरण कुमारिल मीमांसक दिङ्नामाचार्य, पर्यकीर्ति, धर्मपाल, सिद्धसेन दिवाकर, जिनवास महार, जिनमगणी सयन्तनर कुमारिल का समय व भी छठावली का पूर्वार्ध मान लिया जाय तो हरिमन्न का समय भी क्या वही मान लें? कुवलयमाला (७७८ ई) में हरिमन्न का नाम आया है।

(९) कुवलयमाला के लेखक ज्योतिषसूरि उपनाम-वासिष्णुविद्वत् स्वर्ग हरिमन्न के एक श्रुति के साक्षात् सिध्य थे। वासिष्णुविद्वत् ने अपने को उत्तापरिषदा भी सिध्य परंपरा से संबन्धित से बताया है। वासिष्णुविद्वत् का समय कुवलयमाला के अनुसार ७७८ ई है।

(१०) जैन परंपराओं इतिहास भाग १ (त्रिपुटी महाराज द्वारा लिखित) में भी हरिमन्न सूरि की जीवनी व तिर्थाभिर्गम की बातें बखाने को प्राप्त हुई। इसके अनुसार ये हरिमन्न या हरिमन्न भट्ट अग्निहोत्री ब्राह्मण बिर्तीड़ के राजा जिठारि के पुरोहित थे। जैन साध्वी के जीवन वस्तोक से प्रभावित होकर आचार्य जिनदत्त सूरि के पास गये और उनके शिष्य बन गये। साध्वी साकिनी महाराज को जब ये माता स्वयं में भजने लगे। इनके हंस और परमहंस दो भानवे थे जो आगे चल कर इनके शिष्य हो गये। इस मारा मया या किन्तु परमहंस सूरपाल राजा की धारण में जाकर रहने लगे। सूरपाल ने बौद्धों को धार्मिक में पराजित किया। किन्तु कबावली में हरिमन्न के लिए निवास है कि हरिमन्न सूरि निर्ममूर्ति नामक ब्रह्मपुरी के निवासी थे। उनके पिता का नाम धरर भट्ट और माता गंगा नाम की थी। वे साकिनी साध्वी द्वारा जिनदत्त या जिनमन्न के निकट पहुँचे। आचार्य हरिमन्न जिनमन्न और बीरमन्न के शिष्य थे। बीरमन्न घाठवीं घाटी के बहुभुत आचार्य उद्योतनसूरि के समय के थे। जिनमन्न बीरमन्न के भाचा (पितृपुत्र) थे किन्तु जिनमन्न और बीरमन्न हरिमन्न के शिष्य थे (देखिये—अनेकान्त भाग १६४० में हरिमन्न सूरि लेख)

आचार्य हरिमन्न सूरि धरम ही वि० सं० ७८३ के लगभग रहे हैं क्योंकि बौद्धाचार्य जनेकीरि, खैराबाद मनु हरि तथा कुमारिल भट्ट आदि भी बिष्णु की घाठवीं घाटी के बिहान् ये जिनका हरिमन्न सूरि के बंधों में जलैल स्पष्ट है। इससे स्पष्ट है कि हरिमन्न सूरि उनके पीछे हुए। जिनमन्न के ये बिष्णुशिष्य थे किन्तु जिनदत्त से इन्होंने दीक्षा ली थी: दीक्षा-शिष्य हुए। बालिष्वाबिहान (उद्योतनसूरि) वि० सं० ८३२ में कुबलपमाना की प्रशस्ति में लिखते हैं कि बीरमन्नसूरि मेरे सिद्धान्त-गुरु थे तथा हरिमन्न न्यायसास्त्र के। सिद्धि भी हरिमन्न का गुरु मान रहे हैं।

हरिमन्न के निधन में इतना सब कुछ कह देने के परचात् हमको केवल एक सफा उत्पन्न होती है। हरिमन्नभट्ट जो अग्निहोत्री ब्राह्मण हैं और जिन्होंने ब्रह्मवस्था में साकिनी साध्वी के वस्तोक को नुनकर जैनधर्म में दीक्षित होना चाहा था, बिर्तीड़ के राजा जिठारि के राजपुरोहित थे। बिर्तीड़ के इतिहास में जिठारि राज बखाने को नहीं मिला। हाँ, जैन परंपराओं इतिहास भाग १ में त्रिपुटी महाराज पृष्ठ ४४१ पर लिखते हैं कि तुरमनी नगरी में जो पम्बईया बहमाली की आचार्य कालक का भावज दत्त राजा हुआ। आचार्य की भविष्यवाणी का प्रभाव उस समय के जिठारि आदि बहुत है राजाओं पर पड़ा। भविष्यवाणी की घटना बीर सं० ६२० की है। राज पुरवों ने दत्त की बार कर जिठारि को राजा बना दिया। इसके परचात् तुरमनी नगरी तोरपाल के हाथ में आ गई। तुरमनी का वास्तविक नाम पम्बईया है। मिहिरकुल तोरपाल जैनधर्म का प्रवी या जिसने आचार्य कालक और आचार्य हरिगुप्तसूरि को गुरु-रूप में माना। इससे स्पष्ट है कि हरिमन्न सूरि के समय के ये राजा जिठारि नहीं थे। क्योंकि न तो समय का हो नस पाया है और न उनका नाम ही है। उस समय में तो हरिगुप्तसूरि धरम थे। तब ये जिठारि बिर्तीड़ बाने महापणा ही हो सकते हैं जिनका स्पष्टीकरण आगे हरिमन्न के जीवनवृत्तमार्ग में ही किया जायगा।

इससे स्पष्ट है हरिमन्न सूरि घाठवीं घाणाध्वी के पूर्वार्ध तक तो धरम रहे होंगे।

हरिमन्न सूरि के जीवनवृत्त का सार—

बिर्ताङ्गण्ड एक प्राचीन प्रसिद्ध पुर्ब है जहाँ पर मौर्य बंध के पश्चात् गुहिलवंश धिरोमणि बापा रावल ने दीर्घकाल तक राज्य किया। कहा जाता है जनराज बाबड़ा की बहिन का विवाह इसी बापा रावल से हुआ था। जिस समय हरिमन्न सूरि बिर्ताङ्ग में थे राजा बिर्ताङ्ग वहाँ के शासक थे। हरिमन्न सूरि उसी राजा के राजपुत्रोद्दिष्ट थे, परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि हरिमन्न सूरि का जन्म ब्राह्मण-कुल में श्रीहरमण्ड के यहाँ गर्मा के गर्भ से हुआ था। यह बिर्ताङ्ग राजा कीनसा था इतिहास इसके उत्तर में मौन है। हो सकता है कि बिर्ताङ्ग महापद्म का उपनाम हो। अपराधित को ही बिर्ताङ्ग की संज्ञा दी दी गई हो जो बापा रावल के पश्चात् राज्यसिंहासनावृत्त हुए अथवा बापा रावल ने कितने ही अनुष्ठानों को भीता मौर बिर्ताङ्ग पर अधिकार करके राज्य करना श्राव्य कर दिया, परन्तु इसी बापा रावल का नाम बिर्ताङ्ग रख दिया गया हो। कर्नल टाड के अनुसार इस बापा रावल ने बिर्ताङ्ग के मोरी (मोरिया) राजा को केवल १४ वर्ष की आयु में पराजित किया था। सन् ७२८ ई० में मोरी राजा को हराया इस तथि गुहिल बंध की नींव मेवाड़ में (७१४-१४) ७२८ ई० में पड़ी। बापा ने बिर्ताङ्ग को विजय करने के पश्चात् ही सीराष्ट्र की ओर प्रस्थान किया जहाँ पर अजयपुराटन के वसुधाल वाले जनराज बाबड़ा की बहिन से विवाह किया था जिससे अपराधित का जन्म हुआ। इसी अपराधित के दो पुत्र हुए जिनमें मोर और गन्धकुमार। अजयपुराटन के पश्चात् कुमार सिंहासनावृत्त हुए। इस तथि हम देखते हैं कि कुमार के समय सन् ७६६ तक तो बिर्ताङ्ग नाम वाला बिर्ताङ्ग का कोई शासक न था। कुम्भलगमाता के अनुसार हरिमन्नसूरि के पुत्र राक्षसबिहारी का समय सन् ७७५ ई० है। इसी कुम्भलगमाता (७७५ ई०) में हरिमन्नसूरि का नाम है परन्तु हरिमन्नसूरि ७७५ ई० के पीछे न रहे कर माने हो रहे होंगे। कर्नल टाड बापा रावल को ७६४ ई० में ईरान की ओर जाने का संकेत कर रहे हैं और लिखते हैं कि बापा रावल की आयु दीर्घ रही है। जो वर्ष से किसी घटना में ग्युम न की किन्तु इन्होंने संस्था से विवाह का और तब अपराधित राजा हुआ। परन्तु हो सकता है हरिमन्नसूरि बापा रावल व अपराधित के समय में अवस्थ रहे हों। जनराज बाबड़ा भी उसी समय में विद्यमान था। जनराज बाबड़ा ने १०६ वर्ष ९ महीने और २१ दिन की आयु प्राप्त की थी। इस तथि प्रबन्धविज्ञानमणि के अनुसार सन् ८०९ (सन् ७४२ ई०) तक जनराज जीवित रहे थे।

हरिमन्नसूरि कदाचित् बुढावस्था में जैन साधु हो गए और अन्तिम समय में बुढावस्था की राजधानी भीनमाल में रहते लग गये थे। वहाँ पर वे अष्टोत्तन के धिता-भुक्त रहे। कम्पाय विनयजी के अनुसार हरिमन्नसूरि ने पोरवाल (प्राणवाट) जाति को जैनधर्म में दीक्षित किया था। वे हरिमन्न विद्यानरक्षक की छाया से सम्बन्धित थे। इन्होंने भारत भर में भ्रमण किया था। जिनमन्न सूरि से इन्होंने जैन धर्म की सीखा ली थी। इस बात की प्रेरणा उन्हें बिर्ताङ्ग में रहते हुए पाकिनी साम्बा के समीप की सुनकर हुई थी।

सिद्धार्थ महाकवि पाप के पितृव्यपुत्र थे। कहा जाता है कि सिद्धार्थ हरिमन्नसूरि के भैम ()) थे। (सिद्धार्थ जैन स्वताम्बर कान्ठेन्त हैरुद मातिक बमिका धर्

१८१२ जुलाई-अक्टोबर संयुक्त ग्रंथ 'मुमताज़ी' में तपाकख़ की धूर्त पट्टाबत्ती जिसमें हरिमद्र का वर्णन किया गया है) : सिद्धांत से हरिमद्र बहुत बड़े से इसमें कोई संदेह नहीं है। यदि सिद्धांत हरिमद्रसूरि के भागने से जो चित्तीड़ के राजा के पुरोहित ने तो कोई संदेह नहीं कि महाकवि माध के भाषा शुभकर का विवाह चित्तीड़गढ़ हुआ था। परंतु यह तब है कि महाकवि माध का आवासनमन चित्तीड़ में रहा हो। हरिमद्रसूरि अपने अन्तिम समय में अपने बहनों शुभकर के यहाँ बसवा किसी जैन व्याख्य में (क्योंकि जीवनमाल जीवनमं का गढ़ था) रहने लग गये होंगे।

इस भाँति हम देखते हैं कि महाकवि माध का चित्तीड़ नगरी से पूर्ण सम्पर्क था। चित्तीड़ के भोज से भी इसी भाँति सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

उक्त समय के मुन-अखान जैन साहित्यकार हरिमद्र सूरि ही से जिन्होंने २६ शब्दों की रचना की थी।

(८) बप्पमट्टिसूरिचरित (सन् ७४३ से ८३८ ई०)

प्रभावकचरित में ११वीं प्रबन्ध 'बप्पमट्टिसूरिचरितम्' है। बप्पमट्टि का जन्म तथा उनकी मृत्यु कीन से संवत् में हुई, इसका प्रमाण प्रबन्ध का यह अंतिम श्लोक है—

विष्णुमतं धूम्यद्वयवसुधर्षे (८००) भावपदतृतीयामाम् ।

रविचारे हस्तर्षे जन्माभूव बप्पमट्टिगुरो ॥ ७३६ ॥

पद्मवर्षस्य व्रतं चैकादशे वर्षे च सूरिता ।

पञ्चाविकनवत्या च प्रभोराघु समयितम् ॥ ७४० ॥

धरजन्दसिद्धिवर्षे (८६५) नमः शुद्धाष्टमीदिने ।

स्वातिमेज्वनि पंचत्वारिंशत्समराजगुरोरिह ॥ ७४१ ॥

उपर्युक्त से स्पष्ट ही विरित होता है कि बप्पमट्टि का जन्म विक्रमी संवत् ८०० में हुआ था और ८६५ वर्ष की एक जन्मी आयु प्राप्त करके संवत् ८६५ में इसका देहावसान हुआ था। इससे ही हम इस तथ्य पर आ जाते हैं कि बप्पमट्टि धारिबराह प्रतिहार मौर्य के समसामयिक प्रबन्ध थे। मिहिरभोज (धारिबराह उपनामवासी) जब सिंहासनाब्द हुए उस समय वे पूरा युवक थे। उन्होंने सन् ८१२ से सन् ८८३ तक राज्य किया था। उत्तरराम चरित के रचयिता महाकवि भवभूति के विषय में आगे लिखते हुए हमने बताया है कि बप्पमट्टि से भवभूति का साक्षात्कार हुआ था और बप्पमट्टि ने भवभूति को जैन धर्म में दीक्षित करने की चेष्टा की थी। भवभूति बसोबर्मा के समय में जी थे। बसोबर्मा के समय में वाकपतिराज जिन्होंने बौद्धबोध सिखा है, राजा-पंडित थे और इन्हीं के साथ भवभूति का भी नामोस्मरण है। प्रभावकचरित के पढ़ने से भी ज्ञात होता है कि काम्यकुम्भ के राजा बसोबर्मा मौर्य-कुलधूषण के दो परितोषी थीं। बसोबर्मा की एक स्त्री बर्मावस्था में अपनी छोट के मरुतर से बल में हजर-हजर भटकती रही। एक दिन अपने लवजात शिशु के साथ भ्रमण करती राजा बसोबर्मा की वह कुटुम्बिनी भद्रकीर्ति जैन मुनि द्वारा बेल ली गई। भद्रकीर्ति की ने उस स्त्री से समस्त कुलात्त जानकर उसको अपने धाम में रहने के लिए आश्रय दिया वहाँ पर लवजात शिशु 'धाम' नाम से पोषित होकर बढ़ता हुआ सब आत्माओं में निपुण होता गया। किसी कारणवश जब सपत्नी का देहोत्त हो गया तब राजा बसोबर्मा ने वहाँ डाक भेजी सोई हुई पत्नी को बुझाया। राजा को सूचना प्राप्त हुई कि भद्रकीर्ति के धाम में वह अपने पुत्र-सहित रह रही है तब वह राजप्रासाद को लाई गई। बप्पमट्टि भद्रकीर्ति का शिष्य था और 'धाम' का छोटा बालसखा था। धाम के राजनर कोटने पर धाम में जाते समय कहा था—'बप्पमट्टे ! प्रहास्यामि प्राप्त तव राजर्ष भूवम्' (देखिये बप्पमट्टिसूरिचरितम् का ७३६वाँ श्लोक)। धाम के राजसिंहासनाब्द होने पर बप्पमट्टि वरम धार के साथ राज्य में बुलाया गया। श्री सिद्धसेन मुनि भी साथ थे। वे जिनमग तथा हरिभद्र के समकालीन थे (देखिये जैन परंपरानो इतिहास)।

बप्पमट्टि ने ब्रिजम सबत् ८११ में जब मुरि-पद्म प्राप्त किया था उस समय उनकी आयु कैवल्य ११ वर्ष की ही थी। उन्होंने पर्याप्त भ्रमण किया था। गौडदेश की ओर भी वे गये वहाँ पर राज्य-कवि वाकपतिराज ने इनका सत्कार किया था। गौडदेश का राजा उस समय राजा वर्म था। बप्पमट्टि की बाद-विचार संबंधिनी भार्ता गौडदेश में हुई। क्षात्रार्थ प्रयासी जब समय बड़ी ओरों पर थी यह 'बप्पमट्टिगुणचरितम्' से स्पष्ट है। कान्यकुब्ज में बप्पमट्टि और वाकपतिराज साव-साय भी रहे थे इसका प्रमाण देखिये—

मघोवर्मन्पुो भर्ममख्यदा बाम्पयेणयत् ।
तस्मात् द्विगुणतन्त्रस्तं भूप युद्धेऽवपीड बसी ॥
तदा वाकपतिराजवत् बदे तेन निवेशित ।
काम्यं गौडवर्षं कृत्वा तस्माज्ज स्वममोचयत् ॥
कान्यकुब्जे समागत्य संगतो बप्पमट्टिना ।
स राजसद सदोतस्तुष्टुवे चेति भूपतिम् ॥

इन्हीं बप्पमट्टि के समय राजा भोज भी हो चुका है जो रामराजा का पुत्र और दुन्दुक का पुत्र था। माय राजा के दुन्दुक नाम वाला पुत्र था। दुन्दुक के भोज नामवाले राजा हुआ। दुन्दुक कन्द्या नामवाली बच्चा में इतना घासकत था कि वह अपने पुत्र भोज को बेत्या के सिपाने से मार डालना चाहता था। समय पाकर भोज ने कटिका बेत्या के साथ बैठे हुए उस दुन्दुक को बेत्या-बहित सस्त्र के साथ से मार डाला। भोज ने फिर अनेक राज्यों को अपने में मिला कर राजा भाम से भी अधिक जैनधर्म की उन्नति की। इन बप्पमट्टि मुरि की मृत्यु वि० सं० ८८२ में हो चुकी थी जब दुन्दुक कीवित था। बप्पमट्टि के दिव्य मा० मोरिसमुरि को ग्वाभियर का राजा मिहिर भोज दुर्ग-रूप से माभता था (देखिये जी० प० इ० पृ० २१४) ।

विहारा के अनुसार यद्योवर्मा मुक्तवापीड ललितारिरय के द्वारा ७१९ और ७२७ ई० के मध्य मार डाला गया था। वाकपतिराज और भवभूति उस राजा के सहाय-कवि थे। हमने ऊपर बता दिया है कि वाकपतिराज और बप्पमट्टि समसामयिक थे अतः भवभूति और बप्पमट्टि भी समसामयिक हों तो कोई संदेह नहीं है। 'भवभूति' पुस्तिका के मेलक का कहना समर्थ ही था कि बप्पमट्टि ने भवभूति को जैन धर्म में रोहित होने के लिए बाध्य किया था जब भवभूति ब्यास की ओर गये थे। बप्पमट्टि गौड देश में पर्याप्त दिन रहे थे।

R. Sathianthaler in his history—A political and cultural History Vol. I to A. D. 1200 में लिखते हैं, "Literature mentions Ama, a Jain and Dunduka a reprobate murdered by his son Bhoj as a successor of Yasovarmā, but their histrocity is not clear"

बप्पमट्टि के उर्ध्वपुत्र कथन से यह निष्कर्ष निकला कि बप्पमट्टि के समय में जैन धर्म का विस्तार बढ़ता जा रहा था। सिद्धि के लेश से भी यह बात प्रमाणित है।

(८) बप्पमट्टिसूरिचरित (सन् ७४३ से ८३८ ई०)

प्रभावकचरित में ११वीं प्रबन्ध 'बप्पमट्टिसूरिचरितम्' है। बप्पमट्टि का जन्म तथा उसकी मृत्यु कौन से संवत् में हुई, इसका प्रमाण प्रबन्ध का यह अंतिम श्लोक है—

विक्रमतं सून्यद्वयवसुवर्षे (८००) भाद्रपदतृतीयायाम् ।

रविवारे हस्तक्षे बग्माभूत् बप्पमट्टिगुरो ॥ ७३६ ॥

पञ्चवर्षस्य व्रत कैकादसे वर्षे च सूरिता ।

पञ्चाधिकनवत्या च प्रमोरायु समर्पितम् ॥ ७४० ॥

शरानन्दसिद्धिवर्षे (८१५) नभं सुखाट्टमीदिने ।

स्वातिमेऽग्नि पंचत्त्वमामराजगुरोरेहि ॥ ७४१ ॥

उपर्वुक्त से स्पष्ट ही विदित होता है कि बप्पमट्टि का जन्म विक्रमी संवत् ८०० में हुआ था और १५ वर्ष की एक लम्बी आयु प्राप्त करके संवत् ८१५ में इनका वैशाखसप्तमी हुआ था। इससे तो हम इस तथ्य पर आ जाते हैं कि बप्पमट्टि धार्मिकराज प्रतिहार भोज के समसामयिक अवधम थे। मिहिरभोज (धार्मिकराज सपनामवारी) जब सिंहासनाब्द हुए उस समय वे पूरा युवक थे। उन्होंने सन् ८१५ से सन् ८८५ तक राज्य किया था। उत्तरराम चरित के रचयिता महाकवि भवभूति के विषय में आगे लिखते हुए हमने बताया है कि बप्पमट्टि से भवभूति का साक्षात्कार हुआ था और बप्पमट्टि ने भवभूति को जैन धर्म में दीक्षित करने की चेष्टा की थी। भवभूति यशोधर्मा के समय में भी थे। यशोधर्मा के समय में वाक्पतिराज जिन्होंने गीतगोविन्द लिखा है, समा-वर्धित वे और इन्हीं के साथ भवभूति का भी नामोत्प्रेषण है। प्रभावकचरित के पढ़ने से भी बात होती है कि काम्यकुण्ड के राजा यशोधर्मा भीम-कुलभूषण के दो परियोगी थीं। यशोधर्मा की एक स्त्री परमावस्था में अपनी छीट के मस्तर से बग में हजर-बजर मटकरी रखी। एक दिन अपने नवजात शिशु के साथ भ्रमण करती राजा यशोधर्मा की यह कुटुम्बिनी भद्रकीर्ति जैन मुनि द्वारा देख ली गई। भद्रकीर्ति भी वे उस स्त्री से समस्त वृत्तांत जानकर उसको अपने धाम में रखने के लिए धामय दिया जहाँ पर नवजात शिशु 'धाम' नाम से पोषित होकर बढ़ता हुआ सब आत्माओं में विपुल होता गया। किसी कारणवश जब सपत्नी का देहांत हो गया तब राजा यशोधर्मा ने इतों द्वारा अपनी छोटी लकी को सूझवाया। राजा को शूचना प्राप्त हुई कि भद्रकीर्ति के धाम में वह अपने पुत्र-सहित रह रही है तब वह राज्यप्राप्ति के लालच में। बप्पमट्टि भद्रकीर्ति का शिष्य था और 'धाम' का छोटा नामसखा था। धाम के राज्यपर सीटने पर धाम ने जाते समय कहा था—बप्पमट्टे ! प्रशस्वामि प्राप्त तव राज्यं भूवम् ।' (इसिये बप्पमट्टिसूरिचरितम् का ७३वीं श्लोक)। धाम के राज्यसिंहासनाब्द होने पर बप्पमट्टि परम धार के साथ राज्य में बुलावाया गया। श्री सिद्धसेन मुनि भी साथ थे। वे त्रिपन्न तथा हरिभद्र के समकालीन थे (इसिये जैन परंपराओं इतिहास)।

(६) जनराज चावड़ा से संबंधित ऐतिहासिक तथ्य

प्रबन्धचिन्तामणि में 'जनराज' का प्रबन्ध आता है। पाठकों की सुविधा के लिए हम उसे अधिकृत रूप से यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

'तस्य काम्यदुष्कर्मस्वीकृतेषु पुनरुत्थरिणी तस्यां पुनरुत्थरिणी बड़ीयाराभिधानसे पंचा सराये जातोत्पन्नस्य भोजिकासंस्थ आसकर्मण (जाण) नाम्नि वृद्धे निवास तन्माष्टेन्यनय चिनोति । प्रस्तावास्तन्माष्टेन्याचार्ये दीर्घीसमुपासुरिनामनिरवराह्णेऽपि तस्य वृद्धस्य छायां नमन्तीमासोय भोजिकास्थितस्य तस्यैव कामकस्य दुष्प्रभावोऽप्यमिति विमुदय जिनसासनप्रभाव कोऽयं भावीत्याद्यया वृत्तिदानपूर्वं तन्मातुः पारवर्षी बालो अग्रहे । श्रीमतीवर्जिन्या स दास परिपात्यमानो मुर्छितवर्तमानराजाभिधानोऽप्यमिति देवपूजाविनायकारिणां मृपकानां रक्षा यिकारे निपुणः । स तान् बाधेन निधनम् मुचमितिपिबोऽपि अनुबोधायताम्यास्तमेवं जयी । तस्य जातक राजपौवमवधार्यां महानपतिरेव भावीति निर्णय स तन्मातुः पुनः प्रत्यपितः । माता तमं कस्यामपि पवित्रयुगो स्वमानुस्य श्रीरवराहर्तमानस्य (सम्मानपात्रतां प्राप्तां जनपरस्यान्तरास्तिउपौष्यवृत्तिनिराधामसाधारकः ?) सर्वत्र घाटीप्रपातमन्दरेत् ।

कदाचित् काकरागमे आशपातनपूर्वं कस्यापि व्यवहारिणो वृद्धे जनं मुत्तम् दधिभाण्डे करे पतिते इत्यत्र भुक्तोऽग्रहमिति विचिन्त्य तत्सर्वस्वं तत्रैव मुक्त्वा विनिर्जयो । परदिमन्महनि तद्बहिम्या श्रीदेव्या निधि मुत्तमुरया सहोदरवारसस्यादावुत्तः । वृष्टः — "कचं मद्वृद्धे प्रविरय सर्वघारं (वृहीरवा) त्वया पुनरेव भुक्तम् ?" ततोक्त—

कह नाम तस्य पाव चित्तिग्रहं हि कोवन्मि ।

सप्यमदसमुकुमानो जस्य परे अस्मिणो हृत्यो ॥

चापि तद्वचनमाकर्ण्य तत्परिणय जगतृता श्रीजनवत्सलानादिकमुपकारं चकार । मनः पट्टान्तिके भवार्थक भगिन्या तिसर्क विषयमिति प्रतिपेदे ।

प्रबन्धचिन्तामणिसरे तस्य अटवृत्त्या वर्तमानस्य श्रीरः बचाप्यरम्भप्रदेश वडो काम्या निधानो वनिक सं श्रीरजय वृष्ट्या स्वबालपंचकमय्याद्वाणद्वयं यंत्रंस्ते वृष्ट इति माह— "मन्त्रितपात्रिकं काम्यं विफलजितयुक्ते तदुक्तं जलवेधं बाधेनादृत्य सः परितुष्टैरात्मना नह पीततण्डोषविषाचपाहृतेन श्रीजनपत्रेन" "जन पट्टाभिवेके त्वं महामासो भावीत्यादिरय विवृष्टः ।

अथ काम्यदुष्कारापातार्पणंयुनेन तद्देसरारं मुताया भीमहृपकायिबानाया कबुद्ध सम्बन्धे पितृप्रदत्तपुनरुत्थरिणीयाहृयनहेतवे समागतेन वैस्त्वमुत्तराजामिपानयचके । पाण्ड्यो पावर्देसमुत्तराह्णे अनुविद्यतिव्याम् पावचकम्पसतातेजीजातवारचतुःसहस्रसरयानुरं

तिरुवि महाकवि माय का जनेर भाई का । बप्पमट्टि के समय भवभूति घोर गीदबहो के रचयिता वावपतिराज विद्यमान थे । बप्पमट्टि सं० ७४१ ई० से ७३८ ई० तक विद्यमान थे वैसे प्रबन्ध के श्लोक से ज्ञात होता है । भवभूति का भी लगभग यही समय था बल्कि इस से भी प्राये का हो सकता है क्योंकि बप्पमट्टि भवभूति से प्रायः अधिक थे । बप्पमट्टि के समय में बाद-विवाद (घास्नार्थ) हुआ ही करते थे ।

बप्पमट्टसूरिपरिचय से प्राप्त तथ्यों द्वारा कुछ अन्य बातों का मेस—

(१) बप्पमट्टि मन्त्रकीर्ति के शिष्य थे । मन्त्रकीर्ति के धामन में यलोजर्मा की स्त्री से धाम राजा की जन्म दिया । बप्पमट्टि घोर धाम राजा इस मूर्ति वास्तवका थे । धाम राजा के पुत्र कुम्भुळ वेम्मागामी थे । कुम्भुळ के पुत्र प्रतिहार भोज थे । इन्हीं भोज के पुत्र धाम० वीरिवसूरि थे जो बप्पमट्टि के शिष्य थे । बप्पमट्टि ने १५ वर्ष की एक लम्बी आयु प्राप्त की थी । बप्पमट्टि इस मूर्ति यलोजर्मा और प्रतिहार भोज के समय में प्रवृत्त थे । यलोजर्मा के समय में 'गीदबहो' के रचयिता वावपतिराज इतिहासों के अनुसार मारे ही हैं और भवभूति यलोजर्मा के समय में थे । भवभूति से बप्पमट्टि का सम्बन्धकार हुआ है । बप्पमट्टि उस समय बसि कुछ थे । भवभूति का इस मूर्ति भोज के समय में होना प्रामाण्यपूर्ण है (स्मरण रखना है कि प्रतिहार राजा के पुत्र महेन्द्रपाल और महेन्द्रपाल के भी पुत्र महीपाल के संस्कृत-साहित्य के विद्वान् राजकीयर भुव थे । इन्हीं राजकीयर के समकालीन तीसरे कालिदास 'मदनमूला परिमल कालिदास' थे जो परमार राजा भोज के पिता सिंजुन, विक्रम के समकालीन थे । इन्हीं मन्त्रकार रसमय—'नवधाम्नाकरित' काव्य लिखा है ।) संभवतः यह बड़े कालिदास थे जिनका भवभूति के साथ सम्बन्ध हुआ है ।

(२) बप्पमट्टि की आयु लंबी थी । पीछे के लेखों में हमने कहा है कि तिरुवि हरिचर सूरि उद्योतवसूरि ने भी एक लंबी आयु प्राप्त की थी । आगे के लेखों में बताया गया है कि बनराज चावड़ा बापारावण प्रतिहार भोज प्रादि नरेशों ने भी अच्छी आयु प्राप्त की थी; फिर ऐसी समस्या में यदि वावपतिराज भवभूति भोज माय तथा मदनमूला परिमल कालिदास ने एक अच्छी आयु प्राप्त करते हुए साहित्यिक नवीन विमोद में जागते हुए, प्रबन्ध समय निकाला हो तो कोई आश्चर्य नहीं । मदनमूला की पूर्ण आयु वयोवृद्धि मात्र के अनुसार १३० वर्ष की होती है । बनराज १०६ वर्ष और बापा रावण जी १०० से ऊपर ही होकर विद्यमान हुए तब उन कवियों का होना भी संभव है । (वेदिये हिन्दुस्तान २५ नवम्बर सन् १९३३ की दम्बुराम विद्यासागर का 'तीन कालिदास शीर्षक लेख')

(३) उस समय जैन धर्म का प्रचार बीरों पर था ।

स्वमुन्वरी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो धाये जास कर बनराज के नाम से विख्यात हुआ । बनराज के माता-पिता के विषय में कुछ धन्य बातें भी प्रचलित हैं । एक के अनुसार उनका जन्म सम्भासर गाँव में चामुण्ड या चापोटक बंस की एक परित्यक्ता स्त्री के गर्म से हुआ । कुछ का कहना है गुर्जरदेश (काव्यकुञ्ज का भाग) में बिहार जिले के पंचासर गाँव में एक माता अपने बच्चे को बन वृक्ष के नीचे कपड़े के झुले में रखकर लकड़ियाँ चुनने लगी ।

कुछ भी हो इस सब बातों से बनराज का सम्बन्ध पंचासर से अवश्य है । बनराज के विषय में कुछ भी बातें प्रचलित हों, किन्तु यह तो सब ही स्वीकार करेंगे कि उन्होंने भाककड़ साहब धरिये के पुत्र चणहिस्स के कहने पर वहाँ एक नगर बसाया और इस तरह वे धन हिमसाढ़ा राज्य के संस्थापक हुए । यह मानव काव्यकुञ्ज साभार्य के सैनिक होकर और एक पहाड़ी मार्ग में मुराट्ट नामक कर एकत्र करने वाले को जब वह मुजरात से ६ मास के राजस्व के २४ लाख सोने के गिन्के और तेजा चाति के चार हजार बोड़े लेकर राजधानी को लौट रहा था मारकर प्राप्त किया था ।^१

बनराज ने ११ वर्ष राज्य किया और १०१ वर्ष की आयु में स्वर्गारोहण किया । उनके राज्य की सीमा कहाँ तक थी, कुछ भी सात नहीं होता । उसकी गद्दी पर योगराज बैठा जिसने १० वर्ष से भी अधिक राज्य किया । चाव वंस के ८ राजाओं ने ११० वर्षों ११६ वर्ष तक राज्य किया । आठवें राजा भूवमड या भूमूत के पश्चात् उनकी बहिन के पुत्र चामु कर्बरीय गद्दी पर बैठे ।

(१) वैदिके प्रादु-सहित प्रतिवेदन का सारांश, राज्य-मुद्रालय, जयपुर

यमान् पृथीत्वा पुनः स्वदेशं प्रति प्रस्थितं पञ्चकुलं सीतापट्टाभिषागघाटे वनराजो निहत्वा कस्मिन्नुपि वननिर्गुणे तत्रावमयाद्वर्षं यावत्पुष्टधूरया तस्थी ।

अथ निजराज्याभिषेकस्य राजधानीनपरनिवेशाधिकीं धुरां भूमिमन्मोकमानं पीपतु पातहागपाश्यां सुकनिपञ्चेन भाक्याहमावहमुतेनागहिम्सनाम्ना पुष्ट—“किमबलोक्ष्यते” “नगरनिवेशयोम्या दूरं भूमिरवलोक्ष्यते इति तैः प्रजानैरभिहिते” अत्र तस्य नगरनिवेशस्य मानां वक्ष्यते तस्मात् “सुवपावेशयामी” त्प्राप्तिकाय प्राप्तियुक्तसमीपे गत्वा यावतीं भुवं छद्यन्मन्मन्वा प्राप्तिपत्त्यावतीं भुवं दर्शयामास । तत्र प्रवेशे अगपहिम्सपुरमिति नाम्ना नगरं निवेशयामास ।

८०२ इवमिकाप्टतत्सर्वस्वरे (ए० बी० संवत् ८२ वर्षे वैशाखसुदि २ सोमे) श्री बिज्जमार्हतस्तस्य काचित्तोर्मिं यवजगृहं कारयित्वा राज्य्याभिषेकस्थाने काराग्रामवास्तव्यां तां प्रतिपत्तमभिनीं विपारेषीमाहूय तथा कृतकिलकं धीवनराजो राज्य्याभिषेकं पंचाशद्वर्षेभ्यः काव्यमास । स काम्याभिषानो वसिन् महामात्यश्चक्रे । पंचाशदग्रामस्य श्री धीनगुप्तसूरीन् समस्तिकमानां यवजगृहे निजनिहासने निवेश्य कृतकगृहमगितया सप्ताभिमपि राज्यं तस्य समपबंस्तं निस्तूहैर्नृपोद्भूतो निपिखस्तस्यस्त्रुपकारुद्भूया तवारेषाञ्छीपाश्वर्कनावप्रतिमानाहूय पंचाशदाभिषानं धैत्यं निजाराजकमुत्तिसमेतं च कारयामास तथा यवजगृहे कष्टेवतीं प्रासादश्च कारित ।

“दुर्बराधामिदं राज्यं वनराजाद्यमुरपि जैतैस्तु स्थापितं मन्त्रैस्तुष्टीपी नैवतमहि ॥”

संवत् ८०२ पूर्वनिकस्य वर्ष १२ मास २ दिन २१ बीचनराजैव राज्यं कृतम् । अ वनराजस्य सर्वापूर्वमे १०१ मास ९ दिन २१ ।

प्रजगर्वादितामपि मे जो खेड है उसके प्रतिरिक्त श्री वनराज के विषय में जो बातें भी गई हैं वे ये हैं—

धनहिलपुर के संस्थापक वनराज जावड़ा हैं । इनके पिता की जागीर पहले पंचासर में थी । जीवनमात्र बहवान् धीर पंचासर में जावड़ों का राज्य था किन्तु उनका कोई परस्पर सम्बन्ध ही ऐसी निष्प्रकारमक बात थाज तक न ही रही । धनहिलपुर के संस्थापक वनराज भी वहीं के मूल पुत्र्य भी हैं स्वयं कोई राजपुत्र्य के अथवा किसी राज्य के उत्तराधिकारी से प्रमाण के रूप में कुछ नहीं कह सकते । जब उन्होंने धनहिलपुर बसाया तब वह प्रदेश त्रिजगमास या कम्भीर के अधीन था । कहा जाता है कि वनराज भी वही के राजा की सेना में सैनिक थे । उन्होंने विद्रोह किया कर-बाहक को लूटा धीर लूट के वन से अपने रहने के लिए एक नया ग्राम बसाया जिसकी एक दूसरे के बंध बालों में छीन लिया धीर उसको अपनी राजधानी बनाया । कुप्यकवि की रत्नमाला में पंचासर को जावड़ा राजा बयसेहर का वर्णन पाया है । इसके अनुसार बयसेहर पर कम्भीर कटक के मुपाद् ने वि० सं० ७२२ (१२९ ई०) में आक्रमण किया था । आक्रमणकारियों ने पंचासर को घेर लिया वह घेरा १२ दिन तक रहा । बयसेहर ने देखा कि वह अधिक दिन तक धनु-सेना वा मायना नहीं कर सकेगा तो अपने अपनी पत्नी बती रानी कपलुम्पी की लगे भाई गुरप्राप्त के साथ जो सेनापति भी था निकट के ही घरस्थ में पहुँचा दिया । फिर बयसेहर युद्ध में भीरपति की प्राप्त हुआ । वन में

जो बिष्णु के साथ ब्याह हो गई। जैसे ही वह अपने स्वामी तथा दूसरे देवताओं के साथ जा रही थी वे सब एक स्थान पर ठहर गए। भीम में स्नान करने के पश्चात् ही थी जो वास्तविकता का ध्यान प्राप्ता। थी के उस आत्मबोध के अवसर पर देवताओं ने उस सम्पूर्ण स्थान को वैदिक पुण्यों की माताओं से धाञ्छादित कर दिया। शनैः-शनैः पाँच कोस पर्यन्त जो देवताओं के विमानों से चित्र हुआ था, वह स्थान 'थी की प्रार्थना पर भीमास रक्ता गया। थी ने उस स्थान को ब्राह्मणों को पुरस्कार में दिया और उन्हें अपनी भावना इस बात से प्रकट की कि वे वहाँ पर उसका भी एक स्थान रखें। बिष्णु ने यहाँ से देश के विभिन्न भागों में पवित्र ब्राह्मणों को बुलाने के लिए कहा और इस अर्थ में विश्वकर्मा से उस स्थान पर एक नगर बसाने के लिए कहा। भीमास पुराण में इस बात का बहुत ही सुन्दर वर्णन है कि उस विष्णु ने वहाँ पर कितने सुन्दर नगर का निर्माण किया। बिष्णु तथा अन्य देवताओं ने गमन-मण्डल से उस नगर का निरीक्षण किया और वे प्रसन्नचित्त होकर उस नगर की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे (देखिए, अध्याय ६ पद्य १-२२, पद्य २-२४ और ७२ पद्य ११३) बिष्णु ने बरवान बिवा कि सर्वोत्तम ब्राह्मण इस बिद्या का अध्ययन करेंगे वे तुम्हें स्मरण करेंगे। वास्तव में देखा जाय तो गुजरात की विस्वकसा विश्वकर्मा का स्मरण कराती है। पवित्र ब्राह्मणों ने गौतम के मुक्तिपापन की स्वीकार नहीं किया अतः वे वहाँ से निकाल दिये गये। वही नगर कामान्तर में भीमास नगर हुआ। यह नाम सप्तपुत्र में या अता में पुष्पमास और कल्पिपुत्र में भिममास या भीममास या भीममास हुआ।

पुष्पमासा मया कण्ठे बन्धमपस्य निवेदिता।

त्रेताऽथी पुष्पमासेति नाम्ना भीमासमास्त्विति ॥

इसका जोका नाम पुराण और ब्रह्मविष्णुमणि में सम्राट् धीपुत्र और उसकी पुत्री भी माता के सम्बन्ध में कहानी में रत्नमास कहा गया है (अध्याय ६९)। वह पाँच योजन (१५ या २० मील) के विस्तार में चारों ओर से समभाग में थी पञ्चयोजन विस्तार चतुरस्र समन्ततः। (अध्याय १० पद्य १८) पुराण में लिखा है कि १००० गणपति ४००० सप्तपास, ८४ चटिका देवी १००० ओस ११००० चिबन्तिङ्ग, ६६६ मुख्य देवालय और १८००० दुर्गामन्दिर इन भीमास में हैं जो धीमामिका सर्वमन्त्रा नाम से हैं। वहाँ ४००० ब्रह्मपासाएँ भी और ८०० बुधार्ज व १००० समितिवा। नगर के चारों ओर परकोटा था जिसमें ८४ दरवाजे थे। जो सर्वस्य पूर्वीय भाग में रहते थे वे प्राग्वाट कहलाते थे दक्षिण भाग दक्षिणोत्तर दक्षिण और उत्तर वाले धीमासी। इन धीमास या भीममास का वर्णन ३६ मर्गांग ने अपने भाषा-वचन व प्रमाणों भूरि ने अपने प्रमाणवक्त्रित में किया है। जीकृत महापद पलाकूप और अप्य-रुचामी (मूर्त्य) के मन्दिर का वर्णन करते हैं। उनका कहना है कि भीम के निजट विजालकाय दूरी-दूरी वृत्ति हैं जो धीमास का सबसे पुराना अवशेष है। जगत्कामो का मन्दिर लग १९९ में बनाया गया था। नगर की बरबादी २०६ तन में हो गई थी। दूसरी बार नगर उग्रसे से नष्ट गया। सन् १४३ में नगर फिर से बनाया गया। सन् ८४४ में फिर तीसरी बार नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। सन् ८६९ में फिर नगर का जीर्णोद्धार किया गया और तब से १४वीं शताब्दी तक कुछ-कुछ धीर पन पाग्य से परिपूर्ण रहा। (बी० जी, पृष्ठ ४६१)।

(१०) श्रीमाल (भीममाल) नगर की अवस्थिति, उसका तत्कालीन संस्कृति के निर्माण में योग, माध के साथ उसका संबंध

यह पृथ्वी के रेश्म मुबरात की प्रथम राजधानी है। प्रायतः भी मुबरात के अति निवासी अपना विकास भीमाल ग्रामावास के छोटे-छोटे गाँवों से लेते हैं। हुनेनसांग की भारत-नामा में यह लिखा है कि बलमी के ठीक ११० कोस (१०० मील) उत्तर में भीममाल है। वहाँ की बमीन की उपज और मनुष्यों का रहन-सहन सीराष्ट्र से मिलता-जुलता है। आबादी अत्यधिक है। इस गाँव के वर्जन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ७वीं सताब्दी के पूर्वार्ध तक भीममाल को प्राकृपहाड़ से १० मील पश्चिम में है, मुबरात की राजधानी का जिसका वेरा ८१० मील था। १३ठी सताब्दी तक वहाँ गुर्जरों का वासन था। किन्तु पं० बीरीचकर हीराचन्द घोष के अनुसार हुनेनसांग के माने के पूर्व तक भीममाल में गुर्जरों का वासन समाप्त हो गया था जबकि बह्मनुष्य की मिल्नमालाचार्य का उसके ब्रह्मसूत्र सिद्धान्त की रचना की। समाप्ति के पूर्व तक समाप्त हो गया था क्योंकि उस समय भीममाल का राज्य व्याघ्रमुख के अधीन था जो आपराज का था (राजपूताने का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ ११२ ११३)। कहा जाता है आप जावड़ा पड़ियार, खोसकी ये सब गुर्जर हैं। बैक्सन महोदय की मोनोग्राफ ऑन भीममाल बम्बई ब्रेडिटियर पुस्तक प्रथम के परिशिष्ट में भीममाल के विषय में बहुत-कुछ लिखा है। इसको देखने से ज्ञात होता है कि भीममाल किसी समय में एक बहुत ही सानसार समृद्धिवादी नगर हुआ। पुराने पश्चिम उत्तर दक्षिण में यह स्थिते ही मौनों तक फैला हुआ था। लगभग एक मील पश्चिम में बामुष्ठा देवी (भी) की भीममाल का नाम्य कहलाती है, की मूर्ति है (मी० भी, बोस्मू १ पैग ४४६)। भीममाल जिसको भीममाल कहते हैं कँडा नगर का कँटी स्थिति भी उत्पत्ति कैसे हुई आदि-आदि बातें भी-माल पुराण (भीमाल माहात्म्य) से ज्ञात होती हैं जो पुराण बैक्सन महात्म्य के अनुसार ४०० वर्ष प्राचीन है। प्रारम्भ में श्रीमाल गौतमायम कहलाता था। शिवजी ने गौतम मुनि से श्रव्यक भीम जाने के लिए कहा। वह भीम सीमन्धिक पर्वत के जो धाम नासिक कहलाता है, उत्तर की ओर है और धाबू के उत्तर-पश्चिम में—

मस्ति सीमन्धिकारोत्तरस्यां विधि द्विज । नावभ्यामर्बुशारभ्यान् सिद्धगांधर्वसेवितम् ।
सरस्वत्यन्वर्कं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८० २१२० २१२१

इस भीम के निकट ही बरह कागज है क्योंकि बरह से तप करके पश्चिम का स्वामित्व प्राप्त किया था। भीम ने अपनी कृतियाँ वहाँ बनायी जिसका क्षेत्रफल १ मयूति (२० मील) था। यहिस्था तथा सिध्दों सहित ये वहाँ रहने लगे। वहाँ स्वाम बाब में जाकर भीमाल कहलाया जाने लगा। भीमाल नाम कैसे हुआ इस पर जिस किसी की भी जो बाराता हुई वह अतीव रोचक है। भी जिसकी हमारे चर्चों में सबी कहते हैं वह मनु शक्ति की पुत्री थी

जो बिष्णु के साथ ब्याह भी गई। जैसे ही वह अपने स्वामी तथा दूसरे देवताओं के साथ आ रही थी वे सब एक स्थान पर ठहर गए। भूमि में स्नान करने के पश्चात् ही श्री को वास्तु विष्ठा का ध्यान पाया। श्री ने उस आत्मबोध के अवसर पर देवताओं ने उस सम्पुत्र स्थान को वैदिक पुष्पों की मालाओं से आच्छादित कर दिया। खने-खने पाँच कोस पर्यन्त जो देवताओं के निवासों से भिरा हुआ था, वह स्थान "श्री की प्रार्थना पर श्रीमान् रसा गया। श्री ने उस स्थान को ब्राह्मणों को पुरस्कार में दिया और उन्हें अपनी भावना इस बात से प्रकट की कि वे वहाँ पर उसका भी एक स्थान रखें। बिष्णु ने गणों से बैद्य के विभिन्न भावों ने पवित्र ब्राह्मणों को बुलाने के लिए कहा और इस मध्य में बिम्बवर्मा से उस स्थान पर एक नगर बसाने के लिए कहा। श्रीमान् पुराण में इस बात का बहुत ही सुन्दर वर्णन है कि उस जिल्ली ने वहाँ पर कितने सुन्दर नगर का निर्माण किया। बिष्णु तथा अन्य देवताओं ने पद्मन-मण्डल से उस नगर का निरीक्षण किया और वे प्रसन्नचित्त होकर उस नगर की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे (वेदिए, अध्याय १ पद्य १ २२ पद्य २ २४ और ७२ पद्य १ ११) बिष्णु ने बरदान दिया कि सर्वोत्तम ब्राह्मण इस विद्या का अध्ययन करेंगे वे तुम्हें स्मरण करेंगे। वास्तव में देखा जाम तो गुजरात की शिल्पकला विस्वकर्मा का स्मरण कराती है। पवित्र ब्राह्मणों ने गौतम ने मुखियापन को स्वीकार नहीं किया। यतः वे वहाँ से निकाल दिये गये। वही नगर कामान्तर में श्रीमान् नगर हुआ। यह नाम सतयुग में था तथा में पुष्पमास और कसियुग में भिन्नमान या भीममान या भीममान हुआ।

पुष्पमासा भया कण्ठे कक्षपस्य निवेशिता।

श्रेतादौ पुष्पमासेति नाम्ना श्रीमानमास्त्विति ॥

इसका बीषा नाम पुराण और ब्रज-वचिन्दासि में छमाट थीपुंज और उसकी पुत्री श्री माता के सम्बन्ध में कहानी में 'रत्नमान' कहा गया है (अध्याय ६६)। वह पाँच मील (१५ या २० मील) के विस्तार में चारों ओर से समभाग में श्री पंचमोजन विस्तार चतुरस्र समन्वत।" (अध्याय १० पद्य १८) पुराण में लिखा है कि १००० मजपति ४००० सप्तपान, ८४ बहिरा देवी १ ०० मील ११००० शिबलित्क, ६६६ मुख्य देवास्य और १८००० दुर्गामन्दिर इस श्रीमान् में हैं जो श्रीमातिका सर्वसंख्या नाम स हैं। वही ४००० बहिरासाएँ भी और ८०० बुरानें व १००० समितिर्मा। नगर के चारों ओर परकोटा या भित्तों ८४ बरबाद थे। जो वेस्व पूर्वीय मान में रहते थे वे प्राग्वाट कहलाते थे, दक्षिण भाग पनोत्कट पश्चिम और उत्तर भाग श्रीमासी। इस श्रीमान् या भीममान का वर्णन छेनसांग ने अपने याज्ञ-वचन व प्रभाषण भूरि ने अपने प्रभावकचरित में किया है। वैकुण्ठ महास्य पलाकूप और जगत्-रक्षामी (सूय) के मन्दिर का वर्णन करते हैं। उनका कहना है कि भीम के निकट विजयसकाय दृष्टी-पूरी मूर्ति है जो श्रीमान् का सबसे पुराना अवयव है। जगत्स्वामी का मन्दिर सन १६६ में बनाया गया था। नगर की बरबादी २०६ सन में की गई थी। दूसरी बार नगर टाँसस से मूटा गया। सन् १४३ में नगर फिर से बनाया गया। सन् ८४४ में छिर तीसरी बार नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। सन ८६१ में फिर नगर का जीर्णोद्धार किया गया और तब से १४वीं शताब्दी तक नुत-समुद्रि और पन जाय्य से परिपूर्ण रहा। (बी० बी०, पृष्ठ ४६१)।

(१०) श्रीमाल (मीनमास) नगर की अवस्थिति, उसका तत्कालीन संस्कृति के निर्माण में योग, माघ के साथ उसका संबंध

यह नुबरों के बीच गुजरात की प्रथम राजधानी है। आमतौर पर गुजरात के अधिकांश निवासी अपना विकास भीमाल ग्राम आसपास के छोटे-छोटे गांवों में करते हैं। हबेनसंग की माप-माप में यह निश्चित है कि बसमी के ठीक १२० कोस (१०० मील) उत्तर में भीमाल है। यहाँ की बसमी की उपर्युक्त मनुष्यों का रहन-सहन सीराष्ट्र के मित्रता-कुलता है। आबादी अत्यधिक है। इस गांव के वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ७वीं सताब्दी के पूर्वार्ध तक भीमाल को आबूपहाड़ से २० मील पश्चिम में है गुजरात की राजधानी या जिसका भेरा ८३० मील था। १०वीं सताब्दी तक यहाँ नुबरों का शासन था। किन्तु १०वीं सताब्दी के हीराचन्द्र सोम के अनुसार हबेनसंग के माने के पूर्व तक भीमाल में नुबरों का शासन समाप्त हो गया था जबकि बहूपुत्र को निम्नमासाचार्य या उसके बहूपुत्र सिद्धांत की रचना की। समाप्ति के पूर्व तक समाप्त हो गया था क्योंकि उस समय भीमाल का राज्य व्याघ्रमुख के अधीन था जो आपनस का था (उपपुत्र के इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ १३२ १३३)। कहा जाता है आप आबड़ा परियार सोलंकी ये सब नुबर हैं। बैसन महोदय की मोनोघाफ डॉन भीमाल बम्बई गवर्नर पुस्तक प्रथम के परिशिष्ट में भीमाल के विषय में बहुत-कुछ लिखा है। इसकी वजह से ज्ञात होता है कि भीमाल किसी समय में एक बहुत ही सानदार समृद्धिवादी नगर होता। पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण में यह फैले ही नीचे तक फैला हुआ था। लगभग एक मील पश्चिम में बामुष्ठा देवी (वी) को भीमाल का भाग कहलाती है, की मूर्ति है (बी० बी० बोस्मू १ पृष्ठ ४४६)। भीमाल जिसको भीमाल कहते हैं कंठा नगर या कंठी स्थिति थी, उत्पत्ति कैसे हुई प्रादि-प्रादि बातें भीमाल पुराण (भीमाल माहाराज) से ज्ञात होती हैं जो पुराण बैसन महात्म्य के अनुसार ४० वर्ष प्राचीन है। प्रारम्भ में भीमाल गीतमामय कहलाता था। सिधवी ने गीतम मुनि से अम्बक भीम जाने के लिए कहा। वह भीम सौम्यिक पर्यंत के जो भाग नासिक कहलाता है उत्तर की ओर है घोट भाग के उत्तर-पश्चिम में—

‘अस्ति सौम्यिकाश्चेत्तरस्यां विधि द्विजः । वाक्यामर्षाचार्यान् सिद्धिर्वाचर्षेवितम् ।
सरस्वत्यश्च नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ घ २ श्लोक २२ २३

इस भीम के निकट ही बरह कालम है क्योंकि बरह ने उप करके पश्चिम का स्वामित्व प्राप्त किया था। गीतम ने अपनी बुटिया यहाँ बनायी जिसका क्षेत्रफल ५ बम्पुति (१० मील) था। यहिमा तथा सिध्वी सहित वे यहीं रहने लगे। यही स्थान बाद में आकर, भीमाल कहलाया जाने लगा। भीमाल नाम कैसे हुआ इस पर जिस किमी की भी जो पारना हुई वह सटीक शेष है। वी जिसकी हमने शब्दों में लक्ष्मी कहते हैं वह नृप अथि की पुत्री थी

जो विष्णु के साथ व्याहृ ही गई। जैसे ही वह अपने स्वामी तथा दूसरे देवताओं के साथ वा रही भी वे सब एक स्थान पर ठहर गए। मीन में स्नान करने के पश्चात् ही धी को वास्त निरुद्धा का ध्यान आया। धी के उस आत्मबोध के अनन्तर पर देवताओं ने उस सम्पूर्ण स्थान को दैनिक पुष्पों की मालाओं से आच्छादित कर दिया। सभी-धम पाँच कोष पर्यन्त जो देवताओं के विमानों से चिरा हुआ था, वह स्थान "धी की प्रार्थना पर भीमात्म रक्षा मया। धी ने उस स्थान को ब्राह्मणों को पुरस्कार में दिया और उन्हें अपनी भावना इस बात से प्रकट की कि वे वहाँ पर उसका भी एक स्थान रखें। विष्णु ने यहाँ से देश के विभिन्न भागों में पवित्र ब्राह्मणों को बुलाने के लिए कहा और इस मन्त्र में विष्णुधर्म से उस स्थान पर एक नगर बसाने के लिए कहा। भीमात्म पुराण में इस बात का बहुत ही सुन्दर वर्णन है कि उस विष्णु ने वहाँ पर कितने सुन्दर नगर का निर्माण किया। विष्णु तथा अन्य देवताओं ने ब्रह्म-मण्डल से उस नगर का निरीक्षण किया और वे प्रसन्नचित्त होकर उस नगर की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे (वेदिक, अध्याय ६, पद्य १ २९, पद्य २ २४ और ७२ पद्य १ १३) विष्णु ने बरबाम दिया कि सर्वोत्तम ब्राह्मण इस विद्या का अध्ययन करेंगे वे तुम्हें स्मरण करेंगे। वास्तव में देखा जान तो मुखरत की चित्तकला विष्णुधर्म का स्मरण कराती है। पवित्र ब्राह्मणों ने भीतम के मुक्तिपापन को स्वीकार नहीं किया। यद्यपि वे वहाँ से निकाल दिये गये। वही नगर कालान्तर में भीमात्म नगर हुआ। यह नाम सत्ययुग में था तथा में पुष्पमास और कलियुग में भिम्बमास या भीलमास या भीनमास हुआ।

पुष्पमासा मया कष्टे कश्यपस्य निवेदिता।

नेतापी पुष्पमासेति नाम्ना धीमासमास्तिवति ॥

इसका बीजा नाम पुराण और ब्रह्मचिन्तामणि में छपाट धीपुत्र और उसकी पुत्री धी माता के सम्बन्ध में कहानी में 'रत्नमास' कहा गया है (अध्याय ६६)। वह पाँच बोजन (१३ या २० मील) के विस्तार में चारों ओर से समथाम में धी 'पचयोजन विस्तार चतुरस्र समन्तः।' (अध्याय १० पद्य ६८) पुराण में लिखा है कि १००० यक्षपति, ४००० राजपास, ८४ ब्रह्मा देवी १००० भीम, ११००० शिवलिंग, ६६६ मुख्य देवालय और १८००० दुर्गामन्दिर इस भीमास में हैं जो भीमात्मिका सर्वसंस्था नाम से हैं। वहाँ ४००० ब्राह्मणार्णवी भी और ८०० दूकानें व १००० धर्मलियाँ। नगर के चारों ओर परकोटा या विठमें ८४ दरवाजे थे। जो ब्रह्म पूर्णिय धाम में रहते थे वे प्रामाण्य कहलाते थे, दक्षिण बाह्य धनोक्त, पश्चिम और उत्तर बाह्य धीमासी। इस भीमास या भीलमास का बचन हू नष्टांन ने अपने याज्ञ-वर्चन व प्रमाण्य भूरि ने अपने प्रमाण्यचरित में किया है। जैसदम महोदय मन्नाकूप और ब्रह्म-नवाजी (मूर्त) के मन्दिर का बचन करते हैं। उनका कहना है कि भीम के निम्न विरासतकाय टूटी-फूटी भूति है जो भीमास का सबसे पुराना अवशेष है। अपसन्धामी का मन्दिर सन् १९९ में बनाया गया था। नगर की बरबादी २०६ तम में की गई थी। दूसरी बार नगर राजस से मृदा गया। सन् १४३ में नगर फिर से बनाया गया। सन् ८४४ में फिर तीसरी बार नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। सन् ८६६ में फिर नगर का जीर्णोद्धार किया गया और अब से १४वीं शताब्दी तक मुख-धर्मि और धन-धाम से परिपूर्ण रहा। (६० ४६ पृष्ठ ४६१)।

प्रथम को पुष्ट प्रमाण भीममास के विषय का प्राप्त हो रहा है वह बर्मसात का विलासेष है। राजा बर्मसात भीममास का राजा बताया जाता है ऐसा प्रभावकवर्णित में पाता है। यह विलासेष १८२ का लिखा हुआ है। सप्त अज्ञात है। वह बर्मसात कदाचित् बही हो जिसका उत्प्रेष मासकवि ने अपनी धिशुपाल की प्रसक्ति में किया है। बंधवर्चना मुसार सुप्रभवेण को मास के पितामह ने कुछ विद्वानों की सम्मति में बर्मसात राजा के प्रभाव मन्त्री ने किन्तु जिनहीं विद्वानों के अनुसार वे मुकुट कार्यों के सर्वाधिकारी अध्यक्ष होंगे। मास के पिता अपने मीमीमव सव्यवहार से प्रभा में सर्वाधाय नाम से पुकारे जाते थे जिसका वास्तविक नाम कुमुव पठित (वत्त) था। यह ही सकता है कि मास ने अपने काव्य के प्रति सग को 'वी' शब्द से समाप्त इसीलिये किया कि अपनी नमरी भीमाल का वस महाकाव्य में प्रसंसात्मक रूप में वर्तन या जाय और इसी लिए वह मास अय्यु के नाम से भी पुकारा जाता है। १६वें सर्ग का अन्तिम श्लोक 'मासकाव्यमिदं धिशुपाल' बस चक्रवर्त्य में स्पष्ट बतला रहा है कि मास अपने नाम जाहूता था, इसीलिये काव्य का नाम अपने नाम पर रखा जबका अपने काव्य को अय्यु के नाम से रखने का यह भी समिप्राय हो कि उस नमरी के नाम से ज्ञात हो जाय कि भीमाल में एक कवि ऐसा भी हुआ था। वह केवल यह सिद्धा भी।

महाशय जैनसम ने भीममास का बचन किया है। उन्होंने लिखा है कि वहाँ की वीर्य रूप में बिछारी पड़ी हुई ईंटें इस बात को स्पष्ट करती हैं कि कभी उस स्थान पर विद्यादासा या संस्कृत काव्य होना। भीमाल पुराणानुसार वहाँ पर १०० ब्रह्मसामाई भी और ४०० मठ थे वहाँ पर विभिन्न विद्याएँ सांगोपांग पढ़ाई जाती थी।

(देखिये भीमालपुराण माहात्म्य अध्याय १२ पद्य २२ और अध्याय ७१ भी) उसमें लिखा है—

चतुर्वेदा सांगारक्ष-स्तुपनिपत्सहितास्तथा ।

सर्वसास्त्राणि वर्तन्ते श्रीमासे श्रीनिकेतने ॥

यह इस बात का प्रमाण है कि भीममास (भीमाल) विद्या का केन्द्र था। इसी नगर में मास पोषित होकर बड़ा हुआ और वहीं पढ़-लिख कर उसने प्रसिद्धि प्राप्त की। हम यह भी जानते हैं कि ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के रचयिता ज्योतिषी भिन्नमासाचार्य ब्रह्मगुप्त ने भी वहाँ पर अपनी पुस्तक की ११ शक संवत् (सन् ६२८) में समाप्त किया। प्रसवस्त्री (१०२ A. D) का कहना है कि ब्रह्मस्फुट-सिद्धान्त विष्णु के पुत्र ब्रह्मगुप्त ने लिखा। वह भीममास का निवासी था। भीममास मुस्तान और अमहिलबाई के मध्य में है।

भीमाल जैन विद्या का भी प्रधान स्थान रहा है। सिद्धि की प्रसिद्ध रूप मित्रिमव प्रबंधका इसी भीममास में सन ६०१ में समाप्त की गई थी। जैन रत्नम सारत्र की अनेक पुस्तकों के रचयिता भी हरिमह भूरि की साहित्यिक हलचल का यही मुख्य केन्द्र था।

१ (क) जैन परंपराने इतिहास मास १ त्रिपुटी महाराज का देखिये वे लिखते हैं

प्रभावकरित में लिखा है कि शिखरि (६०५) हरिभद्रसूरि के सिष्य थे। तसिप-
विन्दरा कुबसममामा कबा को प्राकृत में है भीममास में समाप्त किया गया था। भीमास
में साहित्यिक चर्चा की जैसी धूमधाम थी, वह उपयुक्त बातों से विरल है। जिनविजय का
बल्लभराज महोदय देखने योग्य है जिसमें हरिभद्र सूरि की लिखि का निरुपम किया गया है
(इनका काम जिनविजयजी ने सन् ७०० तक अर्थात् वि० स० ७५७ से ८२७ तक
निश्चित किया)

उपर्युक्त चर्चों से पता चलता है कि इस नगरी के नाम भिन्नमास, भीममास,
भीमास पुष्पमास और रत्नमास हैं। इनमें मास शब्द सब में आया है। 'मास' शब्द के तीन
धर्म हैं—दो धर्मों के मध्य का वन पर्वतीय ऊँचा धुमिमास, स्नेह्य जाति (मामा निस्स
किराताश्च सर्वेऽपि स्नेह्यजातयः)। निस्स और मास जाति सर्वप्रथम वहाँ पर रही होगी

मोज या बप्पमहिंसुरिना सम्यक् कथाको होता। बंदोबरनो बन्धुसुत पल जैन राजा हुतो
राजा कुमार (भीमे) काटारलोना पलकारोना विरोधी होता। देखने के लोमो लीचधर्मों न
हता वि० सं० ८६९।" इस प्रति इस इतिहास से पता चलता है कि बिलीङ्ग भीममास
मारवाड़ धारि स्थान जैनियों के पड़ थे। पलोबर्मा का पुत्र धाम जैनी था और धाम का
पुत्र बुंदुक जिसका नाम रामचन्द्र था और जो बापाबलोक के मरने के पीछे राजमही पर
बैठा उसका बिबाह पाटलिपुत्र की राजकन्या से हुआ और उन्नी है मन्तिहार मोज ने बप्प
लिबा तथा वैष्णवागामी अपने पिता बुंदुक को मार कर कन्या की पत्नी पर बैठ गया। यह
जैन धर्म का बड़ा प्रेमो था। बप्पमहि की मृत्यु तथा धाम की मृत्यु पर इसको इसका रुक
हुमा कि यह स्वयं क्षिप्ता में चलने लमा फिर बप्पमहिंसुरि के सिष्य मोक्षि सूरि तथा
विमलचन्द्र सूरि को इसने अपना गुरु माना।

(४) जोवरान् जैन ग्रन्थमाता संख्या २ 'अद्यस्तितक ग्रन्थ इंडियन कलचर' में की
से० से० हांडिक पृष्ठ २६, ३१७, ४३६ पर लिखते हैं कि सोमदेव काव्य-साहित्य में महा
कवि माघ के एक अग्रो शोभ्य उत्तराधिकारी हुए हैं। माघे पृष्ठ ३२७ पर लिखते हैं कि
जैन धर्म प्रति प्राचीन है यहाँ तक कि भारवि नाम और भवभूति के ग्रन्थों में इस धर्म की
व्याप्ति पर्याप्त है। 'राजदेवराजि महाकवि जाम्येपु' 'कथं तद्विषया
महती प्रतिदि'। पृष्ठ ४३६ में भी महाकाव्यों के कवियों के नाम बिनाते हुए 'माघ' को
भी लाते हैं और कहते हैं कि इनके ग्रन्थ में जैन धर्म की व्याप्ति का एक अच्छा
प्रमाण है।

(५) जन साहित्य संशोधक स्टडीज नं० २ 'बी जैन्त इन हिन्दी प्राक् इण्डियन
तिरुवर में डा० मोरिस बिष्टरनिह्न लिखते हैं कि काव्य और महाकाव्य दोनों ही जैन
कवियों द्वारा लिखे गये हैं। माघ का प्रिणुपालनन महाकाव्य तथा हरिचन्द्र का वर्मसर्मा
भुरय इस विद्या की ओर फुके हुए कहे जाते हैं।

इन उपयुक्त बातों से स्पष्ट है कि बिलीङ्ग भीममास मारवाड़ जालोर तथा
इनके इधर उधर के स्थान जैन धर्म के पड़ थे तथा वहाँ पर पर्याप्त साहित्यिक चर्चा हुआ
करती थी। भीममास इनमें प्रमुख था।

प्रतः भीमनाम पड़ा। किन्तु जैसे नगर समुद्रिस्ताली होता गया वहीं के स्वाभिमानी भाषा रिकों ने भीमनाम के स्थान पर भीमनाम नाम रखने का प्रयत्न किया यद्यपि प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त जो ७वीं शताब्दी के प्रथम भाग में हुआ था अपने-भाप को भिस्तमासाचार्य कहता है। पुराणों से घोर सौख्य की कड़ी हुई दृग कपोलकल्पित गायार्था से कि वह नगर बार-बार राक्षस से मष्ट मष्ट क्रिया गया—केवल इस बात की सिद्धि होती है कि भीम घोर नाम आदिमों ने जिसका अधिकार छिन गया था परस्पर बसावत की। भीमनाम पुराण में एक किरात भीम का भी वर्णन आता है जो तीर्थ स्थापन था। किरात भीम को भी कहते हैं। दामिक इतिहास बताता है कि वह स्थान वैष्णवों की पुजा का था किन्तु उसी भीमनाम पुराण में बतित है कि कलियुग में जैनधर्म की प्रचलता होती जैनधर्म व भीमाने परिष्कृत कली युगे। (देखें अध्याय ७)—इतिहास कहता है कि बीड़ भी वहीं रहने लग गये थे।

वर्तमान (१२१ ई०) के पश्चात् चापबंदीय व्याघ्रमुख (१२८ ई) भीमनाम का शासक था यह बात हमारे मत के प्रतिकूल है क्योंकि वर्तमान १८२ तक सं० का था प्रतः व्याघ्रमुख उसके पूर्व हुआ होगा। जब हूवेनसांग लगभग ६६१ ई० में वहाँ पर आया तब समय एक क्षत्रिय राजा राज्य करता था जिसकी धातु ९० वर्ष की थी। यह कदाचित् व्याघ्रमुख का पुत्र हो। इससे तो यह सिद्ध किया जा सकता है कि लगभग ७ वीं शताब्दी के अंत तक चापबंदी प्रबल वहाँ पर था। साम्रपथ में लिखा है कि चापोल्ट पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। यदि वे भीमनाम के चाप हों तो कह सकते हैं कि भीमनाम पर ७१२ ई० घोर ७१० ई० के मध्य में आक्रमण हुआ।

चापोल्टों के पश्चात् प्रतिहारों का राज्य भीमनाम में पाते हैं। यह पता नहीं कि प्रतिहारों ने चापों को कम हटा दिया। महामहोपाध्याय पं० श्रीधरचंदर हीराचन्द घोष इस घटना को सं० ७४ घोर सं० ८०१ के मध्य में हुई स्वीकार करते हैं। प्रथम प्रतिहार राजा के विषय में हम इतना ही जानते हैं उसका नाम नागभट्ट था नागावलोक्त था। यदि यह वही नागभट्ट है जिसका वर्णन सं० ८११ साम्रपथ में मिलता है जिसने बीहान राजा मर्त बूढ़ द्वितीय अपने भाप को नागावलोक्त का सामन्त बताते हैं तो हम कह सकते हैं कि उसका राज्य उत्तर में मारवाड़ से लेकर दक्षिण में अजोध तक फैला हुआ था। उसी के समय बिलोचिनों ने आक्रमण किया किन्तु वे पराजित कर दिने गये। इसके पश्चात् ककुत्स्थ घोर देवराज नामक भी राजा हुए, फिर बत्सराज हुआ। उसने बंवाल के पीड़ राजा को पराजित किया। जब मानवा के राजा के शासन बत्सराज मर रहा था उस समय उस पर राष्ट्रकुलों के राजा द्रुवराज ने आक्रमण किया घोर बत्सराज को मारवाड़ की घोर, जो उसके धापीन था आपना पड़ा। कबिदासमार्ग से लेकक धर्मोपदेश के मुख त्रिमय के बनावे हुए हरिवंशपुराण में उसका वर्णन है। उद्योतन सूरि ने भी कुवलयमासाकथा में यह घटना भी है।

बत्सराज का पुत्र नागभट्ट द्वितीय फिर पश्ची पर बैठा। इसने कभी के राजा जक-मुड (वर्तमान का पश्चिम राजा) को हराया। यह भगवती का बड़ा भवत था। उसकी मृत्यु सं० ८१४ में हुई। इस के समय भीमनाम युवकों की राजधानी नहीं रहा कभी राज-धानी हो गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र रामराज हुआ, फिर भीम राजा हुआ जो बहुत ही

सकितछात्री सासक था। यह प्रतिहार बंध का था। इसके पाँच शिष्यासेन मिलते हैं सन् ८४४ से सन् ८८१ तक के। उसके रक्तपत्रों और साम्राज्यों के एक और महाविजय है तो दूसरी ओर चाप है। यह भी भगवती का भजन था। काठियावाड़ में भी ६ठा शिष्यासेन मिला है। इससे ज्ञात होता है कि उसका राज्य वहाँ तक भी था। इसके राज्य की सीमा जैसे सतसज सरिता के पूर्वीय पंजाब उत्तर प्रदेश राजपूताना और ग्वातिमर का प्रदेश और कश्चित् मानवा मुजरात और काठियावाड़ तक थी। पीछे के ये तीन प्रदेश निश्चित ही उसके उत्तराधिकारी के अधीन रहे हैं। इस मति मुर्जर प्रतिहार साम्राज्य हर्ष या मुप्प साम्राज्य की समानता इसी के समय में कर सकता था। कुछ इतिहासकार इसको बिम्ब और सुय का उपासक मानते हैं। आदिबराह तो इसका पद था ही किन्तु प्रभास (ज्योतिर्मान्) इसका उपनाम भी बताते हैं। इसी ने भोजपुर की नींव डाली। भरव यात्री लिखता है कि मुर्जरों के सम्राट् के पास अनगिनत सेना थी, और उसके पास पर्याप्त-सम्पत्ति थी और हथी-बोड़े भी पर्याप्त मात्रा में थे। भारत में जितनी देश की रक्षा इसने की जतनी रक्षा भग्य किसी से न हो सकी। इस मिहिर भोज ने कहा जाता है १० वर्ष तक (८१६-८८३ ई०) शासन किया इसके पश्चात् महेन्द्रपाल हुआ। काम्पमीमांसा के लेखक राजसेनार इसके पुत्र थे (हेमचन्द्र ने बहुत-सी पंक्तियाँ काम्पमीमांसा से ली हैं) फिर महीपाल राजा हुआ। इसको रामकूट के राजा इन्द्रराज द्वितीय से सङ्गना पड़ा। एक ठात्र पत्र (११४ ई० सं०) इनका काठियावाड़ के हहामा ग्राम में मिला है जिससे पता चलता है कि धरणीबराह नाम वाला इसका सामंत वहाँ का सासक था। फिर तीन राजा हुए भोज द्वितीय विनयपाल (भोज द्वितीय का कनिष्ठ भ्राता) और महेन्द्रपाल द्वितीय (विनयपाल का पुत्र)। भुमराज सोलंकी के शासन काल में मुजरात स्वतन्त्र हो गया। तब महेन्द्रपाल राजा था। इस समय में १३३ ई० तक भीनमाल मुजरात का प्रधान नगर समझ जाता था। इसके पश्चात् ही भीमसेन के शासन-काल में १०००० गुर्जर भीनमाल से बल बिये। भीमाल पुराण का कहना है कि भी ने उस देश को छोड़ दिया (११४७ ई०)। इसका परिणाम यह हुआ कि अब इस भीनमाल के स्थान पर अनहिलवाड़ा मुख्य नगर हो गया (बी० जी० ४९६)। बुफाल की बात जो गुजरात के विषय की जाती है भीनमाल में सं० १००५ में पटो तब सब सोम बस्ती छोड़ कर मुजरात या मानवा की ओर चल पड़ा।

मुर्जर और मुर्जर प्रदेश

नामकवि कि 'हर्षचरित' में ही सप्रथम गुजरात शब्द देखने की मिलता है जहाँ पर हर्ष के विता प्रभाकरवर्मन को 'गुजरा प्रजापार' शब्द से सम्बोधित किया है जिसका टीकाकारों ने धर्म किया है मुर्जरों की निहा को लोने वाला धपवा मुर्जरों की शुरुआ के लिए सर्व सजम रहने वाला। हर्ष का समय ६०६ से ६७३ ई० तक था अतः छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मान की भी देयता है। हर्षचरित से पूर्व मिले हुए किसी ग्रन्थ में धपवा महामारत में यह शब्द नहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। इतिहास-विशेषज्ञ यह धपवय स्वीकार करते हैं कि ये मुर्जर विदेशी घामगुन हैं और हो सकता है कि उनका श्वेत तूनों से रक्त का सम्बन्ध हो। ये

गुर्जर पंजाब में बुजरागनाला और गुजरात में तथा राजस्थान में भीमनाल से घाकर बस गये। इस घाति गुर्जर सन्ध १०० ई० से पुन कहीं न था। गुर्जर भारतीय संस्कृति में बुलवित गये। इन्होंने भारत की घाट को ७०० ई० में और बलभी के राजाओं को ७१० ई० में धपीन किया। पीछली सताथी के धन में भारत में राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन बहुत हुए। उनमें गुर्जरी का उत्पन्न सहसा हुआ। वे इतने शक्तिशाली हो गये कि प्रभाकर वर्मन (१६६ ६०१) को उन्हें वरचित करने के लिए जाना पड़ा था। उनके प्राचीनतम शिलालेख १८० से ७११ तक के मिले हैं। भारत में उनका प्रथम विहित देश था जो गुर्जर देश या गुजरात यथा गुर्जरना कहलाया, जिसका शाब्दिक अर्थ गुर्जरी द्वारा रचित (भूमि) है। गुर्जरना का यह संस्कृत-रूप है जो भाषा-विज्ञान के अनुसार विकसित होते-होते वर्तमान में गुजरात बन गया। राजस्थान के वर्तमान कोचपुर पाली, जालोर धर्माद्र प्राचीन भारत देश का उत्तरी भाग ऐसा की कड़ी सताथी से गुर्जर देश का गुजरात के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। इस घाति सम्पूर्ण पवित्री राजस्थान गुर्जर देश या गुजरात का संग था। इस गुजरात के इतिहास में भीमनाल का महत्त्व कम नहीं है। भीमनाल इस गुजरात भूमि की पहली राजधानी था। गुर्जरदेश के भीमनाल और हीराष्ट्र के बहवाण में आप-बंद का राज्य था किन्तु अरबों के आक्रमण पर भीमनाल के चारों की शक्ति कुछ मन्द-सी हो गई और गुर्जर प्रसिद्धा भीमनाल के आसक्त के रूप में सामने आये। गुर्जर-प्रसिद्धारों का साम्राज्य समय-समय उत्तरी भारत में फैल गया। सभी की तक है शक्तिशाली रहे। मनहिमपुर के वासुदेव जिसका प्रथम शासक मूलराम या माधु-माधवा के परमार, वाकम्भरि (शौर) और नहुष (गर्भीर) के काहुमान गिराट (गिराट) के बुद्धि शालि राजा तथा अन्य राजपूत राजवंश जो एक प्राचीन साम्राज्य के अनुसार माधु की वंशाधि से उत्पन्न हुए वे गुर्जर प्रसिद्धारों के जातीयारों के रूप में अथवा छोटे-छोटे राज्य बसाते हुए फैल रहे थे। जिस समय माध से उस समय राजाओं के राज्यों में परिवर्तन हो रहे थे। एक शक्ति मन्द होती और दूसरी शक्ति का आसक्त बन जाता। यह भी भीमनाल और आसपास की भूमि की राजनैतिक व्यवस्था, उस युग में जिसमें माध विद्यमान थे।

निष्कर्ष—वीणास-पुराण के अनुसार भीमनाल नगर-की किसी समय बहुत बड़ा समझ कर रहा है। ब्राह्मणों का कथानिष्ठ बहुत प्रभाव रहा था घट सम्मोने स्वरूपुराण में वीणास-माहात्म्य की सम्मिगित कर दिया। कहा जाता है वीणास का आगम नहीं पर था। एक दिन शीतल शक्ति को अन्य ब्राह्मणों ने अप्रसन्न कर दिया। परिणामस्वरूप वे पंजाब (काश्मीर) की ओर चले गये और वहाँ पौरी के बुन (महावीर) के शिष्य होकर पुन वहाँ पर आये और भीम नाम का बोरों से प्रचार किया। इसी समय वहाँ की व्यवस्था विचरने

१ प्रवेर्धिततावलि में भीमनाल का निमनाल नाम माध की परिचायिका पर भीज के दिया किन्तु उपर्युक्त भीमनाल शीर्षक में भीमनाल के बहने के लक्षण मन्वी की कनी होने से अथवा इस नगर की भीमनाल होने से वहाँ को नगुण्य बन स्थान को छोड़-छोड़ कर गुजरात की ओर जाने लगे तक भीमनाल बीम ही निमनाल हो गया किन्तु वे लक्ष्य बाटें २वीं सती की है अथ भीमनाल भीमनाल हुआ। नाम की कती समय थे।

बद से वहाँ जैन धर्म बड़ा मजबूती की कमी होने लगी और अंत में शीघ्र वहाँ से मुजरात को चले गये । भीमास में जैन धर्म का वास्तविक समय वि० सं० ८१५ में उद्योतन सूरि की मुजरातयात्रा-कथा से ज्ञात होता है । इनकी प्रशस्ति में मजबूती मुज परम्परा को बतलाते हुए वे लिखते हैं कि उनके पूर्वज शिवचन्द्र यणी महाराज पंजाब के पल्लवा नगर से शिव मन्दिर की तीर्थ यात्रा के प्रसंग में बिम्बमास नगर पचारे और यहीं रहने लगे । इस उल्लेख से जहाँ मोक्ष ऋषि के द्वारा वहाँ पर जैन धर्म के प्रचार का उल्लेख है उक्त उल्लेख से यह कार्य शिवचन्द्र यणी और उनकी विप्य सन्तति द्वारा भद्रसर हुआ । शिवचन्द्र भी पंजाब से यहाँ गये ।

बिम्बमास के निवासी मोहि तोड़ा की १६ वीं शती की बंदाबली के अनुसार उस पक्ष के पूर्वज ने सं० ७७२ में जैन धर्म का प्रतिबोध पाया था । उक्त बंदाबली का भावश्यक पक्ष यहाँ उद्धृत किया जाता है—भाखाबलोने सं० ७६५ वर्षे प्रतिबोधित श्री मामी मातीय श्री धामिनाथ मोहिठि श्री बिम्बमास नगरे भाखाब बोन भठि तोड़ा तैहूनीवाठ धूमिलीयोमी मट्टनई

श्री मास माहारम्य की रचना का समय बहुत पीछे का है । माहारम्य में तपागच्छ का दो बार उल्लेख आया है जो स्वेताम्बर धर्मियों के ८४ पञ्चों में एक है । संवत् १२८२ में तपागच्छ की उत्पत्ति हुई थी और १४वीं शती में इसका प्रभाव बहुत अधिक विस्तार में हुआ । उपर इस नगर के जो हीन होने व वहाँ के लोगों के मुजरात की ओर जाने के निबोध से भी इसकी पुष्टि होती है क्योंकि ६वीं शताब्दी से मुजरात की यात्रावासी पम्पु हो जाने से व वहाँ की श्री कृति होने से हजारों कुटुम्ब वहाँ से उबर जाने लगे वे और मुजरात के इतिहास में श्री मास व पोरबाइ जनों का प्रमुख बदला का रहा था पर १४वीं शती तक भीवाल नगर के मण्डी भवस्था में विद्यमान होने का यहाँ के प्राप्त सिंहालेखों व बगइछों से पता चलता है अतः इसे श्री मास पुराणनिर्माण की पूर्व सीमा मानना चाहिए ।

भीमास माहारम्य में भीमास का नाम भीममास १३वीं शती में सीद्ध होने से पड़ा । प्रभावक भरित व प्रबन्ध-संग्रह के अनुसार भीमास का बिम्बमास नामकरण मास कवि की निर्माणावस्था में देन कर मुजरात में किया । पर वि० सं० ७११ में रचित निर्दीर्घ कुण्डि (उल्लेख-कप्यमय जहाँ बिम्बमासे मयमासी) से सं० ८१५ की मुजरातयात्रा वि० सं० ६१२ के उपनिमिश्रप्रबंधका (तयय तेन कथा कविना निषेध मुण्डपगुणपारे, श्री बिम्ब मासनगरेवदिताप्रमण्डलस्थेन) में इसका नाम बिम्बमास ही मिलने से अपर्युक्त दोनों कारण काव्यमय ही प्रतीय होते हैं । बिम्बो की यस्ती होने से इसका नाम बिम्बमास प्राचीन व प्रचलित रहा होगा (दिल्लिये—छोपपत्रिका भाग १ पृष्ठ १ उदयपुर पारिवर २००८, राम स्थाप का एक प्राचीन नगर भीमास नगर) ।

(११) माघ का भोज से सम्बन्ध

भोजप्रबन्ध प्रबन्धविस्तारमणि पुरातन प्रबन्ध-संग्रह प्रभावकचरित तथा प्रत्याम्ब बहुत ही कहानियों वा बातों से माघ कवि के भोज के साथ सम्पर्क का परिचय मिलता है। किसी कथा में माघ को भोज का वासमिष बताया गया है तो किसी कथा में वह भोज राजा के बरबारी कवि के रूप में उपलब्ध होते हैं। कुछ भी हो इन सब ग्रन्थों में यमका जनश्रुतियों में भोज का सम्बन्ध माघ से जो बताया गया है उसका कोई सरल व्याख्यान संभव है। एक ग्रन्थ में कोई बात कल्पित यमका निराधार भी हो किन्तु जब अधिकोश ग्रन्थों में माघ और भोज सम्बन्धी बातें मिलती हों तो फिर इस सम्बन्ध की सत्यता पर शिंका करना ही होगा। जनश्रुतियों ने माघ और भोज की बड़ी चर्चा है जो पञ्च-पत्रिकाओं में समस-समय पर प्रकाशित होती रही है। यह माना जा सकता है कि इस भोज-माघ संपर्क को प्रतिरचना के साथ प्रस्तुत किया गया हो। प्रतिरचना को निकाल देने पर भी भोज और माघ समकालीन के इतना तो स्पष्ट ही है। प्रबन्धों का जब हम प्रामाण्य ढंगे नहीं पर पाठक देखेंगे कि स्वयं माघ-कवि भोज के लिए कुछ बातें लिख रहे हैं। भोज भी कई हो गये हैं और कालिदास नामवारी पंक्ति भी कई, यद्यपि माघ को व कालिदास को भोज के साथ लाकर जब रख देते हैं या इनके समकालिक बताते हैं तो गुननेवालों को वह कुछ घटपटा सा लगता है। भोज प्रबन्ध में अनेकों कवियों को भोज के बरबारी में लाकर उपस्थित किया गया है उनमें कुछ तो संभव ही होंगे। इन कवियों के साथ वाले भोज बाहे उच्चैर्न मयरी के साथ ही सही वाले हों बाहे विस्तीर्ण वाले भोज बाहे प्रतिहार भोज तथा बाहे कोई अन्य भोज। माघ किस भोज के समय में वे इसे स्पष्ट करने के लिए भोज-चर्चा आवश्यक हो गयी है।

भोज इस नाम के अनेक राजाओं की स्थिति :—

भारतवर्ष में जितने ही कालिदास व्यास तथा विक्रमादित्य हो चुके हैं वैसे ही भोज नाम वाला भी राजा अनेक हुए हैं। भोज नामक बंध भी बना जाता है जिसमें कुछ राजा हुए हैं वे भी भोज नाम से प्रसिद्ध हैं। किन्हीं राजाओं ने उपाधि के रूप में भी अपने नाम के साथ भोज जोड़ा है। ठीक उही तरह जैसे कुछ राजा अपने आपकी विक्रमादित्य की उपाधि से श्रुति करते रहे हैं। इन प्रख्यात भोज राजाओं में कहा जाता है कि केवल तीन ही ऐतिहासिक प्रसिद्ध हुए हैं जो अपनी बुद्धि बल तथा वैभव में अद्वितीय थे। प्रथम हम चारुमती वाले भोज को जेजे जो परमार (पवार) बंध के धिरोमणि हुए हैं।

(क) परमार राजा भोज—परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर, मासक चक्रवर्ती किमुदनाचमण चारुमती परमार नरेश भोज भूज (वाकपति राज द्वितीय) के भ्रातृज थे। भूज ने जीवितावस्था में ही भोज को मोद लिया था यद्यपि भूज की मृत्यु के पश्चात् भोज गद्दी पर बैठे। अन्त्याहु होने के कारण भोज के वास्तविक पिता किमुदनाच मानने

की नदी पर बैठे । विष्णुराज युद्ध में जब मारे गये तब भोज ई० सन् १०१० में मानवा के सिंहासन पर बैठे । यह विद्वान् थे । विद्वानों के धामयदादा एवं प्रतापी दासक थे । दम्पकबामों के धामार पर दकारि विक्रमादित्य के पदवात् इन्हीं का नाम लिया जाता है । इनका राज्य हिमालय से मजयावन तक और उदयावन से अस्तावन तक विस्तृत था—

“प्राक्षेसासाम्भसंयगित्वाभस्ताययाद्रिद्वयाद्वा ।

भुक्ता पुण्यो पुथुनरपतेस्तुत्यरूपेण येन ॥”

(एकिप्राप्तिया इकिया जा० १ पृ० २३५)

यही बात उदयपुर (धानियर) की प्रसिद्धि में मिली है । राजा भोज के बापा भुक् ने मेवाड़ पर धाकमण किया और वहाँ के बाहाड़ नामक बाँव को नष्ट किया था । उस से ही बिछोड़ और नामक दोनों से मिलता हुआ मेवाड़ का प्रदेश मासक नरेशों के अधिकार में था ।

भोज बड़े धार्मिक थे । उनके बनाये हुए धर्म स्थानों में से एक धिब का मन्दिर है जो बिछोड़ के किस्ते में है । उसमें प्रतिष्ठित धिब की मूर्ति का नाम अपने नाम पर “भोज स्वामी देव” रखा । यह बात बिछोड़ से प्राप्त हुए वि० सं० १३५८ के लेख में मिले “श्री भोजस्वामी देव अर्पित” इस वाक्य से सिद्ध होती है । राजा भोज का उपनाम (उपाधि) त्रिभुवननारायण देव भी कहते हैं । बीरबासे में मिले वि० सं० १३३० के लेख में लिखा है—

श्री चित्रकूट दुर्गोत्थित त्रिभुवन नारायणस्मदेव गृहे ।

श्री भोजराजर्चित त्रिभुवननारायणस्मदेव गृहे ।

यो विरचयतिस्म सदाशिव परिचर्या स्वधिविभित्नु ॥

(विष्णु शौरियष्टम वर्णन, भा. २१ पृ १४५)

मात्रकम यह मन्दिर धब्बूजी (धब्बुतबी) के नाम से प्रसिद्ध है । इस मन्दिर का बीछोड़ार महाराजा जीनम ने ई० सं० १४२० में करवाया था इसे मोक्तसी का मन्दिर भी कहते हैं । भोजन (भोजपुर) की बड़ी कील भी इस भोज की बनाई हुई है । राजा भोज की मत्तानुयायी था । मैसूरुष ने अपनी प्रख्यात चिन्तापति में माप की कथा में लिखा है कि माप कवि ने राजाभोज का घर भाँपे पर छत्कार किया और उसने ऐसा करने में कोई बात छोड़ा न रखी । कुछ दिन वहाँ रहकर राजा भोज जब लौटा तब इस प्रतिघिसत्कार की एका में उसने अपने बने हुए “भोजस्वामी” के मन्दिर का पुष्प माप को दिया ।

‘भोज ने बिछोड़ के किस्ते वर को धिब मन्दिर बनाया था उस मन्दिर का नाम भोजस्वामी देव रखता जो त्रिभुवननारायण देव भी कहलाया और धात्र बही धब्बूजी का मन्दिर या मोक्तसी का मन्दिर बीछोड़ार कथने से कहलाता है । माप की कथा में भोजस्वामी के मन्दिर का पुष्प माप को दिया : “स्वयं करिष्यमाणमप्य भोजस्वामी प्रसाद प्रदत्त पुण्यो मानव मन्धर्मा प्रति प्रसस्ये ।” धाराधिपति इस भोज के समय में तो हमारे महारवि माप का होना अत्यन्त सा है । इसके बिचने ही प्रमाण प्राप्त हो चुके छत यह भोज हमारे से । भोजस्वामी के मन्दिर की कथा का माप के साथ लगना एक रहस्योद्घाटन अत्यन्त है जो भोज नामवारी राजाओं पर विचार करते हुए किया जायगा ।

(११) माघ का भोज से सम्बन्ध

भोजप्रबन्ध प्रबन्धविष्णुनामणि पुरातन प्रबन्ध-संग्रह प्रभावकचरित तथा अन्ध्याम्ब बहुत सी कहानियों वा बातों से माघ कवि के भोज के साथ सम्पर्क का परिचय मिलता है। किसी कथा में माघ को भोज का वासविश बताया गया है तो किसी कथा में वह भोज राजा के दरबारी कवि के रूप में उपस्थित होते हैं। कुछ भी हो इन सब ग्रन्थों में अपना-अपनी भूमिकाओं में माघ और भोज का सम्बन्ध माघ से जो बताया गया है उसका कोई छल्य आधार आवश्यक है। एक ग्रन्थ में कोई बात कल्पित कथना निराधार भी हो किन्तु जब अधिकतर ग्रन्थों में माघ और भोज सम्बन्धी बातें मिलती हों तो फिर इस सम्बन्ध की सत्यता पर विचार करना ही होना। जनश्रुतियों में माघ और भोज की बड़ी चर्चा है जो पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रही है। यह माना जा सकता है कि इस भोज-माघ सम्पर्क को प्रतिरचना के साथ प्रस्तुत किया गया हो। प्रतिरचना को निकाल देने पर भी भोज और माघ समकालीन थे इतना तो स्पष्ट ही है। ग्रन्थों का जब हम प्रामाण्य देखे वहाँ पर पाठक देखेंगे कि स्वयं माघ-कवि भोज के लिए कुछ बातें लिख रहे हैं। भोज भी कई ही नये हैं और काशिबास नामधारी पंडित भी कई, यत माघ को व काशिबास को भोज के साथ लाकर जब रख देते हैं या इनके समकालिक बताते हैं तब पुनर्वाचनों को वह कुछ अटकटा सा लगता है। भोज-ग्रन्थ में अनेकों कवियों को भोज के दरबार में लाकर उपस्थित किया गया है उनमें कुछ तो अवश्य ही होंगे। इन कवियों के साथ वास्ते भोज बाहे उज्जैन नगरी के छात्रों धारी वास्ते हों बाहे बिर्साई वास्ते भोज बाहे प्रतिहार भोज तथा बाहे कोई अन्य भोज। नाम किन्तु भोज के समय में वे इसे स्पष्ट करने के लिए भोज चर्चा आवश्यक हो गयी है।

भोज इस नाम के एक राजाधर्म की स्थिति :—

भारतवर्ष में जैसे कितने ही कामिबास व्यास तथा विक्रमादित्य हो चुके हैं वैसे ही भोज नाम वाले भी राजा अनेक हुए हैं। भोज नामक बंध भी बना आता है जिसमें कुछ राजा हुए हैं वे भी भोज नाम से प्रसिद्ध हैं। किन्तु राजाधर्मों ने अपाधि के रूप में भी अपने नाम के साथ में भोज जोड़ा है। ठीक उसी तरह जैसे कुछ राजा अपने आपको विक्रमादित्य की अपाधि से भूषित करते रहे हैं। इन प्रख्यात भोज राजाधर्मों में कहा जाता है कि केवल तीन ही अपाधिक प्रसिद्ध हुए हैं जो अपनी बुद्धि बल तथा नीमव में प्रकटित थे। प्रथम हम चारनगरी वास्ते भोज को लेते जो परमार (पंवार) बंध के धिरोमणि हुए हैं।

(क) परमार राजा भोज—परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर, मातव चक्रवर्ती त्रिभुवननारायण चारेश्वर परमार नरेय भोज मूख (बाकपति राज द्वितीय) के भ्रातृज थे। मूख ने जीवितावस्था में ही भोज को गोश लिया था यत मूख की मृत्यु के पश्चात् भोज पत्नी पर बैठे। अस्यापु होने के कारण भोज के वास्तविक पिता सिन्धुराज मानने

की गद्दी पर बैठे। चिन्मुराज कुछ में जब मारे गये तब भोज ई० सन् १०१० में मातवा के सिंहासन पर बैठे। यह विद्वान् थे। विद्वानों के आश्रयवाला एवं प्रतापी शासक थे। दन्तकथाओं के आधार पर सकारि विक्रमादित्य के पश्चात् इन्हीं का नाम लिया जाता है। इनका राज्य हिमाचल से मसयावल तक और उदयावल से अस्तावल तक विस्तृत था—

“आर्कसासा मसयागिरितोऽस्तादयाप्रिद्वयाद्वा।

मुच्छा पुष्पी पुथुनरपतेस्तुत्यरूपेण येन ॥”

(एकिक्रमिका इंडिया भा० १ पृ० २१५)

यही बात उदयपुर (प्यालियर) की प्रशस्ति में लिखी है। राजा भोज के चाचा भूज ने मेवाड़ पर आक्रमण किया और वहाँ के साहाड़ नामक गाँव की लूट किया था। तब से ही चित्तौड़ और मातव दोनों से मिला गुप्ता मेवाड़ का प्रदेश मातव नरेशों के अधिकार में था।

भोज बड़े धार्मिक थे। उनके बनाये हुए धर्म स्थानों में से एक शिव का मन्दिर है जो चित्तौड़ के किनारे में है। उसमें प्रतिष्ठित शिव की मूर्ति का नाम अपने नाम पर ‘भोज स्वामी देव’ रखा। यह बात चित्तौड़ से प्राप्त हुए वि० सं० ११५८ के लेख में मिले ‘श्री भोजस्वामी देव अर्पित’ इस वाक्य से सिद्ध होती है। राजा भोज का उपनाम (उपाधि) त्रिभुवननारायण देव भी कहते हैं। बीरबासे में मिले वि० सं० १११० के लेख में लिखा है—

श्री त्रिभूक्त पुर्गोरचित त्रिभुवन नारायणस्यदेव गुहे।

श्री भोजराजराचित त्रिभुवननारायणस्यदेव गुहे।

यो विरचयतिस्म सदाशिव परिचर्या स्वशिबनिष्पु ॥

(विष्णु मोरियण्टस जर्नल भा २१ पृ १४१)

माजकस यह मन्दिर भद्रबुद्धी (भद्रमुखी) के नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्दिर का बीरौंछार महाराणा भोज ने ई० सं० १४९८ में करवाया था इसे भोजस्वामी का मन्दिर भी कहते हैं। भोजराज (भोजपुर) की बड़ी भीस भी इस भोज की बनाई हुई है। राजा भोज ईश मत्तानुयायी था। मेरुसुंग ने अपनी प्रबन्ध चिन्तामणि में माघ की कथा में लिखा है कि माघ कवि ने राजाभोज का घर जाने पर सत्कार किया और उसने ऐसा करने में कोई बात छोड़ा न रखी। कुछ दिन वहाँ रहकर राजा भोज जब सोटा तब इस प्रतिपिडकार की एका में उसने अपने बनते हुए भोजस्वामी के मन्दिर का पुष्प माघ को दिया।

‘भोज ने चित्तौड़ के किनारे पर श्री शिव मन्दिर बनाया था उस मन्दिर का नाम भोजस्वामी देव रखा जो त्रिभुवननारायण देव भी कहलाया और आज वही भद्रबुद्धी का मन्दिर या भोजस्वामी का मन्दिर बीरौंछार करने से कहलाता है। माघ की कथा में भोजस्वामी के मन्दिर का पुष्प माघ को दिया : “सर्व्य करिष्यमाणस्य भोजस्वामी प्रसार प्रसन्न पुष्पो मातव मण्डनं प्रति प्रतस्थे।” पारापिपति इस भोज के समय में तो हवा में मण्डन का होना प्रसन्न सा है। इसके कितने ही प्रमाण प्राप्त हो चुके हैं : यद् भोज हुनरे दे। भोजस्वामी के मन्दिर की कथा का माघ के साथ समान एक रहस्योद्घाटन प्रसन्न है जो भोज नामधारी राजाओं पर बिचार करते हुए दिया जायगा।

इन बापविपति भोज की बाल-सम्बन्धी कथायें जैसी इतस्तुत बिजरी पड़ी हैं वैसे ही इसकी बिड़दोशियों की कहानियाँ भी लोक में प्रचलित हैं। कहा जाता है कि इसकी सभा भी बिप्रमाश्रित्य की सभा की ही भाँति थी। बाप नगरी में संसृष्ट के पठन-पाठन के लिए भोजघाता (शारदा-सदन) नाम वाली पाठशाला बनवाई। स्वयं भोज ने विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं। वह स्वयं एक धर्मज्ञ कवि तथा प्रसिद्ध साहित्य-समालोचक थे। विद्वानों के वह धाम्य दावा थे। उनकी सभा में कवियों का जमना था मया रहता था। कहते हैं वह स्वयं ऐसे कवि थे कि सरस्वती कण्ठाभरण" पुस्तक का निर्माण उन्होंने ही किया जिसमें सिमुपासबब महाकाव्य के ११ वें सर्ग के १४ वें श्लोक 'कुमुदबनमपिधि श्रीमदभोजबन्धवम्' उद्धृत किया है। आलोचक ऐसा मानते हैं कि माघ कवि राजा भोज के बाल्यकालीन मित्र थे और वे बार (बन्नेन) जिसको चरन्ति या मानवा भी कहते हैं नगरी के सासक थे। परमार बंस में एक ही भोज हुए हैं। महाकवि माघ के सिमुपासबब को मान लेने के लिए ही उक्त श्लोक कुमुदबनमपिधि श्रीमदभोजबन्धवम्—स्व-रचित सरस्वती-कण्ठाभरण में उद्धृत किया प्रतीत होता है। बादासे राजा भोज को छोड़ कर राजा भोज कोई धाम्य न थे। उक्त बार नगरी वाले राजा भोज का समय टीप्पटीय प्यारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग (१०२२ ई० देखिये सुबलमित्र का बंमसाभिधान) था। बसवीं शताब्दी के उत्पन्न हुए 'कतमकृतिकार' की दुर्गोष्ठि बापवि और बाखमट्ट के उद्धरण तो देते हैं पर माघ का उद्धरण नहीं देते। वह देते भी कैसे, क्योंकि जो स्वयं पहिले उत्पन्न हुआ हो वह पीछे जाने वालों का नाम कैसे लिख सकता है? नबम शताब्दी में होने वाले काश्मीरी पण्डित भानवबर्ननाचार्य के बताए हुए ध्वन्यालोक ग्रन्थ के द्वितीयोद्योत में माघ-यश के उल्लेख को देखने से (हो सकता है ध्वन्यालोक में वह श्लोक प्रसिद्ध हो) ऐसी भी संभावना की जा सकती है। माघ कवि को भानवबर्नन से पहले का मानें धनवा बर्ननी के कलाट पंडित के अनुसार बबम शताब्दी से भी पूर्व का मानें वा बर्ननी के बंकोजी पण्डित के अनुसार माघ को खट्टीय १४वीं शताब्दी के मध्यवर्ती भाग का मानना स्वीकार करने से तो भोजदेव का समय भी उसी १४वीं शताब्दी में मानना पड़ेगा। यदि ऐसा हो तो उसी भोजदेव ने अपने बनाये सरस्वती-कण्ठाभरण ग्रन्थ में सद्यम शताब्दी के अन्त में उत्पन्न हुए बबमृति के बीरचरित से और उत्तररामचरित से जो प्रमाण लिखे हैं वे किसी प्रकार भी संगत न होंगे। इससे माघ को भोज के समकाल १०२२ ई० धनवा ११वीं शताब्दी के अन्त में मानना ही उचित प्रतीत होता है।

उपयुक्त पंक्तियों से तो यही प्रतीत होता है कि इन आलोचकों का भी यही मत है कि हमारे महाकवि माघ भोज राजा के समय में हुए थे। राजा भोज के साथ जो माघ सम्बन्धी बातें हमने उद्धर दी हैं उनसे भी स्पष्ट है कि माघ राजा भोज के सम-सामयिक थे किन्तु वह तो स्पष्ट नहीं है कि सरस्वती-कण्ठाभरण के लेखक बार-नगरी के राजा ११वीं शताब्दी वाले भोज ही थे। यह कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है कि उनकी रचित सरस्वती-कण्ठाभरण में धनुष-धनुक श्लोक हैं या माघ उसी भोज के समय के थे। ये भोज माघ से इतने बचें परचाए हुए कि यदि सिमुपासबब काव्य का श्लोक अपनी रचित पुस्तक में रखें तो इसमें धारण्य ही क्या है। पीछे जाने वाला अपने पूर्वजों के ग्रन्थों की उदाहरण योग्य बातें अपने ग्रन्थ में रख सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि परमारकुल के भोज जब भारतभूमि पर घासन कर रहे थे उस समय उनके अधिकार में महेश्वर (महिष्मती) घाट गाँव, उज्जयिनी जन्मभूमी, विजौड़, घाट, चन्द्रावती मंडु आदि राज्य सम्मिलित थे। परमार कुल में भी तीन राजा भोज नामधारी हुए थे जिनमें से प्रथम राजा भोज का समय वि सं ६११ ई द्वितीय का वि सं ७२१ ई और तृतीय का वि सं १०४४ से लेकर वि सं ११०० ई। कहते हैं ये ही अन्तिम भोज मानवा के परमारों में प्रसिद्ध हुए हैं, अन्य दो भोजों के विषय में विद्वानों की चारखा है कि वे परमार नहीं थे अन्य बंधों से उनका सम्बन्ध था।

“भोज प्रबन्ध” में भोज के सम्बन्ध की कहानियों को एकत्र कर माघ, कानिवास जनमुक्ति बाण वंशी मयूरवि कवियों को लाकर लेखक ने जिस भाँति रक्सा है हमारे मत में वे सब अविश्वसनीय नहीं कही जा सकती। जिनमें कुछ न कुछ तथ्य अवश्य है ‘जह्नुमा जनमुक्ति’ के आधार पर वे सब सत्य हैं किन्तु बात केवल इतनी ही है कि भोज प्रबन्ध में जिस विद्याभ्यसनी बानी, बहोसिप्पा वाले भोज का वर्णन है वह भिन्न-भिन्न युगों वाले भोज थे। जैसा पहले कहा गया है कि कई भोज हैं। भोज एक उपनाम या उपनिधि भी रही है। जैसे विक्रमादित्य की पत्नी को भीति भीति के राजाघों ने पीछा के कार्य दिखता कर प्राप्त की भोज-पत्नी को भी वही भीति विभिन्न राजाघों ने धारण की हो। समस्त भोजों ने जो जो सुन्दर कार्य किए उन्हीं का वर्णन भोजप्रबन्ध में है। भोजप्रबन्ध का अर्थ वही तो हो सकता है कि भोज के सम्बन्ध में बातें बताने वाले प्रबन्ध जिसमें विद्यमान हों। बस्तास कवि ने भोजप्रबन्ध में भोज के विषय की ही बातें लिखी हैं न कि पार गेय भोज के कार्यों की प्रवृत्ति। यह बात अवश्य है कि उसमें पार गेयवाले भोज राजा की बातें भी पा गयी हैं। जैसे धाक्राट में विभिन्न भाषा वाली बोलियाँ विद्यमान हैं किन्तु वैज्ञानिक उन समस्त का अभ्येष्ट करके जिस प्रकार स्वकार्योपयोगी बातों को एकत्र करके एक नई वस्तु को सामने से धाता है उसी भाँति इस भोज प्रबन्ध में भोज राजाघों की सुनी सुनाई बातों का ही एक ऐसा सम्मिश्रण बस्तास कवि ने लाकर उपस्थित कर दिया है कि सहसा उन पर विश्वास ही नहीं किया जा सकता क्योंकि कहीं कानिवास और कहीं भारवि और मयूर। वे सब ब रें परस्पर विरोधिता ही लगती हैं किन्तु हमको एकत्र करना है और बसताना है कि भोज प्रबन्ध को यद्यपि ऐतिहासिक रूप में उपस्थित नहीं किया जा सकता किन्तु उसमें जो कुछ भी मिला है वह सत्य नहीं है तो असत्य भी नहीं कहा जा सकता। कुछ तथ्य उसमें अवश्य है। भोजप्रबन्ध की भाँति मेरुधाचार्य ने अपने निबन्ध में ‘भोज और माघ’ का निर्देश किया है। प्रबन्धविद्यामणि और प्रभावकचरित के लेखकों पर जिन्होंने भोज और माघ के सम्बन्ध में बोझा सा मिला है, सहसा अविश्वस्य नहीं किया जा सकता। प्राचीन पंडित विद्वान् होने के साथ-साथ सत्यवत्त अवश्य थे। उनके चरित्र ही महान् थे। वे बहुभूत विद्वान् थे। भोज जो कुछ उन्होंने मिला है उस सबको उस समय की जनमुक्ति का आधार पाकर अतीव सोच समझ के साथ मिला है। फिर माघ को अभी इतने वर्ष भी तो नहीं हुए थे कि उन्हें सर्वथा भुला दिया जाता। रागा प्रताप और विभावो की गाथाएँ आज भी मौजूद हैं। बतारये धात्र से भित्तिने वर्ष हुए हैं? खतन वर्ष तो माघ को दिवंगत हुए भी इन सत्त्वों के समय में नहीं हुए। फिर प्राचीन परिपाटी कुछ बातों को कण्ठस्थ रखने की सी भी और कहानियों को

मुनामे का अधिक प्रकार वा । यद्यपि भोज के साथ मास का सम्बन्ध प्रबल वा किन्तु भोज से भोज का वा यही बात हमको देखनी है ।
 बारनगरी वाले भोज का सम्बन्ध मास के साथ निम्नलिखित कारणों से नहीं स्थापित हो सकता

(१) सोमदेव अपने 'यशस्विलकचम्पू' (१३१ ई०) में "तथा सर्वभारती भवन्मृति, मनुहति, मनुमिन्तु गुहाद्य व्यास कोश कानिवास बाण, मयूर, नागमण कुमार, माघ राजदेवराज महाकवि काव्येषु तत्र तथावसरे भरतप्रणीते काव्याध्याये सर्वजनप्रसिद्धेषु तेषु तेषुपाख्यानेषु च कथं तद्विषया मही प्रसिद्धिः"
 सोमदेव का—यशस्विलक भा० ४ पृ० ११३

इस भाति मास का उल्लेख करते हैं ।

(२) श्री धामन्यवर्चन (८५० ई०) में अपने ध्वन्यालोक में विद्युपातवच के दो श्लोकों (सर्व सुवीच श्लोक ३३ तथा सनं पंचम श्लोक २६) को उदाहरण के रूप में उद्धृत करते हैं । श्लोक ये हैं—

रम्या इति प्राप्तवती पलाका रागं विविक्ता इति बर्द्धयन्ती ।
 यस्यामसेवस्त नमस्त्वलीका सम वभूभिर्वसभीर्गुवान् ॥ (सं० ३ ३३)
 नासाकुलं परिपतन् परितो निकैताम्
 पुंमिनं कैशिकदपि बन्धिमिरस्ववर्गिम् ।
 तस्यै तयापि न मुगं कश्चिदद्गमानि
 राकर्णपूर्वमयनेपुह्येसण्णी ॥ (सं० ५ २६)

(३) राष्ट्रकूटों के राजा नृपतुंग (सन् ८१४ ई०) में अपनी कन्नड़ भाषा में जो ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' लिखा है उसमें माघ को कानिवास का समकालीन स्वीकार किया है । इससे साध होता है कि नृपतुंग के समय नहीं छत्ताप्पी के पूर्वार्द्ध में माघ ने साहित्य संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी । नृपतुंग ८१४ से ८८० ई० तक विद्यमान थे । वे ही धनोदभवर्चन प्रथम के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

(४) माघवर्च विद्युपातवच महाकाव्य के बीसवें सर्ग के अन्त में कविबंध बर्द्धन में लिखते हैं कि उनके पितामह सुप्रभदेव के आश्रयदाता राजा वर्मल (वर्मलत) थे । राजा वर्मलत का एक शिलालेख बरगन्धक (सिरोही राज्य में) से प्राप्त हुआ है जिसका बर्द्धन पहले दिया था हुआ है । वह शिलालेख बीस पङ्क्तियों के प्रमाण सचिव से, १८२ का है यद्यपि ईस्वी सन् ७६० का हुआ । सुप्रभदेव को वर्मलत के प्रधान सचिव से, सन् ७६० ई० के समीप अवश्य विद्यमान थे इससे उनके पुत्र बरतक सन् ८०० ई० के लगभग विद्यमान होने चाहिए । सन् ७९० तक वर्मल सुभावस्था को पार कर रहे होते और जब वे मृत हो गये तब सुप्रभदेव यंत्री हो गये । सुप्रभदेव सन् ८८० तक होये तब माघ रीधबावस्था में हो गये ।

इस भाति बहिरंग प्रमाणों से तो माघ को ११वीं छत्ताप्पी में किसी भी अवस्था में नहीं रखा जा सकता, फिर धारा नगरी के राजा भोज के समय में कैसे रखा जा सकता है । बारनगरी के राजा भोज के समय में महाकवि माघ का होना विनाश सर्वप्रथम वा

(ग) मिहिरमोज का परिचय :

मिहिरमोज के पूर्व कन्नौज के शासक ३—मिहिर मोज का बुद्धात्म निराने के पूर्व पाठकों के लिए परिचयात्मक रूप से मोज के पूर्व कन्नौज के कैन-कैन शासक हुए इसका भी थोड़ा बहुत चित्र उपस्थित कर देना यहाँ पर समीचीन होना कारण इसका यह है कि आज भारत की राजधानी जिस भाँति दिल्ली बनी हुई है प्रतिहार पूर्वों के समय में कन्नौज भी इसी भाँति उत्तरी भारत की राजधानी बन चुका था। कन्नौज का महत्व उस समय में वैसा ही था वैसा भीषों और पुष्टों के काम में पाटलिपुत्र का तथा मुसलमानों के समय में दिल्ली का।

शाहजीं घनाम्बी के चारम में यथोबर्मन नामक एक प्रतापी शासक का उत्पन्न हम को उपलब्ध होता है जिसमें ७३० से ७४० ई. जबका ७२१ ई० से ७३२ ई० तक वहाँ के सम्राट के रूप में शासन किया। बालकपतिराज को योद्धा (वीर बंगाल के राजा का बन्धु) यथो-बर्मन्, धर्म में दिया हुआ है कि वह पण्डित राजा के दरबारी कवि बालकपतिराज को अपने साथ ही ले आया और अपने यहाँ उसको कविराज की उपाधि से विभूषित किया। वह योद्धा यथोबर्मन् की मृत्यु के उपरान्त लिखा गया था। बालकपतिराज ने लिखा है कि कारवीर नरेश समिदाविराज और बलिष्ठ के बालुस्वों से इन्हें हार खानी पड़ी। मन्त्रुति भी इनके शासन-काल में थे। मन्त्रुति और बालकपतिराज दोनों ही यथोबर्मन के दरबारी कवि रहे थे। यथोबर्मन मोहरि का नीरव के नाम से भी प्रसिद्ध है किन्तु वह किस बंध का था यह अभी तक पता नहीं है। कुछ इसको मालवा का यथोबर्मन कहते हैं। चीन के साक सन् ७३१

में इसका राजनीतिक संबंध था। नामक के बिना सिध्द संघर्ष वाले सिक्किम में R. Bathianathaler भारत के इतिहास प्रथम भाग में यथोबर्मन कन्नौज पृष्ठ १२१ पर लिखते हैं 'The guardian of the world shining like the sun with his foot on the head of all kings' ललितविराज का गायी बरणीक इस बंध का दूसरा प्रतापी राजा हुआ जिसने कन्नौज नरेश बल्लभुष को हराया। बरणीक के समय में बल्लभ, बालन, बालोदरमुख आदि विद्वान् हुए।

बंगाल में पालवंश का राज्य था। पूर्व के परचाट बंगाल पर घासाम, कन्नौज, और कारवीर के राजाओं में घासामल हुए। इसी घासामल के समय में मोपाल नामक व्यक्ति ने बंगाल में अपने बंध का राज्य स्थापित किया जो ७६१ से ७७० ई० तक माला जाता है। इसी मोपाल के उत्तराधिकारी प्रतापी राजा बर्मपाल ने कन्नौज के बल्लभुष के परचाट होनेवाले इन्द्राधुष को ८१० में यहाँ से उतार दिया और बल्लभुष को शासक बनाया। यह बर्मपाल बीर था।

नालमट प्रथम (७२१ ई० से ७४० ई० तक) प्रतिहार बंध के जन्मदाता हुए हैं। इन्होंने विश्व के दरवों में मुकामला किया। वह नामक प्रथम भीमपाल का राजा था। कन्नौज तक इस राजा का राज्य था। ऐसा कहा जाता है कि इसकी राजधानी मारवाड़ (राजस्थान) में बंदीर थी। उद्योहों के पूर्व बंदीर मारवाड़ की राजधानी था। भीमपाल और बंदीर कुछ भी हो मारवाड़ में हैं और मारवाड़ को नहीं गुजरात कहा जाता था। भीमपाल में इस प्रतिहार बंध के पूर्व आपबंस के घासामुष का राजा था। (इतिवै हिंदी

जाफ़ मैटिकल इंडिया की १ पृ ३१७ बाईं सी की वीचा) इसलिये यह संभव नहीं कि नागमट प्रथम भीनमास के राजा उस समय हो चुके थे। ऐसा प्रतीत होता है कि जब म्याम्रमुख सन ६२५ (एक सौ ११०) में भीनमास में राज्य कर रहे थे तब कदाचित नागमट प्रथम नहीं धर्म्यज राज्य कार्य या सैनिक कार्य में व्यस्त होमे या इस रूप में उनका अस्तित्व ही न होमा। बीच में सिक्का है कि नागमट भीनमास में उस समय साक्षर थे। भीनमास उसकी राजधानी थी। अस्तु, नागमट के पश्चात् उसका भतीजा ककुत्स्य (७४० ई० से ७११ ई०) राजा हुआ। उसका भाई देवराज फिर गद्दी पर बैठे और देवराज के पश्चात् (७११ से ७७० ई०) बत्सरज उसका पुत्र गद्दी पर बैठे (७७० ई०-८०० ई०)। बत्सरज बड़ा पराक्रमी था। इसने कन्नौज के राजा को पराजित किया। कन्नौज का बर्मबल का साम्राज्य बत्सरज मंडोर वाले क हाब से सदा के लिए छीन लिया गया। कन्नौज में उस समय इन्द्रायुध का ही राज्य था जैसाकि गिमातेज के ब्लोक से प्रष्ट है—

छाकैव्यब्द क्षतेषु सप्तसुविश्र पंधात्तरेपूत्तरासु, पातीन्द्रायुधनाम्निक्कप्पणुपजे
थीबत्समे दक्षिणाम्।

पूर्वा थीमदवन्तिभूमृतिनुपे बत्सादि राजेऽराम्, सीराणामधिमण्डसे
जययुते, धीरेवराहेवति

एक संवत् ७०१ में जब उत्तर में इन्द्रायुध राजा था और की कृष्ण का पुत्र (गोविंद० डि०) थीबत्सम दक्षिण में राज्य कर रहा था अर्थात् तथा पूर्व दिशा में राजा बत्सरज और पश्चिम में उस समय सीराष्ट्र की सीमा की रक्षा व्यवस्था कर रहा था।

बंवास के मोराल को भी इसी बत्सरज ने पराजित किया था। गौड और बंग नाम वाले क्षेत्रों (देशों) को उसने छीन लिया। किन्तु राष्ट्रकूट के राजा ध्रुव ने सबसे छीन लिया और फिर नागमट द्वितीय ने जो बत्सरज का पुत्र था वापस उन्हें छीना और ब्रह्मयुध को कन्नौज की गद्दी से ८१९ ई० के लगभग हटा कर विजयनगर करते हुए भीनमास के उस नागमट द्वितीय ने कन्नौज को गुर्जर प्रतिहारों की राजधानी बना दिया। इसके पश्चात् रामराज (८१४ से ८४० ई०) गद्दी पर बैठे। तत्पश्चात् प्रतिहारवंश के सुप्रसिद्ध महान् शक्तिवादी सम्राट् मिहिर भोज सम्राट् हुए।

मिहिर भोज (८३१ से ८८३ ई०)

आदिबराह तथा प्रमान के उपनामों की धारण करने वाले परम मामबत भोज बज राज्य कर रहे थे उस समय उनके राज्य की सीमा उत्तर प्रदेश पूर्वी छत्तस्र का पंजाब प्राप्त उज्जैन सम्पूर्ण राजस्थान ग्वाभियर मानवा मुबराज और काठियावाड़ थी। ब्रह्मचंड के अंगेा उनके सामन्त थे। उनके पासके और राज्य की सीमा को देखते हुए हम को सहसा हर्ष तथा गुणवत्तामय साम्राज्य का स्मरण हो जाता है। भोज क गिमातेजों म बहुत सी बातें मिलती हैं। हमने समय के बाँदी के बहुत से मित्र पाये जाते हैं। भोज बिल्कुल या सूर्य का उपासक था। हमारी पताका में बराह का चिह्न था। भोजपुरा नाम की नीर इसी ने डाली। अरब यात्री मुसैयान (८११ ई०) का कहना है कि गुर्जर के नृप भोज के

पास धरंक्ष्य देना भी। मारुत के घोर राजाओं के पास इसी धार्मिक घोर दमितघाती
 बुद्धसत्त्व देना म भी जितनी शक्ति के पास थी। जैसा भी धर्मनिरास थे। इसके पास
 पर्याप्त बन था। उसी की धर्मीयता में मारुत मुनेरों से जितना बचता रहा मारुत घोर
 किसी राजा की धर्मीयता में नहीं बना। क्योंकि जब धार्मिक मान्यारी मरिच के बंधन
 बनौघों के हाथ में बा ठब मर-सेना धार्मिक भी किन्तु प्रतिहारों के हाथ में छाते ही जैसों
 घोर बोड़ों की सेना बड़ी क्योंकि प्रतिहार मारुत (पुनरात) से छाते थे जो सिच के
 ऐतिहास के समीप ही है। संस्कृत साहित्य का विद्वान राजसेनर जिसने माव महाकवि
 के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं राजा मोज के पुत्र महीपाल का पुत्र का घोर
 महीपाल के पुत्र महीपाल का भी। गुलामर जो ब्रह्म लेखक या वह इसी मोज का समसा
 मयिक है क्योंकि राजद्वन्द्व मन्त्रेर के बंधन धर्मोत्तर के (८१४ से ८८० ई) प्रथम जिन्होंने
 कविपञ्चमार्ग लिखा है उत्तराधिकारी इन्द्राद्वितीय (८८० से ९१२ ई) के साथ मोज का
 मुक्त हुआ है। इस युद्ध में कोई विशेष बात दोनों घोर से नहीं हुई। उत्तरी भारत में मोज
 जब उत्पत्ति पर का धर्मोत्तर प्रथम (८१४-८८० ई) अपनी धार्मिक एवं धार्मिक प्रवृत्ति में
 रहते हुए धर्मोत्तर को धार्मिक से रहे थे। इन्हीं धर्मोत्तर प्रथम ने (गुप्त) कन्नड़ भाषा में
 लिखे हुए अपने कविपञ्चमार्ग में महकवि माव को कासीबास का समस्त स्वीकार किया
 है। धर्मोत्तर के धर्मगुरु जिनमें से। राजा मोज के पाँच धर्मोत्तर मिलते हैं (८४४ से
 ८८० ई०)। इसके बाद घोर उत्पत्ति की धर्मि भववर्ती का बड़ा मक्त था। राजा
 (बाप) है। कहते हैं यह भी मावद्वन्द्व द्वितीय की धर्मि भववर्ती का बड़ा मक्त था। राजा
 मोज के पुत्र महीपाल का उत्पत्ति काठियावाड़ के हनुमान नामक धर्म में मिला है (९१४ ई)
 जिससे पता चलता है कि मरुतीबराह (९०० ई०) ब्रह्मन् के बापवर्ती राजा महीपाल के
 सामन्त थे। पहले बापवर्त का राज्य भीमताल में सक्तिघाती था। जब धर्म के मुक्तमानों
 का धर्ममल ७३२-७४ ई के पास पास हुआ उस समय भीमताल में धर्मोत्तर के बापों ने मरुता
 प्रवर्धित की। इसी बापों के परचाव प्रतिहार भीमताल में धर्मोत्तर के बापवर्ती धर्मामुक्त
 धर्मतात राजा के परचाव को माव धर्म के धर्मतात के धर्मवर्ती धर्मामुक्त के धर्म में बहुमुक्त
 पावक हुए। किन्तु यह बात धर्मवर्त प्रतीत हो रही है क्योंकि धर्मामुक्त के धर्म में बहुमुक्त
 धर्मोत्तरि मिलाते हैं कि धर्म संवत् २४० (धर्मोत्तर ९२८ ई०) में उनका धर्ममुक्त विद्वान्
 राजा भीमताल के धर्मामुक्त के धर्मतात काल में लिखा गया। धर्मतात का संवत् ९८२ धर्म
 संवत् का है जिसकी का लीरीधर्मर हीराधर्म धर्मोत्तर के धर्मतात सब ही धर्मोत्तर संवत् मान
 मर ९२४ ई० का बताते हैं। धर्मतात जब मारुत में धर्मोत्तर उस समय इस भीमताल पर
 धर्मोत्तर राजा राज्य कर रहा था जिसकी धर्म २० वर्ष की थी। हो सकता है वह धर्मामुक्त
 का पुत्र हो। धर्मतात पर मिला हुआ है कि बापोलक पर धर्मतातों का धर्मतात हुआ।
 ऊपर बता दिया गया है कि राजा मोज के धर्मतात पर भी एक घोर धर्म है। बाप धर्मोत्तर
 के धर्म का धर्म है। बापोलकधर्मोत्तर धर्मोत्तर के धर्मतात में धर्मतात के धर्म में
 ही। धर्म भी हो नामद्वन्द्व प्रतिहार में भीमताल पर राज्य दिया। राजा मोज के समय में
 भीमताल घोर धर्मोत्तर धर्मोत्तर मरुत में। मोज के धर्मोत्तर द्वितीय तक भीमताल धर्मतातों
 मरुत पर जब महीपाल द्वितीय राज्य कर रहा था मोज पर धर्मतात धर्मोत्तर के धर्मतात

में स्वतंत्र हो गया। इसके पश्चात् ही (१५१ ई०) भीमसेन के शासन-काल में १८००० ब्रह्मर भीममास से बन दिये। श्री ने उस देश को त्याग दिया जो भीममास श्रीमान कहता था या अब मित्रमास हो गया।

(घ) भोज का विज्जीङ्गड़ दुर्ग पर अधिकार—

"उदयपुर राज्य का इतिहास पहली खिस्त्र में" महामहोपाध्याय डा० मोरीचकूर हीराचंद घोष राजप्रसस्ति महाकाव्य सामोसी गाँव का वि सं ७०१ (ई स १४९) के शिलालेख जयपुर राज्य बाकमू नामक प्राचीन नगर से ११ बीं शताब्दी के पास-पास की तिथि का एक बड़ा शिलालेख यजमेर बिसे के खरवा ठिकाने के धर्मगत्य नाम्ने गाँव से वि सं ८८७ (ई स ८१०) बौद्धाज घरी २ के एक खडि शिलालेख कूडा की (कुँवर के मन्दिर की) वि सं ७१८ की प्रसस्ति बीर बिमोद, नैणसी की क्पात, विज्जीङ्ग के किले के निकट पुठीसी गाँव के समीप मानसरोवर तालाब जो मोरी (मौर्यवंशी) राजा मान का बनाया हुआ बतलाते हैं उस पर वि सं ७१९ (ई. सं ७१९) का राजा मान का शिलालेख के आधार पर लिखते हुए कहते हैं कि विज्जीङ्ग का दुर्ग वि सं ७७० (ई सं ७१३) तक जो मान मोरी के अधिकार में था। तत्पश्चात् बापा नाम घरी ने विज्जीङ्ग का राज्य मान मोरी से ले लिया। कर्नस टाड ने वि सं ७८४ (ई स ७२७) में बापा का विज्जीङ्ग लेना स्वीकार किया है। राज-प्रसस्ति का अनुवाद राजा मान का ही सूचक है। राज-प्रसस्ति महाकाव्य खर्च १ का श्लोक १८ नीचे देखिये—

सत स निश्चित्य नृप तु मोरीजातीयसूयं मनुजाम-सज्जम् ।

गृहीतवादिषत्रित विमङ्गलं अक्रुज राज्य नृपचक्रवर्ती ॥

श्री घोष लिखते हैं कि कर्मीज के राजा हर्ष के समय में मेवाड़ का शासन राजा शीसादित्य कर रहा था (देखिये सामोसी का लेख)। मुहम्मद शी शीसादित्य का पांचवा पूर्व पुत्र था मुहम्मद (मुहम्मद) भोज, महेन्द्र, मान शीस (शीसादित्य) अपराजित महेन्द्र (इधरा) और काममोज (बापा)। हुए राजा मिहिरकुस के पश्चात् मुहम्मद ही सिके प्राप्त होते हैं। कुछ है कि मुहम्मद के पीछे शीस का ही बर्तन सामोसी के शिलालेख में मिलता है। सामोसी से बोड़े ही भीम बुर सिरोही राज्य का बट-नगर (बसन्तपुर या बसन्तगढ़) है। शीस ने पश्चात् अपराजित महान पराक्रमी नृप हुआ (कुँवर का लेख देखिये)। इसके पीछे काममोज (बापा) का नाम अधिक सुनाई देता है। सोने के सिक्के भी बापा के प्राप्त हुए हैं और कई शिलालेख भी। बप्प बोप्प, बप्पक, बप्प बप्पाब बाप्प, और बापा नाम मिले हैं। इसका भारतीय नाम काम भोज था। से०० यमुनादत्त पद् शास्त्री घाटपुर राज पिता स्वरूप या भीम बोने वाले को बापा कहा है। सन् ८८४ ई. में रही ने विज्जीङ्ग दुर्ग मान मोरी से लिया। एशिंग माहारम्य में बापा के पुत्र का नाम भोज और भोज का पुत्राण मिलता है। नैणसी की क्पात में बापा के पुत्र का नाम पुमाण दिया है। घाटपुर (घाहाड) की प्रसस्ति में काममोज के पुत्र का नाम पुमाण दिया है। श्री घोष हड़ बिरबास के साथ स्वीकार करते हैं कि काम भोज ही बापा के नाम से प्रसिद्ध था। बट

● प-ईतिहासपुष्पा मुहम्मदप्रसस्ति विस्तारशीममपत्त बन्धु बापा ।

विज्जीङ्गके विजयाम्भिराजबानी संस्थाप्य यो विजयमात्र समानु दिव्य ॥८॥ श्रीचरण रत्न

सन् ७१३ ई० में था। कर्नल टाड सन् ७१३ में बापा का जन्म मानते हैं। श्री श्रीमद् बापा के परचाट् कुम्माण फिर मट्ट मट्ट (मट्ट मट्ट), सिंह, कुम्माण द्वितीय कुमाण तृतीय मट्ट मट्ट (कुष्ठ) प्रल्हट, नरबाहुन धादिबाहुन अतिकुमार अम्बाप्रसाद धारि का होना बिखरे हैं किन्तु श्री सी० बी० बंस ने हिस्ट्री ऑफ मेडोकन हिन्दू इंडिया बिस्व ब्रूकरा बाप (राजपूत) में लिखते हैं कि बापा के परचाट् मुहिल फिर मोन बीन कासमोज मट्ट मट्ट सिंह महाबक कुम्माण धारि हुए। बंस महालय का कहना है कि बापा जन्म नाम बा श्रीर समय था कि बंस के नाम से बुझाविले० भी कहलाया। बसनी बंस जो गावदा में धासन कर रहा था बापा उसी बंस से प्रबन्ध था श्री श्रीमद् इस बात के लिए निवेद्य करते हैं किन्तु बंस महालय का कहना है कि धारित्व सम्बन्ध प्रन्त में अपना बसनी बंस से धामा श्रीर १४ पीढ़ी तक यह चल कर बापा पर समाप्त हुआ। बसनी के त्याग के परचाट् धारित्व नामवाले बसनी के मूप नामवा की ओर हुए। बापा का जन्म सन् ७०० या ७१३ में हुआ और उन्होंने बिचौड़ का राज्य सन् ७३० में पाया तथा सन् ७३० तक राज्य किया और फिर संन्यास ले लिया। उसके परचाट् कासमोज नामवाटी धारिक सुप्रसिद्ध हुआ जो बिचौड़ की गली पर बैठा। कर्नल टाड के अनुसार बापा के परचाट् प्रपरावित फिर कासमोज, कुम्माण मट्ट मट्ट सिंह धारि बिचौड़ के धासक हुए। श्री बंस के अनुसार कासमोज सन् ७३३ ई० तक या उससे भी धारिक था करते हैं जबकि वे कुम्माण का समय घटपुटा सिमानेबागुसार सन् ८३३ बता रहे हैं। घटपुटा में कासमोज के बाद ही कुम्माण नाम धारा है। श्री टाड के अनुसार भी जो कासमोज नामवाटी है वह कुम्माण के ही पूर्व है। कुम्माण टाड के मतानुसार सन् ८३३ ई० के हैं घट कासमोज (कासमोज) ८०० के लगभग बिचौड़ के धासपाठ से जिस समय मिहिरमोज वास्यावस्ता में कासमापन कर रहे होंगे। कासमोज का जो कुछ वर्णन मिला है उसे हमने मिहिरमोज पर लिखने के परचाट् ही लिख दिया है। कासमोज नामवाटी राजा बिचौड़ के धासन पर वे उत्तरचान् परमार भोज हुए जो बाणविपति से और वे कुछ ही समय तक रहे। श्री श्रीमद् उदयपुर राज्य के इतिहास में लिखते हैं (पृ० १३१) कि मुंज ने धाहाड़ को ठोड़ा और बिचौड़ पर अपना धारिकार जमाया। मुंज का उत्तरधारिकारी और छोटे भाई विबुरज का पुत्र भोज बिचौड़ के किने में रहा कछा या जिसने विबुरज नारायण' इस उपनाम की स्मृति में विबुरजनायक नामक सिव का मन्दिर भी बनवाया था जो धाज मोकन (समिडेस्वरजी) का मन्दिर कहलाता है।

निष्कर्ष निकला कि बिचौड़ के किसी भी भोज नामवाटी या उपनामवाटी वह बाहे कासमोज हो बाहे कासमोज हो राजा भोज के समय में माय प्रबन्ध थे। इतिहास भोज तथा बिचौड़० भोज के साथ हलका संपर्क था।

● बिद्येय के लिए लेखक के विरुद्ध राजपूत मनुष्य बत पट्टास्त्री रचित 'वीररत्न रत्न' काव्य के ६, ७ श्लोक को देखें।

● तत्रामवदिविचि-नीति-भुल-प्रयोधे बाणस्पतेरपि सुविस्मयमादधान।

विशालः पुत्रि-वरिष-वर्षि-नीति भुलसीकृताक्षिभवाहमयोऽप्रमीय ॥१॥

धनुर्जयमिषरपूर्यणि वीरिष-विशाल-हृदयं विनिवेद्य दुर्गम्।

विशाल-मितिपतिविजनामवेयमुशान्वितं तत्करोतिस्व विमूढम् ॥२॥

'वीरभूमि' श्रीमत्साध सास्त्री

(३) मिहिरमोज और माघ—

मिहिरमोज (८१३-८८३ ई०) के विषय में जो कुछ हमने भिन्ना है उससे माघ का सम्बन्ध कहाँ तक है इसी को हम निम्न पंक्तियों में स्पष्ट करेंगे—

(१) मिहिरमोज ने अपना उपनाम आदिवराह भी रखा था यह बात पाठक मिहिरमोज पर लिखी हुई परिचयात्मक टिप्पणी से जान गये होंगे। यही नहीं उसकी पताका में बराह का चिह्न भी रहता था। उसने शासन काल के (८१३-८८३ ई.) पांच विमानेष प्राप्त हुए हैं और अनेक जाँची सोने के सिक्के तथा चाँदपत्र भी मिलते हैं। सिक्कों पर एक ओर महाविषराह है तो दूसरी ओर अनुप (चाप) का चिह्न है।

माघ कवि ने अपने महावाक्य सिन्धुपामवश में स्थान-स्थान पर बराह, आदिवराह महावराह शब्दों का प्रयोग जो श्लोकों में किया ही है वैसे अपोलिखित श्लोकों से सात हो जायगा किन्तु एक श्लोक में तो यहाँ तक कह दिया है कि सब प्रकार से सुयोग्य माघ जैसे राजा के रहते हुए दूसरा कौन ऐसा है जो सशिव राजाघों के स्वल्प के अनुरूप राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर सकता है (अर्थात् कोई नहीं) मन्त्र इस बरती को ऊपर उठाने की क्षमता भी बराह को छोड़कर अन्य किस पुरुष में है? (अर्थात् किसी में नहीं) देखिये वह श्लोक यह है—१४० सर्वं ये युधिष्ठिरं ह्यपि कहे नये दसर्वं श्लोक का उत्तर श्रीकृष्ण के मुख से महाकवि माघ इस रूप में लिखा रहे हैं—

“तत्सुराजि भवसि स्थिते पुन कं क्रतु यजसु राजसक्षणम् ।

उद्भूतो भवति कस्य वा सुव शीघराहमपहाय योग्यता ॥”

उपबृंह श्लोक से संकेत मिलता है कि माघ कीवराह नामवारी किसी नृप के आश्रय में रहे होंगे और वह नृप भी युधिष्ठिर की ही भाँति बानी नामिक गुणग्राही एवं सम्राट् की पदवी को सुसोमित कर रहा होना। बरती को ऊपर उठाने की क्षमता पराक्रमी महावीर एवं सब भाँति से सुयोग्य पुरुष में ही होती है। मिहिरमोज का पृथक् रूप में परिचय देते समय हमने प्रदर्शित कर दिया था कि उसकी राज्य सीमा कहाँ तक थी वह कितना पराक्रमी था तथा भक्तवती का उपासक होने के साथ-साथ विष्णु और सूर्य का भी परमभक्त था। विमानेषों से तो उसके राज का परिचय प्राप्त होता है किन्तु सिक्कों के एक ओर के चाप चिह्न से उसके पराक्रमी होने का अर्थवा चापबाण (प्रतिहार की एक शाखा) का होने का पता लगता है। यदि माघ कवि बराह के समय में न होते तो अपने श्लोकों में जैसे सर्व क प्रथ में श्री राज्य को किसी भी रूप में ला रखा है वही भाँति बराह राज्य को भी लाकर न बसोटते। देखिये—

(१) प्रथम सर्वं	श्लोक	३३ या ३४	हेतुयोजुतं फणानृतां धारनमेरुमोक्षम् ।
(२) चौदहवां पद्य	श्लोक	१४	यो बराहमपहाय योग्यता ।
(३) "	श्लोक	४३	साधकोत्तमुत्तिता ।
(४)	श्लोक	७१	इधुम मातिकुपुर्बमुन्धराम् ।
(५) "	श्लोक	८६	या कोसता बिभ्रतु बन्दुम् ।
(६) पन्द्रहवां सर्वं	श्लोक	५	प्रतपार्णवोत्थित इवादिपूकर

सन् ७१३ ई० में बा । कर्नाट टाइल सन् ७१३ में बापा का जन्म मानते हैं । श्री श्रीमन् बापा के पश्चात् कुम्माण फिर भट्ट भर्तृभट्ट (भर्तृभट्ट) सिंह कुम्माण द्वितीय कुमाण तृतीय, भर्तृभट्ट (दूसरा) बल्लभट्ट, नरबाह्म शास्त्रिबाह्म शास्त्रिभार, कुम्माणप्रसाद शास्त्रि का होना बिस्ते हैं किन्तु श्री सी० श्री० बंध ने हिस्ट्री ऑफ मेडीकल हिन्दू इडिया बिस्व दूसरा भाग (राजपूठ) में लिखते हैं कि बापा के पश्चात् तुहिल फिर भोज, श्रीमन् कालभोज भर्तृभट्ट सिंह महामन्त्र कुम्माण शास्त्रि हुए । बीच महात्म्य का कहना है कि बापा जन्म नाम बा श्रीर समय बा कि बंध के नाम से पुत्रादित्य० भी कहलाया । बलभी बंध जो मायबा में धासन कर रहा बा बापा सही बंध से प्रत्यक्ष बा श्री श्रीमन् इस बात के लिए निषेध करते हैं किन्तु बीच महात्म्य का कहना है कि प्राप्तिव्य चन्द्र चन्द्र में सवाना बलभी बंध से प्राया श्रीर १४ पीढ़ी तक यह चल कर बापा पर समाप्त हुआ । बलभी के त्याग के पश्चात् प्राप्तिव्य नामनाले बलभी के नृप नावबा श्री श्रीर हुए । बापा का जन्म सन् ७०० या ७१३ में हुआ और उन्होंने चित्तौड़ का राज्य सन् ७३० में पापा तथा सन् ७३० तक राज्य किया और फिर संन्यास ले लिया । उसके पश्चात् कालभोज नामवारी धर्मिक सुप्रसिद्ध हुआ जो चित्तौड़ की बही पर बैठा । कर्नाट टाइल के अनुसार बापा के पश्चात् अपराधित फिर कलभोज कुम्माण भर्तृभट्ट सिंह प्राप्ति चित्तौड़ के शासक हुए । श्री बीच के अनुसार कालभोज सन् ७३३ ई० तक या उसके भी धर्मिक था करते हैं जबकि वे कुम्माण का समय भटपुछ दिनालेखानुसार सन् ८३६ बता रहे हैं । भटपुछ में कालभोज के बाव ही कुम्माण नाम प्राया है । श्री टाइल के अनुसार भी जो कलभोज नामवारी है वह कुम्माण के ही पुत्र है । कुम्माण टाइल के मतानुसार सन् ८३३ ई० के हैं अथ कलभोज (कालभोज) ८०० के लगभग चित्तौड़ के शासक थे जिस समय मिहिरभोज शासकत्वा में कालयापन कर रहे होते । कलभोज का जो कुछ वर्णन मिलता है उसे हमने मिहिरभोज पर लिखने के पश्चात् ही लिख दिया है । कलभोज नामवारी राजा चित्तौड़ के शासन पर वे उत्पन्नान् परमार भोज हुए जो बापविपति ने श्रीर है कुछ ही समय तक रहे । श्री श्रीमन् उदयपुर राज्य के इतिहास में लिखते हैं (पृ० १३१) कि मुंज ने आहाड़ को छोड़ा और चित्तौड़ पर अपना अधिकार जमाया । मुंज का उत्तराधिकारी श्रीर छोटे भाई विजयराज का पुत्र भोज चित्तौड़ के किले में रहा करता था जिसे 'विजयन नायवल्' इस उपनाम की स्मृति में विजयननायवल् नामक सिक्का का मन्दिर भी बनवाया था जो आज मोरल (समिडेस्वरवी) का मन्दिर कहलाता है ।

निष्कर्ष निकला कि चित्तौड़ के किसी भी भोज नामवारी या उपनामवारी वह चाहे कालभोज हो चाहे कलभोज हो राजा भोज के समय में माय प्रत्यक्ष थे । इतिहास भोज तथा चित्तौड़ के भोज के साथ इनका संपर्क था ।

० विषय के लिए लेखक के पितृव्य राजपूत मनुना बत पद्मास्त्री रचित 'बीछरज्ज रज्ज' काव्य के ६, ७ श्लोक को देखें ।

● तत्तामवदिविदि-नीति-गुण प्रयोगे वाचस्पतैरपि सुविस्मयमादाबल- ।

विनाङ्कः सुवि-चरित-विधि-नीति- सुस्तीकृताचित्तपरावतभोजनीज- ॥१॥

सत्पुत्रभूमिभारमुदंति चरितार्थ-विनासनं हस्तमं विनिवेष्ट्य पुनम् ।

विनाशर विविपक्षिजनामवेयमुद्राहितं तदकरोत्तिस विनकुटम् ॥२॥

वीरभूमि शोभातान शास्त्री

(४) मिहिरभोज और माघ—

मिहिरभोज (८१५-८८५ ई०) के विषय में जो कुछ हमने लिखा है उससे माघ का सम्बन्ध कहाँ तक है इसी को हम निम्न पंक्तियों में स्पष्ट करेंगे—

(१) मिहिरभोज ने अपना उपनाम आदिशराह भी रक्खा था यह बात पाठक मिहिरभोज पर लिखी हुई परिचयात्मक टिप्पणी से जान गये होंगे। यही नहीं उसकी पताका में बराह का चिह्न भी रहता था। उसके शासन कास के (८१५-८८५ ई०) पांच शिनामेष प्राप्त हुए हैं और उनके आदी सोने के सिक्के तथा ताम्रपत्र भी मिलते हैं। सिक्कों पर एक घोर महाविशराह है तो दूसरी घोर अनुप (बाप) का चिह्न है।

माघ कवि ने अपने महाकाव्य चिकुपालवध में स्वान-स्वान पर बराह आदिबराह महावराह राव्यों का प्रवेश तो दसोहों में किया ही है जैसा अयोनिष्ठित स्तोत्रों से ज्ञात हो जायगा, किन्तु एक श्लोक में तो यहाँ तक कह दिया है कि सब प्रकार से सुमोक्ष प्राप्त जैसे राजा के रहते हुए दूसरा कौन ऐसा है जो अथिय राजाओं के स्वस्व के अनुरूप राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर सकता है (अर्थात् कोई नहीं) मन्त्र इस बरखी को ऊपर उठाने की क्षमता भी बराह को छोड़कर अन्य किस पुरुष में है? (अर्थात् किसी में नहीं) देखिये वह श्लोक यह है—१४वें सर्ग में युधिष्ठिर द्वारा कहे गये दसवें श्लोक का उत्तर श्रीकृष्ण के मुख से महाकवि माघ इस रूप में दिया रहे है —

“तत्सुराशि भवति स्मिन् पुनः कः क्व तु यजतु राजसक्षराणाम् ।

उदयुती भवति कस्य वा सुख श्रीवराहपहाय योग्यता ॥”

उपयुक्त श्लोक से सकेत मिलता है कि माघ श्रीवराह नामधारी किसी नृप के आश्रय में रहे होंगे और वह नृप भी युधिष्ठिर की ही भाँति शानी शासक गुरुप्राही एवं सम्राट् की पदवी को सुपोषित कर रहा होगा। बरखी को ऊपर उठाने की क्षमता पराक्रमी मत्स्यी एवं सब भाँति से सुखी पुरुष में ही होती है। मिहिरभोज का पृथक् रूप में परिचय देते समय हमने प्रदर्शित कर दिया था कि उसकी राज्य सीमा कहाँ तक थी वह किन्तु पराक्रमी था तथा मत्स्यी का उपासक होने के साथ-साथ विष्णु और सूर्य का भी परमभक्त था। शिनामेषों से तो उसके धान का परिचय प्राप्त होता है किन्तु सिक्कों के एक घोर के बाप चिह्न से उसके पराक्रमी होने का अथवा बापवंश (युधिष्ठिर की एक शाखा) का होने का पता लगता है। यदि माघ कवि बराह के समय में न होते तो अपने श्लोकों में जैसे सर्ग के अन्त में श्री राजा को किसी भी रूप में या रक्खा है उसी भाँति बराह राज्य को भी साक्षर न पसींटे। देखिये—

(१) प्रथम सर्ग	श्लोक	११ या १४	हेतयोद्धतं पञ्चाभूतं धारयन्मैकमीकृतम् ।
(२) श्रीवराह संग	श्लोक	१४	यो बराहपहाय योग्यता ।
(३) "	श्लोक	४१	आपन्नोऽनुमितिः ।
(४) "	श्लोक	७१	स्मृतं नासिकवपुर्बभूवुराम् ।
(५) "	श्लोक	८६	यः कीलतां बिभ्रत् बट्टाम् ।
(६) पन्द्रहवां सर्ग	श्लोक	५	प्रमयालुबोरिषत् इवादिपूकत् ।

- (७) भट्टराज्य सर्व श्लोक २५ मण्डल भोवराह ।
 (८) " श्लोक २८ कौलकेतिष्ठित ।
 (९) समीपता सर्व श्लोक ११५ समुद्र तराई (बराह भवदारधारण करने
 से पृथ्वी का भार उतारा)
 (१०) बीसवां सर्व श्लोक ३३ समिमात्रवराहदेह ।

उपयुक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि माव कवि भोज राजा के सम-
 कासीन के जैसा भोजप्रबन्ध प्रबन्धभित्तामणि और प्रभावकचरित में भोज और माव की
 बर्णना करते हुए बताया है । वे बातें कहीं तक सत्य से सम्बन्ध रखती हैं धमी इस विषय की
 और हथको नहीं जाना है किन्तु हमको तो पाठकों के समक्ष यह जाकर रखना है कि भोजराज
 और माव कवि के परस्पर बाह्य मैत्रीभाव का सम्बन्ध हो बाह्य आशयवाता और आश्रित
 का किन्तु सम्बन्ध अवश्य या अन्यथा माव कवि इस बात से स्तान स्तान पर भोज उपनाम
 बराह का अपने महाकाव्य में उल्लेख नहीं करते । भानुवर्धन (८४० ई०) ने अपने
 रत्नावली में विजयपालवर्धन के दो श्लोकों को उद्धृत किया है ।

प्रमोदवर्ध प्रथम (गुप्तगुप्त) ने (८१४-८८० ई०) ने अपनी कविराजमार्ग ग्रन्थ
 रचना में माव को कामिदास का समकक्ष कहा है ।

इन उपयुक्त हो बातों के विभिन्न वर्णनों से इतना तो बात होता ही है कि माव
 इस समय के पूर्व के ही हो सकते हैं परन्तु के नहीं । मिहिरभोज का समय राज्यारोहण
 का ८३२ या ८३८ ई० का स्वीकार कर लिया गया है । उसने ४० वर्ष राज्य किया । जब
 यह राज्यसिंहासनाब्द हुआ उसकी आयु लगभग ५० या ३५ वर्ष की थी । यदि ऐसा है तो
 उसका जन्म धनु ८०० ई० के लगभग आता है और हमने वर्मन राजा के विनासेन पर
 संवत् सम्बन्धी बातें लिखी हैं उस स्थान पर एक संवत् निर्धारित करते हुए स्पष्ट किया
 है कि सुप्रसन्न यह ७६० ई० तक थे तो उनके पौत्र माव उस समय तक अपने वात्सल्य
 का जीवन प्रसरण व्यतीत कर रहे होंगे । मुख्य मंत्री के पौत्र का सम्पर्क यदि राजा से हो
 तो कोई आश्चर्य भी नहीं । किन्तु कहीं वर्मन राजा और वहाँ भोज ? हो सकता है कि
 पिता वत्स का सम्बन्ध भोज के पिता से रहा हो फिर छूट चुका हो और पुत्र का सम्बन्ध
 वापिस भोज के साथ बंध गया हो प्रकृति किसी अन्य कारण से या विद्वता से माव और
 भोज में सम्बन्ध स्थापित हो गया हो । ठीक से कहा नहीं जा सकता किन्तु सम्पर्क अवश्य
 रहा होगा । भोजप्रबन्ध प्रबन्धभित्तामणि तथा प्रभावक चरित के अनुसार माव भोज की
 जीवितावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हुए क्योंकि भोज ने ही माव का बाह्य संस्कार पुनर्बन्ध
 किया अतः माव ८८५ ई० के पूर्व ही रहे जाते हैं परन्तु नहीं और हो सकता है भानु-
 वर्धन तथा प्रमोदवर्धन माव के ही समय में रहे रहे हों और उनके कर्ण पेटों तक माव विहित
 साहित्य भा कुका हो जिससे भानुवर्धन में विभोर होकर प्रशंसा के रूप में श्लोक भी कह दिये
 हों या प्रशंसा में यदि दो शब्द भी अपने ग्रन्थों में लिख दिये हों तो कोई आश्चर्य नहीं ।
 उत्तर भारत के विद्वान् परस्पर मिथा करते थे । कासीन तो पण्डितों का घर था । वही एक
 स्वाधि का पहुँचना कोई कठिन कार्य न था क्योंकि भोज का वहाँ एक राज्य या अतः

दिन के समाचार इधर-उधर को पहुँचा ही करते थे फिर राजा स्वयं गुणग्राही या भूत उसके साथ भी तो बिद्वान् व गीतिगिण्ड्य पुरुष रहा ही करते थे । जिस भोज ने इतना साधन किया तो क्या कोई ऐसा समय ही न आया कि भोज के द्वारा भानन्वर्धन या भमोचर्य प्रथम का माघ से सम्मिलन न हुआ हो । काठियावाड़ सीराहू उसके राज्य में थे जो वहाँ से अधिक दूर नहीं हैं । वनाम बिहार तक भोज का राज्य रहा है इसलिये भोग कभी न बिहार या मुबारक तक घाटे रहते थे । भमोचर्य के धर्मगुरु काठियावाड़ (वडवाण) निवासी भिनसेन भी भोज ही के समय में रहे रहे थे । भमोचर्य वशिष्ठ में और मिहिरभोज उत्तर में बड़े सत्सिद्धासी साधक थे । भमोचर्य का शासनकाल ८८० ई० तक रहा है । भमोचर्य प्रथम के परचाहू कृष्ण द्वितीय (८८०-११२ ई०) को गद्दी पर बैठे उनके साथ भोज का मुंड हुआ था । कृष्ण पराजित हुए किन्तु बराहमोच बिजयी । कृष्ण भमोचर्य की ही भाँति जैनधर्म के प्रेमी थे वे प्रसिद्ध जैन लेखक गुणभद्र के प्रभाव में थे । मुबारक के राज कूट की ओर जन धन का प्रचार अधिक हुआ होगा और यह धर्म जीवनमान की ओर भी अधिक हो तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि पड़ोस में जब वे बातें हुईं तो जीवनमान जैसे जैनधर्म से झूठा रह सकता है, पाठक 'जीनमान' वाले भाग को देखेंगे तो ज्ञात हो जायगा कि जीवनमान या जीवनमान जैन धर्म का केन्द्र रहा है । हरिमहसूर सिद्धिपि ने उपनिषदमय प्रपञ्चका को सन् १०९ में समाप्त किया । पाठक देखेंगे कि साहित्यिक हलचल जीवनमान में रही है । सिद्धिपि ने ही है जिनका वर्णन प्रभावक चरित में आया है जिससे ज्ञात हो गया होया कि प्रबन्धानुसार तो वे माघकवि के बाबा धुमकर भोली के पुत्र थे । मुबारक में किस भाँति चूतम्बसनी रहे । इधर उधर मारे-मारे फिरे, फिर उन्होंने बौद्ध धर्म के ज्ञान की पिपासा की फिर उस उपामय में रहे कर धान्य की और जैनधर्म की बीछा की उत्पत्त्यात् प्रभावसोकन किया होगा और पारंगत हुए होने तक ही प्रमत्त में उपनिषदमय प्रपञ्चका को १०९ ई० में समाप्त की होगी । इस भाँति धर्मतया माघ के कचेरे भाई सिद्धिपि का समय भी प्रबन्धानुसार वहीं पर आकर मिल जाता है वहाँ माघ का था । सन् १०९ ई० में सिद्धिपि पर्याप्त वृद्ध हो गये होने क्योंकि मुबारक के १० या ४० वर्ष तो उन्होंने जैसे ही व्यतीत किए फिर कहीं ज्ञान आया और साधु संतों के सम्पर्क में रहे तब धम्म सिद्धा इसका अभिप्राय यह हो जाता है कि वे कुछ भी हों अधिक के न हों तो ७० या ७२ वर्ष के हो हों ही इस भाँति वे सन् ८३१ तक पहुँच जाते हैं ।

इन बातों को भिन्न से हमारा तात्पर्य इतना ही है कि भामोचक भानन्वर्धन और भमोचर्य की भाग सम्बन्धी बात को लेकर जो माघ को सत्य सत्य में साफ़ उपस्थित करते हैं वहाँ तक ठीक है । भमोचर्य (भिनसेन के शिष्य) माघ के समय में रहे थे जीवनमान के जैनियों की हलचल से प्रभावित हुए साधुओं का सम्पर्क प्राप्त कर, अपने धर्म जीवन को सुन्दर रूप में बिताते रहे । भमोचर्य का राज्य और जीवनमान में जैनियों का सम्पर्क ही माघ प्रसिद्धि को से जाने में पर्याप्त रहा होगा । भमोचर्य बिद्वान् या फिर बड़े राजा था । माघ के यहाँ राजा भी तो आकर ठहरा करते थे । नोटी होती होगी तो उस समय साहित्य सुनने को प्राप्त हुआ होया इस भाँति परस्पर मिलने के कितने ही प्रसंग उपस्थित हो सकते हैं । यही भानन्वर्धन की बात जबक लिए हमने बताया था कि कायसीर पण्डितों का देख रहा है

धीर नासिक बसभी श्रीमाल व वज्रमिनी उसी समय में विस्मयविधासय जाने प्रसिद्ध नगर रहे हैं (इसिये वी प्लोरी बेट गुर्वरवेण हीन पार्ट १) ठिहर यह क्या सम्भव नहीं हो सकता कि प्रसिद्ध कवि श्रीमाल निवासी ग्राम का नाम काश्मीर के पण्डितों में न पहुँचा हो वहाँ तक गमनाममन सरस व सम्भव था ।

सिद्धि की बात को उपस्थित करके भी हमने बता दिया कि माघ भोज के समय में धनस्य से क्योंकि सिद्धि माघ के चत्तरे भाई सन ८३० से ८०६ ई० में जब विद्यमान थे उस मन्त्रा माघ क्या उस समय में न होंगे और यह समय तो मिहिरभोज का था ही (८३१-८८० ई०) ।

हमने यह भी देखा कि सिद्धि को बौद्धज्ञान प्राप्त करने की पूरी प्रतिज्ञा थी । सिन्धुपालवक महाकाव्य में बंधवर्धन में माघ लिखा रहे हैं राजा वर्मज माघ के पितामह सुप्रभदेव की बातों को लबागत (बुद्ध) के उपदेश की जाति ही स्वीकार करते थे इससे यह पता लग जाता है कि माघ के समय तक बौद्ध धर्म फैला हुआ होते हुए भी विभिन्न धनस्या में अन्तिम रक्षा से रक्षा होया क्योंकि बौद्ध धर्म अपने धर्म में लय रहे थे तो हिन्दुधर्म धनस्य धनस्य बिकास करने में लगा था । माघ ने अपने धर्म में बौद्ध धर्म की बहुत सी बातें कही हैं "सर्वकार्यं शरीरेषु भुक्त्वाहवस्करवर्षकम् । सोमदानामिवात्मान्धो नास्ति मन्त्रो महीकृताम् ॥ २२८ ॥

उपर्युक्त श्लोक बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रख रहा है । सुप्रभदेव बौद्धधर्म में आस्था रखने वाले होंगे यह कारण है कि वे अपने ब्याप्त, बानी धीर अहिंसक थे । बप्क भी बैसे ही निकले, फिर माघ भी बैसे क्यों न हों ? पितामह के बौद्धधर्म के विचार माघ में बैसे थे बैसे सिद्धि में भी सहसा बौद्धधर्म के ज्ञान की धिता प्राप्त करने की उत्सुकता के रूप में कूट ही निकले । सिद्धि में यह भावना भी माघ का भाई होना प्रमाणित कपटी हुई माघ की विधि के निर्णय में सहायक धनस्य है ।

प्रान्तवर्धन धीर धनस्य के वरणात् राजदेव की बात धापी है क्योंकि राज देव ने भी माघ की प्रशंसा में दो बातें लिखी हैं । पाठकों को बात होना चाहिए कि राज देव भोज के पीर के मुख ही वे शत भोज से प्रशंसित हुए माघकवि के विषय में अपनी सुन्दर सम्मति प्रस्तुत करना स्वाभाविक ही है ।

यसन्तिनक बप्क के रचयिता सोमदेव तो सन ८२६ में हुए थे जिन्होंने माघ कवि का जन्मेत दिया था । ऐसा करना उनके परवर्ती होने के कारण विस्तृत उचित है ।

(१) माघकवि राजा वर्मज या वर्मसात का नाम २०^० के सर्व के अन्तिम भाग में कविर्वा बप्क करते हुए लिखते हैं । राजा वर्मसात का बसन्तगढ़ का सेव जिसकी प्रतिनिधि हमने ब्यास्थान दी है ६८२ संवत् का है । यह संवत् कौलगा है इसके लिए इतिहासक विग्र विग्र कल्पनायें कर रहे हैं । बप्के ज्ञा० नोरीशंकर हीराचन्द घोष ने जगको बिक्री संवत् मान कर एग राज को ६८२ ई० का मान लिया है । श्री भोन्नाजी सन समय के निस्संदेह अनुसंधान करने में तथा विसासलों को पढ़ने में वहाँ तक हमारा अनुमान है एक ही थे । राजस्थान विषयक की इतिहास सम्बन्धी कोई भी बात धापी है तो प्रामाणिक रूप में घोष भी को ही इतिहासक सेते हैं क्योंकि उन्होंने राजपूताना का इतिहास विप्रासलों को पृथक्,

पुष्क रूप में सेकर संभार किया भी है। भीनमाल, राजपूताना में सिरोही के सम्पर्क में है। सिरोही का भी इतिहास प्रोग्रामों ने लिखा है। इतिहास में उनकी बेला बेसी अपने-अपने इतिहासों में जहाँ बसंतमङ्ग का या माघ बंध या प्रतिहार बंध का वर्णन आया राजा बर्मल व म्याम्रमुख को सामने लाकर तिथि निर्णय करने सम आते हैं। वे बसन्तमङ्ग का शेष सन् १८२ ई० प्रथम कि सं १८२ का है इस आधार पर माने सकते हैं।

श्रीमद्भक्त्य में बाण और मयूरारि कवियों का उज्जैन के भोज के पास जाना लिखा है यह सत्य है। बाण और मयूर दोनों उज्जैन चले गए वे और बि सं ७२१ बासे भोज की समा में रहे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'वरिष्ठायत्री' पुस्तक में इनके विषय में लिखा है कि वे उज्जयिनी के राजा के और जैन ग्रन्थों के अनुसार काशियास इन्हीं की समा के एक रत्न थे। मार्गार्तुन हर्षकासीन के समय में विद्यमान थे। हो सकता है हमारे माघ उन्हीं भोज के सम सामासिक हों या ७२१ बि सं में पैदा हुए थे। किन्तु ऐसा करने से भाद्विबराह नामवादी भोज में अवश्य प्रन्तर् पड़ जायगा। बि सं ७२१ बासे भोज न तो भाद्विबराह नाम से ही प्रसिद्ध है और न उनकी शासनकाल ही बीच समय का रहा है और न वे इतिहास में इतने सुप्रसिद्ध ही रहे हैं जैसे पारसिपति राजा भोज (१०६२ ई०) और कन्नौजाभिषिपति मिहिरभोज (८१५-८८५ ई०)। अस्तु विक्रम संवत् की बात समझ में नहीं आती।

मिहिरभोज के समय क तथा परलीबराह बह्मणराजा के उस प्रान्त के जो उनके उस समय के उपसंग्रह हुए हैं वे सब एक संवत् के हैं अतः हमारी सम्मति में उस समय एक संवत् लिखने का ही अधिक प्रचार या विक्रम संवत् का प्रचार अति प्रत्य भाषा में या अतः कोई आश्चर्य नहीं कि बसन्तमङ्ग का चिन्तालेख भी एक संवत् १८२ का हो जैसा हमने पूर्व में ही इसके सम्बन्ध को निर्णय करते हुए लिख दिया है, पाठ्य पीछे के उस भाग को देखें। प्रचलित सम्बन्ध होने से चिन्तालेख में केवल १८२ वर्ष ही कर दिया गया था। एक सम्बन्ध १८२ में ७८ वर्ष जब मिसायने तब ईस्वी तक आजायगा। इस अति बह्म चिन्तालेख सन ७९० ईस्वी का लिखा हुआ होगा चाहिये। चिन्तालेख को देखने में विरिष्ट होता है कि धर्मियों वाली पर्वमासपी भाषा का भी कुछ कुछ प्रचार उस समय रह गया था क्योंकि भीनमाल और उसके निकटवर्ती प्रान्त जैन विद्याधारा के एक भाँति गढ़ थे। धर्मिकीय धनाधार वहीं के विद्यालयों से निकले हुए थे अतः कोई आश्चर्य नहीं कि वही धाराभी तक भी वह भाषा प्रचार में हो। जब बर्मलात सन ७९० ई में आ जाते हैं तो उसके प्रधानमन्त्री सुप्रभदेव के पौत्र महाराज माघ सन् ८८० के समीप होने ही चाहिए क्योंकि यह सैख जब लिखा गया था उस समय सुप्रभदेव उल्हासण पर थे मन्त्री या प्रधानमन्त्री। इस भाँति वे मिहिरभोज के मित्र भी हो सकते हैं और भाषा के आधारवादी भी।

(४) परत यात्री मुसमान ने लिखा है कि मिहिरभोज की सेना मरुस्थली थी। हाथी और ऊँटों की सेना सुष्यवन्धित और सुन्दर थी क्योंकि वह राजा भारवाड़ (गुजरात) का था और कन्नौज के राजा धर्मिकीय हाथी लाते थे। हम देखते हैं कि पितृप्राप्तकाल काव्य में जब भीहृष्य पुत्रभूमि में आते हैं तो एक ओर तो हाथियों के आक्रमण की घटा दिखायी देती है तो दूसरी ओर थोड़ों और ऊँटों की सेना भी एक मयूर ही हत्य उपस्थित करती है।

माघ में सुलेमान पासी के अनुसार ही मिहिरमोज की सेना का चित्र उपस्थित किया है फिर जैसे इस बात को स्वीकार नहीं किया जाय कि माघ भोज के सम सामयिक थे।

(१) माघ में विजुपालवध में श्रीकृष्ण के साथ जो विजुपाल का युद्ध बीसवें सर्ग में करया है वह देखने योग्य है। यह तो वैसे दृश्य उपस्थित करता है मानों वह युध परस्पर के युद्ध का ही हो और कवि ने भी वा तो ऐसे युद्ध देखे हों नाम भिन्न हो मन्वा उनके विषय में सुना हो। अत्यन्त अनुभव रखने वाला व्यक्ति ही इस युद्ध वाले माघ का सबीन वर्णन कर सकता है। पाठकों को स्मरण होना कि हर्ष के समय तक सन ६४७ ई तक तो दान्ति रही किन्तु उसकी मृत्यु के कुछ वर्षों के बाद ही पारस्परिक युद्ध प्रारम्भ हो गए थे। मनोमासिन्व यहकार तथा शक्ति प्रदर्शन की कुर्माबनाए बाद में प्रबल हुई पहले इतनी प्रबल न थीं। अन्तिम तीन सर्गों का युद्ध विषय इन्हीं भावनाओं को चित्रित कर रहा है यदि सन ६२५ ई का विजयसेन स्वीकार कर दिया जाता है तो माघ ६७० ई तक आते हैं जब ये कुर्माबनाएं इतनी प्रबल न थीं। ये कुर्माबनाएं नागमदट प्रतिहार के समय से प्रारंभ होकर मिहिरमोज तक रहीं। भोज में दान्ति-स्थापना का प्रयत्न किया जा भवत वह विजयसेन सन् ७१० ई का है।

एक दूसरी बात जो हमको युद्ध के विषय की दिखलाई पड़ती है वह है श्रीकृष्ण का विजुपाल के साथ युद्ध। विजुपाल पासीय सेना श्रीकृष्ण को बेर सेवी है। नाम श्रीकृष्ण की सेना के चारों ओर हैं। आकाश पृथ्वी सब मार्गों के अस्त्रों से व्याकुल हैं। यह सब क्या है? इतिहासज्ञ जानते हैं कि नागमदट का कृष्ण प्रथम के साथ युद्ध हुआ था फिर नागमदट के पीछे मिहिरमोज ने भी 'पट्टक' के राजा श्रीकृष्ण द्वितीय के साथ युद्ध किया था, क्या उसी का तो प्रत्यक्ष रूप में कवि वर्णन नहीं कर रहा है? विजुपाल ने नामास्त्र बताया कृष्ण की सेना भूद्विज हो गई किसी को ज्ञान नहीं रहा वहीं पर कुर्बं प्रतिहार की नागममोज वाली सेना कृष्ण की सेना के पीछे पड़ गई तो कभी कृष्ण ने उन मार्गों से पीछा छोड़ा कर फिर युद्ध किया क्योंकि कवि ने बराह, आदिबराह और भी अस्त्रों का प्रयोग भी नहीं चार्बक तथा वहीं पर गिरार्बक रूप में भी प्रयुक्त करके अपना कार्य सिद्ध करना चाहता है। हो सकता है कि नामास्त्र को भी इसी भाँति प्रयोग में लाकर भोज का कृष्ण के साथ प्रबल नागमदट का कृष्ण के साथ युद्ध करया हो।

इस भाँति माघ मिहिर भोज के समकालीन थे यह बात सिद्ध हो जाती है तब चित्तीड़ की गरी पर भी भोज नाम वाले महाराष्ट्र राज्य कर रहे थे। चित्तीड़ के भोज का दूसरा नाम कर्ण का कर्वाण्ड वह भी कर्ण की भाँति ही थागी हो। इन्होंने एकमिष का मन्दिर हारीठाभम में बनवाया। इनके विषय में पाठक पृथक् रूप में वहीं पर देखें वहीं पर हमने भोजों का परिचय दिया है।

(१२) प्रबन्धों का प्रामाण्य

[१] भोज और माष एक ही युग के थे तथा इनका पारस्परिक सम्पर्क रहा है यह बात तो दोनों ही प्रबन्धों (भोज प्रबन्ध प्रबन्ध चित्तमणि और प्रभावक चरित) से स्पष्ट हो रही है किन्तु माष विरचित "सिधुपाल-वध" काव्य में भी "भोज" का नाम स्पष्टतया प्रथम रसपारमक रूप में मिलता है। पाठकों ने पीछे प्रबन्धों में पढ़ा होगा कि इजिप्ता पीडित माष द्वारा प्रेषित उनकी पत्नी (मास्तुलायेवी) स्वयं राजा भोज के निकट 'कुमुदवनमपधि भी मदम्भोजसम्भम्' इस श्लोक को प्रथम "सिधुपालवध" काव्य की ही (जिसको धमाका पटीसा द्वारा देखा गया तो कुमुदवनमपधि भीमदम्भोजसम्भम् निकला) लेकर गयी। प्रबन्धों में यह भी मिलता कि माष के पिता का नाम दत्त दत्तक या कुमुद पण्डित भी था (पुरातन प्रबन्ध-संग्रह में माष का उल्लिखित प्रबन्ध तथा प्रभावक चरित में सिद्धिपि का प्रबन्ध देखिये)। प्रबन्धों में यह भी उल्लिखित मिलता कि जब राजा भोज के घर माष गये उस समय माष ने घाने की बिबि को भोज ने देखा तो उन पर उपहास रूप में उन्होंने कुछ कह दिया (देखिये पुरातन प्रबन्ध-संग्रह), तथा रात्रि को सोते समय रजाई छोड़ने पर माष ने दूसरे दिन प्रयुक्त में राजा भोज को कुपता हुआ एक उठर दिया (पुरातन प्रबन्ध-संग्रह तथा प्रबन्ध-चिता मणि देखिये), तथा तीन दिन ठहर कर जब माष कवि अपने घर लौटने गये उस समय भोज को भी, जो उन्हें पहुँचाने के लिए नगर सीमा तक साथ-साथ घाये थे अपने घर पर किसी भी समय घाने का निमन्त्रण दिया। कुछ दिनों बाद भोज को सहसा वह बात स्मरण हो आयी तब वह अपने कटक सहित माष के स्थान पर जा पहुँचे। उस समय माष कवि ने जो पवित्र-सत्कार भोज का किया तथा वहीं में भी अपने घर की ध्वज पर भोज को सुना कर धीमे के दिनों का जो आनन्द विलासा इन सब को देखकर राजा भोज अपने हाथ क्रिये गये माष के प्रति सत्कार पर अग्रिम हो गए। भोज सात दिन तक माष के घर पर ठहर कर पठभूत से अपने नगर को लौटे। माष के विपर्यय से स्थिति बिपरी। उन्होंने अपनी इसी बिपरी स्थिति का चित्र ७ अक्षर के श्लोक में अंकित करके भेजा। यह श्लोक सिधुपालवध

● अभिमान धाकुन्तमम् में इसी चित्र के श्लोक को अनुरूप धनु के दूसरे श्लोक में देखिये किन्तु महाकवि माष ने 'कुमुदवनम्' काव्य की उस स्थान पर प्रयुक्त कर तथा 'ही' का औचित्य साधकर श्लोक में प्राण फूँक दिये। भोज के सम्मुख चित्र उपस्थित ही गया। धाकुन्तम का श्लोक—

पात्वेवतीर्यत पितर पतिरोषधीनाम् । आभिपृच्छतो ऽ ब्रह्मपुत्र धर एवतोम् ॥

तत्रोत्तमस्य पुण्यद्वयमनो-याम्नाम् । लोको नियम्यत इवैव दजान्तरैषु ॥४-२॥ अमि

इस प्रति ईव अत्र और मूर्त के अक्षर और सदय के हाथ मानों धनुष्यों के विविध रथाओं के विषय में गिरा देता है।

काम्य में म्हाच्छे सयें में प्रातःकाल बर्धन के प्रसंग में बड़ी शुभरता से रखा गया है ।
 मोक्षपत्र का धर्म देखिये जिसका प्रमाण हमको यहाँ पर देना है । प्रातःकाल का बर्धन तो
 स्पष्ट है ही ।

माय के पिता कुमुद पण्डित किछने बनी ये भीर सगका बर (बन) इस लक्ष्मी (भी)
 से किछना सोभाशासी वा । कुमुद ने अपने इकलौते पुत्र माय (बन) में उस भी को विराज
 माय किया जिससे कुमुदबन भी-सम्पन्न होकर सोभायमान हुआ तथा एक दिन मोक्ष भी
 जिसकी भी को देखकर लजित हो गये थे । किन्तु भाव्य बही कुमुदबन माय यवना कुमुद
 पण्डित का बहुत बनावसा पर भी-बिहीन बन रहित माय रहित हो गया (भीर मह
 दुःखी है) तो दूसरी भीर मोक्षबन यवना मोक्ष परिवार (सम्पन्न-बन वा बर निवास स्थान)
 भी से यह पुल है [जो किसी समय मायबन के सम्मुख निष्पन्न था वा) । उलूक लक्ष्मी का
 बाहुन (सन्तो का बर) कहलाता है । उस लक्ष्मी के निवास वाले स्थान ने भी बरिछता के
 कारण प्रसन्नता की प्राप्त स्थाप दिया है । लक्ष्मी-सम्पन्न बर भी हीन होने से मात्र लून-
 लून का जाने के लिए बीड़ रहा है । (बारिछयात्रिमयेति) उलूक बुद्धिमान में माय को दिन
 को बरिछता की सम्पत्ति के कारण निश्चय का साहस नहीं करके दिन में पुत्रपु (पुत्रपु) की बरि
 छिना-ता रहता है तथा कंवाधी के कारण बुद्धि भी धन पशु प्रेसी भट हो रही है ऐसे में
 प्राप्त बिच की प्रसन्नता को खाने हुए है भीर महापुत्री है । उबर मोक्ष का माय कहता है
 वह को बर (सामन्त मन्त्र) वाक (को पाया देने वाले) है बहुत ही प्रसन्नचित्त (निश्चिन्त)
 तथा प्रेम प्रदीप्त करने की समता रखने वाले हैं । मेरे शरीर की, संवाय के कारण, मैं उलू
 क्य से निरन्तर निकलने वाली किरणें (लक्ष्मी-लक्ष्मी यव वसाँ) उदय (उत्पन्न प्राणा) हो
 रही है तो दूसरी भीर मोक्ष की बड़ता भट हो चुकी है । भी सम्पन्नता से चारों ओर प्रकाश
 का रहा है उस प्रकाश के सम्मुख सब हठप्रम से हैं ॥ हाय । हाय ॥ बुर्मान व बरिछता के
 बारे हुए भी-सम्पन्नतावालों का निश्चय ही यह कैसा विविध परिणाम है ।

मोक्ष बुद्धिमान ही नहीं वा उलूक्य भी वा शारी स्थिति सामने था बनी । इस
 एक 'ही' शब्द के धर्म व बरि माय से उसने तुल्य बसाई होकर तीन मात कपे दिये । यह
 समझ कर कि यह महाप्राणी है धान धीरुत से रहने वाले हैं कहीं ऐसा न हो कि जोने
 कर्णों के उनका निर्वाह न हो । साथ ही यह भी कहता गया कि अभी तो यह से बाधों में
 भी कम धीरु ही स्वयं प्राप्ति ।

यह कहना छठि कटि है कि राजा मोक्ष कुमुद पण्डित (माय के पिता) के बाद निच
 से यवना माय के ही के उलूक्यी तथा य पिन्नु निष्पत्ता का सम्पन्न किटी-न-बिटी रूप में
 प्रवस्य वा, क्योंकि हमने मोक्षों के प्रसंग में सिधते समय यह स्पष्ट कर दिया था कि चित्तौड़
 के मोक्ष तन् ७८६ से ८० तक रहे उस समय माय के पिता रत्तक (कुमुद पण्डित) उनकी
 धानु के होने क्योंकि रत्तक के पिता मुद्रमुद्र के घाघयराता तन् ७६० ई० में बसन्तपड़ के
 पितानेप में बर्मनात् नाम से भाते हैं । ये बर्मनात् माय द्वारा कवि-बरा बर्धन में प्रवस
 रत्तक में निहित है । तब बर्मनात् के मुद्रमुद्र सर्वाधिकारी थे । कुछ अन्य मनुष्यों का यहाँ

पर नाम दिया गया है जैसे प्रतिहार बोटक, राजस्थानीय आधिरयमट्ट सुप्रभदेव का उस धिस्त-
लेख में नाम नहीं है। संसारकर तथा अम्य अंग्रेज भिद्वान् राजस्थानीय का तात्पर्य विवेक
सचिव सेते हैं। माघ काव्य कहता है कि सुप्रभदेव सर्वाधिकारी मन्त्री थे जिनको समस्त
सुवृत्त कार्य करने का पूर्ण अधिकार था और राजा बर्मेन उनकी कही हुई बात को निवेक
करके टाल नहीं सकते थे। भयवान् तयामठ के उपदेशों की भाँति बिना संकोच के स्वीकार
कर सेते थे। फिर मन्विर के कार्य में इनका हाथ न होना एक विचारणीय बात है। उस
समय मोठी का रूप था। संभवतः उन्हें टूट्टी के रूप में न लिया हो अथवा मन्दिर बनने के
समय सुप्रभदेव मन्त्री न हुए हों। वृद्ध पुरुष की बातों का ही बादर तयामठ के उपदेशों के
समान होता है और वृद्ध पुरुष ही रजोगुण से रहित सांसारिक राज से कौनों दूर वार्तिक
वृत्ति वाले होते हैं, इस बात को कवि बंध बर्णन में माघ ने दिया है अतः संभव है कि
धिस्तलेख सुप्रभदेव के मन्त्री पद प्राप्त करने के पूर्व का हो। प्राचीन काल में जब मनुष्य
परिपक्वावस्था का हो जाता था ज्ञान वृद्ध, अनुभव से पूर्ण एवं सद्गुणियों वाला नीतिमान्
हो जाता था तब ही ऐसे उत्तरदायी पद प्राप्त होते थे। अतः सुप्रभदेव निश्चित रूप में
बयोवृद्ध होने और उस समय दत्तक किशोर अवस्था में होने अतः उनका चित्तीड़बाने भोज से
वासवजी सम्बन्ध प्रथम चित्तामणि के अनुसार स्थापित किया जा सकता है। (इसकी पुष्टि
में) बल्लभदत्त चित्तीड़ से जतना दूर नहीं है जितना पार या कभीब। इसके अतिरिक्त माघ
के पिता के भाई धुमंकर का विवाह भी तो चित्तीड़ के पुरोहित हरिमद्र मट्ट की भगिनी से
हुमा या जिसका पुत्र सिद्धपि हुमा। मिहिर भोज ८३५ में सिंहासन पर बैठे जिनका जन्म
सन् ८०० ई० का है अतः दत्तक के साथ इनका सम्पर्क संभव नहीं है। हाँ माघ से सम्पर्क
हो सकता है। मिहिरभोज के समय में माघ या जाते हैं और मिहिरभोज की ही भाँति एक
मन्त्री भाग्य व्योतिदियों के अनुसार, वे भोगते हैं।

(२) भोज के सम्बन्ध में इतना मिलने के परचात् जब प्रबन्धों में प्राप्त उन तथ्यों
के प्रमाणों पर विचार करते हैं तो सिमुपासक्य काव्यकार माघ के विषय में सारी रूप से
उपसम्भ होते हैं। सम्बत् १३६१ में लिखी हुई प्रबन्ध चित्तामणि की बात इस प्रकार है—
‘‘तथा निज जन्मदिने जनकेन नैमित्तिकाग्नातके कार्यमाणे पूर्वमुदितोदित समृद्धिभूत्वा प्राप्ते
गन्तव्यविभव किञ्चिन्मरणयोऽपिभूतव्ययभुविकारः पञ्चत्वमाप्स्यति इति । निमित्तविवा
निवेदिता विमय समारेण तां प्रहर्षति निराशिकीर्षुणा माघपिना सम्बत्सर एतप्रमाणमनुभा
युपि पद्विषयग्रहणणि विनाभि नविष्यसीति विमृष्य माण्डपरिपूणांस्तावत्पञ्चान् हारकान्
कारित मय्यकोरोपु निवेद्य उपविषां परां वृत्ति एतद्य समर्थ

इन उपमुक्त पंक्तियों से विदित होता है कि दत्तक ने माघ की श्रितावस्था के लिये
नहनों को छोड़ कर राजागा गाडा या ताकि धन की समाप्ति पर वह धन वृद्ध के समय
काम में लिया जाय। इस बात का साक्षीभूत सिमुपासक्य का यह श्लोक देखिये यदि
किष्ठ चानुरी से धपने जनीगत माघों को कया वे प्रवाह में रख देता है। यदि प्रसंग न होता
तो यह बात मासूम भी न होती। ‘‘नह्ययमुभा जनधुति जनधुतियों का आधार प्रबन्ध है।
जनधुतिवां यहाँ मूढ़ से बोल रही है। माघ काव्य के प्रथम सर्ग के २८वें श्लोक में भीहृष्य

के मुख से नारद की प्रशंसा के रूप में ये शब्द धाये हैं—

कृतः प्रजा समकृता प्रजासृजा,

सुपात्रमिक्षेपनिराकुसारममा ।

सर्वोपयोगेऽपि सुदस्त्वमक्षमो,

निधिः श्रुतिर्ना धनसम्पदामिव ॥२८॥

सर्व प्रचारार्थ (संतान) का कल्याण करने वाले (सुपात्र कटाह भाँति इस वाचन विषय में धन रख कर बाँटे या सर्वों तक पहुँचावे) के धारकों का उपाय सम्पन्न सम्पादन भाँति मैं (दान मोक्षार्थ में) उपयोग करते रहने पर भी सर्वथा ही कभी क्षम न होने वाले अनन्त श्रुतियों के निधि (बरोबर धनका भण्डार) आपकी बनी बनाया है। स्पष्ट वाच— जिस भाँति अपनी संतति का सुसंरक्षित पिता उनके परिवर्ध के उपयोग के लिये बहुधा ही धन सम्पत्ति एकत्र करके जोड़े की ठिठोरियों में धनका कड़ाहों में रख कर निक्षिप्त रहता है और अधिकाधिक मात्रा में उस धन के रहने के कारण सर्वथा उचित व्यय (उपयोग) करने पर भी जैसे वह धन नहीं कुछथा उसी प्रकार निक्षिप्त धन की प्रजा के संवत्कारी बनवायु ब्रह्मा ने आपको (नारदजी को) श्रुतियों का निधि बनाया है। आप जैसे सुयोग्य मात्र में वेदों की अनुस्यू निधि को छीप कर वे निक्षिप्त निक्षिप्त हो गये हैं। इस प्रकार आप श्रुतियों के प्रथम निधि हैं और सर्वथा धूम धूम कर उपवेश देने पर भी आपकी वह क्षम निधि समाप्त नहीं होती। ऐसे वैदनिधि देवों का वर्धन किन्तु के लिए संवत्कारी न होना ?

कृष्ण की इस श्रुति में माघ के विषय में बातों को जो संकेत निमा है उसी को धन रूप और स्पष्ट कर के निक्षिप्त रहे हैं पाठक, विचार करें।

प्रभावक वरित का श्लोक संख्या १२, माघ की वाता का नाम "ब्रह्मी" बतला रहा है "यः माघो नन्दनो ब्राह्मी स्वन्धन यति बन्धनः"। नारद के शब्दों में "प्रभासुवा" का शब्द (ब्रह्मा) ब्रह्मा के हाथ स्पष्ट है कोई आपत्ति नहीं। अब हम माघ शब्द में प्रभासुवा ब्रह्मा जिसने माघ जैसी प्रजा (संतान) का उत्पन्न किया उस ब्राह्मी हाथ धरने लगा से ही क्या कोई आपत्ति है ? नर. का शब्द महान् है श्लेष से द्वयर्थक नर. का शब्द पिता (पितृ) और महान् किया या लक्ष्य है। प्रभासुवा और नर के इन शब्दों से प्रयोजनीय शब्द कहीं दूर न जा सके वतः हम यहाँ पर एक ब्रह्मण शब्द और ले रहे हैं।

स्पष्ट शब्द है माघ तुम अपनी संतान के लिए कल्याण वाचना की इच्छा करने वाले (वर्धनायका के लिए) ठिठोरियों में अपनी संतान के लिए धन रख कर फिर निक्षिप्त हो कर रहने वाले संतान को उत्पन्न करने वाले (पिता पितृ) के हाथ धन सम्पत्तियों की भाँति धारकों वेदों, गुणधर्मों भाँति श्रुतियों के भी धारण निधि कर दिये जिसका भाई जिसका उपयोग हो फिर भी वह मुम्हारा निधि धारण ही रहेगा।

अपूर्व शब्द के स्पष्ट है कि ब्रह्मा ने व्योमिधियों से अब माघ की वर्धनायका मुनी को अब आपत्ति को परिवर्ध के लिए यह माघ को दे ही दी, माघ कर और प्रत्यक्ष रूप में।

किन्तु मन का क्या निदरास ? अतः उसको पकड़ा लिखा कर विद्वान् भी बना दिया क्योंकि विद्या मन एक ऐसा मन है जो कार्य करने पर भी प्रलय ही रहता है । धट्ट खजाना याड़ा यह सोच कर कि माय चाहे जितना मन, दान और बिलास की सामग्री में व्यय करे किन्तु वह बना ही रहे इसी भाँति विद्या मन भी उस माय में इतना भर दिया कि उसके वह महान् ही बने रहे ।

प्रबन्ध चिन्तामणि में इसी विषये उन पंक्तियों के आये लिखा है 'पराभूति उत्तम समर्प्य प्रवत्त माय नाम्ने सुताय कुलोभिता शिशां वितीर्य कृतकल्पमानिना ठेन विपेदे' इस बात का और अधिक प्रमाण शिशुपाल बन्ध के उसी सर्ग में श्रीकृष्ण की उक्ति में देखिये—

अगस्त्यपर्याप्तिसहस्रमानुना

नयन्नियन्तु समभावि भानुना ।

प्रसह्य य तेजोभिरसक्यतां गत

रवस्त्वया जुम्नमनुत्तमं तम ॥ स १। २७॥

अर्थ—संसार में अज्ञान फैलाने वाला सूर्य (भी) जिस (प्रज्ञान) अन्धकार को दूर करने में समर्थ न हो सका सब की अपेक्षा अधिक उस अन्धकार (मोहादि) को संस्मारीत तेज (प्रभाव) के द्वारा कम पूर्वक आपने (नारद पिता ब्रह्म ने) उसको दूर किया ।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि सूर्य केवल भौतिक अन्धकार को दूर कर सकता है, प्रज्ञान को दूर करने की शक्तता तो तेज में ही है ।

सात्यक निरुक्ता कि पिता ब्रह्म ने माय को विद्या देकर सर्वत्रुण सम्पन्न कर दिया जिससे अपने संस्मारीत तेज से वह भासित हो । सूर्य जिस भाँति सांसारिक अन्धकार को ही दूर कर सकता है हूबस के अन्धकार मोह भावि को नहीं । इसी भाँति मन सम्पत्ति केवल सांसारिक आपत्तियों को दूर कर सकती है किन्तु यदि सगरी प्राप्ति के द्वारा मनुष्य सबसे मोह भावि का चिकार हो जाय तो फिर आपत्ति नष्ट होने के बजाय वह उल्टे बढ़ जाती है । अतः हूबस के प्रज्ञान को दूर करने के लिए माय में विद्या का ऐसा तेज पैदा किया कि मन से मोह न हो जाय बिलास की बातें न करे, और इस कारण आपत्ति में न फँस जाय । १८वें सर्ग का ११वाँ श्लोक भी मन की रक्षा तथा विपत्तियों से बचने के लिए कहा गया है ।

(२) प्रबन्ध चिन्तामणि और भोज प्रबन्ध इस बात को लिख रहे हैं कि माय अन्तिम समय में हृष्य होत हो गये । उन्होंने भोज से तीन साम रूपसे प्राप्त किये किन्तु वे भी भीख माँगने वालों को दान में दे दिये गये । इसका विषय मन्त्रमर्म में बहुत स्पष्ट किया गया है—

उपसंभ्यमारुत सनु सानुमत सिधरेणु सशरणमसीतरुम् ।

वरजासमस्तसमयेर्नप २ तामुचित्त ससूक्ष्मतरमेय पम् ॥ ६ ३॥

धर्म—सध्या के समीप घाने पर सूर्य की सुन किरणों का समूह तुरन्त पर्वतों के शिखरों पर बाकर टिक गया। सब ही हैं सज्जनों को विनाश के समय भी ऊँचा ही स्थान प्राप्त होता है।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि माघ अति बृद्ध हो चुके थे। यह उनका अन्तिम समय था और अतिशय के कारण अब उनके मन की भी भी प्रायः कुछ हो जाती थी फिर भी उनकी बात मानना कम न हुई थी। उनका कहना है कि सज्जन पुरुषों का यह विनाश के समय भी ऊँचा ही रहता है निरुद्ध नहीं। माघ स्वयं भी सूर्य की भाँति धामु भर सम्पत्ति कपी ठेक मुटाटे रहे और मुटाटे-मुटाटे वह कष्टकाय भी हो गये। अब समय निकट था कि भी बिहीन होकर उनको सूर्य की भाँति ही घस्त हो जाना है, पर अन्तिम क्षण तक भी उनका ठेक उनके साथ रहेगा जब जीवन में अब तक ही कष्टकाय का नीचा यह प्राप्त न किया तो इस अन्तिम अवस्था में प्राप्ति है। व्याकुल होकर अपनी सवारता को त्यागना वह कैसे ठीक समझ सकते थे घट माघ को देखते हैं कि वह बनाभाव से स्वयं के भोजन के लिए कुछ न रहने पर भी खीख बित्त होने पर भी क्षीणकाय माघ ने दान देना नहीं छोड़ा बाहे वह धूर्यु को ही प्राप्त हो गये।

प्रतिकूलता-मुनयते हि विभी विफसत्स्वमेति बहुसाधनता।

अवसम्बन्धाम दिनभर्तु रभून् पतिष्यत् करसहस्रमपि ॥१६॥

धर्म—दैन के प्रतिकूल होने पर अनेक प्रकार के साधन भी निष्फल हो जाते हैं। देखो न पिरते हुए सूर्य के अवसम्बन्ध के लिए उसकी सहाय (कर) किरणें भी कुछ नहीं कर सकती।

इन उपर्युक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि पिता वत्सक ने बख्शता की दूर करने के लिए और व्योतिपियों ने जो दैन की नविष्यवासी सम्पत्ती बनाकर कही थी कि वह माघ अन्तिम अवस्था में मन क बिना बुझी होकर मरने उसके लिए जो खजाना पाका था वह भी दैन के प्रतिकूल हो जाने पर काम न आया। पिता की बहुत सी साधनता किसी काम की न रही जब उसका भाम्ब ही विपरीत हो गया। वे मित्र के राजा के सम्बन्धी के नवरतिवासी इस दुःखस्था में कहीं गये ? यह सब माघ की प्रतिकूलता है।

परि ह्य उपर्युक्त लोगों रसोंकों की भोज की कहानी पर पढ़ाते हैं कि अन्तिम समय में भी दान की ऊँची मानना माघ के हृदय में थी। याचक उनके पास आते रहे और वह बैठे रहे। माघ की भोज से जो मुझाये प्राप्त हुई वे सब इस भाँति देने न लपट हो पर्य और फिर भी माघ बैठे ही रहे, तो इसे माघ की विपरीतता ही कहिये। इससे ह्य इस निष्कर्ष पर आ जाते हैं कि भोज से मन प्राप्त करने के भी कुछ बचों बाह माघ भीविश रहे होंगे। इस भाँति कुमार पण्डित वत्सक के पाठे हुए मन की तथा पुन माघ के दान की बातों में सत्यता प्रतीत होती है।

कुछ भी हो इससे जो बातें स्पष्ट होती हैं कि एक तो यह कि वह अतिशय के और दूसरे यह कि बृद्धावस्था उनकी दुःखमयी रही।

१ प्रबन्ध चिन्तामणि में उल्लेख है कि ज्योतिषियों ने माघ की मनुष्य की पूर्ण मासु बासा (धवायु) बतलाया। धिणुपास बंध काव्य में एक प्रकार से उसकी आरम्भका सी है।

विरसातपच्छविरसूम्मतनुः परितोऽसिपाञ्चु दमदमधिरः ।

अभवत्सत परिरुति शिथिलः परिगन्दसूर्यनयनो दिवसः । १।३॥

अर्थ—समाप्ति, (बृदावस्था) को प्राप्त विरस उत्पन्न भाव की छवि से मुक्त (शीतकान्ति) उत्पन्ना से रहित शरीर को धारण किए हुए (स्तेप्मा आदि के कारण जिसका शरीर बहुत गम नहीं रहता) तथा चारों ओर से सफेद बावलों जैसे (सफेद बावलों से मुक्त) सिर को धारण किये हुए प्रचान्त (अर्ध ग्रहण करने में अक्षमर्ष) सूर्य कपी नयनों बासा दिन अवसानोन्मुख होकर शिथिल हो गया।

(ख) इन पंक्तियों में स्पष्ट है कि माघ को अपनी बृदावस्था का ध्यान है उन्होंने मन का प्रपन्थ्य अधिक नहीं किया बान आदि सत्कर्मों में उसका ध्यान अवश्य किया। सारा मन बसा गया। बृदावस्था अत्यन्त दुःखमय होती। यह बात भोज प्रबन्ध व प्रबन्ध चिन्ता मणि से तो ज्ञात हुई हो भी, माघ काव्य से भी विदित हो गयी।

४ प्रबन्ध चिन्तामणि में कहीं-कहीं पर तत्सम्बन्धी बटना के लिए उस बटमा का सम्बन्ध, माघ, दिन बार तथा नक्षत्र तक दिए हुए मिलते हैं। इसकी विधियों आदि की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में जो भ्रम फैले हुए हैं उनका निवारण करने के लिए हमको गहरा चरणा पड़ा है। ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार उन विधियों नक्षत्रों और बारों पर इष्टिनिर्देश की पन्मीर्या से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रबन्ध चिन्तामणि की लिखी हुई वे विधियाँ अधिकोश में गूछ हैं। कुछ ही ऐसी होंगी जो सप्रुद्ध होंगी। जैसे मूस राज का राज्याभिषेक विजयी सम्पत् ११३ माघाङ्क शुक्ला १३ बुधवार का दिया हुआ है। उस समय अस्मिनी नक्षत्र और सिंह लग्न का और जन्म से इसकीसबे वर्ष में मूसराज का राज्याभिषेक हुआ। यह ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार बिल्कुल ठीक ही निकलता है।

हमको मूसराज के राज्याभिषेक से कोई तात्पर्य नहीं किन्तु बनराज बाबड़ा के विषय में भी इतिहास विचारक को अनमृति बताकर प्रबन्ध चिन्तामणि या पुरातन प्रबन्ध सप्तह के लेखों को लिप्या प्रकटा भ्रम से परिपूर्ण बताते हैं उसकी तिथि भी सत्य निकली और यही हाल मिर्ठापि की "उपमिति भय प्रबंध कथा की समाप्ति की तिथि का है जो विजयी सम्पत् १६२ की ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी बुधवार है। मिर्ठापि महाकवि माघ के चबरे भाई धर्मकर के पुत्र थे। बनराज बाबड़ा की राज्याभिषेक तिथि विजयी सम्पत् ८०२ वैशाख शुक्ला २ सोमवार थी। त्रिण तरह भोज प्रबन्ध का अन्य प्रबन्धों की बातें माघ काव्य में स्पष्ट हैं इसी तरह राजा भोज व माघ के पिता दत्त कुमार पण्डित तथा तत्सम्बन्ध विदियों के सम्बन्ध में भोजप्रबन्ध दूसरे प्रबन्ध तथा माघ काव्य में मिलते-जुलते तत्त्व प्राप्त हैं। यह बात हमसे है कि कई विधियों में एक दो दिन का अंतर था आता है जो भगवत् के भवना विधियों के

१ माघ सूर्य १४ ४३ ४६, ४८ में सुपिठिर के रूप में उगहोने दान के प्रति धानी आना व्यक्त की है।

पटने बढ़ने के फलस्वरूप है देखिये—(भारतीय काल-गणना पंडित देवकी लाल खेरवाल हूट)

इससे यह स्पष्ट होता है कि भोज-अवस्य प्रबन्ध-वितामणि और प्रभावक बरित का निबन्ध सर्वथा अप्रामाणिक नहीं है उनमें सार अवस्य है, वह बात बूझी है कि कहीं-कहीं घटिरचना हो गयी है। किसी कवि या संतक के अज्ञात जीवन क परिचय घुन उनकी कृति के अन्तर्गत अवस्य निहित रहते हैं। माव काव्य इसका अपकार नहीं है, उसके उपर्युक्त श्लोकों के आधार पर हमने प्रबन्धों की सत्यता का परिचय दिया है। विशेष परिचय घामे यवा स्थान दिया जायवा। अब जो-जो अवस्य कवियों या संतकों की बातें घाई हैं उनको भी इस प्रकारसे नै सम्मिलित करना चाहते हैं। इससे माव के जीवन का सम्पदन करने में सहायता मिलेगी।

समकालीन तथा परवर्ती साहित्य में माघ का उल्लेख

जिस भाँति महाकवि माघ ने अपने से पूर्ववर्ती विद्वान् और कवियों का उल्लेख किया है उसी भाँति समसामयिक लेखकों तथा परवर्ती व्यक्तियों ने भी अपनी रचनाओं में माघ का नामोल्लेख इस भाँति किया है—

राष्ट्रकूटों के राजा नृपतुंग ने जो नवम शताब्दी में विद्यमान थे अपने ग्रन्थ 'कवि राज-मार्ग' में माघ कवि को कामिदास का समकक्ष स्वीकार किया है। (देखिये के बी पाठक की भूमिका, संस्कृत साहित्य के इतिहास चन्द्रशेखर पाण्डे बलदेव उपाध्याय तथा दृष्ट्याभाषापी धारि) इसी तरह काश्मीरी पंडित श्री धनम्बरबर्बन ने जो नवम शताब्दी में विद्यमान थे अपने 'ध्वन्यालोक' में विष्णुपति बच के दो श्लोकों (सर्ग ३ का ५९ सर्ग २ का २६) को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है।

क—श्री हरदत्त एक अष्टोद्गमामाणिक ब्याकरण हो गये हैं। कील हर्त के अनुसार जिनैत्र बुद्धि ने इनकी रची हुई परमवर्ती की जुमे रूप में नकल की है। (देखिये कृष्ण उपाध्याय का इतिहास जहाँ पर वे माघ के विषय में लिख रहे हैं) जिनैत्र • बुद्धि ने 'काविका' की व्याख्या को 'न्यास' के रूप में रखा है जैसा प्रायः सभी विद्वान् कहते हैं। जिनैत्र बुद्धि से कुछ ही वर्ष पूर्व के थे हरदत्त हो गये हैं और इन्हीं हरदत्त ने अपनी बनाई हुई 'परमवर्ती' में माघ का एक बार नहीं अनेक बार नाम उद्धृत निर्बंध किया है। माघ के पूर्व समय तक टीकाएँ अधिक नहीं लिखी जाती थीं। श्री हरदत्त ने वा व्याकरण की बहुत सी टीकाएँ लिखी हैं अतः कोई आश्चर्य नहीं कि हरदत्त माघ के ही युग के व्याकरण का और जिनैत्र बुद्धि भी जो दूसरे व्याकरण हैं श्री हरदत्त के समसामयिक हों। सभी यह हो सकता है कि हरदत्त की परमवर्ती के बहुत से भागों को जिनैत्र बुद्धि ने अपनाया हो। जिनैत्र हरदत्त माघ से प्रायः में बड़े होंगे। वे दोनों समसामयिक न होकर एक ही युग के हों तब भी कोई आश्चर्य नहीं। इन महाव्याकरणों ने कदाचित् एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया हो कि जिससे उन युग में अधिकतर व्याकरण की ही अधिक प्रेम रही हो और यह भी हो सकता है कि कवि माघ को ऐसे ही युवकों से प्रेरणा प्राप्त हुई हो। माघ ने अपने प्रायः को महाव्याकरण लिखा है। अब वे मुझ से हरदत्त और जिनैत्रबुद्धि कापी मूढ़ होंगे।

ख—श्री सोमदेव जो दसम शताब्दी के हैं अपने यशस्तिलक चम्पू में माघ का उल्लेख इस प्रकार कर रहे हैं—

“तथा उर्व माघि भक्तभूति, भर्तृहरि भर्तृ मंथ” गुणादय व्यास बोध कामिदास बाण मयूर, नारायण कुमार, माघ राजराजराज महारवि वाय्यु तथा तथाकथरे भरतद्वीजे

• देखिये—जैन साहित्य और इतिहास लेखक माधुसूय प्रेमीपृष्ठ २७—जिनैत्र बुद्धि माघ के एक और व्याकरण हो गये हैं जिनका बनाया हुआ पाणिनी व्याकरण की काविका-वर्ति पर व्यास है। वे बोधिसत्वदेवीभाष्य या बीड—साधु थे। देखमि (जिनैत्रबुद्धि) इन्हें जिस से जो ६ ठी सतक में थे।

काम्याभ्यामे सर्वजनप्रसिद्धेषु विपुलस्थानेषु च कर्ण उद्विपया महती प्रसिद्धिः ।" सोमदेव यह स्थितक चम्पू (पा० १ पृ० १११)

ग—राजसेखर ने भी स्पष्ट रूप में माघ का विशेष किया है
हृत्स्न प्रबोध कुशाग्रो भारवेरिव भारमे ।
माघेनैवथ माघेन कम्प कस्य न जायते ॥

स्मरण रखना चाहिए कि यह राजसेखर मोक्षप्रतिहार के पुन के पुन थे ।

ब—राजा मोक्ष की आज्ञा से तिमकर्मबरी के तिसरे बासे की वनपाल ने राजसेखर का ही दूसरे सबों में समर्थन किया है, देखिये—

“माघेन विघ्नोत्साहा मोक्षहृते पवकमे ।
स्मरन्तो भारवेरेव पवय कपयो यया ॥”

ब—एक कसरी दिसासेख में माघ के सिधे कहा गया है कि वह एक घनुमबी कवि है और उन्हें साकुन्तल के कवि कामिनाथ की पंक्ति में बैठाया जा सकता है (देखिये कम्पुमा चारी का इतिहास) ।

घ—श्री प्रभावन्त्र ने प्रभावन्त्र चरित में “सिद्धि” का लेख लिखकर माघ की बंध परम्परा का कुछ वर्णन किया है (देखिये इसी प्रबन्ध में माघ-विषयक सामग्री) ।

ब—प्रबन्ध चित्तामणि में मैकतुंगाचार्य ने तथा पुरातन प्रबन्ध संग्रह में जैसा पहले लिखा जा चुका है, माघ तथा मोक्ष के विषय की जानकारी दी है ।

ग—वत्साल कवि ने भी मोक्ष प्रबन्ध में माघ और मोक्ष की कथा लिखी है । (देखिये माघ विषयक सामग्री) ।

द—मोक्ष ने “सरस्वतीकण्ठाभरण” में त्रिगुणाव बच के नवें सर्ग के छठे श्लोक को लिख कर माघ की ओर संकेत किया है । बिच प्रकरण में भी माघ के १६ वें सर्ग के १ २६, ३१ ४४ ६६, ८०, १२० श्लोकों को लिया है ।

ध—जैनेन्द्र ने “श्रीचित्त विचार चर्चा” में माघ के नाम का एक श्लोक उद्धृत किया है ।

इ—श्री वत्समदेव ने सुभाषितावलि में माघ के नाम वाले श्लोक लिखे हैं, फिर तो माघ के श्लोकों को कई विभागों में उद्धृत करना धारम्भ कर दिया । टीकाकारों ने टीकार्यों लिखीं और भाषीचर्यों ने माघ के कविता की चर्चा धारम्भ की ।

अब तो माघ कवि पर एक अध्ययन के रूप में विशेषणालम्बक दृष्टि से कुछ पुस्तकें भी निकलने लगी हैं जैसे “महाकविमाघ” बीटीनाथ वर्मा ने ३१ पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तिका धारवा मदन काशी से निकाली है तथा संस्कृत साहित्य के इतिहासों “कवि-चर्चा” और “संस्कृत कविवर्धन” जैसी पुस्तकों में माघ के विषय में काफी ध्यानहीन हो रही है । प्रस्तुत प्रबन्ध भी इसी तरह का एक प्रयत्न है ।

महाकवि माघ पर इस भाँति लिखित रूप में लेखकों के विचार प्रकट कर दिये जाने से कवि विविध के निर्णय पर, तात्कालिक सामाजिक आर्थिक, न्यायिक तथा राजनीतिक स्थिति पर दूर-दूर प्रकाश डाला जा सकता है ।

माघ के काल के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत

महाकवि माघ किस काल में हुए यह एक समस्या है विद्वानों के विभिन्न मत यहाँ रखे जा रहे हैं—

(१) 'संस्कृत कवियों का समय निरूपण' बंगला भाषा में लिखी हुई पुस्तक है। श्री सरयू प्रसाद मिश्र ने हिन्दी अनुवाद किया है। इसमें माघ कवि को भारवि से भी प्राचीन माना है। ५०९ खगब्द (५८४ ई०) का उत्कीर्ण लेख मिल चुका है जिसमें भारवि का नाम मिला है।

(२) पं० माकोबी बीयेना ओरियण्टल बरनन (बैसाहिक पत्रिका) के द्वितीय भाग के द्वितीय खण्ड में लिखते हैं—

"We therefore cannot place Magh later than about the middle of the sixth century"

(३) डा० मोना राकुर ब्यास अपने संस्कृत कवि दर्शन में माघ को श्री मासी ब्राह्मण बताते हैं और उन्हें राजस्थान के पार्वत्य प्रदेश झुंवरपुर-बीसवाड़ा के निवासी लिखते हैं। उनकी सम्मति में माघ का समय सातवीं शती के उत्तरार्ध से लेकर (६७५ ई०) मट्टी से लगभग ५० साल बाद यानेना अधिक संगत है। मट्टी का समय जनक हिंसाल से सातवीं शती का प्रथम चरण (६१० ईस्वी से ६१५ ई० के लगभग) है।

(४) डा० वीय अपनी हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर में लिखते हैं कि माघ कवि सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुए होंगे।

(५) पं० बलदेव प्रसाद छपाण्याय अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में माघ कवि को सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए स्वीकार करते हैं।

(६) महामहोपाध्याय डा० श्रीधरचन्द्र हीराचन्द श्रीवास्तव 'महाकवि माघ नाम की एक छोटी सी पुस्तिका में महाकवि माघ को सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए स्वीकार करते हैं।

(७) पं० शीताराम जयधाम जोशी तथा निरवभाष शास्त्री आचार्य अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में माघ का समय ६९० ई० से ६७५ ई० तक बताते हैं।

(८) एस के ड अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि महाकवि माघ सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए होंगे।

(९) श्री हंसराज प्रसाद अपने संस्कृत साहित्येतिहास में लिखते हैं कि माघ ६५० ई० से ७०० ई० तक रहे हैं।

(१०) श्री भूपतारायस बौधित ने अपने 'हिन्दी विद्युपास नव' या 'माघ काव्य' की भूमिका में लिखा है कि बाह्य प्रमाणों से तो सिद्ध है कि महाकवि माघ नवमीं शताब्दी के पहले कभी रहे होंगे किन्तु आन्तरिक प्रमाण उनको सातवीं शताब्दी के मध्य या आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ का बताते हैं।

(११) पं० तारा नाथ अपने एसाइक्लोपीडिया में उद्धृत पंडित की एक पंक्ति को उद्धृत कर रहे हैं 'तमाय् वा मारवेर्जाति'। उद्धृत पंडित जयापीड के समकालिक थे जो सन् ८१३ तक काश्मीर के शासक रहे हैं।

(१२) एम एच अंबारे अपनी विद्युपास नव की प्रथम बार छर्म की भांम भाषा में किये हुए अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं कि माघ कवि आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक ही रहे थे इसके पश्चात् नहीं।

(१३) पं० जगन् रामजी विद्यासागर अपने 'संस्कृत का सम्पूर्ण इतिहास' में लिखते हैं कि महाकवि का समय आठवीं शताब्दी निश्चित है।

(१४) प्रोफेसर के बी पाठक 'भोन बी डेट ऑफ माघ' शीर्षक में जो वे बी बी पार. ए एस बीसूम २० पेज ३०३ से ३१६ में लिखते हैं माघ को आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुए बताते हैं।

(१५) श्री जगन्मोहन पांडे प्रोफेसर सनातन वर्म कानिब कानपुर अपनी संस्कृत साहित्य की कन्फेरेन्स में माघ कवि के लिए लिखते हैं कि उनका वाणिर्वाह काल ८०० ई के पश्चात् का नहीं हो सकता।

(१६) महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसाद का लिखना है महाकवि माघ नवमीं शताब्दी से तो किसी भी अवस्था में भी धर्वाचीन नहीं है।

(१७) श्रीमान् रामावतार शर्मा अपने "भारतीय इतिवृत्त में जयापीड के पूर्वनामिक कवि को बताते हुए माघ को नवमीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ बताते हैं क्योंकि जयापीड ने काश्मीर में सन् ७०१ से ७३५ तक शासन किया था।

(१८) पं० नाथराय भावजनर निवासी 'श्रीकृष्ण सुभाषित रत्नमंजूषा' में लिखते हैं कि माघ का समय ई० सन् ८३० के लगभग अवश्य है।

(१९) एम एम डफ का लिखना है कि माघ ८६ ई० में थे।

(२०) पं० मेकडोनल्ड का कहना है कि माघ कवि नवमीं शताब्दी में तो निश्चित ही थे और वे दशवीं शताब्दी के पहले विद्यमान थे।

(२१) बेबर पं० लिखते हैं कि महाकवि जयवी शताब्दी में रहने वाले ह्यनायुध से कुछ पूर्व हुए हैं (देखिये कृष्णभाषाटी का इतिहास)। धर्वात् इनका कहना है कि माघ नवमीं शताब्दी में हुए हैं।

(२२) पं० क्लॉट (प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् तथा प्रोफेसर) के अनुसार माघ कवि दशम शताब्दी के प्रारम्भ में थे।

(२१) पं० रामेशचन्द्र दास अपनी हिस्ट्री ऑफ सिविलिजेशन इन इण्डिया बुक ५ अध्याय १२ में लिखते हैं कि माघ कवि १२ वीं शताब्दी के हैं ।

इस तरह विद्वानों की सम्मति में माघ का कास ५ वीं शताब्दी से चलकर १२ वीं शताब्दी तक पहुँचा है ।

अन्तः प्राक्य

शिशुपालवध में कविवशव्याप्ति —

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मसाध्यस्य बभूव राज्ञः ।
 प्रसक्तदृष्टिर्विराजा सदव देवोऽथरः सुप्रभदेवनामा ॥ १
 कासेमितं सध्यमुदर्कपथ्यं सबागतस्येव जनसञ्चेताः ।
 विनानुरोधात्स्वहितेऽप्ययैव महीपतिर्यस्य वषट्पकारः ॥ २
 तस्याभवद्वत्तक इत्युदात्तश्रीमी मुदुर्यर्मपरस्तनूजः ।
 यं वीक्ष्य वैशासमजातसप्तोर्बचो गुणग्राहिजनैः प्रतीये ॥ ३
 सर्वेण सर्वायम इत्यनिन्द्यमामन्दभाजा जनितं जनेन ।
 यदथ द्वितीय स्वयमद्वितीयो मुख्यः सतां गौणमवाप नाम ॥ ४
 श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
 लक्ष्मीपतेरुचरितकीर्तनमात्र चार (चार भाग) ।
 तस्यामजसुकवि कीर्तितुराजयाद
 काम्यम्यमरा शिशुपालवधामिमानम् ॥ ५

शिशुपालवध

का

कवि नाम व काव्यनाम वाता चक्रवर्त्य इत्येक

सर्व मानविशिष्टमाजिरभसादाक्षम्यमध्यः पुरो
 सङ्घ्वा घटाय दुर्दिष्टदुस्तर श्रीवत्सभूमिमुदा ।
 मुक्त्वा काममपास्तभी परमृगव्याधः समार्धहरे—
 रेकौप समनासमभ्रमुदयो रोपस्तदा तस्तरे ॥ १९-१२०

उपरिनिर्दिष्ट कवियुक्त प्रशस्ति में महानवि माघ ने अपने किय में तथा अपने पुत्र के विषय में संकेत रूप में सब कुछ बता दिया है । सांस्कृतिक राजनैतिक, सामाजिक तथा

धार्मिक स्थिति की पृष्ठभूमि में विष्णुपासना काव्य के आरम्भका भावे से श्लोक महाकवि माघ की जीवनी पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डालते हैं।

माघ काव्य में प्राई हुई कवि यद्यः प्रस्तुति माघ के जीवन काल की सुनिश्चित करने में तो योग्य वे ही रही है किन्तु साब ही में कवि के काव्य सिखाने के उद्देश्य को भी पता रही है। इन पाँचों श्लोकों की व्याख्या हम टीकाकारों के अनुसार ही कर रहे हैं।

यहाँ पर प्रथम १२वें शर्प का अन्तिम श्लोक ही भेजे जो एक रहस्यमय बहर्था है। इस श्लोक में कवि ने बड़ी चतुराई से "माघ काव्यमिर्ब" और "विष्णुपासना" तो सिखा ही जो स्पष्ट है किन्तु साथ ही उसमें उन्होंने उसी चतुराई के साथ अपने जन्म स्थान का भी नाम रख दिया है। कवि ने जब-जब भी अपने विषय में कहा है वहीं पर कभी समासोक्ति का प्रयोग किसी ऐसे ही धनकार का प्रयोग किया है। इस श्लोक को ध्यान से पढ़ने पर स्वतः ज्ञात होता है कि कवि यहाँ कुबेर प्रतिहार राजा की ओर संकेत कर रहा है जिसने सन् ७३३ से ८०० ई० तक तीनमास जालौर, कन्नौज और मासवा पर अपनी सुदृढ़ शक्ति से शासन किया था।

बहि साक्ष्य से पता चलता है कि महाकवि माघ का जन्म सन् ७४४ से ८८० ई० के मध्य में कन्नौज हुआ और इसी काल के आसपास उनकी मृत्यु हुई। माघ कवि को सन् ८८० से न घाये रख सकते हैं और न सन् ७४४ ई० के पूर्व ही रख सकते हैं। यह युग भारतीय इतिहास में आन्तरिक संघर्षों का युग है। जब एक से अधिक राजे उन्होंने अपने सम्मुख किसी भी लड़ाइयों को होते हुये देखा। उनके जीवन काल में उन्होंने प्रतिहारों की शक्ति को देखा। बल्लभ प्रतिहार प्रपूर्व सचिवासी या [विजिने की कन्नौजालास माणिक-लाल मुन्दी की भी ज्योती दृष्ट गुर्जर देश है]। बल्लभ ने अपना प्रभुत्व उस भूमि की ओर इतना जमा दिया था कि वह भूमि बल्लभूमि ही थी जिसकी ओर भाँच छानने की किसी की सामर्थ्य नहीं थी। वह उस बल्लभूमि की सीमा को घाये से घाने बढ़ाता जा रहा था। तीनमास उस बल्लभूमि की राजधानी थी। यह वह बल्लभूमि नहीं है जिसकी राजधानी कौताम्बी थी। इस बल्लभूमि ने बीरतापूर्वक युद्धों में विजय प्राप्त करके बल्लभूमि को घरा ही अन्तर्जाली बनाया और कन्नौज तक अपना अधिकार प्राप्त किया। सन् ८०० के पश्चात् नागमठ द्वितीय विहासनाथ हुआ जिसकी नागावसोक वाली सेना प्रजेय थी। उसने अधिक समय तक राज्य नहीं किया। सन् ८१४ ई० में समय १२ वर्ष की अवस्था में मिहिरमोक्ष प्रतिहार बंध के नाम की युद्ध की प्रति प्रगटित करने के लिए विहासनाथीन हुए। नागमठ द्वितीय जिसको इतिहास में बहुत भी कहा जाता है भोज प्रतिहार आदिबराह का पितामह था। बहुत का पुत्र राममक्ष गरी पर बैठा। वह बेसामामी था। दो तीन वर्ष ही राज्य कर पाया कि अपने बेटे मिहिरमोक्ष द्वारा मार डाला गया। हमारे महाकवि माघ उस समय में प्रवय वे। जो सज्जा है राममक्ष का लक्ष्य प्राप्त कर माघ भी विषयाविरापी अधिक रहे हों पर भोज ने गरी पर बैठते ही राममक्ष के साथियों को प्रवय उससे सम्पर्क में घाने वाले व्यक्तियों को निरास दिया हो। महाकवि माघ ने आरम्भका के रूप में ऐसे कई श्लोक रचे हैं जिनसे उनके देश निर्वासन अनादर और पुनः राज्यारोप में घाने की बात विरहित होती

है। महाकवि माघ बत्सराम प्रतिहार से लेकर प्राचिनराह भोज तक सीमित रहे और उन्हीं राजाओं के समय की बहुत-सी बातें इस दिगुपालवचन महाकाव्य में किसी-न किसी रूप में अवश्य विद्यमान हैं। प्रतिहार राजा की प्रशंसा में अपनी अम्मभूमि का भी संकेत उन्होंने बत्सभूमि के रूप में किया है जो भीममाल या भीमाल है। इस श्लोक का सिसृष्ट भर्ष इस प्रकार है—

श्रीकृष्णपक्ष में—

कल्याणमूर्ति, अथविनायकादी सुखता को प्राप्त, श्रीबत्सभिल्ल से सुसोमित उग्रत हृदय अत्यन्तनिर्मय धनु-रूपी हरिणों के लिये व्याघ्र स्वल्प नित्य अम्बुदयणीन भगवान् यी हृष्ट ने पहले युद्ध व अनुराग से प्रेरित होकर आईकार युक्त वन का आश्रय लेकर तथा उत्साहपूर्वक सिंहनाद। करके एक ही समय में तथा एक ही बार में बहुत से बाणों को फेंक कर उत्काश आकाश को आच्छादित कर दिया।

प्रतिहार राज-पक्ष में—

अतमन योग्य पापाग्ना राजाओं के नाश कर देने से निश्चितता को प्राप्त श्री सम्पन्न बत्सभूमि (भीममाल पासौर आदि का प्राप्त) को उन्नति पर पहुँचाने वाल अत्यन्त निर्मय, धनु रूपी हरिणों के लिये व्याघ्र स्वल्प नित्य ही अम्बुदयणीन उस भुवने प्रतिहार राजा (बत्सराम अथवा नाममट्ट द्वितीय अथवा मिहिरभोज) ने प्रथम युद्ध की विजय से प्रोत्साहित होकर अहंकार युक्त वन का आश्रय लेकर तथा उत्साहपूर्वक सिंह-भार्जना करके एक ही समय में तथा एक ही बार में बहुत से बाणों को फेंककर वही समय आकाश को ढक दिया।

भुवने प्रतिहार वंश की बीच बालने वाले अथवा नाममट्ट प्रथम से किन्तु उनके पश्चात् बत्सराम बड़े ही शक्तिशाली शासक हुए हैं जिनकी बाढ़ उस समय चारों ओर की छिद्र नाममट्ट द्वितीय भी बड़े ही शक्तिशाली हुए हैं। उन्होंने पिता के राज्य को और अधिक बढ़ाया अथवा इनका शासन काय इतना सम्मान न रहा। बत्सराम का प्रभाव इतना था कि उन्हीं के नाम से वह देश कुछ काम तक बत्सभूमि कहलाने लगा। इस बत्सभूमि की सीमा को उन्नति की जरूरत सीमा तक पहुँचाने वाले नाममट्ट द्वितीय से जो नागाबंसोक्त अथवा माहृ भी कहलाते हैं। इनने वधीन या महाकाव्य प्राप्त किया। आश्रय लेखक बिदने कमिज और बंगाल के राजाओं को जीता तथा आनंद मालव विजय, गुरुक बरह (श्रीरामजी जिनकी राजधानी है) और मलय धारि देवों के पावरय गहों को अपने अधिकार में किया।

हो गया है महाकवि माघ इन्हीं प्रतिहार राज का गुणानुवाद कर रहे हैं जो अपने पता की भूमि (बत्सभूमि) को उन्नति पर पहुँचा रहे थे।

८ माघ की ओर की बातें प्रकरण को देखिये।

टीकाकारों का अभिमत—

मात्र विषयक प्रथम अणुस्य स्य्य इत्य उपर्युक्त कवि बंध विवरण (वर्णन) से हमको मिला है। मस्तिनाब ने इन पाँच श्लोकों की व्याख्या नहीं की केवल बल्समदेव इत्यादि व्याख्या ही हमको देखने को मिली। परन्तु टीका स्वयं ही हो जाती है कि कवि बंध वर्णन के श्लोक कहीं प्रसिद्ध हो नहीं हैं क्योंकि पद्यार्थ में प्रथम ३२ श्लोक के पश्चात् इत्यर्थात् ३४ श्लोक रहे यदि हैं फिर बालीसर्वां श्लोक आया है वहाँ से मस्तिनाब ने अपनी व्याख्या दी है। उन ३४ श्लोकों की व्याख्या बल्समदेवकृत है। जिस तरह प्रसिद्ध मान कर मस्तिनाब ने उन श्लोकों की व्याख्या नहीं की उन्हीं तरह इन कवि बंध वर्णन के पाँच श्लोकों की व्याख्या भी उन्होंने सम्भवता यही मान कर नहीं की कि वे मानकृत नहीं हैं। इस बात की संभावना पर पहले विचार कर लेना चाहिये।

(घ) सदैवविषयीति नाम्नी टीका के प्रलेख बल्समदेव लेखी-छात्रक के निर्माता मानस्यवर्णन के पुत्र थे। इनके पाँच कैव्यट के रचित श्लोकों से ज्ञात होता है कि यह ब्रह्म शतक के पूर्णार्ध में थे। सर्वकृपा नाम्नी टीका महामहोपाध्याय श्री मस्तिनाब कृत है। इनका समय बीसहरी छायाब्दी के आरम्भ से लेकर १५९० ई० तक माना गया है।

(ग) दोनों टीकाकारों में बल्समदेव पूर्व के हैं और उन्होंने सब श्लोकों की व्याख्या करते बाह्य व्याख्या ज्ञान ही उन्होंने कर दी हो। मस्तिनाब ने न तो इत्यर्थात् श्लोकों की व्याख्या की और न इन कविबंधवर्णन वाले ५ श्लोकों की ही व्याख्या की। हरिदास संस्कृत ग्रन्थशास्त्रा काशी-संस्कृत सीरीज संस्कार काव्य १२ के "विद्युत्पात नभः" दोनों (टीका संहिता) के ३२ वें श्लोक में नीचे लिखा गया है कि "श्लोकोऽर्थं मुद्रित-मुद्रकादपरे मस्तिनायेन प्रसिद्ध-उद्योपेक्षितानां अनुविबंशवर्णनं बाले ५ श्लोकानां कवि बंध इत्यर्थः" फिर जो एक श्लोक दिया गया है उसके नीचे "इत्य आरम्भानुविबंशवर्णनानाम् मस्तिनाबः प्रसिद्धान् मत्वा न व्याख्यातवान्। मोहमत्वा मुद्रित-मुद्रकं तु बल्समदेव-व्याख्यया लक्ष्ये संपूरीता।" पर सा व्याख्या प्रथमबाधार्थं मुद्रकादभिन्नाक्षेपेति विविधाभि संपूरीतास्मान्निरेषः।"

(ङ) मस्तिनाब ने न माना कि आचार पर इन श्लोकों को प्रसिद्ध माना है। हो सकता है कि ये ५ श्लोक प्रथम पुरुष में हैं उत्तम पुरुष में नहीं परन्तु प्रसिद्ध मान लिये गये हों। मस्तिनाब के समय तक आते-आते मात्र कवि पर विवरण भी लिखे जाने लग गये थे। प्रभावकचरित्रकार ने लिखा है कि मैंने माय के विषय में जो कुछ लिखा है वह सब जनभूति के आचार पर है। जनभूतियों में बाह्य बहुत सी बातें उपर-उपर की होती हैं किन्तु फिर भी माय का बंध तो कुछ न कुछ होता ही है। "कवि बंध वर्णन" बाह्य कवि की सूचना में न भी निकला हो किन्तु उसमें जो बलाग है उसमें सत्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है क्योंकि कवि को विवर्णन हुए इतना लज्जा समय न हुआ था कि नबनी या बाली छायाब्दी के विद्वान् उनके नाम ग्राम पिता पितामह आदि के विषय में निराश्रय अभिमत हों। परन्तु कवि बंध का वर्णन कवि का ही लिखा हुआ है जिसका प्रभाव है पाँचवां श्लोक जिसमें स्पष्ट

कहा गया है कि उसी वक्त के पुत्र माघ ने सुकवि-कीर्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा स विष्णुपान वष नामक काव्य को बनाया जिसमें श्री कृष्ण का चरित्र है और प्रति सर्ग की समाप्ति पर भी" अबका उसका पर्यायवाची कोई दूसरा शब्द अवश्य दिया गया है।

(ई) जिस कवि ने १६ सर्ग के अन्तिम श्लोक सख्या १२० म अष्टमस्क में किसी रूप में "माघ काव्यमिदम्" 'विष्णुपान वष' तक लिख दिया तो फिर वह अपने वष का बरतन भी सूक्ष्म रूप से कर है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

(उ) वष की अभिलाषा रखने वाला कवि अपने वष का बरतन सूक्ष्म रूप में अवश्य करेगा यदि वह उच्चर्यसावर्तस है। बहुत ही पुत्र के कवियों में नाम बताने की रीति नहीं थी। किन्तु जिस युग में माघ ने वह युग प्रतिष्ठिता का युग था। तब क्या कि नहीं ? फिर कवि अपने वष का बरतन करके युगों तक प्रसिद्धि लाने का अर्थ क्यों न ले सके।

जाहे प्रतिष्ठ हां अबका कवि के स्वयं के लिखे हों, इन श्लोकों से माघ के विषय में हमें निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध होते हैं—

(१) माघ के पितामह सुप्रभदेव व। व सर्वाधिकारी (महामन्त्रा) पुष्पकर्मों में सहज अधिकार रखने वाले (वर्माधिकारी) राजा की ही भाँति थे। सब टीकाकारों ने सुप्रभ देव को मुख्य आचार्य माना है। इससे हम भी सहमत हैं कि वर्मन्त नामक राजा व के सर्वाधिकारी थे किन्तु 'सुकवाधिकार' शब्द एक ऐसा भा जाता है इससे हमारी सम्मति कुछ भिन्न हो जाती है। माघ सुहृदाधिकार तो देवस्थान अधिकारी के हाथ रहता है जो सर्वाधिकारी है। राजा वर्मन्त ने यह समझ कर कि श्री सुप्रभदेव परम धार्मिक निरासक्त इष्टि वाले शास्त्रिक स्वभाव के अपरदेव (शास्त्राण) हैं अतः इनको सर्वाधिकारी (मुख्य अधिकारी) करते इनके अधिकार में सुकृत कर्मों का ही अधिकार रखा। देवस्थान अतिथि भत्कार, दान पुष्प आदि का बिनाग इनको देकर उसी का आभ्यस्त नियत कर दिया था। सुप्रभदेव समय-समय पर राजा को उपदेश भी देते रहते थे जिसको महाराज बिना आपत्ति के स्वीकार करते थे। सुकृत कर्म में वे सर्वाधिकारी तो थे ही।

(२) माघ के पिता का नाम वत्सक या कुमुद पण्डित था। वत्सक परम उदार शमा शील कोमल प्रकृति तथा वर्मनिष्ठ थे। सुविह्वर का देखिय या वत्सक को देखिये। सब को आश्रय देने के कारण वे वत्सक "सर्वोपश्रय" भी कहलाते थे। पुष्पीक निवासियों को प्रसन्न करने के कारण कदाचित् इनको साहित्य रसिक 'कुमुद पण्डित' नाम से सम्बोधित करते थे।

(३) उनमें पितामह के समय में जहाँ पर सुप्रभदेव रहते थे वर्मन्त या वर्मन्त नाम का राजा राज्य कर रहा था।

(४) वत्सक या 'कुमुद पण्डित' के पुत्र माघ है जिन्होंने सबोपपति (भीष्टार्थ) के चरित्र का वर्णन करते हुए विष्णुपानवष नाम का महाकाव्य बनाया और इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्री वष को किसी न किसी रूप में साया गया। काव्य बनाने का उद्देश्य केवल 'सुकवि कीर्ति' प्राप्त करना था जिसकी उपलब्धि बरत नहीं थी।

(१) प्रत्येक सर्ग के अन्त में लिखा हुआ मिश्रता है 'इति श्री भिन्नमासक वास्तव्य वत्सकभूमिर्गङ्गा वैपाकराण्यस्य मासस्य कर्ता विष्णुपालकस्य महाकाव्ये' (श्री वत्सक का पुत्र भिन्न-मास का रहने वाला व्याकरण शास्त्र में मिश्रता है उसी मास न विष्णुपाल कस्य महाकाव्य का यह सर्ग समाप्त किया) ।

(२) मास की सब कृतियों में राजा का नाम वर्मस है तो कुछ में वर्मसात । कुछ प्रतियाँ ऐसी भी प्राप्त हैं जिसमें वर्मनाम वर्मनाथ, वर्मनाम दीव पड़ता है तो कुछ प्रतियों में वर्मसात, वर्मसात धर्मदेव वर्मनाथ वर्मनाथ, निर्मनाथ है ।

(३) जब वर्सुन में तो राजा किस देश का या सुप्रमदेव कहां का निवासी या कोई संकेत नहीं । राजा के यहाँ नौकरी करने के लिये किसी देश से आकर रह गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं ।

(४) प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर जो लिखा हुआ मिश्रता है कबल इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि मास कवि "भिन्नमासक" का रहने वाला था । चरित्रम् (१६ १२०) श्लोक से भी सात होता है कि वह वत्सभूमि का या जिसको भीनमाल कहा जाता है ।

(६) बंदाबलि में मास का पिता वत्सक है और प्रति समाप्त भी वत्सक सूत्र है । परंतु वह तो सुनिश्चित हुआ कि वत्सक उसके पिता के जो भिन्नमास में रहा करते थे ।

सारांश

"विष्णुपाल कस्य" महाकाव्य के रचयिता व्याकरण-शास्त्र के विद्वान् पंडित मास थे । मास का जन्म स्थान भिन्नमाल था । ये वत्सक के पुत्र थे । वत्सक परम उदार क्षमाशील कोमल प्रकृति एवं वर्मनिष्ठ व्यक्ति थे । वत्सक में ये कुछ नापी के रूप में अपने पिता सुप्रमदेव को उस समय दूसरे युधिष्ठिर के मुख्य के सम्मानित हुए थे । ये निराश्रित दृष्टि वाले रजोपुत्र रहित ब्रह्म प्रकृति के शास्त्रज्ञ थे । उत्पन्न एवं वर्मात्मा होने से कि इन्होंने अपने बुद्धों को युधिष्ठिर को भी विस्तृत कर दिया था । यदि वत्सक पिता के बुद्धों से मुक्त हों तो स्वयं आश्चर्य ही क्या है ? भूदेव सुप्रमदेव राजा वर्मस (राजा वर्मसात) के यहाँ "यवविधायी" के पद पर आसीन थे और वित्त भी मुख्य कार्य थे उन कार्यों के बिना राजा के पूछे हुए सुप्रमदेव को करने का अधिकार राजा से प्राप्त था । राजा वर्मसात सुप्रमदेव के कार्यों को स्थापित (बुद्ध) के उपदेश की शक्ति बिना संकोच या अनुरोध के स्वीकार करते थे । इसी सुप्रमदेव के पौत्र वत्सक के पुत्र मास ने कठिनाता से प्राप्त करने योग्य मुद्रविहीन के भित्त ही भी हृत्पुत्र के चरित्र के कीर्तन का धामय लेते हुए विष्णुपाल कस्य नाम का काव्य बनाया जिसकी मोटी सी पहचान "श्री राज्य प्रत्येक सर्ग के अन्त में मिलती है । इस विष्णुपाल कस्य का नाम कवि ने "मास-काव्य" भी किया है । १६ वें सर्ग के अन्त का चरित्रम् है यदि इसे ध्यान से पढ़ें तो 'मास काव्यविदम्' "विष्णुपाल कस्य" के दो पद स्पष्ट दीख पड़ेंगे ।

काव्य में आई हुई अन्तर्कथाओं से सम्बन्ध घटनाएँ तथा समसामयिक व्यक्ति

प्रदर्शनों तथा सिमासेल भावि बहिःसाक्ष के द्वारा मात्र सम्बन्धी तथ्यों को उपस्थित करने के पश्चात् अब अन्तःसाक्ष का भी उपयोग कर लेना आवश्यक है। कवि बंश स्थापित के प्रकरण में जो कुछ कहा गया है वह भी अन्तःसाक्ष ही है उसे सीधे कवि व जीवन वृत्त के निर्माण में बहुमुख्य सहायता मिलती है पर उसके प्रामाण्य की सविस्तरता से दूसरी बातों के अनुसंधान की भी आवश्यकता है यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

महाकवि भाव ने शिशुपाल बन्ध के द्वितीय सर्ग के ११२ संख्या में राजनीति का वर्णन करते हुए कहा है—

अनुत्सूत्रपदमासा सत्सृष्टि सन्निवधना ।

शकदविद्येय मोमाति राजनीतिरपस्पशा ॥ १२॥ २ सर्ग ।

अर्थ—नियम के विरुद्ध एक पैर भी जिसमें रखा नहीं जाता हो पुराने आचार्य भावि की जो उत्तम नीतिका जो धोर जिसमें कार्य के अन्त में पारितोषिक आदि की व्यवस्था हो ऐसी राजनीति युद्धवर्षों के बिना ऐसे व्याकरण शास्त्र की भाँति सोमा नहीं देती जिसमें सुखों के अनुसार पक्षों का आस का प्रतिपादन सूत्र-व्याख्यान रूप कादिकादि अन्य और उत्तम महा भाष्यादि निबन्धन तो हों पर (भारत में उसका) पस्पश (महामाध्य के प्रथमाध्याय का प्रथम पाहुनिक) न हो।

स्पष्टीकरण जिस भाँति अपस्पशा अर्थात् शास्त्राचार्य समर्थक प्रयोजन अर्थ के बिना व्याकरण विद्या 'अनुत्सूत्रपदमासा' 'सत्सृष्टि' और 'सन्निवधना' होकर भी नहीं सुगो नित होती उसी प्रकार उपर्युक्त सुखों से युक्त राजा की नीति भी अपस्पशा (अर्थात् दोस्य युद्धवर्षों की सुखवस्था से रहित होकर) नहीं सुधोनिव होती। पंथजि ने व्याकरण-शास्त्र का प्रयोजन बधमाते हुए अपने महाभाष्य में कहा है—

एतोहाममलभ्यसम्बेहा प्रयोजनम् इती को पस्पशाहुनिक भाष्य कहा जाता है। जब तक यह प्रयोजनारम्भक पस्पशाहुनिक भाष्य नहीं होता, तब तक व्याकरण विद्या की सार्थकता पूर्णतः परित्यक्त नहीं होती क्योंकि—

सर्वस्यच हि दास्त्रस्य कमणो वापि वस्यसि ।

यावत्प्रयोजन भोक्तं तावत्तत्कन गुह्यते ॥

अर्थात् सभी दास्त्रों अथवा कर्मों का जब तक प्रयोजन नहीं बतसा दिया जाता तब तक उनमें कौन प्रगुप्त होता है कोई नहीं। इस श्लोक में अपस्पशा में वाक्यभेद, सत्सृष्टि और

सन्निवृत्तता में अर्पणस्तेप तथा अनुसूचपवन्त्यासा में उभय स्तेप तथा सव्य-विद्येय इसमें पूर्ण-पमा अर्पणकार है। 'व्यास' 'काशिका' और महाभाष्य के पाणिनीय व्याकरण के अन्त्यतम प्राचीन ग्रंथ हैं।

(१) उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो गया होमा कि 'काशिका और व्यास इन दो व्याकरण ग्रंथों की ओर महाकवि माघ ने संकेत किया है। 'काशिकावृत्ति' का मस्तिनाथ और वसन्तमदैव दोनों टीकाकारों ने भी स्पष्ट उल्लेख किया है। 'काशिकावृत्ति' की रचना यामन और ज्योतिष्य ने ६५० ई० में की थी। यद्यपि यह निश्चित है कि माघ इस समय के बाव ही हुए होंगे किन्तु उक्त वक्तव्य में 'व्यास' शब्द से किस ग्रंथ विशेष की ओर संकेत है इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। प्रो० के बी पाठक महोदय (इन्डियन एन्टीक्वेरी १९१२ पृ २१५ और के बी भार ए एस वात्स्य २१ पृष्ठ १८) का कहना है कि उक्त व्यास से अमित्राक्ष काशिकावृत्ति की जिनैन्द्रबुद्धि रचित व्यास नामक टीका से है जिसकी रचना लगभग ७०० ई में हुई है। उनके मतानुसार माघ का समय इस आधार पर ६५० ई० के आसपास सिद्ध होता है।

श्री सीताराम जयराम जोशी अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में बिर्हीर के द्वितीय भोज के ६५० ई० से ६७५ ई तक के राज्यकाल के आधार पर, सप्तम शतक के उत्तरार्ध में हुमा बताते हैं। श्री ओमप्रकाश श्री भी वसन्तमङ्ग के सिन्हालेख की तिथि सन ६२५ ई निर्धारित करते हुए माघ को सप्तम शतक के उत्तरार्ध का सिद्ध करते हैं। यदि इस बात को सत्य मानें कि माघ ने जिनैन्द्रबुद्धि से व्यास की ओर संकेत किया है तो उनका समय ६५ ई० से ७० ई० के बीच का नहीं हो सकता।

माघ ने जिनैन्द्रबुद्धि के व्यास की ओर संकेत किया है इस पर विद्वानों को सम्यक् इसलिये होने लग गया कि जिनैन्द्रबुद्धि के पूर्व भी तो बहुत से व्यास ग्रंथ लिखे जा चुके थे। जिनैन्द्रबुद्धि ने स्वयं बुद्धि भुक्ति तथा नस्तूर धारि के व्यास-ग्रंथों का उल्लेख किया है। बाण भट्ट ने जो इस व्यास की रचना के पहले अवस्थ हो चुके थे अपने हर्ष चरित में ठीक इसी स्तेप की उपासना की है—कृतबुद्ध-गव्यासा भोज इव व्याकरणेष्टि।

यही यह भी आश्चर्य है कि माघ का बौद्ध तथा जैन मान्यताओं के प्रति कुतर्कभाव प्रेम था। इन दोनों धर्मों को उनके पितामह सुप्रभदैव ने उदात्ता में देखा तथा वक्तव्य ने भी जो माघ के पिता थे। माघ के अनेक भाई 'सिद्ध' वर तो बौद्ध और जैन धर्म का आराध प्रमाण था ही। (इस बात का वर्णन पहले किया जा चुका है।) इस बात को समझ रखते हुए यह कहा जा सकता है और ऐसा कहना ठीक भी है कि माघ ने विद्वान् जिनैन्द्रबुद्धि के ग्रंथों का अवलोकन किया होगा और उक्त वक्तव्य में जिनैन्द्र के व्यास की ओर संकेत किया होगा। दूसरे हर्ष के परभाव से हुए होंगे क्योंकि उनके नागार्जुन नाटक का अन्तर्गत ज्ञान था। इन आधारों से माघ का सप्तम शतक में होना संभव नहीं लगता। चाहे जितने ही व्यास ग्रंथ जिनैन्द्रबुद्धि के पूर्व क्यों न लिखे गये हों इससे माघ ने जिनैन्द्रबुद्धि के व्यास की ही ओर संकेत किया है इस बात पर अस्मर नहीं पड़ता। यद्यपि माघ का समय ७४४ ई से ८४४ के आसपास का हो सकता है।

संस्कृत व्याकरण साहित्य के इतिहास के लेखक मुनिष्ठिर मीमांसक काशिका और सिधुपालवच पर मिलते हुए 'अनुत्पन्नपदव्यासा' के श्लोक का उल्लेख करते हैं। वे लिखते हैं, इसमें सद्भूति से काशिका की ओर संकेत है। सिधुपालवच के टीकाकार सद्भूति और व्यास पर ये काशिका और जिनैन्द्रबुद्धि विरचित व्यास का संकेत मानते हैं और उसी के आधार पर व्यास के सम्पादक महाशार्य ने माप का काम ८०० ई (८५७ विक्रमी) माना है (विश्वमे व्यास की भूमिका पृष्ठ २६)। सीरजेव के अनुसार भामहृतिकार ने माप के कुछ प्रयोगों को अपभ्रंश माना है (अपभ्रंश तर्क सूत्रे ११ २७)। भामहृति-पुरातन मुने मुनिनाम्-किरात १।१६ इति 'पुरातनी नदी' माप १२।९० इति च प्रमाद पाठावेतो मत्तानुपतिकृतया कवयः प्रयुज्यन्ते न तेषां सञ्चलं बद्धुः परिभाषाभूति पृष्ठ १३७)। भामहृति की कुछ ही रचना सं० ७०१-७०३ के मध्य हुई। उस की नहीं।

'महाकवि माप और व्यास पर इसी इतिहास में लिखते हुए मीमांसकजी लिखते हैं कि जयादित्य और बामन विरचित सम्मिलित कृति काशिका नाम से प्रसिद्ध है। काशिका की सबसे बड़ी प्राचीन व्याख्या जिनैन्द्रबुद्धि विरचित काशिका विवरण पत्रिका है। वैद्य काल विकास में यह व्यास नाम से प्रसिद्ध है। यह व्याख्या जयादित्य और बामन (८०० ई) की सम्मिलित कृति पर है। (काश्यादि प्रकाशयति सूत्रार्थमिति काशिका जयादित्य विरचिता कृतिः) जयादित्य की मृत्यु विक्रमी संवत् ७१८ के समय हुई बताते हैं, बामन को ८०० ई के समय मरते हैं। काशिका १ ३ २३ में भारवि का एक पद्यांश उद्धृत है (मद्यभ्यवर्णा विष्णु तिष्ठतेषां किरात ३।१४)। महाराज मुनिनील ने किरात के पदार्थों पर टीका लिखी थी। मुनिनील का राज्य काम ३३६ से ३६६ ई० तक है यद्यपि सन् ३३६ के पूर्ववर्ती है। मुनिष्ठिरजी का कहना है कि यही काशिका की पूरा सीमा है। काशिकाकृत की रचना काशी में हुई। यह व्याकरण शास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस काशिका की विषयता है कि काशिका से प्राचीन कृति आदि कृतियों में गलतपाठ नहीं था इनमें गलतपाठ का दवा रवान नभिषेध है इनके अतिरिक्त अष्टाध्यायी की प्राचीन विमुक्त कृतियों और अंशकारों के अनेक मत इस ग्रंथ में उद्धृत हैं जिनका अन्वय उल्लेख नहीं मिलता इनमें अनेक सूत्रों की व्याख्या प्राचीन कृतियों के आधार पर लिखी है यद्यपि उनसे प्राचीन कृतियों के मूलार्थ जानने में पर्याप्त सहायता मिलती है। इसके अन्तर्गत अष्टाहारा, प्रयुषाहारा माप प्राचीन कृतियों के अनुसार हैं जिनसे अनेक प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान होता है।

व्यास का धर्म मस्तिनाय के 'कृतिष्ठाव्यास ग्रंथ विवेका' और कृति या धर्म 'कानिनाम्-नृन-व्यास्यान-ग्रंथ-विवेको' लिखा है। ऐसा ही धर्म हमारे टीकाकारों ने भी लिखा है यद्यपि माप काशिका और व्यास की रचना के पदार्थ ही हुए।

इस सब का धार यह निष्कर्ष कि जयादित्य और बामन मात्रवी घटारी के सम्पादन में और जिनैन्द्रबुद्धि आदिकों के कारण में ये यद्यपि माप सन् ८०० के कुछ वर्ष पहले तक जाते हैं।

(२) श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिसदृश

सदृशीयतेवचरितकीर्तनमात्रभास (बादमात्र) :

तत्प्राप्तमजं मुनिमीतिदुराग्रयाव

काव्य व्यसतं द्यौपयामत्राभिधानम् ॥३॥ (वसवर्णनम्) ॥

अप्युक्त श्लोक किन्तु उद्देश्य को लेकर बताया है उस पर टीकाकार श्री बल्लभदेव लिखते हैं 'कया हेतुना मुनिमीतिदुराग्रया मुनिमीनां श्रेष्ठ-मिदुना वरर्षि-मुनि-सौमनाम भवभूति श्रीशब्दरम्य-काविरास मिदुह्यु-भारवि-बाण-मयूरवि कवीनां वा कीर्ति' तथा वा दुराग्रया दुरनिजापस्तया महाकविमीति-सिन्धवेत्यर्थः । दुराग्र्य स्वाग्रया स्वस्वबुद्धित्वेन मुनिमी कीर्तयेत्युक्तत्वात् । टीकाकार श्री बल्लभदेव ने भवभूति का नाम लिखा है कि जैसे उप ब्रूय कवियों ने वाच प्राप्त किया ऐसे वाच की प्राप्ति में मुनि मात्र के लिए बाधा एक दुराग्रया मात्र होती क्योंकि कहीं तो वेरी स्वल्प बुद्धि बाण कहीं उन्नत कवियों की प्राप्ति में ही मुनि वाचप्राप्ति सिन्धः । इससे तो स्पष्ट है कि भवभूति मात्र के पूर्व कहीं व्यवस है बाधे ने कुछ ही वर्ष पूर्व के हों । इतना ही उक्तता है कि भवभूति की वृद्धावस्था हो और मात्र वृद्धावस्था में अपने वैभव के दिनों को आनन्द में लाने होकर बिठा रहे हों किन्तु मात्र के पूर्व उन्होंने, जैसा टीकाकार भी लिखते हैं 'यानि सव्यं ग्राण कर सी होती' । यहाँ पर उन्नत श्लोक ने सम्बन्धित मात्र के समकालीन भवभूति के चित्र में कुछ लिखना समीचीन था ।

संस्कृत के महान् नाटककारों में भवभूति का नाम काविरास के पश्चात् ही लिया जाता है । उनके स्थिति-काल के विषय में वे अशोचिहित प्रमाण उपलब्ध करते हैं—

(१) मध्यम (११०० ई०) वर्तमान (११११ ई०) और सौमदेव (१११६ ई०) ने अपनी रचनाओं में भवभूति के नामों से उद्धरण किये हैं ।

(२) राजशेखर (१०० ई०) ने अपने को भवभूति का अवतार बताते हुए कहा है—

“कस्य वत्सीक्रमक कवि पुरा

ततः प्रेरे भुवि मर्तुमेष्टताम् ।

स्वित पुनमी भवभूतिरेवमा

स वर्तते सम्प्रति राजशेखर ॥ १ ॥ १६ । वा० रा० ॥”

(३) नाग (८०० ई०) ने अपनी काव्यात्मकार भवभूति ने भवभूतिद्वय उत्तर रामचरित के दृष्ट गेह सङ्गी (१११८) दण श्लोक को उद्धृत किया है । अतः भवभूति के स्थिति-काल की नीचे की सीमा ७२० ई० के समान सिद्ध होती है ।

(४) बाणभट्ट ने हर्षचरित में बाण काविरास जैसे प्रसिद्ध कवियों के साथ भवभूति का उल्लेख नहीं किया है । बाण का समय ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध वा अतः यह भवभूति के समय की ऊपर सीमा है और ये ६२० से ७२० ई० के मध्य हुए होंगे ।

(५) कस्तूरदास राज-सरणिणी (११४८ ई०) से विरचित होता है कि भवभूति कवी के राजा यशोधरों के आश्रित कवि थे । वे लिखते हैं—

“कविचक्रपति राज्ञ्यी भवभूत्यादि सेवित”

जितो ययौ यद्योवर्मा तद्वृणुस्तुतिमन्दिताम् । ४।१४४॥

इसके पहले (४।१४४) भट्टहण ने बताया है कि काश्मीर के राजा सतितादित्य मुत्तारीक ने इन्हीं यद्योवर्मा को परास्त किया था। डा० स्टीन का मत है कि यह घटना ७१६ के पूर्व की नहीं हो सकती (वेहिये राजतरंगिणी का अनुबाव स्टीन का लिया हुआ पृष्ठ ८६ और उसके मोट चतुर्थ अध्याय का १३४) राजतरंगिणी के उक्त पद्य (४।१४४) में भवभूति के साथ वाकपति राज का नाम आया है। वाकपति राज ने अपने ग्राह्य काम्य बौद्धबुद्धों में यद्योवर्मा का यद्योमान किया है। इस काम्य के धधुरे होने से प्रतीत होता है कि वाकपतिराज ने अपने काम्य की रचना यद्योवर्मा के बिजयी दिनों में प्रारम्भ की थी किन्तु काश्मीर के राजा सतितादित्य के हाथों में वाकपतिराज ने भवभूति की इस भाँति प्रशंसा की है—

भवभूतिजसधिनिर्गतकाव्यामुत्तरकण्डवस्फुरन्ति ।

यस्य विरोधा यद्यपि विकटेपुक्या निबैरोपु ॥७६६॥

इस पद्य के ‘यद्यपि’ शब्द से प्रतीत होता है कि भवभूति वाकपतिराज ने पहले हुए थे और यद्योवर्मा के राज्य में पूर्वार्द्ध में उनकी प्रसिद्धि हो चुकी थी। इन प्रमाणाँ के आधार पर पाण्डेयजी भवभूति को ७०० ई० के समीप ही हुए बताते हैं।

यथापुस्तक नामा का ३८ वां पुष्प ‘भवभूति’ में सेकक स्वाभावत घमाँ ने वे० एक० बाटवन् और कोन विनिमय के नाम के पाश्चात्य पण्डित ऐतिहासिक रिसर्च ने नवें शताब्दी के २०३ वृष्ट पर चामुण्डा के सम्बन्ध में लिखा है।

‘हिन्दू लोग चामुण्डा के छात्रों के मतों तक कटते थे। बाटवों चताब्दी के प्राचीन हिन्दू कवि भवभूति नामजीमाधव बाटक में लिखते हैं कि यद्योवर्मा नामजी का चामुण्ड पर बढ़ावे के लिए के गया था।’

जी घमाँ भवभूति के प्राबुजीव को लिखते हुए राजतरंगिणी के बीजे ध्वं ने “समोक्त संस्था १४४ में जो लिखते हैं (जी पाण्डेयजी ने भी ऊपर उद्धृत कर दिया है) उनका अर्थ है ‘वाकपतिराज और भवभूति आदि कविओं से सेवित यद्योवर्मा ने सतितादित्य से पराजित होकर उसकी स्तुति की। इस समोक्त के अनुसार भवभूति नाम्यदुस्त्रापिपति यद्योवर्मा की समा में विद्यमान थे। यद्योवर्मा को काश्मीर के राजा सतितादित्य ने हराया था। डा० राजनीरान्त सैन एन० डी० ने इस सम्बन्ध के प्रधान के समय कहा था कि सतितादित्य के उपग्रामयिक नाम्यदुस्त्र नरेस यद्योवर्मा बाटवों चताब्दी में नहीं हुए हैं। वे बाटवी चताब्दी के प्रारम्भ में विद्यमान थे। उन्होंने यह भी कहा था कि हयवर्द्धन और भी सतितादित्य एक व्यक्ति नहीं है। ये यद्योवर्मा से पहले और चौथे यथावत् नाम्यदुस्त्र के राजा हुए थे। हूणलाय जीमादित्य के समय में भारत धाम थे। जनरल बनिपय के मत में सतितादित्य ने ६९९ ई० से ७२६ ई० तक राज्य किया था इस हिसाब से भवभूति बाटवी चताब्दी के प्रारम्भ में नाम्यदुस्त्र की समा में विद्यमान थे।

(२) श्रीशङ्करभ्यस्तुतसर्गसमाप्तिलक्ष्म

सहमीपतेरक्षरितकीर्तनभाषभाष (चारुभाषः) ।

तस्यारमज सुखविनीतिवुरासयाय

काव्यं व्यपरा शिषुपासवजामिमानम् ॥१॥ (वसवगुणम्) ॥

उपर्युक्त श्लोक किन्तु यह को लेकर बनाया है उस पर टीकाकार श्री बल्लभदेव लिखते हैं 'क्या हेतुना सुखविनीतिवुरासया सुखवीनां अष्ट-विभुवां वररश्मि-सुवन्धु-धोमनाभ-मन्मथि श्रीशङ्कर-कामिदास-विष्णुण भारवि-बाण-मयुरादि कवीनां वा कीर्तिः तत्र वा वुरासा वुरमिमावस्तया महाकविनीति-लिप्सयेत्यर्थः । कुल्ल त्वाद्यया स्वल्पमुदितेन सुखवि कीर्तयेत्यस्यात् । टीकाकार श्री बल्लभदेव ने भवभूति का नाम लिखा है कि जैसे उपर्युक्त कवियों ने यह प्राप्त किया ऐसे यश की प्राप्ति में मुझ मात्र के लिए याथा एक वुरासा मात्र होयी क्योंकि कहाँ तो मेरी स्वल्प बुद्धि और कहाँ उक्त कवियों की प्राप्ति मेरी सुखवि यशप्राप्ति लिप्सा । इससे तो स्पष्ट है कि भवभूति मात्र के पूरे वर्तों अवरग हैं चाहे वे कुछ ही वर्ष पूर्व के हों । इसका हो सकता है कि भवभूति की वृद्धावस्था हो और मात्र युवावस्था में अपने बीमर के दिनों को आनन्द में मग्न होकर बिठा रहे हों किन्तु मात्र के पूर्व उन्होंने जैसा टीकाकार भी लिख है यानि भवभूति प्राप्त कर सी हापी । यहाँ पर उक्त श्लोक से सम्बन्धित मात्र के समकालीन भवभूति के विषय में कुछ लिखना समीचीन था ।

संस्कृत के महान नाटककारों में भवभूति का नाम काविराज के परभाव ही दिया जाता है । उनके स्थिति-काल के विषय में वे अशोभित प्रमाण उपस्थित करते हैं—

(१) भम्मट (११०० ई०) जर्जय (१११ ई०) और धोमदेव (१११ ई०) ने अपनी रचनाओं में भवभूति के प्रशंसा से उदाहरण दिये हैं ।

(२) राजदेव (१०० ई०) ने अपने को भवभूति का अवतार बताते हुए कहा है—

‘‘बभ्रुव वस्मीकमव कवि पुरा

तत् प्रपेदे भुवि मत् मेष्ठताम् ।

स्थित पुनयो भवभूतिरेव

स वर्तते सम्प्रति राजदेव ॥ १ ॥ ११ । वा० रा० ॥’

(३) बाण (८० ई०) ने अपनी काम्यालंकार भूषण में भवभूतिवृत्त छतर रामचरित के इस पद्ये मन्मथी (११५) का श्लोक को उद्धृत किया है । यह भवभूति के स्थितिकाल की नीचे की गीमा ७२ ई० के लगभग सिद्ध होती है ।

(४) बाणभट्ट ने हर्षचरित में मात्र काविराज जैसे प्रसिद्ध कवियों के साथ भवभूति का उल्लेख नहीं किया है । बाण का समय ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध वा यत् यह भवभूति के समय की उपरि सीमा है और वे ६२० से ७२० ई० के मध्य हुए होंगे ।

(५) बल्लभदेव राज-शरीरिणी (११४ ई०) से विरचित होता है कि भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि थे । वे लिखते हैं—

‘कविचक्रिपति राजा’ श्री भवभूतिपादि सेवित-

जिती ययौ यद्योवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् । ४।१४४।

इसके पहले (४।११४) कस्तूर ने बताया है कि काश्मीर के राजा समितादित्य मुक्तारीक ने इन्हीं यद्योवर्मा को परास्त किया था। डा० स्टीम का मत है कि यह घटना ७१९ के पूर्व की नहीं हो सकती (देखिये राजतरंगिणी का अनुवाद स्टीम का सिद्धा हुआ पृष्ठ २६ और उसके नोट अनुपम अध्याय का ११४) राजतरंगिणी के कुछ पद्य (४।१४४) में भवभूति के साथ बाहूपति-राज का नाम आया है। बाहूपति राज ने अपने प्राप्त काम्य जीइवहो में यद्योवर्मा का यद्योपाम किया है। इस काम्य के माधुरे होने से प्रतीत होता है कि बाहूपतिराज ने अपने काम्य की रचना यद्योवर्मा के बिजयी दिनों में प्रारम्भ की थी, किन्तु काश्मीर के राजा समितादित्य के हाथों में बाहूपतिराज ने भवभूति की इस भाँति प्रशंसा की है—

भवभूतिजसचिनिर्गतकाम्यामृत रसकण्ठवस्तुरन्ति ।

यस्य विषेया अद्यापि विषटेपुकया निषेधेपु ॥७६२॥

इस पद्य के ‘अद्यापि’ शब्द से प्रतीत होता है कि भवभूति बाहूपतिराज के पहले हुए थे और यद्योवर्मा के राज्य के पूर्वार्ध में उनकी प्रसिद्धि हो चुकी थी। इन प्रमायों के आधार पर पाण्डेयजी भवभूति को ७०० ई० के समीप ही हुए बताते हैं।

वैवाण्णिक माता का ३८ वाँ पुत्र ‘भवभूति’ में लेखक ज्वालादत्त घर्मा ने जे० एफ० नाटसन और जे० विलियम के नाम के पादशास्य पण्डित ऐतिहासिक रिचर्स ने नवें खण्ड के २०३ पृष्ठ पर जामुखा के सम्बन्ध में लिखा है।

हिन्दू जे० जामुखा के सामने नरबलि तक करके वे। घाटवीं घटावीं के प्राचीन हिन्दू कवि भवभूति नामदीमाभव नाटक में लिखते हैं कि अश्वमेधक मानवी को जामुख पर बड़ाने के लिए से दिया था।”

श्री घर्मा भवभूति के प्रादुर्भाव को लिखते हुए राजतरंगिणी के चौथे धर्म के ‘स्तोत्र’ संख्या १४४ में जो लिखते हैं (श्री पाण्डेयजी ने भी ऊपर उद्धृत कर दिया है) उसका अर्थ है ‘बाहूपतिराज और भवभूति आदि कवियों से सेवित यद्योवर्मा ने समितादित्य से पराजित होकर उसकी शक्ति की।’ इस श्लोक के अनुसार भवभूति काम्यकुत्राचिपति यद्योवर्मा की छाया में विद्यमान थे। यद्योवर्मा को काश्मीर के राजा समितादित्य ने हराया था। डा० रजनीरान्त ऐन एन० डी० ने इस पस्तक के प्रकाश के समय कहा था कि समितादित्य के समसामयिक काम्यकुत्राचिपति यद्योवर्मा घाटवीं घटावीं में नहीं हुए हैं। वे घाटवीं घटावीं के प्रारम्भ में विद्यमान थे। उन्होंने यह भी कहा था कि हरबदन और भी समितादित्य एक व्यक्ति नहीं हैं। वे यद्योवर्मा से पहले और पीछे पचासवें काम्यकुत्रा के राजा हुए थे। एन० एन० जी० विलियम के समय में भारत आये थे। जनरल विलियम क बट में समितादित्य के ६६३ ई० से ७२६ ई० तक राज्य किया था इस दिशा में भवभूति घाटवीं घटावीं के प्रारंभ में काम्यकुत्रा की छाया में विद्यमान थे।

राजतरंगिणी के मत में बाहूपतिराज नाम के एक श्रीर कवि यशोधरजी की तन्ना में विद्यमान थे । बाहूपतिराज "बीरबहो" से बात होता है कि यशोधरजी ने भीर राज्य को पराजित किया था । इस बाहूपतिराज ने अपना परिचय देते हुए लिखा है "भवभूति-अमर से जो काव्यामृत लिखा गया है उसकी कुछ एक बूँदें उसके गीरबहो काव्य में स्पष्ट पड़ती हैं । इस "बीरबहो" काव्य के प्रमाण से तो यह बात हट हो गई है कि भवभूति छायाजी छाताजी में थे । बालरायायण नाटक में राजसेखर ने लिखा है कि पहले वास्मीकि फिर भर्तृहरि भूमण्डल पर आपस हुये उत्पन्नत्वात् भवभूति के नाम से जो कवि पुष्पी पर पैदा हुआ वही राजसेखर रूप में अब वर्तमान है ।

अनर्घरत्न से स्पष्ट है कि राजसेखर से पूर्व भवभूति की उत्पत्ति हो गई थी । श्री माधवाचार्य ने शंकरदिग्विजय में लिखा है बालरायायण प्रणेता राजसेखर शंकराचार्य के समसामयिक थे । इस मत से मिलते हुए है कि छाताजी छाताजी के मत में या नवमी छाताजी के आरम्भ में राजसेखर जीवित थे । शंकराचार्य ने ७७३ ई० में जन्म लिया था ।

श्रीपुत्र बाबू लगेबहाव व बन्धु द्वारा संकलित विचकीप में कुमारिल भट्ट के प्रस्ताव में नागदीमाचर की विवेचन प्रतियों की बात है । विभिन्न प्रतियों में "इति कुमारिल छिप्य कृते" इति कुमारिल स्वामी प्रसार प्राप्त वास्मीयक श्रीमदुम्मेकाचार्य विरचिते नागदी माचरने पन्द्रोष्क आदि रचकर भवभूति को कुमारिल का छिप्य बताते हैं । कुमारिल भट्ट छाताजी छाताजी के अन्तिम भाग में विद्यमान थे । उनके छिप्य श्रीकण्ठ, भवभूति छाताजी छाताजी के हैं। अन्तर्गत पहले समय श्रीनयेन्द्रभाष ने कहा था कि छात्रमयं में कुछ बीनप्रभों की आलोचना से उन्हें भासुम हुआ है कि बंगाल के बीन बंकिम चण्ड भट्ट के छात्र भवभूति का छात्राचार्य हुआ था । चण्ड भट्ट ने भवभूति को बीन संप्रदाय में सम्मिलित करने की चेष्टा की थी । मिहिर भोज पर परिचयात्मक छिप्यलिखते समय इसने यह बात प्रदर्शित की थी कि श्रीनमान बीन वर्ग का गढ़ था और भाव के चचेरे भाई लिखार्थ ज्ञापय में रात भर रहे और दूसरे दिन ही बीनवर्ग में वीरित हो गये । हमने वहाँ बताया था कि वह बीन वर्ग के पुर्णज्ञात का पुत्र था और उस समय वहाँ बीन वर्ग का प्रचार था । भवभूति और चण्ड भट्ट से भी यही बात प्रदर्शित हो रही है कि बीन वर्ग का प्रचार था । स्मरण रखना चाहिये कि पूर्व ज्ञात एक बीन वर्ग और पर था किन्तु उनकी कृतियों के कुछ समय परचाह से बीन वर्ग का ज्ञात आरम्भ होये गया था । यही कारण है कि हम वर्मज्ञात राजा में तयागत के उपदेशों में श्रद्धा की बात देते रहे हैं । भाव के पितामह गुणमदैन हो सकता है बीन वर्ग को छार इष्टि से देखते हैं । गुणमदैन संस्कारों के कारण उनके पीन के हृदय में बीन वर्ग के प्रति श्रद्धा हो सकता है । किट्टीप का बीन वर्ग में वीरित होना और भवभूति को भी बीन वर्ग के प्रचार में लाने की चेष्टा इस बात का प्रमाण है कि भाव और भवभूति एक दूसरे के निकट के कुछ में ही थे । भाव ने भी एक बड़ा श्रीकण्ठ को जिन राज्य से सम्बोधित किया है—

भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः ।

कृतपोरजिनस्यैव भुवः सरधिरा जिनः ॥ १६। ११२ ॥

इसके प्रतिरिक्त कवियों में माघ काव्य के पढ़ने की परम्परा अधिक पायी गयी है। इस बात की जर्ना हमने परिचित भाग में की है कि छेरहवीं औरहवीं छताम्बी तक माघ काव्य की हस्तलिखित प्रतिनिधियाँ जैनाचार्यों ने ही अपने छिप्यों के द्वारा अधिकतर करायी है। डा० इण्डिक ने अपनी-अपनी 'अवस्तितकवम्पू' पर जो एक ग्रन्थ लिखा है उसमें उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि जैन कवियों में अनेक काव्य और महाकाव्य लिखे हैं। इन्हीं काव्यों में उन्होंने माघ महाकाव्य का नाम भी लिया है। इससे यह अनुमान होता है कि वह गुप्त ही कलावित कवियों का रहा है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भवभूति और माघ प्रायः एक ही समय के थे। भवभूति कुछ पहले और माघ कुछ बाद में अधिक मात्रा नहीं। भवभूति बंग राजधानी में जाये थे हो सकता है माघ भी इसी प्रति हमर-उत्तर पर्यटन करते हुए आनन्दवर्धन व अयोध्या के सम्पर्क में आ गये हों।

भवभूति से कुछ समय पहले और उनके समय में कौन-कौन सम्पर्क हुए इस पर विचार करना है। सातवीं छताम्बी के आरम्भ में सुवन्धु के नाचवहला, बाण भट्ट ने हर्ष चरित कादम्बरी और अजिंक्यारण्य की रचना की। हर्षवर्धन के समय में बाण के बसुर कवि ने पूर्ववत्क बनाया। बंगाल में फरीदपुर है उस जिले में कौटिल्य नाम के निवासी बसुर समझे जाते हैं ऐसा भी। ए० घाटे का मत है (देखिये भवभूति पृष्ठ ४१) माघराजाय है मत में इसी बाण के समय में थे। वि० प्रियंगु के मत में विसाख'त' मुद्रा पद्मस के प्रणेता सातवीं या आठवीं छताम्बी में विद्यमान थे। इन लिये यह विद्यावदत्त भी भवभूति के समकालिक या कुछ ही पहले के हुए।

सातवीं छताम्बी में जितने सम्पर्कारों का जन्म हुआ है वे सभी बीच समासमय थे। इसी के काव्यदर्प में लिखा है, काव्य की अत्यन्त शक्ति समास-बहुलता पर निर्भर है। भवभूति का जन्म इन कवियों के कुछ समय बाद हुआ था। उस के इस रीति का त्याग नहीं कर सके। उनके काव्य में भी बीच समास है। यही बात महाकवि माघ में भी मिलती है।

भवभूति के काव्य का उनके समय में विशेष आदर नहीं हुआ। उस समय कदाचित् कठोर समासीक रहे होंगे। कवि बनना सामारण बात न होगी। आसती माघ के नवें पंक में भवभूति लिखते हैं—

ये नाम केविदिह न प्रयस्यबशाम्
आनन्ति ते किमपि ताप्रति नैव यशः ।
उत्पत्स्यतेप्रसिद्धमम कीर्तिमानमयमा
कामोह ययं निरवधिबिपुला च पुष्पी ॥

उत्तर समकालिक के पहले पंक में भी "सर्वथा व्यरहर्ष्य कुत्रोदयवनीयता से कवि का पाप है कि अपनी इच्छा के अनुसार निर्भय हो कर कविता करनी चाहिये कविता की ही अन्धी नहीं न हो उसमें से दोष निकाले ही या करते हैं। कुछ मनुष्य तिर्यों के मतीर्य और बाह्य के मातुल की लता निष्ठा करते रहते हैं। इतना होने पर भी हम इससे हैं कि भवभूति प्रतिपत्तियों के आलोचकों से अन्तोत्साह नहीं हुए उसके पहले उनका आनामिमान

राजतरंगिणी के मत में बाहूपतिराज नाम के एक और कवि यशोधरों की रचना में विद्यमान थे। बाहूपतिराज "वीरवहो" से जात होता है कि यशोधरों ने भीड़ राज्य को पराजित किया था। इस बाहूपतिराज ने अपना परिचय देते हुए लिखा है "भवभूति-अभुज से जो काव्यामृत निकाला गया है उसकी कुछ एक बूँदें उसके गीतवहो काव्य में स्पष्ट पड़ेंगी। इस 'वीरवहो' काव्य के प्रमाण से तो यह बात इतनी ही है कि भवभूति छाठवीं शताब्दी में थे। बालरामायण नाटक में राजसेनार ने लिखा है कि पहले वास्मीकि फिर भर्तृहरि मृगश्रवण पर उत्पन्न हुये उत्तरवाल् भवभूति के नाम से जो कवि दुम्भी पर पैदा हुआ वही राजसेनार का ही भव वर्तमान है।

अपर्वण से स्पष्ट है कि राजसेनार से पूर्व भवभूति की उत्पत्ति हो गई थी। श्री माधवाचार्य ने संकरटिप्पण्य में लिखा है बालरामायण प्रलेख राजसेनार संकरचार्य के समसामयिक थे।" इस मत से निर्णय होता है कि छाठवीं शताब्दी के अंत में या नवमी शताब्दी के आरम्भ में राजसेनार जीवित थे। संकरचार्य ने ७७३ ई० में जन्म लिया था।

धीनोत्त नाम गणेशनाथ न वन्तु द्वारा संकलित विषयकोष में कुमारिल भट्ट के प्रस्ताव में मानवीमात्र की विवेक प्रतियों की बात है। विभिन्न प्रतियों में "इति कुमारिल सिन्धु कृते" इति कुमारिल स्वामी प्रसाद प्राप्त काव्यमय श्रीमदुम्भेकाचार्य विरचिते मानवी मात्रे पञ्चोद्भूत बाहि वैद्यकर भवभूति को कुमारिल का शिष्य बताते हैं। कुमारिल भट्ट छाठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में विद्यमान थे। उनके शिष्य श्रीकण्ठ भवभूति छाठवीं शताब्दी के हुये। मन्थन्य पहले समय श्रीगणेशनाथ ने कहा था कि धारमर्ष में कुछ जैनग्रन्थों की धारोचना से उन्हें आसून हुआ है कि वर्तमान के जैन वर्तित कव्य मन्द के साथ भवभूति का साक्षात्कार हुआ था। कव्य मन्द ने भवभूति की जैन संप्रदाय में सम्मिलित करने की चेष्टा की थी। मिहिर बोध पर परिचयात्मक टिप्पणी निकलते समय इसने वह बात प्रदर्शित की थी कि गीतमान जैन धर्म का यह था और माध के अन्दर मारि विद्यार्थ्य ज्ञापन में यह घर छे और दूसरे दिन ही जैनधर्म में दीक्षित हो गये। हमने वहाँ बताया था कि वह बीड धर्म के पूर्णज्ञात का पुत्र था और उस समय वहाँ जैन धर्म का प्रचार था। भवभूति और कव्य भट्ट से भी यही बात प्रदर्शित हो रही है कि जैन धर्म का प्रचार था। स्मरण रखना चाहिये कि पूर्व सम्राट् तक बीड धर्म और पर वा विष्णु उनकी कृतु के कुछ समय परमात् से बीड धर्म का ज्ञान प्राप्त होने लगा था। यही कारण है कि हम धर्मभाट राजा में तथागत के जयदेशों में भद्रा की बात देण छे हैं। माप के पितामह गुणदेव हो स्रुता है बीड धर्म को उदार इष्टि से देखते हैं। बुद्धकामागत संस्कारों के कारण उनके धर्म के हृदय में बीड धर्म के प्रति सम्मान हो गया है। सिद्धि वा जैन धर्म में दीक्षित जाना और भवभूति को भी जैन धर्म के प्रचार में जाने की चेष्टा हम जान का प्रमाण है कि माध और भवभूति एन दूसरे के मित्र के पुत्र में ही थे। माध ने भी एक समय श्रीहृण्य की जिन सम्प्रदाय से सम्बोधित किया है—

श्रीमास्त्रराजिनस्तस्य यक्षस्य चञ्जराजिन ।

पुत्रयोराजिनस्तस्य भुव सरपिरा जिन ॥ १२१ ११२ ॥

इसके प्रतिरिक्त वैशेषों में माघ काव्य के पढ़ने की परम्परा अधिक पायी गयी है। इस बात की खोज हमने परिशिष्ट माघ में की है कि ठेकरही चौतहरी छताखी तक माघ काव्य की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ जनाबामों ने ही अपनी शिष्यों के द्वारा अधिकतर करायी है। डा० हाकिम ने अभी-अभी 'अस्तित्वकवचम्' पर जो एक ग्रन्थ लिखा है उसमें उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि जैन कवियों ने अनेक काव्य और महाकाव्य लिखे हैं। इसी काव्यों में उन्होंने माघ महाकाव्य का नाम भी लिया है। इससे यह अनुमान होता है कि यह पुग ही कदाचित् वैशेषों का रहा है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भवभूति और माघ प्रायः एक ही समय के थे। भवभूति कुछ पहले और माघ कुछ बाद में धार्मिक चन्दर नहीं। भवभूति बंध राजधानी में धाये थे, हो सकता है माघ भी इसी भंति शहर-शहर पर्यटन करते हुए धान्वाधर्मन व समोवचर्य के सम्पर्क में आ पाये हों।

भवभूति से कुछ समय पहले और उनके समय में कौन-कौन सम्पर्क हुए इस पर विचार करना है। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सुवर्ण ने वातवदत्ता, बासु भट्ट ने हर्ष चरित, नादभूपति और चम्पिकाचलक की रचना की। हर्षवर्धन के समय में बाण के शत्रुघ्न मयूर कवि ने सूर्यचलक रचाया। संभवतः में छठीशतक है उस जिते में कौशिकजी प्रायः के निवासी मयूर उनके बाते हैं ऐसा बी० एच० घाटे का मत है (देखिये भवभूति पृष्ठ ४१) माघबाबाय के मत में इन्हीं बाण के समय में थे। वि० लैलन के मत में बिम्बावदत्त मुद्रा राघव के प्रलेख शतवीं या साठवीं शताब्दी में विद्यमान थे। इन लिये यह विद्यावदत्त भी भवभूति के समकालिक या कुछ ही पहले के हुए।

सातवीं शताब्दी में जितने सम्पर्कारों का जन्म हुआ है वे सभी बीर्य समासप्रिय थे। इन्हीं ने काव्यादर्श में लिखा है काव्य की असली शक्ति समास-बहुलता पर निर्भर है। भवभूति का जन्म इन कवियों के कुछ समय बाद हुआ था। माघ के इस पीढ़ी का स्थाप नहीं कर सके। उनके काव्य में भी बीर्य समास हैं। यही बात महाकवि माघ में भी मिलती है।

भवभूति के काव्य का उनके समय में विशेष धारर नहीं हुआ। उस समय कदाचित् कठोर समासोक्त रहे होंगे। कवि बनना साधारण बात न होती। मातली मायब के मर्ने धंक में भवभूति लिखते हैं—

ये नाम केचिदिह न प्रयत्नयवज्ञाम्
आनन्ति ते किमपि साग्रति नैव यत्नः ।
उत्पत्त्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
वातोह ययं निरवधिविपुसा य पूष्णी ॥

उत्तर पदचरित के पहले श्लोक में भी "सर्वथा व्यरहृत्तं कुत्रोहपरजनीयता" के श्लोक का आशय है कि अपनी इच्छा के अनुसार निर्णय हो कर बलिता करनी चाहिये कविता कैसी हो मन्त्रों की न हो, उसमें से दोष निवारित हो या सजते हैं। दुष्ट अनुव्य निषेधों के सजीवन और वाच्य के साधुरा की तथा निष्पन्न करते रहते हैं। इतना होने पर भी हम देखते हैं कि भवभूति प्रतिनिधियों के धार्मिकों के मन्त्रोत्पाद नहीं हुए बल्कि उससे उन्नत धार्मिकविमान

ही प्राप्त हुआ । यह बात हम महाकवि माघ में भी पाते हैं । उन्होंने कहा है मैं सुकवि कीर्ति की, जिसका प्राप्य करना कठिन है, पाना चाहता हूँ । सुकवि कीर्ति बुराधमा "ये माघ का यही तात्पर्य है । चाहे उस युग के कवियों ने इनको स्वीकार न किया हो किन्तु बाद के कवियों ने तो उसे धनस्य स्वीकार कर लिया । जनधुतियों से तो जात होता है कि वे दो बातों में तो धनस्य समय में ही यशस्वी हो चुके थे—दास में धीर कविरत्न में । "माघ कवि धामे है ऐसी सूचना द्वारपाल ने धाकर भाष को दी इससे स्पष्ट है कि वे तब तक उनकी प्रसिद्धि कवि रूप में हो चुकी थी धीर धन यह 'महाकवि' बनना चाहते थे । 'सुकवि' शब्द का प्रयोग यही सूचित करता है । 'सिधुपालवध' काव्य में ऐसे श्लोक तो बहुत प्राप्य होते हैं जिनमें उनके बनाकर या अपमान के संकेत हैं । (देखिये माघ की जीवनी) किन्तु वह धनादर किस बात है हुआ इन्होंने धारुणार्थ में किसी प्रतिपक्षी को पराजित किया या प्रतिपक्षी ने इनको ही कहीं पराजित किया ? अतः सिधुपालवध के अठार्वे सर्व श्लोक संख्या ८ धीर ९ इस बात की ओर धनस्य रूप में संकेत कर रही है—

‘‘बुद्ध्यावा जितमपरेण काममाविष्कृर्वीत स्वधुणमपत्रप क एव ॥७॥’’

‘‘पापाणस्सत्तज्ज विक्खोत्तमाधुमूर्त्त वैलक्ष्याद्यधुग्वरोधनानि सिधोभावा ॥’’

श्लोक संख्या ८ में भी बताया है कि दूसरे लोग भी प्रसिद्धिवादी से पराजित होकर धन्या के कारण बेधपूर्वक वही से माघ निकलते हैं ।

‘‘प्रापुम्यात्क इव जितं पुरु परेण ॥१२॥’’

काव्य में स्वाग-स्वाग पर इस तरह के संकेत पर्याप्त मात्रा में मिलते जनधुति तो ऐसी है कि माघ के पिछा बचक ही किसी धारुणार्थ में पराजित हुए वे उसका बदला महाकवि माघ ने धामे बसकर धारुणार्थ के द्वारा चुकाया । पराजित होने पर प्रतिपक्षी ने मुँह ही न बिखलाया वह नहीं से माघ गया । वह नहीं समझे कि इसमें वास्तविकता क्या धीर कितनी है ? किन्तु इसका तो स्पष्ट है कि वह कुछ जिसमें जनधुति धीर माघ के बिद्वत्ता का एवं प्रति योगिताओं का युग रहा होगा अन्यथा न तो जनधुति ऐसा लिखते धीर न माघ ही ।

बोधिवर्षावतार, धिरा-समुत्थन राष्ट्रपाल-परिपुष्प धारि तंरुत जम्बों के मेलक बीड़ कवि धारिदेव के जम्बों का भी लयतामयिक विज्ञानों के आधार नहीं किया, इसका परि पत्र बोधिवर्षावतार ग्रन्थ के धारि में मिलता है ।

जनधुति के तीनों ही नाटक जननान् बालप्रियमात्र (पित्र) के सामने ऐसे गये थे । जनधुति जित समय प्राकुरुष हए थे सबसे कुछ ही काम पूर्व भारत में व्याप-शासन की चर्चा चल पड़ी थी । अध्यापक कावेन साहब के मठ में पठित स्थायी वा वात्सपान ने छठी छठाब्दी के धारम्य में व्याप-मूत्र वर माध्य लिखा । छठी छठाब्दी के जम्ब माघ ने मुनिरिद्ध बीड़ धारिजिक दिक्षाप ने व्यापमूत्र पर एक धीर सूत्र लिखा था । मेकभूत में विर माघ धम्ब का प्रयोग काविदास ने किया है (पूर्व जेप श्लोक (१४)

“स्थानादस्यात्सरसमिधुलादुत्पत्तोर्वपुः स—

दिङ्मागामाः पयि परिहरन् स्पूलहृत्तावसेपान् ॥

इस श्लोक में कासिदास के सहाय्यामी धीर रसिन निरुप कवि का तथा उनके प्रतिपत्नी दिङ्माय के नाम धाये हैं। दिङ्माय शीघ्र वासंमिध ये। कासिदास को छठी शताब्दी के मध्य नाम वाला स्थापित कर दें तो वह भवभूति के कुछ ही वर्ष पूर्व रहे होंगे। कुछ लोग उन्हें जगन्मूक विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक बताते हैं ही। किन्तु नवीन संशोधन इस बात को सिद्ध कर रही है कि वे खैर में धीर मूक राजा बंप्पुव। यद्यपि नामका के खैर राजाओं के ही साधित कासिदास रहे होंगे न कि बंप्पुव मूक नरेशों के आश्रय में। उज्जयिनी के महेंद्रादित्य के पुत्र परमार बड़ी विक्रमादित्य ही वह विक्रमादित्य थे जिनके आश्रय में कासिदास रहे। यद्यपि इनका समय प्रथम शताब्दी ई० पूर्व का होगा है। इसका संकेत हमने विशेष रूप से कासिदास के महाकाव्यों के प्रकरण में कर दिया है। आश्चर्य है कि भवभूति के अनुसार भवभूति अपने नाटक उत्तररामचरित को समाप्त कर कासिदास के पास गये धीर अपने ग्रन्थ के विषय में उनकी सम्मति माँगी। कासिदास उस समय बीमार का खैर खैर रहे थे यद्यपि उन्होंने भवभूति से कहा कि अपने काम को जैसे स्वर से पढ़िये। कासिदास ने उस काम को सुन कर बहुत सम्मोह प्रकट किया किन्तु कहा कि बीजे चरण “उद्विहितवतपामा उद्विरेषं ध्वरंसीद्” में “रेषं” शब्द में एक अनुस्वार अधिक है। भवभूति ने इसे “एव” कर दिया। यह भवभूति इस बात का छोटा अवसर है कि भवभूति के कवि कासिदास अवश्य ही उस युग में होंगे

●कासिदास के विषय में डा० सरदार लिखते हैं कि कासिदास ने दिङ्मायों का संकेत अपनी मेषभूत में इन चार विद्या के नामों से किया होगा—१—दक्षिण के नापात्रु न २—पूर्व में नापात्रुमि (जो नापात्रु न का शिष्य था धीर बंप्पुव का था) ३—पश्चिम में नापात्रुमि (जिसने पश्चिम से आक्रमण करने वाले धीर राजा विनाहर को समोपदेश दिया था) ४—उत्तर में नापात्रु (जो बर्ष प्रकाशार्थ उत्तर एवं चीन गया था)।

सिम्हली चन्दों में नापात्रु न का विशेष महत्त्व है। ई० के पूर्व पहली दूसरी शताब्दी में वह भारत का प्रसिद्ध व्यक्ति रहा है। उसका समय ई० पू० १४४ से ई० पू० ३८ तक है। इतिहास गुप्तवंश का समकालीन था। नापात्रु न का स्थान नागपुर का समानित है।

भोजपुरतत्त्ववर्धन ने बाराणसी के राजा की कन्या वासंती से विवाह किया था। यही कासिदास का आश्रयदाता था जो शायद विक्रम है। उसने प्रथम गंगा की घाटी में अपना प्रमुख जमाकर, छोटे गुप्तों अपना काव्यों एवं पश्चिम के शकों को पराजित कर उन्नेन प्राप्त की थी। गुप्त विजिहा के शासक थे। मेषभूत में विजिहा को राजपत्नी कहा है। सम्राट के समय की दोड़कर कभी इसे महत्त्व न मिला। कासिदास की विजिहा की रचना में गुप्त का वर्णन नहीं है जबकि यद्यपि वे गुप्तों का है। यद्यपि कासिदास शकों के आक्रमणों के पूर्व गुप्त काल में थे। इस भाँति मेषभूत कवि कासिदास ई० पूर्व की प्रथम शताब्दी के बाद के नहीं हो सकते।

ही जादूत हुआ । यह बात हम महाकवि माघ में भी पाते हैं । उन्होंने कहा है मैं मुकवि कीर्ति को, जिसका प्राप्त करना कठिन है, पाना चाहता हूँ । मुकवि कीर्ति बुराधरा 'ये माघ का यही तात्पर्य है । चाहे छंद युग के कवियों ने इनको स्वीकार न किया हो किन्तु माघ के कवियों ने तो उसे प्रबन्ध स्वीकार कर लिया । जनश्रुतियों से तो सात होठा है कि वे दो बाँटी में तो अपने समय में ही यत्नशील हो चुके थे—दान में धीर कवित्व में । "माघ कवि घाये है ऐसी सूचना हारपात ने धाकर मोड़ को दी, इससे स्पष्ट है कि वे तब तक समझी प्रतिष्ठि कवि रूप में हो चुकी थी और अब वह 'महाकवि' बनना चाहते थे । 'मुकवि' शब्द का प्रयोग यही सूचित करता है । 'सिधुपाल-वच' काव्य में ऐसे श्लोक तो बहुत प्राप्त होते हैं जिनमें उनके बनाकर वा अपमान के संकेत हैं । (देखिये माघ की बीबनी) किन्तु वह बनाकर किस बात से हुआ इन्होंने धार्षार्थ में किसी प्रतिपत्नी को पराजित किया या प्रतिपत्नी ने इन्हें ही क्यों पराजित किया ? स्पष्ट सिधुपाल-वच के शब्दों से स्पष्ट संख्या = धीर + इस बात की धीर अपरवश रूप में संकेत कर रही है—

"कुद्व्याबा जितमपरेण काममाधिष्ठीत स्वयणमपमप क एव ॥७॥"

"आपाणस्सत्तम विसोममाधुमूर्ण वैसक्याद्युरजरोधनानि सिम्बो ॥८॥"

श्लोक संख्या = में भी बताया है कि दूसरे मोड़ भी प्रतिष्ठि कवियों से पराजित होकर शब्दा के कारण बेवपूर्वक यही से माघ निकलते हैं ।

"प्राबुध्यात्क इव जितं पुट परेण ॥१२॥

काव्य में स्थान-स्थान पर इस तरह के संकेत पर्याप्त मात्रा में मिलेंगे जनश्रुति तो ऐसी है कि माघ के पिता शतक ही किसी धार्षार्थ में पराजित हुए थे उसका बदला महाकवि माघ ने घाते बनकर धार्षार्थ के द्वारा चुकाया । पराजित होने पर प्रतिपत्नी ने मुँह ही न बिखलाया वह यहाँ से माघ गया । वह नहीं समझे कि इसमें वास्तविकता क्या धीर कितनी है ? किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि वह युग जिसमें जनश्रुति और माघ के बिहता का एक प्रति योगिताओं का युग रहा होना सम्भव न तो जनश्रुति ऐसा सिराते धीर न माघ ही ।

बोधिवर्धनार, रिता-अमुकय राष्ट्रपाल-परिपुष्ठा आदि संस्कृत ग्रन्थों के लेखक बोद्ध कवि धान्तिदेव के ग्रन्थों का भी सामामयिक विज्ञानों ने धाकर नहीं किया इसका परिचय बोधिवर्धनार ग्रन्थ के धारि में मिलता है ।

जनश्रुति के तीनों ही शतक मगधान् कालप्रिण्णाच (धिव) के सामने घटे पड़े थे । जनश्रुति जिस समय प्रादुर्भूत हुए थे उससे कुछ ही काल पूर्व भारत में न्याय-शास्त्र की चर्चा चल रही थी । अष्टाध्याय कावेय साहज के मठ में पंडित स्वामी या वात्सपावन ने धर्म शास्त्री के धारण में न्याय-सूत्र पर भाष्य लिखा । धर्म शास्त्री के बध्य मोक्ष में मुद्रिष्ठ बोद्ध दार्शनिक दिव्याय ने न्यायसूत्र पर एक और नुब लिखा था । मेकूठ में रिद नाम छन्द का प्रयोग कातिशास्त्र ने किया है (पूर्व मेव श्लोक (१४)

“स्थानादस्यास्तरसनिभुमादुत्पत्तोदभुस” श्री—

दिङ्नागामौक्क पणि परिहरन् स्पूनहस्तावलेषाम् ॥

इस श्लोक में कामिदास के सहाय्याधी धीर रसिक निष्ठान कवि का तथा उनके प्रतिपत्नी दिङ्नाग के नाम धारि हैं। दिङ्नाग बौद्ध धार्मिक थे। कामिदास को छठी शताब्दी के मध्य भाग वाला स्थापित कर दें तो वह जनभूति के कुछ ही वर्ष पूर्व रहे होंगे। कुछ मोम उन्हें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की समा के सदस्यों में से एक बताते हैं ही। किन्तु नवीन नवेदणा इस बात को सिद्ध कर रही है कि वे संभव से धीर गुप्त राजा केपुत्र। यद्यपि कामिदास के ही धारित कामिदास रहे होंगे न कि केपुत्र गुप्त शेरों के धारण में। चन्द्रगुप्त के महेश्वरदित्य के पुत्र परमार बंसी विक्रमादित्य ही वह विक्रमादित्य थे जिसके धारण में कामिदास रहे। यद्यपि इनका समय प्रथम शताब्दी ई० पूर्व का होता है। इसका संकेत हमने विशेष रूप से कामिदास के महाकाव्यों के प्रकरण में कर दिया है। धारण है कि जनभूति के समुदाय जनभूति अपने मातृक उत्तराध्यायित को समायुक्त कर कामिदास के पास नवे धीर अपने प्रथम के विषय में उनकी सम्मति मानी। कामिदास उस समय धीर का सेन सैन रहे थे यद्यपि उन्होंने जनभूति से कहा कि अपने काव्य को ऊँचे स्तर से पढ़िये। कामिदास ने उस काव्य को सुन कर बहुत सम्योग प्रकट किया किन्तु कहा कि नीचे चरण “परिचितमवामा धारिरेव ध्यरीद” में “वेद” शब्द में एक अनुसंधान धारि है। जनभूति ने इसे “एव” कर दिया। यह जनभूति इस बात का छोटा धारण है कि केपुत्र के कवि कामिदास धारण ही उस युग में होंगे

कामिदास के विषय में डा० सरकार लिखते हैं कि कामिदास ने दिङ्नागों का संकेत अपनी मेषभूत में इन चार विद्या के नामों से किया होया—१—रसिक के नामानु न २—पूर्व में नामनीधि (जो नामानु न का सिध्य या धीर बयाल का वा) ३—परिचय में नामनेन (जिहने परिचय से धारण करने वाले धीर राजा निगोडर को धारिरेव दिया वा) ४—उत्तर में नामानु (जो धर्म प्रचारार्थ उत्तर पूर्व धीर गया वा)।

सिध्दार्थी शर्मा ने नामानु न का विशेष महत्व है। ई० के पूर्व पहली दुसरी शती में यह भारत का प्रतिष्ठ धारि रहा है। उसका समय ई० पूर्व १४४ से ई० पूर्व १२ तक है। इसतिष्ठ धीमज का समकालीन वा। नामानु न का स्थान नागपुर का धारिदि है।

धोमभुतलधरविद्य ने धारणधी के राजा की कथा धारिरी ने विद्यार्थ दिया वा। यही कामिदास का धारणधारा वा को धारिदि विद्यार्थ है। उसने प्रथम रंदा की शरी में धारणा धारण धारण, धीरे धारि धारि धारि एवं धारि के धारि को धारिदि धारि धारि धारि की धी। धारि विद्यार्थ के धारिध धी। मेषभूत में विद्यार्थ को धारिधनी धारि है। धारि के समय को धारिधनी धारि महत्व न धारि। कामिदास की धारि धारि धारि में धारि का धारिध धारि है जबकि धारिध धारिध धारिध है। यद्यपि कामिदास धारि के धारिधधारी के पूर्व धारिध धारिध है। इस धारिध मेषभूत धारि कामिदास ई० पूर्व की धारि धारि के धारि के धारि हो धारिधे।

जित पुन मैं भवभूति रह रहै होंगि पश्यथा न निजुम का नाम आता और न बीड़ बिहान्
 बिहनाय का और न भवभूति के साथ कामिबास की इस वार्ता का । रघुनन्द के कामिबास
 भवभूति के कामिबास से भिन्न हैं । कामिबास नाम के व्यक्ति क्या एक हुए हैं ? यदि भवभूति
 के समय में कामिबास ने और समकालीन ने तो महाराज भोज के दरबार में भवभूति,
 माय और कामिबास जैसे बिहानों का होना संभव है । मोक्षप्रवर्णकार ने यह नहीं बताया
 वह भोज कौन थे और वह कामिबास कौन ? कुछ है हमारे संस्कृत कवियों के जन्म
 कात स्वान तथा कार्य क्षेत्र आदि के विषय में आज तक भी व्यवहार क्या ही घा रहा है ।

दिग्गज के परचात् छठी सताब्दी के अन्त में उत्पन्नकर ने व्यापसूत्र पर नाटिक
 लिखा । वासवदत्ता के लेखक सुबन्धु ने लिखा है कि व्यापसास्त्र को स्थापित करने के लिये
 ही उत्पन्नकर ने जन्म लिया था । सातवीं सताब्दी के आरम्भ में वर्मकीर्ति ने दिग्गज के
 व्यापसास्त्र पर नाटिक बनाया था । सुबन्धु ने वर्मकीर्ति के बीड़ संमति नामक ग्रन्थ का
 उल्लेख किया है । कुमारिल भट्ट, छंदराचार्य सुरेश्वराचार्य आदि पीमांसकों ने दिग्गज
 और वर्मकीर्ति ने मठ को च्युत किया है और जनका लक्षण भी किया है । पहले बताया
 गया है कि भवभूति कुमारिल के शिष्य थे वर्मकीर्ति सातवीं सताब्दी के पूर्व या मध्य के
 हुए तब भवभूति आठवीं सदी के अन्त में । माय कवि क समसामयिक था कुछ ही वर्ष
 पूर्व के होंगे । व्याप आरभ सत्सत्वी इन बातों को कहने का सारांश केवल यही है कि
 जिस समय हिन्दू और बीड़ सम्प्रदायों में इस भाँति व्यापचार्य की पर भी उस समय
 भवभूति ने जन्म लिया था । पुनर्जागरण आरम्भ हो चुका था । बीड़ों ने हिन्दू देवी-देवताओं
 की उपासना आरम्भ कर दी थी । आलसीमाय में कामन्दकी की जगह पर हिन्दू मान्यताओं
 का प्रभाव स्पष्ट है ।

माघ काव्य में पूर्वकासीन कवियों का प्रसंग—

“श्री शब्दरम्पकृतसर्गसमाप्तिसकलमसकलीपतेश्चरितकीर्तन भाष माघ ।

तस्यात्मज मुकविर्जीतिपुराणयाद काव्यं व्यपस सिद्धुपासवधामिधानम् ॥५॥

कवि बंध बर्णन का यह अंतिम श्लोक है। मस्मिनाय ने इन श्लोकों की टीका नहीं लिखी किन्तु बल्कमदेव ने ही प्रथम टीका लिखी है और उन्होंने कविबंध बर्णन की भी टीका की है। बल्कमदेव मस्मिनाय से पूर्व हो चुके हैं अतः यह विश्वास किया जा सकता है कि कवि बंध बर्णन के धारि में जो “अधुना कवि यी पावो निजबंधमर्णनं विधीर्पुणह” लिखा है वह सत्य है। किसी अन्य द्वारा लिखा हुआ यह ‘कवि बंधबर्णन’ नहीं है।

श्री बल्कमदेव धपमी टीका में लिखते हैं ‘यथा मुकविर्जीतिपुराणमा मुकवीनां श्रेष्ठविदुषां बरहवि-मूकधु-सोमनाथ भबभूति-जीकाचंद-कानिदास-विजहण भारवि-बाखमधूरा बीनां या कीर्ति न्यातिर्यगस्तथा या दुराया दुरजितापरतया। महाकविर्जीतिविषया इत्यर्थं इति भाति बल्कमदेव ने उपर्युक्त कवियों के नाम लिखकर व्यक्त किया है कि इन कवियों ने जैसी क्याणि कवि रूप में पाई है वैसे कीर्ति की भाव में प्राया रखकर इन सिद्धुपास रूप को किया है जो कहीं अनधिकारपेष्टा तो भुलते नहीं हो गई है। उन जैसा वच प्राप्त करना तो मेरे लिए दुरासामान है।

कवि ने उपर्युक्त बात क्यों लिखी? हमको ऐसा लगता है कि महाकवि कानिदास जो इनके पूर्व हो चुके हैं वहीं इनकी स्मृति में तो इन रूप में धारर ‘मुकविर्जीतिपुराणयाद’ नहीं लिखा रहे हैं—

“मन्त्र” कविमया प्राचीं गमिदगाम्पुपहास्यताम् ।

प्रांयुसम्ये कमे मोतामुदयादुरिव यामत ॥ रघुपथ ॥ १ ३ ॥

कानिदास भी कविमया के हृष्टपुरु हैं इसलिये रघुपथ लिख कर यह इनकी प्राप्ति चाहते हैं इधर माघ भी कदाचित् कानिदास की ही भांति माघ काव्य लिख कर मुकवि कीर्ति की प्रतिभावा कर रहे हैं। दोनों के भाव एक ही है अतः माघ ने ही कानिदास के इन शब्दों को लेकर अपने कविबंध बर्णन में लिखा है। भोजप्रदग्ध में इन कवियों का जमपट हो गया है जो तय्यों के विपरीत है। कानिदास माघ के समयकासीन कवि नहीं हो सकते। बल्कम ने भोजों को एक में मिला कर कदाचित् भोज-वग्ध माघ रच दिया हो। कानिदास वाला भोज कोई अन्य भोज होगा। श्री बल्कमदेव ने भी कानिदास का नामोन्मेष कर यह प्रमाणित कर दिया है कि कानिदास भोज के पूर्व के कवि हैं अतः प्राया देगा प्राय कंते प्राया? कानिदास का स्थितिवाक भी अग्रयोगर पाण्डेय के अनुसार प्रथम शताब्दी ई.पू. के है।

भारवि का समय १०० ई० के आस-पास माना जाता है। सुबन्धु का समय १०० ई० या इससे भी पूर्व का माना गया है। हर्ष भरवि और काबन्धरी के मेलक बाण का समय १५८ ई० से कुछ वर्ष पश्चात् तक रहा होगा। मयूर खतक के रचयिता मयूर का समय भी बाण के आस-पास का ही है। कहा जाता है कि मयूर और बाण ये दोनों ही अपनी बृहद्ब्रह्मा में उन्मत्त भगरी की ओर चले गये जहाँ पर भोज राज्य कर रहा था।

इन उपर्युक्त कवियों तक तो हम सहमत हो सकते हैं कि ये पूर्व कवि हैं जिनके सामने बाण अपने बाण की प्रयोग्य मानते हैं। किन्तु भवभूति और बिम्बहण आदि को ब्रह्मभदेव ने जो मान बरि से पूर्व का बताया है वह ठीक नहीं। बिम्बमांकरेवभरित नामक ऐतिहासिक महाकाव्य के रचयिता बिम्बहण कवि का स्थिति कास १००३ ई० के लगभग है। इतना तो ठीक है कि भव्य कवि ब्रह्मभदेव के पूर्व के हैं। भवभूति ८०० ई० के आस-पास हुए होंगे। सोमनाथ और क्रीडाचन्द्र का स्थितिकाल क्या था और इन्होंने कौन से ग्रन्थ लिखे हैं पता नहीं। यह सही है कि बाण उस समय पद्य के अभिजाती होंगे जो उनके पूर्व भारवि भवना नासिदास को मिल गया था।

यहाँ तक हमने कवि बंध बर्णन के ब्रह्मभदेव लिखित कवियों का परिचय करवा दिया है जिनमें नासिदास भारवि सुबन्धु, बाण और मयूर तो बाण के पूर्व के कवि हैं और भवभूति उनके समकालीन।

अधुनाम बंध महाकाव्य में जिन-जिन पूर्व रचयिताओं का परिचय मिलता है वे हैं—

(१) भरत—

“वसतस्तस्मिन्मानमानुपूर्व्या भभुरक्षिप्रबसो सुखे विद्यासा”।

भरतकवि प्रणीत काव्य प्रयिताका इव नाटक प्रपञ्चा ॥ २०-४४ ॥”

उपर्युक्त श्लोक में तो महाकवि बाण ने स्पष्ट रूप से भरत का नाम ही लिख दिया है जिन्होंने एक भाव्य शास्त्र लिखा है जो बाण भरत के नाट्य शास्त्र के नाम से सुप्रसिद्ध है। यह भरत कविदासादि नाट्यकारों से भी प्राचीन है। भरत ने ही सर्व प्रथम नाटक रचता होगा आदिने आदि बाणों को शास्त्र रूप में लिखा। बाण के समय में भरत के नाट्य शास्त्र तथा काव्य के लक्ष्यों में रस का ध्यान अधिक दिया जाता था।

(२) नामभ्यते दीष्टिकतां न निपीयति पीत्ये ।

शब्दाधो मरुतविरिच द्वय विज्ञानपेक्षते ॥२॥८६॥

उपर्युक्त में शब्द और शर्ष दोनों की उपाय करने वाले सुकवि की प्राप्ति कहकर “अप्यार्थो काव्यम्” इन काव्य-महाशय की ओर संकेत है। अग्निपुराणकार नामह और शब्द टीकों में अम्भार्थोकाव्यम् कहा है। नामन और मम्मट का संगण मस्तिनाय ने अपनी टीका में उद्धृत किया है। मस्तिनाय के ‘उद्योपी सगुणी शार्ङ्गकारी ध्वजाधो काव्यम्’—इति नामन लिखा है। नामह का समय ६५० ई० और शब्द ८२० ई० के लगभग हुए हैं (लिखते संस्कृत साहित्य का इतिहास सीठाचम व्यवसाय बोधी)। नामन आठवीं शताब्दी में हुए हैं। मम्मट तो नाम के बहुत पीछे के हैं।

(१) महाकवि माघ ने द्वितीय सर्ग में दोषोक्त संख्या ११२ में राजनीति का वर्णन करते हुए कहा है—

अनुसूयपदम्याया सद्वृत्ति सन्निवचना ।
राजनिधिव मो भाति राजनीतिरपस्पृष्टा ॥

उपर्युक्त दोषोक्त का पूर्ण स्पष्टीकरण माघ विषयक सामग्री में दिया गया है। वहाँ तो इतना ही कह देना पर्याप्त है कि महाकवि ने “काधिका” और “व्यास” इन दो व्याकरण के प्रश्नों की ओर संकेत किया है। मस्तिनाथ और बस्ममदेव “काधिकावृत्ति” के लिये वामन और जयादित्य का नामोस्तेन कर रहे हैं। वामन और जयादित्य के सम्मिश्रित प्रयास ने ही काधिका को जन्म दिया। वामन और जयादित्य के मिला मिश्र मतों के होते हुए भी माघ के कुछ ही वर्ष पूर्व के ठहरते हैं। हो सकता है इनके व्याकरण प्रश्नों की उम्र समय बड़ी इयाति रही हो। महाकवि माघ भी महा संस्कारण ठहरे मत कुछ ही वर्ष पूर्व के उन प्रश्नों का प्रत्योक्त भी जगहने किया होगा।

स्वात के लिये जिनैन्द्रबुद्धि का ही नाम प्रथम आता है। बुद्धिधरवी श्रीमांसक का कहना है कि वायिका की सबसे प्राचीन व्याख्या जिनैन्द्रबुद्धि विरचित वायिका विवरण बंकिना है जो संस्कारण निघास में व्यास नाम से प्रसिद्ध है। यह व्याख्या जयादित्य और वामन की सम्मिश्रित कृति पर है। जयादित्य की मृत्यु इस्लिंग के अनुसार सन् ६९१ ई० में हुई और श्री के बी पाठक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि जिनैन्द्रबुद्धि की प्रसिद्धि इस्लिंग के भारत से प्रत्यान और जयादित्य की मृत्यु तक जिसका अन्तर लगभग ४४ वर्ष का है वहीं हुई थी (देतिये हिंदी-घाँक कलाविक्रम संस्कृत मिटरेचर कृष्णभाषाारी द्वारा लिखित) वामन को कुछ विद्वानों ने ८० ई० का माना है। अभी अभी हिन्दी अनुमंथान परिषद् दिल्ली निरव विद्यालय दिल्ली की ओर से पाचार्य बिन्नेसर देव ने हिन्दी काव्यान्वकार निकाला है उसमें के लिखते हैं कि वामन का आध्यात्मिक काम १२० ई० और ८२० ई० के मध्य ८०० ई० के लगभग निर्धारित किया जा सकता है। इन्होंने काव्यान्वकार सूत्र-वृत्ति ही लिखी है। जयादित्य की मृत्यु ६९१ ई० में हुई। इन दोनों ने मिल कर जब काम किया तब वायिका का रचना काल ६२० ई० के आस पास ही हो सकता है और फिर उसकी व्याख्या जो व्यास नाम से प्रसिद्ध है उसकी रचना तो और भी परभाव होने की चाहिये। हिन्दू घाँक धर्मचार मिटरेचर कुछ १९ वा प्रमंग देते हुए मोपनर अन्वयेषार पाठ्य निराते हैं कि बाणेश्वर महोदय ने लिखा है कि बाण (६२० ई० में अपने जय परित में व्यास का जन्मेन किया है)। “इतमुगपदम्याया” शब्द पर व्याकरणोपनिषद् में “यस्य यहाँ देना है जब वायिकावृत्ति की व्याख्या ही “व्यास” की व्यास वायिका ने पूर्व का अन्व भी हो सकता है? यह तो तभी सम्भव है जब या तो वामन और जयादित्य बाण से भी पूर्व हुए हों या बाण न व्यास शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप में किया गया वामन और जयादित्य की वायिका की व्याख्या नहीं हो और दूसरी भी कोई वायिकावृत्ति बन चुकी हो या व्यास किसी दूसरे व्याकरण ग्रन्थ की व्याख्या हो। किन्तु इस

सम्भव में मौन हैं। यही है बामन अवार्तित्य की काशिका की व्याख्या को "व्यास" बताया है। अब बाण ने किस व्यास की ओर संकेत किया है? जिनैन्द्रबुद्धि का व्यास तो बहुत पीछे का है लगभग ७० के परचात् का। अब बाण का किस व्यास की ओर संकेत है वह एक ऐसी बात है जो अधिक अनुसन्धान की अपेक्षा रखती है। कुछ भी हो इन सब बातों को लिखने का हमारा तो यही। पर यही धारणा है कि माच ने काशिका और व्यास से व्याकरण ज्ञानों का मरत के नाट्य शास्त्र की ही भाँति अपने विमुपासक काव्य में जस्तेब किया है। इनके सेलक बाहे बामन अवार्तित्य और जिनैन्द्रबुद्धि हो जाहे कोई व्यक्ति, किन्तु जो प्रकाश रूप में बामन अवार्तित्य और जिनैन्द्रबुद्धि आ रहे ने सो माच के युग के ही हैं जो धानु में माच से सम्भवत बने हों।

जिनैन्द्रबुद्धि के विषय में श्री कृष्णमाचारी—हिस्ट्री आफ क्लासिक संस्कृत लिटरेचर में लिखते हैं कि इन्होंने विमहर्ष के धनुषार हस्त की परमंजरी से बहुत सी बातों को बीसे की बीसे ही रख दिया। वे कहते हैं हस्त ने अपनी परमंजरी में माच का नामोस्मै एक से भी अधिक बार किया है इससे यह बात निश्चयी है कि जिनैन्द्रबुद्धि माच के बी परचात् के व्यक्ति हैं। श्री कृष्णमाचारी व्यास को धष्टम शतक के प्रथमाध्याय में लेकर माच को धष्टम शतक के अन्त में होगा बता रहे हैं न कि अष्टम शतक के अन्त में। धरतु, वह जिनैन्द्रबुद्धि कदाचित् दूसरे हों जिन्होंने हस्त की परमंजरी की बुले रूप में नकल की। व्यासकार जिनैन्द्रबुद्धि से दूसरे ही कोई व्यक्ति हैं।

(४) नायानन्द के लेखक श्री हर्ष के विषय में हम माच की बीवनी वाले प्रकरण में लिख चुके हैं। कामदेव की सेना का जस्तेब कर और हरि (श्रीकृष्ण) को बुद्ध या बोधिसत्व के रूप में वर्णन कर यह प्रमाणित करते हैं कि माच ने काव्य लिखने के पूर्व नायानन्द नाटक को भी देखा होगा। श्री हर्ष (१४८ ई.) तो माच के पूर्व के कवि व भाष्यकार हैं यह निश्चित है।

(५) पंचतन्त्र का भी एक प्रबंध आया है।

पठिते पतंगधूमराजि निजप्रतिबिम्बरोपित इवाग्बुनिधौ ।

अथ ना-दुसमलिनानि जगत् परितस्तमासि परितस्तारिरे ॥१॥१८॥

इस श्लोक में ध्रुव कपी सिंह पश्चिम समुद्र के अंत में अपने प्रतिबिम्ब को देख कर मिर पड़ा है। एक सिंह अपनी परछाई को दूसरा सिंह समझ कर क्रोध से दूए में दूब पड़ा था उसी की यह कथा पंचतंत्र में आती है—

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निमुञ्जेत्तु कुतो बलम् ।

अने सिंहो मदोन्मत्तो रागादेन निपातित ॥पञ्चतन्त्र ॥२३७॥

पंचतंत्र के श्लोक भी इसमें आये हैं और वही उक्त काव्य साम्य है बँदे—

पदाहर्त ददुःखाय मूर्धनिमधिराहति ।

स्वस्थादवापमानैर्ष्य देहमरतद्वर रज ॥

अभिसाधय

माय से संबद्ध युगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (इतिहास के आधार पर)

किसी समय भारत विश्व का मुख था। उसकी सम्पदा विश्व के सम्पत्ति देशों की सम्पदा से घटीव प्राचीन है। उस सम्पदा में पावित होकर भारतीयों ने जीवन के समस्त क्षेत्रों में अपनी प्रखर प्रतिभा का पूर्ण परिचय समय समय पर दिया है। मनुस्मृति घटीव प्राचीन ग्रन्थ है, मनु महाराज ने इसी भावना को इस भाँति व्यक्त किया है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादप्रजग्मनः।

रमं स्वचारमं शिखरेषु पृथिव्या सर्वमनवा ॥

मनु महाराज का यह श्लोक इस बात को प्रमाणित करता है कि भारतीयों ने सर्वत्र जर्म विज्ञान साहित्य कला राजनीति गणित ज्योतिष कर्मकाण्ड वंश मंत्र आदि विभिन्न विषयों में प्रकाश डिहता का परिचय दत्त हुए एक कोटि के चरित्र का निर्माण इस भाँति किया कि बिदेसी भी उनकी सम्पदा तथा संस्कृति को देख कर मंत्रमुग्ध हो गए यहाँ पर धाकर यहाँ के निवासियों के चरणों में बैठ कर चरित्र निर्माण की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। जैनसाय जीनी मात्री इसका प्रबल प्रमाण है। वह भी कँडा दुग रहा होगा। दुःख है बहुमुखी इस प्रपत्ति का इतिहास भारतीयों ने प्रामाणिक रूप से नहीं छोड़ा घट धाकार में घटकते हुए किसी वस्तु को हाथ से स्पर्श किया मानों वही वस्तु हमारी धर्म-सहित हो गई। यदि हमारे पास कमबख्त ऐतिहासिक सध्यों का विवरण होता तो मात, कानिवास धारवधौष, आरुषि, मनुस्मृति माय आदि ग्रन्थकारों के नाम के विषय में हमारी जानकारी धर्षदिव्य होती और उनके साहित्य का रचारभादन करते हुए उस नाम की ध्की का धानम्भ कितनी सरमता से प्राप्त करते। इतिहास की जानकारी के साधन को साहित्य धर्मिमत रमारक विषय धौर बिदेसी सलक है उनक माध्यम से यद्यपि पुगतर विचारदों तथा विभिन्न विधानों में धनक प्रबल क्रिय, फिर भी हमारे साहित्यकारों की धीबनियाँ नहीं बन लकी और उसके धभाव म धाज तक भी उत्तमन सुसक नहीं पाई है।

मिम मिम धामोषकों, विधानों एवं पुगतरविषयकों में मनुवर्षि माय के सही नाम के निर्धारण के धभाव में मायराजीन सलक नाम के सध्ध में धनेक घट प्रसूत किये और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रसूत करने म कई भाषाएँ धा सलकत हुईं। मनुवर्षि माय राजा धोज के धम धामयिक म। धोज कई हुए हैं—जनम बहु धोज कीम धी से दिनरा सध्ध माय धवि से है। प्रसिद्ध धोज धार म ११ की सलक्यो में हुए थे जो रव्य महावि संकृत धामोषक एवं पुगसाही परम विद्वान् एवं दागनीर थे। रव्यी के दरबार में कविधों की धीइ धी लकी रव्यी धी। धोज सध्ध यद्यपि कोई प्रामाणिक सध्ध नहीं बहा जा धकता, के मनु

सार मास कालिदास मञ्जुति मयूर भीर बाण प्रापि भोज के राज्य में थे । इस आधार से यदि हम मास को कालिदास का समकालीन स्वीकार कर लेते हैं तो कालिदास का काल महाकाव्य विक्रम का अथवा महराज नग्नपुत्र का काल मानना होगा । फिर कालिदास नाम के व्यक्ति कई हुए हैं । रामचरंमिथी में मातृपुत्र को ही कालिदास बताया गया है । जैसा पहले कहा गया है एक जनपति के आधार पर कालिदास भीर मञ्जुति को एक अपहृ मितने का अवसर प्राप्त हुआ है । मञ्जुति राजा सतिशरिय के दरबार में थे । तब क्या कालिदास मञ्जुति के काल की रचना है ? ऐसी संभावना-पूर्ण कई बातों को समझ रख कर हम महाकवि मास की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे । कालिदास के समकालीन तथा भार क राजा भोज के निज होने के नाते हम एक और युक्तकाल की ओर इति शीघ्रते हैं तो दूसरी ओर बलात् राजपूतकाल तक जाना ही पड़ता है जिस काल में मास के पितामह शुभ्रमदेव के स्वामी राजा बभलत तथा मास कवि के सम सामयिक बोजनामवादी राजा हुए हैं । यतः हम पुत्र साम्राज्य से लेकर राजपूत राज्यों तक के कालों का ऐतिहासिक निज प्रस्तुत करेंगे जिसका अन्तर्गत ४ बी अठारवी से वि० सं० १२०० तक पूर्ण २ अठा विंसी या असी हैं ।

पुत्रकाल भारतवासियों का सुपरिचित एक स्वर्णकाल है जिसमें अनेक सब ही बातों की बहुमुखी समृद्धि हुई थी । किन्तु ही प्रमाण इस बात के उपलब्ध हैं कि मास कवि उस युग की रचना किसी भी रूप में नहीं है किन्तु फिर भी सांस्कृतिक वास्तु का वह एक ऐसा युग था जिसकी कई परंपराएँ राजपूत काल तक ही नहीं प्राचिनिक काल तक बसती आयी हैं ।

पुत्र समय का सांस्कृतिक इतिहास

पुत्र युग के पूर्व भारत विदेशियों के अधिकार में था । पुत्रों ने जब अधिकार किया उस समय भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था । बार बी वर्ष के विदेशी शासन ने इस विघातकाय देश की वा बुरावस्था की वह अवस्था खोजनीय थी । पुत्र साम्राज्य के राजाओं ने देश में राजनैतिक एकता लाने का प्रयत्नशील प्रयत्न किया । देश इस समय स्वतन्त्र था । चारों ओर शान्ति थी । अठ्ठा शासन प्रबल होने से केन्द्रीय शक्ति बढ़ गई । मुख्यतः से व्यापार में वृद्धि हुई । विदेशी व्यापार अत्युच्च छिदार पर था । चीन मध्य एशिया कोशीन जावा सुमात्रा अनाम बोनिनी आदि तक उस समय में भारतीय धर्म और संस्कृति का व्यापक प्रसार रहा है । भारतीय मस्तिष्क के धनी एवं प्रथम अंशों के अदाकारी रहे हैं । अपनी प्रतिभा का सर्वतोमुखी विकास एवं समुद्रपूर्व बौद्धिक उत्कर्ष जैसा इस युग के सट्टामों ने करके दिखाया वह फिरमरणीय है । भारत के अनेक अनेक बलि एवं नाट्यकार कहा जाता है इसी युग की रचना हैं । पौराणिक साहित्य का नवीन रूप पारदा करना अनेकों के मध्य से एक और दार्शनिक आसक्त्य बभुबाबु बिद्वान और धार्यदेव तथा देन दार्शनिक मिश्रदेन दिवाकर समन्तभद्र जैसे धर्मियों का उत्पन्न होकर धार्मिक विचार प्रसार करना तथा विधान के क्षेत्र में दार्शनिक गणना पद्धति और विद्वानों का साहित्यिक स्थापित करना इसी

युग की घोमा है। मलित कमायों में जो चरम उपरति विस्तार पकड़ी है वह इसी युगयुग की है। अन्तःस्था के निवर्तनविधायक मितिविध स्वाम स्वाम पर देवताओं तथा भवधारों की इसी सजीव प्रतिमाएँ एवं सुन्दर विद्यालयकाय नवनों का इतने प्रचुर परिणाम में यदि किसी एक युग में निर्माण हुआ है तो वह यम केवल युग-युग ही है। आध्यात्मिक समीप्यता के साथ प्रसक्तारों का सुन्दर समन्वय तथा व्योतिष, यष्टि रसायनशास्त्र भागु विज्ञान वैद्यक, ज्योतिषविद्या ज्योतिषा धरतविद्या संकटो विषयों पर इसी ज्ञान में ग्रन्थ भिन्ने गये एवं हिन्दू धर्म मनीष रूप की बारण कर सबको अपनी ओर आकर्षित करने लगा। सबी मील सांस्कृतिक उपरति का वास्तव में यही एक युग रहा है।

सांसारिक स्थिति—वर्णायम व्यवस्था भारतीय समाज की मूल आधार धिता समझी जाती है किन्तु युग युग में वर्ण व्यवस्था पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था वत वह मुहड़ न होकर कुछ संश्लेष की चारण लिए हुए थी। बाद के युग में जैसी कठोर व्यवस्थाएँ धानधान विवाह एवं जातीयिका में हैं वैसी उस समय न थी। वे सबके साथ पाठे बीठे थे यदि विदेश का तो केवल यूरो के साथ ही। इस पर भी हृषक मारित तथा ध्याने व पारिवारिक मित्र इन बात क धनबाद थे। उपर्युक्त और अत्यन्त दोनों भाँति के विवाह होते थे। बहों की तो बात जाने बीजिये विविध बन्धों तक में इस युग में विवाह होते थे जिसके प्रमाण हैं धात्र के ब्राह्मण। इत्यादि राजाओं के उन्नति की एक राज परिवार की बन्धा को स्वीकार किया था। बहों में शास्त्रक राजा वरसेन जो कट्टर ब्राह्मण था अपने प्रमायती युग का विवाह वैराज जातीय युगयुग में किया।

विवाह के प्रतिरिक्त जातीयिकोपार्जन में भी यही बात थी। ब्राह्मण अपने कर्म के प्रतिरिक्त व्यापार तथा जीकरी भी करता था। वह युद्ध में लड़ता तो दिल्ली का भी बाँध करता था। वही व्यवस्था बूझरे बहों की थी।

उस युग के समाज की पावन धन्ति लुहड़ थी। इसके फल स्वरूप उन्होंने विदेशी जातियों का जो माछ में आकर रहने लगी अपने में पचा लिया और वे स्वेच्छापूर्वक हिन्दू बन गये। जिस समाज की पावनधन्ति इसकी लीज हो तो वह समाज क्या माछ तक ही सीमित रहेगा? परिणाम स्वरूप हमारी भारतीय संस्कृति ईषक सीरिया, मुमात्रा बौनिपो, मारि टापुओं में भी विकसित हुई। इस युग में जो बोध थे—एक तो अत्यन्तता और दूसरा काम-विवाह था। प्रथम देखी जा विवाह प्रणय प्रमाण है। इस तरह क बोध क रहते हुए भी इस युग के भारतीयों का सामाजिक और वैयक्तिक जीवन एक अत्यन्त संतुलन को लिये हुए था। इस युग में धर्म और काम की महत्ता उसी भाँति थी अथ धर्म और मोक्ष की। युगयुग के परभाव और भी बार प्रमाण धर्म की प्रमुखता हुई जिसमें धर्मिकीय समय वत तथा पुत्र पाठ को णिया जाने लगा। वे परमोक्त के मुक्त क भिए इहलोक की उन्नय करन लगे थे।

इन भाँति उन्होंने एकाधिराज्य स्थापित किया। ईशानों, बलानारों एवं प्रजा के स्वरूप बन कर उन्होंने दीर्घकाल तक धार्मिक ग्रन्थ किया। अन्तः प्रभाव युगधामाग्र्य पर संकट के बारन फिर लाये। कुमारमुष्ट और एकमुष्ट उस धामाग्र्य का सम्मान न सके।

कुमारगुप्त के समय में बिनाशकारी प्राक्रमण प्रारम्भ हुए। स्कन्दगुप्त को हर्षों से मुक्त करना पड़ा। यद्यपि युद्धों में कुप्ता को विजय भी प्राप्त हुई, किन्तु स्कन्दगुप्त के परचात् ही गुप्तसाम्राज्य नष्ट भट्ट हो गया। स्कन्दगुप्त के परचात् के शासकों में इतना योग्य कोई न हुआ जो इतने बड़े साम्राज्य को एक सूत्र में बाँध रखता। इन्हीं भारतीय इतिहास में केन्द्रीकरण तथा बिकेन्द्रीकरण की दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ निरन्तर संघर्ष करने लगीं।

हर्षकाल—गुप्तकाल के परचात् हुए राजा तोरमाण तथा मिहिरकुस का नाम आता है। ये प्राक्रमणकारी थे। भारत इस भाँति प्राक्रमणकारियों से दुर्बल हो गया। भट्ट घनेकों स्वतन्त्र राज्यों का उदय हुआ जिनमें बलभी, लौराह, कभीज, मासवा, ब्यास व आसाम आदि कई राज्य थे। बलभी का राज्य इनमें प्रमुख था। भारत की सत्ताश्री के प्रारम्भ में इन स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना से उत्तरी भारत की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त जटिल हो गयी थी। छोटे छोटे राज्य परस्पर लड़ते थे। चारों ओर राजनैतिक अस्थिरता थी। ऐसे समय में एक ऐसे सम्राट की आवश्यकता हुई जो बिखरी हुई शक्ति को एक सूत्र में फिर से बाँध सके। महापद्म हर्षवर्धन ने यह कार्य कर दिखाया। इसका विस्तृत उल्लेख ज्ञानपीठ के मैसों व बाणभट्ट के हर्षचरित व काव्यमयी में हुआ है। हर्ष स्वयं विद्वान् थे। नायानन्द, प्रियदर्शिका व रत्नावती उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं जिनमें उस काल के बार्हिक तथा सामाजिक जीवन का सजीव चित्र भक्ति है।

हर्षकालीन राज्य—कपिशा (काबुल या काफिरीस्तान) का शासन प्रबल अभिय बौद्ध के हाथ में था जिसके अधीन लम्पाक (लघमन) नगर (बलालाबाद), माण्डार (पेघावर) थे। उदयन (स्वयत) के राज्य में लखविषा (राजपिपी) विहपुर (वाहपुर) और चर्व (हृत्पुर) थे। ये राज्य पहले कपिशा के अधीन थे किन्तु अब कारवीर में हैं।

दक्षिणपूर्व कारवीर—इसमें पुष और राजपुर (राजोरी) हैं जो कारवीर के अधीन हैं।

देगढ—यह प्राक्रम (दयालकोट) की राजधानी है।

बिनामुक्ति, नातम्बर, कुषुत (कुसु) अठार, पारियात्र (बीराट) मधुप स्वानन्द, कभीज यही का शासक हर्ष वैश्य जाति का था। माधुप (अयोध्या) प्रयाग कीजाम्नी आबस्ती कपिलवस्तु, बनारस बीजोली नेपाल मगध नागन्दा जम्बा (मानसपुर) कामरूप (आसाम) वहाँ ब्राह्मण शासक मास्करवर्मा या कर्णमुवर्मा (मुद्रिवाबाद) यही अठार राजा था। कर्तिय आग्र कोणल जोल, महापद्म में पुलकेसी का राज्य था भद्रोकण्ड, मासवा वहाँ पर ६० वष पूर्व विनाशित्य राजा था बलभी यहाँ पर विनाशित्य का महीना और हर्ष के आमाता का राज्य था जिसका नाम प्रबुधट था धानन्यपुर यह मासवा के अधीन था, लौराह भी मासवा में था पूर्व गुर्जर बलभी के जिसकी राजधानी भीनमाध भी यहाँ पर क्षत्रिय मुक्त राज्य करता था गुर्जर के दक्षिण परिषद में राजमिनी भी वहाँ पर ब्राह्मण राज्य करता जिस में लूर राजा था।

उपर्वुक्त क्षत्रिय ७१ राज्यों का अर्थ है ज्ञानपीठ में सन् ६१० में क्षत्रीय याबा के

विवरण में किया है। हमको अन्य राज्यों से कोई शासक नहीं है किन्तु जहाँ पर उसने
 भीममास का वर्णन किया है उस देश से हमारा सम्बन्ध है। सन् ६२८ में यहाँ पर ब्रह्मसुट्ट
 सिद्धान्त के लेखक प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने यहीं पर दक्षिण राज्य ब्याघ्रमुख का होना
 स्वीकार किया है। जैनगण का कहना है कि भीममास मुर्वरों की मुख्य राजधानी की ओर
 आज गुजरात में न होकर राजस्थान के छिरोही जिले में है। बीली यात्री लिखता है कि भीम
 मास का राजा दक्षिण युवक था जो बुद्ध व साहस का पूर्ण भरी था तथा बौद्ध धर्म में उसका
 पट्ट दस्ताव था। जैनगण भीममास की ओर सन् ६४१ ई० के लगभग धारा था।
 इतिहास लेखकों का कथन है कि वह युवक आपसकी दक्षिण ब्याघ्रमुख का ही उत्तराधिकारी
 पुत्र था क्योंकि ब्रह्मगुप्त के समय में ब्याघ्रमुख वृद्ध थे। हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन ने मुर्वर पर
 विजय प्राप्त की थी (देखिये हर्ष की छवि पृ० १७४ मुर्वर प्रजापार — प्रतापरीस — इति
 प्रवितापरनामा प्रभाकरवर्धनो नाम राजाभिषाज)। हर्ष ने अपनी दिग्विजय में मुर्वर नाम
 नहीं दिया किन्तु बीली यात्री का भीममास के राजा का वर्णन ही इस बात का प्रमाण है कि
 विष और कामोर की भाँति मुर्वर नाम मास से हर्ष के साम्राज्य में थे। भीममास के उस
 युवक दक्षिण का वर्णन बीली यात्री ने किया है बल्कि हमारी दृष्टि को उस ओर
 आकृषित कर लेता है क्योंकि महामहोपाध्याय श्री प्रोफा उषी युवक का उल्लेख करते हुए
 जो समय निर्धारण कर रहे हैं मास की के समय निर्धारण से धर्ममति हो गयी है।
 वर्ममास के सिन्धुसिन्धु में केवल ६८२ वर्ष दिया है जिसको इन्होंने विजयी संवत् मान कर
 सन् ६२५ बताया है। ब्रह्मसुट्ट सिद्धान्त के रचयिता ने अपनी पुस्तक में एक संवत् दिया है
 इससे तो जबर बिक्री संवत् का प्रचलन न होकर एक संवत् का प्रचलन ही सिद्ध होता है।
 तीन ही वर्षों में कोई नया संवत् का प्रचलन नहीं पा सकता। ब्याघ्रमुख वृद्ध थे सन् ६२५
 में भी भीममास के वे ही शासक थे न कि वर्ममास। सन् ६४१ में ब्याघ्रमुख का पुत्र सासक
 था जो लगभग २२ या २३ वर्ष का होगा उसी समय जैनगण अपनी भारत यात्रा के प्रसंग
 में उपर गया होगा। ब्याघ्रमुख के पुत्र ने जब तक राज्य किया भीममास का नया शासक
 रहा। इस समय की कोई बात हमारे सम्मुख सब तक नहीं जाती जब तक प्रतिहार वंश के
 प्रवर्तक नागभट्ट मुर्वर प्रतिहार का भीममास पर राज्य नहीं हो जाता। फिर उसकी सम्मान
 भोज प्रतिहार के समय में भीममास और कभी का नाम सुनने में आता है। राजा वर्ममास
 का वह सिन्धुसिन्धु सन् ७१० ई० का है जब वर्ममास भी स्वयं वृद्ध थे और देवगुप्त मास के
 सिन्धुसिन्धु मुसमदेव भी लगभग ७० या ७५ वर्ष के होंगे। मास द्वारा निर्मित वंश वंश से
 यह बात पूरी भाँति समझ में आ जाती है। मुसमदेव विरक्त पारिवर्धन पति य तथा उनके
 वंशज वर्ममास के उत्प्रेषण की ही भाँति राजा वर्ममास निर्मलेक्ष्य चरण करते थे। ब्याघ्रमुख
 का पुत्र लगभग ६६५ ई० तक अवश्य जीवित रहा होगा। हो सकता है कि वर्ममास ब्याघ्र
 मुख आपसीय दक्षिण का राजा हो। धरमो के शासक का जो न उने दाते उम समय केवल
 को है न या तो भीममास के मुर्वर प्रतिहार या किसी न बाधा बाला राजा। वर्ममास
 साधु वर्ममास के न पति पारिवर्धन पति विरक्त रहे। हर्ष का मृत्यु (सन् ६४८ ई०) के
 वर्षाव पराजयता का है। पराजयता के समय ब्याघ्रमुख का पुत्र भीममास का राजा

(१२०)

या । हो सकता है कि ये आपसीय फिर इधर-उधर चले गये हों । भीनमाल पर पुर्वर प्रतिहारों का अधिकार सन् ७३४ के आसपास हुआ । राजा बर्मसात उस समय बल्लभगढ़ के स्वामी थे जिसके घसीन पूर्वबाबल और इधर-उधर के सामंत थे । सिलासैल में भीनमाल के व्यक्तियों का भी नाम आया है । घत भीनमाल पर तो राजा बर्मसात का अधिकार नहीं रहा होगा किन्तु बल्लभगढ़ मिश्रमास के घसीन रहा होगा । माव अपने को निजमाल बाल्लभ सिख रहे हैं क्योंकि उसके पूर्व पुष्य निजमाल ही के थे । समय ने माव को निजमाल छोड़ने के लिए बाध्य किया हो । जिस समय माव ने उस समय निजमाल पर पुर्वर प्रतिहारों का राज्य था । व्याघ्रमुख का पुष्य सविषयुक्त लुनखी के मठागुहार बीजधर्म में पूर्ण प्राप्त हो चुका था । यदि बर्मसात उसी का पौत्र सुष्यवरे के बान्धवों की उपासत की सिखा के रहनेवाला था । यदि बर्मसात उसी का पौत्र सुष्यवरे के बान्धवों की उपासत की सिखा के पुष्य मान लेता है तो मावधर्म ही क्या है ? बर्मसात का बीजधर्म की प्रतिष्ठा हुआ फिर प्रारंभ किन्तु अधिक नहीं क्योंकि उसके समय तक देवी के मन्दिरों की प्रतिष्ठा हुआ फिर प्रारंभ हो चुका था । जमने लीमल मावा के लिए सिलासैल रूप में गोटिकों की सूची वहाँ पर लपवाई थी । पूर्व-मन्दिर का इस समय तक कोई बिक्र ही नहीं । घत यह बात सातवीं घटाणी तक की तो है नहीं घाटवीं घटाणी में देवी के मन्दिर की बात हमारे सम्मुख है । पुर्वर प्रतिहार पूर्व के उपासक थे । घत भीनमाल में पूर्व का मन्दिर बना । यह कोई आश्चर्य नहीं कि बनते हुए उसी जोबन्तामी (सुष्यमन्दिर) के मन्दिर का पुष्य माव को दिया गया हो ।

नैर्वाणिक स्थिति—यह एक ऐसा युग था जिसमें नाविक उद्विगुता बल्लभगढ़ पर एक साथ मिलकर मानव की साम्राज्य की स्थापना की थी । यह ही परिवार में हि

हर्ष काशीन नाविक स्थिति—यह एक ऐसा युग था जिसमें नाविक उद्दिष्टों का बहुत
उत्पत्ति कर रहे थे। एक ही राज्य एक ही नगर यहाँ तक कि एक ही परिवार में हिन्दू,
जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायी परस्पर साम्यपूर्ण मिश्रण से समुच्च और परस्परता का
ही प्रतिबिम्बित हुआ कभी-कभी साम्राज्य कर बैठते थे। बाद के इस स्वतन्त्र भारत का
यह ही प्रतिबिम्बित हुआ गांधीवादी है तो रही समाजवादी है फिर भी कोई अस्पष्टता का कारण नहीं है
युग में भी पिता ही है तो पुत्र बौद्ध फिर भी आतिशायी जैन व बौद्ध व जैन हो सकता था।
आतिशायी कोई विचार न था। कोई भी आतिशायी विचार? इन समय क्या बौद्ध व जैन हिन्दू
रीतिरिवाज सामान्य था एक से वे फिर कैसा विचार? इन समय तर परमात्मा का एक
घोषणा बन गये थे। इनका ही नहीं बौद्ध ने मध्य देवता भी उन्मिलित होने लगे थे जैसे
बोधिमत्त। हिन्दुओं में इन समय विशेष रूप में विश्व विद्वान् और धर्म की पूजा अत्यधिक
थी। बनारस का विश्व मन्दिर और गुप्तान का धर्म मन्दिर इस समय प्रसिद्ध था। मन्दिरों
के निर्माण के अनिर्णित बौद्धों और हिन्दुओं में संघर्ष का प्रवेश हो जाता था। शास्त्रों
का अनिर्णय और धर्मियों का अन्वेषण जैसे यज्ञ भी अधिष्ठाता से होने लगे थे बर बर में
अभिधीन प्रान्त गाय होते थे। हर्ष के मरण ही वैदिक धर्मधर्मियों ने फिर उत्पत्ति प्राप्त
की। इस युग में बौद्धों को जिन मतावलम्बी कहते थे बौद्ध का इस समय इतना प्रभाव था

शिसालेख धीरे-धीरे शासन के विपरीत थी उस समय की स्थिति का विमर्शन कर देते हैं। यहाँ मुख्य-मुख्य बातों को ही बताना है। हर्ष ने उन राज्यों पर आक्रमण किया जिन्होंने उसकी पराधीनता स्वीकार नहीं की थी। वे राज्य जिन पर उसका आधिपत्य इस प्रकार हुआ पंचाल, कन्नौज, मिथिला, बंगाल, उड़ीसा, काश्मीर, गिर्वा, नृपाज, सोरभ, धीरे-धीरे कामरूप थे। समय-समय पर धर्मवर्ष पर ऐसा आसन इन्होंने किया इनके पश्चात् किसी भी हिन्दू नरेश ने नहीं किया। इसीलिए हर्षवर्धन को हिन्दुओं का अन्तिम सम्राट् कहते हैं। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही उनका सब कार्य इस भाँति रह गया मानो बाबू की बीमार हो। परिणाम से किया हुआ शासन निराला हो गया। आर्यों और प्रजापतियों की अस्थिरता फिर से उत्पन्न हो उठी। इतिहास पुरानी स्थिति को बुझाने लगा। नरेशों में परस्पर प्रतिद्वन्द्व की भावनाएं जागृत हो उठीं। राजसूय के प्राप्त होते ही उन्होंने फिर उठाया और सेना लेकर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। हर्ष की मृत्यु ने एक नवीन युग को निम्नस्थित किया। वह युग का मध्य युग जिसको इतिहास विशेषतः राजसूय का संज्ञा देते हैं और इसी से हमारा अन्तिम सम्बन्ध है।

जैसे ही वैश्विक अन्तिम हो गई वैसे ही धर्मवर्ष छोटे-छोटे राज्य बने हो गये। वे सब पारस्परिक युद्ध में लक्ष्मीन थे। जनता में ऐसे युग में शांति कहाँ? जनता युद्ध की इच्छा रखने वाली सामन्तीय व्यवस्थाओं के नीचे बुरी तरह पिचकी जा रही थी। एक नहीं धर्मवर्ष नवीन राजवंश उठ खड़े हुए। जिसको कहाँ जितना प्राप्त हो गया उन्होंने वही पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। वे नरेश अपने को क्षत्रिय न कह कर राजपूत कहते थे। जैनमार्ग ने भीमताल में क्षत्रिय युवक का वर्णन किया है न कि राजपूत युवक का। वह व्याघ्रमुख का पुत्र था जो आपबन्धीय (आपोत्कट बाण्डा) क्षत्रिय था। राजपूत काल में जिसका नाम एक इतिहास में हर्ष के समय तक नहीं आया वे बंध सामने आये। उनमें प्रथम कुंवर प्रतिहार (पट्टिहार) राजपूत बंध के मायमट का भीमताल से सम्बन्ध था। भीमताल पर प्रतिहारों का राज्य हुआ। यह राज्य भीमवर्ष के शासन तक चला। प्रतिहार राजपूत बंध में मिहिरमोज प्रयाग हुए। ही तो वे आपबन्धीय क्षत्रिय भी समय के अर्थों से इतर-उपर बिहर गये और जो कहाँ पर गया वही पर एक स्वाधीन राज्य स्थापित कर शासन चलाने लगा।

बर्मताल राजा भी आपबन्धीय क्षत्रिय ही थे किन्तु उनको भी ऐसी स्थिति में भीमताल का मुख्य स्थान छोड़कर बर्मताल का आश्रय लेना पड़ा जिसके अर्थात् अर्धवर्ष प्राप्त (प्राप्त) हो तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि बर्मताल के समय में प्रतिहारों ने अपनी बाक जमा ली थी। शिसालेख में 'प्रतिहार बोटव' का नाम आया है। अतः कोई अन्धेरे की बात ही नहीं रह जाती कि बर्मताल नाग-दृष्ट के बाद व समयानीन राजा एक छोटे से ग्राम के रहे हों जिसमें अर्धवर्ष हो। भीमताल उनके हाथ में निष्ठा पुरा था। शिसालेख के अन्तिम प्रमाण है जिसमें भीमताल के व्यक्तियों का भी नाम है। शिसालेख की अन्तिम नोटों के व्यक्तियों वाली सूची जैनी जाया वाली से मिलती जुलती है। बीज वर्ग पलायमान तो हो युद्ध का किन्तु बर्मताल में बीज वर्ग के प्रति आदर भाव था। अन्तिम भी हिन्दु उसके लिए सब अर्पण थे।

राजपूत नाम (सन् ७५० से सन् ११५ ई० तक)

इस की मूल्य ने परभाव पराजयता फँती । कई राज्यों ने । इन राज्यों के अधिकारी राजपूत नाम से प्रसिद्ध हुए । राजा बभनराज महाकवि माध के वितामरु के स्वामी के समय के विमालेख में "राजपूत" शब्द की ही मति "राजस्थानीयादिवमरु" का नाम आया है इन्हीं के समय तक "राजस्थान" शब्द सुनाई देने लगा । जो राजस्थान इस समय है और जिसको ब्रिटिश भारत में राजपूताने की संज्ञा दी गई थी और जिसके निवासी राजस्थानी कहलाया करते थे वह स्वान्तर्गत भूमि अथवा मातृभूमि था । राजस्थान शब्द कहीं से आया यह बात तो राजपूत शब्द जैसे प्रचलित हुआ ये राजपूत लोग ये कहीं से आये और उन्होंने इस भारत पर किस धर्मि अथवा राज्य स्थापित कर लिया इन प्रश्नों पर पूर्ण प्रकाश डालने पर ही स्पष्ट होय ।

महामहोपाध्याय वास्कर पीपीयंकर हीराचन्द घोष का मत है कि जैसे राजपूताना नाम मैदानी के परभाव प्रसिद्ध हुआ था वैसे ही राजपूत शब्द भी एक जाति या वर्ण या वर्ण विशेष के लिये मुख्यमानों के इस देश में आने के परभाव प्रचलित हुआ था । राजपूत या राजपूत शब्द संस्कृत के राजपूत का अपभ्रंश अर्थात् लौकिक रूप है । प्राचीन काल में राजपूत शब्द आतिशायक नहीं किन्तु दक्षिण राजकुमारों या राजवंशियों का सूचक था । इसका कारण यह था कि बहुत प्राचीन काल से भारत आर्यवर्ष प्रायः दक्षिण वर्ण के प्राचीन था । प्राचीन ग्रन्थों विज्ञानेक्षों तथा दानपत्रों में राजकुमारों और राजवंशियों के लिए राजपूत शब्द का प्रयोग पाया जाता है । ईस्वी सन् ६२६ ६५४ तक चीनी यात्री ह्युनसांग ने भारत भ्रमण किया । उसने भी कई राजाओं का नामोल्लेख कर उनको दक्षिण ही लिखा है राजपूत नहीं । मुसलमानों के राजत्व काल में क्षत्रियों का राज्य कमरा धस्त हो गये और जो देश रहे उनको मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी अतएव वे स्वतन्त्र राजा न होकर सामन्त से बन गये । ऐसी अवस्था में मुसलमानी समय में राजवंशी होने के कारण उनके लिए राजपूत नाम का प्रयोग होने लगा, अतएव जाने-जाने यह शब्द जाति सूचक होकर मुसलमानी के काल अथवा उसके पूर्व सामान्य रूप से क्षत्रियों के लिए प्रचार में आने लगा । कर्नल टाड तथा स्मिथ आदि यूरोपीय इतिहासकारों ने राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में बहुत कुछ सम्भवण किया है । वे तो इस निष्कर्ष तक पहुँचे कि यह राजपूत शब्द किसी जाति विषय का सूचक है ही नहीं । सिवा सिक्खे हैं जब हम राजपूत शब्द का प्रयोग किसी सामयिक समुह के लिए करते हैं तो उससे किता जाती और परम्परा अथवा रक्त-सम्बन्ध का बोध नहीं होता । उसका अर्थ एक ऐन जन समुदाय से है जो बुद्धिमत् है और जो अपने को अपने कुल का जानता है तथा जिसे जाहिरों द्वारा बड़ी सम्मान प्राप्त है जो प्राचीन क्षत्रियों को था । इसका ता यह धर्मिप्राव है कि "राजपूत" के सभी लोग हैं जिन्होंने राजवंश तथा मुसलमानी के अथवा नाम ही बना लिया । यूरोपीय इतिहास विद्वान् बहुत हैं कि ईसा की दूसरी सतावसी पूरव के लगभग से भारत के उत्तरी भाग से निरन्तर विदेशियों के आक्रमण होते रहे । प्रथम आक्रमण मुसलमानों का हुआ । फिर एक और अन्तर्गत आये । अतएवानु बुद्धिमान फिर इन्हीं के ता उत्तरी भारत पर अपना

प्रभाव जमा ही लिया। जिनमें तोरमाण धीर मिहिरकुल हैं। वे राजा हो सके किन्तु अपनी सहायि धीर सम्यता को फेंकाने धीर मानने के स्थान पर भारत की सदा नीति होने से वे यहाँ की सामाजिक व सांस्कृतिक परम्पराओं को मानने सवे धीर भारतीय समाज से उन्होंने अपने आपको सम्मिलित कर लिया। उस समय राज-सत्ता उनके हाथ में थी मग्न उस समय में पूज्य समझे जाने वाले ब्राह्मणों ने उन्हें अश्वि स्वीकार कर लिया। यही नहीं उनका सम्बन्ध प्राचीन वैदिक तथा महाकाव्य कालीन अश्वियों से स्थापित कर दिया। भारतीय समाज में इस भाँति झुनानी सिबियन धीर कुषाणों का पूर्ण रूप से विलय हो गया। किन्तु हूणों से उत्पन्न कुछ जातियाँ फिर भी स्पष्ट रूप से विद्यमान थीं धीर गुर्जर इनमें सबसे प्रभावशाली थे जिनका वर्णन हथ भीमभास (भीमभास) पर लिखे समय कर चुके हैं। कई राजपूत वंश मूलतः गुर्जर के जैसे प्रतिहार। बाटो को भी इसी प्रकार इन्हीं बिदेयी जातियों का वंशज बताया जाता है। ये सब इस भाँति बिदेयी रक्त से उत्पन्न हैं जातियाँ कालान्तर में हिन्दुत्व के रंग में ऐसी रंग गई कि उनका बिदेसीपन पूर्णतः गढ़ हो गया। इन इतिहासकारों के अनुसार इस भाँति अधिकतर राजपूत वंशों में बिदेसियों का रक्त सम्मिलित है। किन्तु भारतीय इतिहास इससे भिन्न है। बी बी बी बीच ने इस मग्न का सफ़ा करके देखा है कि गुर्जर धीर बाट बिदेसियों की उत्पत्ति नहीं है। राजपूत ही तो सच्चे भाव हैं। उनका सम्बन्ध प्राचीन आर्य अश्वियों से है। इनमें सब कुछ की उत्पत्ति होने से पूर्ववर्ती धीर कुछ भीकृष्ण की उत्पत्ति होने से पूर्ववर्ती शकबा नन्दवर्ती हैं।

इस राजपूत सभ्य पर एक बुरा मग्न धीर है जो मनोरंजक होने के साथ ही साथ अधिकतर रूप में मात्र प्रकटित भी है। परसुराम प्राचीन काल में परम मोठा ब्राह्मण हो चुके हैं। उस समय ब्राह्मणों धीर अश्वियों में परस्पर बैमनस्य था वा। परसुराम ने उस समय के सभी अश्वियों को गढ़ भग्न कर दिया था। केवल वे ही अश्वि भीति रहे जिन्होंने या तो इनकी शक्तिता स्वीकार कर भी अपना स्वी रूप धारण करके अपने अपने अन्तर्गत व रहने लग गये। अश्वियों में "रज" रूप से उत्पन्न हुए थे फिर राजपूत कह जाये। अश्वियों के न होने से अराजकता सम्भवस्था तथा अस्थिर केन गई क्योंकि परसुराम धीर ही तो थे घातक नहीं। झुनोड़ में ऐसा अराजकता देखा तो वेवस्था में बड़ा से प्रार्थना की। बड़ा ने बाहु पर्वत पर गया किया धीर उठी मग्न-मग्न से प्रतिहार पंवार, सोसकी तथा भीमान ये बार अश्वि जातियाँ उत्पन्न हुई। इस मग्न में शक्यता का मग्न अधिक प्रतीत होता है। इसका यह तात्पर्य हो सकता है कि ब्राह्मणों ने अग्न में बिदेयी जातियों को मग्न द्वारा मग्न किया धीर फिर उन्हें हिन्दुत्व की रीति भी हो।

एक मग्न धीर भी है। भायों तथा हाथियों के जाने से पूर्व इन भायों में बौद्ध भीत भार आदि असम्भ्य जंगमी जातियाँ रहा करती थी। भायों की विजय होने पर ये जातियाँ पहाड़ी धीर वनों में जाती गयी थीं जहाँ पर वे आज भी रह रही हैं। उन्हीं जातियों के कुछ लोग भायों के सम्पर्क में जाये। धीर धीर वे सम्भ्य हुए धीर उनमें से कुछ ने राजसत्ता प्राप्त कर अधिकार धारण किया। जन्मे राजपूत योंही धीर भायों से सम्बन्धित हैं। कमीज के गहरावों का भी भारवालों से सम्बन्ध है। मुन्नेने धीर उत्तरी राजीर इन्हीं गहरावों की धारण है। इसी भाँति रजिण के राजपूत भी प्राचीन आदि जातियों की उत्पत्ति है।

यदि राजपूतों की गुर्जरों की सम्मान माना जाय तो चूंकि गुर्जर विदेशीय बताये जाते हैं अतः राजपूत भी विदेशियों की ही संज्ञा हुए। किन्तु गुर्जर विदेशी नहीं हैं। वे भी धार्य हैं। इसीलिए यदि राजपूत गुर्जरों की सम्मान भी हों तो भी वे जनाओं में सम्मिलित नहीं किए जा सकते। भी सी को बीच का कहना है कि राजपूत गुर्जरों की सम्मान ही नहीं किन्तु सीमे धर्मियों से उनका सम्बन्ध है। वे वैदिक धर्मियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्यामिन्दर का भोज सम्बन्धी जो विज्ञापन प्राप्त हुआ है उससे तो विदित होता है कि बभीर के प्रतिहार राजवंशी अपने को राम के भ्राता समझते थे। अतः सत्यतः राम के प्रतिहारी (हारपाल) थे। एक राजवंश के नाम के लिए यह "प्रतिहार" शब्द का प्रयोग सीमे के पुत्र की रत्न है। जब "शमिन्द" शब्द उठ सा गया और अराजकता में शमिन्दर प्रवृत्त करने वाले युधिष्ठिर नेता को या तो शाहूओं ने इस भाँति सत्यतः (प्रतिहारी) के बंधन बना दिया या वे ही जन मने और फिर उसी नेता के परिवारी के साथी प्रतिहार कहलाये। यह हर्ष के बाद की बात है न कि उसके समय की व जससे पूर्व की। समय में नहीं आता कि बन्धनरदाई फिर प्रतिहारों को धर्मिकुल से उत्पन्न हुआ क्यों बताते हैं? इस भाँति हर्ष के एक विज्ञापन के अनुसार बौद्धान सूर्यवंशी की सम्मान है। नवमी शताब्दी में ११ वीं शताब्दी तक बौद्धान सूर्यवंशी बड़े मये हैं। पुष्पी राज राजा हम्भीर महाबाह्य तथा धर्मर के मूर्धन्य का विज्ञापन प्रमाण है। अभिलेखाटन के शिलालेखों और बालुय बन्ध बंधी बताये मये हैं। राजपूतवंश में ११ इस भाँति की शताब्दी है।

इतिहास में सिद्धा हुआ मिलता है कि गुर्जरों की भाँति राजपूत जाति भी हूणों और अन्य अन्य जंगली जातियों से, जिन्होंने ईसा की पाँचवीं शताब्दी में भारत पर आक्रमण किया निकली और अन्त में यह यही के निवासियों में विलीन गई। शाहूओं ने बदायिन्द इन्हीं तथा विलीन जातियों अपना राजपूतों को धर्मिकुल से उत्पन्न कर दीक्षित किया। किन्तु कुछ राजपूत जाति यही की असम्भ जाति जैसे गोंड, भार हैं जिनमें सम्मिलित हो गई। कुछ ऐसे भी थे जो शाहूओं द्वारा स्थापित किए गए और नासात्कार में जनका निवाह सम्बन्ध जातियों में होते रहने से तथा जातियोंबद्ध हुएों के कारण अपना राजसत्ता के ह्रास में आ जाने से धर्मिकुलसत्ता कहलाय। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि इस भाँति के विविध जाति बनकर राजपूत कहलाये। यह निश्चित करना कठिन था है कि वास्तविक जातिधर्म कुल शील से हैं जिसकी हम राजपूत राजपूत अपना राजपूत कहते हैं। हम मतो व होते हुए भी यह ठीक है कि राजपूत शब्द राजपूत का अपभ्रंस है। राजपूतों में राजपूत शाहूओं से उत्पन्न है। उनकी धर्मिकुल जैसे पुत्र बनना राज्य बनाने कहाने, उस पर शासन करने आदि में धर्मिकुल है। किन्तु कपोत तक विदेशियों के सम्पर्क से और जातियों के समान इनमें भी विचार हुआ है। आदान प्रदान सम्मिलित प्रवृत्तिशीलता का धर्मिकुल बिगड़ है।

हम यह सातवीं शताब्दी के अन्त के भाग से ही उत्तरी भारत में राजपूत सत्ता का उत्पन्न हुआ। इस समय किसी एक का तो राज्य नहीं था। वेरा शारंग-शारंग राज्या में विभक्त था जो सब अपने-अपने स्वतन्त्र समझे थे। राजा बलराज भी उनमें एक था। धर्मों के आक्रमण पर भोजराज के बाद हर्ष-हर्ष हो गये। (भीमपाल का शेष देखिये)। इस समय

नागभट्ट के माई के पोते प्रतिहार राजा बत्सराय ने बर्मपान को मुन में पराजित किया किन्तु उन दोनों पर राजपूट कृष्ण के पुत्र ब्रह्म बाराबर (७८३-७९३ ई०) ने बढ़ाई की। साट घोर मानवा प्रान्तों के सिन् राजपूटों और प्रतिहारों के मध्य बढ़ाई रहती थी। ब्रह्म ने भरता राज्य तो बढ़ाया किन्तु जब ब्रह्म के दो बेटों स्वप्न और गोविन्द में बरेष्ट मुख हुआ तब उस प्रसन्न से साम उठाकर बत्सराय के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने जो राजस्थान की क्वालों में नाहबेब नाम से प्रसिद्ध है बक्रायुध और बर्मपान दोनों को हचकर कर्मीय पर (लगभग सन् ७९२-३ ई) धनिकार कर लिया। अब प्रतिहार बंध के शासक ही उत्तरी भारत के महान् धनिकाली सम्राट् थे। उनके पूर्व बर्मा बंध का प्रसिद्ध सम्राट् बक्रायुध कर्मीय का शासक था। प्रतिहार बंध का सर्व प्रथम मघस्वी एवं धनिकाली शासक नागभट्ट प्रथम था जो मंडोर का स्वामी था। इसने सन् ७२८ से ७४ तक राज्य किया। मंडोर पृथ्वीराज के समय में प्रतिहार बंध की राजधानी कहा जाता थी था। राठीको के पूर्व मंडोर मारवाड़ की राजधानी था। राठीकों ने मंडोरों के प्रतिहारों के यहां पर एक बार दरख भी की थी। राठीकों ने फिर बोरपुर को अपनी राजधानी बनाया जो उसके समीप ही है। भीनमाल और मंडोर दोनों ही मारवाड़ में हैं। मारवाड़ का पूर्व नाम गुजरात था और प्राकृतिक गुजरात तो पहले साट नाम से प्रसिद्ध था। ये प्रतिहार कुर्बर नहीं थे किन्तु गुर्बर भूमि के धनिकाली थे। अब कुर्बर प्रतिहार कहावे। इसी नागभट्ट ने बीता पूर्व में लिखा जा चुका है सिन्धु के (७९२ ई में) लेने के परचात् भीनमाल की ओर होने वाले प्राक्रमणों को रोक। कोई प्राकर्ष नहीं कि नाग बंध इसकी सक्ति को देखकर भीनमाल को छोड़कर बल्लभम धनहिल पाटल, बज्जाल आदि स्थानों में बस गये हों पर यह बात नागभट्ट प्रथम तक तो होनी हुई दिखलाई न थी क्योंकि इनमें कोई बर्मनस्य पाया नहीं गया। दोनों ने मिलकर परबों का मुकाबला डट कर किया हो। भीनमाल पर धनिकार नागभट्ट द्वितीय ने ही सन् ८१६ के पूर्व कर लिया होया। नागभट्ट प्रथम के परचात् उसका महीश कर्मुत्सव (कर्मुत्स) शासक हुआ। (७४ से ७९३ ई० तक) उसके परचात् उसके माई देवसिद्ध (देवराज) शासक हुए फिर उसके पुत्र बत्सराय (७७० से ८०० ई० तक)। बत्सराय ने कर्मीय लिया। नागभट्ट द्वितीय बत्सराय है परचात् कर्मीय के शासक हुए। नागभट्ट ने दिगिजय की ओर सन् ८१० में कर्मीय को अपनी राजधानी बनाया। इसने ८१० से ८२३ तक राज्य किया। फिर रामजीय शासक हुआ (८२३ से ८३३ ई० तक) परचात् उसके पुत्र मिहिरमोज ने राज्य किया। (इस पर मिहिरमोज का लेख देखिये)

कर्मीय की उपर्युक्त हस्तगत इस निष्कर्ष पर पहुँचने में अवश्य सहायक सिद्ध होती कि राजा प्रमत्त और भीनमाल बास प्रतिहार बंध में इसका अन्तर कैसे पड़ चुका? व्यासमुख एक प्राकर्ष का नाम था जो भीनमाल का शासक था। इस बात का प्रमाण ब्रह्मपुत्र ओडिषी भीनमाल वाले ने अपनी ब्रह्मपुत्र सिद्धांतके २० अध्याय पृष्ठ ७ में लिखते हैं "भीनमाल तिलके की व्यासमुखे नृपेयकपालात् पचासत् संवत्सेवर्षात्, पचाभिरात ब्रह्मपुत्र-सिद्धात् सज्जनमणिमयोत्तिष्ठति। मिहिरमोज इति निष्पुत्रमुत्तम-पुत्रम्।" इस लेख के अनुसार व्यासमुख एक सम्वत् १२० में थे। ब्रह्मपुत्र सिद्धांत की भूमिका में

भी सुभाकर त्रिवेदी प्रोफेसर कबीर कालेज ने सन् १९०२ में लिखा है कि अधिकांश विद्वानों के मत से "विष्णुपुत्र विष्णुपुत्र इस भाँति पुत्र बच के अन्त में होने से ब्रह्मपुत्र को वैश्य-कुलोत्पन्न बताया है जो रीवा नगर के व्याघ्र भट्टेश्वर के प्रमाण ज्योतिषी थे । (देसिये पण्डित हरिणी पृ० १९ १७) किन्तु इस समय योरोपीय देशों के विद्वानों ने अनुसन्धान करके यह निश्चित कर दिया है कि गुजरात देश के मध्य भाग में भीममात नामक ग्राम है वही ब्रह्मपुत्र का जन्मस्थान है । (देसिये इन्डियन एजट्क्वेरी माघ १७ पैज १९२ सुमार् १८८८) । इसने अपने को बल्लुङ्ग पण्डिताय की टीका मिलते समय "विस्मयात्मकाचार्य" विशेषण से विभूषित किया है । गुजरात देश के ज्योतिषी भी कहते हुए पाए हैं कि ब्रह्मपुत्र का जन्मस्थान विष्णुमात है जो आज भीममात कहलाता है जो गुजरात देश की सीमा (उत्तर) पर मानस रैव के दक्षिण भाग में बाबु पर्वत और सूरणी नदी के मध्य भाग में और उक्त पर्वत से बाबु कोण में पाँच कोहन के अन्तर विद्यमान है । (देसिये भीममात सम्प्रती लेख) ब्रह्मस्पुट विद्वान् के परीक्षामार्ग में पृथक् टीका पृ० १९० में "कुल घोषयमाचार्यस्येति" लेख से भीम आदि नीच जातिवर्गों का पुरोहित होने से भीममातकाचार्य इस विशेषण से प्रसिद्ध हुआ । इससे नीच कुलोत्पन्न प्रमाणित हुए । किसी देश का आचार्य कोई हुआ नहीं करता ऐसा प्रोफेसर सुभाकर भी का मत है । किन्तु किसी देश के राजा के जो पुरोहित या आमाता हों वे उक्त देश के ही गुप्त ध्यान पुरोहित, आमाता आदि कहलायेंगे । यह हो सकता है कि ब्रह्मस्पुट विद्वान् के लेखक भीममात के महापुत्र व्याघ्रपुत्र के राज-पुरोहित हों और इसी लिए आज भीममातकाचार्य विशेषण से प्रसिद्ध हुए हों । भीमों और मान आदि पहाड़ी जातिवर्गों की वहाँ विशेषता रही होगी यह वह देश विस्मयात्मक कहलाया । (भीममात का लेख पढ़ें) । इस समय साम्प्रतिक के लेखक गुजरात देश में खीष्ट एक ७२९-८४१ के मध्य में चारह बंशीय राजा थे तथा तीन देवी नामों के राजा के लेखक अनुसार उनकी राजधानी भीममात थी । चारह बंशीय ही ब्रह्मपुत्र द्वारा कहे हुए चापबन्धीय राजा इतिहासकारों के अनुसार थे । प्रोफेसर महोदय लिखते हैं कि चापबन्धीय व्याघ्रपुत्रनाम वाले कोई राजा सिन्धु (बखाब) देश में हुए हैं (दक्षिण आदिवासीकृत सर्वे ऑफ इन्डिया रिपोर्ट बालूम १४ पैज ६१ मुनिठ) चापबन्धीयानी मुदा सिन्धु (बखाब) देश के मुदियाना नामक स्थान में प्राप्त हुई हैं और जहाँ के आदिवासीवार काई बिहान् बखाब नगर में वर्तमान अलमनगर के पास गया । (देसिये अलमनगर का भारत डा० ई सी अण्डर इस बालूम २ पृष्ठ १२) । इस अन्तर्गत भी ब्रह्मपुत्र का जन्म सिन्धु देश में ही अधिक प्रसिद्ध है । प्रायः जमीनी की हुई लंब घाट साराणो से ज्योतिषी नीच अपने पञ्चम बनाते हैं । इसकी वजह हुई विद्वान् जन्म की एक प्रति कारी के राजनीय पाठनाम से और इसी डा० भीम महोदय से और सीतरी मपोप्पा बरेल के प्रधान ज्योतिषी भी बख्शत सर्मा से प्रोफेसर सुभाकर जी ने प्राप्त की । यह भीममात विशेषण लिए हमने पूरे में भी लिखा है गुजरात में था । यह गुजरात भूमि की एक प्रतिहार गुजरात कहलाये । इसी घटी में उत्तर भारत में गुजरात जाति प्रकाशक प्रवृत्त हो उठी । बखाब से गुजरात और गुजरातनाम जिसे उनके राज्य का स्वरूप करते हैं । दक्षिणो बखाब में उनकी एक बड़ी राजधानी विद्यमान थी । उनका एक और छोटा या राज्य

नागमट्ट के भाई के पोते प्रतिहार राजा बरसराम ने बर्मपान को मुन में पराजित किया, किन्तु उन लोगों पर राहूहून् कृष्ण के पुत्र भूब चारावर्ष (७८१-७८१ ई०) ने बढ़ाई थी। बाट और मासका प्राणों के लिए राहूहूटों और प्रतिहारों के मध्य लड़ाई रहती थी। भूब ने अपना राज्य तो बढ़ाया किन्तु जब भूब के दो बेटों स्वप्न और मोक्षिन्द में परस्पर युद्ध हुआ तब उस घबराहट से आगे उठकर बरसराम के पुत्र नागमट्ट द्वितीय ने जो राजस्थान की स्थापना में नाहूदेव नाम से प्रसिद्ध है चक्रवर्ति और बर्मपान दोनों को हराकर कर्मीज पर (जयमय सन् ७१२ ई०) अधिकार कर लिया। अब प्रतिहार बंस के शासक ही उत्तरी भारत के महान् सन्निवर्षासी सम्राट् थे। उनके पूर्व बर्मा बंस का अन्तिम सम्राट् ब्रह्मायुध कर्मीज का शासक था। प्रतिहार बंस का सर्व प्रथम बरसस्वी एवं सन्निवर्षासी शासक नागमट्ट प्रथम था जो मंडौर का स्वामी था। इसने सन् ७२८ से ७४ तक राज्य किया। मंडौर पृथ्वीराज के समय में प्रतिहार बंस की राजधानी कहा जाता थी था। राठौड़ों के पूर्व मंडौर मारवाड़ की राजधानी था। राठौड़ों ने मंडौर के प्रतिहारों के यहाँ पर एक बार सरण भी ली थी। राठौड़ों ने फिर जोधपुर को अपनी राजधानी बनाया जो उसके समीप ही है। भीनमाल और मंडौर दोनों ही मारवाड़ में हैं। मारवाड़ का पूर्व नाम गुजरात था और आर्यक गुजरात तो पहले बाट नाम से प्रसिद्ध था। वे प्रतिहार गुजरात नहीं वे किन्तु गुजरात भूमि के अधिपति थे। यह गुजरात प्रतिहार कहा जाये। इसी नागमट्ट ने बर्मा पूर्व में सिखा या बुका है सिन्ध के (७१२ ई० में) लेने के पश्चात् भीनमाल की ओर होने वाले आक्रमणों को रोका। कोई आश्चर्य नहीं कि बाप बंस इसकी सन्निवर्षासी को देखकर भीनमाल को छोड़कर बरसन्तमड़ अनहिल पाटण बरवाण आदि स्थानों में बस गये हों पर यह बात नागमट्ट प्रथम तक तो होती हुई बिलसाई न थी क्योंकि इनमें कोई भीनमाल पाया नहीं गया। दोनों ने मिलकर बरसन्तमड़ का मुकाबला बट कर दिया। भीनमाल पर अधिकार नागमट्ट द्वितीय ने ही सन् ८११ के पूर्व कर लिया होता। नागमट्ट प्रथम के पश्चात् उसका भतीजा बकुत्स (कनकुत्स) शासक हुआ। (७४ से ७५१ ई० तक) उसके पश्चात् उसके भाई देवसन्निवर्षा (देवराज) शासक हुए फिर उसके पुत्र बरसराम (७७० से ८०० ई० तक)। बरसराम ने कर्मीज लिया। नागमट्ट द्वितीय बरसराम के पश्चात् कर्मीज के शासक हुए। नागमट्ट ने विजिजय की ओर सन् ८१० में कर्मीज को अपनी राजधानी बनाया। इसने ८० से ८२१ तक राज्य किया। फिर राम द्वि शासक हुआ (८२१ से ८५१ ई० तक) उसके पश्चात् उसके पुत्र मिहिरभोज ने राज्य किया। (इस पर मिहिरभोज का लेख देखिये)

कर्मीज की सन्निवर्षासी हस्तक्षेप इस निष्कर्ष पर पहुँचने में बरसन्तमड़ सहायक सिद्ध होगी कि राजा बर्मपान और भीनमाल वाले प्रतिहार बंस में इतना अन्तर कैसे पड़ चुका? व्याघ्रमुख एक बापबंस का नाम था जो भीनमाल का शासक था। इस बात का प्रमाण ब्रह्मपुत्र उपोत्तिपो भीनमाल वाले ने अपनी ब्रह्मपुत्र सिद्धांतके २४ अध्याय पृष्ठ ७ में लिखते हैं "भी बापबंस तिलक भी व्याघ्रमुख नृपसकन्पासात् पचासत् संयुक्तवर्षात् पचाभिरतीर्त ब्रह्मपुत्र सिद्धांत सज्जनपतिः ७५५-५५६-५५७-५५८-५५९-५६०-५६१-५६२-५६३-५६४-५६५-५६६-५६७-५६८-५६९-५७०-५७१-५७२-५७३-५७४-५७५-५७६-५७७-५७८-५७९-५८०-५८१-५८२-५८३-५८४-५८५-५८६-५८७-५८८-५८९-५९०-५९१-५९२-५९३-५९४-५९५-५९६-५९७-५९८-५९९-६००-६०१-६०२-६०३-६०४-६०५-६०६-६०७-६०८-६०९-६१०-६११-६१२-६१३-६१४-६१५-६१६-६१७-६१८-६१९-६२०-६२१-६२२-६२३-६२४-६२५-६२६-६२७-६२८-६२९-६३०-६३१-६३२-६३३-६३४-६३५-६३६-६३७-६३८-६३९-६४०-६४१-६४२-६४३-६४४-६४५-६४६-६४७-६४८-६४९-६५०-६५१-६५२-६५३-६५४-६५५-६५६-६५७-६५८-६५९-६६०-६६१-६६२-६६३-६६४-६६५-६६६-६६७-६६८-६६९-६७०-६७१-६७२-६७३-६७४-६७५-६७६-६७७-६७८-६७९-६८०-६८१-६८२-६८३-६८४-६८५-६८६-६८७-६८८-६८९-६९०-६९१-६९२-६९३-६९४-६९५-६९६-६९७-६९८-६९९-७००-७०१-७०२-७०३-७०४-७०५-७०६-७०७-७०८-७०९-७१०-७११-७१२-७१३-७१४-७१५-७१६-७१७-७१८-७१९-७२०-७२१-७२२-७२३-७२४-७२५-७२६-७२७-७२८-७२९-७३०-७३१-७३२-७३३-७३४-७३५-७३६-७३७-७३८-७३९-७४०-७४१-७४२-७४३-७४४-७४५-७४६-७४७-७४८-७४९-७५०-७५१-७५२-७५३-७५४-७५५-७५६-७५७-७५८-७५९-७६०-७६१-७६२-७६३-७६४-७६५-७६६-७६७-७६८-७६९-७७०-७७१-७७२-७७३-७७४-७७५-७७६-७७७-७७८-७७९-७८०-७८१-७८२-७८३-७८४-७८५-७८६-७८७-७८८-७८९-७९०-७९१-७९२-७९३-७९४-७९५-७९६-७९७-७९८-७९९-८००-८०१-८०२-८०३-८०४-८०५-८०६-८०७-८०८-८०९-८१०-८११-८१२-८१३-८१४-८१५-८१६-८१७-८१८-८१९-८२०-८२१-८२२-८२३-८२४-८२५-८२६-८२७-८२८-८२९-८३०-८३१-८३२-८३३-८३४-८३५-८३६-८३७-८३८-८३९-८४०-८४१-८४२-८४३-८४४-८४५-८४६-८४७-८४८-८४९-८५०-८५१-८५२-८५३-८५४-८५५-८५६-८५७-८५८-८५९-८६०-८६१-८६२-८६३-८६४-८६५-८६६-८६७-८६८-८६९-८७०-८७१-८७२-८७३-८७४-८७५-८७६-८७७-८७८-८७९-८८०-८८१-८८२-८८३-८८४-८८५-८८६-८८७-८८८-८८९-८९०-८९१-८९२-८९३-८९४-८९५-८९६-८९७-८९८-८९९-९००-९०१-९०२-९०३-९०४-९०५-९०६-९०७-९०८-९०९-९१०-९११-९१२-९१३-९१४-९१५-९१६-९१७-९१८-९१९-९२०-९२१-९२२-९२३-९२४-९२५-९२६-९२७-९२८-९२९-९३०-९३१-९३२-९३३-९३४-९३५-९३६-९३७-९३८-९३९-९४०-९४१-९४२-९४३-९४४-९४५-९४६-९४७-९४८-९४९-९५०-९५१-९५२-९५३-९५४-९५५-९५६-९५७-९५८-९५९-९६०-९६१-९६२-९६३-९६४-९६५-९६६-९६७-९६८-९६९-९७०-९७१-९७२-९७३-९७४-९७५-९७६-९७७-९७८-९७९-९८०-९८१-९८२-९८३-९८४-९८५-९८६-९८७-९८८-९८९-९९०-९९१-९९२-९९३-९९४-९९५-९९६-९९७-९९८-९९९-१०००-१००१-१००२-१००३-१००४-१००५-१००६-१००७-१००८-१००९-१०१०-१०११-१०१२-१०१३-१०१४-१०१५-१०१६-१०१७-१०१८-१०१९-१०२०-१०२१-१०२२-१०२३-१०२४-१०२५-१०२६-१०२७-१०२८-१०२९-१०३०-१०३१-१०३२-१०३३-१०३४-१०३५-१०३६-१०३७-१०३८-१०३९-१०४०-१०४१-१०४२-१०४३-१०४४-१०४५-१०४६-१०४७-१०४८-१०४९-१०५०-१०५१-१०५२-१०५३-१०५४-१०५५-१०५६-१०५७-१०५८-१०५९-१०६०-१०६१-१०६२-१०६३-१०६४-१०६५-१०६६-१०६७-१०६८-१०६९-१०७०-१०७१-१०७२-१०७३-१०७४-१०७५-१०७६-१०७७-१०७८-१०७९-१०८०-१०८१-१०८२-१०८३-१०८४-१०८५-१०८६-१०८७-१०८८-१०८९-१०९०-१०९१-१०९२-१०९३-१०९४-१०९५-१०९६-१०९७-१०९८-१०९९-११००-११०१-११०२-११०३-११०४-११०५-११०६-११०७-११०८-११०९-१११०-११११-१११२-१११३-१११४-१११५-१११६-१११७-१११८-१११९-११२०-११२१-११२२-११२३-११२४-११२५-११२६-११२७-११२८-११२९-११३०-११३१-११३२-११३३-११३४-११३५-११३६-११३७-११३८-११३९-११४०-११४१-११४२-११४३-११४४-११४५-११४६-११४७-११४८-११४९-११५०-११५१-११५२-११५३-११५४-११५५-११५६-११५७-११५८-११५९-११६०-११६१-११६२-११६३-११६४-११६५-११६६-११६७-११६८-११६९-११७०-११७१-११७२-११७३-११७४-११७५-११७६-११७७-११७८-११७९-११८०-११८१-११८२-११८३-११८४-११८५-११८६-११८७-११८८-११८९-११९०-११९१-११९२-११९३-११९४-११९५-११९६-११९७-११९८-११९९-१२००-१२०१-१२०२-१२०३-१२०४-१२०५-१२०६-१२०७-१२०८-१२०९-१२१०-१२११-१२१२-१२१३-१२१४-१२१५-१२१६-१२१७-१२१८-१२१९-१२२०-१२२१-१२२२-१२२३-१२२४-१२२५-१२२६-१२२७-१२२८-१२२९-१२३०-१२३१-१२३२-१२३३-१२३४-१२३५-१२३६-१२३७-१२३८-१२३९-१२४०-१२४१-१२४२-१२४३-१२४४-१२४५-१२४६-१२४७-१२४८-१२४९-१२५०-१२५१-१२५२-१२५३-१२५४-१२५५-१२५६-१२५७-१२५८-१२५९-१२६०-१२६१-१२६२-१२६३-१२६४-१२६५-१२६६-१२६७-१२६८-१२६९-१२७०-१२७१-१२७२-१२७३-१२७४-१२७५-१२७६-१२७७-१२७८-१२७९-१२८०-१२८१-१२८२-१२८३-१२८४-१२८५-१२८६-१२८७-१२८८-१२८९-१२९०-१२९१-१२९२-१२९३-१२९४-१२९५-१२९६-१२९७-१२९८-१२९९-१३००-१३०१-१३०२-१३०३-१३०४-१३०५-१३०६-१३०७-१३०८-१३०९-१३१०-१३११-१३१२-१३१३-१३१४-१३१५-१३१६-१३१७-१३१८-१३१९-१३२०-१३२१-१३२२-१३२३-१३२४-१३२५-१३२६-१३२७-१३२८-१३२९-१३३०-१३३१-१३३२-१३३३-१३३४-१३३५-१३३६-१३३७-१३३८-१३३९-१३४०-१३४१-१३४२-१३४३-१३४४-१३४५-१३४६-१३४७-१३४८-१३४९-१३५०-१३५१-१३५२-१३५३-१३५४-१३५५-१३५६-१३५७-१३५८-१३५९-१३६०-१३६१-१३६२-१३६३-१३६४-१३६५-१३६६-१३६७-१३६८-१३६९-१३७०-१३७१-१३७२-१३७३-१३७४-१३७५-१३७६-१३७७-१३७८-१३७९-१३८०-१३८१-१३८२-१३८३-१३८४-१३८५-१३८६-१३८७-१३८८-१३८९-१३९०-१३९१-१३९२-१३९३-१३९४-१३९५-१३९६-१३९७-१३९८-१३९९-१४००-१४०१-१४०२-१४०३-१४०४-१४०५-१४०६-१४०७-१४०८-१४०९-१४१०-१४११-१४१२-१४१३-१४१४-१४१५-१४१६-१४१७-१४१८-१४१९-१४२०-१४२१-१४२२-१४२३-१४२४-१४२५-१४२६-१४२७-१४२८-१४२९-१४३०-१४३१-१४३२-१४३३-१४३४-१४३५-१४३६-१४३७-१४३८-१४३९-१४४०-१४४१-१४४२-१४४३-१४४४-१४४५-१४४६-१४४७-१४४८-१४४९-१४५०-१४५१-१४५२-१४५३-१४५४-१४५५-१४५६-१४५७-१४५८-१४५९-१४६०-१४६१-१४६२-१४६३-१४६४-१४६५-१४६६-१४६७-१४६८-१४६९-१४७०-१४७१-१४७२-१४७३-१४७४-१४७५-१४७६-१४७७-१४७८-१४७९-१४८०-१४८१-१४८२-१४८३-१४८४-१४८५-१४८६-१४८७-१४८८-१४८९-१४९०-१४९१-१४९२-१४९३-१४९४-१४९५-१४९६-१४९७-१४९८-१४९९-१५००-१५०१-१५०२-१५०३-१५०४-१५०५-१५०६-१५०७-१५०८-१५०९-१५१०-१५११-१५१२-१५१३-१५१४-१५१५-१५१६-१५१७-१५१८-१५१९-१५२०-१५२१-१५२२-१५२३-१५२४-१५२५-१५२६-१५२७-१५२८-१५२९-१५३०-१५३१-१५३२-१५३३-१५३४-१५३५-१५३६-१५३७-१५३८-१५३९-१५४०-१५४१-१५४२-१५४३-१५४४-१५४५-१५४६-१५४७-१५४८-१५४९-१५५०-१५५१-१५५२-१५५३-१५५४-१५५५-१५५६-१५५७-१५५८-१५५९-१५६०-१५६१-१५६२-१५६३-१५६४-१५६५-१५६६-१५६७-१५६८-१५६९-१५७०-१५७१-१५७२-१५७३-१५७४-१५७५-१५७६-१५७७-१५७८-१५७९-१५८०-१५८१-१५८२-१५८३-१५८४-१५८५-१५८६-१५८७-१५८८-१५८९-१५९०-१५९१-१५९२-१५९३-१५९४-१५९५-१५९६-१५९७-१५९८-१५९९-१६००-१६०१-१६०२-१६०३-१६०४-१६०५-१६०६-१६०७-१६०८-१६०९-१६१०-१६११-१६१२-१६१३-१६१४-१६१५-१६१६-१६१७-१६१८-१६१९-१६२०-१६२१-१६२२-१६२३-१६२४-१६२५-१६२६-१६२७-१६२८-१६२९-१६३०-१६३१-१६३२-१६३३-१६३४-१६३५-१६३६-१६३७-१६३८-१६३९-१६४०-१६४१-१६४२-१६४३-१६४४-१६४५-१६४६-१६४७-१६४८-१६४९-१६५०-१६५१-१६५२-१६५३-१६५४-१६५५-१६५६-१६५७-१६५८-१६५९-१६६०-१६६१-१६६२-१६६३-१६६४-१६६५-१६६६-१६६७-१६६८-१६६९-१६७०-१६७१-१६७२-१६७३-१६७४-१६७५-१६७६-१६७७-१६७८-१६७९-१६८०-१६८१-१६८२-१६८३-१६८४-१६८५-१६८६-१६८७-१६८८-१६८९-१६९०-१६९१-१६९२-१६९३-१६९४-१६९५-१६९६-१६९७-१६९८-१६९९-१७००-१७०१-१७०२-१७०३-१७०४-१७०५-१७०६-१७०७-१७०८-१७०९-१७१०-१७११-१७१२-१७१३-१७१४-१७१५-१७१६-१७१७-१७१८-१७१९-१७२०-१७२१-१७२२-१७२३-१७२४-१७२५-१७२६-१७२७-१७२८-१७२९-१७३०-१७३१-१७३२-१७३३-१७३४-१७३५-१७३६-१७३७-१७३८-१७३९-१७४०-१७४१-१७४२-१७४३-१७४४-१७४५-१७४६-१७४७-१७४८-१७४९-१७५०-१७५१-१७५२-१७५३-१७५४-१७५५-१७५६-१७५७-१७५८-१७५९-१७६०-१७६१-१७६२-१७६३-१७६४-१७६५-१७६६-१७६७-१७६८-१७६९-१७७०-१७७१-१७७२-१७७३-१७७४-१७७५-१७७६-१७७७-१७७८-१७७९-१७८०-१७८१-१७८२-१७८३-१७८४-१७८५-१७८६-१७८७-१७८८-१७८९-१७९०-१७९१-१७९२-१७९३-१७९४-१७९५-१७९६-१७९७-१७९८-१७९९-१८००-१८०१-१८०२-१८०३-१८०४-१८०५-१८०६-१८०७-१८०८-१८०९-१८१०-१८११-१८१२-१८१३-१८१४-१८१५-१८१६-१८१७-१८१८-१८१९-१८२०-१८२१-१८२२-१८२३-१८२४-१८२५-१८२६-१८२७-१८२८-१८२९-१८३०-१८३१-१८३२-१८३३-१८३४-१८३५-१८३६-१८३७-१८३८-१८३९-१८४०-१८४१-१८४२-१८४३-१८४४-१८४५-१८४६-१८४७-१८४८-१८४९-१८५०-१८५१-१८५२-१८५३-१८५४-१८५५-१८५६-१८५७-१८५८-१८५९-१८६०-१८६१-१८६२-१८६३-१८६४-१८६५-१८६६-१८६७-१८६८-१८६९-१८७०-१८७१-१८७२-१८७३-१८७४-१८७५-१८७६-१८७७-१८७८-१८

श्री सुपाकर डिप्टी प्रोफेसर मनीन्दा कालेज ने सन् १९०२ में लिखा है कि धर्मिकोप विद्वानों के मत से "दिप्लोमेट जिप्लोमेट इस भाँति गुप्त पत्र के अन्त में होने से बहामुत्त को बैरव कुसोलन बताते हैं जो सीमा नगर के व्याघ्र मष्टेस्वर के प्रधान ज्योतिषी थे। (देखिये मणक टॉपिली पृ० १६ १७) किन्तु इस समय योरोपीय देशों के विद्वानों ने अनुसन्धान करके यह निश्चित कर दिया है कि नुर्बेर देश के मध्य भाग में भीनमाल नामक ग्राम है वही बहामुत्त का जन्मस्थान है। (देखिये इन्डियन एन्टिक्वेरी भाग १७ पेज १९९ जुलाई १८८८)। इसमें अपने को बरलुछत जम्बुजाय की टीका लिखते समय "भित्तमालकाचार्य" विशेषण से विवक्षित किया है। नुर्बेर देश के ज्योतिषी भी कहते हुए पाए हैं कि बहामुत्त का जन्मस्थान भित्तमाल है जो प्रायः भीनमाल कहलाता है जो नुर्बेर देश की सीमा (उत्तर) पर मानव देश के दक्षिण भाग में घाघ्र पर्वत और सुली नदी के मध्य भाग में और उस पर्वत से वायु कोस में पर्वत योजन के अन्तर विद्यमान है। (देखिये भीनमाल खम्बानी लेख) बहामुत्त विद्वान्त के परीक्षामय में पृथक् टीका पृ० १६० में "कुल धोमेयमाचार्यस्वेति" लेख से भीनमाल नीच जातिवर्ग का पुरोहित होने से भीनमालकाचार्य इस विशेषण से प्रसिद्ध हुआ। इससे भीन कुसोलन प्रमाणित हुए। किसी देश का धाचार्य कोई हुआ नहीं करता ऐसा प्रोफेसर सुभाकर भी का मत है। किन्तु किसी देश के राजा के जो पुरोहित या वामन्ता होते वे उस देश के ही मुख ध्यास पुरोहित, वामन्ता धारि कहलायेंगे। मत हो सकता है कि बहामुत्त विद्वान्त के लेखक भीनमाल के महाराज व्यामनुष के राज-पुरोहित हैं और इसी लिए प्रायः भित्तमालकाचार्य विशेषण से प्रसिद्ध हुए हों। भीनों और मान धारि बहादी जातिवर्ग की वही विशेषता रही होगी यह देश भित्तमालक कहलाया। (भीनमाल का लेख पढ़ें)। इस समय साम्प्रदायिक के लक्ष से नुर्बेर देश में ख्रीष्ट शक ७२९ ८४१ के मध्य में जावड़ बंधीय राजा थे तथा भीन देशी यात्री लू गराय के लेख के अनुसार उनकी राजधानी भीनमाल की। जावड़ बंधीय ही बहामुत्त द्वारा कहे हुए जावड़धीय राजा इतिहासकारों के अनुसार न। प्रोफेसर महोदय लिखते हैं कि जावड़धीय व्यामनुषनाम वाले कोई राजा सिन्धु (पंजाब) देश में हुए हैं (देखिये मानिसाधिकृत सर्वे प्रांत इन्डिया रिपोर्ट वास्सून १४ पेज ६२ मुनिठ) जावड़धामानी मुश सिन्धु (पंजाब) देश के मुखियाता नायक स्वाम न शान्त हुई है और बन्ही के घाटेनुसार काई विद्वान् बबराज नगर में जमोदर घातमन्तर के पास बना। (देखिये धनवन्नी का भारत डा० ई. टी. सपाठ ह्व वास्सून २ पृष्ठ १५)। इस समय भी बहामुत्त का राज सिन्धु देश में ही धार्मिक प्रसिद्ध है। प्रायः वर्गीकी की हुई जाँच प्रायः सारणी से ज्योतिषी जोप अपने पचाव बताते हैं। इससे बताई हुई विद्वान्त राज की एक प्रति कापी के राजकीय पाटनालय से और दूसरी डा० बीबी बहोदय से और टीन्टी मपोप्पा नरेय के प्रधान ज्योतिषी श्री मन्नरत धर्मा से प्रोफेसर सुभाकर का न जानें। यह भीनमाल विशेषण लिए हमने पूरा में भी लिखा है मुखाल में था। यह नुर्बेर देश के प्रायः प्रसिद्ध नुर्बेर कहलाये। इसी घटी में उत्तर भारत में नुर्बेर बर्हि दासक मन्तर उठी। बंशाव में मुखाल और नुर्बेरामा जिसे जवड़ राज्य वास्तव्य बर्हि है; दक्षिण भारत में कभी एक वही राजधानी विद्यमान की। उन्हा दूध और दूध दूध

मल्ल में भी था। उनके नाम से इस देश का नाम भी पुर्बरा (पुर्बरात) पड़ गया। पुर्बरा में जब मारवाड़ की भी गलना थी। जब पूछा जाय तो यह नाम इसी युग में पड़ा। हर्ष पुरिच में पुर्बरा पञ्च प्राया है। पुर्बरा का यह बंध अपनी उन्नति और सक्ति के सिद्ध पर मिहिराज (५३१ ई० ८८० ई०) और महेंद्रपाल के समय पहुँचा। इसके राज्य का अधिकार मान पंजाब और राजपूताना पञ्च तथा मध्यभाग तक विस्तृत था। कभीक प्रसिद्धाओं के समय में फिर से उन्नति पर था। महेंद्रपाल के उत्तराधिकारी के समय में प्रसिद्धाओं की सक्ति गढ़ हो गई। राजपूतों तथा बंगाल के पालों के आक्रमण हुए। जामुन्यों बरेल्लों परमारों तथा चौहानों आदि पड़ोसी राजवंशों ने पुर्बरा प्रसिद्धा साम्राज्य के बड़े भाग को हर्ष सिद्धा। अन्त में महेंद्रपाल के पौत्र राज्यपाल के शासनकाल में महमूद गजनवी ने भी बनी खुशी प्रसिद्धा उठा तो भी भी आक्रमणों से गढ़ अढ़ कर दिया। प्रसिद्धा बंध का इस भाँति ह्रास हुआ। जब ११वीं शताब्दी के अन्त में कभीक पर गहरवारवंश के एक शासक अग्रदेव ने अपने बंध का प्रचुर स्थिर किया। गहरवार बंध पठौर बंध का नाम से प्रसिद्ध है। जोधपुर के राजा ने जोषिठ किया कि वह गहरवार बंध के अन्तिम राजा जयचन्द्र से सम्बन्धित हैं। अस्तु, अग्रदेव के उत्तराधिकारी गोविन्दचन्द्र तथा विजयचन्द्र शासक हुए। फिर इतिहास प्रसिद्ध जयचन्द्र शासक हुआ जो दिल्ली के प्रसिद्ध चौहान नरेश सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन था। जयचन्द्र ने देवगिरि के पावकपञ्च जलहिमवाड़ा के सिद्धराज तथा मुसलमान सहाबुद्दीन को हराया किन्तु यह मिथ्या है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में कभीक के राजा जयचन्द्र का नाम स्मरणीय है। क्योंकि इसने संस्कृत के प्रसिद्ध कवि जयचन्द्र की हर्ष को धाम्य दिया था। कभीक की भी कृति जयचन्द्र के समय में हुई। महाकवि मान सन् ११६१ ई० से आये किसी भी रूप में नहीं आते। अतः कभीक के इस विवरण को यहीं पर समाप्त करना उचित है।

पुर्बरा (मारवाड़) मुहलीव नैणसी की अन्त नाम के प्रथम अनुवादक रामराज्य के प्रसिद्धा
 हुगड़, काशीनागरी प्रचारिणी समा के पुष्ठ २२८ के नीचे नोट में दिया गया है कि पहले में पहियार राजा अपने को अभिषेची नहीं मानते थे। जोधपुर राज्य के अटियाला ग्राम में भित्ति हुए पहियार राजा कन्क (कन्क) और उसके पुत्र बाउक के सम्बन्ध ८६८ व ११८ विक्रमी के शकों में पहियारों की उत्पत्ति अदि हरिरचन्द्र की सहाणी पत्नी अन्ना से बतलाई है। अन्ना के पुत्र जयचन्द्र कन्क रजिस्त और बद् ने अपने बाहुबल से माँझपुर का पड़ लेकर वहाँ अपनी राजधानी स्थापित की।

कभीक के पहियार महाराज मोह देव (स. ई. ० से १४० विक्रमी) के लेखमें दिया है कि कृत्तुराज बंध में राज हुए जिनका छोटा भाई सोमिनि (जयमण) प्रसिद्धा था। उसका बंध प्रसिद्धा नाम से प्रसिद्ध है। अदि हरिरचन्द्र की ब्राह्मण स्त्री से ब्राह्मण प्रसिद्धा हुए। मारवाड़ के पुष्करणी ब्राह्मणों में प्रसिद्धा गोपी ब्राह्मण मिलते हैं।

प्रसिद्धा का मुक्त स्थान भीममाल (मारवाड़) और माँझपुर (मंडोर) था। भीम माल के पहियार राजाओं ने विजय की नहीं पतापदी में कभीक के महाराज को भीठा और दो ही वर्ष से अधिक उत्तरी भारत के बड़े विभाग पर शासन दिया।

मंदोर के प्रतिहार राजा बबर राजिब नरमट्ट राजिब का पुत्र, मागमट्ट या माहट्ट से । पहियार राजा बाजक के सेल में बसका (माहट्टका) राजस्याम मेवर्तक (मेवठा) में होना सिद्ध है । सम्भव है कि कभीय का महाराज्य भीममाम के पहियारों को मिला तथा उन्होंने मंदोर अपने मेवठेवासे माहट्टों को दे दिया जो जिससे फिर मेवठा और मंदोरका राजा एक हो गया हों ।

तात—मागमट्ट का पुत्र अपने छोटे भाई को राज देकर मांडव्य जपि के सामम में बाकर उपस्था करने लगा ।

भोज—तात का छोटा भाई पुत्र यमोवर्धन राजा हुआ । यमोवर्धन के बरबात् बन्धुक ।

शिशुक—यह बन्धुक का पुत्र है जिसने बल्लमंडल के स्वामी नट्टिक देवराज को (जेंठनमेर का भाटी राजा बिलम की नभमी छठी में था) जीतकर बसका ध्व छीना और बत्ता तीर्थ में नगर बनाकर पुष्करिली बादि बनवाये ।

भोदे—शिशुक का पुत्र अन्तिम बरबात् में स्थायी होकर नया लट पर बज्ज करने लगा गया ।

मिल्लारिय—भोदे के पुत्र ने मद्गबिरि (मुयेर) के पास बोटो पर बिबब पाई । यह व्याप, व्याकरण और ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता कमा-कुलम और नामी था । पहियार की राणी पावनी से बाजक और बत्तरी दुर्जन देवी से कबकुल नामी पुत्र हुए ।

बाजक—सं० ८२२ में राज्य करता था । कबकुल ने बरबात् (मारबात्) बल्लमंडल (जेंठनमेर राज्य) समूची व पुत्रराज के लोगों की प्रीति प्राप्त सम्पादन की । पहियारों में एक जन मन्दिर बनवाकर पनेबर मन्दिरवालों को खोल दिया । कबकुल के पीछे मंदोर के पहियारों का कोई प्रामाणिक वृत्तान्त नहीं प्राप्त होता है ।

कभीय के पहियार राजाओं में बल्लराज बड़ा प्रतापी हुआ । जैन हरिवंश पुण्य में बल्लराज का समय एक सम्बत् ७०३ दिया है । बल्लराज मागमट्ट के छोटे भाई देवराज का पुत्र था । बल्लराज की सुखी देवी के मागमट्ट हुआ ।

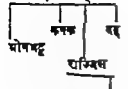
मागमट्ट—कभीय का महाराज्य प्राप्त किया । साम्र, संवत् विदर्भ बलिम और बवाल के राजाओं को जीता । बालल, बालल, बिराल, बुरक, बल्ल मलय धारि देशों के बरती गई लिये । संभव है मागमलोक यह मागमट्ट है जो सम्बत् ७७२ में था । बसका पुत्र उपमत्त हुआ ।

रायबट्ट—यह मूर्ख का अपासक था । इसकी राणी मया देवी से जोड़ हुए ।

भोजदेव—इनका दरार धारिकराह व मिहिर है । राजपुताना बुजराज बाटियाबाह, बालवा, मय हिन्दुराज और पीठ धारि इनके अधीन थे । (मधिक के लिए" मिहिर भोज पंत को देखिये) ।

भी बन्धेयामात माट्टियमामात मुंघी 'की ज्योरी रीट पुंर देय' माय तीन में जो बंवावली है दे रहे है यह निम्नलिखित है—

१२० ए० सी० हरिसचन



१० ए० सी० नर बह

नायमट्ट

१४१ ए० सी० ताव

बोव

मछोबहन

७१७ नाममट्ट प्रथम (राजधानी भिन्नमान
खीर कलीब)

कनक या कनुत्स

देवराज (राजधानी बालौर)

सन् ७८१ बत्तराज (राजधानी कलीब भिन्न
मान तथा गुजरात का राजा था)

सन् ७९२ से ८१४ नायमट्ट द्वितीय

सन् ८१४ रामराज

सन् ८१४ से ८८८ मिहिरचोक

जैन परम्पराको इतिहास नाम १ में त्रिपुटी महाराज ने इन्हीं प्रतिहारों के सम्बन्ध में लिखा है। मछोबहन की बात यहाँ आकर स्पष्ट हो जाती है और बोव के विषय में भी कर्पूरच बर्तनों के अनुसार सम्बन्ध में नहीं भटकना पड़ता।

लेखिये—

पृ० ११४ मौर्य प्रतिहार प्रतिहार राजावली

मौर्यवंश मौर्य प्रतिहार बंस नीकल्या है। वे प्रतिहार बंस विष्णुजी घाठवीं वहीं थी। विष्णुमान घने कनोबनी पीड़ीए बाम्यो है। तैमां बणा राजवी जैनबमी के जैनबमं प्रेमी बवा है, तैमां राजवली नीके मुख है। १ नापावसोक के नायमट्ट वे विष्णुमानको राज हुतो। तैले वि० सं० ८११ जैनबम मां पाटण भइय साट घने मानवा मुची पोतानी बणा बर्तनी हुती। (गुजरातना इतिहासिक लेखो—भा० १ नं० २११ प)

२ कनुत्स—तै नामसोकको महीने हुतो। तैमां कनकु घने कानुत्स नापो भले है।

३ देवराज—तै कनुत्सको नानो माई हुतो तै परम भाववत हुतो।

४ बत्तराज—भा राजा बहु पराक्रमी हुतो। तैमां समय मां बाने ९९९ मां बभोर मां हरिसचन ना भा उचोतन सूरिमे 'कुबसयमासा बप्पु' नी रचना करी है तैम ना विष्णुचचार्य जिनसेने एक सम्मत् ७०१ मां 'हरिचंपुराण' बनाम्यो है। तैमां तैपो बणावे तै के घाने उत्तर दिशामां इन्द्रावुडनूं राज्य है। पूब मां माचन राज नूं राज्य है। इतिहास मां इच्छुना पूब कलिबस्मान घाने धनु नु राज्य है। घने पश्चिम मां बत्तराज नूं राज्य है। भा समये 'हरिचंपुराण' बनाम्युं है। बत्तराज वि० सं० ८८ मां विष्णुमान तथा गुजरात नो राजा हुतो। (नाम १२० सर्ग के पश्चिम इलोक में इसी बत्तराज की बड़ाने की बात कर रहे हैं। श्री बत्तराज की इस रूप में लिखने में स्पष्ट है कि नाम उसी भूमि के निवासी थे।)

२. यक्षोवर्मा—वे ना समये प्रतिहार बंध ना हाथमांभी मुजरात छूटी यम् हुत् । घटने ठेठे कभीज कई स्थाना राजा बक्रायुज मे भारी कभीज मां ब कायम मे माटे पीतानी मही स्थापी । सा यटगा बि० सं० ८६० मी घाघपासमी बनील बै ।

उद्भूट बंध ना राजा म्रुवे बि० सं० ८५० सगमग मां यक्षोवर्मा मे हराबी माट उपर पोतानी सत्ता बमाबी हती ।

भीज योत्रिन्द पण बि० सं० ८६० सगमग मां यक्षोवर्मा मे भगाकी मुजरात मां पीताबी सत्ता मे ब्रुव यजब्रुव करी हती सने पोताना नाता भारी इन्द्र मे मुजरा तनो राजा बनार्यो हुतो । सा परिस्थिति मां यक्षोवर्मा मे मुजरातनी ममता छोडी कभीज पर बड़ाई करी हसे सने स्थानो राजा मे हराबी स्थो पोतानी मही स्थापी । मल्लु ।

६. बीजे नामावलीक—वे ना बीजू नाथो नापमट्ट घने घामराजा छे । यक्षोवर्मा राजमे बीजू राणी मी बटपट बी एक सवर्मा राणी मे काडी । वे राणी मे त्रिभुवान बी नीकमी रामसेनमां घाबी एक बालक मे जन्म घाप्यो बीजू नाथ घाम राखनामां घाप्यु । घामने पुकराज पद घाप्यु । घाम राजा मे चंक बैस्य राणी हती बीजा बंध मे होरीना नाम बी ।

७. बुडुक—घाम राज मू बीबी नाम रामभद्र छे । नापावलीकना भरएपही कभीज मी ये राजा पवो । वे पाटलीपुत्र राजबन्सा परप्यो हुतो । ठेमा यो ठेमे भोज नामे पुत्र पवो । बुडुक राज बैरबागामी हुतो । मिहिरभोजे पिछाने भारी वे राजसिंहासन उपर बडी बैठे ।

इस भांति यक्षोवर्मा और प्रतिहार भोज आदि राजाओं के नाम तथा बर्णन के विषय में इतिहासकारों के निम्न निम्न मत हैं किन्तु निष्कर्ष यही है कि प्रतिहार भोज बही हैं जो यक्षोवर्मा के घाम के कुछ बुडुक को मार कर गरी पर बैठे ।

नाटण के जाबड़ाओं मे अपना राज्य सारस्वत मध्यत (उत्तरी अहिमराज राटण के मुजरात) में स्थिर किया बा जब बमरी राज्य बा पठन हो जाबड़ा

तथा प्रथम बिन्तामण के नेधों के आधार पर इनके विषय में नीचे निघी बायें बिरित होती हैं । वे जाबड़ा भीमनास के बापोलट बा बापबद बी एक दाया है । पंचासर में बायों बा एक छोटा ठा राज्य बा । बायों बा अन्तिम सम्राट् मुपाइ मार डाला गया बा । यह मुपाइ भोज बा इस विषय में कुछ नहीं कह सकते । पार्सेली रबी बंसलों में बटपटा रही यही पर उठने बनराज जाबड़ा को जन्म दिया । यह बहानी बाप्या राजन बिन्ताइ बी ही भांति बी है । इसी बनराज मे सन ७४६ ईस्वी में अन्तर्हिमपुत्र बी नीज डाली । यह

(१) अन्तर्हिम पंचासर बा राजा मार डाला गया बिलकी दिवबारानी बयमुवरी मे बनराज हुआ ।

समय वह वा जब कभीय की राजवंशीय शाखा का पतन हो रहा था। फिन्ने ही स्वतन्त्र राज्य राजपूत योद्धाओं द्वारा स्थापित किए जा रहे थे। बाप्पा ने चित्तौड़ के राज्य की स्थापना करली थी। सामन्त बेव ने साँवर की धोर, नागमद ने मंडौर राज्य की। बनराज को घरबों से युद्ध करना पड़ा था नहीं किन्तु हम यह कह सकते हैं कि नवराष्ट्र के एक लेख के अनुसार घरबों ने बल्लिण पर आक्रमण करने के लिए धावे बढ़ना चाहा तो बापों ने रोकना चाहा किन्तु घरबों के बार-बार के आक्रमण को रोकने से उनकी शक्ति नष्ट हो गई थी इसलिए किसी बाप राजा को उसी के साम्राज्य में पराजित होना पड़ा। कभीय साम्राज्य के विवरण में स्पष्ट है कि व्याघ्रमुख आपवंशी का एक पुत्र कुँमसाँ के समय में था। सन् ६४२ के लगभग उसका पुत्र या पौत्र वर्मसात भीमनाथ पर शासन करता था। बल्लमद के लेख के अनुसार राजा वर्मसात महाकवि भाष के पितामह थी सुप्रमद्वै के स्वामी थे जिसके अर्चन भर्बूद तो था ही धीर अथ सामन्त भी थे। आपवंशीय राजा वर्मसात ने आक्रमणों से कदाचित् परितुष्ट होकर ही अपनी राजधानी भीमनाथ को छोड़ा और बल्लमद को अपनी राजधानी बनाया। उस समय नागमद मंडौर पर अपना अधिकार स्थापित कर रहा था। वह चित्तौड़ाली वा अठ-अन्त में भीमनाथ का शासन प्रतिहार बंध के बंध अर्चन हो गया। आपवंशीय इतर-इतर बिखर पड़े। वह वर्मसात भीमनाथ के किसी बाप राजा ने कुँमसाँ रहे हों यह संभव है और श्वेत्त प्राता संभवतया आक्रमण में मारे गये। जब जयसिंह की स्त्री ने बनराज को जन्म दिया। उसी समय बाप्पा राजल भी चित्तौड़ की गद्दी पर आया। सन् ७४९ के लगभग उसका पौत्र भीम शासन करता था। चित्तौड़ भीमनाथ से अधिक दूर नहीं है। बनराज ने बाप्पा की ही भाँति एक लम्बा शासन किया। (७६२-८१ ई० तक) अर्जुननाथ की स्थापना तो इसके पूर्व ही हो चुकी थी और उनका शासन सन् ७६२ में वह बात समझ में नहीं आती। फिर बोरराज (बोरराज) शासक हुए जो बोर प्रतिहार की अर्चनता (सन् ८०९ से ८४१ तक) में राज्य करते रहे। (विश्वेसरी० की० बंध का इतिहास राजपूत कांस) फिर रत्नादिप और वैदिचिह्न, बोरराज (८२९) फिर मुबराज (मुबराज भी कहाते थे) सन् ८८१ में थे। फिर राहुप १०८ ई० अन्तिम राजा ने सन् ११७ में शासन किया। फिर मूलराज सोलंकी ने जो बाबजा ही था खीनकर राज्य किया। महाकवि भाष का भी यही समय है।

बाबजा सोम सूर्य के उपासक समझे जाते हैं। वह सम्भवतः बंध के धीर जैन पंडितों की प्रोत्साहन तथा संरक्षण देते थे। इन्हीं का एक छोटा सा राजवंश आपवंश काटियावाड़ के वर्धमान पर शासन करता था। इसी प्रकार एक अन्य शाखा बड़ासम बापनस्पती (बापनस्पती या बनस्पती) में ८७१ ई में राज्य कर रही थी। मूलराज के परचात् भीमराज प्रथम हुमा को मारने के राजा बोर और वैदिचिह्न के राजा कर्ण का समकालीन था। भीम के पुत्र कर्ण ने कर्णवर्तीनगर बनाया जो प्रायः चलकर धर्मशास्त्र के रूप में विकसित हुमा। जयसिंह सिद्धराज हम सोलंकी बंध का चित्तौड़ाली राजा था। वह विद्वानों का आदर करता था। जैन पंडित हेमचन्द्र इसी के शासन में था। फिर कुमारपाम हुमा (११४९ ई.—११७१ तक)।

मुसलमान सौलतकी के शासनकाल में गुजरात स्वतन्त्र हो गया जब वहाँ का राजा महम्मदपाल था। इस समय ये सन १३१ ई तक भीममाल गुजरात का प्रधान नगर समझा जाता था। इसके पश्चात् ही भीमसेन के शासन काल में १८०० गुजर भीममाल से जस दिये। भीममाल पुराण का कहना है कि भी ने उस देश को तब त्याग दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मल्लिसवाड भीममाल के स्वाग पर मुख्य नगर हो गया। (१) जब मल्लिसवाड में बापबंद का राज्य था और भीममाल के व्याघ्रमुख की बात भी बापबंद की प्रशंसा की किन्तु काटियावाड़ के बड़वाण प्रांत में भी भरणीबराह बाप का नाम पाया है जो कन्नौज के प्रयोग था। ये बापोरट राजा हैहयबंद के कहलाते हैं। इच्छुणकि की राजमाता में पंचासर राज्य के जयसेसर की कहानी है। जयसेसर पर कल्याणकटक के राजा का ६६९ में शासन हुआ। कपमुन्दरी को उसने जयल में भेज दिया जहाँ पर उसके बनेराज नामक पुत्र हुआ जिसका कारण ज्ञात न हो सका है। इस पंचासर के बाद भीममाल के बापका का मल्लिसवाड पुरा के बापका से सम्बन्ध था। बनेराज की मृत्यु ८०६ ई में हुई। वह ११० वर्ष की आयु रहा। वह इस मति सन ६६९ में पैदा हुआ। इस समय गुजरात कान्यकुब्ज की सीमा न हो सका। प्रतिहारों द्वारा बाप भीममाल से निकाल बाहर कर दिये गये। उत्तरी गुजरात में सन ७६३ ई० तक बापका शासन था। फिर भीममाल से पंचासर चले गये। यहाँ भी प्रतिहारों ने उन्हें पंचासर में हटा दिया। उस मल्लिसवाड को बनेराज ने बसाया।

कन्नौज और मल्लिसवाड के विषय में इतनी जानकारी था हमारे लिए उपयोगी निम्न—

(१) छान्दोग्य सन् ६४१ में भीममाल के लिए लिखता है कि २० वर्ष का एक क्षत्रिय मुक्त वहाँ पर राज्य कर रहा था जो बीड वर्म को मानता था।

(२) बड़ा मुक्त ज्योतिषी लिखता है कि सन ६२८ ई० में व्याघ्रमुख बाप भीममाल का शासन था। सन ६४१ का मुक्त राजा व्याघ्रमुख बाप का पुत्र था।

(३) चाणक्य में लिखा हुआ है कि बापोरट पर मुक्तमानों का आक्रमण हुआ। इतिहासकार कहते हैं कि सरहों के आक्रमण के पूर्व तक भीममाल पर बापों का राज्य था। ये बाप प्रतिहारों द्वारा भीममाल से निकाल बाहर कर दिये गये। उत्तरी गुजरात में सन ७६३ तक बापका शासन था फिर भीममाल से पंचासर चले गये। फिर प्रतिहारों ने पंचासर में उस समय कोई मुसलमान राजा का होना कहते हैं तो कोई जयसेसर वा (जयसिंह)। उसकी विपत्ति राजी ने बनेराज को ज्ञात दिया जिसने मल्लिसवाड बसाया।

भीममाल पर सरहों के आक्रमण का समय सन ७३२-७४० ई सम्भव था। माय मट्ट प्रतिहार वर्म के संस्थापक मंडोर (जोधपुर) के शासन ने भीममाल की ओर बार बार होने हुए आक्रमणों को रोका। इन आक्रमणों को रोकने में दोनों (बाप प्रतिहार) शामिल मिली। किन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि सरहों ने किसी बाप राजा को जगद्विज दिया।

(१) कैप्टेन गार्डर कैप्टियर पृष्ठ ४६६

घरबों के आक्रमण भीनमाल पर ही बार-बार हुए । नागभट्ट तक प्रतिहारों और बापों में कोई समझौता नहीं दिखता । नागभट्ट ने सन ७४० तक शासन किया । भीनमाल उसकी राजधानी थी । हो सकता है कि बाप उसकी शक्ति से घृणित हो गये हों किन्तु उचरी गुजरात में सन ७३३ तक बाबका का शासन होना इस बात का प्रमाण है कि नागभट्ट प्रथम तक ऐसी कोई बात न हुई होगी । बल्लभराज प्रतिहार ने सन ७७० से ८०० तक राज्य किया । उचरी ने कदवीज लिया । हो सकता है नही बाबकों के पीछे पड़ गया और उचरी ने बापों को भीनमाल से निकाल बाहर किया हो यहाँ तक कि पंचासर से भी । घरबों के आक्रमण ने बापों को इधर-उधर भटक कर दिया होना पर भीनमाल को फिर भी उन्होंने नहीं छोड़ा । प्रतिहारों ने ही सुझाया । अतः यदि बर्मलात सन ७६० ई० में भीनमाल का शासक हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं और नागभट्ट प्रथम ने ही ७४० ई० में भीनमाल पर अधिकार कर दिया हो तो राजा बर्मलात हो सकता है, बल्लभराज को लेकर ही धनुष्ट हो गया हो । हमको यह बात होनी हुई इसलिए नहीं दिखाई देती है कि माघ कवि भीनमाल का निवासी अपने को बताता है और उसके राजा बर्मलात को अपने पितामह का स्वामी । राजा बर्मलात सन ७६० ई० में था । अतः राजा बर्मलात भीनमाल का शासक था जो बाप था । बापों को भीनमाल से हटाने वाले ही प्रतिहार राजा थे । प्रतिहारों में राजा बर्मलात का नाम नहीं आया और फिर भीनमाल राजधानी के शासक के रूप में । अतः यही निष्कर्ष फिर भी निकला कि राजा बर्मलात सन ७६० में भीनमाल का शासक था जो बापवर्दीय था । पंचासर में जो बाप थे वे समोलीय थे सम्बन्धी थे किन्तु राजा बर्मलात से उनका कोई विशेष सम्पर्क न रहा । घरबों के आक्रमण ने पंचासर के बाप को ही पराजित किया हो न कि भीनमाल के किसी बाप राजा को । अतः उन्होंने अभिलषाटल बसाया होना न कि भीनमाल के बापों ने ।

यह समय राजनीतिक अस्थिरता तथा असुरक्षा का था । यह इस काल का राजनैतिक जीवन
 इस समय अनेक छोटे बड़े राज्यों में विभाजित था । जिस राजपूत ने वहाँ पर अधिकार पाया वहीं पर उसने अपने बाहुबल से राज्य स्थापित कर लिया । इन शासकों में अक्सर तथा मिथ्या आत्मसम्मान की भावनाएँ बूट-बूट कर गयी हुई थीं । वे अपने बंध की कौटि आत्म सम्मान तथा धर्म-विशेष के नाम पर युद्ध करना ही जीवन का उद्देश्य समझते थे । बाह्यशक्ति ने इनकी स्थिति को हड़ किया । ये बाह्यशक्ति ऊँचे ऊँचे राज्यपथों पर नियुक्त किए गये ।

इस युग में राजपूत राजा निर्दोषता के साथ-साथ स्वैच्छाचारिता के भाव वाले भी थे । वे अपने को वैजयन्तस्य समझते और अपनी पूजा कराते थे । बाह्यशक्ति मंत्रियों का जो कुछ प्रभाव उन पर था वह वैयक्तिक था । राजाओं के नीचे सामन्त और जागीरदार होते थे जिनको या तो वेतन मिला करता था या जागीरें भी जाती थीं । बलाभरण युद्ध का ही रहता । राज्यों की सीमाएँ नियम प्रति ही परिवर्तन होती रहतीं । मुहम्मद शाहन और राज्य व्यवस्था का प्रायः घमास ही था । सामन्त अधिकांश राजा के ही बंधू होते थे जो वार्षिक कर या सैनिक सहायता समय पर दिया करते थे । स्वामी के प्रति इनकी स्वाभाविक

स्वामीशक्ति थी। राजा यदि कुर्वन तथा प्रयोग प्रमाणिन हो जाता तो ये सामन्त ही उसके राज्य को सुरक्षित अपनी गता स्थापित करने में न चूकते। भीनमाल में चारों का प्रबल राज्य था। निरुद्धवर्ती स्वतन्त्र राजा भीम सामन्त रूप में रहकर भीनमाल के राजा को कर देते रहे होने किन्तु घरनों के बार-बार के आक्रमण ने जब चाप शक्ति को निर्बल बना दिया होगा तो मंदोर के दलितभासी बुरैर प्रतिहार नागमद ने प्रथम तो सामन्त के रूप में चारों के साथ घरनों से युद्ध की होनी फिर हो सकता है कि भय में समय पड़ने पर अपने बच की कीर्ति को बढ़ाने के लिए भीनमाल को हथिय लिया हो और इस भाँति यह भीनमाल का घातन बन गया हो। बल्लभ प्रतिहार तक भीनमाल प्रतिहारों की राजधानी हो चुका था तथा उनके अधिकार में था गया था।

राज्य की भाव का मुख्य साधन भूमि कर था। व्यापार तथा वस्त्रों का सामानों पर लगाये जाने वाले करों से भी राज्य की अच्छी भाव हो जाती थी।

राज दरबारों के अध्यक्ष, निरुद्ध प्रति की हत्या की घटना सामन्तों के विद्रोह चरितों व राजकर्मचारियों के अत्याचार आदि बातों ने देश को इसका चिह्न बना दिया कि विद्रोही आक्रमण के होते ही वह देश बहुत स्थानों पर प्रचलित विद्रोह हुआ क्योंकि सब मिलकर यदि विद्रोहियों से लोहा लेते तो विद्रोही इस भ्रम पर पर नहीं रख सकते किन्तु अलग-अलग अपने मनुष्यत्व स्वार्थ की ध्यान में रसत हुए अपने से बढ़ते रहे, फिर सिन्धु पर घरनों की विजय कैसे न होती। बाहिर बचाव संभल गया करता ? जब तक चाप व प्रतिहारों से सम्मिलित होकर घरनों से टक्कर ली तक तक तो भारत में घरनों का अधिकार न हो सका पर जैसे ही प्रतिहारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थिर कर ली बाह्य घरनों ने फिर आक्रमण किया और वे चाप राज्य को बर्जित करने में सफल हुए। फिर तो महमूद गौरी आदि जयचल के समय तक आते ही रहे। ये राजपूत दुर्गमस्थानों में अपने लिए हथ हथ बनाते थे और एक दूसरे से निरंतर संघर्ष करते रहते थे। उस काल के लक्ष्य चारों की ओर से मूर्च्छित थे। सामंति और निजी युद्ध यद्यपि इस युग का एक व्यवहन (फैशन) था किन्तु फिर भी देश के विभिन्न भागों के मध्य शासन प्रदान और सम्पत्ति के पर्याप्त साधन सिद्धमान थे। व्यापार सम्पन्न व्यवस्था में था। कवि, चारण और विद्वान राजाओं के दरबार में जाते थे और वहाँ उन्हें पर्याप्त नैरक्षण तथा प्रोत्साहन मिलता था। मंदिरों की मरम्मत बहुत थी। मंदिरों की रंग रंग लाल लाल सिंहाई, कर की बसुनी, अररावियों की परबुना यह सब संभाव्यता का काम था। मंदिर उन संभाव्यताओं के मया-वहन का काम देते थे। राजा बल्लभ के विनायक में कुछ मनुष्यों की मोहनी का उत्पन्न है। यह मोहनी संभाव्यता घरीती है।

इस युग की इन सामंति व्यवस्थाओं में देश सामंति मत्पेरो और राष्ट्रीय ईर्ष्या इस से बचा हुआ था। जब कोई राजा अपने पड़ोसी राजा पर विजय प्राप्त कर लेता तो पराजित राजा को ही बर्ताना का शासक नियुक्त कर दिया जाता था या उसी के परिवार वाले किसी अन्य व्यक्ति को किन्तु यदि इतनी छोटी होती कि वह बर्जित राजा विजय प्राप्त राजा को अपनी राजा स्वीकार के रूप में कुछ नोट भेजकर देता रहे। प्रतिहार संघ के सम्बन्ध में

इतनी ही जानकारी पाते हैं कि उन्होंने बड़ाण के बापों पर विजय प्राप्त करके उनसे कर लिया। हो सकता है मीनमाल के बापों के साथ भी कुछ वर्षों तक ऐसी ही बात रही हो और अन्त में उन्हें मीनमाल से निकाल कर बाहर कर दिया गया हो। इन सब प्रमाणों से घोरियों के आक्रमणों के पश्चात् वा बाप राजा बर्माल था। तभी महाकवि माघ ऐसे नैतिक बातावरण में पोषित होकर प्रतिहार राजकुमारी संरसता को स्वीकार करते हुए छिद्रपुत्र बर महाकवि के युद्धमाय को यथावत् लिखने में समर्थ हो सके और यहकार एवं पूजा की उस भावना का तथा उस समय की अन्य राजनैतिक तथा ऐना सम्बन्धी माध्यताओं और परम्पराओं का यथावत् चित्रण करने में समर्थ हो सके।

सामाजिक स्थिति

इस युग में बर्ण व्यवस्था में जाति पंक्ति का रूप बाण्ड कर लिया था। सामाजिक परिधि के संकीर्ण होने से वे लोग विरोधियों को अपने में पचा न सके। जाति बन्धन अब इतने कठोर हो को अपने में पचा न सके। जान-मान बिबाह तथा सामाजिक के मये कि उनमें महीन तत्वों का प्रवेश अब कठिन हो गया। इतना होने पर भी अन्तर्गत करने का अधिकार है राजा था। नियम इस युग में बहुत बुरे थे। राजा होने पर अन्तर्गत करने का अधिकार है राजा था। बाण्डलों को छुपि करने तथा घर-घर घाने पर अन्तर्गत करने का अधिकार है राजा था। बर्माल भी राजकार्य करने राजमन्त्री होते सेनापति बनने व युद्ध में लड़ने के लिए कटिबद्ध होते। अत्रिय महत्त्वपूर्ण रचनाओं भी करते थे। बिबाह बन्धन बड़ा बन्धन था। सातवीं घाताघात के बाद अपनी ही जाति में बिबाह करने का बन्धन हो गया था। बाण्डमन में पूरा से उत्पन्न अपने पारस्य भाषा का विचार एवं चरित्र में लिखा है। राजाओं के बाण्डमन में बिबाह १२वीं घाती तक होते थे, पर अन्तर्गत रूप में ही। राजा भी बिबाह में बर्ण और जाति की ही नहीं उपजाति की समानता भी आवश्यक प्रतीत होने लगी यद्यपि स्मृतिकार इसके सम्बन्ध में मौन हैं। बाण्डमन पहले एक वे फिर इनमें प्रवेश तथा ऐसे के अनुसार विभिन्न हो मये और उपजाति भी बन गई। बर्ण-व्यवस्था अत्यन्त कमजोर हो गई। इससे धर्म और पर बह बन्धना हो गई। धारम्य में तो यह सामाजिक व्यवस्था छिड़ गई। इससे धर्म और समाज की रक्षा हुई। बिदेसी इन्हीं कारणों से संस्कृति और सभ्यता को नष्ट नहीं कर सके। यदि भारतीय जातिवादी उनमें किसी हो गई होती तो पात्र हिन्दू सभ्यता तथा धर्म संस्कृति का नाम भी नहीं रहता। इस युग में भारतीय सहयोग की भावना इतनी दृढ़ हो गई कि उन्होंने अपने सेना में अपने लोगों तथा वा अन्तर्गत करना बन्द कर दिया। इससे कातागर में राजपूतों को एक जाति समझ जाने लगा। वे पुरातन के साम्राज्य प्रवर्तक थे। निर्भयता तथा साहस में किसी से पीछे न थे। युद्ध में मृत्यु प्राप्त करना एक राजपूत के लिए मोक्ष की बात मानी जाती थी।

इस युग की स्थितियों का जीवन भी अत्यन्त दुःख तथा बीरता से पूरा था। पुरखों की मोर्चा में भी बीरता के घोषणा थी। पतिमति अन्तर्गत व्यवस्था की पारि पाती थी। पति की मृत्यु के उपरांत गती होना वे अपना बर्तव्य समझती थीं। पति के मारे जाने तथा पति के पिर जाने पर अन्तर्गत बर्ण ७ अन्तर्गत रूप से पीछे होने ने अन्तर्गत बर्ण के

सम्मुख सतीश की रक्षा के लिए अग्नि में हँसते-हँसते भस्म होना उनके बायें हाथ का चेतन था। हर्ष अरिष में सती साहू का बलान है। महाकवि माध ने इसका वर्णन किया है। वे पढ़ी सिखी होती थी। राजगरी का तो वर्णन थावा ही है परन्तु मंदनमिश्र की स्त्री ने सहर को भी निहतर कर दिया था। इन्धुमेखा माहला मोरिका, बिज्रिका धीमा सुमरा पछिनी मरामवा, लक्ष्मी सीतावती आदि विदुषी महिलाओं के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। इसका बेनी धायन करने वाली एक बीर स्त्री भी जो विक्रमादित्य सीमकी की मयिनी थी। पर्या प्रया भी परन्तु उसका स्वरूप एक विशेष प्रकार का था। माध काव्य में कई स्थानों पर स्त्रियों के पररे का वर्णन थाता है। विधवाओं का विवाह धर्म: धर्म बन्ध हो रहा था। स्त्रियों की पुरुषाधीनता बड़ रही थी, वे इस युग में आकर विभास की सामग्री बन रही थीं। मरिषान इस युग में का अत अधिकतर पुरुष और कभी-कभी स्त्रियाँ दोनों ही विशेष अवसरों पर मरिषा में भस्त रहकर भोगमय जीवन बिताते थे। धिनुपालवम महाराज्य में एक सर्म में मरिष-पाल का सजीव वर्णन मिलता है।

इस युग में कला और साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। भाषा में चमत्कार लाने और बसको सुन्दर बना कर पाठकों के सम्मुख अजाकर रखने की रीतिवाँ साहित्य में प्रतिष्ठित हो गयी थीं। नाट्य के अलंकार धर्म की स्थापन हुआ। माध ने बसको पूर्णता दी। मौलिकता तथा मनीनता तो धर्म इस युग की देन न रही अतः पुरुष के कवियों जैसे नाद धववा रस प्रवान कविता हो रही नहीं, रस योग्य के स्थान पर अलंकारों के कृत्रिम सौंदर्य वाली धर्म की बात पड़ी। यह अत्रदय का कि संस्कृत साहित्य के प्राय सभी धर्मों की उन्नति इस युग में हुई क्या काव्य क्या नाटक क्या अम्पु (महा-अचार्यक काव्य) अलंकार आरम्भ आकरण कोष, दर्शन आदि मिले गये। अवभूति माध महाराज्य की हृष भुषरि, राजदेवद, इन्दी बाण, भवपाल बहलु बिल्हल, अमानक हेमचन्द्र, वामन धानन्दधर्मन अभिनवभुषण, मम्मट, अयादित्य भट्ट हरि, रोमेन्द्र, सोमदेव बाणभट्ट चित्रानेस्वर, मास्करा बायें वात्सवायन, धार्क अदेव अकराचार्य कुमारिस भट्ट आदि प्रसिद्ध संस्कृत साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस युग में प्रायः सब ही अमानक रामायण अथवा महाभारत से लिये जाते थे। कुछ कवि अपने आचमशास्त्रों के अरिषों को निधकर ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा आल रहे थे किन्तु ये माध के परम्परा के हैं पूर्व के अथवा अरक्षनीय भी नहीं। इनमें बहुत से कवि राज-सम्मानित थे इतमित् इनकी रचनाओं में यत्र तत्र ऐतिहासिक राज-प्रभाव बैतने को मिलता है। इन हरि से देश के राजनीतिक इतिहास के निर्माण में इनने सहायता मिली है।

कानिक अथवा
में कला की
अभिप्रायिक

यह युग हिन्दू धर्म की पूर्ण विजय तथा बौद्ध धर्म के पराभव का नाम था। मूर्ति निर्माण कला का यह युग था अतः मुन्देव को अवतार मानकर उनको भी मूर्तियाँ बनने लगीं और मूर्ति पूजा होने लगी। स्वयं अरक की अचना विनय रूप धारण करने लगी। बौद्धों कला पूर्ण अक्षर बने। विविध विन अस्ति

क्रिये गये। धार्मिक क्रिया कलाओं और अनुष्ठानों का महत्व बढ़ गया। धाधार की धरोहरा भक्ति और पूजा पाठ पर जोर दिया जाने लगा। इस सबने स्थापत्य तथा चित्रकला को प्रोत्साहित किया।

महात्मा बुद्ध के कई वर्षों परचाद् भारत में बौद्ध धर्म रहा। ईसा की सातवीं शती से चौदहवीं शती तक जसोतकर, कुमारिल चंकर बाजस्पति मिथ उदयनाचार्य रामानुज और सायनाचार्य धावि बासंलिकों तथा भवभूति और माध जैसे कवियों ने भारत भूमि में एक बार फिर बाह्यलधर्म का पुनरुत्थार किया और वैदिक क्रिया कलाप का पौराणिक सस्करस हुआ। धर्म समन्वय का भाव धर्म भी भारतीय हृदय में बढभुल बा। धिसुपालवध महाकाव्य में महाकवि माध एक और बौद्धधर्म की सुन्धर-सुन्दर बातों को मिसकर पाठक का ध्यान उस और धाकषिठ करते हैं तो बूधरी और बड हवन कमकाण्ड धादि की बातें मिसकर बाह्यल धर्म को पुनर्बोधित रूप में प्रस्तुत करते इष्टियत होते हैं। धर्म का यह समन्वय-भाव हमको महाकवि माध रचित धिसुपालवध महाकाव्य में पूर्णतया दिखार्ई देता है। महाकवि भवभूति की वैदिक धार्मिक के पुनरुत्थार की चेष्टा की सीधी का रूप मिथ बा। सससे धनकी मौलिकता का परिचय भवध्व प्राप्त होता है। बौद्धों से साक्षाद् बुद्ध धमने तथा वैदिक क्रिया-कलाप की साक्षाद् प्रशंसा करने के अभाव भवभूति ने प्राचीन और पवित्र वैदिक समाज के धावर्ध धरिण को उपस्थित करते हुए पतितावस्था वाले हिन्दू समाज की स्थिति को पाठकों के सम्मुख रखकर धपना कर्तव्य निभाया।

माध के समय में बौद्ध समाज की धवस्था हीन हो गयी थी और हिन्दू धर्म का धम्मुदय होना प्रारम्भ हो गया बा। कहीं पर हिन्दू देवी देवताधों की उपासना बौद्धों ने प्रारम्भ करली थी तो कहीं हिन्दूधर्मावलम्बियों ने भी बुद्ध की। 'मक्ति धाठक' के रचयिता रामचन्द्र कवि धाछली लिखते हैं—

“ज्ञान यस्य समस्त वस्तु विषयं यस्यानवद्य वच ।
यस्मिन् रागसदोर्षे नैव न पुनर्दोषो न मोहस्तथा ॥
यस्या हेतुरनन्त सत्त्वसुखदान्तस्याकृपा भापुरी ।
बुद्धो वा गिरिशोम्बवा स भगवांस्तस्मै नमुस्कुर्महे ॥”

धपर्युक्त में बुद्ध की स्तेय के द्वारा नमस्कार किया गया है। यह है धर्म का समन्वय। धाध नै भी धिसुपालवध के १८वें सर्ग के ११२ श्लोक में कहा है—

भीमास्त्रराजिनस्तस्य वसस्य ध्वजराजिन ।
कृतधोराजिनधधळे भुव सरधिरा जिन ।

भीकृष्ण की “जिन” शब्ध से धमंकृत किया है। नामान्ध में प्रथम धंर के प्रथम श्लोक के धमत् में “जिन” शब्ध का प्रयोग करते हुए हर्ष लिखते हैं—“भीपी जिन पाणु व” जिन शब्ध का धर्मे उस समय बुद्ध भगवान भी लिया जाता था। धतरचाद् जब भीनमात की और धैनधर्म का प्रचार धधिक हुआ तब यह शब्ध जैन धर्म और उसके धीर्धर महा

धीर स्वामी के लिए अधिकता से प्रयुक्त किया जाने लगा। 'जयति वा जामातीति त्रिम-
सर्वत्र इति।' सर्वत्र सुपतो कुडो बर्मराजस्तथायत इत्यमरः।" इन उद्धरणों से उस समय
का बर्म-समन्वय की भावना का भी परिचय मिलता है। उस समय में क्या हिन्दू, क्या ब्रह्म
क्या बौद्ध सब बरस्पर में एक दूसरे से मिले जुले थे। इन सम्प्रदायों में बरसात का नाम तक
न था। राजपूत युग का वह प्राचीनकाल कात वा जैसा हमने राजनैतिक स्थिति का विश्लेषण
करते हुए लिखा है।

इस युग में ही बर्म के दो महान् धार्मिक हुए—कुमारिल भट्ट और संकराचार्य।
कुमारिल ने बौद्ध बर्म का महान् अध्ययन किया और अपने पांडित्य तथा अकादमिक तर्कों से
बौद्ध धार्मिकों को धार्मिक में पराजित किया। धार्मिक बर्मों यहाँ से प्रारम्भ हो गई थी।
वे पूर्व-मीमांसा के अनुयायी थे। वैदिक कर्मकाण्डों में उनकी धार्मिकता थी। उनके समय
सावर्णी शास्त्री नामा जाता है सन् ७०० में कुमारिल ने वेदों और वैदिक कर्मकाण्ड की
श्रेष्ठता को फिर से स्थापित किया। संकर कुमारिल से एक शरी परचाय हुए। जनयुति के
अनुसार इनका जन्म ईसा सम्बत् ७८८ में हुआ था। उनविषों पर इन्होंने टीकाएँ एवं
भाष्य लिखे। वे वैदिक दर्शन के अनुयायी थे। धर्मशास्त्र का उन्होंने प्रतिपादन किया
जिसके अनुसार ब्रह्म ही परम सत्य है। मोक्ष ब्रह्म ही का नामात्मक रूप है। माया रूप
ब्रह्म है। इन्होंने हिन्दू-बुद्ध-जैनधर्मों की अड़ों को मजबूत किया। इस युग के प्रमुख
हिन्दू देवता विष्णु, विष्णु शक्ति और गणपति आदि थे। राम तथा कृष्ण को विष्णु का
अवतार इसी युग में माना जाता था। शिन्धुपालवण काव्य इसका प्रमाण है। तीर्थ-यात्रा
का अधिक प्रचार था। नदियों को पवित्र माना जाता। वंशा यमुना की पूजा, होखी दिवाली
का मनाया जाना इस युग में शुरू प्रचलित हुआ।

संकराचार्य कब हुए, कहाँ हुए आदि आदि प्रश्नों पर अब तक भी मिश्रमत है।
श्री बल्लभ उपध्याय "श्री संकराचार्य जन्म के आदिर्भाव काल में कहते हैं (१) कांकी
कामकोटि पीठ के अनुसार धार्मिक का जन्म २१२३ कलि वा सुचिह्नित सम्बत् (१०६ ईस्वी
पूर्व) हुआ था तथा उनका देहावसान २१२३ कलि सम्बत् (२७६ ई० पूर्व) के १२ वर्ष की
वयस्का में माना जाता है। कामकोटि में महाभ्यास का कहना है कि उस पीठ पर १ संकर
नामधारी हुए, जिसका मृत्युकाल विभिन्न समय का है। पाद्य संकराचार्य (मृत्यु २१२३
कलि सम्बत्), तथा संकर १६ ईस्वी उज्जैन संकर का ३६० ईस्वी में मूर्कसंकर का
४१७ ई० में और अभिनवसंकर का ८४० ई० में। धार्मिक सामोचर पाद्य संकर का जन्म
को ७८८ ई० में करते हैं जो उपर्युक्तानुसार अभिनवसंकर के जन्म पहलू करने का है।

निष्कर्ष—(१) राम कोटि परम्परा संकराचार्य को ईस्वी पूर्व १०८ में मरकर ई० पूर्व ४७६
बता रही है। मृत्यु के विषय में अधिकतर १२ वर्ष बता रही है किन्तु
बैकटेरवरका यह है कि वह ८३ वर्ष तक जीवित रहे। (१)

(२) संकराचार्य जर्मनीति (११३ १३० ई०) के ग्रन्थों से परिचित थे (पृष्ठ १४)

(३) शा० के श्री पाठक गेवेरला के बरचायु हम निष्कर्ष पर जाते हैं कि संकर
चार्य (७८८ ई० ८२० ई०) ८४३ विक्रमी से ८६७ विक्रमी तक थे। (२)

किये गये। नायिक क्रिया कलापों और अनुष्ठानों का महत्त्व बढ़ गया। व्याचार की अपेक्षा भक्ति और पूजा पाठ पर जोर दिया जाने लगा। इस सबने स्थापत्य तथा चित्रकला को प्रोत्साहित किया।

महम्मद बुद्ध के कई वर्षों पश्चात् भारत में बौद्ध धर्म रहा। ईसा की सातवीं शती से बीसवीं शती तक जघोतकर, कुषाणों, शक, वाचस्पति मिश्र, जयनाथार्य, रामानुज और सायनाचार्य प्रादि दार्शनिकों तथा भक्तभूति और माध जैसे कवियों ने भारत भूमि में एक बार फिर ब्राह्मणधर्म का पुनरुद्धार किया और वैदिक क्रिया कलाप का पौराणिक सङ्कलन हुआ। धर्म समन्वय का भाव जब भी भारतीय हृदय में बहसूत्र था। शिशुपालवध महाकाव्य में महाकवि माध एक ओर बौद्धधर्म की सुन्दर-सुन्दर बातों को लिखकर पाठक का ध्यान उठ और आकर्षित करते हैं तो दूसरी ओर यज्ञ हवन कर्मकाण्ड प्रादि की बातें लिखकर ब्राह्मण धर्म को पुनर्जीवित रूप में प्रस्तुत करते दृष्टिगत होते हैं। धर्म का यह समन्वय भाव हमको महाकवि माध रचित शिशुपालवध महाकाव्य में पूर्णतया दिखाई देता है। महाकवि भक्तभूति की वैदिक धर्म के पुनरुद्धार की चेष्टा की इसी का रूप मिश्र था। जहाँ उनकी नीतिशक्ति का परिचय प्रकट होता है। यौद्धों से साम्राट् बुद्ध बनने तथा वैदिक क्रिया-कलाप की साम्राट् प्रशंसा करने के बजाय भक्तभूति ने प्राचीन और पवित्र वैदिक समाज के प्राच्य चरित्र को उपस्थित करते हुए पवित्रावस्था वाले हिन्दू समाज की स्थिति को पाठकों के सम्मुख रखकर अपना कर्तव्य निभाया।

माध के समय में बौद्ध समाज की अवस्था हीन हो चली थी और हिन्दू धर्म का प्रभुत्व होता प्रारम्भ हो गया था। कहीं पर हिन्दू देवी देवताओं की उपासना बौद्धों ने प्रारम्भ करली थी तो कहीं हिन्दूधर्मावलम्बियों ने भी बुद्ध की। "वक्ति अतक" के रचयिता रामचन्द्र कवि भारतीय लिखते हैं—

“ज्ञान यस्य समस्त वस्तु त्रिपयं यस्मान्नवद्य वच” ।
यस्मिन् रामसबोधि मेव न पुनर्होपो न मोहस्तथा ॥
यस्या हेतुरनन्त सत्त्वमुसदाभ्यन्ताकृपा मापुरी ।
बुद्धो वा गिरिशोभ्यथा स भगवांस्तस्मै नमस्तुभ्यम् ॥”

उपर्युक्त में बुद्ध की स्तेप के द्वारा नमस्कार किया गया है। यह है यम का समन्वय। माध ने भी शिशुपालवध के १८वें सर्ग के ११२ श्लोक में कहा है—

भीमास्त्रराजिनस्तस्य वसस्य ध्वजराजिन ।
कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिन ।

श्रीकृष्ण को “जिन” शब्द से पर्यंकृत किया है। नागानन्द ने प्रथम सर्ग के प्रथम-श्लोक के अन्त में “जिन” शब्द का प्रयोग करते हुए हर्ष लिखते हैं—“बीबी जिना पानु व” जिन शब्द का अर्थ उक्त समय बुद्ध भगवान भी लिया जाता था। उत्पत्त्यात् जब भीमनाल की ओर भीमधर्म का प्रचार अधिक हुआ तब यह शब्द जैन धर्म और उसके तीर्थंकर महा

श्रीर स्वामी के लिए अधिकता से प्रयुक्त किया जाने लगा। "अपति वा आमातीति त्रिन-
 सर्वत्र इति।" सबसे सुसंगत बुद्धी बर्मराजस्तथागत इत्यमरः। इन छंदरत्नों से उस समय
 का बर्म-समन्वय की भावना का भी परिचय मिलता है। उस समय में क्या हिन्दू, क्या बर्म
 क्या बौद्ध सब परस्पर में एक-दूसरे से मिले जुले थे। इन सम्प्रदायों में बरमाण का नाम तक
 न था। राजपूत युग का यह प्राथमिक काल था जहाँ हमने राजनैतिक स्थिति का विश्लेषण
 करते हुए लिखा है।

इस युग में ही बर्म के दो महान् धार्मिक हुए—कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य।
 कुमारिल ने बौद्ध बर्म का बहुत अध्ययन किया और अपने पांडित्य तथा सकाक्ष्य तर्कों से
 बौद्ध धार्मिकों को धार्मिक में पराजित किया। धार्मिक धर्मो में सही से प्रारम्भ हो गई थी।
 वे पूर्व-मीमांसा के अनुयायी थे। वैदिक कर्मकाण्डों में उनकी धारणा थी। उनके समय
 छात्रों छात्रासी माना जाता है। छन्द ७०० में कुमारिल ने वेदों और वैदिक कर्मकाण्ड की
 महत्ता को फिर से स्थापित किया। शंकर कुमारिल से एक छोटी अवधि हुए। जनश्रुति के
 अनुसार इनका नाम ईसा सम्बत् ७८० में हुआ था। उपनिषदों पर उन्होंने टीकाएँ एवं
 भाष्य लिखे। वे वैदिक दर्शन के अनुयायी थे। शंकराचार्य का उन्होंने प्रतिपादन किया
 जिसके अनुसार ब्रह्म ही परम सत्य है। मोक्ष जगत् उसी का मायामय रूप है। माया रूप
 ब्रह्म है। उन्होंने हिन्दू-बर्म-समन्वय की जड़ों को मजबूत किया। इस युग के प्रमुख
 हिन्दू देवता शिव, विष्णु शक्ति और मत्स्यपति आदि थे। राम तथा कृष्ण को विष्णु का
 अवतार इसी युग में माना जाता था। शिनुपासक काय इसका प्रमाण है। तीर्थ-यात्रा
 का अधिक प्रचार था। नदियों को नमन माना जाता। संया वसुना की पूजा हात्ती, दिवामी
 का बनाया जाना इस युग में शुरु प्रचलित हुआ।

शंकराचार्य कब हुए, कहाँ हुए आदि आदि प्रश्नों पर अब तक भी विवाद है।
 श्री बतदेव जगन्नाथ "श्री शंकराचार्य" ग्रन्थ के आधुनिक काल में कहते हैं (१) काशी
 कामकोटि पीठ के अनुसार धार्मिक का जन्म २३६३ कति या पुष्यतिष्ठ सम्बत् (५०६ ईस्वी
 पूर्व) हुआ था तथा उनका देहावसान २६२३ कति सम्बत् (२७६ ई० पूर्व) के ३२ वर्ष की
 अवस्था में माना जाता है। कामकोटि के महात्माय का कहना है कि उस पीठ पर ३ शंकर
 नामधारी हुए, जिनका मुख्यकाल विभिन्न समय का है। माघ शंकराचार्य (मृत्यु २६२३
 कति सम्बत्), इषा शंकर १६ ईस्वी जगन्नाथ शंकर का १९७ ईस्वी में मूर्च्छांकर का
 ४३७ ई० में और अभिनवशंकर का ८४० ई० में। आधुनिक आलोचक माघ शंकर के जन्म
 को ७८८ ई० में कहते हैं जो जगन्नाथनुसार अभिनवशंकर के जन्म पहले करते का है।

निष्कर्ष—(१) काम कोटि बर्मराज शंकराचार्य को ईस्वी पूर्व ३०८ में मरकर ई० पूर्व ४०६
 बता रही है। मृत्यु के विषय में अधिकांश १२ वर्ष बता रही है किन्तु
 बर्मराजका मत है कि वह ८५ वर्ष तक जीवित रहे। (१)

(२) शंकराचार्य बर्मराज (११३ १३० ई०) के जन्म से परिचित थे (पृष्ठ ३४)

(३) श० के श्री पाठक गवैरगा के अनुसार इस निष्कर्ष पर आते हैं कि शंकर-
 चार्य (७८८ ई० ८२० ई०) ४४५ विजयी से ८१७ विजयी तक थे ३२)

(४) त्रिजघन में अपने 'हरिचर' की रचना (७८३ ई० में) की। इन्होंने अपने ग्रन्थों में विद्यानाम्न की धोर संकेत किया है विद्यानाम्न में अपनी 'घट साहस्री' में सुरेश्वरचार्य (१० ई०) के बचनों को बृहदारण्यक भाष्य बालिक से उद्धृत किया है। सुरेश्वर के मूल संस्करण के (पृष्ठ १८)। उपर्युक्त मत से तो बलदेव जगन्नाथ संस्करण का ७८८ ई० में होना घटमान्न सा सिद्ध कर रहे हैं।

(५) कुमारिल से संस्करण की जेंट हुई है। कुमारिल के विषय मंडनमिश्र से त्रिजगे साध संस्करण का सारचार्य प्रसिद्ध है। कुमारिल अष्टविंश के धोर संस्करण की प्राय १६ वर्ष की थी तब से परस्पर मिले। कुमारिल धर्मकीर्ति (११३ ६४०) के समकालीन से देखी सिद्धता में जनसूति है। धर्मकीर्ति नाताम्नाचार्य धर्मपाल के विषय से। इन कुमारिल के विषय मंडनमिश्र से। इसमें कोई संदेह नहीं है। मंडनमिश्र काव्यकुम्भ मूल यजुर्वेद (७२१-७२२ ई०) के समा वर्तित से त्रिजगे १३ ई० में काव्यपीर मूल समितादित्य मुत्तापीड के हाथों पराजित होना पड़ा है।

निष्कर्ष—कुमारिल धर्मकीर्ति के समकालीन से अत कुमारिल का समय ७०० ई० तक आता है। मंडनमिश्र को जब विषय छहटा आता है तब तो फिर धर्मपाल धोर की बहकर आठवीं शती के अन्त तक पहुँच जाती है।

[६] श्री जगन्नाथ ने पृष्ठ १०४ पर राजा राजसेनार से संस्करण का मिलान कराया है। उनकी जेंट बड़ी रोचक है। राजा संस्कृत-काव्य का बड़ा प्रेमी था। उसने तीन नाटक लिखे थे। श्री जगन्नाथ ना प्र प नाम ६ का संकेत देकर कहते हैं कि यह राजसेनार याबाबर ब्राह्मण वा ब्रिजका बर विवरण में था और कर्मयोग काव्यकुम्भनगर। बहर भी पाठ्ये अपनी 'संस्कृत साहित्य की कल्पना' में राजसेनार को याबाबर नामक शक्ति बालि में उत्पन्न हुआ बताते हैं त्रिजगी माता का नाम सीतबती धोर पिता दुर्ग के। बिबाह बौद्धान्ता बालि की शक्ति काव्य धर्मपाल सुन्दरी के साथ हुआ है त्रिजगी तो श्री जगन्नाथ भी स्वीकार करते हैं। शेर इसना है द्विती जगन्नाथ तो राजा राजसेनार को कैरल प्राप्त का बताते हैं उबर धर्म इतिहास राजा महेन्द्रपाल के राजगुल बताते हैं। महेन्द्रपाल काव्यकुम्भ के प्रतिहार बंसी राजा से जो मिहिरनीज के पीछे आसक हुए।

[१] श्री संस्करण बलदेव जगन्नाथ पृष्ठ १८

[२] धर्मकीर्ति धोर संस्करण की श्री धार. ए. एल. XVIII पृष्ठ ८८-९६

[३] राजतरंगिणी।

अर्जुन धोर कुमारिल B. B. R. A. B. XVIII पृष्ठ २१०-२१८

निष्कर्ष—राजघोषर ने ही हैं जो महम्मदपाल के पुत्र [चरसक] ने । युध कह देने से ब्राह्मण स्वीकार कर में ऐसा नहीं फिर उसने उस समय बोहान कन्या से विवाह किया जब जाति प्रथा प्रचल थी । राज घोषर सन्धि प्रवरय हुनि घोर रांकर के साथ जब उनकी भेंट हुई तो फिर रांकर का समय स्वतः माघ के समय की सीमा में था जाता है ।

इस उपर्युक्त बंशियों के देख लेने पर यही सार निकलता है कि कुमारिक घोर रांकर माघ के ही युध के थे । घण्टार इतना ही है कि माघ वास्मावस्या में घबरा किघोर बत्ता में हुनि घोर ये माघ से अवस्था में बहुत बड़े ।

बहान ऐतिहासिक दृष्टिकोण सांस्कृतिक तत्त्वों से भट्टा नहीं पूर्व बहान ऐतिहासिक यह सकता फिर भी इसमें मानवीय विचार-वाचनों की प्रेरणा तत्त्वों में व्याप्त नाचघुम की घटनाओं की प्रतिक प्रभावता रहती है, जब कि सांस्कृतिक सांस्कृतिक चेतना दृष्टिकोण कभी तो इतिहास का निर्माण करता है और कभी इतिहास की घटनाओं के भाग्य-विकास पर जो प्रभाव होते हैं उन्हें प्रस्तुत करता है इस युग का सांस्कृतिक स्वरूप महाकवि माघ की साहित्यिक चेतना को गुमनाम में सहायक होगा ।

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (६०० ई०-१२०० ई०) में राज्य बहुराज्य महासमूह साम्राज्य कान्ठर की नीरीरांकर, हीराचन्द्र शोभा मिलते हैं कि भारतवर्ष का प्राचीन बर्म बर्दि बर्म का जिसमें बर्म यागादि की प्रभावता की घोर बड़े-बड़े यज्ञों में पशु हिंसा भी होती थी । घांस भगण का प्रचार भी बड़ा हुआ था । जैनों और बौद्धों के जीवनदा सम्बन्धी विद्वान् पूर्व से ही विद्यमान थे, परन्तु उनका लोगों पर विशेष प्रभाव न था । बुद्ध धर्म के प्रवास से वास्तव हिंसा बन्द हुई । आत्मनिरोध के द्वारा ही धारणा की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ और निर्वाण के लिए सुष्णा के माघ का मार्ग भी आवश्यक समझ जाने लगा । बुद्ध धर्म के प्रवर्तकों में जो विज्ञान-रुचि है उसी को हम धारणा का स्वरूप दे सकते हैं । मनुष्य परमानुसार पुनर्जन्म के चक्र में पड़ता है । बौद्धधर्म की विशेषता है १-प्रहिंसा परमो धर्म २-ईश्वर की उपासना के बिना भी धर्मात्मन्य धर्म के प्राप्तन से मुक्ति प्राप्त हो सकती है, ३-वर्तमान व्यवस्था व्यक्ति के जीवन के विकास के लिए निर्वाण की प्राप्ति के लिए आवश्यक नहीं है । एवं धीमादिरय ने बौद्ध धर्म को पूर्ण रखा की । जिस समय चीनी यात्री ह्वेनसांग यहाँ पर आया का भारत में बौद्ध धर्म उन्नति को प्राप्त का सिन्धु एवं की पृथु परचाय यह धर्म भी भाषों में पड़कर व्यवस्था को प्राप्त होने लगा । धर्मों का धारणन (तत् ७१२) के बार तो फिर यह धर्म एतना व्यवस्था को प्राप्त होने लगा कि बुद्ध-वृत्ति बाध व्यक्ति इस बगल नहीं कर सके । सोचा हुआ साधित्य प्रदान हिन्दू धर्म कु-वृत्ति त हो गया । यही सब हुआ कि बौद्ध धर्म पर सिन्धुधर्म का प्रभाव पड़ने लगा घोर महासमूह साधन की उत्पत्ति हुई । बौद्धों ने इस समय बड़े धर्मिधर्म बारदों से प्रतिपाल का आग्रह किया । स्वयं बुद्ध को उपासने का लोकर उनकी प्रति कष्टों का प्रतिपादन किया और बुद्ध की प्रतिमा बनने

नहीं। मष्ट होता हुआ यह बुद्धधर्म हिन्दूधर्म पर भी गहरा प्रभाव डाले बिना न रहा। हिन्दुओं ने बुद्ध को भी विष्णु का नवौं अवतार मान लिया। इस युग में क्या राजा धीर क्या क्या बैरिष्ठ धर्म के अनुयायी होते हुए भी बौद्धधर्म के प्रति सम्मान भवस्य रखते थे। ई० सं० ८४७ (ईस्वी सं० ७२०) के रोमक (कोटा राज्य) के विजयसेन से पामा जाता है कि नाग बड़ी देवदत्त ने क्रोध वर्धन पर्वत के पूर्व में एक बौद्धमन्दिर धीर मठ बनाया जिससे अनुमान होता है कि वह बौद्ध भगवत्पत्नी था। बल्लभक का विजयसेन को धर्ममैत्र म्मुजिमय में सुरक्षितावस्था में रखता हुआ है सं० ९८२ तक का (७६० ई०) है उसमें स्पष्ट है कि राजा वर्मभाट ने जो हमारे महाकवि माव के पितामह सुप्रमदेव का स्वामी या धीर को सुप्रमदेव के बच्चों को "उवागव" के उपदेव को नाति स्वीकार करता था बीमेन माता की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थीर उस मन्दिर के लिए गोह्री की निवृत्ति की। माव ने अपने महाकाम्य विष्णुपानवध में एक धीर को सब प्रवचनों के नाम धीर उनके कार्यों का वर्णन किया धीर यज्ञ संन्या-वन्दन की बर्चा करते हुए बैरिष्ठ जीवन का दिव्यचरण कराया है तो दूसरी धीर उसी महाकाम्य के दूसरे भाग में नीतिका वर्णन करते ही बौद्ध धर्म की बर्चा कर बैठे "सर्व कार्यधारीरेषु मुक्तबान्त्कन्यवर्णकम्। धीवतानामिवात्मान्यो नास्ति नञो महीमृताम्॥" बौद्धों के पाँच स्कन्ध हैं १-क्य २-वेवना ३-विज्ञान ४-सत्ता ५-संस्कार। इसी विज्ञान स्कन्ध को बौद्ध आत्मा मानते हैं। वे आत्मा नाम की कोई वस्तु इससे वृणक् स्वीकार नहीं करते। माव ने इस उपमा द्वारा राजाओं के लिए नर्चाय भग्न का असाधारण महत्त्व निरूपित कर दिया।

बौद्धधर्म वधवि बौद्ध धर्म से धरि प्राचीन है फिर भी इसका प्रचार प्रसार बौद्ध धर्म की बड़ी प्रगति नहीं पकड़ सका। ई० सं० पाँचवीं शती में जब बलभी की धर्म परिवर्त में धर्म-धर्मों को निषिद्ध करवाया गया तब से इसका प्रचार आरम्भ हुआ। बधिय में यह धर्म बहुत फैला किन्तु बालुबर्षों धीर दक्षिण राजपूतों (ई० सं० ८००) के समय के परचात बर्षों धीरधर्म प्रचार से इस धर्म का ह्रास हुआ धीर परिचय में यह धर्म बढ़ने लगा। राजा पूतना नामका धीर गुजरात में यह धर्म बहुत बढ़ा वधवि इन प्रवेष्टों के राजा भी बंध थे। बौद्धधर्म हैमचन्द्र (सन् १०८४ ई० में जन्म गुजरात में) के समय में यह धर्म अपने विकसित रूप में था।

हिन्दू धर्म में मूर्तिपूजा की कल्पना बौद्ध धर्म से आई। बौद्धधर्म में ईश्वर की सत्ता नहीं मानी गई थी इसलिए बुद्ध की उपस्थिति में शक्ति के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का उपदेश नहीं दिया जा सकता था। महात्मा बुद्ध के परचात बौद्ध भिक्षुओं ने देखा कि सब सोप एहरी त्यागकर भिक्षु नहीं बन सकते धीर न धुक् तथा निरीश्वर संन्यास मार्ग ही उत्तरी समक में जा सकता इसलिए स्वयं बुद्ध की मूर्ति बनाकर उपासना करते-करते उन्हें २४ घण्टी २४ वर्तमान २४ मासी बुद्धों की कल्पना हुई। बोधिसत्त्व तथा धनेक देवियों धारि की कल्पना की गई धीर इन सबकी मूर्तियाँ सब धरिषठा से बनने लगी। नगरी के विजयसेन (ई० पूर्व २००) में सर्वप्रथम धीर बामुदेव की मूर्तिपूजा के लिए मन्दिर बनाने का प्रसंग है। इस राजपूत युग में विष्णु, शिव परीशत धीर शूर्य की पूजा का अधिक

प्रचार था। सूर्य मन्दिर के पुजारी ईरानी मग ब्राह्मण हैं जो शाक द्वीपी कहलाते हैं सूर्य के भी किताबे ही मन्दिर हैं जिनमें सबसे विद्यास और सारे प्राकार सहित संयमरमर का बना हुआ तिरोही राज्य के बरमाण गाँव में है। यह मन्दिर प्रति प्राचीन और इसके स्तम्भों पर नवीं और सप्तवीं सदी के लेख उत्कीर्ण हैं। जिनमें इस मन्दिर को दिये हुए दानों का उल्लेख है। सूर्य के विद्यमान मन्दिरों में सबसे पुराना मन्दिर का सूर्य मन्दिर है जो ई० सन् ४३७ में बना। मुसलमानों में सूर्य मन्दिर का उल्लेख हू मसांग ने किया। मीनमास (तिरोही राज्य) में भी सूर्य-मन्दिर है जिसका उल्लेख यथास्थान हो चुका है और जयदत्ताजी के मन्दिर का पुष्प राजा भोज ने माघ कवि को दिया यह बात भी वहीं बता दी गई है। इससे ज्ञात होता है कि मीनमास बरमाण जो तिरोही के गाँव रहा ज्ये है वही पर सूर्योपासक ब्राह्मण अधिक रहते होंगे। पुराण में राजा शाक की सूर्योपासना सम्बन्धी कथा आती है उसमें सूर्य की उपासना सम्य ब्राह्मण स्वीकार नहीं करते हैं केवल शाकद्वीप (मग ब्राह्मण) ही इसकी पूजा करते हैं। सूर्य जगत् का स्वामी है अतः सूर्य मन्दिर का पुष्पसाम माघ कवि को दिया इससे सम्भावना होती है कि माघ कहीं शाकद्वीपी ब्राह्मण (मग ब्राह्मण) तो नहीं है क्योंकि सूर्यपूजक जो ही सूर्य-मन्दिर की उपासना का काम दिया था सचता है। भोज प्रबन्ध में और प्रबन्ध चिन्तामणि में भी माघ को सूर्योपासक बताया गया है। हिन्दुओं में मूर्ति-पूजा का प्रचार जब चल पड़ा तो यह मग प्रजा-साथ नदी आदि की भी उपासना होने लगी। प्रथम पुर्ण के श्लोक सन् ४६ में विकास संख्या का बणन है और नवम सर्ग के श्लोक संख्या १४ में तो संख्या की मूर्ति ही प्रस्तुत है।

इन धर्मों के विषय में मिलने का यही अभिप्राय है कि जिस समय महाकवि माघ विद्यमान थे वह राजपूत युग था। धर्मों के आक्रमण के बदलाव बीड़ धर्म चाहे पलायमान हो रहा था और उसके स्थान पर हिन्दू धर्म फिर से प्रसार पा रहा था बहिष्कृत वैजयन्त राजपूताना की ओर बढ़ा। इन धर्मों के प्रसार के उपरान्त भी पार्विक सहिष्णुता पर्याप्त रूप में विद्यमान थी। विचार-सहिष्णुता और समन्वय भारतीय संस्कृति के प्रधान लक्षण हैं और वे भारत के जयान और पतन और पुनरुत्थान के सभी युगों में किसी-न किसी रूप में दृष्टिगोचर होते रहे हैं।

यह हम जान-मान कर दृष्टि-निरोध करते हैं। भारतीयों का जीवन पैहू आमत प्रचार, आकरा रूप पुन पुन और दाबकर था। इस भाँति हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के समय जब बहुत से बीड़ हिन्दू हुए, तो बहिष्का और शाकाहार का धर्म भी साथ लाये। विन्ध्य धर्म में शाकाहार पाप समझा जाने लगा। मांस के प्रति बहुत विरक्ति हो गई थी। मरज्जी निराशा है कि ब्राह्मण किसी पशु का मांस नहीं खाते थे। स्मृतियों में भी ब्राह्मणों में मांस न खाने का विधान होने पर कुछ विद्वानी स्मृतियों के साथ के समय मांस खाने की धामा दी गई है। जने-जने मांस खाने की प्रवृत्ति फिर बढ़ी और ब्राह्मणों के एक भाग ने मांस बराल धारण कर लिया। राष्ट्रीय भारत की घरेला बहिष्कृत में मांस का प्रचार बहुत कम था। पिपुपान कथ बाध्य थे यद्यपि नूतन रूप में तो मांस खाने के लिए बोर्ड संकेत नहीं है विन्ध्य गाँवों धर्म क २६ और २६ के श्लोकों में इस बात की ओर संकेत बराल है। उनमें कहा

है कि बूझों की झुनझुट से निकले हुए किसी बरगोश को ठेसा धीर डंडा लेकर सोन चारों ओर मारते हुए फुट पड़े धीर एक व्यक्ति ने बड़े धात को उठाकर उस बड़े सख्खोश को फेंक दिया। मीड़माड़ को देखकर भागते हुए हिरण्यों का किसी अनुपकारी पुरुष ने यद्यपि पीछा नहीं किया—यदि बाघों में युनया वृत्ति का संकेत है, किन्तु बिघेव नहीं क्योंकि अभी तक कुछ बर्न की छाप हिन्दू धर्म पर भी। यद्यपि पारस्परिक युद्धों के रूप में हिंसक भावना प्रबल हो चुकी थी किन्तु नासाहूर को सामाजिक भावना अभी प्राप्त न हुई थी। मरिच का प्रचार भी भरवी यात्री सुलेमान के अनुसार नहीं था पर नास्वायन के कामगूज से प्राप्त होता है कि श्रीमन्त नागरिक सोन बाग बगीचों में जाते थे धीर वहाँ घासब घमका मर पीठे थे। महाकवि माव यदि हर्ष के कुछ ही वर्षों बाद के होते तो मरिच का प्रयोग सिधुपासबब काम्य में देखने को न मिलता किन्तु वे तो बाद के हैं [पाठ्यों सही कं अन्तिम चरण से नवनों के प्रथम चरण के] जब कुछ भावना परकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। इस समय राज पुत घोडाघों में मरिच-यान एक प्रवा सी चल पड़ी थी धीर ईस्वाघों की कुछ के समय घमका बिदेघयमन के समय में साव रखने का प्रयत्न हो गया था। श्री मोन्ना का मत है कि इतिवन्त की छात्राणी रानी मन्ना से उत्पन्न होने वाले मन्ना को पीने में अत्यधिक रुचि रखने वाले प्रतिहार राजपुत कहलाये। यही कारण है कि सिधुपास बब महाकाम्य में खुले रूप में मरिच पात तथा मरिच की बुकान का वर्णन मिलता है ईस्वाघों का वर्णन भी यही है।

आस्तीर्णतस्परचित्तावसथः क्षयेन वेद्याजनः कृतमवप्रतिकर्मकाम्यः

बिन्तानबिन्तमतिरापततो मनुष्यान् प्रमयग्रहीन्चरनिनिष्ट इवोपचारः ॥५॥ २७॥

चाहे इस युग के भारतीय भौतिक जीवन की धीर प्रसर हो रहे थे पर आध्यात्मिक विकास की धीर से भी वे विमुक्त न थे। पंचमहायज्ञ इहस्वों के लिए आवश्यक कर्तव्य था धीर अस्तिपि सत्कार तो बहुत बड़ा हुआ था। सिधुपासबब में भी भी हृष्ट्य द्वारा नारव के सत्कार का धीर मुचिष्ठिर द्वारा भी कृष्ण का सत्कार इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर मिलता है। यज्ञों में पशुहिंसा बौद्धधर्म के कारण कम हो चुकी थी। छत्रके छात्र यज्ञों का होना भी कम हो गया था परन्तु हिन्दूधर्म के धम्मुरव के साथ फिर यज्ञ आरम्भ हो गये थे धीर हवन करना फिर दिखाई पड़ने लगा था।

प्रतिशरणमशीर्ण्योतिरग्याहितानी विविबिहितविरिष्य सामिधेनीरधीर्य।

इत्तुगुरुदुर्दितोपध्वंसमध्वमु बर्येह तमयमुत्सीडे राधु आनाय्यमग्नि

॥चिनु० ११४१॥

साहित्य धीर विज्ञान की अत्यन्त उन्नति होते हुए भी साधारण जनता में रुढ़िपुत्र तथा धर्मपरिवास बहुत रहे थे। रुढ़िपुत्रा धीर धम्मबिदवास को विप्यास कहा गया है। एगुन धपधुननों की चली भी इसी कारण बनी। लोह जाड़ टोमों तथा भूत प्रेत आदि में विश्वास करने लगे। मात्तरी मादन धीर जीवबहो में हलवा वर्णन मिलता है। सिधुपासबब काम्य में भी जीवने चुकी द्रुत जाने आदि के धपधुनों का वर्णन है। उन्ना

स्त्रियाँ कहा जाता है यही निजी भी फिर भी उनमें यह मिश्रण भर कर गया था। उनमें पर्दाश्रया भी मिलती है जो पूर्व में न थी। राजाओं की स्त्रियाँ दरबारों में जाती थीं। श्रीनी यानी लिखता है कि जिस समय कुछ मिहिरकुस हारकर पकड़ा गया था उस समय शासकविराट की राजमाता सससे मिलने गई थी। [देखिये बाटर्स ग्राम मुबनम्बान, भिस्व १ पृ० २३६/८६] राज्यधी, विनासवती, अम्बादेवी आदि देवियों का वर्णन वर्णन करने का जाता है। डा० बोम्ब का कहना है कि मुसलमानों के जाने के बाद से पूर्व का प्रसार हुआ। मुसलमानों के आक्रमण सन १३२ के बाद से भीममात्र पर होने लग गये थे सिध पर तो उनका अधिकार हो ही गया था। इससे हमारे महाकवि माध जिन्होंने इस प्रथा का वर्णन अपने काव्य में स्वान-स्वान पर दिया है राजपूत युग के प्रमाणित होते हैं—

देखिये पांचवा सर्ग का १७ वां श्लोक—

मानाञ्जम परिजनैरवतार्यमाणा राशीर्नरापनयनाकुलसोविदस्ता ।

सस्तावमुष्टनपटा हाणसदयमाणवक्त्रधिय सभयकौतुकमीसते स्म ॥

विवाह के बंधन भी इस युग में बढ़ गये थे। पहले तो यहाँ तक था कि किसी के भी विवाह हो सकता था। प्रविहार बंध में हरिश्चन्द्र ब्राह्मण का विवाह नन्दा सत्ताणी से हुआ किन्तु जब राजपूत युग में पारपर नियम बन चुके थे। महाकवि माध ने तो स्पष्ट दिया नवम सर्ग के ८० श्लोक में "मोगमिवा" शब्द लिखकर। उन्होंने बताया है समान गोत्र में विवाह हो नहीं सकता। वही नहीं उस काव्य में रहेज प्रथा की भी बुरी भूलक है। सती प्रथा का बलन तो स्पष्ट रूप में है। रही इस समय तक आते-आते केवल बरेलु तथा बुलबाधीन बन गयी थी।

वैद्य भूषा आदि के सम्बन्ध में भाषे सविस्तार वर्णन दिया जा रहा है।

परम्परागत भारतीय वेशभूषा तथा भाव काव्य में उसका चित्र

साहित्य समाज का दर्पण है। जिस भाँति वह काव्य नाटक उपन्यास कहानी एवं एकांकीयों आदि के द्वारा अपने समय का चित्र उपस्थित कर देता है उसी भाँति कलाकृतियों सौन्दर्य के प्रवाधान तथा वेशभूषा आदि समाज के चित्र प्रकाशक उपस्थित करने में योग्य होते हैं। दोनों में भिन्नता केवल इतनी ही है कि एक साहित्यिक अपने धार्मिक माध्यम हैं। बुद्ध का स्वल्प प्रकट करता है और एक कलाकार सबनों विषयों मूर्तियों प्रवाधान के अनेक साधनों वेशभूषाओं तथा धर्मचरित्रों के प्रवाधानों के द्वारा उस बुद्ध के चित्र को सामने लाता है। पुण्य उत्सवों तथा इतिहासकार के लिए दोनों ही प्रकार की रचनाएँ अनिवार्यतः आवश्यक होती हैं।

मायकामीन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि यथुही ही यह बातचीत यदि हम समयों के इन प्रतीकों [वेशभूषा तथा वास्तुकला की धारणा] को धृक् रूप में स्पर्श करते हुए सिद्धपातबल महाकाव्य से हमका सामंजस्य स्थापित करते हुए उस बुद्ध के चित्र को उपस्थित न करेंगे। वेशभूषा तथा एकही नहीं रही। इसकी परिवर्तनशीलता सामाजिक प्रगति का बोध कराती है।

जैसे वहाँ प्रथा पर ध्यान भी मनुष्यों का विचार है कि इसका मूलपात मुसलमानों के आगमन पर ही भारत में हुआ था उसी भाँति सिद्धे हुए कपड़ों पर भी मनुष्यों की इष्टि सहसा उसी घटना की ओर जा पड़ती है जब मुसलमान भारत में आये और अपने देश से इस देश में ब्रिटेन हुए कपड़े लाये। कहा जाता है कि भारतीय बिना सिद्धे हुए कपड़ों का ही प्रयोग अपने देश पर किया करते थे अतः काव्यों में जोसी बाहर बुद्ध तथा पद्मी के ही बोधक धर्म चित्रित करने को मिलते हैं। हवाय यह देश कथ्य प्रमाण है अतः बीसे बरसों के पारस करने की प्रथा मही अति प्राचीनकाल से ही चलती हुई जा रही है। यह कहना ठीक नहीं है कि मुसलमानों के आगमन पर ही सिद्धे बरसों का प्रचलन हुआ। वैदिक युग से लेकर ईसा की ७ वीं शताब्दी तक तो इसके अनेक साहित्य से मिलते हैं। विषयों में भी सिद्धे कपड़ों का चित्र है। शिवजी के कंडुक तथा जीती बारण करने की बात जैसे साहित्य में पाती है जैसे मित्रिचित्रों और दूसरे विषयों में भी जनता आह्वान हुआ है। भारत एक विद्यालयक देश रहा है। इसके विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के बरसों के बारण करने की प्रथा रही है। इसके कुछ भाग हीनमय है जैसे पंजाब पंजाब और हिमाचल के निष्कटवर्ती प्रदेश तो कुछ अति उष्ण जैसे मराठ और ब्रह्मण प्रांत। धीरे प्रदेयवासी बीसे बरसों का प्रयोग न करके धीरे विचारणाई धीरे से लहे हुए सिद्धे हुए बरसों का प्रयोग करते रहे हैं। यह बात

प्रत्यक्ष हुई है कि विदेशियों के आगमन पर भारतीयों ने उनकी संवत्ति में से बस्त्रों के धारण करने की कला में परिवर्तन प्रत्यक्ष किये हैं। चिते हुए बस्त्रों का प्रयोग भारत में मुसलमानों के आगमन से बहुत पूर्व का है। यह बात नीचे दिये हुए विवरण में भी स्पष्टता से देखी जा सकती है।

प्राचीन ग्रन्थों के मुखों से यह कहते हुए सुना जाता है कि भारतीय संस्कृति एवं सम्प्रदाय के प्रतीक वे भित्तिचित्र जब धर्म गलाबस्ता में हमारे समक्ष हैं तो फिर हम इस बात को क्यों न स्वीकार करें कि हमारे देश में बस्त्रों के धारण करने की प्रथा भी ही और यदि भी तो बिना चिते हुए बस्त्र ही का उपयोग होता रहा होगा। यह तक प्राप्त ग्रन्थों के विपरीत है। संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश के ग्रन्थों में जो पर्वाण्ड सामग्री है और भित्तिचित्रों पर नर्तकियों आदि की चित्रश्रृंखला में जो देखने को मिलता है वह इस भ्रांति को दूर कर सकता है। सुषिका, स्थूल श्रोत्र श्रोत्र (बाना), तंतु (भूत) तंब (ताना) वेसन (करवा) प्राचीनताम (धाने खोताता) वाय (कुनकर) मकुल (हरनी) जैसे ग्रन्थों का प्रयोग इस बात को सिद्ध करता है कि भारत में प्राचीन काल से इन बस्त्रों का उपयोग होता था। बस्त्रों के एक नहीं बल्कि नाम हमारे कोर्वा प्रास्थायिकाओं एवं वैदिक बौद्ध वर्ण ग्रन्थों में आए हैं।

वैदिक साहित्य के देश लेने पर ऐसा लगता है कि क्या स्त्री और क्या पुरुष दोनों ही अपने शरीर को ढाँकने के लिए उपबसन, पर्माणुन आदि एक प्रतिभि (स्तनपट्ट) चण्डीय, कूरिलोपाय [कूटे] उपानह [कूटे] काम में लाते थे [वैदिके प्राचीन भारतीय चित्रश्रृंखला, डा० मोतीचन्द्र भारतीय भण्डार प्रयाग] आम्बालायन भीतसूत्र में हमको कपास का सर्व प्रथम प्रयोग देखने को मिलता है। मोहनजोदड़ो की सम्प्रदाय में भी बस्त्रों का प्रयोग है यद्यपि चिते हुए बस्त्र प्रति धर्म भाषा में देखने को मिले हैं। यौगकालीन कोरिन्थ ने इस भाँति के ऊनी कपड़ों का वर्णन किया है। कुन्तल कुलों की छाम से बने हुए बस्त्र कुन्तल कहलाते थे मुसायन बिकने होते थे, कहीं पर सफेद होते तो कहीं पर रंग बिरंगे। काशी और पीठ के धोम प्रसिद्ध थे। इस समय तक विदेशी कपड़े भी आने लग गये थे औरकार देश का कोष्य और चीन पट्ट रेशमी कपड़ों में अच्छे बड़े आते थे। कपड़े की रंगाई विन्धु कुन्तल और कुन्तल के रंगों की होती थी। इस काल की वेदाध्याय क वय मय अभिलिखों की मूर्तियों और मयुत के धर्मचित्रों में मिलते हैं। पीछे युगकाल में भी बस्त्रों के धारण करने में बहुत कुछ परि वर्तन दिखलाई पड़ता है। मज्जिमा के भित्तिचित्र नंबर की मूर्तियाँ मयुत की मूर्तियाँ समरावती और मोली के धर्मचित्र हमके प्रमाण हैं। कुशाख युग में चण्डी नरुमन भी बनने लग गई थी ऊनी और रेशमी कपड़ों में भी सुन्दरता परिलक्षित थी। काशी को मलमल बहुत ही बारीक होती थी। अब तो पहिने के कपड़े बहुत कीमती बनाय जान लग गये थे। कपड़े का व्यापार होने लग गया था। फिर पर विभिन्न प्रकार की बंधी हुई बर्तिकाँ व साके बने हुए बिज मिले हैं तथा कोठी बहर और जलरीय देश के जाग पर रखे थे कंबुक धारण करने की प्रथा इस समय तक भी चलती हुई जा रही थी। विन्धु कंबुक साड़ी और कुपट्ट धारण दिया करती थी। अब तो बस्त्र भी भारत में रहने लग गये थे मय यद्विना भार

ठीस घोर युतानी दोनों नाँव की बेशूचा बारण किया करती थीं। कंचुक, बपर घोर कमरबन्द घोर सिर पर टोपियाँ यह युतानी बेशूचा है किन्तु भारतीय खेनिकाएँ साड़ी कमर बन्द घोर बाहर पहनती थीं। इसी नाँव बिबेसी राजा घोर सिपाही कंचुक समवार, टोपी घोर चूटे पहिनते थे। ईरानी घोर एक टोपियाँ पहिनते थे। कुपाण युग के पश्चात् लहवा भी प्रयोग में आने लगा। मधुरा की भूतियों में एक प्यामिन लहवा पहिने हुए हैं। लहवा कमर पर सीपा है घोर निचले भाग में केवल एक बेल पड़ा है। [प्राचीन भारतीय बेशूचा डा० मोतीचन्द्र भूमिका पृष्ठ १५ पर देखिये]। स्थियाँ कभी-कभी घोड़नी भी घोड़ सेती थी। मुख्य चूड़ीवार पनामे के साथ डीसे बाँह का कंचुक घोर टोपी भी पहिनने लये थे। बेशूचा प्रया प्राक् गुप्तयुग से ही चल पड़ी थी। गुप्तयुग भारतीय बेशूचा में समन्वय का युग है। जिसमें बिबेसी बस्त्रों के पहिराव का भी भारतीयकरण हो गया था। गुप्तयुग के मेकर हर्ष के समय तक का इतिहास तो धाम पर्याप्त रूप में प्राप्त है। बाण भट्ट के हर्ष चरित में अनेक बहुमूल्य वस्त्रों का बिबरण आया है।

डा० मोतीचन्द्रजी अपनी पुस्तक प्राचीन भारतीय बेशूचा में लिखते हैं कि गुप्तयुग के सिक्कों में स्थियाँ साँझियाँ कंचुक स्तनपट्ट बाहर घोर कूर्पासक पहिने दिखलाई गई हैं। एक जगह एक स्त्री कुरवा घोर बाबरा पहने दिखाई गई है धाने घोर भिबते हैं धमन्दा के चिन्नों में राजियाँ साड़ी घोर बचरी पहिने हुए हैं। साड़ी बहुधा बाटीवार है। कहीं के बोली भी पहने हुए हैं। एक जगह राजी बोली घोर कामदार बचरी पहने हैं घोर एक जनह कंचुक घोर स्तनपट्ट भी पहना गया है। बचरी गोठवार भी होती थी। बोली के साथ छोटी बचरी भी पहनी जाती थी। [पृष्ठ २९]

बिबेसी बालियाँ लहवे पहिनती थीं जिनके अन्तर लयी रहती थी। बोलियों वर मोली व मोटे लने रहते थे। गुप्तयुग के पूर्व मुख्य बोली पहिनते थे। बोली पहिनने की विभिन्न रीतियाँ हैं।

डा० मोतीचन्द्र ने बड़े परिश्रम से भारतीय बेशूचा के विभिन्न चित्र अपनी पुस्तक में दिये हैं जिनमें पृष्ठ २१९ का १८४ वाँ चित्र में स्पष्ट रूप से धाम के से बपरे व घुनड़ी [घोड़नी] संकेत है। उन्होंने इसको गुप्तयुग का बताया है। इसी नाँव बोली बारण किए हुए दो चित्र पृष्ठ २१७ पर हैं बड़े अधिकारी स्थियों के चित्र एक बोली घोर स्तनपट्ट पहिने हुए हैं।

कमर में करपनी, हाथों में कलाई पर एक दो बागुबाने पहने [देखा पृष्ठ २२६ पर ४११वें चित्र है] गने में कंठा कानों पर कर्णपुन हाथों में मुञ्जवन्ध पैरों में बड़े बड़े कड़े थे वसंकार प्रायः उपवीर्य में आते थे।

गुप्तकाल तक पुरुषों की बेशूचा में बोली घोर पगड़ी का समानेष्ट अधिकार रहा है। राजाओं की बेशूचा बहुमूल्य होती थी। बाटीवार गुप्तर बोली होती जिस वर पड़ी हुई करबनी घोर को घोर भी नुचोमित करती थी। ये राजा बड़ाब्यार बिबूट मुट्ट

धारण करते थे। चैतों के सम्प्रसारण तक सटवटा हुआ बुपट्टा और कमरबन्ध के छोर सटके हुए रहते थे। बिदेसी यादगारों की बेलभूषा में बड़ाक टोपी और कोट होते थे।

उपर्युक्त वेशभूषा का बर्णन भूतियों, चिन्तों, धर्मचिन्तों और भित्तिचिन्तों के धामार पर प्रस्तुत किया गया है। इन भूतियों भुजा के चिन्तों तथा सग्न स्थानों के भित्तिचिन्तों के धामार पर यह निष्कप निकाला जा सकता है। हर्ष कास तक के चिन्तों में सुसज्जित महम करीनेदार नजर देनेकी क्षातियों वाले बर्णों वाले दास-दासी भिन्नते हैं तथा राजसभाओं के चिन्तों में प्रसापन के विभिन्न भाँति के सब दृश्य दर्शकरण के लिए नामा प्रकार के बटन भटक वाले धामूपण तथा बहुत ही बारीक सुन्दर रंग बिरंगे वस्त्रों का उपयोग करती हुई सर्वस्वी दृष्टिपात्र होती हैं। वे चित्र सम्पन्न लोगों की वेशभूषा को बताते हैं। हर्ष सामारण की वेशभूषा बहुत ही सारी थी। मुख्य केवल छोटी बुपट्टा व छाछ का पन्नी पहनते थे। त्रिचा केवल छोटी और बुपट्टा का प्रयोग करती थीं। उनके चिर के केश पाछ मुँह हुए न होकर एक फीते से बँधे हुए रहते थे। चिन्तों में बड़ी-कही पर घाघरे व सुपड़ी पहिने हुई त्रिचों के भी दृश्य हैं। संस्कृत धर्मों के कुछ चरित्र बड़ी प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे ऊपर के चित्रण की सत्यता और भी स्पष्ट हो जायगी।

स्त्रियों का उत्तरीय वस्त्र—

जहाँ से “आसनाटकस्वामचक्रम्” में योप दासायों के उत्तरीय वस्त्रों को गरी में खिचकाया। [संज्ञान्त यमितीत्तरीयवस्त्रम्]। “अभिचारक” नाटक में नायिका उत्तरीय वस्त्र को जाली के रूप में काम लाती है। (देखिये पञ्चम धंरु का ११वाँ श्लोक)

कामिदास ने रघुवंश के १९वें सर्ग के ४१वें श्लोक और १७वें में भी उत्तरीय वस्त्र का प्रयोग किया है। कुमारसम्भव के पंचम सर्ग के १९वें श्लोक में ‘रघुनन्दनवस्त्र’ शब्द आया है। सकुन्तला नाटक में ‘उत्तरीय’ शब्द व्यवहृत हुआ है। [देखिये प्रथम अष्टम और अष्टम धंरु] अनुसंहार में कहा है अर्धतन्त्रु में त्रिचा बहुत ही बारीक नारंगी रंग का वस्त्र बुचों की दृष्टि के लिए पहना करनी थी। [पठ का अनुर्व श्लोक] फिर प्रथम क ७वें श्लोक में कहा है—रत्नपुष्प शर्मायुक्तम्। श्लो के रत्नकुमार चरित में चानी वसुमती उत्तरीय वस्त्र का फटा बासकर भरना चाहती है [उत्तरीयाचैन वसुमती विरचय]। दश बुधार चरित में उत्तरीय वस्त्र के लिए चित्तमी ही बार कहा गया है। भारवि ने भी किराट में वसुर्व सर्ग के २८ श्लोक में ‘उत्तरीय’ शब्द के लिए वंशज वस्त्र का प्रयोग किया है। एक स्थान पर ‘हृत्तरीयम्’ प्रथमम् उभायामात्राणि ध्याया है। मनुस्मृति भी शृङ्गारप्रसंग में स्तनोपरीदेन वस्त्र का प्रयोग किया है।

भजभुति ने महाभारत कलम में कहा है कि गीता का उत्तरी-वस्त्र धाताना कार्य के जाने समय जो गिरा उगने शंभुर्ग का नाम बारण्य कर निश। [देखिए भारवि प्रथम क ४ पृष्ठ १८२] मातर्गामाषय मे स्तनोपुच वस्त्र आया है। (देखिये तृतीय और मन्त्रम धंरु)।

इसी प्रलेय में महाकवि माघ के विष्णुपालन में पाये हुए कुछ स्थान हैं

प्रियममि कुसुमोद्यतस्य बाहोर्नवनक्षमण्डनचारु मूममम्या ।

मुद्गरितर कराहितेन पीनस्तनसटरोधि तिरोवर्धेऽनुकेन ।७-३२॥

ऊपर के श्लोक में उत्तरीय वस्त्र के लिए 'अंगुल' शब्द प्रयोग किया है ।

"प्रसक्तकुचवधुरोऽरुरः प्रसभविभिन्नस्तनोत्तरीयवग्धा ।

धवनम दुदरोचद्वयसहकृत स्फुटतरमक्षयगभीरराशि मूसा ।७-३४॥"

ऊपर के श्लोक में उत्तरीय वस्त्र शब्द प्रयोग किया है । इसी भाँति बाण्डवर्धे के १२वें श्लोक में 'उत्तरीयम्' शब्द के १०वें श्लोक में कौमुद्वपुः कुचकृतमर्चि वासा उत्तरीय वस्त्र के लिए और तैरहर्धे के १६वें श्लोक में 'पवनानुगतवसनात्मक्या' का व्यवहार कर उत्तरीय वस्त्र का वर्णन किया है ।

अमरकृत में "अष्टम् कृन्तुमोत्तरीयं" कहा है । 'अयदेव' 'उरधि कुलम्' बाण्डवर्धे के १ श्लोक में और दूसरे के १२वें श्लोक में उत्तरीय का वर्णन है । श्री हर्ष ने नैषध के १८ शर्ष के १८वें श्लोक में और १३वें शर्ष के ७४वें श्लोक में 'स्तनोद्युक्तम्' का प्रयोग किया है ।

संक्षेप में उत्तराखण्ड उत्तरीयवसन उत्तरीयवासस उचरंगुल संक्षेप स्तनोद्युक्त स्तनोत्तरीय ये शब्द स्तनपरिधान के लिए व्यवहृत हुए हैं ।

रिक्तों के स्तनों पर रहनेवाली जोती (कंजुकी-शालीय कांजली)—हाल लिखित गाथा सप्तसती का २३वाँ श्लोक देखिये उसमें 'कुसुमरागपुक्त कंजुकाभरणमात्रा' से तात्पर्य है कि स्त्रियों की स्तनों पर रहनेवाली जोती रबीन होकर उनके स्तनों की सुन्दरता को बढ़ा रही है । प्राये ऋतुर्व का १६ श्लोक में भी नीले रंग की जोती का वर्णन है जिसमें पीनकाय स्तन घूरे न आकर कुछ बाहरकी दिखलाई पड़ रहे हैं । छप्पम के २०वें श्लोक में तो जोती का वर्णन क्या है उसकी एक परिभाषा ही कर दी गई है ।

अनु सहार के कूर्पासक (प्रांतीय कांजली) को हेमचंद्र और विष्णु में प्रारण करने के लिए कहा है (देखिये ४ का १६वाँ ३ का ५वाँ) ऋतु हरि ने "वसन्तु सत्कंचुकेषु" में कंजुक शब्द बही है जो कूर्पासक है । यह जोती सामने से बाँधी जाती है । कांजली की भाँति पीठ पीछे से नहीं ।

बाण भट्ट ने हर्षचरित में राज्यभी के विवाह समय में जोती के बनाने का भी उल्लेख किया है (हर्ष चरित पृष्ठ २०१) स्वागीपवर की रिक्तों कंजुकी पहिना करती थीं (हर्ष चरित पृष्ठ १८५) ।

विष्णुपालन में महाकवि माघ विष्णु की हुई जोती के निवासने का वर्णन कर रहे हैं—

प्रस्वेदवारिसिखेपथियस्तमह्ये, कूर्पासकं क्षत्रनसस्तमुरितापरी ।

भाविवर्मवदधनपयोधरमाहूमूला, पातोदरी युवहयां क्षणमुस्मवोऽभूत् ॥२३॥

यहाँ "कूर्पासक" शब्द का प्रयोग हुआ है । बाण्डवर्धे के २०वें श्लोक में 'कंजुक'

पद्य व्यवहृत हुआ है। देखने के १२वें श्लोक में कौण्डि शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें सूर्य के ४२ वें श्लोक में स्तारों के उल्टेबासी जोसी के बीच लिए जाने का वर्णन है।

यमक्यायक में भी 'कंचु' शब्द आया है (देखिये पंचम का ११ वाँ) मणोरमन के दरबारी कवि बाहुपतिराज ने स्वान-स्वान पर कांजभी के लिए प्राकृत शब्द का व्यवहार किया है। राजदेवरा ने कपू रमंजरी के प्रथम के १३ वें में कूर्पासक का प्रयोग किया है, छिर प्रथम के २०४वें में कंचुसिका का प्रयोग है। संक्षेप में जोसी को कंचुक, कंचुसिका, कूर्पास, कूर्पासक इन शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

स्त्रियों की अशोकरज बासी वेशभूषा—

पादा सप्तशती के ७ वें के ४६ वें श्लोक में अरनम्यि का उल्लेख है जिसके द्वारा अशोकरज अपनी स्थिति में रहता है। यह अशोकरज इस रूप में पहना जाता है कि उसका एक भाग ऊपर के भाग को आच्छादित किए रहता है (बसादाकृत्स्नार्पास्तप्रस्थिते)। यदि स्त्री केवल अशरीर वस्त्र के अन्त के भाग को ही जो डीसा पड़ा रहता है पकड़ लेता तो स्त्री उस पकड़े हुए वस्त्र को छोड़ कर वहाँ से भाग जाती। इस रूप में तो यह एक भाँति की छाड़ी ही हो सकती है, चापरा नहीं। अशोकरज इस भाँति पहना जाता है कि वह नाभि को ढकने।

काशिका में विकर्मोपधीय में राजा जब उर्मरी की खीज में है तो उसरी उपमा उर्मरी के नीचे डीसे पकड़ कर लिसकते हुए सफेद अशोकरज से डी है (शंक १, ४ के १२ को देखिये)। रघुवंश १६ वें के सूर्य ११ वें श्लोक में वस्त्र के बिचलने का वर्णन है। अशोकरज वस्त्र कहलाया है (धनुष्मता के ७ वें शंक के पंचमहास्य के २१ वें श्लोक को देखिये) इसकी निबन्धन भी कहा जाता है (धनुष्मता ४ वें देखिये)। शत्रु संहार में अशोकरज के रंजीत धीर रंजनी होने का उल्लेख है [सद्यमकीयेयविभूषितोऽ] शत्रुसंहार के पंचम का ८ वाँ श्लोक देखिये। धृष्टकटिक न तो वस्त्रों के होने की बात पार्स है। बादरत कहता है कि वस्त्रसेना के दोनों वस्त्र पानी से भीम गये हैं [बाधसी] अतः विदूषक को कहता है कि उसके बहिनने के लिए दोनों ऊँची भली के वस्त्र [प्रधानवाससी] से आधो [धृष्टकटिक पंचम शंक १८]। ये दोनों वस्त्र तो बादरत के वहाँ से श्री द्विजे जा सकते थे यदि छिने हुए न होते किन्तु इनमें एक निभा हुआ धीर दूसरा मोड़नी के रूपाला होया। आलोचकों का कहना है कि इनमें छाड़ी का रूप हो जिसके पहिन सेने पर मुँहों में से एक तो गुला हुआ ही रह जाता है अतः वनों से एक का भीम जाना धीर दूसरे का न भीयना रत्नाभादिक है। इस भाँति दोनों ही निभा छिने हुए थे। पापरे का रूप न था।

धनुष्मार वस्त्र में भी दो वस्त्रों के पहिनने का उल्लेख आया है जब एक बैसा एक बाधु की सेवा में धायम में दिखलाई जाती है। भारवि के क्रियाशार्ङ्गनीयम् में धनुक धीर पश्यरीय शब्द आये हैं—

सोमदृष्टि वदनं दयितायाऽधुम्यति प्रियतमेरमसेन ।

सोदया सह विनीविमितम्बादनुकं विधितत्रानुपदे ॥६४७॥

इसी प्रसंग में महाकवि माघ के शिषुपालवचन में पाये हुए कुछ शब्द हैं

प्रियममि कृत्सुमोद्यतस्य बाहोर्नवनक्षमण्डनबाहू मूलमम्या ।

मुहुरिवर कराहितेन पीनस्तनतटरोधि तिरोवर्धेऽशुकेन ॥७-१२॥

ऊपर के श्लोक में उत्तरीय वस्त्र के लिए 'अशुक' शब्द आया है ।

'प्रसक्तमकुचवन्धुरोद्धुरोः प्रसभविमिन्नतनूत्तरीयमम्या ।

धवनम दुयरोद्धयसहकृत स्फुटतरसद्व्यगभीरराभि मुसा ॥७-१४॥'

ऊपर के श्लोक में उत्तरीय वस्त्र शब्द आया है । इसी भाँति प्यारुवें सर्ग के १२वें श्लोक में 'उत्तरीयम्' आठवें सर्ग के १०वें श्लोक में कौसुमपुष्प कुचकुम्भसंवि बाहू' उत्तरीय वस्त्र के लिए और प्यारुवें सर्ग के १९वें श्लोक में 'पवनबाधपूतवसनमन्यैक्या' का व्यवहार कर उत्तरीय वस्त्र का वर्णन किया है ।

अन्यत्रोक्त में "अष्टम् कृत्सुमोत्तरीयम्" कहा है । 'वयरेव' 'उरसि पुनम्' प्यारुवें के १ श्लोक में और दूसरे के १२वें श्लोक में उत्तरीय का वर्णन है । वी हर्ष ने नैषध के १६ सर्ग के १५वें श्लोक में और १३वें सर्ग के ७४वें श्लोक में 'स्तनोद्युक्तम्' का प्रयोग किया है ।

संक्षेप में उत्तराखण्ड उत्तरीयवसन उत्तरीयबाहू उत्तराद्युक्त संभ्याग स्तनोद्युक्त स्तनोत्तरीय ये शब्द स्तनपरिधान के लिए व्यवहृत हुए हैं ।

स्त्रियों के स्तनों पर पहनेवाली जोड़ी (कञ्चुकी-ग्रामीय काँचली)—हास बिबित गाथा सप्तधरी का २१वाँ श्लोक देखिये उसमें 'कुम्भरागमुक्त कञ्चुकावरलपाना' से तात्पर्य है कि स्त्रियों की स्तनों पर पहनेवाली जोड़ी रबीज होकर उनके स्तनों की सुन्दरता को बढ़ा रही है । आगे अष्टम का २९ श्लोक में भी नीले रंग की जोड़ी का वर्णन है जिसमें पीनकाम स्तन घूरे न आकर कुछ बाहरनी दिखलाई पड़ रहे हैं । सप्तम के २०वें श्लोक में तो जोड़ी का वर्णन क्या है उसकी एक परिभाषा ही कर दी गई है ।

अष्टु संहार के कूर्पासक (घातीय काँचली) को हेमन्त धीर सिधिर में बाण करने के लिए कहा है (देलिये ४ का १९वाँ १ का ८वाँ) अर्जुन ने "वसन्तु चतकञ्चुकेषु" में कञ्चुक शब्द बोझा है जो कूर्पासक है । यह जोड़ी सामने से बाँधी जाती है । काँचली की भाँति पीठ पीछे से नहीं ।

बाण भट्ट ने हर्षचरित में राज्यभी के विवाह समय में जोड़ी के बनाने का भी उल्लेख किया है (हर्ष चरित पृष्ठ २०१) त्यागीस्वर की स्त्रियाँ कञ्चुकी पहना करती थीं (हर्ष चरित पृष्ठ १८८) ।

शिषुपालवचन में महाकवि माघ बिपकी हुई जोड़ी का निशाने का वर्णन कर रहे हैं—

प्रस्वेदवारिचविषोपविपकत्रमद्गो कूर्पासक दातनससतमुरिरागरी ।

भाविर्भवत्पनपयोधरबाहुमुसा दातोदरी मुबहता दाणमुत्सवोऽभूत् ॥२१॥

यहाँ "कूर्पासक" शब्द का प्रयोग हुआ है । प्यारुवें सर्ग के २ वें श्लोक में 'कञ्चुक'

सम्बन्धित हुआ है। ऐतह्य के १२वें श्लोक में कौष्य-शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें सर्ग के ४२ वें श्लोक में स्तनों के डकनेवासी जोसी के लीज लिए जाने का वर्णन है।

अमरकशतक में भी 'कञ्जुक' शब्द आया है (देखिये पंचम का ११ वाँ) यशोधर्म्म के दरबारी कवि बाकपतिराज ने स्वाम-स्वाम पर कौचसी के लिए प्राकृत शब्द का व्यवहार किया है। राजसेनर ने कर्पूरमंजरी के प्रथम के ११ वें में कूर्पासक का प्रयोग किया है, फिर प्रथम के २०७वें में कञ्जुमिका का प्रयोग है। संक्षेप में जोसी को कञ्जुक, कञ्जुमिका, कूर्पास कूर्पास इन शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

स्त्रियों की अघोबरन वासी वेशभूषा—

बाबा सप्तशती के ७ वें के ४६ वें श्लोक में वस्त्रधरि का उल्लेख है जिसके द्वारा अघोबरन अपनी स्थिति में रहता है। यह अघोबरन इस रूप में पहना जाता है कि उसका एक भाग ऊपर के भाग को आच्छादित किए रहता है (कमारकट्टवत्कार्यान्तरस्थिते)। यदि प्रेमी केवल उत्तरीय वस्त्र के अन्त के भाग को ही जो ढीका पड़ा रहता है पकड़ लेता तो स्त्री उस पकड़े हुए वस्त्र को छोड़ कर वहाँ से भाग जाती। इस रूप में तो यह एक भाँति की घाड़ी ही हो सकती है, चापरा नहीं। अघोबरन इस भाँति पहना जाता है कि वह नामि को ढकते।

बामिदास ने विक्रमोत्तरीय में राजा जब उत्तरी की खोज में है तो उसकी उपमा उत्तरी के नीचे ढीले पड़कर खिसकते हुए खड़े अघोबरन से की है (श्लोक १४ के १२ को देखिये)। रघुवंश १६ वें ने सर्ग ६२ वें श्लोक में वस्त्र के बिपकने का वर्णन है। अघोबरन वस्त्र कहलाया है (धनुस्तला के ७ वें श्लोक के पंचमहृदय के २१ वें श्लोक को देखिये) इसको निबधन भी कहा जाता है (धनुस्तला ४ में देखिये)। ऋतुसंहार में अघोबरन के रंगीन और देवनी होने का उल्लेख है [सुराजकीधेयविभूतिलोर्ष] ऋतुसंहार के पंचम का ८ वाँ श्लोक देखिये। मृच्छकटिक म जो वस्त्रों के होने की बात आई है। आश्रय कहता है कि बन्तसेना के दोनों वस्त्र पानी से भीग गये हैं [बावरी] पर विदूषण को कहता है कि उसके पहिने के लिए दोनों ढीली भाली के वस्त्र [प्रमानबावरी] में जाओ [मृच्छकटिक पंचम श्लोक १८]। ये दोनों वस्त्र तो आश्रय के यहाँ से भी दिये जा सकते थे यदि सिते हुए न होते किन्तु इनमें एक मिठा हुआ और दूसरा थोड़ीनी के रूपवाला होता। आलोचकों का कहना है कि उनमें घाड़ी का रूप हो जिसके पहिने सेने पर नुचों में से एक तो गुना हुआ ही रह जाता है परन्तु दोनों के एक का भीग जाना और दूसरे का न भीगना स्वाभाविक है। इस भाँति दोनों ही बिना सिते हुए थे। चापरे का रूप न था।

रघुनारायण में भी दो वस्त्रों के पहिने का उल्लेख आया है जब एक बेरया एक घाघु की सेना में प्राथम में दिखासाई जाती है। आर्य के क्रियातार्जुनीयम् में धनुष और पन्थरीय शब्द आये हैं—

सोसहृष्टि वदनं दयितायादभुम्यति प्रियतमेरमसेन ।

प्रीडया सह विनोबिनितम्बादंगुण विपिततामुपये ॥१४७॥

ह्रीत्तया गमितनीवि मिरस्यम्भन्तरीयमवसम्भितकांभि ।

मण्डसीकृतपृष्ठस्तमभार सस्वणे वयितया हृयमेव ॥६४८॥

इस उपर्युक्त श्लोक से तो स्पष्ट है कि अयोध्या का पतन (लहरो) का रूप है जिसमें नाका पड़ा हुआ है जो पति बैराग्य को दिया गया किन्तु तापही से रुक गया । और देखिये—

सरमसमवसम्भ्य नीलमम्भ्य विममितनीवि विलोममन्तरीयम् ।

अभिपतितुमना ससाध्वसेव श्रुतरसनागुणसंदितावतस्ये ॥१०५४॥

नीली कुल गई अत अयोध्या को नीला या किरक गया ।

किरातार्जुनीयम् में भारवि ने अष्टम सर्ग के १६वें २४वें तथा दशम सर्ग के ४२वें श्लोक में भी अयोध्या का वर्णन किया है ।

मत्स्य हरि ने 'मंजिहवाधोमृता' कह कर सर्गों में स्त्रियों के साथ रंग के अयोध्या का वर्णन किया है ।

बाण राक्षसी के विवाह के लिए रचे हुये अयोध्या का वर्णन करता है । रामावली में भी ऐसा ही वर्णन आता है ।

मात्र कवि पिण्डपालक में दो बरसों का वर्णन कर रहे हैं । श्री कृष्ण को देखने की उत्सुकता में हनूमन्त्र की स्त्रियाँ कितनी ही ऐसी बातें कर बैठती हैं जो उपहास के योग्य हैं । उनमें से एक तो यही है कि कुछ स्त्रियाँ दोनों बरसों (उत्तरीय और अयोध्या) को इस रूप में पहिन लेती हैं जो हँसी दिाने योग्य है अयोध्या को वह ऊपर रख लेती हैं और उत्तरीय को नीचे । उत्तरीय का अर्थ यहाँ कुशाग्रुक है और अयोध्या परिधान है (देखिये पिण्डपालक के १३वें सर्ग का ३२वाँ श्लोक) इससे तो यह अर्थ स्पष्ट होता है कि दोनों बरसों में भिन्नता अवश्य है अथवा हँसी की बात ही कौनसी भी यदि दोनों का रूप ओटी जैसा होगा ? फिर देखिये—

करकदमीवि वयितोपगती गमित त्वराविरहितासमया ।

लण्डहाटकविसा सहस्रस्फुरद्भूमिति वसन वनसे ॥६४९॥

प्रियतम के सहसा आ जाने पर धीमतापूवक आसन छोड़कर उठती हुई किसी मुन्दरी का वस्त्र जब छूट गया तब उसने मुरझा अपने हाथों से नीली (गाँडे) को धँक लिया । इस प्रकार बाण भर के लिए मुखर्ष की शिला के मुख्य शतकी बभरती हुई दोनों रंभायें दिखाई पड़ गई और फिर उसने अपनी साड़ी पहिन ली यहाँ पर अयोध्या के लिए 'वसन' स्पष्ट आया है । और देखिये—

अप्रभूतमत्तनीयसि तन्वी कांक्षिषाम्नि पिप्पिषेवगरोद

दौममाकुसवरा विषयय आस्रसस्वममीष्टमेन ॥१०८३॥

प्रियतम हाथ किसी कुजोरी मुन्दरी या वस्त्र के रंभत के सीक्ने पर जब प्रियास

करपनी का स्थल [सह प्रवेश] उपर्युक्त गया तो वह अपने बचन हाथों से एक उस भाग को हटाने वाले अपने इन्द्रज को खींचने लगी। घाटवें सग के दूठे रसोक में 'कौटोयं वनदपि पाङ्गतामस'। उससे त्रिगमितनीति नीरजादया गोवी बंधन फिर भी छीसे हो गये धीरे धुपटा नीचे की ओर बिसकने लगा। संतोष में प्रयोक्ता के लिए अम्बर, प्रभुत धन्तरीय अपनीमुक्त निवसन परिधान वसन वस्त्रम्, वासस् धीरे सीति भावि शब्द साहित्य के प्रयोगों में व्यवहृत हुए हैं।

स्त्रियों की करपनी का वर्णन—

मुद्रसूक्तिक में "सापविचित्रवर्चिरम् रसनाकसापम्" वस्तुतः रसना की करपनी के लिए आया है। कालिदास ने करपनी का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। मेघदूत में सरिता के तल पर बठी हुई को चिड़िया बिस्मा नहीं थी उसकी कल्पना सरिताकूपी स्त्री पर पड़ी हुई करपनी से की गयी है। कांची शब्द का प्रयोग हुआ है। रघुवंश में ११वें सर्ग का ४२वाँ १०वें सर्ग का ८वाँ ११वें सर्ग का ४० और ४३वाँ और कुमारसंभव में पहले सर्ग का ३८वाँ ८वें सर्ग का ८१वाँ ३रे सर्ग का ३३वाँ तथा आनुसंहार में १ का ६ठा और ६ का २४वाँ श्लोक मेखला और करपनी के लिए आया है।

मासिकामिमिष में रसना शब्द प्रयुक्त हुआ है।

रघुकुमार खण्ड में भी रसना शब्द चार पाँच स्थानों पर है।

किरातार्जुनीयम् में भारवि 'कांची' शब्द का प्रयोग करते हैं (द्विष्टि किरातार्जुनीय के ८वें का ३१वाँ १८वें का ४८ वाँ १०वें का ३४वाँ और ८वें का २३वाँ श्लोक।

भर्तृहरि के शृङ्गारसाठक में 'मेखला' शब्द का प्रयोग किया है। वालु ने कादम्बरि में 'मलिमेखला और 'कांचीदाम' 'महाहर्षमेखला' शब्दों का व्यवहार किया है। प्रबभूति ने मानवी माध में 'मेखलावसन' शब्द का और माध कवि ने विष्णुपात वध के १०वें के ६२, ८३ ८३वें और १३ के ३२ ३४वें में मेखला कांची, कंचन-कांची शब्दों का प्रयोग किया है।

पुरुषों की वेशभूषा संस्कृत के ग्रन्थों के अनुसार

छिरो वस्त्र—

पवनस्यानुकूलरवात्प्रार्थनासिद्धिरासिनः ।

रत्नोमिस्तुर्योत्कीर्णस्फुष्टासनवेष्टनी ॥१४२॥ रघुवंश ।

यानी मुचल्लिणा बुने छिर भी घतः अत्रक धीर राजा दक्षीण छिर पर पगड़ी बांधे हुए था घत 'वेष्टन' शब्द का प्रयोग हुआ है ।

छिर देखिये—

छमरप्यसमाधायोन्मुख छिरसा वस्त्रनद्योमिना सुतः ।

पितरः प्रणिपत्य पादयोरपरिधायमयावतासतः । ८ १२ रघुवंश ।

अत्र छिर पर पगड़ी बांधे हुए हैं 'वेष्टनयोमिना छिरसा' धाया है । मृच्छकटिक में चकार ने अपने पगड़ी बांधे हुए छिर से वसन्तसेना के चरणों को स्पर्श करते हुए कहा— छिरसा सवेष्टनेन (देखिये मृच्छ २४० अंक का ११वीं)

बाण भट्ट के हर्षचरित के पृष्ठ ३० पर प्रद्युम्नोपवीतविक्रमिणः सुमेरो कारम्बरी के पृष्ठ २१५ पर 'नवमकुलपल्लवकस्त्रिषोपवीतवस्त्रि' इत बात का प्रमाण है कि छिर पर पगड़ी रखी जाती थी संक्षेप में महाभारत भाग १ पितृपातवच में श्रीकृष्ण के मस्तक पर मुकुट रखा है जो रत्न शिखरी कर्णों से एक पड़ा है देखिये—

वित्राभिरस्योपरि मीमिमात्रां भामिर्मणीनामनणीयसीमि ।

अनेकधातुभृत्पितादमराशोर्गोविर्धनस्याऽकृतिरम्बकारि ॥३४॥

मुकुटोद्गुरजित परागममयः स न यावदापि छिरसा महीतमम् ॥१३१॥

इस छिर पर कारण करने के वस्त्र के लिए उष्णीष किरीट, वट्ट वेष्टन, वेष्टनपट्ट छिरोवेष्टन धादि उन्नों का प्रयोग हुआ है ।

उत्तरीय—

इतवाक्यम् नाटक में भात ने दुर्जयन को अपने रेशमी वस्त्र उत्तरीय के रूप में पहनाया है । कामिदास के कुमारवंश के टीक में सर्व के ११वें श्लोक में पुरों के उत्तरीय का बस्त्रोक्त है ।

हृष्यचरित में हृष्य जब लौटता है और अपने पिता की स्थिति से दुखी होता है तो व्याकुलता में बिस्तर पर पड़ जाता है और अपने देह को उत्तरीय से ढक लेता है 'यमनीये निपत्योत्तरीय बाधता'। काव्यम्बरी में भी (भूषणम् भावत्योत्तरीयेन)। काव्यम्बरी में उत्तरीय का प्रयोग स्थान स्थान पर आया है। (देखिये पृष्ठ ४७४ ५६१ ११३)। हृष्य में रत्नावली में भी विदुषक द्वारा उत्तरीय से पित्र को ढकने का काम मिया है।

महाकवि माघ ने विदुषासवध में सूर्य की धूप से स्त्रियों को बचाने के लिए उनके नावली द्वारा उत्तरीय का प्रयोग उनके धियों पर फैलाने में करवाया है [देखिये विष्णु का ८ सर्ग का १ वां श्लोक] दूसरे सर्ग के १६ में भी नीले व वृष्णवर्ण के उत्तरीय का उल्लेख है।

संस्कृत साहित्य में स्त्री की वेपथूता पर आलोचनात्मक दृष्टि—

वेपथूता के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों के और उनमें भी बिशेषतः माघ के विदुषासवध के आधार पर कुछ जानकारी देने का बाव यह उचित प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में आलोचनात्मक दृष्टि से भी जोड़ी चर्चा की जाय। हम सबसे पहले संस्कृत साहित्य में स्त्री की वेपथूता—इसी प्रसंग को लेते हैं।

माघ के स्वप्नवासवदत्ता नाटक आदि नाटकों कानिवास के मातृविकानिनिज और शकुन्तला, बाह्यमृद के पावती-परिणय भवभूति के मातृविकानिनिज राजाधर के कर्पूर मंजरी, हृष्य की रत्नावली और माघानन्द तथा भी हृष्य के नैषध चरित आदि प्रकाश कृत्यों में से यह बात स्पष्ट है कि वेपथूता स्त्री के सौन्दर्य को निखार देती है [देखिये भी हृष्य के नैषध चरित के ११ वें सर्ग का ४७ वां श्लोक]। कहीं-कहीं ऐसा कहा गया गया है कि स्त्री का अपना सौन्दर्य ही पुरुषों के आकर्षण का कारण है न कि उसको बाह्य वेषभूषा [देखिये राजाधर की कर्पूरमंजरी के तीसरे का ६, १६]। कर्पूरमंजरी में स्त्रियों के आभूषण वेषभूषा आदि का प्रवर्णन हमको द्वितीय अंक में वहाँ पर मिलता है जब राजा की नायिका की सखी से बातचीत करने का मुमकसर प्राप्त हो जाता है। सखी नायिका का शृङ्गार करने का संकेत करती है। जब मातृविकानिनिज के दिन पर मुख के पीले होने पर भी आभूषण और वेपथूता से किसी सुन्दर प्रतीत हो रही है। शकुन्तला और मातृविकानिनिज में वेपथूता तथा आभूषणों की बातें कई स्थानों पर देखने को मिलती हैं। पापा सप्तपत्नी में अतुल्य के ८६ में वरन-सम्बन्धी बात आई है। अथर्वशोध के सौम्यरत्न में नन्द की स्त्री के सजने की बात परिनिष्ठ है। इन सबका निरूपण अन्त में यही निकलता है कि स्त्रियों तथा से शृङ्गार त्रिय रही है और वेपथूता से अपने प्रति मित्रों के हृदयों में आकर्षण पैदा करती रहते हैं।

वेपथूता एक ओर तो स्त्री की सुन्दरता को दिगुणित करने वाली होती है और दूसरी ओर उसकी स्वभाव मुलभ सज्जा का भी निर्वाह करती है। मातृविकानिनिज में कानिवास परिशिष्ट के द्वारा कहलाते हैं कि मैं म्यायाभीष्ट के वह पर मासीन हूँ अतः यह बहरी हूँ कि सब वंशों की मुपहृता और सुन्दर बाल-दास दिखाने के लिए पात्रों को बायीं से भी बायीं वेप पहन कर लागा (प्रथम अध्याय के २० वें श्लोक के ऊपर का भाग)। इससे यह आशय होता है कि पहले बायीं वस्त्र धारण के घोषा के लिए ही अधिक प्रयुक्त होते

ये । पाँचवें श्लोक का ७ वाँ श्लोक भी वस्त्रों और धातुपत्रों से प्राप्त सुन्दरता की मन्त्रक होता है । भारवि नवम सर्ग के १३ वें श्लोक में कहते हैं कि स्त्रियों को नाभि नहीं दिखाना भी बाह्ये धर्मात् वस्त्र इव मतिं बाध्य करना चाहिए जिससे नाभि प्रदेश धर्म्य को दिखलाई न पड़े । स्त्रियाँ वेद्यभूषा से सुन्दर भी सर्वे और साथ ही नित्यव्यय भी न सीखें इस बात का ध्यान रखा जाता था ।

वायसां क्षियितताभ्रनाभि ह्रीमिरासमपरे कुपितानि ।

योयितां विदधती गुणपक्षे निर्ममार्जं मदिरा वषणीम् । १६५॥

बारह मनु की कादम्बरी में पृष्ठ १४३ पर कादम्बरी की सुन्दर बंधारों का वर्णन है जो स्वच्छ निमल वस्त्र वस्त्र के भीने व बारीक होने से दिखलाई पड़ रही थी । 'स्वच्छाम्बरहस्यमानमृत्तासकोमलाकमुसम् । हर्ष चरित के पृष्ठ २०-२१ पर मातली का भीना-भीना बारीक बेश का इस भाँति पहनने का वर्णन है कि उसके सजाट प्रान्त पर गया हुआ चंदन दिखलाई पड़ रहा था ।

महाकवि माघ ने धिगुपावचच महाकाव्य के तृतीय सर्ग में वहाँ पर कमल वस्त्रि का परिचय दैते हुए द्वारकालयरी और उसमें निवास करने वाली स्त्रियों का सुन्दर वर्णन किया है वहाँ पर वस्त्रों के प्रति भीने पतने व बारीक होने का भी वर्णन सुन्दरता पूर्वक हुआ है । भीने वस्त्र ने सुन्दरता को और दियुष्टित किया है । कुच-प्रदेश पर जो वस्त्र उसको ढकने के लिए रखा गया है उसने कुचों की सुन्दरता को उन्हें दिखना कर बढ़ाया ही है किन्तु साथ ही उनको ढक कर सनकी मज्जा का भी निर्वाह कर दिया है । श्लोक में अम्बर सज्ज का प्रयोग कितना सार्थक है, देखिये—

छन्दोऽपि स्पष्टतरेषु यत्र स्वच्छाणि नारी कुचमच्छसेषु ।

आश्रासाम्य दधुरम्बरानि न नामत केवलमर्पतोऽपि । ३५६॥

धर्म—उस द्वारकापुरी में उनके रहने पर भी स्पष्ट दिखलाई पड़ने वाले रमणियों के स्तन मच्छसों में प्रत्यक्ष सूक्ष्म अम्बर केवल नाम से ही आश्राप की समानता नहीं कर रहे हैं किन्तु धर्म से भी बसकी समानता कर रहे थे ।

रमणियाँ यद्यपि सज्जा रखने के लिए अपने स्तनों को ढके रहती थीं किन्तु वस्त्र के प्रति सूक्ष्म होने के कारण वह दिखलाई पड़ते थे । वस्त्र का नाम अम्बर है । आकाश सभी वस्तुओं को ढके रहता है किन्तु निराकार होने के कारण वे वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं । वही रथा उन सूक्ष्म भीने और बारीक वस्त्रों की थी ।

हेमचन्द्र बाल्लिनाटल की स्त्रियों की वैद्यभूषा की प्रशंसा करता है कि वे स्त्रियाँ अपने धर्मप्रसंग को पूर्णरूप से ढके रहती थीं और वस्त्र सुन्दरता भी इसी में है कि वे बहुत ही सुन्दर रंग से अपने देह 'कुलापनामा' ही सर्वाङ्गोन्नयनयोग्य योगातिथयहेतु ।

कानिधाय का कहना है कि स्त्रियाँ सुन्दर वेद्यभूषा

उनकी बेधभूपा को देखकर उनके प्रेमी [पति] उन स्त्रियों की प्रशंसा कर [देखिये कुमार समय में—स्त्रियाँ प्रियासाकण्ठो हि बग] पंचम सर्ग कोप्रथम स्तोत्र में कुमारसमय में फिर देखिये [प्रियेणु सोमागच्छता हि वास्ता]। बग-विकास और धर्मचार तथा प्रसाधन स्त्रियों के सौन्दर्य को अधिकविशेष धारक्यण देने में सहायक सिद्ध होते हैं। यही उनकी उपयोगिता है।

बेधभूपा में ध्वजगुच्छन का स्थान—

पर्व प्रथा का नाम लेने मात्र से ही आज तक भी अधिकांश सिद्धि व्यक्ति कह जट्टे हैं कि यह भूप्रथा मुसलमानों के आक्रमण पर भारत पर प्रवेश कर गई। मुसलमानों के भय ने पर्व की प्रथा बाल की भट बहू-बहू पर मुसलमानी धातन प्रथमा उनका अधिकार रहा या जो जातिवाँ उनके सम्पर्क में आई बहू पर यह प्रथा फैली। उत्तर भारत में यही कारण है कि पर्व का प्रभाव प्रायःशून्य भी है। पर्व की प्रथा को मुसलमानी काल में अधिक प्रभाव मिला यह बात हीन है पर इस प्रथा का प्रारम्भ मुसलमानों के समय से भी बहुत पहले का है। कुछ उद्धरण देना समीचीन होगा—

वैदिक काल में तो पर्व की प्रथा का प्रचलन दिसलाई नहीं पड़ता। जीवन के क्षेत्र में वे पुरुषों की तरह ही स्वतन्त्र थीं। पुरुषों की ही भाँति स्त्रियाँ भी देवों और दास्यों में विभक्त थीं। उन्हें मन्त्रों का वर्तन भी हुआ था—वैदिक ऋषियों की तरह यनों में वे पुरुषों के साथ ही भजन लेती थीं। वैदिक साहित्य में घोषा सोमामुखा समता यमासा सूर्या, इन्द्राग्नी सामराज्ञी त्रिवेपारा, घोषा भादि ऋषिकालों का वर्णन आता है। ऋषिवाच तो ऋषिज का भी कार्य करती थीं। देवों में कहा है कि स्त्रियाँ सबके सम्मुख अन्धे-अन्धे बरत पाएँ बरके बिना किसी संकोच के लगे (ऋग्वेद ८।१७।१) विलपाज की स्त्री विपलसा वा एक पर्व युद्ध में हार गया था जिसके स्वाम पर अदिबनी कुमारों ने लोहे वा पर्व बीटा दिया (ऋग्वेद १।१२।१०) पौराणिक काल के पूर्वभाग तक भी स्त्रियों की स्थिति ऐसी ही रही। फिर बाद में उनकी स्थिति में जो अन्तर आया उसकी छाया स्मृतिकारों के धर्मों में है। मनु महाराज कहते हैं—स्त्रीपूज्यजगन्मूर्ता भूमि न श्रुतिशोचरा। फिर तो वैदिक नाम से ही कहने लगे कि स्त्री-पूजनाविधावामिति श्रुते। बाल्मीकि रामायण का युग देवों के परवाद का युग है। बाल्मीकि रामायण में सीता जनवास के लिए प्रस्थान कर रही है उस समय का वर्णन आता है—

मा न दाक्ष्या पुरा द्रष्टुं भूतरावासागैरपि ।

तामघ सीता पश्यन्ति राजमाग गता जना ॥

या रा घ की रग ३३ का ८वाँ स्तोत्र ॥

धर्म—जो सीता दाक्षिणावारी बर्णियों द्वारा भी पश्य गयी देखी न वा सबी की प्राप्त उषी सीता को राजमार्ग पर जाने वाले बधिक तक देन रहे हैं।

यह वर्णन धर्म-योग्य है। प्रमादों में रहनेवाली सीता आज वैदिक धर्मों में जा रही है। इससे यह तो ध्वजय समझ में आता है कि स्त्री वा जीवन समाजोन्मुख न रहे कर

परिवारोग्मुख होता जा रहा था। लंका पर राम ने विजय प्राप्त कर ली। विभीषण भी सीताजी को बन्धुपालकी में बैठा कर भी रामचन्द्रजी के निकट लाया। उस समय राम चन्द्र बैठे हैं कि सीता को बाहर निकाल कर उन्हें उपस्थित पुरुषों को दिखलायो। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। राम ने उसी स्थान पर यह भी स्पष्ट कर दिया कि स्त्रियों को कहीं कहीं पर परवा न करने पर शोष का पापी नहीं होना पड़ता है। देखिये—

व्यसनेषु च कृच्छ्रेषु न युद्धेषु न स्वयम्बरे ।

न कृत्तौ मो विवाहे वा दर्शनं कूप्यते स्त्रियम् ॥

युद्ध कांड ६ का २८ सर्ग ११६ ॥

रामण की मृत्यु हो गई है। उसकी रागिनी को अन्त-पुर में रहती भी मृत्यु के समान-चारों पर विचार करती हुई दुःखदोष के प्राक्ख में उपस्थित हो जाती है। मन्मोहरी उस समय कहती है—

दृष्ट्वा लस्यसि न कृद्धो मामिहानवगुण्ठिताम् ।

यु वां ६१वां श्लोक, सर्ग ११३ वा २॥

निर्गता मगराद्यात्पद्भ्यामेवगतौ प्रभो ॥ बाल्मीकि ॥

६२वें श्लोक की प्र पंक्ति ॥

अर्थ—हे स्वामी अब मैं अवगुण्ठित रहित होकर लज्जा छोड़कर नगर के द्वार के बाहर पैरस ही चली आई हूँ यह देख करके भी युद्ध पर आप लड़ क्यों नहीं होते? आये कहती है—

पदमेष्टवारदारोस्ते अष्टलज्जावगुण्ठिताम् ॥

यु कां ६ का ६२वां श्लोक, सर्ग ११३, वा २॥

बहिर्निध्यस्तिनाम्सर्वां कथं दृष्ट्वा न कूप्यति ॥

यु कां ६ का ६३ श्लोक की प्र पंक्ति सर्ग ११३ ॥

मैं नहीं आई हूँ आपकी समस्त प्रिय रागिनी लज्जा छोड़ कर एवं बिना चूपट के अन्त-पुर के बाहर चली आई हूँ इस पर भी आपको कोप नहीं आता है।

अब आइये महाभारत काल में—

महाभारत में युद्ध समाप्त हो गया उसके पश्चात् स्त्रियों के लिए कहा गया है—

अदृष्टपूर्वा या मार्य पुरा देवगणुरपि ।

पृथक् जनेन हृदयस्तं तास्तदा निहृतेश्वरा ॥

स्त्री पथ अध्याय ६ का ८वां श्लोक ॥

अर्थ—जिन स्त्रियों को विमानों में बिचरने वाले देवताधीन भी पहले कभी न देखा था, अब पतिव्रतों के मारे आने से उनको अब को देख रहे हैं।

भास मिलित प्रतिमा नाट्य में राम सीता से अपना धनगुच्छन हटा देने के लिए कह रहे हैं जब वे बन को प्रस्थान कर रहे हैं और प्रजा जनको देखने के लिए एकत्र हैं। सीता अपना धूषट (धनगुच्छन) हटा देती है और राम सम एकत्र जनसमूह को धनगुच्छन देखने के लिए कहते हैं। भास नाट्यकाव्यनामक प्रतिमा नाटक पृष्ठ २६३ के प्रथम पंक्तिक २६ वें श्लोक में स्पष्ट कहा है—निर्गोपहृत्या हि मन्त्रित मार्गो यत्र विवाहे व्यसने यने च इमरा तादर्यं है कि स्त्रियों की ओर शोषपूर्ण दृष्टि से कोई मनुष्य न देखे जब वे मन्त्र में विवाह में स्त्रियों व्यसन काम में वा यन में हो। प्रतिमा नाट्य के तृतीय पंक्त में जब राजा दशरथ की स्त्रियाँ रत्निनी मृग राजा की मूर्ति के निकट जाती हैं तो सहसा धूषट निकाल लेती हैं। वे रत्निनी मन्त्र के सम्पूर्ण धूषट को इसलिए हटा लेती हैं जिससे भरत को उनकी स्थिति का पता लग जाय। भास ने बादरत्न नाटक में बल्लभसेना की माता जब शकार से अपनी पुत्री के लिए धाम्पत्य से लेती है तब वह अपनी पुत्री के निकट दूती के साथ उन धाम्पत्यों को भेज देती है और कहती है कि भुवनिज होकर गाड़ी में बैठकर जाना और धूषट भी निकालना (देखिये बादरत्न अनुपं पंक्त २८ २९) इसका अर्थ तो यही हुआ कि उस समय एक वैसा पुत्री को भी जब वह प्रेमी को पति रूप में मान लेती थी तो धूषट निकालना सामान्यता की दृष्टि से धाम्पत्यक था।

भास ने धनराजगणना नाटक के षष्ठ पंक्त के १६वें श्लोक में राजा के हाथ कहलाया है—मन्त्र पदमावस्तावद्वृष-साहस्यम्। रत्निप्येषां यवनिका। यही पर सम्भवतः धूषट को यवनिका कहा है। धूषट हटा दीजिये ऐसा कहा गया है। स्वप्नवासदत्ता में पद्मावती को पर पुरुष-दर्शन से दूर रक्खा जाता है। पद्मावती 'धम्मो पर पुरुष दर्शनं परिहर स्वर्गा' (प्रथम पंक्त १२वें श्लोक से आगे १८वीं पंक्ति में)

'पद्मावती प्रोषितमृतु वा पर पुरुषदर्शनं परिहरति' (षष्ठ पंक्त १३वें श्लोक से तत्पश्चात् १६वीं पंक्ति आगे कहा गया है।

यह तो हुई भास के समय की बात। भास का समय वासिष्ठाय से दो छी वर्ष पूर्व सीधरी जैसी उदात्तता का वर्णन किया है।

मृच्छट्टिक के चौथ पंक्तिक २४वें श्लोक में ज्ञात होता है कि विवाहिका स्त्री जब बाहर निकले तब उसको धूषट निकालना चाहिए और उल्टे धाया भी नहीं को जाती है। वहाँ पर धनगुच्छन गन्ध का प्रयोग हुआ है। मृच्छट्टिक के अन्त में पंक्त १८वें श्लोक की नीचे की कुछ पंक्तियों के पदार्थ धनगुच्छन का प्रयोग फिर होता है। 'अथ धनगुच्छनं परवत्तवत्तानम् भी एक स्थान पर आता है। मृच्छट्टिक नाटिका के पूर्व का नाटक है।

मागधिरात्रिभिर्नाट्य में मागधिरात्रि विवाह की वेदभूषा में है और रत्निनिर्गोप की स्त्री रानी पारिणी जय मार्गना को राजा के सम्पूर्ण मात्री है तब राजा मार्गना को उस रूप में स्वीकृत करने के लिए कहा जाता है। निरुद्ध और परिश्रमिता स्मरण निमित्त है कि पदवि यह एक उच्छ्रित की है और इस विवाह के दोष्य है किन्तु जिस रूप में मार्गना की बाह्य भी नहीं मार्गना है। 'अ पर रानी रानी भूम को स्वीकार करती हुई मार्गना

को रेशमीन बरख पहनवा कर पहले बूँद डाल कर फिर राजा के निकट ले जाती है। राजा उसके पाणि को ग्रहण कर लेता है (याज्ञिकानिमित्त के पाँचवें अंक में स्लोक १५ और १६ के मध्य की पंक्तिवाँ दोहों)। इसका तो यही निष्कर्ष निकला कि बूँद निकालने पर ही सच्ची विवाहिता स्त्री का रूप बनता है धर्मका परम रक्षक। याज्ञिका यमिनी सम थी। शकुन्तला नाटक में जब दुष्यन्त के सम्मुख राजसभा में शकुन्तला आई जाती है तब बूँद के कारण उसका रूप पूर्णतया दिखलाई नहीं पड़ता। वहाँ यक्षगुण्य का 'सधितोमुखप्रवरणं राज्यं बूँद के लिए लाये हैं (देखिये शकुन्तला पंचम अंक स्लोक १३)। गीतमी को शकुन्तला के साथ की बोड़ी देर के लिए मञ्चा को हटाते (बूँद को) हुए कहती है। शकुन्तल के १२वें अंक के ४वें स्लोक को देखिये। समुद्र पुष्पी के लिए एक भक्ति का बूँद है। वहाँ 'यत्राभरत्सु' राज्य का प्रयोग हुआ है।

कालिदास का समय अभी तक भी सुनिश्चित नहीं हो पाया है, फिर भी वह गुप्तयुग के परचाव का नहीं है। इसी में भी बहबुद्धि चरित में परा प्रकाश की ओर संकेत किया है। चाण्डि ने 'स्यसुक' राज्य का प्रयोग बूँद के लिए किया है देखिये—

उद्वगतेन्दुमभिर्भिन्नतमिस्त्रा पश्यति स्म राजमीमवितुष्टः ।

व्यदुकस्मृत मुक्षीमतिजिह्वा ब्रीडया भववक्त्रमिव स्लोक ॥६२॥

सर्प—कन्धोदय हो जाने पर भी जब तक प्रणकार भतीमति नष्ट नहीं हो गया था तब तक निपा (राशि) को जलता के एक (गुण परिणित) जब विवाहिता बपु की भक्ति मिलने मुख का बूँद हट गया हो तथा वह मञ्चा के भार से बनी जाती हो वृष्टि दृष्टि के देखा।

भारवि का समय कालिदास के परचाव वरु शास्त्री के समय बताया जाता है।

बाण ने अपनी कादम्बरी और हर्ष चरित में 'यक्षगुण्य' राज्य का प्रयोग किया है। राज्यकी विवाह के समय बूँद डाले हुए है। "यक्षगुण्यवपुच्छितमुखी" राज्य का वहाँ पर प्रयोग है। इन भक्ति नागानन्द नाटक में भी 'जलरीनहृतावमुदक' राज्य बताया है।

महभूति महावीर चरित नाटक में राम के हाथ सीता को बहला रहे हैं कि परशुराम के सम्मुख बूँद निवाल तो क्योंकि परशुराम धर्म पिता (स्वशुर) के स्थान पर है (प्रिये 'तत्पत्न्या हृतावमुदका बभूव')

महभूति का समय शास्त्रीजी की शास्त्री के समय है।

काकपति राज अपने मोहमहो में गिरने हैं कि तिमरों वर बूँद निकालना उनके लिए एक भक्ति का आभूषण है। काकपतिराज और महभूति का एक ही समय है।

गिगुतामक नृपराज्य में बूँद का संकेत पाए रूप में है—

पानाजन परिजनेरयतायेमाणा रासीमेषपनयनाकुल सीविवस्ता ।

गम्भायकुलमपटा हाणसदमाग यवत्रा रथग मभयवीनुषमीश तेरप ॥

धर्म—धरने परिवर्तनों द्वारा बाहनों से नीचे उठारी जानेवाली बैठनेवाले लोगों को दूर हटाने में परेशान कंबुधरों से युक्त उन रात्रियों की मुखची को जिनके घूँघट का रत्न नीचे उतरते समय लटक गया था सण भर के लिए दोनों ने भयमिश्रित क्रुतुहस के साथ देखा लिया ।

इसी सर्ग में एक श्लोक धीर है—

“उत्थिप्लवाण्डपटकाग्नरसोयमानमन्दानिसप्रगमितश्रमधर्मतोयै ।

“दूषप्रितानसहजास्तरणेषु भवे, निद्रामुक्त्वा वसनसदमसु राजदारै” ॥५२२॥

अर्जुन के सामने पर्व टंटे हुए हैं जिनके भीतर साब में झाँई हुई सुन्दर बर्णवाली स्त्रियाँ हैं । मन्द-मन्द वायु के झोंझों ने पर्वों को जैसे ही ऊपर उठाया कि उनकी पसीने की बुँदें गन्ध हुई ।

यात्रा के समय घूँघट यदि न निकले या हजर उपर हो जाय तो कोई बोध नहीं है । वास्तवीक रामायण में भी जैसा पहले बताया गया है कुछ स्वर्णों पर घूँघट न लगाने में बोध नहीं गिना जाता । महाकवि माघ ने इसी बात को दूसरे रूप में बताया है—

भ्याबुवक्त्ररतिलक्ष्मणर अजिह्वरेव सणमोक्षितानमा ।

बलादपरीयस्तनम्प्रकृष्टं यमुस्तुरंगाधिष्ठोभ्वरोधिका ॥१२२०॥

उपपुक्त में रमणियों जब सरणों पर बैठकर जा रही थीं उस समय उनके मुख घूँघट से ढके हुए नहीं थे ।

म्याहने सर्ग में जहाँ पर कवि ने प्रभाव वर्णन किया है वहाँ पर प्रकृति को भी घन गुटनबटी बना दिया—

मन्दभिमदलेनोदगच्छता सम्मितस्य

रपजत इव चिराय स्यापिनीमागु सगन्धाम् ।

वसनमिष मुखस्य न शक्ते सप्रतीदं

सितार वरजालं वामवागामुवरा ॥१११६॥

अर्जुन के मंदिर में रमणियों का मुख सात-सात हो जाता है । मंदिर के घट में उनका घूँघट हट जाता है । इसी भाँति इस समय जंगल का यह किरण समूह सूर्य के सारथि घरण द्वारा मन्द-रश्मि (मानिसा को प्राप्त) के कारण अपनी चिरपर्यन्त रहनेवाली स्थायी लग्ना को शीघ्र त्यागने वाली बूँदें दिया-रानी आदिरा के मुख पर मे मानों घूँघट की भाँति नीचे हट रहा है ।

पर्वों के कारण ही जिस दिन वह दमना हुआ है मुख रूप न नहीं । जब भीष्ट-जा रहे थे तो चाकीन मित्रों उनको जिस दिन वर पौटों की बात न उठार ने बड़ी दर न देवनी रही—

क्रीडातकीपुष्पगुच्छकान्तिभिमुखैर्विमिद्रोत्पलाबाणपक्षुप ।

श्रीमीलनव्यस्तमसक्षिता जनेदिश्वर वृत्तीनामुपरि व्यसोकयम् ॥१२३॥

स्त्रियाँ जब बूँद डालती हैं तो अपना एक हाथ मुख प्रवेश पर इस भाँति करती हैं । कि जिससे धनुसियों के द्वारा बैल्लों के लिए बनाये गये छिद्रों से किसी अन्य स्थान वा ध्वजि को सरलता से बैल्लों बूँद को मुख पर रखते हुए । कुछ स्त्रियाँ एक घाँव पर के पात्रण को दो धनुसियों का धापय लेकर हटा लेती हैं । इस तरह धापने की वस्तु भसी प्रकार दीव जाती है तो कोई स्त्री सम्भा बूँद डालकर फिर हाथ से मुख को उबाड़ती हुई चलती है जबकि धनुसियों के धापवाय से अपने कपोल भाग वा मूँह को उबाड़ती चलती है । घूँद का यह रूप राजपूत युग की ही देन है, पहले इस भाँति मुख दिखाना एक घाँव कपोल का एक प्रवेश अपना मुख भाग दिखाना एक धनुस्यन गही रखा जाता था । धनुस्यन का यह स्वरूप राजपूत युग से ही प्रारम्भ होकर आज तक चलता हुआ था रहा है । अब भाव कवि के एक और स्तोक को बहिये—

“नसिनान्तिकोपहितपल्लवयिषा ध्यवधायचार्य मुखमेकपाणिना ।

स्फुरदगुनीयिवरणि सनोत्तसहृद्यनप्रभाकुरमजुम्भतापरा ॥१३४॥

स्त्री अपने सहज सुन्दर मुख को डक कर जमाई लेने लगी तो उसकी वीरवर्ण वाली धनुसियों के भीतर से निकली हुई छोटे-छोटे बाँतों की कान्ति अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पड़ने लगी ।

निष्कर्ष—स्त्रियों की वैजभूषा और बूँद के विषय में इसका तिल देने के परचाह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्त्रियों का शू नार प्रिय होना तो सहज स्वभाव है ही और पुरुषों ने उनके इस स्वभाव के कारण उन्हें बीरे-बीरे अपने विलास की सामग्री बना दिया है । वैदिक काल में ‘गार्हस्थ्यं ब्रह्मेभिनाम्’ समझ कर ही स्त्री-धर्म्यक या धर्म्यवा वह तो समझागिनी थीं । आगे चलन पर बैठकर पुरुष के साथ यज्ञ में भागृति देती अथ अर्घ्यगिनी थी । वह यमोदगीत बारण करती । ‘ब्रह्मचर्येण कन्या युवान् विन्दते पतिम्’ और ‘उमान् ब्रह्म चर्यम्’ जैसी बातें उनका धीवम निर्माण करती थीं । आगे चलकर तो उसको धात्रुपण व वरन भी सुन्दर पहिनाये जाने लगे । कानिवास आदि धारि तक तो वेस विद्यास में इतनी चमक-चमक न थी । चमक-चमक का यह स्वरूप सम्राट् हर्ष के समय में दिखलाई पड़ने लगा था । हर्ष वरित में बिबाह के समय राजप्री की वैजभूषा इसका वरनभ उदाहरण है । फिर आगे आकर तो राजपूत युग में सबीमिण धात्रुपणों व तथा सुन्दर-सुन्दर रेणमीन चीने वरनों से ऐसी सजा दी गई कि उसका रू कर्ममय न होकर केवल भोगमय बन गया । महाकवि माध के बाध्य में अन्य कान्यों से स्त्रियों के धात्रुपण बारण करने व सुन्दर वरन पहिने की बातें अधिक जाती हैं । ऐसा सगता है कि जिस समाज में वरन अधिक कटोर होता है उसमें धात्रुपण धारि पहिने की प्रथा भी उतनी ही अधिक होती है । राजपूत युग में यह बात अत्यधिक है । स्मरण होया कि घरों के धात्रुपण भाण्य पर हुए थे और गुजरात की सीमा पर भीनमाल है वही पर भी बहुत से धात्रुपण हुए । उस समय के बावनों से कुछ हुआ फिर

प्रतिहारों ने उन घातमर्णों को रोका, किन्तु अरब सिन्ध में तो प्रवेश कर ही गये फिर वे फैलते गये । भारत में अरब से बौ भौति के लोग आए ऐसा परबा प्रवा पर अनुवर्णन करते हुए श्री घमीयहमद गिरी ने लिखा है । एक ने वे जिनके साथ उनकी स्त्रियाँ भी और बूढ़े ने वे जिनका सम्बन्ध यहाँ पर आने पर भारतीयों से हो गया । भारत पर ईरान की सम्यता का प्रभाव पड़ा । उन दिनों ईरान में बिनासमय जीवन का पूरा जोर था । घनी व घनामों के आसार बिनासिता के केन्द्र थे । अरब के उन मुसलमानों ने जो भारत आये ईरानवासियों की ही भौति रहना पसन्द किया । भारतीयों ने अपनी स्त्रियों को इनसे बचाने का प्रयत्न किया परन्तु अत्यधिक बढ़ गया यहाँ तक कि स्त्रियाँ अब पूरे परदे में रहने लगीं । देखा देखी राजपूतों में भी कट्टरता आ गई । बू घट प्रवा तो पहले थो ही पर इस युग में आकर सबसे विविध रूप धारण किया ।

इस भौति भाष के सिधुवासवय एवं लकासीन संस्कृतशाहित्य के अध्ययन से उस कास के सांस्कृतिक जीवन का पता लग जाता है ।



घरने में सीज ऐन रहे थे । इन प्रसंगा में माधववि के काल-निर्णय में सहायता मिली है ।

[३] माधव काव्य में कला का बाह्य-गम बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत हुआ है । हमारा एकमात्र कारण पाठकों को यही दिखलाई पड़ेगा कि माधव की कलावित धारणा उसीकी ही भाषा में व्यक्तिकार माने और उसीके मुन्दर बनाकर पाठकों के सम्मुख लानाकर राने की प्रकट अभिलाषा है । धर्मकारों की ऐसी सुन्दर योजना अत्यन्त बहुत कम देखने को मिलेगी । माधवकाव्य से पुन के काव्यों को देखते हैं तो उनमें सीमितता एवं मनीषिता के भाव तो देखने को मिलेंगे पर कला-मय नहीं भाव-मय से ऊँचा नहीं उठ सका है । वासीदास की ऐसी स्वाभाविक है किसी भाव की कृत्रिमता उसमें नहीं । धर्मकार भी वहाँ अपने स्वभाविक रूप में आये हैं । धारवि में कला का बाह्य पन प्रबल हो जाता है पर इनका नहीं बिठना कि माधव में । इससे प्रमाणित है कि माधव उस युग के कवि हैं जिसमें काव्यों में भाव पन की धारणा कला पन का अधिक स्यावर होता था । उनमें स्वाभाविक सरलता का स्थान कृत्रिम धर्म-दुष्कृता ने ले लिया था । माधव इस धर्म में अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं ।

[४] भारतीय इतिहासों के अध्ययन से कोई भी यह मकता है कि धार्मिकों ने हमेशा यथार्थी तक सर्वांत रूप की मृत्यु के लक्षण ३० या ६० वर्षों परचायु पात्रों के उदय और मृत्यु होने में ऐतिहासिक तथ्यों पर देखा खुलता नहीं पर यथा कि लोग उम्र युग के इतिहास को धार संवत्सराध्यक्षम कहते हैं यद्यपि बहुत ही बानें उन तथा दान धार्मिक व्यवसाय साहित्यिक बानों से प्रकाश में लाई जाकर इस संवत्सर को दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

धर्म के धारमल विषय पर हुए, फिर भीनमान के इतिहासों ने उन्हें रोका । इतिहासों से पूर्व जावका नरेणों ने प्रयत्न किये पर अधिक सम्मता उनको मिल न सकी । इतिहासों और जावकों की मिली जुली धारि ने ही धर्मको को पीछे ठकेसा । फिर तो कुछ होते ही रहे । प्राचीन पात्रबंध और प्राचीन जीवन प्रणालियाँ मृत भट्ट हुई, जातिधर्म में भी परम्पर संयत हुए । इन्हीं संयतों में पात्रभूत जाति धार बड़ी और धर्मक रत तथा बीरता के द्वारा पात्र-यत्ता को अपने धर्मिकार में लाने में सकन हुई । जिस तरह पात्रमतिक जीवन में यह उमट केर हो रहा था, उसी तरह धार्मिक जीवन में भी एक धारि हो रही थी । नये बीड धम [महापात्र] के प्रचार के बाव युद्ध-प्रिय पात्रभूतों ने पीछलिक धर्म पर धारवा प्रकट की । धारमलों द्वारा मनीष धारिधर का रूप धारण करने वाली इन पात्रभूत धारि का धर्मभूत रबागत हुआ । धारिधम ररका पीछलिक धारमलों ने इन पात्रभूतों की महा मता करने में सकनता प्राप्त की ।

(१) मृतमरुपरिहास्य मृतेय धार्य ररुरनि मृतमृनीनं लधार्नं व्यस्तयेनम् ।

धारमिक मृतेय-धोमवे धार मरालेयमममरालेयमम मृतेयनीनं धारमम् ॥ ११ ३ ॥

पीछलिक उदाहरण धार में रबाध-रबाध कर हैं कुछ को देन गतिमे—

२० का ७३, २० का ४३ २८ का ७०, २८ का २० २२ का ६ २४ का ८४,
२४ का २४ २३ का २२, २३ का २० २३ का २२ २२ का २० २ का २४, २ का २२
२ का ३२, ४ का ३२ ३ का २० २ का २० २ का २० ।

[१] कवियण भी कहीं तो गवीन राजपूत गरीबों के धामधाम में रह कर राज दरबारों में घोर कहीं स्वतन्त्र रूप में घोड़ी में बैठ कर अपनी कविता शक्ति से छद्मपौरों घोर पक्षियों का मनोरंजन करते धनकी चमत्कृत करते । युद्धों के पश्चात् जब शांति या बाढी ठहरे वे युद्ध-विषय राजपूत भदिरा तथा प्रमदा में अधिक लक्ष्मीय रहते । स्त्री घोर पुत्र्य दोनों ही उद्दाम वासना के विकार बनते । इसी विनाशमय जीवन का चित्र कवियण भी उलारा करते इसलिए इस युग में स्त्री के चमत्कारिक रूप को ही प्राथमिकता दी गई, वस्तु घोर प्राय पिछड़ा गया । घने घन कविता स्वान्त गुण की चीज न रह कर पोतु-मुच की चीज रह गई । कवियण श्रोताओं से प्रशंसा-प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई बात न सोचते घन कविता में घुड़ता हयघरी या एकाघरी बमोक सर्वतोभद्रचक्र या घोमूनिता जैसे बंध चमक की छटा तथा स्नेय अनुप्रास जपना क्यक उल्लेख और अतिशयोक्ति आदि धक्काघों की उपस्थापना प्रमुखता से रहती बिचसे श्रोताओं की बाह-बाह की ध्वनि हो जाय । इस युग में कवियों का कविता करने का मुख्य सद्दय यही बना रहता था कि संस्कृत भाषा की चमकती एक प्रभावशालिनी ध्वन्य-शक्ति का प्रदर्शन वे अपनी कल्पना-शक्ति की ऊँची उड़ानों से करते जो श्रोताओं और पाठकों को अतीव कष्टिकर प्रतीत हो चमका ऐसे प्रचन या जवा-हरण पौराणिक तथा धर्म्य कोशों से जाकर अपने काम्यों में रक्त को इस युग के छितियों में ऊँची इष्टि से देते जाते हैं । इन कवियों ने काव्य कैसा होना चाहिये इसके बहुत से नियम बना दिये । यदि इन नियमों के अनुसार उनका काव्य-रूप बना तो विद्वग्मंडली में बहु आदर की इष्टि से देया गया । इस भाँति वस्तु खेती बलन जवाहरण धक्काघ, छंद आदि के नियमों ने कवि को बाँध दिया । कविता इसलिए इस युग की संकीर्ण भावनाओं से भरी घुटी हुई है क्योंकि भावों को व्यक्त करने का जहाँ स्वच्छन्द वातावरण नहीं जहाँ अपने को धरि कर से अधिभ्यस्त न करते हैं वहाँ पर काव्यों में कानिदासादि पूर्व-कवियों की भाँति स्वाभाविकता मौलिकता एवं गवीनता या ही कैसे चकती है ? यह तो चमत्कार-प्रदर्शन का युग था । कवियों को अपने काम्यों में सूर्योदय सूर्यास्त या चन्द्रोदय अनुमों, पर्वतों चम-विहार, जलश्रीका ध्रुवपा, गुण्य-चयन आदि के बलन करने आवश्यक होते थे । कविता की वस्तु तो साधारण सी होती थी किन्तु इनका अधिकोप प्राय इन्हीं धार्मिक चमत्कारों से घुल बलनों से भर रहता था । मौ भी कहा जा सकता है कि क्या वस्तु का बाढीक सा धामा इन बलनों के लिए इनका सा आधार बन जाता था जिसे कहीं से भी छोड़ा घोर छोड़ा जा सकता है । वे दलोक नहीं पर तो स्नेय से अपनी मोमा की बुद्धि करते हुए रहे जाते थे तो कहीं चमर अनुप्रास आदि धर्म में जाकर जानू या या प्रभाव प्राप्त होते । छंद-सम्बन्धी विचिन्तार् भी उनमें दलन को मिलती । यदि धार्मिक अथवा धार्मिक चमत्कार अपने काव्य में रना नहीं जाता तो फिर काव्य ही क्या हुआ ? नियमों के अनुसार बहानाव्य की रचना में भार्ति का प्रयोग प्रथम जाना जाता है । यह दय तरह के प्रयोग का प्रारंभ-जान या इसलिये भार्ति उपर्युक्त चमत्कारपूर्ण रीति के प्रदर्शन में दलन तीन नहीं दो पाये मित्रने महाप्रति माय । भार्ति की कथा-वस्तु अधिक घुट है जाहे उस पर धार्मिकता का प्रभाव स्पष्ट हो । उनकी कविता में भाषा के उपर भावों का गाम्भाय्य है किन्तु महाप्रति माय बुद्धि भार्ति के लयबन तीन घताम्बी परवान् हुए है और भार्ति को चलाते करने

के लिए ही उन्होंने भारतीय की महाकाम्य सम्बन्धी सब बातों को सुविधुक्ति रूप से प्रस्तुत की। काम्य के उन प्रचलित नियमों के अनुसार उनके महाकाम्य की रचना कला-वस्तु की दृष्टि से इतनी यथस्कार बन पड़ी है कि अभिप्रेत में धारण बाध, कवियों के लिए उठने पर प्रवर्तन किया। अपने काम्य युग के वे ही सच्चे प्रतिनिधि कवि हुए हैं। कला-वस्तु की प्रधानता के होते हुए भी यह कहना बड़ेग कि पाठक सबसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इस महाकाम्य में लिखने की ऐसे स्वयं हैं जिनमें भावों की सुन्दरता पैदा होती तथा उपयुक्त चरित्रों द्वारा प्रभावित ही पूट पड़ी है। संक्षेप में पात्र एक ऐसे ही युग की देन है जिसके प्रमुख सत्त्व शू पात्रिकता, राज्य-राज के कार्यों में व्यथित कवि और बमकार एवं विद्वता प्रवर्तन की प्रवृत्ति धारि हैं। मदिरा एवं प्रमदा का जो साहचर्य पात्र काम्य में देखने को मिलता है वह भावों से दृष्टीं वताम्बी के उत्तर भारतीय राज्य-व्यवस्था का प्रतिबिम्ब है।

इस तरह विनोदनाथ महाकाम्य की रचना धारि का अनुदीप्त करने से पात्र का काल प्रायः ८वीं और ९वीं शताब्दियों के बीच स्थिर होता है।

(२) युग की विभिन्न प्रवृत्तियाँ —

यह स्थिर कर लेने पर कि महाकवि पात्र उपर्युक्त युग में हुये यह आवश्यक हो जाता है कि ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के सहारे उनकी जीवन प्रस्तुत की जाय।

महाकाव्य पूर्व के शासन-नाम एक भारत का राजनैतिक जीवन चरमोत्कर्ष पर पहुँचा हुआ था। देश में शांति की घन-संपत्ति से वह परिपूर्ण था कला अपने चरम चरम पर थी। राजा सबका सम्राट सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों का केन्द्र था। धार्मिक व राजनैतिक दृष्टि से सारा समाज दो भागों में विभक्त था एक उत्पन्न वर्ग और दूसरा भोक्ता वर्ग। उत्पन्न वर्ग में कुछ और समझौती से भोक्तावर्ग में सम्राट के परिवार और दरबारियों से लेकर उनका नीचे जाकर तक थे। भोक्ता वर्ग साम्य की दृष्टि था। इन दो वर्गों के प्रतिरिक्त एक कृषीय वर्ग विद्वानों का था जो सम्राट साम्य सबका छोटे-छोटे कुर्तों में साम्य में रहते थे। कवि और विद्वान् बमकार इसी वर्ग के व्यक्ति थे। इस युग से लेकर राज्य-युग तक कवियों व कलाकारों की स्थिति कुछ विभिन्न ही थी क्योंकि जय से हो इनका सम्बन्ध अधिकतर निम्न और मध्यम वर्ग से था वरन् उपर्युक्त वर्ग के साम्य में वे रहते थे मत यद्यपि इनका व्यवहार का निर्माण दोनों वर्गों के विभिन्न संस्कारों का होता था फिर भी उनमें प्रधानता उत्पन्न वर्ग के संस्कारों और उसी की धारणा धारणाओं की रहती थी। निम्न वर्गों की जनता में इनका सम्बन्ध नाम मात्र का था वह जाता था। निम्न वर्ग में ही इनका गुणवत्ता ही था कि इनको उचित धार्मिक पोषण कर सके और न इनका निर्माण ही था कि उनकी रचना की प्रशंसा ही कर सके। पूर्व विद्वान् के और विद्वानों की साम्य देते थे। जय समय की विज्ञानियों तथा कवि सम्मेलनों की जय धार भी बड़े नीचे तथा उत्पन्न के साम्य की जाती है।

एवं ही युग के चरमोत्कर्ष साम्य की दृष्टि का विवेकीकरण केन्द्रित हुआ।

इसके पक्ष स्वयं कवि और कलाकार भी कलाओं के दरबार को छोड़कर विभिन्न राजाओं, सामन्तों छोटे-छोटे राजाओं तथा सरदारों के दरबारों में इतस्ततः बिखर गये। इस बर्तनी परिस्थिति में भी विद्वानों का सम्मान बना रहा। पर यह सम्मान एक दूसरे कारण से बूढ़ा होने लगा था।

अब विद्वत्समैसनों तथा कवि सम्मेलनों का राष्ट्रीय ज्ञान का विकास तथा सम्भावों की प्रेरणा न होकर, पारस्परिक शोष-रुष्टि और एक दूसरे को पछाड़ देने की दुर्भावना का प्रदर्शन बन गया था। राजनीतिक विभूत बलता भी इसमें प्रभाव कारण थी। इस समय घरों के आक्रमण सिव की ओर से हो चुके थे। उत्तरी भारत पर विपत्ति के ये स्वामिक्रम मेव मरब रहे थे, कहीं तो ये बरस पड़ते और कहीं परब कर ही रहे जाते। उत्तरी भारत का भीतमात प्राप्त इस बरस में एक बार ही नहीं अनेक बार आ चुका था। वह उस समय की दुर्बल भूमि था। हर्ष ने भी इस भूमि को अपने राज्य में मिला भी थी जिसका बर्तन हर्ष करिभ में है। घरों के आक्रमण के समय प्रतिहारों ने डट कर मुकाबला किया और बिजय भी प्रतिहारों को ही प्राप्त हुई। दुर्बल प्रतिहारों की धाक हर्ष की मृत्यु के कुछ वर्षों के पश्चात् ही ऐसी कम कुकी थी कि उसका अस्मैय शिलालेखों में स्थान-स्थान पर है। इस बात को प्रतिहारों की उत्पत्ति पर लिखते हुए महामहोपाध्याय श्री ओझ ने अभिनन्दन ग्रंथ में स्पष्टक्य से स्पष्ट किया है। शेषावटी में सीकर से तीन मील दूर हर्ष पहाड़ पर इतिहास प्रसिद्ध हर्षनाथ (धिव) का मन्दिर है जिसके शिलालेखों से स्पष्ट है कि चौहान राजा सूर्य वंशी प्रतिहारों के आधीन थे। इसी प्रतिहार वंश में नायाबखो (नायबट) प्रसिद्ध हुआ है। सूर्यवंशियों का बलभी से पुराना सम्बन्ध है। बापा राजन ने बनराज नाबड़ा की बहिन के साथ विवाह किया। बनराज नाबड़ा ने बनहिन पाटण बताया। बनराज की मृत्यु सन् ८०६ ई० में हुई, वह ११० वर्षों तक जीवित रहा।

इस तरह महाकवि माघ के समय एक ओर तो प्रतिहारों का पूर्ण प्रभाव था दूसरी ओर चित्तौड़ पर बापा राजन का वंश राज्य कर रहा था जिसका आपबन्ध के साथ भी निकट सम्बन्ध था। प्रतिहारों के आक्रमण पर आपबन्ध के राजा हपर उपर बिखरे हुए थे। राजपूताना, गुजरात मासमा आदि में कुछ समय के लिए जो अधान्ति फल गई थी अब इन प्रतिपामी राजाओं के आ जाने से दान्ति का साम्राज्य एकबार फिर स्थापित हो गया। वे अब अपने आपकी सम्राट से कम नहीं समझते थे। वे राजा प्रतिपामी होने के साथ दानी और विद्वानों का धारर करने वाले थे। हर्ष के समय में भी पूर्व से इनके अधिनार में रहने वाले सामन्त मिष्टकट भाव से अपने अपने स्वामिनों की सेवा में निरत रहते थे। दमात अस्मेरा राजा बर्मसात के बसन्तगढ़ वाले शिलालेख (सन् ७६० ई०) में भी है जो महाकवि माघ के निगमद मुरमरन के समय का है।

- मंदिर के शिलालेख में जो सीकर शिलालेख में है हर्षवर्धन का मंदिर सन् ६५६ में मिहिराज के समय में प्रारम्भ हुआ व सम्पूर्ण चौहान विपहराज (सन् ६७३) के समय में हुआ। मिहिराज अक्षपति का पुत्र था अक्षपति अक्षन का। बलराज मिहिराज का कनिष्ठ लहोरर था। मिहिराज के दो पुत्र थे—गोबिंदराज व अग्रराज।

यह राजपूतों का युग था जिसमें सामन्त प्रथा प्रबल थी। प्रतिहार अपने सम्राट् के जो मज्जान करने में एक ही थे। इनका राज्यकाल बंभव व ऐश्वर्य से जलमग्न रहा था। मुजलमागों के मातु में पण्यल से इनकी स्त्रियों में पर्व की प्रथा और भी अधिक रूप में चल कर गई थी। स्त्रियाँ शक्ति शक्ति के लीन बदन बालण करती थीर इस तरह एक विदेश प्रकार का धाकपण रखती थी जो विसायय जीवन के लिए प्रेरणा देता था। इस युग में क्या पुरन और क्या स्त्री दोनों ही बहुमुख्य मोठियों के हार और हमरे धाधूपण बालण करते। पुत्रों की मामाई उनके सीरय को त्रिमुलित करती। हर्ष के समय के ही रेशमी और नीने नीने सुन्दर सुन्दर वस्त्रों का प्रयोग होने लगा था जिनका बर्णन हर्षचरित में स्थान स्थान पर मिलता है। दरबार के धनी कर्मचारियों का जीवन भी अपने राजा से कम ऐश्वर्य पूर्ण नहीं था। विद्वानों की मण्डलियाँ कुन्ती थीर अपने बुद्धि-बैभव से राज सभाओं को धामोकिण करती थी। जीवनयाप पूर्ण समृद्धि पर था क्योंकि वह उस समय चलती भारत की राजधानी था। पतिव्यासी प्रतिहारों का बहु मुख्य स्थान था। भीममात के धनी राज्यधिकारी अपने मध्य मन्त्रों में रहते हुए समस्त प्रकार की वितास मनी काम धियों का उपभोग करते थे। उनके श्रामाद हरे मरे सद्याओं से सुशोभित होते थे। बहूँ रमणीय वासिकार्य, हर्म्य और सरोवर होते थे जिनमें विशिष प्रकार के पत्ती कसरन करते थे। राजाओं के धन्य पुरों में राजियों के अधिकरित धन्य स्त्रियाँ भी उनके मग बहुलाच के निवे रहती थीं। त्रिमुपासनय में जो बर्णन दिये गये हैं वे उस काल की वासनामयी प्रकृतियों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं।

वितास के सापन जैसे जैसे बढ़ते गये समान का मानस भी बिहृत होकर इस देश को बदन की धोर ढकेलने लगा। राजा भीम प्रतिहार के समय में था उससे कुछ ही पूर्व पवन की यह स्थिति आरम्भ हो गई थी। नीच की दो तीन पीढ़ियों बाद वितासिता के बारण प्रतिहारों का पवन होने लगा। एक या दो पठाणियों में ही उनकी पक्ति समूल नष्ट हो गई।

संस्कृत साहित्य में कवि परिचय सम्बन्धी उल्लेख—

संस्कृत साहित्य में जैसी उल्लेखों बहियों के समय के निर्धारण में है तमप्रब बनी ही उनमें कविपर्य बहियाँ और सेषाओं के नामों के विषय में भी हैं। वे उल्लेखों नहीं तो बहियों प्रथम सेषाओं के किसी उल्लेख से प्रकटि पाने के कारण हैं और नहीं एक ही नाम के कई व्यक्तियों को सम्बन्ध से एक ही जगह से पाने के कारण पैदा होसकी है। इतिहास के साथ साम्प्रदाय ईठाये बिना उल्लेखों के साधारण पर जो साम्प्रदाय चल पड़ी है उनका निपाकरण संभव नहीं हो पाया और वे उल्लेख ज्यों-ज्यों ही नहीं बलिक और भी अधिक बढ़ गई। उदाहरण के लिए कालिदास* को ही लिया जा सकता है। ध्यान तक कालिदास

* **कालिदास**—राजसेधर विश्व के समय आतक में य त्रिगुहो निम्न इलाक में कालिदासों का उल्लेख दिया है—

नाम के कवि बनेक हुए हैं। राजतरंगिणी में माणुगुप्त का नाम आता है जो बिहम राजा द्वारा काशमीर का राजा बनाया गया। वह महान् कवि था। लोगों का समुमान है कि यही माणुगुप्त कालिदास है क्योंकि 'माणु' का अर्थ 'कालि' और 'गुप्त' का अर्थ 'दास' होता है। भोज और कालिदास नामक ग्रन्थ में भी कालिदास को कालि का मत दयाया है। कालि की कृपा से ही वे सरस्वती के बरतपुत्र हुए और तब से कालिदास कहलाये। उनका वास्तविक नाम

अथैकोऽपि वीर्यते हस्त कालिदासो न देमन्विह ।

शुभारे सन्निहोद्वारे कालिदास ज्योतिषु ॥

मन्दककार कालिदास—अथवा कालिदास मन्दककार है। वह लगत् प्रबलक शक सतवाहन बिहम के समयर द्वितीय कालिदास धीतवीपुत्र सूत्रक का समारवि है। गीतगी-पुत्र सूत्रक का काल बिहम सं० ५०० तक माना जाता है। लगत् समुद्रगुप्त ने अपने "कृष्णवर्ति" में लगत् सूत्रक और उसके समकालि कालिदास के समय में लिखा है—

"पुरम्बरसतीविज" सूत्रकः शक्यप्रान्तर्निव ।

धनुर्बेध औरमात्र कम्पके डे तवाकरोत् ॥" (सुश्रुतप्रति, पञ्चमसूत्र)

इसी कृष्णवर्ति में लिखा है—

"सत्यमवसरयतेः कविराजमर्षेः, वीकालिदास इति यो प्रतिम प्रभाव ।

दुप्यस्तनुवति कथा प्रलय प्रतिज्ञा, रम्यानिमय चरितां सरसां वकार ॥"

काश्यकार कालिदास—समुद्रगुप्त क आभित "हरिवैल" कवि था जिसकी उपाधि कालिदास थी वह कालगुप्त बिहमविरय का मित्र एवं समारजन था। समुद्रगुप्त ने इस द्वितीय कालिदास का अपने कृष्णवर्ति में उल्लेख करते हुए लिखा है—"हरिवैल कवि ने माना कालिदासक पांच काव्य (रघुवंश कुमारसंभव, मेघदूत, लल्लोदय और शत्रु घटार) लिखे हैं। वह "रघुकार" नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपनी रिय कविता रचनाकापुरी के कारण "कालिदास" उपनाम प्राप्त किया। मुने (समुद्रगुप्त) की कृष्णवर्ति" रचना के लिए उसी ने प्रेरित किया। समुद्रगुप्त का समय वि० सं० ४४२ और कालगुप्त बिहम सं० ४७० तक निरिचत् है। परन्तु यह कालिदास दीर्घजीवी था, संभवतः वि० सं० ४२३ के सम्भवतः तक जीवित रहा। समुद्रगुप्त के निधन के बरबात् "ज्योतिर्विदावरल एव" की भी रचना इसी ने की थी। आपासों के भुजगप्रयनातुलितो दीर्घपाणौ। इस भयभूत एव के अनुसार कालिक श्रुता एकाग्रती की वित कालिदास की जवनी बनाई जाती है, वह यही द्वितीय कालिदास "हरिवैल कालिदास" थे। बिहम की बिजुपीपुत्री प्रियपुर्नमरी (विद्योत) से इसी का विवाह था "प्रतिच्छिन्नार्जवोव" प्रसिद्ध है।

वज्रगुप्त बरिमत कालिदास—वह राजदेवर का समकालीन रहा है। राजा भोज के पिता सिधुस बिहम का समकालि था जिसने "वृक्षारतमय" "नवताम्रतीव चरित" काव्य लिखा है जिसमें सिधुसविषय का चरित है। राजेशजर पिहिर भोज के समय में रहे हैं क्योंकि वे भोज के पुत्र और भोज के पुत्र थे। इस कालि इस भोज के समय में कालिदास का होना भी संभव हो सकता है। इस कालिदास ने भी बोधे धानु प्राप्त की है।

तो कोई धीर ही या भिक्का पता धरती तक नहीं चल पाया है। इसी तरह कुछ धार्मिकों को संका होने लगी है कि कानिशास नहीं धीर तो नहीं थे ? भोग धीर विषम के विषय में भी इसी प्रकार समझ चलते हैं महाकवि दण्डी भी इस प्रकार की भ्रान्तियों से ग्रस्त नहीं रहे। इनके ग्रन्थों से इनका परिचय नहीं के बराबर मिलता है। परिच्छेदों और उच्छ्वासों की समिति पर आचार्य दंडी या भी बड़ी गाम मिलता है। दण्डी को महाकवि कहा गया है। 'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशय इह जति के आधार पर इनको महाकवि कानिशास के समक का बताया गया है क्योंकि सरस्वती के मुख से "लभेबाहू न संशय" यह कहलाकर दण्डी कवि को विविध योग्य प्रशंसा कथना गया है। 'ननुमुक्ता जनभूति परन्तु क्या आचार्य दंडी, यद्यप्येवम् दंडी और महाकवि दंडी दोनों एक ही व्यक्ति थे प्रत्येक विषय-विषय यह संदेह होता भी स्वाभाविक हो है। 'द्विदिन पदनामित्य भावे सति नयो पुण्य" यह जति भी प्रत्येक प्रस्तुत करती है। वे दंडी क्या दण्डुमारचरितकार दण्डी है दण्डका काम्यार्थ-कार दण्डी कथना इन दोनों के भी विषय ? काम्यार्थ या दण्डुमार चरित के आधार पर तो इतना धीरव शब्दका प्रवृत्तियाँ प्राप्त करना पति बलिन है प्रत्येक दण्डी ने प्रोशयस्या में सम्य काम्य भी लिखे हैं विमल कल्पकप दण्डिन परमा निराम्" प्रविष्ट हा गया हो। आचार्यवर का स्वरूप दण्डुमारचरित की वृत्त से बाह्य नहीं होता। एक जनभूति के आधार पर तो ये ही, भार्यक महाकवि के प्रयोग के पुनः द। भार्यक का वास्तविक नाम बाजीर या धीर के काउपण स्वामी के पुत्र य। बाजीर क मनोरथ, मनोरथ के शीरदत्त, धीर शीरदत्त के पुत्र दण्डी य। एक पाठ के अनुसार बाजीर भार्यक के नाम से प्रविष्ट हुए। दूसरे पाठ के अनुसार ये दण्डी य भार्यक के समकालीन थे। बाजार का समय १०० ई० के समीप का है। ये समस्त बातें विरोधी और विचित्रा"पुण्य ही समझी है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि कवियों क नामों तथा नाम भारि के विषय में कितनी धीर बड़ी भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं।

महाकवि माय की स्थिति कानिशास और दण्डी के कुछ समझी है। जन्मति २० वें वर्ष के अन्तिम बरों में अपने पितामह का निरा य पितामह के समय के राजा का नाम दे दिया है। यदि ये श्लोक प्रविष्ट नहीं हैं जैसा कि कहा जाता है तो माय क समय के निर्धारण में बहुमुख सहायता मिल सकती है। इस युग का धर्मनैतिक जीवन कुछ बृंहित-सा धीर कुछ भाग्यकारमय है। पुण्डरीकेश्वरतामों तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों का ध्यान यदि उन युग की ओर घाट हो ज्ञान तो भारतीय सार्वभौम तथा सम्यता की कई दृष्टी हुई सद्विषय जुड़ जायें। माय को कुछ धार्मिकों में भार्यक के बाद का माना है धीर कुछ के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती। कहा जाता है भार्यकृत "किराण" को देखकर माय को ईर्ष्या हुई धीर भार्यक को भी मोवा विधान के लिए उन्होंने विष्णुशायन रूप की रचना की। उन्होंने कचना न य भी संभवतः इसी लिए माय रचा कि जो विज्ञान माय काव्य को आभासपूर्ण वृत्ते उनक सम्पूर्ण भार्यक या योग्य इसी तरह मन्द यह ज्ञानमा जैसा माय काव्य य लय का लेख मन्द यह जाता है। जो मोव भार्यक को माय के बाद का मानते हैं उनका कहना है कि माय काव्य को देखकर ही भार्यक ने अपने विपरीतार्थीय महाकाव्य की रचना की हो। 'महाकाव्य विरोध न विना

नाम के कवि बने हुए हैं। राजतरंगिणी में मानसुत का नाम आता है जो किन्न राजा ज्ञाप कारमीर का राजा बनाया गया। वह महान् कवि था। लोगों का अनुमान है कि यही मानसुत कालिदास है क्योंकि 'मानु' का अर्थ 'कालि' और 'सुत' का अर्थ 'वंश' होता है। भोजपीर कालिदास नामक ग्रन्थ में भी कालिदास को कालि का पत्त बताया है। कालि की इया से ही वे सरस्वती के वरपुत्र हुए और ठक से कालिदास कहलाने। उनका वास्तविक नाम

अज्ञेयपि ज्ञायते ह्यस्य कालिदासो न केनचित् ।

युधारे जलितोद्वारे कालिदास प्रयोक्तुः ॥

मल्लकार कालिदास—प्रथम कालिदास मल्लकार है। वह समस्त प्रबलतक एक सातवाहन विष्णु के बंधार द्वितीय कालिदास मान्यमानुष शूद्रक का सभाजि है। मीतमो-पुत्र शूद्रक का काल शिख्य सं० २०० तक माना जाता है। सभाज् समुद्रगुप्त ने अपने "हृष्यकवित्" में सभाज् शूद्रक और उसके सभाजि कालिदास के संबंध में लिखा है—

"पुरन्दरबलोचिः शूद्रकः सारथ्यावबित् ।

धनुर्वेद बीरघातत्र कल्पे द्वे सपाकरोत् ॥" (पुष्पकटिक, पद्मामृत)

इसी हृष्यकवित् में लिखा है—

"सप्तमवतारयोः कविदासवरणः, श्रीकालिदास इति यो प्रथिम प्रकाशः ।

दुष्यन्तदुपति कथां प्रणय प्रथिनां रम्भायिनेय कवितां सरसां जकार ॥"

काल्यकार कालिदास—समुद्रगुप्त के घोषित "हरिवेद" कवि या द्वितीय उपाधि कालिदास की वह बन्धुपुत्र किन्नारित्य का पित्र एवं समारत्न था। समुद्रगुप्त ने इस द्वितीय कालिदास का अपने हृष्यकवित् में उल्लेख करते हुए लिखा है—"हरिवेद कवि ने माना कवितात्मक वाच काव्य (रघुर्वेद कुमारवर्मन मेघदूत, बतोरय और मनु संहार) लिखे हैं। वह "रघुकार" नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपनी विषय बरिडा रचनाबलुरी के कारण "कालिदास" उपनाम प्राप्त किया। मुझे (समुद्रगुप्त) की हृष्यकवित् रचना के लिए उसने प्रतिष्ठा मिया। समुद्रगुप्त का समय वि० सं० ४४२ और जयगुप्त विष्णु सं० ४७० तक निर्दिष्ट है। परन्तु यह कालिदास दीर्घजीवी था, समस्त वि० सं० १२३ के सम्बन्ध तक जीवित रहा। समुद्रगुप्त के निधन के बावजूद "ज्योतिर्विदामरण काव्य" की भी रचना इसी ने की थी। आचार्यों ने मुद्रमयनादुर्लभते शायंशायी। इस मेघदूत पद्य के समुच्चार काव्यिक दुस्सा एकाग्र्यी की श्रित कालिदास की अग्रणी मनाई जाती है वह यही द्वितीय कालिदास "हरिवेद कालिदास" थे। किन्न की विदुषीनुषी धर्मपुन्यवती (विद्योत) से इसी का विवाह का "अतिविक्रमशायिनी" प्रसिद्ध है।

पद्मसुत कालिदास—यह राजदेवकार का समकालीन रहा है। राजा भोज के निहा विष्णुन विष्णु का सभाजि या शिखने शुवारसमय "मदसाहसिक कविता" काव्य लिखा है जिसमें विष्णुनविष्णु का कविता है। राजेश्वर मिहिर भोज के समय में रहे हैं क्योंकि वे भोज के पुत्र और बीज के पुत्र थे। इस भाँति इस भोज के समय में कालिदास का होना भी संभव हो सकता है। इस कालिदास ने भी बीज कायु प्राप्त की है।

नाम के कवि प्रसिद्ध हुए हैं। राजतरंगिणी में मातृपुत्र का नाम पाठा है जो विक्रम राजा द्वारा काश्मीर का राजा बनाया गया। वह महान् कवि था। लोगों का अनुमान है कि यही मातृपुत्र कालिदास है, क्योंकि 'मातृ' का धर्म 'कालि' और 'पुत्र' का धर्म 'वास' होता है। मोज और कालिदास नामक ग्रन्थ में भी कालिदास को कालि का भक्त बताया है। कालि की रूपा है ही वे सरस्वती के वरपुत्र हुए और तब से कालिदास कहलाये। उनका वास्तविक नाम

श्रीकौटिलि भीमते हुता कालिदासो न केनचित् ।

युषारे ललितोद्गारे कालिदास मयीकिमु ॥

नट्यकार कालिदास—प्रथम कालिदास नट्यकार है। वह संवत् प्रवर्तक सप्त सप्तवत्सव विक्रम के मंसवर द्वितीय कालिदास वीरवीरपुत्र सूत्रक का समाकवि है। वीरवीरपुत्र सूत्रक का कास विक्रम सं० २०० तक माना जाता है। सप्तम्य समुद्रपुत्र ने अपने "कृष्णचरित" में सप्तम्य सूत्रक और उसके समाकवि कालिदास के संबंध में लिखा है—

"पुरम्बरवलोकिः सूत्रकः अस्मत्सारवन्ति ।

अनुबन्ध वीरसास्त्र कल्पे हे तपाकरोत् ॥" (सुन्दरिका, पद्मामृत)

इसी कृष्णचरित में लिखा है—

"सत्यमवधरपतेः कविराजमर्चयः, श्रीकालिदास इति यो प्रसिद्ध प्रमाणः ।

दुष्कृतानुपदि कथां प्रणय प्रतिष्ठां, रम्यामिन्दु चरितं सरसां चकार ॥"

काव्यकार कालिदास—समुद्रपुत्र के आविष्ट "हरिवंश" कवि का जिसकी उपनिष कालिदास की यह चन्द्रपुत्र विक्रमाश्रित का निज एवं समारण्य था। समुद्रपुत्र ने इस द्वितीय कालिदास का अपने कृष्णचरित में विशेष करते हुए लिखा है—"हरिवंश कवि ने नाना चरितस्तमक पांच काव्य (रघुवंश, कुमारसंभव मेघदूत, नलदय और जतु संहार) लिखे हैं। यह "रघुकार" नाम से प्रसिद्ध है। उसने अपनी विद्वत् पतिता रचनावातुरी के कारण "कालिदास" उपनाम प्राप्त किया। मुझे (समुद्रपुत्र) भी कृष्णचरित" रचना के लिए उसी ने प्रेरित किया। समुद्रपुत्र का समय वि० सं० ४४२ और चन्द्रपुत्र विक्रम सं० ४७० तक निश्चित है। परन्तु यह कालिदास वीरवीरवी या संभवतः वि० सं० १२१ के स्वयंपुत्र तक सीमित रहा। समुद्रपुत्र के निम्न के पश्चात् "व्योतिविहारात्तल ग्रन्थ" की भी रचना इसी ने की थी। शापाश्लो में भुजमधयनानुचितैर्धर्मपाशोः। इस मेघदूत पत्र के अनुसार कालिक पुत्रता एकादशी को जिस कालिदास की जयन्ती मनाई जाती है वह यही द्वितीय कालिदास "हरिवंश कालिदास" के। विक्रम को विदुषीपुत्री शिष्यपुत्रवरी (विद्योत्त) से इसी का पिछाई का "प्रतिकल्पितव्योतिविहारात्तल" प्रसिद्ध है।

पद्मपुत्र परित्त कालिदास—यह राजेश्वर का समकालीन रहा है। राजा मोज के पिता सिन्धुत विक्रम का समाकवि था जिसने मृगारण्यमय "मनसाहृषाक चरित" काव्य लिखा है जिसमें सिन्धुतविक्रम का चरित है। राजेश्वर महिर मोज के समय में रहे हैं क्योंकि वे मोज के पुत्र और मोज के पुत्र थे। इस भाँति इस मोज के समय में कालिदास का होना भी संभव हो सकता है। इस कालिदास ने भी वीर्य वापु प्राप्त की है।

तो कोई धीर ही या जिसका पता धमी तक नहीं चल पाया है। इसी तरह कुछ धर्मोपदेशों को संका होने लगी है कि कामिदास कहीं धीर तो नहीं थे ? मोज धीर विष्णु के विषय में भी इसी प्रकार समझ चलते हैं महाकवि बन्दी भी इस प्रकार की भ्रांतियों से प्रभूते नहीं रहे। इनके ग्रंथों से इनका परिचय नहीं के बराबर मिलता है। परिच्छेदों धीर उच्छ्वासों की समाप्ति पर आचार्य बंदी या भी बंदी नाम मिलता है। बन्दी को महाकवि कहा गया है। 'कविर्बन्दी कविर्बन्दी कविर्बन्दी न सद्यः' इस उक्ति के आधार पर इनको महाकवि कामिदास के समय का बताया गया है क्योंकि सरस्वती के मुख से 'स्वमेवाह न सद्यः' यह कहाकर बन्दी कवि को विविष्ट गौरव प्रदान कराया गया है। 'नह्यमुना जनभूति परम् नृणां आचार्य बन्दी यद्यमेवक बन्दी धीर महाकवि बन्दी तीनों एक ही व्यक्ति के समकालीन यह संदेह होना भी स्वाभाविक ही है। 'बन्दिन पदसाहित्य माने सति त्रयो पुणः' यह उक्ति भी प्रत्यक्ष प्रस्तुत करती है। वे बन्दी क्या बलकुमारचरितकार बन्दी है प्रथम काम्यार्य-कार बन्दी प्रथम इन दोनों से भी भिन्न ? काम्यार्य या बलकुमारचरित के आधार पर तो इतना गौरव प्रथम प्रस्तुतियाँ प्राप्त करना सति कठिन है प्रथम इन्हीं के लेखक बन्दी न प्रौद्यमस्या में प्रथम काम्य भी सिद्ध हों तब के फलस्वरूप 'बन्दिन पदसाहित्यम्' प्रसिद्ध हो गया हो। आचार्यत्व का स्वरूप बलकुमारचरित को पढ़ने से मालूम नहीं होता। एक जनभूति के आधार पर तो ये ही, भारवि महाकवि के प्रयोग के पुत्र थे। भारवि का वास्तविक नाम दामोदर या धीर के नाचमण्ड स्वामी के पुत्र थे। दामोदर के मनोरथ, मनोरथ के वीरवत् धीर वीरवत् के पुत्र बन्दी थे। एक पाठ के अनुसार दामोदर भारवि के नाम से प्रसिद्ध हुए। दूसरे पाठ के अनुसार ये बन्दी व भारवि के समकालीन थे। दामोदर का समय १०० ई० के समीप का है। ये समस्त बातें निरोधी धीर विरंदाधुर्य ही समती है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि कवियों के नामों तथा काल भारवि के विषय में कितनी धीर बँदी भ्रांतियों प्रचलित हैं।

महाकवि माय की स्थिति कामिदास धीर बन्दी से कुछ भिन्नी है। उन्होंने २० वें सर्व के अन्तिम पक्षों में अपने पितामह का निता व पितामह के समय के राजा का नाम दे दिया है। यदि ये श्लोक प्रसिद्ध नहीं हैं जैसे कि कहा जाता है तो माय के समय के निर्धारण में बहुमूल्य सहायता मिल सकती है। इस युग का राजनैतिक जीवन कुछ पूर्वता-सा धीर कुछ प्रगल्भकारण है। पुरातनवेत्ताओं तथा ऐतिहासिक धर्मोपदेशों का ध्यान यदि उस युग की ओर घाट्ट हो जाय तो भारतीय संस्कृति तथा साम्यता की कई दृष्टी हुईं लक्ष्मीं जुड़ जाय। माय को कुछ धर्मोपदेशों ने भारवि के बाद का माना है धीर कुछ ने समकालीन प्रथम पूर्ववर्ती। कहा जाता है भारविहृत 'किरात' को देखकर माय को ईर्ष्या हुई धीर भारवि को भी मोबा रिखाने के लिए उन्होंने सिद्धपाल बध की रचना की। उन्होंने अपना न म भी संभवतः इसी लिए माय रखा कि जो विद्वान् माय काव्य को पाषोपान्त पढ़ेंगे उनके सम्मुख भारवि का गौरव उसी तरह नष्ट पड़ जायगा जैसे माय माय में सूर्य का तेज मन्द पड़ जाता है। जो लोग भारवि को माय के बाद का मानते हैं उनका कहना है कि माय काव्य को देखकर ही भारवि ने अपने किरातार्जुनीय महाकाव्य की रचना की हो। 'सहस्र विरसीत न विपा-

परिवेक परमापरा वरम् ।” यह श्लोक महाकवि भारवि का है। इस श्लोक के साथ माघ सम्बन्धी कथा को जोड़ कर कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि भारवि धीरे माघ समकालीन थे। वस्तु स्थिति यह है कि शिलालेखों में भारवी धीरे माघ दोनों का नाम एक साथ नहीं आया है। माघ कवि के नाम के सम्बन्ध में इस प्रकार से कुछ भी कहना एक मनगढ़न्त सी कल्पना है। ऐसी कल्पना इतिहास के प्रकाश में ठहर नहीं सकती फिर भी इसका कोई एक संस तो सरा है ही। जहाँ तक माघ के नाम का सम्बन्ध है उसमें भ्रम करने की आवश्यकता नहीं। इस सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें मग्न साधक हैं। —

उपर्युक्त पारम्परिक प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि कवि का जन्म नाम माघ ही होगा। उपनाम या उपर्येक नहीं। त्रिविध का हस्तक्षेप कोई कवि अपने नाम को छिपाकर कविता करे यह समझ में आने वाली बात नहीं। भारवि (सूर्य) का पैतृ नाम (माघ का नाम) के सम्मुख छिपा पड़ जाता है यह उक्त माघ के किसी प्रसंग की भत्ते ही हो पर “माघ” इस नामकरण के पीछे कोई ऐसी बात रही हो ऐसा किसी भी तथ्य से सिद्ध नहीं होता। ऐसा शक्य हो सकता है कि माघ माघ (मगध-करवरी) में कवि का जन्म हुआ हो बिना दिन का जन्म भी कुछ ऐसा ही हो तो माघ माघ की स्मृति में ही कवि का नाम भी ‘माघ’ रख दिया गया हो। अथवा मगध युक्त पुंसिमा के दिन उत्पन्न होने पर “वाप” ऐसा नामकरण संभव है।

माघ माघ में जन्म ग्रहण करने से, कहा जाता है कि वाक्य विज्ञान मग्न तथा अपने कुछ की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला धीरे योगी की जति विषयों में निरपेक्ष होता है।

विद्याविनीत स्वकुल प्रधान सदा रक्षाचारयुत प्रधान ।

योगानुरक्तो नियमेष्वसक्तो माधेयमासे मध्याह्निके ॥ (हिन्दी विश्वकोश)

श्री कुण्डरान ने अपने वाक्यामय नायक स्पेसिफ चम्प में पृष्ठ २१ में “माघकम्प” सम्पाद के ११ में श्लोक में लिखा है “चम्पनविहीनिक धातुपानोपयोग विद्यामयानुरक्त”।

१—महाकवि माघ की कुछ प्रतियों में अनेक संशे की संलक्षित पर “इति जीतिप्रमाण वास्तव्यवत्कमुनोर्महर्ष्याकरस्य माघस्य इती प्रिगुपातवये महाकावे” लिखा हुआ मिलता है।

२—विगुपातवय के १६ में संशे के १२० में चम्पन के स्पष्ट है कि “माघकाव्यमिदं” शब्द में श्लोक की चारों संशे के “र” को चम्पविगु नालकर पड़े तो अनेक पंक्ति का संलक्षित मसर कुछ कर माघ काव्यमिदं बन जाएगा। अपनी रचना को सुरक्षित करने की इच्छा से प्राचीन कवि इस प्रकार करते आये हैं।

३—कविप्रवर्तन के अन्तिम श्लोक में माघ का नाम आया है जो चम्पन के “माघ काव्यमिदं” को पुष्ट करता है। श्लोक इस प्रकार है।

धीरामरस्य इत सर्व समाप्तिरस्य, लक्ष्मीप्रीतिरस्य कीर्तनबाध माघः ।

सामान्यः मुक्तिवर्तिता पुराणाय काव्य माघा विगुपातवयविधानम् ॥

(कवि रत्न वर्तन का वाच्य श्लोक)

बुढ़े रोषान्निहृष्टारि र्मथो माधोहमक स्वाहनमो मनुष्य ॥११॥ भाये इमी दम्य में विपन्नमात्र
पन्नम् में मुक्त पल के धीर दिवापन्निकमम् में पूणिमा क लिए जो बातें आई हैं वे भी इस
मानकाटी क लिए सहायक हैं ।

चंचाच्चिरायु सुतरांमुनीस स्त्रीपुत्रवाम्कोमलवामकान्ति ।

मदामदानव विगीतकालद्वेजग्रम्मकामस्तु बलक्षपणे ॥१॥

तेत्रस्त्रीपिनुभावुद्वेजचारु दृष्टि नृपप्रिय ।

अधुपूज्यो धनाइयच्छ दिवात्रातो नरो भवेत् ॥२॥

प्रतिमुसलितकायो न्याय सप्राप्तबिस्तो, बहुयुवति समेतो निरय सजातहृप

प्रबलतरबिनासा-अन्त कारण्य पुण्यो गुणगणपरिपूरण पूणिमात्रात जमा ॥१५॥

विद्वान् धनी सर्वगुणोपपन्नो, मनोरम क्मापति सम्भकाम ।

भाचार्यवमदचजनप्रिय-स्माद्वारे गुरोर्यस्यनरम्य जम ॥

प्राप्त सभी उपर्युक्त बातें माध के जीवन की घटनाओं से मन बाड़ी हैं । माध सर्व
छात्रत्रय के धीर भवन कुल में ये प्रधान भी थे । माध वैद्यविहितमाय पर चलने वाल सीध
बीबी करने रिता बलक की ही यांति सीतस्वमाध जाने तथा राजाओं क प्रीत करने
बाल बचुओं में पूज्य सभी तथा बानगीम य । उनक विनासमय जीवन की बात भी प्राय
सर्वविदित है ।

माध का जन्म माध माध में पूणिमा क दिन हुआ इसीलिए इन छारी बातों का मह
निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनका नाम भी माध ही रख दिया गया हो ।

एक समय कल्पना माध के नाम के विषय में यह भी है—

माध विपदक शमयत्री को प्रस्तुत करते समय हमने प्रबन्धों में देखा है कि ज्योति-
वियों ने इनके पिताजी को कहा था कि यह बालक लक्ष्मीहीन होकर विद्वतावस्था में
प्राप्त त्याग कर देगा । लक्ष्मी से छान्निट दिने जाने से भयना माध माध में जन्म लेने क पल
स्वप्न भवना इन्हीं दोनों सम्मिलित कारणों से इस बचि का नाम माध रख दिया गया हो ।
“मा” का अर्थ लक्ष्मी और “य” का अर्थ छात्रना—जो लक्ष्मी से छान्निट हो बहो छो माध
है उसि पाणिज राजध बंते ही माध । माध का अर्थ यन-अम्पति है । जनबान् कुल में उत्पन्न
होने वाला बहु बालक माध माध से उत्पन्न में प्रसिद्ध हुआ । यथा मन्त्र में जन्म हुआ धीर
बहु भी बदाविष्ट पूणिमा को धीर फिर ऐसे कुल में जहाँ जावन-पम्प मोम विमान क सभी
साधन हों तो दखिना था कैस सक्षी है । यत्र इन सब बातों का विचार कर ही रिता ने
अवस्था नाम माध रख दिया हो ।

माध काव्य के अगुर्ष सग में बचि की निम्नलिखित मुख्य कल्पना दंगरर विद्वानों ने
बचि का नाम र्धया माध रख दिया ।

उत्पतिविशतोध्वरदिमरज्जावहिमरुषोहिमधाम्निवातिवास्तम् ।

बहतिगिरिरियंविजम्भि यद्यद्वयपरिवारितवाररोद्र सीताम् ॥४२०॥

माघ नाम से केवल सिद्धपाल नर के कर्णों और कुमुद पंडित की वरक के पुत्र महा-
कवि माघ ही प्राच्यक प्रसिद्ध हैं। सुभाषित रत्न मांढागारम् में लगभग बारह श्लोक ऐसे
मिले हैं जो माघ कवि के द्वारा बनाये हुए बताये जाते हैं।

माघ का जन्म स्थान—

महाकवि माघ के जन्म स्थान के विषय में भी विभिन्न मत हैं—

(१) प्रचलित मत तो यह है कि माघ कवि गुजरात प्रांत के अन्तर्गत सूणी नदी
के निकट घाट् पर्वत से कुछ ही मील की दूरी पर स्थित भीमनाथ के निवासी थे।

(२) संस्कृत कवि वर्णन के लेखक डाक्टर जोषा संकर व्यास ने उन्हें भीमनाथ का
निवासी न बताकर राजस्थान के पार्वत्यप्रदेश झुंवरपुर, बाँसवाड़ा के समीप का निवासी
बताया है।

(३) श्रीज प्रबन्ध प्रबन्ध चिन्तामणि प्रयागक कवि तथा माघ काव्य की विशेष
प्रतियों में मिले हुए "इति श्री भिन्नमासक वास्तव्य" आदि के अनुसार माघ राजस्थान
प्राप्तान्तर्गत भीमनाथ के (जो किसी समय भीमनाथ नगर कहलाता था) निवासी थे।

भिन्नमास से उस भूमि का सर्वे किया जाता है जो मासवा से भिन्न है। जब महा-
कवि माघ भिन्नमास के रहने वाले थे तो इसका अर्थ यह हुआ कि वे मासवा के रहने वाले
नहीं थे। मासवा से जिस प्रजात उद्भूत आदि मासक भूमि के तो न थे। प्राचीन काल में
जुंवरना भूमि कोई अन्य ही थी। भिन्नमास उस जुंवरना (गुजरात) भूमि की राजधानी थी।
मारवाड़ के बाँसौर, पाँजी नागीर, आदि सब स्थान गुजरात कहलाते थे। क्योंकि वहाँ पर
जुंवर प्रतिहारों का शासन था। भिन्नमास की स्थिति गुजरात व मारवाड़ की सीमा पर
बताई जाती है। माघ भीमनाथ राजस्थान राज्य की राहवासी है। इसके तो बड़ी सिद्ध
होता है कि माघ राजस्थान के निवासी थे। इस सम्बन्ध से भिन्न बातें विचारणीय हैं।—

(१) जब ब्रह्मचर्या में श्रीज के निकट माघ गये थे तो उन्हें गुजरात देश से
प्राये हुए पंडित कहा गया था।

इस गुजरात नामी बात को ही लेकर कदाचित् डाक्टर व्यास ने माघ को झुंवरपुर
बाँसवाड़े के निकट का निवासी बताया है। उनका कहना है कि बलभी के राजा पंडितों के
प्राप्त्य जाता थे। अट्टि ही नहीं अट्टि से लगभग ३ वर्ष बाद में होने वाले माघ भी संभवतः
बलभी के राजाओं के आश्रित थे। पुत्र साम्राज्य के क्षिण-भिन्न हो जाने पर बलभी गुजरात
के राजाओं की राजधानी थी। गुजरात की पुरानी सीमा ठीक माघ से भिन्न थी। हमें
मारवाड़ और राजस्थान का दक्षिणी पार्वत्य प्रदेश (झुंवर-बाँसवाड़ा आदि) भी सम्मिलित
था। बलभी संभवतः झुंवरपुर बाँसवाड़ा के आस-पास बसित ही पश्चिमी गुजराती भाग में
स्थित थी। गुजरात की साहित्यिक परम्परा अट्टि से लेकर हेमचन्द्र के बाद तक बसती आई
है। मेकरीनल के संस्कृत साहित्य के गुजराती अनुवादक ने माघ को गुजरात का सर्वप्रथम
कवि माना है।

इससे यह निष्कर्ष भी निकलता है कि मारवाड़ की भूमि एक समय सुखरुचि ही कहलाती थी और घाहू पहाड़ के समीप ही भीनमाल की स्थिति भी थी। अतः वर्तमान भीनमालही क्यों न लिया जाय। इ. परपुर बांसवाड़े के समीप की भूमि उसे क्यों समझी जाय। रही बात बसमी के राजाओं की जो पण्डितों के आश्रयशाला थे। उनका कहना है कि यदि कवि को आश्रय दिया तो वह १० साल बाद में होनेवाले माघ की भी सम्भवतः बसमी के राजाओं ने आश्रय दिया होगा। डाक्टर व्यास भट्टि को सातवीं शती के प्रथम चरण का मानते हैं वर्षात् ६१२ ई० तक, और २० साल बाद माघ की मान कर उन्हें सातवीं शती के अन्तिम भाग का मान रहे हैं जबकि वे विद्यमान ही न थे। जब बसमी की प्रजापता नष्ट हो गई थी और भीनमाल सुखरुचि की राजधानी था, तब माघ कवि बहीं थे। वे बसमी वालों के आश्रय में कभी नहीं रहे। सुखरुचि में मारवाड़ तथा घाहू वाले प्रदेश के निरुद्ध के भीनमाल में माघ रहते थे यह बात उनके महाकाव्य त्रिपुरामरण से स्पष्ट विरहित है। वहाँ माघ ने ऊँटों का ऊँटों की महति का जो स्वाभाव बलुन किया है वैसे बलुन रेयिस्तान के निवासी किसी कवि से ही सम्भव है। इ. परपुर बांसवाड़ा पथरीसे प्राप्त है अतः वहाँ पर इतने ऊँट नहीं, ऊँट तो रेयिस्तान का बहुराज है और भीनमाल तो मारवाड़ में है ही अतः ऊँटों का वहाँ होना स्वाभाविक ही है। वहाँ से घाहू पहाड़ निकट ही है पास में खूनी नदी प्रवाहित हो रही है जिसका बलुन रैवतक पर्वत के बलुन के रूप में हुषा है। यहाँ की बड़ी बूटियाँ रात्रि की अन्धकार में जमक कर पहाड़ की गोमा को प्रियुषित कर देती हैं।

(२) इति भी विप्रम, सप्त वास्तव्य वस्तु सुनोर्माप' त्रिपुरामरण की अधिकार्य प्रथियों में प्रत्येक छंद के अन्त में देखकर कवि को संदेह होया कि माघ भीनमाल के बहुराज।

(३) माघ के त्रिपुरामरण के १६वें सर्ग के अष्टमस्क दशक में विमृष्टम् से वस्तुभूमि (भीनमाल जालौर, मारवाड़) का उक्ति करते हैं जो यह बताता है कि वह भीनमाल के हैं (देखिये अन्त सारम वाला अक्षर)।

(४) प्रथम तथा अन्य तद्विवरक ग्रन्थों में सर्वत्र ही माघ की भीनमाल निवासी ही कहा है। (देखिये माघ विषयक सामग्री)

(५) अष्टमस्क के निमामेक तथा बहुराज्य के बहुराज्य विद्वान्त के आधार से माघ भीनमाल निवासी ही सिद्ध होते हैं।

इन सब से वही निष्कर्ष निकलता कि माघ की जन्म भूमि प्राचीन सुखरुचि प्रांत के अन्तर्गत भीनमाल ही है जो आज राजस्थान के चित्तौड़ी जिले के निकट एक पहाड़ीय है।

माघ का कुल

माघ कवि जिस कुल में उत्पन्न हुए, यह प्रश्न भी कुछ विचारालायक सा बन गया है। एक मत के अनुसार वह वैश्य थे तथा दूसरे मत के अनुसार ब्राह्मण।

इन्के वैश्य होने के सम्बन्ध में नीचे लिखे प्रमाण दिये जाते हैं—

(१) भीमसेन जी वीरचित्त ने अपनी काव्य प्रकाश की मुवायिदर टीका में पृष्ठ ३३

पर प्रथम अध्याय में लिखा है—‘आदि पद्यात् मोक्षप्रबन्धकारिभिर्गोत्रात् मातृकारिभिर्मर्षस्य
 र्वेस्यात् बहुतरुचनम् आद्यं इत्यादि सङ्ग्रहम्’ । इसी बात को मान कर कृष्णमाचारी ने अपने
 संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखा है—

“Bhimsen in his commentary Sadhashekhar on Kavya-Prakash
 says that Magh was only the purchaser of authorship of the book from
 some poet whose name has been suppressed. He says Magh was vai-
 shya and gives his work as an illustration of a poem composed for
 money

(२) जनश्रुति के अनुसार इसी सम्बन्ध में एक कहानी है—महाकवि भारवि स्वसुर
 गृह में रहते हुए कासपावन कर रहे थे । स्वसुरगृह की गायीं को वन में जाकर बघा माते ।
 गायों को बघाते समय बृक्ष के नीचे बैठकर स्तोत्र-रचना किया करते थे । सहिष्णी अपने पौहर
 में रहती । एक दिन अपने परिचरों में बीठी हुई जब बातें कर रही थी तब सखियों का व्यंग्य
 सुनकर बड़ी दुखी हुई । रात्रि के समय स्त्री ने भारवि को कहा कि मुझको स्वयं की बड़ी
 प्रायश्चित्तता है । सखियों के सम्मुख मुझको नीचा होना पड़ता है । मैं भी ह्जार लेकर वन में
 पहिनुंवी । भारवि ने ‘सहसा निवर्षीत न किञ्चामनिकेन परमापद्यम् पदम्’ वाले श्लोक को
 जो बृक्ष के पत्तों पर लिखा हुआ पड़ा था उसे लिया और कहा कि जाओ इस श्लोक को ले
 जाकर किसी छेठ की स्त्री को दे जाओ और इसके बचाव तुम अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए
 बीच ह्जार रुपये ले जाओ । स्त्री ने प्रत्युत्तर में कहा कि इसके लिए इतना रुपया कौन देगा
 तुम कौसा उपहास कर रहे हो ? भारवि ने कहा कि इसमें उपहास की कोई बात नहीं है छेठानी
 से जाकर कहो कि इस पत्र को जहाँ पर तुम सोओ वहाँ पर लूँटी पर सटका कर रख दो ।
 इससे तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा । इसका मुख्य बीच ह्जार रुपये है इसके कम नहीं । वह वहाँ
 गई और पति के कहने के अनुसार ही उसने किया । छेठानी ने समझा यह अवश्य ही काम
 का है मगर उसने उसको लेकर पत्रार्थ के ऊपर रखता जहाँ वह सोया करती थी और बीच
 ह्जार रुपये दे दिये । छेठानी का पति विदेश गया हुआ था । कोई १५ वर्ष बीत गये । घर
 से विदेश के लिये प्रस्थान करने के समय छेठानी के गर्भ का । पति विदेश से १५ वर्ष पश्चात्
 लौट कर आया । घर में स्त्री अपने बुढ़क पुत्र को साथ लिए छोड़ कर लौई हुई थी क्योंकि
 पुत्र पञ्चदशवर्षा में था और बार-बार बस्त्र को उधाड़ देता । इसका बेहू मान खुला न रह
 पाय और कुछ समय के लिए बीच धा बाम लो बन्धा है यह सोचकर वह उसके पास ही लेट
 गई थी । जोड़ी देर में उसे भी नींद आ गई । छेठ संकाकुल हुआ यह देखकर कि उसकी स्त्री
 के पास कोई और व्यक्ति लेटा हुआ है । क्रोध के मारे जैसे ही हाथ में चारण की हुई तलवार
 का उस पर प्रहार कर ही रहा था कि सामने एक पत्र सटकाता हुआ दिखलाई पड़ा ।
 छेठ ने सोचा कि मारना तो है ही प्रथम इसके इस टुकड़े का जन्म को भी तो दस नूँटि इसने
 वह क्या टोना कर रक्खा है । पत्र को पढ़कर उसने सोचा कि कोई भी काम बिना सोने
 समझे सहमा नहीं कर बैठता चाहिए इससे प्रायश्चित्त या पाया करती है । इसी बीच स्त्री
 की घोंघ तुम गई और देखा कि पति सामने पड़े हैं । उसने पुत्र को खटाया और कहा कि
 बेटा उठ, तेरे पिता जो था मरे । छेठ भी घबराक रह गये और ईश्वर को प्रार्थना किया कि

यदि यह पत्र न होता तो माधव उनका एकही पुत्र इस बखार खंडार से उनकी के हाथों बाध प्रभा गया होता । स्त्री ने पत्र बांधी बात को जैसे ही कहा कि सेठ भी नये प्रसन्न हुए । कुछ समय बीत जाने पर बरोबर रूप में रखे गए उस पत्र को लेने के लिए भारवि की स्त्री २० हजार रुपये लेकर धात्री धीरे उस पत्र को बाधित मानी । सेठजी ने घ्राह्य किया कि यह पत्र उन्हें ही दे दिया जाय किन्तु जब भारवि की स्त्री ने कहा कि उसके पति इस बात को नहीं मानेंगे तब सेठजी ने क्रोध में भाकर कह दाता कि इतने क्या है यदि इससे बढ़ कर सत्तर रक्का करके एक अर्घ्य काव्य ग्रन्थ को नहीं बनाईं तो फिर मेरा भी माधव वास्तविक नाम नहीं जो भारवि रूप सुने समझे जाने वाले को माधव रूप हीन के सम्मुख धीठ करदूँ । स्वर्ण में एक महाकाव्य बन गया—विष्णुपावनवध महाकाव्य ।

(३) प्रभावक बरित में कुंभकर येंद्री का नाम महाकवि माधव के चाचा के रूप में आता है । येंद्री का प्रयोग नगर भाष के व्यापारी के लिए होता है इसलिए कुंभकर नैस्य के ऐसी मायता प्रकटित हो गयी । जब माधव के चाचा येंद्री (सेठ) ने तो ठीक माधव वैश्य क्यों न होते । भवभाव पार्श्वनाथकी परम्परा का इतिहास पूर्वार्द्ध (देवपुत्र धूरि कृत) में लिखा हुआ है कि उपबेधपुर के शासनकर्ता राज उत्पलदेव थे । वे सुबर्बसी थे । कालान्तर में जैन हो गए और जब से जैन हुए तब से ही वे जैन धर्म का प्रचार करने में लग गए । उनकी संतान में भी जैन धर्म की उत्पत्ति के लिए ऐसे-ऐसे ब्रह्म कार्य किए कि जिससे जनता उनको येंद्री कहने लग गई, फिर धर्म धर्म उनका लोग ही येंद्री हो गया । राज उत्पलदेव की संतान ने कई पीढ़ियों तक तो राज्य किया फिर बाद में उनके परिवार वालों में से कश्चमों ने राजाओं के मन्त्री महामन्त्री धादि पदों पर राज्य का काम किया जिससे वे 'भारवाह' में पहुँचा कह गए । येंद्री (सेठ) और महता जैनों में दो लोग धर्म भी प्रकटित हैं ।

(४) संवत् १३३२ में लिखी हुई माधवकाव्य की एक प्रति में मिलता है—

इति श्री माधव बखिमनिरचिते महाकाव्ये श्री विष्णुपावनवधो नाम विंशतिष्ठम सर्गम् ।
सम्पूर्ण माधवकाव्यम् । संवत् १३३२ वर्ष जैन धूरि बावरी सिने सोमवासरे (सोम वासरे) ब्रह्म श्री रत्न पठनार्थ श्री माधवकाव्ये विंशति अंशे रत्नमत्त । सुनं भवत् । कन्यासुबुद्धिभस्तु ।"
(देखिए, पुरातन विभाग, बनपुर में हस्तलिखित ग्रन्थ 'महाकाव्य')

यदि इस कैल का आधार ऐतिहासिक है तो इससे भी माधव का बखिक् (वैश्य) होना ही विदित होता है । इतना तो समझ में आ ही सकता है कि संवत् १३३२ के भाद्र-मास सोम भाष को बखिक् भी मानने लगे थे ।

अगर किसी बातों की समीक्षा करना आवश्यक है —

(क) श्री कुम्भभाषाणी का कथन यह तो किसी तरह सिद्ध कर सकता है कि विष्णुपावन काव्य को किसी वैश्य ने सदीबा पर काव्यकार भी वैश्य था यह बात इससे सिद्ध नहीं होती ।

(ख) 'सहस्राविरभीत न क्रियाम्' इत्यादि श्लोक का माधव के जीवन से इस तरह जो सम्बन्ध दिया जाता है इसका कोई प्रमाण नहीं । यह जनश्रुति की बात है । इसका कोई भी प्रमाण नहीं मिलता ।

(ग) प्रभावक चरित्र में जो भोही शब्द का प्रयोग सुमन्दर के नाम के साथ किया गया है वह उनकी ईश्वरता का बोधक न होकर उसकी भोक्ता का बोधक भी हो सकता है। 'भोहिन्' इस शब्द का प्रारम्भ में प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के लिए किया जाता था जो अपने किसी भी बड़े काम के कारण भोक्ता की प्राप्त हुए हों। यह एक उपाधि थी जो कालान्तर में जब समाज में धर्मोन्मुखता बढ़ी बगिचों के साथ भोही जाने लगी। बगिच प्राम-बैश्य होते हैं इसलिये भोहिन् से बैश्य का समिप्राय लिया जाने लगा और जैनियों में तो जैसे ऊपर कहा गया है यह एक गौरव बन गया। शब्द का सेठी शोध भोहिन् का अपभ्रंस भयवा निकसित रूप है।

यही कहना सम्यक उचित होगा कि सुप्रमदेन के कार्य भोहू थे। वह मातृकाभ्यानुसार पुण्य बर्मावासे परम धार्मिक तथा निरासक्त दृष्टि वाले धीर रजोबुद्ध पटित व्यक्ति थे। धार्मिक पिता के पुत्र बचक भी बड़े छवार, समाधीन कोमल प्रकृति तथा बर्मेतिष्ठ व्यक्ति थे ऐसे व्यक्ति जिनको देखकर लोगों की मुबिष्टि का स्मरण हो जाता करता था। बचक ही 'सर्वाभय' कहलाये। प्रभावक चरित्र के अनुसार बचक के कनिष्ठ भ्राता सुमन्दर भी थे। भोहू कार्यों से यह बंध भोही कहलाया। बचक बड़े बनीं थे प्रबन्ध चित्तमणि के अनुसार इसने बनी कि उन्होंने माय के लिए पृथ्वी में इतना बन पाड़ दिया जिससे माय की प्राचीनन धर्म-कष्ट न हो। नाश बनीं थे उत्कर्ष करते थे इसलिये भोही कहलाए।

(२) माय ब्राह्मण के —

(क) चिकुपात्र के अन्तिम पाँच श्लोक धात्मकता के रूप में लिखे गए हैं जो धर्म पुरुष हैं। कुछ लोग इन श्लोकों को प्रक्षिप्त करते हैं और कुछ का कहना है कि महाकवि माय ने ही धर्म पुरुषों में इनकी रचना की। पहिले से बताया जा चुका है कि श्लोक प्रक्षिप्त नहीं हैं। इनमें से प्रथम ही श्लोक से महाकवि माय के ब्राह्मण होने का संकेत मिलता है।

सर्वाधिकारी मुकुताधिकारः श्रीवर्मसात्मस्य बभूव राज्ञः ।

असमस्तहृष्टिभिरजा सर्वैव देवोऽमरः सुप्रमदेननामा ॥१॥

उपप्लुत बंधवर्णन के श्लोक में 'देवोऽमरः' शब्द आया है। देवोऽमर का धार्मिक अर्थ है ईश्वर देव। बड़ा विप्लु धीर महेश आदि की परमा तो देवों में जाती ही है किन्तु ब्राह्मणों की भी 'मुनिदेवा' कहकर देव कोटि में परिगणित किया गया है। भारवि के अनुसार ब्राह्मण 'सत्त्वाधिप सम्प्रति मुनिदेवा' हैं। अमर देव का अर्थ ब्राह्मण ही है। फिर जब सुप्रमदेन ब्राह्मण थे तो उनके पौर माय कवि भी ब्राह्मण ही हुए।

(ख) प्रबन्ध चित्तमणि में आई हुई माय सम्बन्धी कथा से भी माय का ब्राह्मण होना स्पष्ट होता है। कथा की अन्तिम पंक्ति है "श्री यामेपु तत्रातिपु जनबत्सु सत्सु तस्मिन्नुपरत्ने विनष्टे मुखा बाधिते सति विस्मयान इति तज्ज्ञातं नाम निर्गमे।" इसमें हमके बीनास निवासी ब्राह्मण होने का संकेत है।

गमिषा दुर्मितो पतति दुरवस्था कथमुणः,

समस्ते कर्माणिक्षिति-परिवृष्टान् कारयति च ॥

अदस्तापि प्राप्तं ब्रह्मपतिरसावस्त समये
 नव याम किं कुर्मो गृहिणी गृह्णो जीवितविधिः ॥

इस श्लोक में भिक्षा की बात आई है। ब्राह्मणों के लिए भिक्षा-वृत्ति का विधान है। फिर वहाँ तो यह भी कथन है कि इस दुष्काल में कमकाष्ठ भी कौन करायेंगा ? परम्परा से कर्मकाष्ठ तो ब्राह्मण ही करते हुए आए हैं। माष की मात्रा भोजन तक नहीं मिल रहा है, किन्तु इस माष की उर्ध्व कोई भिक्षा नहीं यदि भिक्षा है तो केवल बिना वास प्राप्त किए हुए ही सूर्य के घर से जाने की। सूर्य को प्राप्त करते हुए बहुत कम अनुप्य देखे गए हैं। हाँ जो-श्राव को तो अधिकोक्त रूप में ब्राह्मण ही भोजन करने के पूर्व निकालते हैं। सूर्य के लिए वास निकालना भी ब्राह्मणों में हो सकता है। चाक डीपी ब्राह्मण भूर्जोपासक होते हैं। सूर्य मन्दिर के पुजारी भी वे ही ब्राह्मण रहे जाते हैं। वे मय ब्राह्मण कहलाते हैं। श्री के० एम० मुन्शी ने "बी ब्लोटी रीट बुर्जर देस हैड" पुस्तक में लिखा है कि भीमनाथ में मय ब्राह्मणों की अधिकता सातवीं शताब्दी के पूर्व थी, किन्तु इसके पश्चात् वे वहाँ से चले गये। पिछले शताब्दी में प्रबन्ध चिन्तामणि का उद्धरण देते हुए लिखा गया है कि राजाभोज ने बनते हुए जयदेव स्वामी के मन्दिर का पुष्प-नाम माय को दिया। जयदेव स्वामी का मन्दिर चित्तौड़ में है, जो शिव का मन्दिर कहलाता है। चित्तौड़ में सूर्य का मन्दिर है उसको शिव काशिका का मन्दिर कहते हैं। जयदेव स्वामी शिव है या सूर्य इस बात को देखना है। जैसे देखा जाय तो संसार का स्वामी सूर्य ही है, सूर्य के बिना संसार में कोई कार्य हो भी नहीं सकता। शिव को भी तो परमात्मा रूप मानकर जयदेव स्वामी कह देते हैं किन्तु जयदेव स्वामी शब्द का धार्मिक प्रचार पूर्व के शर्ष में ही हुआ है। भीमनाथ में तो सूर्य का (जयदेवस्वामी) प्रति प्राचीन मन्दिर भी है। चित्तौड़ में सूर्य मन्दिर पहले का अब नहीं। चित्तौड़ के महाराजा सूर्यवंशी हैं। पताका पर सूर्य का चिह्न रहता है। वे शिव के दीवान हैं। जयदेवजी का मन्दिर जो आज भीमनाथ की का मन्दिर कहलाता है किसी समय में यह भोज स्वामी देव का मन्दिर कहलाता था। मन्दिर का नाम भी सोमायास शास्त्रीकृत बीरभूमि में अद्भुतजी के मन्दिर के लिए निम्न श्लोक आया है —

श्री रायमल्लनरनायक राज्यकासे, निर्मापितं ससति चक्र गेहमये ।

एतन्महादभुत् शिव प्रतिमापुस्तवाद् विख्यातमस्ति किम मंदिरमद्भुतस्य ॥८४॥

"बीर भूमि" में मोकस जी के मन्दिर को अद्भुत मन्दिर से निम्न माना गया है। वहाँ उसको समिद्धेश्वर का मन्दिर कहा गया है। मोकसजी ने उसका जीर्णोद्धार करवाया था।

वृत्ति न वैदुष्यतोऽसि विनष्टोपामासाक्षय रम्परचनां हि महेश्वरस्य ।

मास्वाधतां सुकवितां चिरमेकनाथ अद्भुतस्य सुदमनि समाधि-महेश्वरस्य ॥८५॥

जयदेव स्वामी का मन्दिर और भीमनाथजी का मन्दिर एक ही था या दो। इस पर अभी निश्चित रूप से कोई बात नहीं है। यदि सोमायास शास्त्री के कथन को सही मान लें तो भी भोज ने माय को जयदेव स्वामी के मन्दिर का पुष्पनाम दिया

इसमें कोई सन्देह नहीं पैदा होता । पुष्प नाम ब्राह्मण को ही दिया जाता है यह बात भी लोक विरिक्त है ।

ऊपर दिये विवरण से माघ का ब्राह्मण होना प्रमाणित होता है । कुछ प्रतिभों में जो माघ को बलिष्क बताया गया है वह अधिकतर पूर्ण जनश्रुति के आधार को लिए हुए हैं और एक धर्म सत्य सा कुछ लोगों में मान्यता पा गया है ।

माघ के ब्राह्मण सिद्ध होने के बाद यह प्रश्न उठता है कि वह कौन से ब्राह्मण थे ? प्रातः उष्यों से अनुमान होता है कि वे मग (साक डीपी) ब्राह्मण होंगे । मग ब्राह्मण सूर्योपासक होते हैं । वे सूर्य को प्रातः लिए बिना भोजन नहीं करते । जगत् स्वामी का मन्दिर, सूर्य मन्दिर वा इसलिए किसी मग ब्राह्मण को ही उक्तका नाम दिया जा सकता था क्योंकि परम्परा के अनुसार वहीं सूर्य मन्दिर के पूजक या पुजारी हो सकते हैं ठीक उसी तरह से जैसे रामेश्वर के मन्दिर के पुजारी जाकौस ब्राह्मण ही होते हैं । वान का पुष्प नाम तब ही मिलता है जब वान-नाम को दिया जाता है । माघ इस वान को प्रातः करने के अधिकारी बन सके इससे यह सिद्ध होता है कि वह मग ब्राह्मण ही थे ।

बलिष्क पुराण के १७वें अध्याय में मग ब्राह्मणों के विषय में एक उपाख्यान मिलता है । प्रबन्ध चिन्तामणि और बल्लान्तरचित मोक्ष प्रबन्ध से उसकी तुलना करने पर विक्षिप्त होता है कि माघ साकडीपी (मग) ब्राह्मण थे । उपाख्यान कुछ इस भाँति का है—

साकडीप का राजा त्रियम्बकतन्त्रय वा बिस्ने अपने राज्य में सूर्यदेव का मन्दिर बनवाना और उसमें एक स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित की । उसने वहाँ के रहने वाले तीनों बरुणों (मरिय वीस्व और सूर) के लोगों को कहा कि इनमें से कोई उस मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा करे । वहाँ कोई ब्राह्मण तो था नहीं—वह काम कौन करता ? कोई तैयार नहीं हुआ । राजा दुःखी हुए और सूर्य की शरण में गए । सूर्य देव ने कहा कि वास्तव में वे तीनों बरुण मेरी मूर्ति की प्रार्थना के अधिकारी नहीं हैं, यद्यपि ठीक ही है कि इसमें से कोई भी मेरी प्रार्थना करने के लिए स्वीकृति नहीं देता है । अब मैं तुम्हारे संघर्ष के लिए क्षीप्र ही मग नाम के अनुपम ब्राह्मणों की सृष्टि करता हूँ । उसी समय सूर्य के शरीर से ८ महाबली ब्राह्मण प्रादुर्भूत हुए । उन्होंने पूछा पिता जी क्या आज्ञा है ? इस पर सूर्य ने कहा कि साकडीप में जो राजा है उसकी आज्ञा का पालन करो । फिर सूर्य ने उस राजा को कहा कि वे ब्राह्मण तुम्हारे लिए प्रार्थनीय हैं । मैं इन्हें अपनी मूर्ति की प्रतिष्ठा और पूजा धारि का अधिकारी बनाता हूँ । तुम इस मन्दिर को इन्हें ही दीप दो । उनको दिया हुआ वान तुम बापस मत लेना । सूर्य ने फिर कहा वे वेदाध्ययन करेंगे और इसके बाद वान ग्रहण करेंगे । प्रतिदिन त्रिगंध्या स्नान करके विद्यारात्र में पाँच बार मेरी पूजा करेंगे । मेरे शिवा और कोई देवता उनका उपास्य नहीं होगा । वे भोजक ब्राह्मण देवता ब्राह्मण और वैदवाक्य में वास्ता वाले होंगे उनको सप्ताह निकाल करके एककी भोजन करेंगे धूम्रप्रग्रहण धनवा उनके सम्बन्ध का स्वीकृत इत्यादि निषिद्ध कार्यों का सावधानी से परिचयान करेंगे । मेरे लिए बढ़ाया गया नैवेद्य ही उनकी परमभूति रहेगी । अयोग्य भोजन नहीं करेंगे और प्रतिदिन मुझे ही भोजन कल्पेंगे । जो व्यक्ति धर्मज्ञहीन होकर मेरी पूजा करेगा उस पर मैं कभी भी प्रसन्न न होऊँगा और उक्तका बंधन-मोच हो जायगा ।

अविष्यपुराण के १३६ वें अध्याय में भी मग ब्राह्मण की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रायः वही बात कही गयी है। उसी पुराण के १४० वें अध्याय में ऐसा भी लिखा है कि वे मग ब्राह्मण देश में पारवर्षी हैं और इनमें धर्मिकोप धिया-काण्ड में रत हैं। वे विपरीत कर्म से वेदाभ्यसन करते वे इसलिए मग और मयु नाम से प्रसिद्ध हुए। वे अपने बास दीर्घ कुर्च रखा करते ॥ पीनी होकर भोजन करते हैं। जैसे ब्राह्मणों के सब संस्कारों में दया की बकरत होती है उसी भाँति वे बर्मा रखते हैं। वे कभी भी भुत या राक्षसजा स्त्री का स्पर्श तक नहीं करते। जैसे ब्राह्मण माग भञ्जादि में मान्य द्वारा संस्कृत सोम का पान करने से वृद्धि नहीं होते वैसे ही देशप्रसाद के रूप में मद्यपान इनके लिए पानीय हुआ करता है। वे मद्यपान के बोयी नहीं होते क्योंकि माग से संस्कृत करके उसे पीते हैं। वे इसे हवि कहते हैं। अग्निहोम के मुख्य इनके भी धम्मरक्षोम मद्यपु कहलाता है वे प्रतिदिन विवाकर को तीनों संभ्या कालों में पंच प्रकार क्षुपदान करते हैं।

अविष्य पुराण में धार्ये कहा है कि हावस धारित्यों में एक धारित्य विष्णु है। इस विष्णु ने काम्बवती के गर्भ से साम्ब को जन्म दिया। साम्ब दुर्वासा के श्राप से कुट्टी हुए पर मारुत के उपदेश से मित्र की तपस्या कर जब रोचमुक्त हुए तब सूर्य की मूर्ति की स्थापना की। सूर्य की पूजा के लिए मग ब्राह्मण भारत में लाये गये। मुसदान काकडीपियों का भूतस्वान है। नहीं ही सूर्यमूर्ति की सर्वप्रथम प्रतिष्ठा हुई थी। ये मग ब्रह्म-जान भी सेते हैं इसलिए इन्हें ब्रह्म-विश भी कहते हैं।

टाड का कहना है कि एक राजपूतों के साथ पारवर्षी का वैवाहिक सम्बन्ध हुआ था। अविष्य पुराण में भी कहा है कि मग ब्राह्मणों ने मारुत या योजक कन्या के साथ विवाह किया तब से उनकी उत्पत्ति योजक कहलाई है।

हिन्दी-विस्व-कोष में मग ब्राह्मणों के लिए लिखा हुआ है कि वे बौद्धमार्गिकजन्मी होते हैं किन्तु इसके सिवा वे शिव और बुद्धों को उपासक धर्मिक होते हैं।

प्रबन्ध विन्यासशि में लिखा है—स्वदेशयमनायापुष्पस्य स्वयं कारितनम्ययोजस्वा निप्रासादप्रवत्तपुष्पो मासवमध्यमं प्रति प्रदत्तये। जब भोज अपने देश को सोटा तब इस प्रतिनि-सत्कार के फल में उसने अपने बगते हुए भोजस्वामी के मन्दिर का पुष्प माग को दिया। वह भोजभारापिपति भोज तो हो नहीं सकते क्योंकि वे शिव के उपासक थे। सूर्य के उपासक को शिवमन्दिर की भेंट संभव प्रतीत नहीं होती। फिर वहाँ तो पुष्प-माग की बस्त और जुड़ी हुई है इसलिए इनकी संवाचना और भी कम हो जाती है।

चिरीक के कर्तु-भोज माग के पिता के मित्र थे। माग पर उनका स्नेह माग था। मन्दिर के पुष्पमाग की बात उसके साथ मथित नहीं होती।

मग भोज प्रतिहार बघते हैं मित्रका हाट ही सूर्य था। वे जप्यय थे। विष्णु को भी सूर्य का ही एक रूप मानते थे और सूर्य की उपासना करते थे। उनके स्वामी सूर्य ही थे। मिहिर की कथावि उन्होंने कथाविह इसीलिए भारणा की थी। प्रतिनि-मरगार में माग को भोज-स्वामी (सूर्य) का मन्दिर भेंट कर उन्होंने पुष्प का संकय दिया। अविष्य पुराण से जो उपास्यान ऊपर दिया गया है उसमें स्पष्ट है कि सूर्य की पूजा के अधिकारी वे ही ब्राह्मण

हैं जो मग (साकडीपी) हैं धन्य ब्राह्मण नहीं। मग ब्राह्मण माग को सूर्य-मन्दिर बँट करने से पुण्यमाग की प्राप्ति हुई।

माग साकडीपी मग ब्राह्मण ने सभी उन्हेंनि अपने परम आराध्य सूर्य देवता के मन्दिर का नाम अपने आपको माग्यसासी मानते हुए स्वीकार किया धन्यवा प्रसूत समृद्धि साक्षी तथा सङ्कल्प शिरोमणि परम विद्वान् महाकवि माग अपने ही प्रिय व्यक्ति से धार्मिक के बरमे दान स्वीकार नहीं करते। न तो राजा भोज से माग जैसे दान-पात्र मिल सकते थे और न महाकवि माग को सूर्य मन्दिर से बढ़कर और कोई बड़ा दान ही मिल सकता था।

प्रबन्ध चिन्तामणि में एक श्लोक आया है, जिसका पुन अन्वेष करना यहाँ आवश्यक है—

म भिक्षा बुभिक्षे पतति दुरवस्थाकथमयं
समन्ते कर्माणि क्षिति परिवृढान्कारयति कं ?
अदत्तापि प्राप्तं ग्रहपतिरसावस्तमयते
न न याम किं कुर्मो गृहिणी गहनो जीवितविधिः ॥

इन पंक्तियों में प्रथम द्वितीय और तृतीय पंक्तियाँ विशारद्वीय हैं—

समन्ते कर्माणि क्षिति परिवृढान्कारयति कं ?
अदत्तापि प्राप्तं ग्रहपतिरसावस्तमयते ।

पहली पंक्ति में तो कहा गया है कि इस बुभिक्ष में हम ब्राह्मणों से कर्मकण्ड कोन करावेना तथा दूसरी पंक्ति में माग भिक्षित से है यह सोच कर कि प्राप्त-भोजन को प्राप्त किए बिना ही यह सूर्य अस्त हो रहे हैं। इन दोनों बातों से भी माग का साकडीपी होना ही सिद्ध होता है। भविष्य पुराण में बीसा पहले कहा था चुका है मग ब्राह्मणों के लिए प्रतिदिन सूर्य को प्राप्त अर्पित करना एक आवश्यक कर्तव्य बताया गया है। इसी श्लोक से यह भी प्रमाणित होता है कि माग क्रियाकाण्ड में अधिक रह थे। माग कहते हैं कि बुभिक्ष में हम ब्राह्मणों से कर्मकाण्ड कोन करावेना।

विष्णुपातनव्य काव्य में भी महाकवि माग के साकडीपी होने का प्रमाण मिलता है। भविष्यपुराण में साकडीपी ब्राह्मणों के लिए देवप्रसाद के रूप में मद्यपान बोध नहीं है। ये तो इसे इति कहते हैं। अभिहोत्र के तुल्य इनके भी यह अर्थ कहलाता है। विष्णुपातनव्य में माग ने मरिचपात के वर्णन को संभवतः इसीलिए उचित नहीं माना।

स्नान करके भिक्षाक सङ्ग्राह करने का नियम मग ब्राह्मणों में है ऐसा उपास्यान में है विष्णुपात नव्य में भी एक जगह आया है—

॥ संस्कारिण्युर्मुवनान्तरेण या महच्छ्रयासिधियवाथय धियः ।

प्रकारि तस्यै मुकुटोपसस्तसत्कारैस्त्रिसंध्यं विषयादिदीनमः ॥१४६॥

इसमें भी तीनों सङ्ख्याओं में नमस्कार करने लगते थे। इससे यही अभिप्राय निकलता है कि माग तीन समय सङ्ख्या अवश्य करते होंगे।

हिन्दी विरल कोष में मन ब्राह्मणों के लिए लिखा हुआ है कि ये बीडबर्मावमन्त्री होते हैं किन्तु इसका प्रतिरिक्त वे शिव और दुर्गा के उपासक भी अधिक होते हैं यद्यपि सूर्य की तो पूजते ही हैं ।

मान की बीवनी में उनके गर्भ की बर्णना करते हुए बताया गया है—यह एक धीरे दा बीड वर्म के प्रसवक से और दूसरी ओर सूर्य, शक्ति, शिव और विष्णु के उपासक से ।

इसलिए बहिः शास्त्र और अन्तःशास्त्र दोनों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि त्रिमुक्तम ब्रह्म के रचियता महाकवि भी मान निवासी शाकद्वीपीय मन ब्राह्मण थे । श्री मान निवासी होने से वे आज तक भी श्री मानी ब्राह्मण कहलाते हैं यद्यपि वे थे शाकद्वीपीय ।

“ यह हमारा सोमार्थ है कि महाकवि मान ने आत्मकथा के रूप में अपने बंध का परिचय अन्तिम पाँच स्तोत्रों में अन्त्य पुरुष के रूप में दिया है और इसके प्रतिरिक्त प्रसारक चरित्र में सिद्धार्थ के प्रवचन से श्री मान कवि के कुल की जानकारी पर्याप्त रूप में हो जाती है । हमने आत्मोचनात्मक रूप में आचरितवक सामग्री में इसका विशदकरण कर दिया है अतः अब हम यहाँ पर महाकवि मान के जीवन का समानुसार बर्णन करेंगे ।

भुवराज में श्रीमान (श्रीमान) नामक एक प्रतीक सम्प्रदायी नगर रहा है जो आज मारवाड़ की सीमा पर है और राजस्थान प्रान्त के सिरोही राज्य से कुछ ही दूर बस मण्ड के समीप एक स्थलीय है । पहले बताया जा चुका है कि किसी समय यह नगर मन आत्म से परिपूर्ण था । राजा वर्मस इस नगरी का स्वामी था जो आपसीय था । सं० ७९० ई० में उसने बंधों की मोठी को नियत करके हुए श्रीमान के ही प्रति निकट सीमेस माता (दुर्गा) के मन्दिर की स्थापना की थी । राजस्थानीय आधिपत्य तथा प्रतिहार बोटक भी उस मोठी के सदस्य थे । राजा वर्मनाल अत्यन्त बलवान् था । उसके शासनाधीन अन्त्य मांड मित्र राजा भी थे । राजा वाचम जली के राज्य में था यहाँ पर बलमठ स्थापन करने कर रहा था जो देवी का परममठ था । राजा वर्मनाल के अन्ती मुद्रमण्ड से बिनको सुष्ठकर्मों के नियम में अधिकार प्राप्त थे । वे परम आत्मिक नियमक हटि तथा सार्विक स्वभाव वृत्ति के ब्राह्मण थे । इन्हीं मुद्रमण्ड के दो पुत्र थे—रत्नक और दुर्गकर । रत्नक बड़े उदार तथा धीम कोमल प्रकृति तथा कमजोर व्यक्ति थे । इनके कार्यों को देखकर मनुष्यों की बुद्धि का स्मरण हो जाता था । वे अत्यन्त शत्रु थे । दुर्गकर भी निराल को दिय मयने वाले एवं दानी व्यक्ति थे जिनके दान की यादें लोक विद्युत थीं । रत्नक (दुर्गकर पण्डित) की स्त्री का नाम ब्राह्मी था जिसके गर्भ से जलम की शक्ति प्रीतल प्रकृतिवाले सिधुवासक महाकाय के कर्ता महाकवि मान का जन्म हुआ और दुर्गकर की स्त्री लक्ष्मी के गर्भ से मित्र का जन्म हुआ जो अपने बलकर उपनिविष्ट प्रबंध कला के लेखक हुए । इन शक्ति महाकवि मान और मित्र दोनों अपने भाई थे ।

प्रबंध चिन्तामणि के अनुसार मान का जन्म हुआ उस समय ज्योतिषियों ने पिता रत्नक (दुर्गकर पण्डित) से स्पष्ट शब्दों में यह दिया था कि यह बालक पहले तो वैभवपानी

हैं जो मग (शाकडीपी) हैं अथवा ब्राह्मण नहीं। मग ब्राह्मण माघ को सूर्य-मन्दिर में ट करके से पुष्पलाम की प्राप्ति हुई।

माघ शाकडीपी मग ब्राह्मण से तभी उन्होंने अपने परम आराध्य सूर्य देवता के मन्दिर का दान अपने आपको आत्मशास्त्री मानते हुए स्वीकार किया अथवा प्रभुत्व समृद्धि शास्त्री तथा सहायक पिरोमणि परम विद्वान् महाकवि माघ अपने ही प्रिय व्यक्ति से आदिष्य के बदले दान स्वीकार नहीं करते। न तो राजा मोक्ष से माघ जैसे दान-याच मित्र सकते थे और न महाकवि माघ को सूर्य मन्दिर से बढ़कर और कोई बड़ा दान ही मिल सकता था।

प्रबन्ध चिन्तामणि में एक श्लोक आया है, जिसका पुन उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है—

न मित्वा कुर्मिसे पतति बुरबस्वाकथमण
समन्ते कर्माणि क्षिति परिवृद्धान्कारयति क ?
अदत्त्वापि प्राप्तं ग्रहपतिरसावस्तमयते
क्व माम किं कुर्मो गृहिणी गहनो जीवितविधि ॥

इन पंक्तियों में प्रथम द्वितीय और तृतीय पंक्तियाँ विचारणीय हैं—

समन्ते कर्माणि क्षिति परिवृद्धान्कारयति क ?
अदत्त्वापि प्राप्तं ग्रहपतिरसावस्तमयते ।

पहली पंक्ति में जो कहा गया है कि इस दुनिया में हम ब्राह्मणों से कर्मकाण्ड कौन करायेंगा तथा दूसरी पंक्ति में माघ चिन्तित से है यह सोच कर कि प्राप्त-भोजन को प्राप्त किए बिना ही यह सूर्य अस्त हो रहे हैं। इन दोनों बातों से भी माघ का शाकडीपी होना ही सिद्ध होता है। अथिष्य पुराण में जैसा पहले कहा जा चुका है मग ब्राह्मणों के लिए प्रतिदिन सूर्य को प्राप्त अर्पित करना एक आवश्यक कर्तव्य बताया गया है। इसी श्लोक से यह भी प्रमाणित होता है कि माघ क्षियाकाण्ड में अधिक रत थे। माघ कहते हैं कि दुनिया में हम ब्राह्मणों से कर्मकाण्ड कौन करायेंगा।

चिन्तुपातनक काम्य में भी महाकवि माघ के शाकडीपी होने का प्रमाण मिलता है। अथिष्यपुराण में शाकडीपी ब्राह्मणों के लिए वैश्वप्रसाद के रूप में मद्यपान शेष नहीं है। वे जो इसे इति कहते हैं। धर्मिहोत्र के मुख्य इनके भी यह अर्थ कहेलाता है। चिन्तुपातनक में माघ ने मद्यपान के वर्ज्य को संभवतः इसीलिए दूषित नहीं माना।

ज्ञान करके विकास सम्पन्न करने का नियम मग ब्राह्मणों में है, ऐसा उपास्यमान में है चिन्तुपातनक में भी एक जगह आया है—

स संवरिष्युर्मुवमास्तरेषु यां यहृष्टयासिधियश्चायय धियः ।

अकारि तस्य मुकुटोपसस्त्यसत्करैस्त्रिसंध्यं त्रयवर्षिणेनमः ॥१-४६॥

देवपुत्र भी तीनों सन्ध्याओं में वस्त्रधार करने सकते थे। इससे यही अभिप्राय निकलता है कि माघ तीन समय संध्या धारण करते हैं।

हिन्दी विरह कोय में मय बाह्यालो के लिए लिखा हुआ है कि ये बीड़बर्मावसम्भी होते हैं किन्तु इसका अतिरिक्त वे छिन और दुर्गा के उपासक भी अधिक होते हैं यद्यपि सूर्य को तो पूजते ही हैं ।

माय की बीबनी में उनके धर्म की चर्चा करते हुए बताया गया है—बहु एक और दो बीड़ बय के प्रसन्नक ये और कूचरी और सूर्य पक्षि, पिब और बिष्णु के उपासक थे ।

इसलिए बहि साक्ष्य और अन्तःसाक्ष्य दोनों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि पिशुपान बय के पथिवता महाकवि श्री माय निवासी झाकडीपी मय बाह्याल थे । श्री माय निवासी होने से वे झाक तक भी श्री मासी बाह्याल कहलाते हैं अन्वया से वे झाकडीपीनिज ।

यह हवाय सीमाव्य है कि महाकवि माय ने शास्त्रकथा के रूप में अपने बंश का परि बय अन्तिम पाँच इसोको में अन्त्य पुरुष के रूप में दिया है और इसके अतिरिक्त प्रभावक चरित्र में सिद्धांत के प्रबन्ध से भी माय कवि के कुल की जानकारी पर्याप्त रूप में हो जाती है । हमने मासीचतात्मक रूप में मायविषयक धामनी में इसका विस्तृतवर्णन कर दिया है पक्ष अथ हम यहाँ पर महाकवि माय के जीवन का क्रमानुसार वर्णन करते हैं ।

गुरुघट में श्रीमामा (श्रीमाय) नामक एक असीध सृष्टिदासी मगर रहा है जो झाक मारबाड़ की सीमा पर है और राजस्थान प्रांत के छिरोही राज्य से कुछ ही दूर बय मयद के समीप एक तहसील है । पहले बताया जा चुका है कि किसी समय यह नगर बय धाम्य से परितुल्य था । राजा बर्मन उस नगरी का स्वामी था जो बायबर्मीय था । सन् ७६० ई० में उसने पर्वों की पौड़ी को नियत करते हुए श्रीमामा के ही प्रति बिन्दु सीमेन माता (दुर्गा) के मन्दिर की स्थापना की थी । राजस्थानीय वास्तुशिल्प तथा प्रतिहार बोटक भी उस पौड़ी के सख्त थे । राजा बर्ममान अत्यन्त बलवान् था । उसके शासनाधीन अन्त्य नौद शिक रहा भी थे । भर्तृहरिचन उसी के राज्य में था जहाँ पर बलभट सरायमय राज्य कर रहा था जो देवी का परमनन्त था । राजा बर्ममान के मन्त्री मुमनदब ने बिनकी मुहुरदमी के विषय में अधिकार प्राप्त थे । ये परम आत्मिक गिरासक दृष्टि तथा आत्मिक स्वभाव वृत्ति के बाह्याल थे । इसी मुमनदेन के दो पुत्र थे—दत्तक और धुमकर । दत्तक बड़े उमर एता-धीन श्रीमल प्रकृति तथा बर्मनिष्ठ व्यक्ति थे । इनके कार्यों को देखकर मनुष्यों की मुक्ति के स्मरण हो जाता था । ये प्रजात गन्तु थे । धुमकर भी विरह को द्विप सयने दाव लव वाली व्यक्ति थे बिनके दाग की बायाई सोक विमुक्त थी । दत्तक (कुमुद पति) की स्त्री का नाम बाह्नी था बिनके वय से बंश की अति पीठम प्रकृतिवाये गिरासतबय महाकवि के कवी महाकवि माय का जन्म हुआ और धुमकर की स्त्री लक्ष्मी के गर्भ से सिद्ध था बय जो धारो बलकर उपनिषिषय प्रबंध कथा क लेखक हुए । इन अति महाकवि के दो पुत्र दोनों बनेरे पाई थे ।

प्रबंध विष्णुमणि के अनुसार माय का जन्म हुआ दत्तक बय के पुत्र के पुत्र दत्तक (कुमुद पति) से स्पष्ट पक्षों में यह दिया जा कि यह बय बनेरे पाई थे ।

शोभा परलु घात में बरिदी हो जायगा और वीरों पर सूरज घाम से मुख को प्राप्य होगा । माण के पिता ने जब यह बात सुनी तो सोचा कि पुत्र की आयु प्रायः १०० वर्ष की होती है और उन १० वर्षों में ११ हजार दिवस होते हैं, इसलिये उसने चतने ही पृथक् पृथक् नई करवा कर उनमें बहुमूल्य हार आदि रख दिये और फिर भी जो कुछ बच रहा वह उस भाग को दे दिया ।

प्रभावक भरिण में सिद्धार्थ का प्रसन्न है उसके पक्ष में से जात होता है कि भुमकर के पुत्र सिद्ध बुबाबस्ता में विषयभोगी कुबारी एवं व्यर्थ काल-यापन करने वाले व्यक्ति थे । इनकी पत्नी बन्धा नामधारी भी जो परम पतिव्रता एवं सरल प्रकृति की स्त्री थी । सिद्ध दुर्मयनों के कारण राजा को खरीब ही देखी से घर बौटते किन्तु धन्य का साहस न होता कि वह पति को कुछ कहे । एक दिन सिद्ध की माता ने सिद्ध को द्वार खोलने से निषेध कर दिया और अर्त्तना करते हुए कहा कि इस समय जिसके द्वार मुन्हारे लिए खुले हुए हैं तुम नहीं जाकर रहो । माता की बात सिद्ध को चुन गयी । सिद्ध उठी समय बाहर निकल पड़े । इस समय पास पास के सभी घरों के द्वार बन्द थे केवल एक जैन उपाधय या उचका द्वार खुला हुआ था जिसमें गर्मपि रहते थे । राजा घर सिद्ध उस जैन उपाधय में रहे । प्रातःकाल होते ही पिता भुमकर बाहर भटकते हुए अपने पुत्र सिद्ध को झूठे झूठे सब स्थान पर पहुँचि वहाँ पर जैन दीक्षा लेने के लिए सिद्ध कटिबद्ध थे किन्तु गर्मपि उनके पिताजी आज्ञा के बिना दीक्षा को लिये बार-बार निषेध कर रहे थे । भुमकर देखी ने सिद्ध को बहुत ही समझाया किन्तु सिद्ध ने वही उत्तर दिया कि वह माता की श्री आज्ञा का पालन कर रहे हैं । उन्हीं की आज्ञा से वह सब स्थान पर जा पहुँचे हैं वहाँ उनके लिए खरीब द्वार खुले हैं । अन्त में आज्ञा देकर भुमकर अपने घर पहुँचि । सिद्ध ने जैन-दीक्षा लेली और अब सिद्धार्थ हो गये । जैन होने पर भी इनका चित्त जैन धर्म से समुष्ट न हुआ और बौद्ध धर्म को जानने की प्रति उत्कट अभिलाषा से वह बौद्ध संन्यासियों के निकट अपनी ज्ञान पिपासा को क्षान्त करने के लिए गये । धर्मपरिवर्तन करना साधारण बात न थी । गर्मपि के निकट आज्ञा के बिना बौद्ध धर्म में वे दीक्षित कैसे किए जा सकते थे ? गर्मपि के निकट जैसे ही जाए उही समय गर्मपि ने इन्हें कहा कि मैं धमीप के ही उपाधय में ही आता हूँ इतने में तुम 'असितवित्तर' को देख जाओ । सिद्ध ने जैसे ही किया और फिर उनका जैन धर्म में हड़ बिस्वास हो गया । सिद्ध ने हरि भद्रमूर्ति की धपना 'धर्मबोधकरो बुद्ध' कहा है । दुर्पस्थामी भी इनके धुब थे । सिद्धार्थ की भिखी हुई उपमिश्रित प्रपञ्चका है जिसको उन्होंने वि० सं० २६२ ज्येष्ठ शुक्ला २ गुरुवार पुनर्वसु नक्षत्र में समाप्त की थी । (बौद्धिये सिद्धार्थ) यह सिद्धार्थ भाग के अन्तरे भाई थे ।

प्रसन्न चिन्तामणि तथा प्रभावक भरिण से तो इन दोनों अन्तरे भाइयों के विषय में हमको इतनी भी सूचना उपलब्ध होती है । अग्यथा इन दोनों महापुरुषों का वास्तविक जीवन मिथ्या धम्मचक्र नहीं हुआ कहे हुए था क्या क्या पड़ा धादि के विषय में वे सब प्रसन्न भोज हैं । इन दोनों की साहित्यिक हलचल से ही इनकी बातें जानी जाती हैं अग्यथा कोई साधन प्राप्त नहीं है ।

महाकवि माघ का बंधवृत्त धर्मोत्तिष्ठित रूप से बनता है ।

सुप्रसवेन (भीममास के राजा बर्ममास के मन्त्री)

कुमुद पंडित का दत्तक (स्त्री का नाम बाही)
इसको कुमुद पंडित भी कहते हैं ।

माघ (सिधुपालवध काव्य के कर्ता)
स्त्री का नाम मालविका देवी

कदाचित् एक पुत्री रही हो

सुभंकर (स्त्री का नाम मन्त्री)

पिंड (पत्नी का नाम धर्मा)
सपत्तिमन् प्रपंच कथा के
लेखक

साधु हो गए कोई पुत्र न हुआ ।

महाकवि माघ के जन्म विषय की बात पाठकों के सम्मुख प्रबन्ध चिन्तामणि के आधार से प्रस्तुत की गई है । प्रबन्धचिन्तामणि में उल्लिखित बापामों का संश्लेष क्या रहा है यह प्रसंग से स्पष्टता का विषय है । हम इतना मानकर चले हैं कि वहाँ इन बापामों का वर्णन सर्वथा निराधार नहीं है । माघ के जन्म काल की व्योतिपियों वाली बात सत्य है । इसका प्रमाण माघ कवि के सिधुपालवध काव्य में मिलता है । वहाँ पर यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कवि ने जाह्न स्वतन्त्र आत्मरूपा विस्तार पूर्वक नहीं लिखी, फिर भी वहाँ वहाँ जहाँ धर्मतर मिला अपने काव्य में अपनी जीवन पटलाओं का संकेत प्रकट हो रहा है । उदाहरणार्थ नीचे दिए श्लोक में दो बातों का परिचय मिलता है, एक तो उनके पुत्रों का तथा दूसरे उनके माघी धर्म संकेत को बचाने के लिए पिता द्वारा जो धर्म-निक्षेप दिया गया उसका ।

प्रथम सर्ग में नारद और श्रीकृष्ण का परस्पर वार्तालाप आरम्भ होने वाला है । श्रीकृष्ण अपने सम्माननीय प्रतिनिधि से उनके आश्रम का कारण बड़ी विनीत और पिष्टता से पूछते हैं ।

कृतः प्रजासोमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिपाकुसात्मना ।

सदापयोगैर्जपि गुरुस्त्वमजया निधिं श्रुतीनां वनसपवामिब ॥१२८॥

इसका अर्थ है—

जिस धर्मिणी अपनी सम्पत्ति का सुभविम्वक पिता उनके प्रतिष्ठा के उपयोग के लिए बहुत ही बल सम्पत्ति एकत्र करके जोड़े की विनोदियों धर्मका कड़ाई में रखकर निरिच्छा रहता है और अधिकाधिक मात्रा में उस वन के रहने कारण सर्वथा धर्मित धर्म (उपयोग) करने पर भी जैसे वह वन नहीं समाप्त होता उसी धर्मिणी समस्त धर्म की प्रजा की वृद्धि करनेवाले संवत्कारी धर्मबाधू ब्रह्मा ने आपकी (नारद) धर्मियों का निधि बनाया है । आप जैसे सुयोग्य पात्र में क्यों की धर्मस्य निधि को खींच कर मैं विनष्ट निरिच्छा हो गये हैं । इस धर्मिणी आप धर्मियों के प्रसंग निधि हैं और सर्वथा इतर धर्म प्रसंग उपदेश देने पर भी आपकी वह ज्ञाननिधि समाप्त नहीं होती । ऐसे धर्मनिधि देवधि का धर्मन किसे लिए बनाने की न होना ?

मात्र के सम्पत्तिकाम की भाँकी का विपर्यय हो चुका है। पिता वैभवधारी है परन्तु बालक मात्र के पासन पोषण के लिए, अपने इकलौते पुत्र के लिए उसने कुछ उठ न रहता होगा। बंशवर्धन के स्मरणों में हमने देखा है कि मात्र के पिता महान् क्षत्रियवान्, उद्योगिष्ठ क्षमाशील क्रोमस प्रकृति तथा धर्मनिष्ठ थे। नागरिकों ने उनको सर्वप्रथम नाम दे दिया था। प्रभावक क्षत्रिय में मात्र के लिए कहा गया है—भी माधो नम्बो ब्राह्मोस्वन्त ब्रीमन्धन रहा है। इसका तो अभिप्राय यह हुआ कि जन्म की भाँति क्षीयता कारण करनेवाले मात्र को अपने पिता तथा पितामह की उद्योगिता धारि महान् पुत्रों की वृत्ति उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। इसके साथ ही यह संकेत स्पष्ट है कि पिता ने ज्योतिषियों की अभिप्रेक्षाओं को धुनकर उनके लिए जीवनकाल में समाप्त न होने वाली विधि का निश्चय किया था।

सिद्धा—

मात्र प्रथमपत्नार्थ किसी पुत्र के घर भेजे गए धनका किसी पाठशाळा को उन्होंने सुधोमिष्ठ किया था अपने घर पर ही उसे इन सबका कोई संकेत पड़ी तक तो कहीं पर नहीं मिला। हाँ उनकी बहुमत्ता से ही इस बात का पता चलता है कि उन्होंने साहित्य-शास्त्र पाणिनीय-शास्त्र धर्मशास्त्र क्रोम नीतिशास्त्र स्मृति रामायण महाभारत पुराण भाग्यवैत तथा ज्योतिष व्यास एवं बर्णन इन सभी शास्त्रों का एवं वेदों का यथावश्यक अध्ययन किया होगा। मात्र किशोरावस्था तक उन्होंने शिक्षा प्राप्त कर ली थीर उनके विवाह एक कुलीन घर की कन्या मालवस्य वैरी के साथ सम्पन्न कर दिया। यह विवाह रैवतक पर्वत के ही निकटस्थ प्रदेश में कहीं हुआ होगा जहाँ पर द्विपगमन के लिए मात्र बड़े होने तो उनका प्रच्छन्न स्थापन किया होगा। रैवतक पर्वत के बर्णन में मात्र ने जो भारतीयता दिखलाई है उससे तो यही सिद्ध होता है कि वह भूमि उनकी अपनी है उससे उनके अत्यधिक स्नेह है। प्रतीकारमक रूप में जो वे सर्व के ४४ श्लोक में स्पष्ट ही उनके विवाहित जीवन की एक भाँकी है—

या न ययी प्रियमम्यमधूम्यं सारत्तरामममा यतमानम् ।

तेन सहैह विमर्ति र्ह स्त्री सा रत्तरामममायतमानम् ॥ ४४२ ॥

प्रार्थ—इस रैवतक पर्वत पर इसी स्त्रियों की अपेक्षा समापन करने में श्रेष्ठ जो स्त्री की प्रार्थना करने पर भी अपने प्रियतम के साथ नहीं जाती थी बड़ी (रमली) एकान्त में अपने उसी प्रेमी के साथ जोड़ी बैठ तक माल करने के पश्चात् स्वयमेव रमण की अभिप्रायिणी बन जाती है।

रैवतक पर्वत में बर्णन में कवि ने कितनी ही बातें कह बानी। एक सर्व नहीं ८ सर्व उसके बर्णन में मिले हैं। कृष्ण को प्रतिनिधित्व बना कर रैवतक द्वारा उनका स्वागत करवा है मानो प्रतीकारमक रूप में मात्र कवि का स्थापन स्वपुराण के द्वारा हो रहा हो। इसी रैवतक पर्वत के बर्णन में कवि ने हृदय जोसकर अपनी मातृ कन्या को भी सिद्धी है। भाठवां नवां धीर म्प्राह्मणं सर्वं भारत-जीवन सम्बन्धी बातों की जानकारी के लिए विशेष उपयोनी है।

मात्र का ब्राह्मणवादी जीवन अन्वहार के पूर्व में है।

भोज परिचय

महाकवि माघ के सिंधुपाल वय की बहि भाबि से ग्रन्थ तक एक दृष्टि से देखें तो पता चलैपा कि कवि का ग्रन्थ व्यवहारों की अपेक्षा भाविवराह के प्रति अधिक ध्यान एवं मत्ति-भाव है। इसके प्रतिरिक्त उनके वर्तनों में अपने व्यक्तित्व के बोधक संकेत भी मिलते हैं।

प्रथम सर्ग में नारद की उड़ा के निर्बल रूप का केवल दो श्लोकों में ही प्रतिपादन । रूप का वर्णन करने लगे हैं। वह नारद के रूप में भी कृष्ण की ओर से भाविवराह भोज की भी प्रार्थना समस्तुत के रूप में हो रही है।

आमाद्यिष्य हेमयोद्धूत कणभृतां सादनमेकभोकसः ।

एवमेव स्वर्पातस्त्रमुक्चकैरहीवरस्तम्भधिरःसु सुतसम् ॥ १ १४ ॥

। श्लोक में नारद ने बरह्मवतार के माध्यम से भी कृष्ण को सत्कार की करने की कह कहते हुए स्मृति दिलाई है कि तीनों लोगों की रचना करने ली भी कृष्ण ने (बरह्मवतार में) सीसा पात्र से तारों के मोक के एक मात्र हृम्यस्त को लेपनाम ली स्तम्भ के ऊँचे छिरी पर (सहस्र कणों पर) टिकिया यह भोज की विषयों की ओर संकेत है।

यह सर्ग में श्लोक २ से लेकर श्लोक ११ तक मुनिहिर की कृष्ण से वचन की है तब तक भी कृष्ण सब राजाओं को गुनाते हुए मुनिहिर से कह रहे हैं श्लोक

सादितासिसमुपं महम्महः संप्रति स्वययसंपदैव ते ।

किं परस्य स गुणः समस्तुते पद्मवृत्तिरपिपद्यरोगिताम् ॥ १४ १३ ॥

—इ पञ्चम् । इस समय मुन्हारे पैर ने धरनी नीति की महिमा से ही समस्त राजाओं को अपने वचन में कर लिया है (इसमें पैर कोई अनुवह नहीं है क्योंकि) यदि कोई मनुष्य पद्म से रहने के कारण ही मारोग्य प्राप्त करता है तो उसमें पैर का क्या बिहोर है ?

वह मुनिहिर डाप कही गयी चौबने श्लोक की बात का उत्तर भी कृष्ण ने इस रूप में दिया है।

इसी भाँति नीचे के चौबहने श्लोक में मुनिहिर डाप कह गये वचने श्लोक का उत्तर क्या दे रहे हैं भी कृष्ण मुनिहिर की प्रार्थना करते हैं मानो माघ भाबि बरह्म भोज की प्रार्थना गुप्त रूप से कर रहे हैं। श्लोक देखिए—

तत्सुरासि भवतिस्मिन्ने पुनः कः कस्तु यजतु राजससणम् ।

उदुमुती भवति कस्य वा सुखं श्रीवराहमयहाय योग्यता ॥ १४ १४ ॥

धर्म—यह सब प्रकार से बोज्य आप जैसे राजा के रहते हुए दूसरा कौन ऐसा को क्षत्रिय राजाओं के सर्वथा योग्य राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर सकता है । क्या इस बट्टी को स्मर उठाने की समता भी बराह को छोड़ कर अन्य किस पुरुष में है ? प्रतीति किसी में नहीं ।

इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने भी कृष्ण से कहा—

इत्युदीरितमिरं नृपस्त्वयि ध्येयसि स्थितमपि स्थिरा भव ।

सर्वसम्पदिति क्षौरिमुक्तवानुब्रह्ममुदमुवस्थित कृती ॥ १४ १७ ॥

धर्म—इस प्रकार कह लेने पर भी कृष्ण से युधिष्ठिर ने कहा—मेरे कर्मणाकारी कार्यों में आपके उत्प्रेक्षित होने पर मेरी समस्त सम्पत्ति स्थिर रहेगी ऐसा कहकर युधिष्ठिर प्रालम्बित चित्त से ब्रह्म के समारम्भ में प्रवृत्त हो गये—

युधिष्ठिर और भी कृष्ण के बीच हुआ यह संवाद प्रायः बराह भोज की प्रवृत्ति है बिना समरांगण में बेलते हुए पृथ्वी को अपने अधिकार में करके सुस्थिर कर दिया । अथवा बत्सा भीरु पराजयता को दूर करके व्यवस्था तथा सुरक्षता की स्थापना कर दी । १४वें श्लोक में धारिवराह के राजोचित पुत्रों की प्रवृत्ति है ।

मिहिर भोज अपने समय में उत्तर भारत के एक शक्तिशाली राजा ने बिनका राज्य बहुत बढ़ाया । उन्होंने बिरकाब पर्यन्त राज्य किया । उनका राज्यकाल सन् ४१२ से ८८२ तक का कहा जाता है । वे बुद्धवान् थे । अपने बुद्धों द्वारा ही जनता के भित्र हुए भीरु भावों से शान्ति स्थापित करके इस पृथ्वी के चार को लब्धि हुन्का किया । भीरुपह को छोड़ कर अन्य किस राजा में या पुरुष में ऐसी शीघ्रता हो सकती है । भीरुपह अथ से यह धारिवराह नाम वाली भी भोज की ही ओर कवि का स्पष्ट संकेत है । बराह के पुत्रों की का लयाला भी इसी बात को पुष्ट करता है । स्लेप के द्वारा बराह अवतार भीरु भीरुपह नामवाली भोज दोनों का भोज ही जाता है ।

इसी १४वें सर्ग का ४३वाँ श्लोक प्रथम ही 'आद्यकोतनुतिता' कह कर धारिवराह की बात बिलाला है । इसी सर्ग में धनधारों के कार्यों को बलशक्ती हुए कवि सर्व प्रथम प्रायः बराह का स्मरण कर रहे हैं । ७१वें श्लोक में उन्होंने स्मृत नासिक शब्ध से धारिवराह का स्मरण किया है, देखिये—

स्वर्गधननविसारिकेसरक्षित्तसारमहाप्लवामयम् ।

उद्भूतमिव मुहूर्तमैशत स्मृतासिकवपुर्बुध्न्यराम् ॥ १४-७१ ॥

इसी सर्ग में ८१वें श्लोक में उन्होंने प्रायः बराह को फिर स्मरण किया है—

यः कोलता बलवता न विप्रहृष्टाप्रुदस्याशु भुजा न पुर्वाम् ।

मग्नस्य तोमापदि युस्तरामा गोमण्डलस्योद्धरणं चकार ॥ १४ ८१ ॥

अपुन्य में 'कोलता' शब्ध धारिवराह के लिए आया है । धारिवराह प्रथम बराह या सदैव वर्धमानासी शब्दों का भी स्वान-स्वान पर प्रीतित्व प्रथम प्रनीतित्व के शान भी

योग उन्होंने बार-बार किया है उसके पीछे केवल यही भावना प्रतीत होती है कि वह मादिबराह भोज के पुण्यों का स्मरण करें। श्रीचित्त के साथ बराह शब्द का प्रयोग अमर १४-८६ श्लोक में हुआ है जबकि १५३ में उसका प्रयोग सिधुपान के लिए हो गया है। प्रतिहार भोज सक्तिदायी थे। उन्होंने भी राजाओं के समूह को अपनी शक्ति से पराजित किया था वहीं सिधुपान ने अतः सिधुपान को मादिबराह बना जामा देखिये—

स निधाम धर्मितमभीष्टणमधुवचनधूतराजकं ।

क्षिप्तबहुमज्जलविन्दुविणुं प्रसयार्णवोरियत हवादिद्रुकट ॥ १५५ ॥

उपर्युक्त में धारिद्रुकट शब्द का प्रयोग है।

इसी १५वें सर्ग में श्रीकृष्ण के लिए दूध ने हयर्बक वाक्य द्वारा मादिबराह का स्मरण दिखाया गया है—

क्षितिपीठमग्निमसि निमज्जमुदहरत य पर पुमान् (श्लोक १७)

देखिये उसीसर्वे सर्ग के ११६वें श्लोक के तीन पद हैं।

सदामदबलप्रायः समुद्रधूतरसो बभौ ।

प्रतीतविक्रमं श्रीमान् हरिर्हृत्पिरिवापर ॥ १६-११६ ॥

पद—सदा मस्त रहनेवाले बलप्राय के प्रमी बराह भवतार धारण कर पृथ्वी का भार उतारने वाले बामनाभतार धारण कर विविध पदप्यास करनेवाले, सदमीपति मयमान श्री कृष्ण उस समय मानों दूसरे हरि अर्थात् इन्द्र या सूर्य के समान सुशोभित हुए। (इन्द्र भी सज्जनों को दुःख देने वाले बल नामक समुद्र के संहारक हैं समुद्र के प्रभाव के कारण विष के प्रभाव से रहित हैं सुप्रसिद्ध पराक्रमवासी तथा राज्य लक्ष्मी से युक्त हैं और सूर्य भी अपने महान् उद्यम द्वारा सज्जनों के योग-बोध को नाश करने वाले बल प्रदान करने वाले बल को सोलनेवाले, आकाशवासी तथा सोमा से समन्वित हैं)

मिहिर भोज के पद में—सदा मस्त रहने वाले हैं बल (पराक्रम) के प्रेमी हैं, पद करने वाले राजाओं में जिनकी विजय की इच्छा बनी रहती है जिनके अस्त्र सुन्दर गतिवाले हैं और जो वैजोत्तमी सम्पन्न हैं वही मिहिर नाम धारण करने वाले (भोज) श्रीकृष्ण की भाँति सुशोभित हुए।

अब स्पष्ट रूप में इस श्लोक के विभिन्न पदों को देखिये—

(१) श्रीकृष्ण पद—सदा मस्त रहनेवाले बलप्राय के प्रमी, बराह रूप से बलमध्यम हुए पृथ्वी का उठार करने वाले प्रसिद्ध पराक्रम वाले, सदमीवान् तथा अधिकमान राजा वाले श्रीकृष्ण सुशोभित हुए।

प्रतिहार भोज पद—सदा मस्त रहने वाले बल के प्रमी मादिबराह नाम को धारण करके राजाओं से मज्ज हुई (मिठी हुई) पृथ्वी का उठार करने वाले प्रसिद्ध पराक्रम वाले श्री सम्पन्न (है मिहिर भोज) अधिकमान राजा रूप से सुशोभित हुए।

(२) इन्द्र पद—विश्व को दुःख देनेवाले बल नामक समुद्र के संहारक हैं हयर्बक

रहने वाले हैं, धनुष के प्रभाव के कारण बिच के प्रभाव से रहित हैं मुझ करने के लिए सम्मुख आए हुए जो वीर शत्रु हैं उनमें अपना पीरूप दिखाते हैं वैवाभिरपत्यवन्नी मुक्त हैं, विष्णु के धनुज हैं (ध- धनेन्द्रः विष्णु पर- धनुषो यस्य स) ।

मिहिर भोज धर्म—शोक को पीड़ा पहुँचाने वाले शत्रु के संहारक हैं (सर्वां भामच- दुःखः धामं रोयं शोकपीडां वधातीति धामच- यो बल बलवान् शत्रु तस्य धाम नाद्यस्तं करोतीति सधामबलप्रदाय) हर्षं युक्त हैं (धमुत् सङ्गमुवा हर्षेण बर्धति) शत्रुओं को नष्ट कर देने से निष्कण्टक हैं (धनुषधरात् हतो निरस्त एतो विषं कण्टकं येन स) सम्मुख धाने वाले शत्रुओं को विक्रम दिखाने वाले हैं (प्रति दृष्टां योर्द्धं धनुषधामयता ये शत्रु वीरा येपुनस्तु पालयमानेषु विक्रम योर्द्धं यस्य स), श्री सम्पन्न हैं और मिहिर पर नाम को धारण करने वाले हैं (ध- धनेन्द्रः विष्णु धारित्व मिहिर पर- धम्प- नाम यस्य स) ।

(३) सिंह धर्म—निरन्तर मर गिराने वाले हाथियों को अपने बल से पराक्रम करके धारण है, स्रक्ष्ट रौर एत धारण करता है, प्रसिद्ध पराक्रम वाला है, धुनपति होने से जो भीमान् हैं महानवी होने से निःसफल हैं ।

मिहिर भोज धर्म—सदा मर (धर्म धारण करने वाले) वाले शत्रुओं को अपने बल से पराक्रम करके मारता है (एणधूमि, में) स्रक्ष्ट रौर एत को धारण करता है, प्रसिद्ध पराक्रम वाला है, धुनपति होने से सक्रीयान् हैं धविधमान शत्रु वाला है ।

सूर्य धर्म—जीवधारियों के रोंपों को नष्ट करता हुआ उनको बल प्रदान करता है (सर्वां जीवनान् धामं रोयं बधि भुगति महत्तमं धामन् व वधाति) इसीलिए वह प्रीतिदाता (धमुत्) है प्रीत्य काम में सब बल को सौख्य देता है (इत एत- इत- सपित धर्म काने एतो बल येन स) जीवधामी जिसके धर्म हैं (प्रतीतां प्रहृष्टा- प्रतिवता वा विक्रमा यस्य स, तथा विक्रमनो धति प्रबलमिति विक्रमा धम्मा- प्रहृष्टाप्स्य । अस्मानां पतिविशेषो विक्रमो वा), देववान् हैं, संहार का धारों धोर से पालन करता है (या समन्तति बलमिति विपति पालयति) ।

मिहिरभोज—जगत् के दुःख को दूर करता हुआ उन्हें धानन्वित करता है (सर्वां सज्जनानां भोक्तानां धामं दुःखं बधि भुगति महत्तमं धामन् व वधाति) इसीलिए वह प्रीति-दाता है धनोषी (इत सपित एत भोज रौरस येन स) जीवधामी जिसके धर्म हैं, ऐश्वर्यी तथा अपने राज्य का धारों धोर से पालन करता है ।

ये धारों धर्म प्रतिहार भोज पर किसी-न-किसी प्रकार धटित होते हैं ।

धारिचरह का विभिन्न रूपों में जो स्मरण प्रस्तुत या धप्रस्तुत रूप हैं बार-बार हुआ है वह इत बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि उनका निकट का सम्बन्ध किसी ऐसे व्यक्ति से रहा है जो 'चरह' राज्य से याव किया जा सकता है । स्पष्ट है कि धारिचरह भोज महाकवि माय के सनकालीन ही नहीं धाम्यदाता भी वे उनका ही स्मरण वहाँ बार-बार मिलता है ।

राज्याध्ययी माघ

श्री श्रीरामाय पाठक की लिखी हुई "महाकवि माघः" नाम वाली एक छोटी पुस्तिका देखने को प्राप्त हुई। श्री पाठक महोदय ने लिखा है—

"असी कस्य समासवासीदित्यत्र पारम्पर्येणैवमनुभूयते यत्नेन सर्वत्रा भुवंभमता कुत्र चिरपि चिरमेकत्र भास्वीयत। अतएव तैम कस्यापि राज संसम्भारयमंकतु नाद्यवपत। अतो-
ऽर्थैरिव मयापीह धीमयेवावसम्भ्यते।"

कालिदास भारवि, बाणभट्ट, भवभूति आदि कवियों के आत्मप्रस्तावों के नाम मुने जाते हैं किन्तु महाकवि माघ के आत्मप्रस्ताव कोई राजा भी वे वा नहीं यह बात माघ एक धन्यकार के वर्ण में है। राजा भोज और माघ पंडित के विषय वाली बातें इतर-इतर बिखरी हुई पढ़ने को मिलती हैं। बल्लाल रचित भोजप्रबन्ध में तो प्रायः सभी श्रेष्ठ कवियों को लाकर राजा भोज के दरबार में इस भाँति खड़ा कर दिया है कि सारे प्रकरणों को भी पढ़ने पर उनके सम्मुख में वहाँ जो कुछ लिखा गया है उस पर विश्वास नहीं होता। कहाँ नाम कालिदास कहाँ बाण-भट्ट और भोज और कहाँ माघ और भोज। अतः भोज प्रबन्ध की संसी में लिखे हुए इन प्राचीन निबन्धों वाले ग्रन्थों को भी (प्रभावकचरित, प्रबन्ध चिन्तामणि, चिन्तामणि आदि संक्षिप्त) ऐतिहासिक नहीं मानते। उत्तर प्रदेश के मृतपूर्व राजन्वास श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी ज्वर्नर कैम्ब, उत्तर प्रदेश से २३ अप्रैल, १९३४ में लिखते हैं—

Dear Sharma,

Your letter of August 18.

I do not remember to have come across a reference to Bhoj in the works of Magha. Unless you send me reference I cannot throw any other light.

Your sincerely

Sd/—K. M. Munshi

Shri Manmohanlal Sharma

Head of Hindi & Sanskrit,

S.K. College Sikar (Raj.)

एक वृत्त पत्र भारतीय विद्याभवन, बीपटी रोड बम्बई, समाप्ति श्री के० एम० मुन्शी १३ सितम्बर १९३४ के निर्देश से लिखा गया है उसको भी पाठक देखें—

Prof. Manmohan Sharma, M.A.

Head of Hindi & Sanskrit,

S. K. College SIKAR (Raj.)

Dear Sir

I am directed by Rajyapal Shri K. M. Munshi to acknowledge and reply to your letter dated nil to him.

Regarding Magh the chronicles you mention state that Magh was living during the time of Bhoja. Please remember that evidence of these chronicles are hardly of any use as they were written centuries after the death of Bhoj secondly these chronicles contain several stories which are demonstrably false. The main point is --Is Bhoj mentioned by the poet? The answer is no

Unfortunately we are not in a position to fulfil your needs. Bhoj ruling in A. D 650-675 is yet unknown in History

Paramara Bhoj is said to have built a temple at Ohittore which must have been for a time included within his dominion.

Yours faithfully

Sd/-Majumdar

भाज के विषय साहित्यकों इतिहास विचारकों एवं अन्वेषकों की इस माध-भोज वासी बात पर जो सम्मति है उसको पाठकों के सम्मुख रख दिया गया है। इसी विषय को लेकर प्रचलित अनेक संस्कृतग्रन्थों से जो साक्षात्कार हुए हैं उन पर भी कोई अन्वेषणीय परिणाम नहीं निकला। परमार भोज का नाम अथर्व भाया पर वह तो अनेक कारणों से माधकासीन हो ही नहीं सकता फिर ब्रूकि पंडित जीपीसुंकर हीराचन्द मोक्ष ने बसन्तमठ नामे बिलासैन को दि० सं १८२ बताकर माध को सप्तम सताब्दी में रख दिया तो फिर सोम मिहिरभोज की बात ही क्यों सोचने लगे। हमने माधकासीन भुय माध विश्वम्भर सामग्री तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से इसी बात को दिखाने का प्रयत्न किया है कि माध युद्धों के अन्तिम समय में हुए हैं आठवीं और दशवीं सताब्दी के मध्य। प्रबन्ध चिन्ता मणि और प्रभावक चरित दोनों ही से हमारे इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है।

इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि माध किसी भी राजा के सम्बन्ध में नहीं है। उनका अधिकांश समय अग्रण करने में ही बीता पर ऐसा सोचना उन्हीं के विपरीत है।

यह बात तो सिद्ध है कि महाकवि माध के पितामह भी गुजरादेव राजा वर्मसात के मूर्खाधिकारी मन्त्री थे (प्रभावक चरित तथा माध का सिन्धुपात वच में लिखा गया कवि वच वर्तुन देखिये)। इनके पुत्र बलक बड़े योग्य व्यक्ति थे जिनके पास धन्युत बन वा। बलक ने बड़े पुत्र माध को इतना धन दिया जो उसकी १०० वर्ष तक की आयु के लिए पर्याप्त हो सकता था (देखिये प्रबन्ध चिन्तामणि)। वह बन बलक के पास कहाँ से था? क्या वह बलक भी किसी राजा के यहाँ अथवा वर्मसात राजा के पास मंत्री रूप में कार्य करते थे अथवा भी गुजरादेव का ही उपार्जित किया हुआ इतना प्रचुर धन था जिससे महाकवि माध राजसी व्यवस्था को पा सके। सिन्धुपातवच महाकाव्य में तो केवल भी गुजरादेव के मंत्री होने की बात है। बलक के विषय में राज्याभय वासी कोई बात नहीं। बलक लोक सम्मानित व्यक्ति थे और 'वर्मभय' नाम से प्रसिद्ध थे। वर्मभय होना शायद उन्हीं हो सकता है जब वह राज्य सम्मानित और वैभववासी हो। बलक भी अपने पिता निरवध ही भी गुजरादेव की ही भाँति राज्य में एक अन्वेषक पर पर रहे होंगे। राज्याभय काल में भी गुजरादेव तथा

उनके' सुपुत्र दत्तक के द्वारा उपासित बन गे कवि माध को इतना घनी बना दिया था कि छोटे-मोटे राजा तो साधारण बर्णों की भाँति माध के घर पर आया जाया ही करते व किन्तु मोक्ष जैसे महाद् राजा भी उनके यहाँ आतिथ्य से प्रसन्न हुए ।

सम्पत्तिशाली होने के साथ ही वह विभिन्न विषयों के ज्ञाता भी थे । वेद वेदांग, शास्त्र, पुराण विभिन्न कोष सभी तो उनके कब्जा में थे । इनके अतिरिक्त उनकी बहुत-सी अन्य बातों का भी पूरा-पूरा ज्ञान था । उनकी के स्वामी तथा सरस्वती के बरद पुत्र महा कवि माध लौकिक-दृष्टि से एक कप से निर्द्वन्द्व थे । फिर वह ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थे जिसको राज्यभ्रम प्राप्त था । उस काल में राज्याधीन व्यक्ति विशेष कप से सम्मानित होते थे । महाकवि माध ने राज-सम्मान को प्राप्त किया । मोक्ष के उत्कार की बात का तथा अमर स्वामी के मन्दिर के पुण्य नाम की बात का इससे मेम बैठता है । माध भारत-सम्पत्ती व्यक्ति थे । वे बड़े दानो और धनीपति ठाट-बाट से चलने वाले थे । सिधुपातवध में कई श्लोक मिलते हैं जिसमें पञ्चभूत व्यक्तियों के प्रति समवेदना पूर्ण कवच है । इन श्लोकों में इस बात की प्राप्ति ॥ वह अनुमान होता है कि संभवतः उनको भी अपने राजकीय पद को छोड़ना पड़ा हो । एक श्लोक में^१ कहा गया है कि स्वर्ण होकर भी यदि कोई उच्च स्थान पर चढ़कर नीचे गिर पड़ता है तो निर्मल (उच्छ) सोय उसको त्याग देत है । माधो इसी कारणावध (सरोवर की) बधरापि ने रमणियों के कानों से बिरे हुए नीले कमल को अपनी सहुरी से उठाकर तट की ओर फेंक दिया ।

इस श्लोक में "मादकः पतितः" और "स्व संनयोऽपि" ये शब्द बड़े अचिन्त्यक हैं । "स्वच्छानां परिहरणीयतामुपैति" से स्पष्ट हो जाता है कि जो पतित हो जाता है वह व्यक्ति तो अज्ञान पुत्रों से भी स्थाय्य होता है । कह नहीं सकते कि महाकवि माध उच्च स्थान की प्राप्ति के पश्चात् राजा द्वारा अपने स्थान छोड़ देने को बाध्य किए गए हों यद्यपि "स्व संनयोऽपि" से वह व्यक्ति निकल पड़ती है कि परिवार वालों ने माध कवि को अपनी आसीन मर्यादाओं में बाँधना चाहा हो पर उन्होंने इस तरह बँध जाने को अपनी स्वतन्त्रता का अग्रहण माना हो और परिवार को छोड़ दिया हो । पिता दत्तक (कुमुद पण्डित) के मदद बन को प्राप्त कर माध अपव्ययी तो हो ही गये थे जीवन, धन, प्रभुता और फिर विद्वत्ता इनका समय जो था । इन अपव्ययता से भागे बसकर उनका कष्ट तो निसे ही । कुछ भी हो यह एक श्लोक उनके जीवन की किसी ऐसी घटना पर प्रकाश डालता है जिसका सम्बन्ध उनके घर छोड़ देने से है ।

आपत्तिर्वा सर्वत्र शक्येति नहिं आया करता है । जब अनुप्य पर वैवकुचिपाक से एक आपत्ति घायी है तो उसका तो निराकरण हो ही नहीं पाता कि दूसरी आपत्ति सामने आ जाती है । माध कवि के साथ भी संभवतः ऐसी ही घटना घटी । वह प्रमाण्ड पण्डित के शास्त्रार्थ उनके समय में हुआ ही करते व जिसकी वर्षा हमने ऐतिहासिक व सांयागिक

(१) मादकः पतित इति स्व संनयोऽपि स्वच्छानां परिहरणीयतामुपैति ।

कर्मभ्यः कुतश्चिद्विगतोपलं बभूव वीथीमिस्तदमनु परिश्रानुरागः ॥८१॥

Regarding Magh the chronicles you mention state that Magh was living during the time of Bhoja. Please remember that evidence of these chronicles are hardly of any use as they were written centuries after the death of Bhoj secondly these chronicles contain several stories which are demonstrably false. The main point is Is Bhoj mentioned by the poet? The answer is no

Unfortunately we are not in a position to fulfil your needs. Bhoj ruling in A. D. 650-675 is yet unknown in History

Paramara Bhoj is said to have built a temple at Ohittore which must have been for a time included within his dominion.

Yours faithfully
Sd/-Majumdar

माघ के सिद्धा शास्त्रियों इतिहास विचार्यों एवं ज्योतिषियों की इस माघ-भोज वाली बात पर जो सम्मति है उसको पाठकों के सम्मुख रख दिया गया है। इसी विषय को लेकर प्रसिद्धि प्राप्त संस्कृतज्ञ व्यक्तियों से जो साक्षात्कार हुए हैं उन पर भी कोई जल्लेखनीय परिणाम नहीं निकला। परमार भोज का नाम अक्षय आया पर वह तो अनेक कारणों से माघकालीन हो ही नहीं सकता फिर चूंकि पंडित श्रीधरकर श्रीराजबन्धु शोभा ने बसन्तवह नामे सितारनेत्र को वि० सं० १७२ बतकर माघ को उत्तम शताब्दी में रख दिया तो फिर भोज मिहिरभोज की बात ही क्यों सोचने लगे। हमने माघकालीन गुप्त माघ विषयक सामग्री तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण में इसी बात को विचारने का प्रयत्न किया है कि माघ दुर्गों के अन्तिम समय में हुए हैं आठवीं और दशवीं शताब्दी के मध्य। प्रबन्ध चिन्ता मणि और प्रभावक चरित दोनों ही से हमारे इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है।

इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि माघ किसी भी राजा के प्राधित नहीं थे। उनका अधिकार समय भ्रमण करने में ही बीता पर ऐसा सोचना उर्ध्वों के विपरीत है।

यह बात तो निश्चय है कि महाकवि माघ के पितामह भी सुप्रभदेव राजा वर्मसात के सुर्वाधिकारी मंत्री थे (प्रभावक चरित तथा माघ का त्रिपुपात वध में लिखा गया कवि बंस वर्तुन देविये)। इनके पुत्र दत्तक बड़े शोभ्य व्यक्ति थे जिनके पास बहुत बग बा। दत्तक हैं बड़े पुत्र माघ को इतना बग दिया जो उसकी १०० वर्ष तक की खादु के लिए पर्याप्त हो सकता था (देविये प्रबन्ध चिन्तामणि)। वह बग दत्तक के पास कहीं से आया? क्या वह दत्तक भी किसी राजा के यहाँ अथवा वर्मसात राजा के पास मंत्री कर में कार्य करते थे अथवा भी सुप्रभदेव का ही उपार्जित किया हुआ इतना प्रचुर बग बा जिससे महाकवि माघ राजसी वैभव को पा सके। त्रिपुपातवध महाकाव्य में तो केवल भी सुप्रभदेव के मंत्री होने की बात है। दत्तक के विषय में राज्याधय वाली कोई बात नहीं। दत्तक शोक सम्मानित व्यक्ति थे और 'अर्धधय' नाम से प्रसिद्ध थे। सर्वाधय होना शर्कक अभी हो सकता है जब वह राज्य सम्मानित और वैभववासी हो। दत्तक भी अपने पिता निरक्षर ही भी सुप्रभदेव की ही भाँति राज्य में एक अन्धे पथ पर रहे होंगे। राज्याधय काल में भी सुप्रभदेव तथा

उनके सुपुत्र दत्तक के द्वारा अपात्रित बन ने कवि माय को इतना बर्षा बना दिया था कि छोटे-मोटे राजा तो सामारण बर्षों की जीति माय के घर पर धावा जाया ही करते व किन्तु मोक्ष जैसे महान् राजा भी उनके यहाँ धातिव्य से प्रसन्न हुए ।

धर्मविद्याभी होने के साथ ही वह विभिन्न विषयों के ज्ञाता भी थे । वेद बराप, धारम, पुराण विभिन्न कोष सभी तो उनके कब्जा में थे । इनके अतिरिक्त उनकी बहुत-सी धर्म बातों का भी पुरा-पुरा ज्ञान था । अयोध्या के स्वामी तथा सरस्वती के बरह पुत्र महा नरि माय लौकिक-दृष्टि से एक रूप से निर्गुण थे । फिर वह ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थे जिसको राज्याभय प्राप्त था । तब काश में राज्याभय की शक्ति विशेष रूप से सम्मानित होते थे । महाकवि माय ने राज-सम्मान को प्राप्त किया । मोक्ष के उत्कार की बात का तथा अपात्र स्वामी के मन्दिर के पुण्य साध की बात का इससे मेल बैठता है । माय आत्म-धम्माती व्यक्ति थे । वे बड़े बानी और असीरी छोट-छोट से रहने वाले थे । छिमुपासक में कई इलाक मिलते हैं जिनमें पदम्युत व्यक्तियों के प्रति समवेदना पूर्ण कथन है । इन इलाकों में इस बात की धारणा से वह अनुमान होता है कि संभवतः उनको भी अपने राजकीय पद को छोड़ना पड़ा हो । एक इलाक में कहा गया है कि स्वयं हाकर भी यदि कोई उच्च स्थान पर चढ़कर नीचे धिर पड़ता है तो निमस (उच्च) लोग उसको त्याग देते हैं । मायो इसी कारणावध (सरोवर की) बसरायि ने रमयिषों के कानों से धिरे हुए नीम कमल को अपनी कहुरों से उठाकर तट की ओर फेंक दिया ।

इस इलाक में "भास्कर पतिव" और "स्व संभवोऽपि" के उक्त बड़े धर्मिण्युक्त हैं । "स्वच्छानां परिहरणीयतामुपैति" से स्पष्ट हो जाता है कि जो पतिव हो जाता है वह व्यक्ति तो उज्ज्वल पुष्पों से भी स्वाग्य होता है । कब नहीं सकते कि महाकवि माय उच्च स्थान की प्राप्ति के पश्चात् राजा द्वारा अपने स्थान छोड़ देने को बाध्य किए गए हों यद्यपि "स्व संभवोऽपि" से वह शक्ति निकल पड़ती है कि परिवार वालों ने माय कवि को अपनी जातीय पर्याप्तता में बाँधना चाहा हो वर उन्होंने इस तरह बँध जाने को अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण माना हो और परिवार को छोड़ दिया हो । पिता दत्तक (कृत्रिम पण्डित) के पद्धत बन की शक्त कर माय अपात्र्यता से घाये चलकर उनको कष्ट तो मिल ही । कुछ भी हो वह एक इलाक उनके जीवन की किसी ऐसी घटना पर प्रकाश गगता है जिसका सम्बन्ध उनके घर छोड़ देने से है ।

आपत्तिवा सर्वत्र अनेको नहीं भाया करती है । जब समुप्य पर ईश्वरविष्णु में एक आपत्ति पाती है तो उसका तो निराकरण हा ही नहीं जाता कि दूसरी आपत्ति सामन या पाती है । माय कवि के साथ भी संभवतः ऐसी ही घटना पड़ी । वह प्रथम पण्डित व आचार्य उनके समय में हुआ ही करते थे जिसकी बर्षा हमने ऐतिहासिक व सामाजिक

(१) भास्कर पतिव इति स्व संभवोऽपि स्वच्छानां परिहरणीयतामुपैति ।

उपैत्यभ्युत्तमजितोपपन्नं यमुना बोधीमस्तदमनु पमिरामुराधः ॥८-४४॥

परिस्मृतियों को मिचते हुए पीछे के पृष्ठों में कर दी है। साथ पण्डित ने भी पराङ्ग होते हुए शास्त्रार्थ किये और किसी एक शास्त्रार्थ में उन्हें नीचा देखना पड़ा हो।

एक दूसरा श्लोक^१ है जो उनके पराङ्गुत या पराजित हो जाने की ओर ध्वस्त करता है—'विषयां को सुवर्ण के धातुपणों को बारण किए हुए भी वे जाली होने के कारण मिलने की लज्जा से जैसे ही धनों से गिरे, धीम्र ही जल में डूब पड़े किन्तु पहिले के परचाय निकासी हुई पुष्पमाभा सरोवर के जलमें डूबर-डूबर नाचती ही रही। ठीक ही है। तिरस्कृत या अपमानित होकर भी तुच्छ व्यक्ति और अधिक डीठ हो जाते हैं। कहने का समिप्राय यह है कि अपने स्वान से झुट होकर जो महान् पुरुष होते हैं वे तो बेचारे अत्यन्त लज्जा के कारण मुँह तक नहीं धिक्काते कहीं क्षिप्त जाते हैं विवेक जले जाते हैं किन्तु तुच्छ व्यक्ति और अधिक छिटाई से नाचते हैं।

शास्त्रार्थ में पराजित व्यक्ति का वर्णन तीसरे श्लोक^२ में यह इस भाँति कर रहे हैं—'अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी से पराजित व्यक्ति परदेस भाग जाता है घबरा घबरा वह व्यवहार कुण्ठ होता है तो उसी की छरण में जमा जाता है। इसीलिये जलज्या में सम्मिलन कपोलों वाली सुन्दरियों के मुख में प्रतिविम्ब के बहाने से प्रवेश कर दिया।

एक चौथा और श्लोक^३ देखिये—'जबवान् बीहृन्म की रमणियों की मञ्जुरबाणी से पराजित स्वर वाले हंसों के समूह कमलों के बीच में घाकर क्षिप्त गए (जन्होंने यह ठीक ही किया) क्योंकि दूसरे से पराजित होकर कौन ऐसा व्यक्ति है जो विवेका के सम्मुख खड़ा रह सके।

इसी बात की पुनरावृत्ति एक और श्लोक^४ में हुई है—'धीमायुक्त विद्याल एवं सवन निरन्त्र मन्त्रों से युक्त जबवान् बीहृन्म की रमणियों की जबाबों से पराजित टट जाती विषय की रमणियाँ (नवियाँ) पराजय से लज्जित होने के कारण मानो निरन्ध्र ही पापाख जगहों पर गिरते पड़ते वहाँ से वेग पूर्वक भागने लगीं।' इससे भावार्थ निकला कि दूसरे व्यक्ति भी अपने विपक्षियों से पराजित होकर अत्यन्त लज्जा के कारण बहुत धीम्र ही वहाँ से भाग निकलते हैं।

(१) अस्मद्विर्मलमपि भूपलैर्बभूवाभिमन्वी शुभमिरमन्त्रि लज्जयेत् ।

निर्माल्यं च ननु तेऽज्जीरितानामप्युज्ज्वलवति लघीयस्यै हि भाष्यम् ॥८१॥

(२) जज्ञते विवेकमन्त्रिणः जितस्तदनु प्रवेष्टमपवा कुशलः ।

मुञ्चन्मिमुह्यन्मनोऽप्येतत् प्रतिपाद्यतेन मुह्यमानविद्यत् ॥८४॥

(३) धामावस्तुनितरवालिमावधीनां मायुर्वाहमलपतिरिणं कुलानि ।

अन्तर्गम्यपुनरुत्पत्तावलीषु प्राहुर्ज्यात् इव जितः पुरः परेण ॥८२॥

(४) धीमद्विजितपुलिनानि मायवीनामारोहेनिविद्वद्बृहमितन्मन्त्रिभ्यः ।

पापात्स्वतन्मन्त्रिलोतमायु नूनं वीतव्यात्पुनरुत्पत्तौ चानि सिन्धौ ॥८५॥

एक धीर श्लोक^३ इसी तरह का है—“भाषस्य पूर्वक मन्द-मन्द वामन करता हुई
जग रमणियों को देखकर हंसियों विस्मय से मुक्त होकर अपनी बात ही छोड़ बैठी। क्यों
न हो, दूसरे के मुँहों द्वारा अपने मुँहों के पराजित होने पर भी कौन ऐसा निर्मम्य है जो
फिर अपने मुँहों को प्रकट करता है।” धर्मिप्राम यह है कि हार खाने पर फिर किस मुँह से
सब शिरोधार के सम्मुख मुँह उठाकर बात सके। उसके लिए नहीं पर रखने की समझ यही
वर्णित है कि सम्य स्मान पर जाता जाय।

इस एक श्लोक^४ को धीर जैसे विषयों यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि जो व्यक्ति
हिंसी के मुँहों के धाम पराजित हो जाता है धीर फिर धाम कोल नहीं सकता तो वह अपनी
परजय को स्वीकार कर बैठा है किन्तु बुद्धि यही जानकर नहीं होता कि केवल वह उस
व्यक्ति के सम्मुख हारा नहीं है, उसके पूर्व बहुत से दूसरे व्यक्ति भी हार चुके हैं। श्लोक का
अर्थ यह है—“जबसे लड़कों से मुक्त (सरोवर के) जल में पराजित ‘रमणियों के’ मुँह की
कान्ति से धकेला मैं ही नहीं पराजित हुआ है किन्तु जनक नयनों की खोसा से तीसकमल
भी पराजित हो गया है।” इस सन्तोष से जानी प्रभुओं के पुनार के रूप में बाग के साथ
नृत्य करने लगा।

संभवतः कवि की ध्यात्वामिव्यक्ति इस एक धीर श्लोक^५ में हुई है इसको भी
देखिये—“छूने हुए घटन धर्मात् नम्रक के पुष्प के समान धर्मात् सुदर्शनत् मीरवर्णवासी रमणी
का सुन्दर धरीर जल में मग्न होने पर भी प्रकाशित हो रहा था। जब का समुद्र (मयका
जड़ धरमा मुँहों का समुद्र व धीर का मैं समेत होने के कारण) उससे धाँधलाकर करते
हुए भी (सूक्ष्म में वाली यशोव केते हुए भी) निर्वलता है मुक्त बरानों को (पुष्पधूलि सोपों
को) छिपाने में (ठिरकान करने में) समर्थ होता है।

धर्मिप्राम यह है कि जैसे निर्मल जब निर्मल पदार्थ को छिपान में समर्थ नहीं हो
सकता इसी भाँति पुण्यवान् व्यक्ति का पुण्य पुण्यवाले सम्य व्यक्ति के धामे छिप नहीं स-ता
चाहे देव माव से प्रथम ध्यात्वान् पर उतर कर वह व्यक्ति धाँधले मले ही करे किन्तु धर्म
में मुँहों द्वारा सबको विदित हो जाता है कि वह वास्तव में ही पुण्यवान् है जब दूसरा विद्वान्
पुरुष भी उसको अपने मुँहों के धामे छिपा न सका। निर्मल जब जैसे कचन देह को छिपा न
सका इसी भाँति निर्मल पुण्य यदि किसी में है तो वह निर्मल पुण्य उस पुण्यवाले के पुण्य को
(दूसरे मुँहों को) प्रकट किए बिना नहीं रहेगा। वह दूसरे के मुँहों का प्रख्यापन करेगा।

उपसृक्त श्लोकों से यह जानने में सहायता मिलती है कि परब्रह्मणि धरमा धात्वार्थ में

(२) परब्रह्मणोऽसत्त्वमेव विमलविद्यस्तास्तन्मीनं विशदिते क्ताति हंस्य।

ब्रह्मवा दितकपरेण काममाविष्कृती स्वगुणमपश्य-त् एव ॥२-७॥

(३) कीर्तनां बुद्धयमप्यवास्तवकलीः सोमसिर्भ मुद्धरवाहनेर्यमेव।

सुदर्शितिविदर्शितोऽयं ध्यात्वान्मोमी पयसि महोत्पत्तं जनतं ॥२-३॥

(४) उदित प्रियवचनोऽयं रमया लीने सरसि कपु-प्रकाशमेव।

मुक्षतां विमलतया तिरस्कार्यं नात्रापयसि हि अक्षयलंगनीय ॥२-२॥

परामर्श या इसके प्रतिरिक्त कविगोष्ठी भ्रमण विहस्रमात्र में मिलते हुए धनादर ने धारम-
सम्पत्ती कवि मात्र को दैष्टाटन करने के लिए प्रेरित किया । (भाष्य महाभारतभाष्य भाष्य भी वे
इसी लिये इनकी कविता मिलाना को लिये हुये भी होती थी । उस समय एक विद्वान् भ्रमण
कवि दूसरे विद्वान् भ्रमण कवि को लीला बिताने में लया रहता था । संभवतः भाष्य किसी
छात्रार्थ में भ्रमण कविगोष्ठी में परास्त भी हुये हों । एक विशेष प्रकार की कीर्ति उनके लिए
सर्वत्र ही एक कुपटा ही रही । शिशुपालवध काव्य का निर्माण करके बृहद्वाक्ता में भी वे
जैसे कीर्ति को पाया चाहते थे । इस इच्छा की अभिव्यक्ति नीचे की दो पंक्तियों में है—

‘‘सस्यारमज सुकविकीर्तिवुराधपाद’’ ।

काव्यं व्यपद्य शिशुपालवधामिधानम् ॥’ कवि संश्लेषण ५॥

इन दो पंक्तियों में भी सुकवि कीर्ति उनको एक कुपटा जैसी ही लपटी थी—पर वह
जैसे चाहते थे वैसे रहे ।

शिशुपाल वध महाकाव्य को सम्पूर्ण करने का समय प्रायः उनकी बृहद्वाक्ता का है जब
वे इस विवेक में प्रमत्त करके लौट पाये । उस समय धार्मिक दृष्टि है वह बड़ी हीन दशा में
थे । लौट कर उन्होंने राज्याभय को तो पाने की चिन्ता नहीं की किन्तु अपनी कष्ट दशा से
मुक्ति पाने को राज्य की सहायता चाही । बृहद्वाक्ता में राज सहायता पाने का उल्लेख यथा-
स्थान हो चुका है ।

तो जहाँ तक राज्याभय का सम्बन्ध है संक्षेप में वह इस भाँति का है—

(क) उनके कुल को राज्याभय प्राप्त था धारम्य में उनको भी मिला ।

(ख) भाष्य सम्पन्न कसाविष् व्यक्ति ने जीवन को धारम्य से बिताने की कला में वह
निपुण थे अपने धारम्यवाता भोज से भी अधिक ।

(ग) धारम्य में भोज उनसे प्रसन्न थे उनको जनसत्ता की के शक्ति का पुष्पलाभ
उन्होंने दिया ।

(घ) किसी कारणवश उनकी पदस्थिति हुई थीर विद्वानों में उनका निपटार हुआ
विशेषों वह सहन न कर सके थीर भ्रमण स्थान छोड़ कर दैष्टाटन में लगे ।

(ङ) जब वह भीहीन होयवे थीर भ्रमण में भी बहुत बूढ़ तो अपने दैत्य को लौट
उस समय तक उन्होंने शिशुपालवध को समाप्त कर लिया था । शिशुपालवध की रचना में
शिवात्मनीय के कारण प्राप्त धार्मिक के फलें हुए यह कर भी भोज था ।

(च) जैसा ऊपर भी दो पंक्तियों में स्पष्ट है यही एक भी सुकविकीर्ति उनके लिए
कुपटा थी ।

(ज) अन्तिम दिनों में उन्होंने राज सहायता तो चाही पर राज्याभय नहीं ।

जब यहाँ पर उनके राज्याभय होने में प्रमाणभूत कुछ एक श्लोक हैं उनको उद्धरण
रूप में रखकर इस शीर्षक को समाप्त करते—

राजसिंहासन पर बैठे हुए तथा अपने दरबारियों को क्षण भर के लिए दर्शन देकर जो राज्य-कार्य के निरीक्षण के लिए निकल जाता है उसका सजीव चित्रण एक रामभाषित दरबारी ही दे सकता है। देखिए—

क्षणमयमुपविष्टः क्मातसन्न्यस्तपादः प्रणति परमवेक्ष्य प्रीतिमह्नाय मोक्षम् ।

भुवनसप्तमशेष प्रत्यवेक्षिष्यमाणः क्षितिधरतटपीठावुत्थितः सप्तसप्ति ॥ ११ ४८ ॥

अर्थ—सूर्य उदय हुआ है और उदयावस कपी सिंहासन पर बैठकर किरण कपी चर्यों को पृथ्वी पर रचता हुआ प्रणाम करते हुए संवृत मोगों को देखकर क्षीप्र ही तमस्त भूतल को देखते हुए उदयावस के तटस्थी सिंहासन से उठकर जाड़ा हो गया ।

राजा महाराजाओं के उस वृत्त में प्रातः सायं का दरबार का हस्त देखने योग्य होता था दरबारी प्राचीनार्थ भुवन का सलाम करने के लिए आया करते थे । कुछ क्षण तक दरबारी बैठे रहते थे महाराजा सिंहासन पर बैठ कर कुछ देर के लिए अपने आश्रित प्रणतजन को आदर देकर क्षीप्र ही अपने राज्य की कार्यवाही को देखने के लिए बस पड़ते हैं । यह अप्रस्तुत अर्थ है जो अन्तर के स्कोट में आया है । इस अर्थ को गम्य कराने की सामग्री उची में हो सकती है जिसने राज्य दरबार का निकटता से (वहाँ आध्वन पाकर) अनुभव किया है ।

नीचे की पंक्तियों में कवि ने प्रतापी राजा का प्रताप बिलाकर अपने राजा की इस भाँति प्रशंसा की कर दी है। देखिये—

बहिरपि विसप्तम्यः काममानिभिरे महिषसकारदभोभ्रतं ध्वान्तमन्तपूहेषु ।

नियत विषमदुस्तेरप्यनस्यप्रतापसप्तसकसविपक्षस्तेजसः स स्वभावः ॥ ११ ५६ ॥

सूर्य बाहर है फिर भी उसकी किरणों ने जल के भीतर के समस्त अग्निकार को दूर कर दिया है । यही न हो, तेजस्वी का यह स्वभाव ही है कि वह अपने नियत स्वान पर रह कर भी अपने महान् प्रताप से सम्पूर्ण शत्रुबल का विनाश कर ही देता है । भागे के तीन स्तोकों को भी देखिये—

चिरमतिरसत्तीत्यादबन्धनंजन्मिस्तानां पुनरयमुदयाम प्राप्य धाम स्वमेव ।

दसितवसुकपाट पदपदानां सरोजैः सरमस इव गुप्तिस्फोटमर्कः करोति

॥ ११ ६० ॥

पुणपदपुणसप्तितुल्यसंख्यैर्मयूखैर्बहातवसमेव कीलुकेनाशु कुरवा ।

धियमसिक्तुसगीतैः सांसितां पंकजान्तर्भवनमधिसयानामादरात्पदपटीम् ॥ ११ ६१ ॥

अदयमिह नराधरेण निष्पीड्यमाणः शाश्वरमहारादी रामवानुप्युरविम् ।

अयनिरति मिश्रान्त काभितिर्यासमवदलुत्तमवससपाण्डु पुण्डरीकोदरेषु ॥ ११ ६२ ॥

अपर्युक्त तीनों स्तोकों में उस राजा का वर्णन है जिसने अपने प्रताप से शत्रु को मर्त्य कर अपने शक्तिमत्ता को परतमता की पंजियों से मुक्त किया है और शत्रु सम्पत्ति को अपने मित्रों में वितरण कर दी है ।

इस भाँति राजा का बर्हण करता हुआ कवि स्वामी है प्राप्त अपमान को स्वयं
दिखता रहा है, देखिये—

इष्ट कृत्यार्थं पत्रिणु साहस्यपाणेरेत्याभोग्मुख्य प्राविशन्मूमिमाणु ।
मुदया युक्तानां वैरिवर्गस्य मध्ये भर्ता क्षिप्तानानेतयेवानुबपम् ॥ ११ १११ ॥

बाण कार्य करते नीचे मुझ किये हुए घुमि मैं प्रविष्ट हुए । बात ठीक ही है यदि मुझ
होते हुए भी किसी को उसका स्वामी शत्रुओं के मध्य मैं छोड़ दे तो उसके लिए यही ठीक
भी है भर्ता उसका इसके प्रतिरिक्त धीर क्या कर्तव्य हो सकता है कि वह नीचा मुझ करके
कहीं हिन काय ।

फिर देखिये—

पश्चात्कृष्टानामप्यस्य नराणामिव पत्रिणाम् ।
यो यो गुणेन संयुक्तः स कर्णान्तमामयो ॥ ११ ११२ ॥

पर्य—जिस भाँति पहले स्वामी द्वारा बताया वह पीछे हटाने गए व्यक्ति अपने गुण के
धीर से स्वामी के समीप फिर पहुँच जाते हैं वही भाँति ये बाण पहले तो पीठ पर तरफ
के भीतर पड़े थे किन्तु गुण के सम्पर्क के भी कृष्ण के कान के समीप पहुँच पड़े ।

इसमें स्वामी ने बताया किया है किन्तु फिर वही ही गुण देखने को मिले हैं तो वही
राजा ने उस व्यक्ति को अपने निकट रख लिया ।

फिर देखिये—

अयणोभिदुरातीके कापधाम रणाहते ।
अमघोभिदुरा सोक बोधया भरणाहते ॥ ११ ११३ ॥

इसमें बताया है कि स्वामी द्वारा प्राप्त बताया कपी अपदय को मिटाने के लिए
प्राणत्यागने के प्रतिरिक्त धीर अथ उपाय ही क्या हो सकता है ।

देखिये—

यावन् सत्पुत्रैर्भर्तु स्नेहस्यानृप्यमिच्छुभिः ।
अमर्यादितरैस्तावत्सत्यैः शुचिजीवितम् ॥ ११ ११४ ॥

पर्य—जबने स्वामियों द्वारा सम्मानित होने के कारण उनके प्रेमकरी आण से उच्छा
होने का एकदम छोड़ा एणुभि में वह एक अपने प्राण नहीं त्याग सके तब तक स्वामी के
बन्धन से निहीन जीवन में अपने-अपने प्राण त्याग दिये ।

फिर देखिये—

न तस्मी भर्तुतः प्राप्तमामसंप्रतिपत्तिपु ।

रगोक्तसर्गेषु भय मानस प्रति पत्तिपु ॥१६-३८

इसमें भी स्वामियों से सम्मान एवं सीमनस्य की प्राप्ति पाही ।

नीचे के श्लोकों में गुण के द्वारा स्वामी से भिन्न हो ही जाता है, देखिये—

अनुतापसयोगपुद्धिभार्जा गुरुपक्षाधविद्यां शिमीमुत्तमानाम् ।

गुरिणा मतिमायतन संधिं सहसापेन समजसो बभूव ॥२० ६॥

इसमें कहा गया है कि सरल स्वभाव वाले कल्याणकारी एवं भीतर बाहर की सुखता से युक्त तथा बड़े शक्तियों में आश्रय पाने योग्य मनुष्य का मुखवान् तथा विनम्र मनुष्य से समा-
पन होता उचित ही है ।

आत्मय पाने योग्य इस भाँति के मुखवाचा तो महाकवि माध ही हो सकता है और राजा कौन हो सकता है जिसके विषय में पीछे स्पष्टापूर्व निष्ठा का भुका है ।

स्मृतिवत्स तस्य न समस्तमपहृतमिवाय विद्विष ।

स्मत्तु मधिगतगुणस्मरणा पटवो न दोषमसिखं ससूतमा ॥१३-४३॥

इसमें यह भाव स्पष्ट है कि जिन्हें दूसरों के गुणों का ही स्मरण करने का आभ्यास है ऐसे उज्ज्वल दूसरों के समस्त दोषों को स्मरण ही नहीं रख सकते ।

इन श्लोकों से स्वामी द्वारा बनाकर किये जाने के माध हैं फिर स्वामी से बनाकर सेवक को भी इस बात की निष्ठा है कि वह अपमय तो बहुत बुरा है, दिवाने योग्य नहीं इससे प्राप्त लाभ देना ही श्रेष्ठतर है किन्तु स्वामी के प्रति कर्तव्य से तो च्युत कभी नहीं होता है क्योंकि उस स्वामी के आश्रु से उज्ज्वल करते हो सकते हैं फिर हम देखते हैं कि सेवक ने अपने गुणों द्वारा स्वामी को प्रसन्न कर ही लिया । स्वामी ने दोषों को क्षमा कर दिया और गुणों को प्रह्लाद करते हुए अपने निकट रख लिया ।

अपमृक्त भावनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि माध किसी राजा के आश्रय में अवश्य वे जिसके द्वारा पहले किसी कारण से बनाकर किये गये और फिर राजा का सम्पर्क प्राप्त किया ।

देखाटन

“आभ्यास” पर मिलती समय यह बताया गया है कि अपनी परभ्युति, आस्थाप्य पारि में पराजय अवस्था निम्नी सम्य सामाजिक अवस्था पारिवारिक कारण से बाध्य होकर अपने आत्मिक स्वास्थ्य के लिए महाकवि माध ने देखाटन किया । ये एक नगर से दूसरे नगर जाते और जहाँ अवसर मिलता अपने वादित्य एवं नवित्य का परिचय देते । विद्वानों में प्रसिद्धि है महाकवि माध अपनी बयोमिष्टा के कारण विषय रूप में किसी एक स्थान पर न रह पाये और प्रमथ में ही उनका अधिवास समय बीता । उन्होंने उत्तर भारत में कासीर

तक भ्रमण किया था। पश्चिम, पूर्व तथा दक्षिण भागों तक वे गये थे। दक्षिण-पश्चिम में कच्छ की खाड़ी के निकटवर्ती प्रांतों तक बिबर चौपाइ, बलभी द्वाराका मारि प्रवेश है तथा पूर्व-दक्षिण में मङ्गल तक इनका भ्रमण हुआ। इन स्थानों के विनोपम वर्णन हुआ है। सिंधुपालवध महाकाव्य में इन वर्णनों का साहित्यिक महत्त्व तो है पर अन्तःजसस्य का महत्त्व भी कम नहीं है।

काश्मीर के वर्णन को देखिए—

वर्ष्मिन् स्थानों पर गयी हुई धीर पुरानी हो जाने के कारण वीथी गलियों का मोर्चा देखा वर्णन—

“दधानमम्मोदहकेसरसुतिर्बटा सुरज्जगद्गमरीचिरोविषम् ।

विपाकपिगास्तुहिनस्यसीरहो घराघरेऽ घततीसरीरिब ॥१५॥

धर्म—कमल की केसर के समान घूरे रंग की बटा को बारण किया हुये धीर स्वर्ण सरद जल के बल्लभा की फिरलों के समान धीर वर्ण के (वे उस समय) वर्ष्मिन् स्थानों पर गयी हुई धीर पुरानी हो जाने के कारण वीथी गलियों के गुम्बों को बारणकरने वाले हिमा सम पर्वत के समान दिखाई पड़ रहे हैं।

काश्मीर में हिमालय पर्वत के निकट था जाने से भूमि का एक भाग हिमाच्छादित रहता है। वहाँ की भूमि में केसर उत्पन्न होती है। काश्मीर की केसर प्रसिद्ध है। घास में ही उस धीर ही कृष्णकाम मृग तथा चितकन्दे मृग दिखाई पड़ते हैं। देखिये मृग के वर्णन—

पिधंगमोत्रीयुजमकुंमच्छवि, बसाममेणाचिनमंजन सुति ॥१६॥

निसर्गचित्रोज्ज्वल सूक्ष्मपद्मणा -- -- ॥१७॥

इस नाति उपर्युक्त १ धीर ८ श्लोक में काले युवचर्म धीर चितकन्दे मृग व उज्ज्वल सूक्ष्म रोमावती जाने मृगों के शव का वर्णन करके वहाँ पर मृगों की अधिकता दिखाई है।

जाने दीजिए, ये बातें अबे दूर की हैं किन्तु कवि नीचे चित्रे श्लोक में काश्मीर का नाम तक दे रहा है, देखिये—

धमिर्बधमगात्रबोप्रि दीरेरबनि धामुङ्ग कुकुमाभिताम्र ॥२०३॥

इत पंक्ति में तो केसर कुंकुम के लिए धामुङ्ग (काश्मीरव)

शब्द का प्रयोग है।

आज काव्य को पढ़ने से निश्चित होता है कि कवि ने ‘काव्यसास्त्रविनोदेन कालो गच्छति भीमनाम्’ इसके अनुसार अपनी मुवावस्था के रोप भाव को काश्मीर मारि की वातावरण में दाखल करते हुए, कविता का आनन्द भरे हुए बिताया होगा। सिंधुपालवध का अविनाश भाव काश्मीर की भूमि में रखा गया वहाँ पर माघ ने पक्षियों की काव्य मोक्षियों में होने के सबसर पाये। वहाँ द्वारावती का वर्णन आता है वहाँ पर स्थियों के शीतल्य का

को रूप बिज उपस्थित किया है उससे हमें तो सहसा कामगोर का स्वरण हो जाता है ।
कारमीर की प्रकृति का सौन्दर्य ही अनुभूत नहीं है किन्तु वहाँ की रमणियाँ भी प्रायः तक भी
मरने सौन्दर्य के कारण प्रति प्रसिद्ध हैं । एक स्थान पर बर्णन आता है—

रम्या इति प्राप्तवती पताका राग विविक्ता इति बर्णयन्ती ।

यस्यामसेवस्त नमस्सीका सम वधुमिर्बलभीर्मुवाभ ॥३-५२॥

अर्थ—जब हारकापुरी में जबक जन रम्य होने के कारण पताका प्राप्त करने वाली
अर्थात् ध्वजायुक्त (पक्ष में, रमणीयता के कारण प्रसिद्ध) विविक्त अर्थात् निर्जन होने के कारण
पक्ष को बढ़ाने वाली (पक्ष में विविक्त अर्थात् विमल) नमस्सीक अर्थात् नीचे की ओर झुकी
हुई खपरौ वाली (पक्ष में, मयहीलीक अर्थात् मध्य भाग में निवसियों से सुशोभित) बलभी
अर्थात् एकान्त मुटियों का सेवन अपनी बाहुओं के साथ करते थे ।

बलभी उभय का अर्थ यदि बलभी से लिया जाय तो भी कैसा अर्थ हो जाता है ।
बलभी में रहने वाली स्त्रियाँ । बुजरात व बलभी की स्त्रियाँ भी सुन्दरता में अद्वितीय होती
हैं । बलभी विद्वानों का किसी समय घर था । वहाँ के राजा विद्वानों को आश्रय दिया करते
थे (देखिये संस्कृत कवि चरित डा० व्यास का अष्टि पर बिम्बा द्वारा सम्पाद्य) इस अर्थ से वह
भी जात होता है कि भाग बलभी की ओर गए और वहाँ पर कुछ दिन रहे ।

पाँचवें सर्ग में वहाँ पर कृष्ण रैवतक पर्वत के समीप घिरि कालते हैं वहाँ पर भी
हरिणों और वृषभयनी मुन्दरियों का बर्णन किया गया है, देखिये—

नासाकुलं परिपतत् परितो निनेताम् पुर्मिर्न करिषदपि धन्विमिरम्बबन्धि ।

तस्यो तत्रापि न मुगं क्वचिदंयनामामाकणपूर्वगमैर्गृह्यते क्षराध्वी ॥३-२६॥

अर्थ—(नीदमात्र को देखकर) मगधीत हुए पतएव अपने आवास स्थान से निकसकर
बाएँ ओर जाते हुए हरिणों का किसी अनुपकारी पुष्प ने पक्षि पीछा नहीं किया तत्रापि
ऐसा माधुर्य वक्ष्य का भागो रमणियों के काम तक उठे हुए नयन कभी बाएँ से नैत्रों की
सोना के हर विष्ट जाने के कारण वे (हरिण) कहीं भी स्थिर न रह सके ।

“यन्मासोक” के रचयिता काश्मीरी पंक्ति धानम्बवर्धन (सन् ८३० ई०) ने नाव के
इन अनर्गल स्त्रियों को उदाहरण के रूप में अपनी पुस्तक में लिए हैं । यह ठीक भी है
क्योंकि जब धानम्बवर्धन नाव के समकालीन हैं और नाव काश्मीर की ओर बसे हैं तो हो
सकता है कि इन अनर्गल स्त्रियों को किसी काम्बपोछी में भी धानम्बवर्धन ने मुने हों और
किर भन्ने समझकर उन्हें अपने यन्मासोक ग्रन्थ में उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किया हो ।

उत्तर भारत की यात्रा के पश्चात् उन्होंने बहिष्कृत भारत की यात्रा सम्भवतः की हो
पर उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता । तृतीय सर्ग में समुद्र तट का जो बर्णन मिलता है
उसके सहारे वह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा की होगी क्योंकि
उत्तर भारत भी समुद्र से जुड़ा हुआ है और उत्तर की यात्रा के प्रसंग से समुद्र का बर्णन
किया जा सकता है । किन्तु हाँ, इस समुद्र के बर्णन से और कच्छ प्रदेश के विवरण से वह
तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वह औरत बलभी हारका नाविक आदि कम परचीमीय भावों

की ओर गये हैं। बलभी मासिक, काबरीर तो विद्वान् पंडितों के नङ्ग के बहाँ पर प्राचीन कास में दूर दूर से विद्यार्थी आ आकर ज्ञानोपासना किया करते थे। ये ही स्वान शास्त्रार्थों के घर थे भद्र उबर का बरुंग वह स्पष्ट करता है कि शास्त्रार्थ निमित्त या तीर्थ यात्रा के बहाने उबर वह (मात्र) गये देखिये—

सत्तासतासी बमसप्रवृत्तसमीरसीमस्तितकेतकीका

प्रासेदिरे सावसुसैन्धवीनाधमूपरं कञ्चमुखा प्रदेया ॥३॥ ८०॥

अर्थ—बीकानेर के वे सैनिक आरसमुद्र के समीप उस कञ्चमूमि के प्रदेश में पहुँच गये जिसमें उषत ताड़ के बगीचे थे निकली हुई वायु केतकी के पीली धबका पुष्पों को सिर के केसों के समान हो भावों में विभक्त कर रही थी।

फिर समुद्रीतट के बूँदों का बर्णन देखिये—

सबगमासाकसितावतसास्ते नारिकेसान्तरपं पिबन्त ।

प्रास्वावितात्र'कमुखा' समुद्रादभ्यागतस्य प्रतिपत्तिमीषु ॥३॥ ८१॥

अर्थ—सबके पुष्पों की मासाधों से विभूषित नारियल के भीतर के जल को पीते हुए तथा पीली सुपारियों का स्वाद चखते हुए सैनिकों ने समुद्र से विविध प्रकार के प्रकार प्राप्त किया।

तीसरे सर्ग में हारिका नगरी का यथावत् बर्णन हुआ है। उससे तो ऐसा लगता है मानो मात्र कुछ दिन हारिका नगरी में भी रहे हैं। बीकानेर की इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान के प्रसंग में स्वानों भावों परबतों व नदियों का बर्णन हुआ है भी कवि के बाने पहचाने से हैं।

मधुरा की ओर जाने का संकेत हमको वहाँ पर मिलता है जब वह मधुरा नदी के धाने के पूर्व कम घाटों का बर्णन करते हैं जो मंत्रालय में बैठे बैठे नये लड़ा रहे हैं और कुछ कुछ का नाम बपने में तत्सीन हैं देखिये—

“गोठ्यै गोष्ठीहृत्तमंडसासनाम्सनादमुखाय मुहं स वसात ।

प्राभ्यानपश्यत्कपिश पिपासत स्वगोचसंकीर्तनभावितात्मनः ॥१२॥ ८२॥

मधुरा मुखान के बाँधों का कैसा सुन्दर विषय है देखिये—

कोशाठकी पुष्पगुच्छकामितमिमु से विनिद्रोस्वणबाणचक्षुषः ।

ग्रामीणबद्धस्तमसिता जर्नश्चर वृतीनामुपरिव्यसोकम्यन् ॥१२॥ ८३॥

इसमें घामबहुत बीकानेर की छिपछिप कर कटि की मेलों के ऊपर से बड़ी देर तक बँधे देख रही हैं।

प्रीत्यामिपुक्तास्मिहृती स्तमययान्निगृह्य पारीमभयेन जामुतो

बपिप्युधाराध्वनि रोहिणी पयश्चर निदध्वी युहत स गोदुहः ॥१२॥ ८४॥

अर्थ—घपने ही धार पर मैं बँधे हुए स्तनपान करने वाले छोटे छोटे बछड़ों को प्रेम के साथ भीम से चाटती हुई जीवों को तथा घपने लोगों बूटनों के गर्भभाव में रोहनी रखकर

घर घर की ममुर ध्वनि में दुःख को बढ़ानेवाली चारों ओर की चीखों को बुझते हुए पोपाती को मगबाध् दीकृष्ण बड़ी देर तक बैसते रहे ।
इसी भाँति की स्वभावोक्ति वाला इसके भाये का श्लोक है जिसमें माय के बुझने के समय का चेँसा व्यपिण्ड है ।

इस तरह चाहे स्पष्ट रूप से इनकी यात्राओं का बर्णन कहीं उल्लिखित नहीं है फिर भी शिशुपालवध महाकाव्य में जो कुछ लिखा है वह विद्या-निर्दोष के लिए एक बड़ा सहारा है ।

माघ की युवावस्था

नीचे जो छन्द-विषय प्रस्तुत किये जा रहे हैं उनको माघ से युवावस्था में बताया होना ।
१४ प्रकार की समस्त रचना शिशुपालवध महाकाव्य की रचना की बुरसी अवस्था की है । युवावस्था के ये विषय कवि की सायाविक अनुभूति से अनुप्राणित हैं । ये विषय जहाँ कवि की रसिकता और नृ पारितोष्य-पर प्रकाश डालते हैं वहाँ उनकी युवावस्था के बरतानेवाले को भी प्रस्तुत करते हैं । इन विवरणों को देखकर कभी-कभी यह भ्रम होने लगता है कि माघ कहीं धर्मविक बीकन बिलाने वाले तो नहीं थे । पर क्योंकि उस काल के राज परिवारों की जीवन-नयी देखी जाती है, यह भ्रम दूर हो जाता है, तब माघ सामाजिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों को निरूपित देखकर सहृदयतापूर्वक उनको अपने महाकाव्य में स्थान देने वाले एक महाकवि के रूप में उपस्थित होते हैं । नीचे कुछ विषय हैं जो उनकी युवावस्था के हैं । इन विषयों में कुछ तो कामुकता के और कुछ मरिचपान के प्रसंगों का बर्णन करते हैं । अनुनयनमयुहीरना व्याजमुष्टा पराधी स्तमय कुरुवाकास्तारमावप्य करते हैं । कथमपि परिवृता निद्रयाश्च किल स्त्री मुकुतितनयनवाविलम्पति प्राणुनायम् ॥

॥ ११ ८ ॥

इसमें स्त्रियों की अनौपचारिक का वचन विषय है ।
कामीवनों के कुछ विषय—

१—सरमस परिरमारम्भसर भमाजा, मदधिमिसमपास्तं वत्समेनागमाया ।
वचनमपि निशान्ते मेव्यते तत्प्रबाधु रयचरणविद्यास श्रोणिशोभेसाणेन ॥

॥ ११ २३ ॥

मुन्बरी स्त्री के, मुन्बरी रय के चक्र की भाँति उन निरन्तरवर्तमानों को देखते रहने के लिए उस रमणी का जो प्राण-कास होते ही वहाँ से जाती जाना चाहती है, वरन उसको सीटा नहीं रहा है ।

२—मुलकमसमुन्ममम्य भूना मदभिनबोड बभूर्बसादधुम्बि ।
तदपि न विसत्राल पत्सवायग्रह-परया विविदे विदग्धसक्या ॥ ७-४३ ॥

अधोनिष्ठित श्लोक में माघ के माघ स्पष्ट हैं । किसी स्त्री का करतल होना चाहिए फिर वह यदि पुरुष है तो उस रमणी के प्रति अवश्य ही प्रिय हो जायगा अन्यथा अनुसक्त ही समझना चाहिए ।

समभिसृत्य रसावबलवित् प्रमदया क्लृप्तमार्गविशीपया ।

अविनमन् ररात्र वृषोष्णकैरनुतया नृतया अनपावप ॥ ६१० ॥

श्री गारामास के कुछ बिज—

१—प्राध्याय श्रमश्चमनिश्चयवत्तु मिच्छासद्वयसमममकर्मगणानाम् ।

आरण्या समनस इपिरे न भू गरीचित्थं पणुयति को विक्षेपकाम ॥८१०॥

जबतों के रूप में मान ने अपनी भावना प्रकट की है। जबसे यादव रमणियों के मुख स्वास को बिना किसी रोक टोक के सूँघकर उपवन के पुष्पों की सुगन्ध को भेने की इच्छा नहीं कर रहे हैं मान कहते हैं कि यह बात ठीक ही तो है ऐसा कौन विशेष कामुक पुरुष होगा जो उचित-अनुचित का विचार ऐसे समय पर करता हो जबतों कोई नहीं करता।

२—आयाम्नायां निजयुवतौ बनारसशंक बर्हणामपरसिद्धिनीभरेण ।

प्राप्तोऽस्य व्यवदन्तं पुरो मयूर कामिन्यः व्यवदन्तार्थं नरेण ॥ ८ ११ ॥

परधारयमन इस बलाके से प्रत्यक्ष है। अपनी मुबरी मियतमा (मयूरी) के बन से सहाया था जाने पर ससंक भित होकर मयूर ने अपनी सभी-सभी पूर्णों के पीछे दूसरी मयूरी को खिना लिया। उसे ऐसा करते देखकर मादक शिबों ने पुरुष जाति मात्र में कुटिमता का विश्वास कर लिया।

नवकूकू माखणपयाधरया स्वकरावसज्जुबिराम्भरया ।

अतिसन्निभस्य वरुणस्य विष्ठा मूषमन्तरम्यदतुपार करः ॥ ६-७ ॥

रूप किरणधारी यह सूर्य (गर्भन कुकुम् के मुख्य संध्याकाशिक लालवर्ण के स्तरों से युक्त) अपनी किरणों के सम्पर्क से जगोहर भाकाय वाली (प्रपने हाव से पकड़े हुए बन्ध से मुहोभित) बरुण की विद्या धर्मात् पवित्रम (पर स्त्री) के साथ अत्यन्त समीपता (मासजि) प्राप्त कर बहुत ही लाल वर्ण का (मनुरक्त) हो गया ।

बहुत सबासोडि हाउ परदासमन की ओर संकेत है ।

वैराग्य-जीवन के सम्बन्ध में निम्न श्लोक पर्याप्त प्रकाश डालता है—

अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधतं अपुः सुखमतापकरम् ।

निरकासयद्वविमपेक्षसु वियद्यासयादपरविष्पणिका ॥ ६ १० ॥

अर्थ—परिचय दिसा कमी बेरवा में साक्षिमाधुस्त होने पर भी (धनुराय मुक्त होने पर भी) धान्त तथा सुन्दर होने के कारण) दोनों धर्मों के मुक्तवासी धरिद को बारण करने वाले धर्मतापदायी (मुक्तपर्यन्तुक्त) किरणों से चिह्न (बग बिहीन) सूर्य (धेमी) को अपने प्राकाश कपी भवन से बाहर निकाल दिया ।

एक और श्लोक है—

प्राप्तं स्वावतिरायिनीमुपेयिवन्ति संसक्तिं मृशमपिभूरिदोश्वपूतैः ।

अगिम्प- कथमपि पांमसोर्बनामां निस्तेपो बत मंवरच्छके प्रयेदे ॥ ८ ॥ ६७ ॥

धर्म—बल से जीने हुए होने के कारण (प्रेम से सरस होने के कारण) अत्यन्त विपक्ष हुए (अतिशय आसक्ति से युक्त) मनीष रक्त अर्थात् सात बरसों को (मनीष अनुप्रायी को) सुन्दरी रमणियाँ जब बारम्बार निकालने का (निरस्त करने का) मत कर रही थीं तब अत्यन्त कठिनाई से वे किसी प्रकार उनके धर्मों से वृत्त हुए ।

कहने का तात्पर्य यह है कि अत्यन्त आसक्त मनुष्य ही जब मनीषा पर सदा ही बाधे हैं तब नहीं गति होती है जो इन भीमे हुए सात बरसों की हुई । सर्ग १६ के ९१वें श्लोक में भी कहा है कि बेरवाने अपने सौन्दर्य, जीवन प्राप्ति बुद्धों से मन-भाव की भासा तक कामुक पुरवों को धारणित कर, फिर उन्हें सहसा त्याग देती हैं । कुछ लोग कहते हैं कि वे बातें कवि के स्वयं के जीवन पर भी कटित होती हैं पर ऐसा मानने का प्रतीत एक कोई सबल प्रमाण नहीं मिला है ।

धीर देखिए—

निसय मिय सततमेतविति प्रथित यदेव असज्जमसया ।

दिवसात्ययास्तपि मुक्तमहा अपसावर्जं प्रति न चोद्यमय ॥ ६-१६ ॥

सत्नी का निवास स्वाम ही कमल है यह सब कोई जानते हैं किन्तु उस कमल को भी धारण्य होते ही लक्ष्मी ने त्याग दिया (किन्तु बारम्बार की बात है कि बेरवा भी आपत्ति के समय अपने महान् उपकारी को त्याग देते ॥) ।

एक दूसरा हम धीर देखिए—

उदयमुदितदीप्तिर्भाति यः संगतो मे, पठति न वरमिन्दुः सांभ्रामेपगत्वा ।

स्मितवर्षरिव सद्यः साम्भसूर्यप्रभेति, स्फुरति विद्युदमेवा पूर्बकाष्ठोङ्गनाया

॥ ११ १२ ॥

धर्म—जो जगत्वा मेरी संगति में रहकर पूर्ण प्रकाश कुछ होकर उपवासन (अम्बुदय) को प्राप्त हुआ था वही अब अपना अर्थात् पश्चिम दिशा (पराई स्त्री) के धाम वमन करके पतित हो रहा है अर्थात् नीचे गिर रहा है, यह ठीक नहीं हुआ, मानो इस भाँति की ईर्ष्या करने वाली पूर्ब विद्याक्षी नायिका के मन्त्रहास्य की कान्ति के तुल्य उसकी निर्मलता प्राप्त कर रही है ।

इस काल में ऊँचे जराओं में व्याप्त परदारवमन के सम्बन्ध में अपनी अभ्यसनी भावना का प्रदर्शन यहां हुआ है । महाकवि की सम्पत्ति में यह मार्ग पठन का मार्ग है आपातत रमणीय पर परिणाम में भर्त्सक ।

माध काव्य में मदिग-यान के प्रसंग—

नीचे का श्लोक मद्राजि के मरिच-भाव का चोख है । उन्हें राज्य दरबार का संपर्क प्राप्त था ही और वह भी प्रतिहारों के दरबार का जो घोर मध्यमे । इस निवृत्त संघर्ष के माध कवि इन प्रसंगों का भी समीक्षार्थ कर पाये । देखिये—

परिप्लुत मधिरामं भास्करेणांशुबाणैः ।

स्तिमिरकरिषटायाः सर्वदिशुस्ततायाः ।

मधिरमिव बहुमृषा भान्ति बाभातपेन

चन्द्ररितमुभयरोभोवारितं वारिमद्यः ॥११-४२॥

धर्म—स्रष्टाएं प्रातःकाल की रूप से पुरानी मधिरा के समान नाम-नाम गर्ज के अपने दोनों किनारों के मध्य धक्का अपने जल को भानो समस्त दिशाओं में सूर्य द्वारा किरण स्वी बाणों से बाह्य धक्का कर स्त्री शक्ति के रक्त की गति बहावी हुई बोभा से रही है ।

श्री के साथ मधिरापाल का वर्णन देखिये—

मधिरजनि सधूमि पीतमैरेयरिस्तं,

कनकचक्रमेतद्रोचनासोहितेन ।

उदयदहिमरोषिग्योत्तिपाक्रान्तमन्त्र,

मधुन इव तथेवापूर्णमद्यापि भाति ॥११ ४३॥

इस श्लोक से मधिरापाल के साथ पीने वाले का समय भी वर्णित हो गया है । रात्रि के समय रमणियों द्वारा मधिरा के पी लिये जाने पर रिक्त हुए सुवर्ण के पात्र समझी समृद्धि को सूचित करते हैं । ८ वें सर्ग के ३० वें श्लोक में “मार्त्तिकं त्रियम्बकमसम्भितम्” कहकर चन्द्रो मधिरा और त्रियम्बक का सामीप्य स्त्रियों के साथ स्वीका करने की सामग्री बतला कर कवि ने अपनी मस्त त्रियम्बक का बड़ा सुन्दर परिचय दिया है । इसी सर्ग में श्लोक ४२ में पोखरी के रूप में मधिरा का सुन्दर वर्णन है । मधिरा की समृद्ध तथा जल दोनों का पुष्ट रबरी है और छे में प्रफुल्लित कमल डाल कर संस्कृत किया जाता है । इस प्रकार सुसंस्कारित मधिरा का पवि-पत्नी साथ ही सेवन करते हैं ।

और देखिये—

कस्मचित्समयन मबनीयप्रेमसीवदनपानपररय ।

स्वादिताः सकृदिवाञ्छस एव प्रप्लुत क्षणविवदापदेऽसूत् ॥ १०-२॥

उपमूर्त श्लोक में उपरंश का सुन्दर वर्णन है । मधिरापाल के समय जो ममकीन पदार्थ या चटनी धारि जाये जाती है उन्हें उपरंश कहते हैं । जो साधारण मद्य होते हैं वे रमणी के धनर पान की ही उपरंश बनाते हैं किन्तु इस श्लोक में समस्त मधिरा को ही उपरंश बना दिया गया धर्मात् एक बार मधिरा का स्वाद लेकर वह प्रेयसी के धनर-पान में ही मस्त हो गया । मधिरा के प्रभाव का मनोमोहक वर्णन नीचे की पंक्तियों में है ।

प्रातिभं तिसरदेण गतानां बक्रबाधपरचनारमणीयः ।

गूढ मूषितरहस्यसहास सुभूषां प्रवृत्ते परिहास ॥१० १२॥

मधिरापाल के साथ हास परिहास बक्रोक्तियों धारि एक समृद्ध रूप धारण कर लेता है अपनी मनोमोहक रक्ति पत बुद्धि हो जाती है । मधिरापाल कर फिर समोच करने का

बर्तुन चतुर्थ सर्ग के ६६ वें श्लोक में है । जिस समाज में रमणियाँ भी मद्यपान करती हों उस समाज में वास्तवा कितनी उद्दाम होकर जागती होगी । देखिये—

सावधेयपदमुक्कमुपेक्षा सन्तमास्यवसनामरणेषु ।

गन्तुमुत्थितमकारणत स्मद्यातयन्ति मयविभ्रममासाम् ॥१०-१६॥

मदिरापान के बर्तुन में कवि ने पूरा १० वाँ सर्ग लिखकर जो भिन्न उपस्थित क्रिय है, कामुक व्यापारों तथा मदिरापान के बर्तुनों में जनका भी घपना एक अधीक्षित है । महाकवि माध का इन परिस्थितियों में होकर पुनरुत्था स्पष्ट विधित होता है । ऐसे और विनाशमय वातावरण में कवि किसी समय विचलित हो गये हों पठित भी हो गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं, कोई ऐसा प्रसंग ही उनकी पर-व्युत्ति का कारण भी बन सकता है वह रात-दरबार में घपना अपने सभाठीनों के बीच परामुत्त हो सकते हैं जिसका परिणाम अपना स्वान छोड़ देना तक हो सकता है ।

अध-मुन में राजपराजों में मद्यपान परस्त्रीपनम मृषया जल-विहार आदि की अधिकता रहा ही करती थी । कवि राज्यामयी के इसलिये इन बातों में से एक सेते हों और इस कारण उन्हें निष्कट का अनुभव हो या प्रत्यक्ष अनुभव हो । उनके ये बर्तुन सजीव हैं मानो एक धुल्लोमी के द्वारा बिये गये हों । राज दरबारों में ऐसी चीजों के रक्त सैने वाले व्यक्ति ही जब टिक सकते हों तो माध ही इनका समबाव कैसे रह सकते थे ? जब इस रूप में तो उनके लिए चरित्रहीनता अध-का प्रयोग नहीं कर सकते । वे तो उस युग की सामान्य प्रवृत्तियाँ थीं । हो सकता है कि जाति नामों को या घर नामों को ये बातें बुरी लगी हों मद्यका स्वयं महापराज ही यदि चरित्रवान् रहे हों तो उन्हें भी यह बुरा लगा हो जैसे हर्ष चरित में बाण के लिए हम देखते हैं । महापराज हर्ष जब बाण कवि की विद्वता को देखते हैं और चरित्रहीनता को पाते हैं तो उन्हें घपनाने लगते हैं । बुनावस्ता में तो ये बातें होती हैं फिर संसर्ग पाकर विधुसित हो जाती हैं घट-दुष्टों ने महापराज को बुरा घर दिया होगा । इस बात का प्रयास महाकवि विधुपाल को पानी पल्लोच कर रहा है उस घर, अपनी और से न कहकर छात्यकि के द्वारा कितने स्पष्ट भावों में प्रकट कर रहा है, देखिये—

सहबाज्यहृत् स्वदुर्नये परदोषेक्षणादिभ्यः वक्षुपा ।

स्वगुणोच्चगिरो मुनिप्रता परवर्णप्रहरोष्यसाधक ॥१६-२६॥

परिधोषयिता न कश्चन स्वगतो यस्य गुणोर्भस्त देहिन ।

परदोषयमाभिरत्यज स्वजन सोषयितुं किसेच्छति ॥१६-२८॥

इन सारे बर्तुनों को पढ़कर इस महाकवि के सम्बन्ध में नीचे लिखी हुई बातें सात होती हैं ।

बुनावस्ता तक महाकवि माध एक कायरिक के लिए कितनी श्रु चरित्रता प्रवेधित होती थी, उससे कहीं अधिक श्रु चरित्रता तथा विनाशमय जीवन बिताने के धम्यस्त हो गये थे । राजपराजों में उद्दाम विनाश का जो वातावरण था, उसमें रहने अपने मायकी बुला विना

दिया जा। जीवन के प्रति बहुत ठोसी दृष्टि का विकास अभी तक हो नहीं पाया था। विद्वता, योग्यता और संवेदनशीलता भी पर एक सहैष्य विहीन से जीवन के साथ योग्य पाकर वे अपने सम्मिलित स्वल्प के वैशिष्ट्य को प्रस्तुत नहीं कर पाई।

उनकी वजिहा में फुटता को लिए हुए जो समाज के उद्दाम जीवन का प्रतिनिध है वह कवि के उस रूप का परिचय देती है जो प्रायः ऐसे संपन्न युवकों में मिलता है जो बोड़ी बेर के लिए विषयवाच्यों से भरी दुनियाँ को धूल बनाया चाहते हैं।

माचकवि को बीरे-बीरे जीवन का अनुभव होता है वे इस वातावरण में फँस कर भी प्रसन्न हो रहता चाहते हैं। बर्षों के साथ स्थान-स्थान पर इस प्रकार के जीवन की सुख-दोष सभी हमका ब्रमाण है। इस जीवन में उन्होंने खरीर का उपाय सर्व का भोग किया प्रत्यक्ष संभवतः उनकी संपत्ति का बड़ा भाग इस प्रकार के कार्यक्रमों में बिन्ने उस काम के सांस्कृतिक कार्यक्रम कह सकते हैं व्यय किया होगा। प्रत्यक्ष व्यय है जो धार्मिक कट हुआ उसने उन्हें उदासीन भी बना दिया होगा यही उदासीनता उनकी अवबहमिति के रूप में परिरक्षित हुई होगी। इस सम्बन्ध में 'माच की भर्षेचना' भाग में भाये प्रकाश बना जायगा।

इस उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि महाकवि माच के धामनवादा धाविषण्ड प्रतिहार भोज्य थे। उनके यहाँ पर माच कल्प स्थान पर वे किसी कारण से उनको रज्यात्मय छोड़ना पड़ा और विदेश में रहना पड़ा। विदेश में ही रहकर उन्होंने महाव्याकरण की उपाधि प्राप्त की होगी और विदेश में रहते-रहते ही उन्होंने विद्युपासबब काव्य के मध्यम भाग की रचना भी की होगी जिसके श्लोकों को काव्यगोष्ठी में सुनाने का इनको अवसर मिलता रहा। बृद्धावस्था में वे मन विहीन प्रत्यक्ष हो गये। विदेश-नामन लगभग २० या २५ वर्ष की अवस्था में हुआ होगा उस समय इनके पास संपत्ति का थोड़ा ही भाग बचा होगा। यह बचा-बुचा मन भी परदेश-भारा में समाप्त हो गया होगा। वेस्टन के बरब जब वे पुनः घर लौटे तब धार्मिक दृष्टि में इनकी अवस्था बड़ी खीन हो गई। महाकवि जीव को भी इनके जाने का संताप तो रहा ही था। जब उन्होंने इनके वापस आने के समाचार सुने तो मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए और अवसर पाते ही उन्होंने इनकी धार्मिक सहायता भी की। किन्तु यह सहायता पर्याप्त मित्र न हो सकी इसका विवरण प्रत्यक्ष दिया गया है।

युवक माच और उनकी कार्य-क्षेत्र

यह तो पहले ही बतला दिया गया है कि महाकवि का स्वास्थ्य तो बहुत ही सुन्दर रूप में निरुत्ता होगा क्योंकि उनके पिता दयक के पास बहुत बल था। घर पर राजनी ठाठ बाट तो पूर्वकाल से ही होने। पितामह सुप्रमदेन राजा बर्षसाठ के सर्वाधिकारी (मंत्री) रहते। उनके घर में जिस बात का समाज था। सामन-नामन सुन्दर रहा होगा। कुछ बड़े होने पर गिरारम हुआ ही होया और विद्यार्थी-जीवन भी बितना बेह उत समय के योग्य निरुत्ता धार्मिक था उससे भी प्रच्छन्न निरुत्ता होया। फिर गुरु के घर-कमलों में बैठकर उन्होंने विद्योपासन किया प्रत्यक्ष जीव से विद्यालय के ये स्नातक रहे क्या-क्या पढ़ा लिखी प्रत्यक्ष तब पढ़ते रहे जब विवाह किया प्रादि प्रादि बातों के सम्बन्ध में व्यो-व्यो इस काल

का इतिहास लिखा जाने लगेगा त्यों-त्यों प्रकाश पड़ता जायगा । नास्तिक बसभी उन्मयिनी और भीमपाल माघ कवि के समय में प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र थे । (देखिये—ही स्मोरी ईट गुजर देय हेय—माघ ३)

कुछ भी हो वे कहीं भी पड़े हों, उनका पाश्चित्य प्रसुप्त था । उनका ज्ञान व्यापक था । व्याकरण, पुराण और कायसास्त्र पर तो उनका अधिकार था ही इनके अधिकृत प्रायुर्वेद, ज्योतिष, तर्क, दर्शन भीमसा तथा वेद और वैशाख के भी थे ज्ञाता थे । धर्म शास्त्र तथा यज्ञ शास्त्र का उनको पर्याप्त ज्ञान था । इन सब विद्याओं को प्राप्त कर मैने पर ही इन्होंने इहलोक जीवन में प्रवेश किया होगा ।

इस प्रकार की सज्ज विद्याओं को प्राप्त तथा समृद्ध एवं उज्ज्व कुलोत्पन्न माघ पंडित को इस काल के प्रसिद्ध महाराज बराहमिहिर जोष ने अपने बड़ी उज्ज्व पद देकर सम्मानित किया । अपने कार्य को उन्होंने बड़ी शोभता तथा समता के साथ सम्पन्न किया । महाराज सन पर बहुत प्रसन्न थे । वे उनको अपना अधीनस्थ न मानकर एक शोभ्य साथी मानते थे और उनके साथ मित्रता का व्यवहार करते थे ।

युवक माघ राज्य के राजा बर पर कार्य करते हुए अपनी विद्वता से नागरिकों को प्रसन्न रखते थे । राजा ही विद्वद्गोष्ठियों में भी भाग लेते रहते थे । इनके पाश्चित्य की उस समय के विद्वानों में शक नहीं हुई थी । हिन्दू बौद्ध और जैन तीनों सम्प्रदायों के विद्वानों तथा साधुओं से इनका सहानुभूतिपूर्वक परिचय था ।

कवि की बहुजता वाले प्रकरण में पाठकों को इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार से ज्ञात हो जायगा ।

उन दिनों शास्त्रार्थ हुआ ही करते थे विषयों हार जाने वाले व्यक्ति को एक निश्चित अवधि तक के लिए देश त्यागना पड़ता था" यदि देश में रहता ही उन्हें अभीष्ट होता तो वह विषयी व्यक्ति का लेवक बनकर ही रह सकता था ऐसी प्रथा सुनी जाती है ।

पाठकों को ऐसे श्लोक भी देखने को अवसर मिलेंगे जिनमें पराजय भावना को साथ ही साथ कह दी गई है । एक श्लोक में लेवक भावना का भी स्पष्ट उल्लेख है । इससे ज्ञात होता है कि महाकवि का कार्यक्षेत्र साहित्य में न केवल अध्ययन करना ही था अपितु जनता के समक्ष इन शास्त्रार्थों के रूप में अपना पाश्चित्य प्रदर्शन भी था । बड़े-बड़े धनूयान करवाकर पौराणिक धर्म की स्थापना करना इनका मुख्य उद्देश्य रहा होगा शास्त्रार्थों में भी पौराणिक धर्म का मर्मन करना ही प्रिय रहा होगा । इसी प्रकार के किसी शास्त्रार्थ में वे पराजित हुए हैं और उन्हें एक धर्म के पालन के रूप में अपना मर्म छोड़ना पड़ा हो, ऐसी भी एक मायता है । इसका धर्म यह भी निकलता है कि केवल शरित-मत शेष ही उनके स्थाय द्रोहने का कारण नहीं था ।

उनके ईशिक जीवन का परिचय तो नीचे लिखे श्लोक से मिलता है —

साणधमितबिबुद्धा-कल्पमन्त्र-प्रयोगानुदमिमहति राजये वाक्यबद्धविवाहे ।

महानमपरराजप्राप्तबुद्धिप्रसादा-कथय इव महीपादिभक्त्यत्यर्थजातम् ॥१११॥

धर्म—शायं घर ध्वन करके फिर गुरुन्त ही उठे हुए राजा लोग कवियों की भाँति रात्रि के पिछले प्रहर में बुद्धि के अत्यन्त निर्मल हो जाने पर समुद्र के समान (एक घोर पोहों प्रावि से बूझी घोर रस भाववि से) गम्भीर एवं काव्य के समान कटिनाई से प्रवेश करने योग्य राज्य के सम्बन्ध में साम राज प्रावि प्रयोर्गों का निर्वाचन कर कवि-मन में धर्म प्रहण घोर साधु उर्ध्वों का निर्वाचन कर कुप्राप्य निर्वर्ण अर्थात् धर्म धर्म घोर काम (बाध्य मन्त्र घोर ध्याय) की चिन्ता कर रहे हैं।

उपवृत्त के अनुसार महाकवि अपनी कुवाचस्था में बाह्य मुहूर्त में उठकर कविता बनाया करते थे क्योंकि उस समय चित्त की एकाग्रता रहती है बाहु भी मन्त्र-मन्त्र रूप में बहती हुई मस्तिष्क-शक्ति को घोर भी अधिक जागृत रखती है। प्रकृति की द्रष्टा उस समय किसी सुन्दर होती है। किसी भी कार्य को करने की अपूर्व क्षमता होती है। जिस बात को हम सोच नहीं सकते वह बात उस समय में घटि बीज ही समझ में आ जाती है अतः कवि भाग ने भी कविता करने का वह समय उपयुक्त सोचा।

सुवर्णय होने तक स्नान से विवृत्त होकर फिर सन्ध्या पर बैठ जाते हैं। मध्याह्न और सायंकाल में भी सन्ध्या इस भाँति विकास सन्ध्या करते हैं। क्योंकि प्रथम सर्व में जहाँ पर हिरण्यकशिपु की बात को नाकर रख रहे हैं वहाँ पर कवि विकास सन्ध्या वाली बात भी किसी भी रूप में नाकर रख बैठे हैं। हम गुरुन्त समझ जाते हैं वे अपने सम्बन्ध में इस तरह बताते जा रहे हैं। देखिये—

स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां महर्ष्याग्रविश्वियदाधयः श्रिय ।

अकारि तस्मै मुकुटोपलसस्त्रसरकरेस्त्रिसन्ध्यं त्रिदिशींदिसे नम ॥१४६॥

उपवृत्त में तीनों सन्ध्या में नमस्कार करने की बात आई है। सन्ध्या करने के परचाह हवन भी जो ब्राह्मण का कर्म है, करते हैं। देखिये—११वें का १४वां श्लोक तथा "तत्र नित्य विहितोपहृतिषु" (देखिये सर्ग १४ श्लोक ३०) फिर शास्त्र का अभ्यास दरबार से लौटने के परचाह करते हैं। राज्याभय में हमने राजा क सिंहासन पर बैठकर साम्राज्य प्राचीर्वाद, मुखरा प्रादि लेने की बात कही है। महाकवि भी उस समय दरबार में प्राचीर्वाद देने अवश्य जाते हैं। अभ्यास ऐसा चित्र रखने में वे कितने समर्थ होते? दरबार से लौटने पर जहाँ वे अपना एक-दो घण्टे का उष्ण पर बाला भी कार्य भी देख लेते हैं। फिर घर पर प्राकर कुछ समय के लिए अध्ययन अभ्यास भी जमाते रहे हैं। निम्न शास्त्राभ्यास बना रहे। देखिये वे क्या कहते हैं —

प्रमादभावां मनसः शास्त्रमिवास्त्रमग्रपाणौ ॥२० ३५॥

यह भाव की शास्त्राभ्यासधीमता का प्रमाण है।

संप्रदायविगमाहुषेयुषीरेष माधमविनाधिनिग्रहः ।

स्मर्तुमप्रतिहतस्मृतिः धृतीवत्त इत्यमवदधिगोत्रजः ॥१४-३६॥

उपवृत्त श्लोक में उपवाङ्गी भीकृष्ण ने क्रमपूर्वक अध्ययन अभ्यास के न होने से विनष्ट होने वाली स्मृतियों का स्मरण रखने के लिए (विशेष के अध्ययन अभ्यास के प्रवर्तन

के लिए) धनि के योग में दत्त धर्मात् ब्रह्माभेन नाम से क्या प्रवृत्त होता है मानो इनके पिता दत्त ही यह कार्य करते थे और इसी बात को महाकवि माघ ने भी लिखा होगा। दत्त श्लोक में पिता का नाम "दत्त" स्पष्ट है और धनि यौन भी। पिता का नाम दत्तक लिखा रहे है जो पूरा नाम है क्योंकि महाकवि माघ ने भी अपने को दत्तक पुत्र लिखा है। फिर भी धाने नाम का प्रचार अधिक रहा होगा प्रभावक चरित में भी सिद्धार्थ के प्रवृत्त के सम्बन्ध में लिखा है —

धास्योदत्त स्फुरद्वत्ता द्वितीयस्य शुभ कर ॥१२॥

दत्तविलोभुजीविभ्यो दत्तचित्त सुधर्मयी ।

अनादिक चरित की "दत्त" वाली बात और श्लोक में इस रूप में दत्ताभय को ब्रह्मचर्यी प्रवृत्तों में लाकर अपने पिता, अपने योग और अभ्यसन-अभ्यासन की बात का मान कवि ने वास्तव में प्रदर्शन किया है। इसके और सिद्ध हो गया है कि माघ धनि यौन में उत्पन्न हुए जाह्यण के। वास्तु माघ कवि के घर घर कुछ ज्ञान भी कवि के पिता के समय से ही रहते होंगे। पिताजी ने शास्त्राभ्यास इस रूप में रखा तो पुत्र ने भी ऐसा ही किया होगा धनवा प्रभावशोकन में यह समय बताया होगा।

अम्माहूकाल में वे योगन के वरणात् कुछ विभाग करके अपने राज-रद सम्बन्धी कार्य का सम्पादन करने के लिए राज-प्रासाद जाते होंगे सम्पदा घर पर रह कर ही समय करते होंगे फिर सीधे पहर घर या पाँच बजे कल्याणोद्गी का ध्यान सृष्टे होंगे। तदनन्तर धर्मकातिक नित्यकर्म, संन्या-पूजादि करके योगनारि से निवृत्त हो अपने रम-महल के अन्त-पुर में जाकर विनोदमयी बातों में, काव्यों में व जीवाणों में ललित रहते होंगे। इन लीलाओं के बिना तो इतने धाने हैं कि जिनकी सीमा नहीं। धन ऐसे भी चित्र बेसिधे जिनमें माघ का घर उनकी देव-पूजा उनकी रानी की देव-पूजा आदि बातों की जानकारी मिलेगी।

धमति परिपतन्त्यो जामबातायनेभ्यस्तस्मत्पुनःप्राप्तो मंदिराम्यन्तरेषु ।

प्रणयिषु वनितानां प्राद्विचरन्तु गन्तु कृपितमदनमुपश्रोतपुनरावलीलायाम् ।

(११२०)

धर्म—अनेकों की वनितों से होकर कमरों के भीतर प्रवेश होने वाली बाहर की फिरलों प्रातःकाल बाहर जाने के इच्छुक वनितियों के प्रियतमों के ऊपर कुछ कामदेव डाटा सेके मये एवं तेज से आश्रयमान बातों की घोषाधारण कर रही है।

उपश्रुत श्लोक के आधार पर सात होता है कि माघ कवि का घर विद्यालय होगा जिसमें अन्त-पुर के प्रकोष्ठों के अगल होंगे और इन अनेकों में छोटी-छोटी ऐसी वनितियाँ होंगी जिनमें से किसी बाहर की हलचल को देख सकें किन्तु बाहर जाने भीतर बैठे हुए व्यक्ति को न देख सकें। ऐसे घर में बहकर वे विद्याओं तथा कविताओं के साथ धारण-वर्षा तथा कवि मोहनों का ध्यान प्राप्त करते थे।

इनका घर क्या था वह तो एक राज-प्रासाद या जिसमें मरफत मणि कांचन तथा

पद्म मुन्दर व मूल्यावान् प्रस्तर-खंडों व भातुषों से जटित प्रांगण थे । विद्यालयाव कक्ष तथा विद्याभवन भोजनालय काव्य-शास्त्र-संगीत-विद्यादि विद्याओं के लिए भी पुष्कल रूप से व मिराजे कक्ष थे । माघ काव्य को देख लेने पर विश्वास होता है कि वास्तव में माघ कवि का विद्याभवन-स्नान एक घंटा मुन्दर राजमन्त्रण सा होगा जिसमें विभिन्न भाँति के पद्यों एक घोर कतरन कर रहे होंगे तो बूझती घोर पशु-खासा में पशु भी बँधे रहते होंगे । बोड़े ऊँट हाथी बैल आदि के या नहीं वह तो निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है किन्तु हाँ इनके स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण करने किया है जिसका बर्तन स्वभावोक्तिओं में हमने कर दिया है । हो सकता है राज-कर्मचारी तो माघ के ही घट-भित्तप्रति बोड़ों ऊँटों हाथियों व बैलों को बँधे उल्टे भागते घोंटे चले आदि क्लेशों में अन्य व्यक्तियों की भाँति नहीं किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से प्रति वस्तु को देखने का उनका स्वभाव होना । उन्होंने उन पशुओं को देखा होगा । वे संगीत-प्रेमी भी रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि वादन की जानकारी वाली बातें उनसे बिछनाई हैं जिनका बर्तन हमने उनकी बहुज्ञता में कर दिया है । पाठक उन बातों को वहाँ पर देखें । यहाँ केवल इतना सा सिद्ध होना पर्याप्त होना कि पुष्कल माघ की सधि प्रायः सभी विद्याओं को प्राप्त कर कवि की व्यावहारिकता को छीनने की धीर प्रत्येक वस्तु को उपेक्षित रूप में न बाकर व्यापकपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि के साथ देखने की धीर भी ।

विद्वान् कहते हैं कि माघ कवि पंडित वास्तुकता विद्यारण्य संगीतशास्त्र में निपुण, कामशास्त्र के ज्ञाता आयुर्वेद के पारंगत ज्योतिष के पंडित काव्यानों को जानने वाले समुदाय पर सैद्धांतिक रूप में मनन करने वाले महा वैराग्यपूर्ण पौरुषिक पंडित थे और कवि थे किन्तु हमारा विचार है कि कवि ने पुरछ धीर व्याकरण पर तो अवश्य ही प्राचार्यत्व प्राप्त किया होगा किन्तु अन्य बातों का ज्ञान उनको शास्त्राभ्यासादि से हुआ होगा धीर बूझती बातें हमारे पाठक के व्यवहार की भी जिनकी उन्होंने सूक्ष्म दृष्टि से देखा था । वास्तु, शिल्पशास्त्र धीर कामकुशा में नायिका जेठ आदि को उन शास्त्रों की कसौटी पर कसना व्यर्थ है । वे बातें तो जहाँ उन्होंने देखीं या बोली बँधी ही तिथी भी बँदी हैं । वह अवश्य कहना पड़ेगा कि उनका जीवन बहुत ही नियमबद्ध रहा होगा जैसा हमने ऊपर (उत्पान से अवन तक के विषय में) लिखा है ।

उनके बुबाबस्ता के कार्य संक्षेप में इस प्रकार लिखे जा सकते हैं ।

- (१) वैदिक कृत्यों का विधिवत् निष्ठापूर्वक सम्पादन ।
- (२) राज्यकार्य का सचित रीति से सम्पादन ।
- (३) नियमपूर्वक स्वाध्याय तथा काव्य रचना ।
- (४) विद्वानों तथा कवियों के साथ शास्त्र वर्ण एवं काव्यबोद्धियों में भाग लेना ।
- (५) राजसभाओं में अपने पांडित्य का प्रदर्शन ।
- (६) मौखिक जीवन में यथावसर ध्यानश्लेषणीय ।
- (७) देहाटन धीर स्नान-स्नान पर विद्वानों से शास्त्रार्थ आदि ।

उस काल के बहुत राजासमी विद्वानों की जीवनदर्पण प्रायः इसी प्रकार की होती थी ।

माध की घृणावस्था

प्रबन्धचिन्तामणि में प्योटिविर्मो ने दस्तक का कष्ट बताया कि माध बीमवशात् हीन होकर फिर शरित्त हो जायगा और इसी वृत्ति में पुनः हीन होकर वह पंचत्व को प्राप्त होगा। दस्तक ने बताया कि मनुष्य की आयु १०० वर्ष की होती है पर १९००० वर्षों को दकर उनमें इतना वन बाँटों में भर भर कर रख दिया कि आयुपूर्वक समाप्त भी न हो तो फिर वह निर्धन रूप में कैसे मर सकेगा। प्रभावक चरित्त इस बात के लिए मौन है किन्तु बोध प्रबन्ध में इतना आस्तेय धनवत् है कि माध पंथित परित्रा का आश्रय हुआ राजा भोज के निकट आसन्न बना वहाँ से माध पत्नी को प्रभुत वन प्राप्त हुआ किन्तु मार्ग में ही बाघकों की भीड़ मिल जाने से जो कुछ भोज से प्राप्त हुआ था वह सब बाघकों के निमित्त खप गया। माध के निकट पहुँचते-पहुँचते कुछ भी खप नहीं रहा। इस पर माध के आश्रय में एक बात यह भी है कि इस प्रकार के समय में हम आश्रयों से समुद्धान बन आदि कौन करारेंगे। मेरे मुख से शरित्त का के मारे विवेक बाधक राज इन बाघकों के धाये निकले इससे पूर्व ही मेरे प्राणों, गुण सीमा ही निकल पड़े।

माध की घृणावस्था तो बड़ी विविधताओं से संकुल है किन्तु सब जीवन में वह बीमवशात् हीन रहता है। बीमवशात् प्रभुत्व के दिनों में कौन ऐसा है जो दुर्धन्यता न रहा हो। माध का जीवन भी जब सभी क्षेत्रों को छूटा रहा है। जोय के समय जोय राय के समय राय विद्याओं के सम्पर्क में ज्ञान-वर्धन कियाकाश्यों के समय विविध चर्चा विचार के समय ईश्वरवर्द्धि, वे सब उनके जीवन में मिलेगी।

उनका प्रभितमकाम जैसा कि कई बार कहा गया है सुखमय नहीं होता। धर्म कष्ट

१. तमपतः यतः के आचार्य माध स्वयं कौन होंगे आम्नाय विविधपूर्वक उद्गता व होता के नाम लिखकर भविष्यकारण की जानकारी कैसे प्रकट करते? देखिये—सप्तमेदवरकमिता स्वरं साम सामविबर्धयमुत्तरी। तमपुनत गिराव सुख-पुण्यपुण्यपुण्यमयीयत ॥१४ २१॥

आम्नायामनपुण्यमुत्तरीं भविष्यकारणविबोद्धुवमयीयत ।

आम्नायामनपुण्यमुत्तरीं भविष्यकारणविबोद्धुवमयीयत ॥१४ २०॥

संजयाम वधतोः वरपतां वुरमिषफलयोः विद्यां प्रति ।

आम्नायामनपुण्यमुत्तरीं भविष्यकारणविबोद्धुवमयीयत ॥१४ २१॥

धीरे बीमारों दोनों को लेकर ही वे मरे ।^१ भोज जैसे धामयदाता भी एकही मरते समय की वेदना को नहीं बचा सके ।^२

बुढ़ावस्था के प्रथम चरण में इन्होंने विधुपातनच महाकाव्य को सम्पूर्ण किया । भगवद्भक्ति का जो स्वल्प इसमें प्रस्तुति हुआ है वह उसके जीवन भर के ज्ञान और अनुभवों के निष्पन्न के रूप में है । प्रसंगवश यहाँ यह कह देना उचित प्रतीत होता है कि विधुपातनच की रचना तीन कासों में विभक्त की जा सकती है—

(१) बुढ़ावस्था के पारम्भिकाल में प्रथम सर्गों की रचना ।

(२) बुढ़ावस्था में तीसरे और आठवें सर्ग तक की रचना ।

(३) प्रीति एवं बुढ़ावस्था में शेष भाग की रचना ।

बुढ़ावस्था की रचनाएँ प्रायः स्फुट रूप में थी जिनको इन्होंने अन्तिम समय से कुछ पूर्व ही कम बढ़ता देकर महाकाव्य का रस बना दिया ।

१ प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार इन्होंने पूरी १०० वर्ष की आयु तो करली किन्तु क्याचित् इससे भी अधिक १३९ वर्ष की इतनी आयु बाई हो । प्योतिब सिद्धान्तानुसार १२ वर्ष बाला पूर्णायु होता है । माय इससे भी ऊपर है ।

बुरातन प्रबन्ध संग्रह में उनके ८४ वष तक जीवित रहने के सम्बन्ध में उक्ति मिलता है ।

२ ईश के प्रतिपन्न हो जाने पर अनेक प्रकार के साधन भी निष्फल हो जाते हैं । गिरते हुए धर्म के प्रबलन के लिए उसकी एक सहस्र किरणें भी कुछ नहीं कर सकती ।

माघ की सम्पत्ति

महाकवि माघ की मृत्यु के पश्चात् उनके घर का नाम रखने वाला उनकी एकमात्र पुत्री के प्रतिरिक्त कोई न था। विधुपालनन महाकाव्य को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उनके एक से अधिक सम्पत्ति हुई थी। यही पुत्रियाँ अधिक हुई हों फिर भी एक पुत्र भी था। इस महाकाव्य में मातृ सीमा के कुछ प्रसंग आये हैं जिनसे अमर के अनुमान को पुष्टि मिलती है। वे प्रसंग निम्नलिखित हैं—

उदयशिक्षरिभ्यु गन्नागलेज्ज्वेय रिङ्गलन्
सकमलसुखहास बीजित पद्मिनीभिः ।
विततमृदुकराग्र शम्भुमन्त्रा ययोभिः ।
परिपतति विभोम्बु हेमया बाससूर्य ॥११४७॥

अर्थ—यह बात यदि विन्ध्यावन की बोटियों की प्रांथल में घूमता हुआ पद्मिनीयों द्वारा कमल की मुख के हास्य क छात्र देखा जाता हुआ मानो पक्षियों के कलरव में बुलाती हुई अपनी माता (प्राची विंध्यीय आकाश) की पोंद में अपने कोमल कटों के प्रबोध को फैलाता हुआ सीमापूर्वक हँसते झोलते जाता आ रहा है।

कैसा रूपक बाँधा है। जानक भी इसी भाँति घर के धावन में छुटनों के बस हजर उबर बन हँसता हुआ आगता है तब उसकी माता बार-बार उसको पुकार-पुकार कर बुलाती है घोर फिर बासिक अपने कोमल हाथों को जब आगे बढ़ाता है तब माता उसको पोंद में कै लेती है।

इस दृश्य को देखते हुए महाकवि माघ के बाड़े पुत्र ही बाड़े पुत्री कोई न कोई अवश्य होना चाहिए जिसकी मातृ सीमा का अनुभव उसने घर में रहते हुए अवश्य किया है जिसका सबीब विवरण उपर्युक्त है।

इसने अपनी पुत्री का विवाह किया होगा जिसका सम्बन्ध देस सीमिबे—

रमाङ्गमर्मेभिर्मय बराम मस्या पितेन प्रतिपादिताया ।

प्रेम्णोपवण्ट मुहुरङ्कमाजो रत्नावसोरम्बुधिरजबन्ध ॥३३६॥

अर्थ—पिता की भाँति समुद्र वेष्ट जगवान् की कृष्ण को (परा में जगतावा को) गुरम्त दी गई अपने शोक में (समीप में या मोद में) निरावमान उस द्वारनापुष्टि के कण्ठ में (समीप में) स्नेहवध बारम्बार रत्नों की पालिका भारों घोर से बाँध देता था।

बामाता को अपनी पुत्री का पिता से देता है तब पिता अपनी कन्या के कष्ट में प्रेम बख रत्नावली बाँधता है । इस रूप में यह कन्यादान प्रथा का निर्वाह हुआ । इसके सामने ही कदाचित् बामाता का बेहान्त भी हो गया हो और उसी के साथ इसकी पुत्री सतीत्व बर्मे का पालन करते हुए सती हो गई हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं है । माय के कन्या की इसका प्रमाण पाठकों के सम्मुख उसी बात पूर्व वाले पुन के पुन्य देते हुए इसके सती होने का प्रमाण रखने देखिये—

अस्तुबलजराजीमुख्यहस्ताप्रपादा बहुसमभुपमालाकज्जलेन्वीवरास्ती

अनुपतति विरासै पत्रिणां व्याहुरस्ती रजनिमचिरबाता पूर्वसंध्या सुतेव ॥

। ११४० ॥

अर्थ—माय कन्यों की पंक्ति कभी सुन्दर हूँ-जिन्हों एवं पत्तलों से युक्त अनेक अमर पंक्तिवती कजरस से सुशोभित नीले कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली तथा पक्षियों के कमल में बाँध करती यह प्रभात काल की संख्या बोझें दिनों की कन्या की प्रति अपनी माता रजनी के पीछे-पीछे बीड़ने लगी है ।

ईसा सुन्दर एक छोटी-सी बालिका का यह यथावत् चित्रण है और अपमा भी तो बेसी ही सुन्दर बन पड़ी है । यह है धारमकचा का पिता और यह है पिता का माहा जिसने सप्नों और भावों में एक चित्रकार की भाँति सुन्दर रंगीन हरम उपस्थित किया है । एक पुत्री का पिता जो मुक्तमोनी हो जिसने घर में वासक बालिकाओं के होने बिलने बोलने के हरम देने हों वह ही ऐसे रूप चित्र उपस्थित कर सकता है । इससे तो इस बात की पूर्ण पुष्टि होती है कि उनके बालिका भी भी और इससे ऊपर के स्तोक के साथ इस बात की पुष्टि कर रहे हैं कि पुत्री का विवाह भी हुआ था । एक और कन्या के विवाह के पश्चात् पति के घर पर जाने का हस्य देखिये—

अपमंजमक परिवर्तनोचितावचसिता पुर पतिभूपतुमात्मजा ।

अनुतोदितीव वरुणेन पत्रिणां विस्तेन वरससतयैष निम्नमा ॥ ४४७ ॥

ईसा कलशोत्पादक हरम है । अपिकम्प का हस्य उपस्थित हो रहा है । माय पक्षियों के कलरव के रूप में कल कर रहे हैं । माय बामाता की मृत्यु व पुत्री के सती हो जाने का हस्य भी देख लीजिये—

अमितिग्मरश्मिचिरमाचिरमादवधानास्निग्धमनिमेषतया ।

विमसग्मभुवतभुलाभुमस न्यमिमिलदम्भनयनं नसिनी ॥ ११ ॥

अर्थ—कमलिनी सूर्य के आकाश मण्डल में सुजीभित होने पर चिरकाल तक उनकी ओर एक टक निहाण्टी रही । किन्तु सूर्य के अस्त हो जाने पर घटने पतपत बिज होकर अमर समूह कड़ी धाम्नु बहाते हुए अपने कमल नेत्रों को बन्द कर लिये ।

बामाता ने भी एक अगली धाम्नु प्राप्त की । वह मुवावस्था का पूर्ण उपभोग कर ६०

मा १५ बदे की प्रवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ तब कमलिनी कपी स्त्री पति दुसरी प्रवस्था में उसी के पीछे रोटी-रोटी अन्ततोयत्वा मर गई ।

बृतरा हरम पूर्णरूप में सती हो जाने का है, देखिये—

दक्षिधाम्नि भतरि भूधविमला परलोचमम्पुपयते विविधु ।

उपलनं स्थिप कथमिवेतरया सुसभाञ्ज्यग्रन्मनि स एव पति ॥ ६ १३ ॥

अर्थ—दक्षिणदिशाम पति सूर्य के परलोक चल जाने पर अर्थात् अस्त हो जाने पर उसकी निर्मल प्रभावधारी कान्तिया अर्थात् किरणें धामि में प्रविष्ट हो पयी अम्बका (धमि में प्रविष्ट न होने अर्थात् सती न होने पर) बृतरा अम्ब में बही सूर्य पति रूप में उन्हें किस प्रकार निभ सकता था ।

सिद्धपातनक महाकव्य में जो वृद्धावस्था में समाप्त किया हुआ प्रतीत हो रहा है ऐसा संकेत नहीं मिलता जिससे पता चले कि कवि के कोई बच्चा (पुत्र) जीवित रहा था और वह उनकी वृद्धावस्था का एक मास सहाय था ।

प्रबन्ध विस्तारविष्ट प्रभावक चरित व भोज प्रबन्ध भी इस घोर बीम हैं । हाँ भोज प्रबन्ध तथा प्रबन्ध विस्तारविष्ट इस बात की ओर अवश्य संकेत कर रहे हैं कि माघ ने अपनी बर्मे पत्नी को राजा भोज के निकट एक श्लोक 'कुमुदवनमपधि' अथवा सिद्धपातनक काव्य ही लेकर जेजा और अपनी स्वमीय रत्ना का भी अर्पण प्रतिहार द्वारा करवाया । राजा भोज ने श्लोक को देखते ही माघ पत्नी को पर्याप्त बन लेकर जेज दिया और बृतरा प्रत्य माघ से साक्षात्कार करने का वचन दिया । माघ पत्नी बन लेकर गई, किन्तु मार्ग में ही माघकों से माघ कवि के राज की प्रशंसा सुनकर सब बन उन्हीं को दे दिया ।

अतः निष्कर्ष-अन्त में हम यह कह सकते हैं कि अन्तिम समय में महत्कर्म को उद्धार देने व बंध की रक्षा करने वाली कोई भी संतति जीवित न रही ।

माघ की धर्म-व्रतमा

चिमुपासक ब्रह्म काष्म का पाठक निश्चित रूप से यह नहीं बता सकता कि महाकवि माघ का धर्म क्या था वे किसके उपासक रहे होंगे और उनकी धार्मिक भावना किस प्रकार की रही होगी ? किसी निश्चय पर न पहुँच सकने के कारण नीचे लिखे हैं ।

एक और चिमुपासक ब्रह्म काष्म में उन्होंने विष्णु के अवतार की प्रशंसा करवा स्तुति करके यह प्रमाणित किया है कि वे विष्णु के पूर्व भक्त थे तो दूसरी ओर उनके पूर्व-पासक होने का संकेत भी मिलता है । पूर्व मन्दिर के पुष्पमाम की उन्होंने प्राप्त किया था । इसी तरह स्वान-स्नान पर वे बीस वर्ष के विद्वानों में अपनी पूर्ण श्रद्धा प्रकट करते हैं । साब ही प्रति धर्म के धर्म में श्री" शब्द का प्रयोग और श्रीमान नगर की भाव्यभी श्रीनेममाता की पूजा से देशी के उपासक भी प्रतीत होते हैं और अन्त्येष्टि के गाना क्यों में निहित करके वे शिव भक्त के रूप में भी हमारे सम्मुख आते हैं । नीचे लिखे उद्धरणों से इस बात की पुष्टि होती है ।

१—विष्णु भक्ति सम्बन्धी उद्धरण—

धियं पतिं श्रीमतिं सासितुं अयम्ब्रह्मान्नेममासो बसुदेवसदमनि ।

वसन् दवर्षावितरस्तम्भराद्धिरभ्यगर्भायसुर्वर्गनिर्हृतिः ॥ १-१ ॥

तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपुष्पं सपर्यया साधु स पर्यपूजितम् ।

गृहानुपेतुं प्रणमादभीप्सवो भवन्ति नापुष्पकृता मनीषिणः ॥ १-१४ ॥

उवाचितारं निमृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कवचन ।

बहिर्विकारं प्रकृतेः पुष्पम्बिन्दुं पुरातनं स्त्रीं पुष्पं पुराविद्य ॥ १-३३ ॥

निवेदयामासिध्वं हेमयोद्धतं फणामुतांछादनमेकमोकसं ।

अगत्यर्पकस्वपतिस्त्वभूत्तर्कैरहोदयरस्तम्भशिरःशुभ्रतसम् ॥ १-३४ ॥

उपपुंक्त रत्नों में विष्णु के साथ पुष्प का और पुण्य पुष्पत्व का निर्देश है । ऐसा करके महाकवि ने अपना विष्णु (अवतार रूप में कृष्ण) के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट की है । अन्त्येष्टि की कई स्तुतियों पर विष्णु के अवतारों का बलुन हुआ है । नारद के हाथ की बई स्तुति के व्याख्य से माघ ने अपना विष्णु के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है ।

सूर्य मस्ति-मावना का आधार—

प्रबन्ध शीघ्र प्रबन्ध और प्रबन्ध विस्तारयुक्त में माय के सूर्य मस्त होने के सम्बन्ध में भी संकेत प्राप्त होते हैं। यों विष्णुवासव महाकव्य में इस प्रकार का संकेत कहीं भी प्राप्त नहीं होता तथापि जैसा कि सर्व विदित है शास्त्रपीथ ब्राह्मण सूक्तः सूर्यपाठक रहे हैं सूर्यो पातना जनकी कुल-परिपाटी के रूप में रही है और वहाँ तक माय का सम्बन्ध है प्रबन्ध-विस्तारयुक्त के प्रमाणी के अनुसार राजा मोक्ष द्वारा महाकवि माय को (व्यवस्थामी) सूर्य मस्ति का पुण्य काम प्राप्त हुआ जो महाकवि के सूर्योपासक होने का संकेत है।

बौद्ध विद्वान्नों के प्रति आस्था दिखाने वाले चित्र—

सर्वकार्यशरीरेषु भुवत्वाह्वयस्कन्धपञ्चकम् ।

सौमत्तानामिमारमाभ्यो नास्ति मनो महीमृताम् ॥ २ २८ ॥

उपकुंभ में एक बौद्ध छरीर में आस्था नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं कष्टा। वह छरीर को पाँच स्कन्धों में पुनः पातता है १—कर्म २—वैदना, ३—विज्ञान ४—संज्ञा ५—संस्कार।

इस स्लोक से महाकवि माय का बौद्ध धर्म से प्रभावित होना स्पष्ट सिद्ध होता है। क्यों न हो, उनके पितामह सुप्रमदेव के नाम बुद्ध के उपदेश की भाँति मानकर राजा वरमंसाय इन उपदेशों को दिया किसी संकोच के स्वीकार करते हैं। देखिये—

कालेमित्थं सधम्ममुदकपण्यं तथामतस्स्येव जनं सञ्चेता,

विनातुरोवात् स्वहितेच्छमैव महीपतिर्यस्य बन्धनकार ॥ २ ॥

(कवि बन्ध बर्तन)

उपकुंभ स्लोकों से प्रतीत हो रहा है कि माय उस युग की देव है जब बौद्ध धर्म कुल तो हो रहा था किन्तु इस धर्म को मानने के प्रति कुछ अनुष्णों की आस्था प्रबल थी। इनने वह बात प्रभावक शक्ति में विद्वान् के प्रबन्ध में अवश्य देखी है कि माय कवि का भरोसा भाई सुनकर का पुनः विद्वान् जब जैन हो जाता है उस समय उसके हृदय में जैन धर्म को ग्रहण करने के प्रति इतनी उत्कण्ठ नहीं थी जिसना मौस्तुत्य उसने बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के लिए बताया। यह मावना क्यों? क्योंकि उसके पितामह के नाम उस धर्म के प्रति अधिक होने वन्हीं संस्कारों का प्रभाव 'सिद्ध' पर होगा स्वाभाविक था। यही बात माय के लिए भी कही जा सकती है। देखिए, एक स्थान पर हरि (पी कृष्ण) को बुद्ध भयवान् ही बता दिया है और विष्णुवास पत्नीय राजाओं को काम की सेवा।

इति तत्तथा विद्वत्तत्पमममत्तद्विभिन्नं भेदसम् ।

मारवममिभ भयंकरतां हरिभोयितस्त्वमभि राजमहसम् ॥ १५ १८ ॥

धर्म—इस भाँति उस समय लोग थे भीषण ब्राह्मण भावे के सब विष्णुवास पक्ष के राजा काशदेव की सेवा की भाँति विकार रहित बिना नाम भयवान् की कृष्ण को बोधितस्व के सम्मुख अत्यन्त कोषित हो गये।

माघ की धर्म-चतना

विद्युत्पात जब काम्य का पाठक निश्चित रूप से यह नहीं बता सकता कि महाकवि माघ का धर्म क्या था वे किसके उपासक रहे होंगे और उनकी धार्मिक भावना किस प्रकार की रही होगी ? किसी निश्चय पर न पहुँच सकने के कारण नीचे लिखे हैं ।

एक और विद्युत्पातकथ महाकाम्य में उन्होंने विष्णु के अवतार की प्रशंसा अवका स्तुति करके यह प्रमाणित किया है कि वे विष्णु के पूर्ण अवतार के तो बुरी तरह उनके सूर्योपासक होने का संकेत भी मिलता है । सूर्य मन्दिर के पुण्यभाष को उन्होंने प्राप्त किया था । इसी तरह स्वान-स्वान पर वे बीड धर्म के सिद्धांतों में अपनी पूर्ण भ्रष्टा प्रकट करते हैं । साध ही प्रति धर्म के धर्म में 'बी' धर्म का प्रयोग और बीमात नगर की मायमी बीमैसमाता की पूजा से इसी के उपासक भी प्रतीत होते हैं और धर्मधर्म धर्म को नाना रूपों में चित्रित करके वे धर्म धर्म के रूप में भी हमारे सम्मुख आते हैं । नीचे लिखे उद्धरणों से इस बात की पुष्टि होती है ।

१—विष्णु भक्ति सम्बन्धी उद्धरण—

धियः पति श्रीमति सासितु जयजगन्निनवासो बसुधैवसुदमनि ।
वसन्त वसन्ततरन्तमम्बरद्विरप्समभंगिबुधमृनिहृदि ॥ १ १ ॥
तमर्प्यमर्प्यादिक्रियाविपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूजन्त ।
गृहानुपतु प्रणमादमीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृता मनीषिणः ॥ १ १४ ॥
उवाचिहारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमभ्यात्महृष्टा कथञ्चन ।
बहिर्बिकारं प्रकृतेः पुण्यविकृतुः पुरातनं स्त्री पुण्यं पुराविदः ॥ १ १५ ॥
निवेगयामासिध हेसयोध तं फणाभुतांछादनमेकमोकसः ।
अगत्यर्धकस्यपतिस्त्वमुष्णकैरहोदरस्तम्भधिरःसु सूतसम् ॥ १ १६ ॥

उपमृष्ट स्त्रीकों में विष्णु के धारि पुण्य का और पुराण पुण्यका का निर्देश है । ऐसा करके महाकवि ने जयवान् विष्णु (अवतार रूप में हुआ) के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट की है । सम्यक् भी कई स्त्रियों पर विष्णु के अवतारों का वर्णन हुआ है । माघ के द्वारा भी कई स्तुति के व्याज से माघ ने जयवान् विष्णु के प्रति अपनी भ्रष्टा प्रकट की है ।

सूर्य भक्ति भावना का आधार—

प्रथम भोज प्रबन्ध और प्रबन्ध चिन्तामणि में माघ के सूर्य भक्त होने के सम्बन्ध में भी संकेत प्राप्त होते हैं। यों विष्णुपासक यह कहाम्य में इस प्रकार का संकेत कहीं भी प्राप्त नहीं होता तथापि जैसा कि सर्व विदित है साधारणीय साधारण मुक्त सूर्यपासक रहे हैं, सूर्योपासना जलकी कुल-परिपाटी के रूप में रही है और वहाँ तक माघ का सम्बन्ध है प्रबन्ध चिन्तामणि के प्रमालों के अनुसार राजा भोज द्वारा महाकवि माघ को (जगत्सामी) सूर्य मंदिर का पुण्य लाभ प्राप्त हुआ जो महाकवि के सूर्योपासक होने का प्रतीक है।

बीड सिद्धान्तों के प्रति धारणा दिखाने वाले चित्र—

सर्वकार्यसारीरेणु मुक्त्वाङ्गस्त्वप्यप्यकम् ।

सौगतानामिवात्मानो नास्ति संशो महीमृशम् ॥ २-२८ ॥

उपसृक्त में एक बीड धरीर में मात्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करता। यह धरीर को पाँच स्थानों में मुक्त मानता है १—रूप २—वैदना ३—विज्ञान, ४—संज्ञा, ५—संस्कार।

इस श्लोक से महाकवि माघ का बीड बर्ण से प्रभावित होना स्पष्ट विदित होता है। क्यों न हो, उनके पितामह सुप्रबोध के भास्व बुद्ध के उपदेश की भाँति मानकर राजा बर्णसाधन उपदेशों को बिना किसी संकोच के स्वीकार करते हैं। देखिये—

कालेमित्रं तन्ममदुर्कपथ्यं तवागतस्येव जन संवेता ।

बिनामुरोधात् स्वहितेक्ष्मैव महीपतिर्यस्य नयत्यकार ॥ २ ॥

(कवि बंद बर्तन)

उपसृक्त श्लोकों से प्रतीत हो रहा है कि माघ जब युव की देव है जब बीड बर्ण मुक्त हो हो रहा था किन्तु इस वर्ण को जानने के प्रति कुछ मनुष्यों की धारणा प्रबल थी। हमने यह बात प्रभावक चरित्र में विद्वानों के प्रबन्ध में प्रबल देवी है कि माघ कवि का चलेगा भाई दुर्गकर का पुत्र सिद्ध जब जैन हो जाता है उक्त समय उनके हृदय में जैन वर्ण को ग्रहण करने के प्रति इतनी उत्कंठा नहीं थी बिना प्रीतिपूर्ण चरित्र बीड वर्ण को ग्रहण करने के लिए बचाया। यह भावना क्यों? कदाचित् उनके पितामह के भाव उस धर्म के प्रति प्रतिक्रिया होने, जहाँ संस्कारों का प्रभाव 'सिद्ध' पर होना स्वाभाविक था। यही बात माघ के लिए भी कही जा सकती है। देखिए, एक स्थान पर हरि (वी कृष्ण) को बुद्ध भगवान् ही बसा दिया है और विष्णुपासक पत्नीय राजाओं को काम की सेवा।

इतिष्ठत्तदा विहृत्तरूपममज्जतविविभिन्न भेदसम् ।

मारबलमिव भयंकरतां हरिबोधिसत्त्वमधि राजमहत्तम् ॥ १५ २८ ॥

वर्ण—इस भाँति उक्त समय क्रोध से भीषण भावति बाल के सब विदुज्जन ५८ के राजा कामदेव की सेवा की भाँति विकार रहित चित्त वाले भगवान् की कृपा की भाँति वर्ण के सम्मुख धारणा कोषित हो गये।

नागानन्द नाटक को महायान धर्म (६०६ ई० से ६४० ई०) द्वारा रचित है मैं भी इससे मिलते-जुलते धर्म वाले निम्नलिखित श्लोक को देखिए—

कामेनाकृष्य चाप हृतपटुपदहावस्त्रिमिमारवीरे

भ्रूम गोत्सर्गपञ्च मास्मितचसितहृषा दिव्यमारीशनेम ।

सिद्ध प्रह्लोत्तेमार्गैः पुनक्तिवपुषा बिस्मयापवाधयेन

ध्यायन् बोधेरवाप्यावधमित इति च पातु हृष्टो मुनीन्द्र । धं १२ ।

धर्मात् जिन भववान् बुद्ध को कामदेव अपना बाण खींचकर देख रहा है, उसके पीर मोड़ावरण धोर से बाजा बजाते हुए जिनके सामने कूब कांच मथा रहे हैं अष्टपदण भ्रू विनाश कम्प बम्हाई धोर मुक्कटाहट से बचन हुए अपने नेत्रों से बिन्नी देख रही हैं अपने मस्तक को मुका कर चिदमय जिनका दर्शन कर रहे हैं, उत्पन्नान को प्राप्त करने के लिए दत्तचित्त होकर ध्यान में समान मुनिबों में सेष्ठ के ही बुद्ध भववान् आपकी रक्षा करें। उपर्युक्त श्लोक में बुद्ध भववान् की एकाग्र चित्ता है और विभिन्न मनोवृत्तियाँ काम की सेना हैं ।

इस श्लोक को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि बाबू ने नागानन्द नाटक को भी शास्त्राभ्यास वा ब्रह्मलोकन के समय देखा है मग्यवा के वैसे ही जब अपने छोटे से श्लोक की दो पंक्तियों में छठाकर अपना के रूप में रखने में कैसे समर्थ हो सकते थे ? हरि की बोधिलस का रूप देना कवि का बौद्ध धर्म के प्रति बड़ा प्रकट करना है। बौद्ध धर्म की ओर संकेत करने वाले एक श्लोक को और देख भीजिय जिसमें स्पष्ट रूप से श्रीकृष्ण को बुद्ध ही कह दिया है, देखिये—

भीमास्त्रपद्मिनस्तस्य बसस्य ध्वजराजिनः ।

कृतघोराजिनश्चक्रं भुवः स्रक्विराजिन ॥१६११२॥

धर्म—भववान् बुद्ध का प्रवतार बारण करने वाले (धीराम प्रताप विपत्ती शास्त्री लिखते हैं कि 'जिन' धर्मात् महावीर स्वामी का प्रवतार बारण करने वाले) श्रीकृष्ण के अनु-वच की उक्त सेना की जो सर्वकर घन-शास्त्री से सुसज्जित थी ध्वजा-मताकरें वहाँ खड़ा रही थी और जिसने सर्वकर बुद्ध करके विजया दिये थे भूमि को खोह से सींच दिया ।

उपर्युक्त श्लोक में "जिन" शब्द पर विचार है। कोई इसे बुद्ध के लिए लेते हैं तो कोई महावीर स्वामी के लिए, बसन्तदेव "जयतीति जिन" कह रहे हैं, मस्तिनाथ प्रवतार-नर नाम्ना उपदेष्ट कर रहे हैं। नागानन्द नाटक के प्रथम धं के प्रथम श्लोक में "भीभी जिन पातु च" स्पष्ट है। वहाँ पर 'आवातीति जिन सर्वज्ञ बुद्ध' का धर्म है। धर्म कोपकार ने "सचक्रं भुवतो बुद्धो सर्वपापो तपापताः" कहकर सर्वज्ञ शब्द के धर्म माना है। बुद्ध भी प्रवतारों में मान जा रहे हैं यतः इस सबकी देख सेने पर इन दिन शब्द का धर्म प्रबंधानुसार बुद्ध के लिए अनुगत हुआ ही मानें ।

दिव भक्ति क कुछ जिन—

धम्मदितायतद्विमम्बरमुष्णकीर्मा—

माक्रम्य संस्थितमुदयविद्याभर्म्यम् ।

सृष्टिस्तस्यसुहृन्दीधितिर्कोटिमेन,

मृदोदय को मुनि न विस्मयते मगेशम् ॥४ १६॥

उपर्युक्त श्लोक में भगवान् रैवतक को कैलाशपति शंकर का रूप दिया है। उस समयपति रैवतक (शंकर) को देखकर कीन ध्यात्स्वर्ग में नहीं गयेगा।

उच्ये महारजतराणिचिराजितासो,

सुबलंमितिर्ऽसाम्प्रमुधासवर्णा ।

यम्येति भस्मपरिपाणुरितस्मरारे,

स्वहृन्सोचनलसामलसाटसीसाम् ॥४ २०॥

इन श्लोक में भी रैवतक पर्वत की लपेट दीवार को जो सुबल की रेखा है सुघोषित है भववान् निनेत्र शंकर की धीति दिखाकर शिव का स्मरण किया है।

प्राप्तेयसीतमन्मन्त्रेवदरभीस्वरोऽपि

याम्ने मन्मन्त्रसनावरणोऽभिधेते ।

सर्वर्तुनिवृत्तिकरे निवसन्मुपति,

न दन्तवृत्तमिह किंचिदकिननोऽपि ॥४ ६४॥

उपर्युक्त श्लोक में कहा जा तो केवल रहना ही था कि रैवतक पर्वत पर न तो प्रविष्ट सीत धीर न प्रविष्ट यहीं ही पकड़ी है फिर भी यहाँ हिमालय विभाषी नवचर्मचारी शिव का नाम ने दन्त रूप में स्मरण कर ही किया।

मवनमवनसेसादयाममय्याभिराभि स्फटिककटक भूमिर्नटियत्येव क्षैतम् ।

महिपरिवरमाजो भास्मनेरङ्गरागेरभिगतभवसिम्भ द्युसपाणोरभिख्याम् ॥६५॥

उपर्युक्त श्लोक में भी भिषूषवाणि शंकर को दूसरे रूप में स्मरण कर दिया है।

यह सर्व मैं—

कसया तुपागकिण्णस्य पुर परिमन्दमिल्लतिमिरोचजटम् ।

शण्णमन्दपण्ण जनेन मृया गगन मणाविपत्तिमूर्तिरिति ॥६ २७॥

यहाँ पर आकाश को महादेव की मूर्ति के रूप में स्मरण किया—

मन्मन्त्रिकावृमुमनीर्णतम कवरीभूतो मसयजाम्भिव ।

दहसे मसाट-टटहारि हरेर्हरितो मुते सुहिनरविमदसम् ॥६ २८॥

इनमें पूर्व पिता या पुत्र शिव के रूप में प्रदर्शित किया है।

यौदह्ये सर्व मैं—

आमनेन सधिन कसा दधहृद्यनश्रयितजामविग्रह ।

आप्पुत स विमर्त्तसै रभूदहृमृतिधरसूतिरष्टयो ॥१४ १८॥

यह मूर्तिचारी शंकर का रूप व्यक्तित्व कर शिव की आठवीं मूर्ति (पञ्चमान) को

स्मरण किया है। यजमान बनाने के लिए शिव को इस रूप में स्मरण करना यह एक धारम्य की बात है।

बाह्यमें और देख्यें त्यों में—

अथर्त्तं बनीमान्यधि हेतुरायमाद्यपूरयत्सा जसमि न आहून्वी ।

गाङ्गीधनिर्भस्मितशंभुकंभरासवर्णमर्ण्यं कथमन्यास्य तत् ॥१२६॥

उपर्युक्त में यमुना का जल नीचा है इसके लिए शिव को स्मरण कर दिया जिसका कंठ नीले रंग का है।

रयमास्थितस्य च पुरामिषतिनस्तिक्ष्णो पुरामिष रिपोमु रक्ष्य ।

अथर्त्तमूर्तिरभ्युपगमावितः स्वयमादित प्रवयर्णं प्रजापति ॥१३१॥

उपर्युक्त में श्रीकृष्ण रथ पर बैठ गये फिर युधिष्ठिर ने जोड़ों की सपान को क्या पकड़ा मानो बड़ा ने छंकर के जोड़ों की लयामों को पकड़ा इस रूप में यहाँ पर विपुलसुर के स्मरण धारम्य करने वाले शिव को स्मरण किया।

अब नीचे शिवे १९वें सर्ग के ४९वें श्लोक में तो स्पष्ट रूप में ही शिव को विष्णु से श्री जैना मान कर अपनी शिव की ओर प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया है देखिये—

क्रियतेधवसः सत्त्वज्जर्जरमेरेव सितेतरैरथ ।

धिरसौधममत्त संकरः सुरसिन्धोर्मधुजितमहिप्रणा ॥१६४॥

अर्थ—निर्मल को निर्मल व्यक्ति ही जैना उठाते हैं और मलिन भोज तो उसे नीचा ही दिखाते हैं। (जबल छटीर) छंकर भी जैना, की जबल बाया) को तो धिर पर भारण करते हैं। किन्तु मलिन धर्मात् नील कामिनाले विष्णु उसे बरस में भारण करते हैं।

इस श्लोक में तो शिव को अछ बता दिया है और विष्णु को नीचा गिरा दिया है। तो क्या माव शिव के कपासक से विष्णु के नहीं? श्री कृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं। अब-अब भी पुष्पी पर अवर्त्त से धम्बकार धाने लगा है उस-उस विष्णु ने विभिन्न रूपों में अवतार लिया है ऐसा पुण्यों में धाया है। महाकवि माव एक धम्बे पौराणिक थे।

भक्ति के इन विभिन्न केन्द्र बिन्दुओं को देखकर महाकवि माव की भक्ति का स्वरूप समझसारमक निरिषत होता है। उस समय जितने धर्म प्रचलित थे उन सभी धर्मों की सम्पादनादीता में उनका विश्वास था। इसी लिए उन्होंने किसी एक धर्म की धर्मविक्रि मित्रा नहीं की प्रत्युत जिस धर्म की जो बात उन्हें धम्बती लगी उसे धारमापूर्वक मित्रा। जैसे माव धनाउनी मुठिभूजक हिन्दू थे। शिव विष्णु, सूर्य प्रादि उस की उपागता से करते थे।

भाष की रचनाएं

महाकवि भाष की जीवन-सम्बन्धी इतनी बातों को लिखने के पश्चात् अब हम उनके द्वारा विरचित महाकाव्य सिधुपालवध के विषय में कुछ लिखेंगे। इससे पूर्व हमको यह निर्धारित करना है कि क्या भाष अपने महापंडित एवं विद्वान् कवि ने केवल एक ही ग्रन्थ की रचना की? जिसकी श्राव्य इतनी अच्छी हो जिसको बीच-प्रात हो और इन सबके ऊपर जिसमें यथ प्रात कहने की उत्कट प्रवृत्ति हो क्या ऐसा कवि केवल एक ही क्षण्य की रचना करके शान्त रह सकता है? हम सिधुपालवध महाकाव्य के अतिरिक्त भाष के नाम से अन्य स्तोत्रों को भी सुभावित रत्न भाषाधारम्, धीविरथ विचार वर्ण जीवनवार्ता आदि ग्रन्थों व पुस्तिकाओं में उद्धृत देखते हैं इससे यह अनुमान होता है कि भाष ने सिधुपाल वध महाकाव्य के अतिरिक्त किसी और ग्रन्थ की भी रचना की है जो भाष तक भी प्राप्त नहीं हो सका है। किसी ने उसके लिए कोई प्रयास ही नहीं किया जबकि स्वतः ही ने यथ नष्ट भ्रष्ट हो गये जबकि अज्ञानता में नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये हैं। हो सकता है कि उसने कदापि यथ भिन्न हो और उनकी भी वही धनस्वा हुई हो जो अन्य कवियों के ग्रन्थों की हुई है। मुसलमानों के हाथों में पड़कर हम्माको धर्म करने के लिए जमा दिये गये हैं। यह भी हो सकता है कि उन्होंने केवल छुट्ट रचनाएं ही लिखी हैं और प्रत्यक्ष क्षण के क्षण में केवल सिधुपालवध महाकाव्य ही लिखा हो।

भारत भर के महाकाव्य गीत तक काव्य-ग्रंथों का, जल-ग्रंथों का, नाटकों एवं यथ ग्रंथों का महान् धारण रहा क्योंकि राजा स्वयं कवि आलोचक एवं सेवक व कुछ साहस का यथ जो ग्रंथ प्रकाश में न थे वे भी उनके समय में प्रकाश में लाये गये थे। महाकाव्य गीत ११वीं शताब्दी में हुए थे। धर्म का भाष करने वाले, ग्रंथों को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले हिन्दू धर्म की नष्ट कर इस्लाम धर्म का प्रचार करने वाले मुसलमानों का भारत में धानमन हिन्दू साहित्य व धर्म की नष्ट करने वाला था। यथ हो सकता है कि भाष कवि की अन्य रचनाएं भी नष्ट कर दी हैं जमा की गई हैं या नाश भी गयी हैं। किन्तु यह बात तो सिधुपालवध पर भी प्रतिक्रिया की जा सकती है। भाषकाव्य जैसे सब रहा जबकि अन्य यथ नष्ट कर दिये गये। जो स्तोत्र ग्रन्थ मिलते हैं उनके सम्बन्ध में आलोचकों का कहना है कि वे बिखरे हुए स्तोत्र भाष काव्य से अतिरिक्त ग्रंथों से उद्धृत हैं जिनको भाष ने जमावे से और अपने मूल रूप में जो भाष धारण हैं। सुभावित रत्न भाषाधारम् में वे स्तोत्र भाष के नाम से मिलते हैं।

अर्था न सन्ति न च मुच्यति मां कुरासा,
 त्यामान्नसंकुचति कुर्सेभित्तं मनो मे ।
 यांचा च भाषय करी स्ववशे च पापम्,
 प्राणा स्वय प्रयत्न किं नु विस्मृतेन ॥पृष्ठ ६६ श्लोक ५० ।
 अविरत्तमविरामारागिणां सर्वराजं
 नवनिरुवनसीता कौतुके नामिनीक्ष्य ।
 इवमुदवसितानामस्फुटासोक्त सपत्न्यं
 नयनमिष सनिद्र दूलेते वैपपत्ति ॥३३८ २०॥

असंख्यं भ्यस्तमुपास्तच्छतां यदेव रोद्धुं रमणीभिरवनम् ।
 ह्येऽपि तस्मिन् समितेन सुकलतां निरास रागो नयनेषु न विषय ॥३३३ ८०॥
 ग्रीष्मवर्णनम्

आपद्युर्मार्गगमने कायबाभास्वयेषु च ।
 कस्याणवचनं व्यावपुष्टेऽपि हितो नर ॥१७० ४८४॥ सामास्य नीति
 इहलोकेऽपि अनितां परोऽपि स्वजनायते
 स्वजनोऽपि दृष्टिद्वारा तत्त्वणं दुर्जनायते ॥६८ ३॥ अस्मि निम्ना
 तेजोहीने महीपात्रे स्वे परे च विकुर्वते ।
 निःशङ्को हि जनो वते पदं भस्मम्यगृष्मणि ॥८२ १०॥ तेजस्वी प्रशंसा

प्राप्यते पुणवतापिपुण्यानां व्यक्तमाभयवशेन विधेयं ।
 तत्तया हि वयिताननदत्त व्यानसे मधु रसातिशयेन ॥३३० ३०॥ पानगोष्ठि वर्णनम् ।
 मुक्तादरेषु परिमन्वतया वयितोऽस्मत् स्फटिकव्यहृष्टिम् ।
 प्रवसस्य जालकमुष्णोपगतानुवतिष्ठविम्बु किरणाम्मदन ॥३१४ ६४॥

चन्द्रोदय वर्णनम्

मा गममदबिभूषधियो न प्रोक्तमय रन्तुमिति शक्तिनाया ।
 योपितां न मदिरां मुग्धीषु प्रेम पश्यति भयाम्यपदेऽपि ॥३३० ६२॥
 यद्येव रुचये रुचिरस्य सुभ्रूवो रहसि ततश्चकुर्वन् ।
 भामुकुम्भितया हि नराणामाक्षिपन्ति ह्रवयानि सद्यः ॥३३३ २२॥

सुखकेलिकथनम्

तिरसि देवनरीं पुरस्तरिण सपदि वीक्ष्य घराधरकन्यका ।
 निविष्टमानवती रमणीयकेः कवचनं चुम्बनमारभते स्म सा ॥१६८-७५॥ कूटानि
 समयज्ञानार्थवत् प्रतिकृपामभयो स्थितान् ।
 पत्नीनां तटमासाद्य नार्त्त नार्त्तं प्रतीक्षितुम् ॥३६५ ४३॥ रत्नी स्वभावमिष्टा

सेनेन्द्र की घोषितप्रकारणर्षा में यह श्लोक माय नाम से है—

मुमुक्षुर्तं ध्याकरणं न भुङ्गते विगासते काव्यरसो न पीयते ।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवार्चय निष्कला कला ॥

मुमाविष्टावसि में माय नाम से नीचे निम्ने श्लोक है—

मारी नितम्बफलके प्रतिबध्यमाना हंसीव हेमरसमा मधुरं रसात् ।
तन्मोचनार्धमिव नूपुरराजहंसारवक्त्रन्दुरार्तमुत्तरे चरणावजग्ना ॥

सीमं धंसतटास्पतस्वभिजन सम्पद्दुयता बहिर्नगा ।
माभ्योर्ध्वगति धृतस्य बिफल श्लेशस्य नामाभ्यहम् ॥

सीर्यं बैरिणि बध्यमासु निपतस्वर्चोस्तु मे सर्वदा ।
देवैकेन बिना मुखास्तुणसमाप्राया समस्ता धमी ॥

उपर्वुत्त हन श्लोकों में नीचे का वृत्त श्लोक 'वर्तुहरि' के नीति शतक में भी वर्तु है।—

जीवन शर्ता में श्री मायनाम का एक श्लोक वर्तु है—

उपचरिष्यामि सन्तो यद्यपि कथयन्ति नैकमुपदेशम् ।
मास्तेषां स्वैर कथास्ता एव भवन्ति सास्त्राणि ॥

हम उपर्वुत्त समय श्लोकों के प्रतिरिक्त महाकवि माय से अत्यन्त रसने वाले वृत्त भी श्लोक हैं जो जीवप्रबन्ध और प्रबन्धचित्तमयि में माय के कुछ से कहलाये गये हैं। पाठक, उनकी वपत्पाम देखें किन्तु 'मर्षा न सति न च मुंचति' वाला श्लोक तो सुनापित रत्न भाष्यभारत में भी लिखा हुआ है।

सुनापित रत्नभाष्यभारत में प्रभातवर्त्तनम् तथा जन्तोदयवर्त्तनम् के श्लोक तो सिन्धु पालक के ही हैं केवल कुछ पाठांतर हैं अथवा माय काव्य के ही लिए हुए हैं उनके प्रतिरिक्त जो श्लोक हैं उनकी भाषा तथा शब्दावली को देखते हुए कोई कह नहीं सकते कि ये माय रचित नहीं हैं किन्तु हमने ऐसा भी देखा है कि बहुत ८ कवियों की भाषा शब्दावलि एवं भाव विन्यास तक परस्पर में ऐसे मिले जुले रहते हैं कि कह नहीं सकते कि यह श्लोक भयस्क है या न भयस्क का नहीं। हिन्दी में विहारी के दोहे व दुसारे दोहावली में भी अंता साम्य है इसी भाँति बिना कुछ बात तक पहुँचे हुए यह कहना यदि कठिन है कि ये श्लोक महाकवि माय निमित्त नहीं किसी अन्य कवि के हैं निम्ने अपना नाम भी शीरे के समय में माय रस दिया हो और उन्हीं के स्फुट श्लोकों में उद्धृत कर लिये गए हों। वर धमी तक माय नाम के दूसरे कवि का पता नहीं लग पाया है। इस भाँति मिले हुए अन्य श्लोक भी हैं क्योंकि धमी धमी हमारे हाथ में बँधव 'जीवनशर्ता' एवं श्री कासूरामजी सिवाड़ी हजीरगढ़ (मेवाड़) की

धर्मा न सन्ति न च भुञ्जति मां दुराद्या,
 रपागाम्यसकृन्मति दुर्लभितं मनो मे ।
 पांथा च साधय करी स्वयमेव च पापम्,
 प्राणा स्वयं व्रजत किं नु विसंभितेन ॥पृष्ठ ६६ पसोक् ५० ।
 अक्षिरत्नमविरामाराभिणी सर्वरात्रं
 नयनिष्ठुवनसीमा कौतुके नाभिबीजम् ।
 इदमुदवसितानामस्फुटाभोक् सपत्न
 नयनमिव सनिद्रं धूणोते वैपपञ्चि ॥३३८ २०॥

प्रसंग्यं स्पष्टमुपान्तरकृतां यदेव रोद्धुं रमणीभिरंजनम् ।
 इतेऽपि सस्मिन् सन्निभेन युक्ततां निरास रागो नयनेषु न भियम् ॥३५३-८०॥
 श्रीधर्मवर्णनम्

प्रापद्यु मागममने कायकासास्पयेषु च ।
 कल्याणवचनं द्रव्यावपुष्टोऽपि हितो नरः ॥१७० ४८४॥ सामान्य मोर्ति
 इहलोकेऽपि धनिनां परोऽपि स्वजनायते
 स्वजनोऽपि दृष्टिगतां तत्साण्डुर्भनायते ॥६८ ३॥ दग्ध निन्दा
 तेजोहीने महीपाले स्वे परेषु विकुर्वते ।

निःसंको हि जनो यते पदं अस्मभ्यनूष्मणि ॥८२ १०॥ तेजस्वी प्रशसा
 प्राप्यते गुणवतापिगुणानां व्यक्तमाययवशेन विक्षेपः ।
 तत्तथा हि दयिताननदत्त व्यानक्षे मधु रसादिष्वयेन ॥३३० ५०॥पानमोक्षि वर्णनम् ।
 सुवनोदरेषु परिमन्दतया सयितोऽभस स्फटिक्यद्विषम् ।
 धवसंभ्य जासकमुक्तोपगतानुदतिष्ठबिन्दु किरणाम्बुज ॥३१४ ६४॥

चन्द्रोदय वर्णनम्

मा गमम्यदविमूढधियो न प्रोगमय रन्तुमिति सञ्चितनाथाः ।
 योपितां न मदिरां भुजमीषु प्रेम पश्यति भयान्यपवेऽपि ॥३३० ६२॥
 यद्यदेव रुद्धे रुचिरम्यं सुध्रुवो रहसि तत्तदकुर्वम् ।
 धामुक्तनिवृतया हि मराणामाशिपन्ति ह्रदयानि तरुण्य ॥३३३ २२॥

सुर्यकेसिकपनम्

छिरसि देवनदीं पुरबीरिण सपदि बीज्य धरापरम्यकाः ।
 मिविज्जगानवसो रमणांगके नवचन धुम्यमभारभते स्म सा ॥१६८-७५॥ कूटानि
 समयमानार्थवत् प्रतिरूपान्बधो स्थिताम् ।
 पत्नीमां तटमासाद्य मार्गं मार्गं प्रतीक्षितुम् ॥३६५ ४३॥ रभी स्वभावनिन्दा

शेनेत्र की भीषित्यविचारणा में वह स्तोक भाव नाम से है—

कुमुदितैर्भ्यांकरणां न मुञ्चते पिण्डवतेः काष्मरसो न पीयते ।
न विद्यया केनचित्तुष्टतं कृत्स्नं, हिरण्यमेवात्रेयं निष्कृता कृता ॥

कुमापितावनि में भाव नाम से नीचे भिन्ने स्तोक है—

नारी नितम्बफलके प्रतिबध्यमाना हंसीव हेमरसना मधुरं ररास ।
तन्मोषनार्थमिव भूपुरराजहस्तावच्छन्दुरार्तमुखरे चरणावसन्ना ॥
शीलं शैलतटात्पतत्त्वमिजनं सम्यहृयतां वहिन्ना ।
माध्वीपञ्चयति धृतस्य विफलं वसेसस्य नामाश्रयहम् ॥
सौम्यं वैरिणि वध्यमात्रु निपतस्वर्षोस्तु मे सर्वदा ।
मेमैकेन बिना मुष्णास्त्वणसमाः प्राया समस्ता घनी ॥

उपसृक्त इन स्तोकों में नीचे का दूसरा स्तोक चतुर्हरि के नीचे छतक में भी पद्य है।—

बीरन बाटी में श्री भावनाम का एक स्तोक बहुत है—

उपचरित्रव्याः सन्तो मद्यमि कथयन्ति नैकमुपदेशम् ।
यास्तेषां स्वैर कथास्ता एव भवन्ति सास्त्राणि ॥

इन उपसृक्त समस्त स्तोकों के प्रतिरिक्त यह कहिये जाय है सम्बन्ध रखने वाले दूसरे भी स्तोक हैं जो बीरनबाटी और प्रवर्गवितामलि में भाव के मुख से कहलाने गये हैं। बाटन, कनकी तथास्त्रान् देखें किन्तु "घर्षा न समि न न मुञ्चति" वाला स्तोक तो कुमापित एत भाष्याचारम् में भी लिखा हुआ है।

कुमापित एतभाष्याचारम् में प्रमातवर्णनम् तथा बन्धोदपर्वणम् के स्तोक तो सिद्धपालवच के ही हैं केवल कुछ पाठान्तर हैं अथवा भाव काव्य के ही लिए हुए हैं उनके प्रतिरिक्त जो स्तोक हैं उनकी भाषा तथा व्याख्या भी देखते हुए कोई कह नहीं सकते कि वे और रचित नहीं हैं किन्तु हमने ऐसा भी देखा है कि बहुत-से कवियों की बहुराष्ट्रिय भाव विभाषा तक परस्पर में ऐसे मिले जुले पद्य हैं कि कह नहीं सकते कि वे स्वयं के हैं अथवा अनुकृत नहीं। हिन्दी में बिहारी के बोहो ब हुनारे बाहुराष्ट्रिय में भी ऐसा है इसी भाँति बिना कुछ बात तक जुड़े हुए वह कहा जाति नहि है कि वे स्वयं के हैं भाव निमित्त नहीं किसी अन्य कवि के हैं। मिलने वाला नाम ही है कि वह स्वयं के हैं। दिया हो और सभी के स्फुट स्तोकों में उद्धृत कर दिने हैं। वे अपने स्वयं के दूसरे कवि का पता नहीं लग पाया है। इन भाँति मिले हुए पद्य-स्तोकों में भी हमारे हाथ में देखिये 'बीरनबाटी' एवं 'बीरनबाटी' के ही हैं।

प्राप्त हुई उसमें मेरे विगृह्य पुत्र राजगुह भी मयन मोहनजी^१ साहपुत्र (मिवाड़) ने प्रथम ही जिस श्लोक को उद्धृत कर उसको महाकवि नाम का विरचित बताया कुछ दिनों तक उस श्लोक ने मुझ धन्यवक को असमंजस में डाल दिया । सारा शिष्यपालनय वैद्य आता गया और भी तत्सम्बन्धी अन्य बातें देखे गये । किन्तु उस श्लोक का कोई चिह्न तक नहीं मिला । ग्रन्थ में सुमाहित रत्नभाष्याचार्य में मात्र सम्बन्धी श्लोकों की सूची देखी किन्तु वहाँ पर भी इत्सा ही होना पड़ा । इच्छा हुई कि लेखक तो इसी युग के और इसी समय के हैं कोई दूर की तो बात नहीं परन्तु इनसे प्रत्यक्षीकरण कर केने पर विरहित हुआ कि उन्होंने इस श्लोक को सुमा पितरत्नभाष्याचार्य से उद्धृत किया है । फिर मैंने सुमाहित रत्नभाष्याचार्य ग्रंथ की सूची देखी जिससे ज्ञात हुआ कि वह श्लोक तो सज्जनों की प्रशंसा में दिया गया है और किसी अन्य कवि का है जिसका उसमें नाम नहीं है किन्तु मात्र का नहीं । उसके ऊपर का श्लोक धनयम मात्र का है परन्तु लेखक महोदय ने इस श्लोक को भी मात्रविरचित करके उद्धृत कर दिया है परन्तु निष्कर्ष निकला कि हो सकता है ऐसी ही युग दूसरों ने श्लोकों के सम्बन्ध में भी कदाचित् की हो और सुमाहित रत्नभाष्याचार्य के लेखक ने ऐसे श्लोकों को एकत्र किया होना तो बड़ा उनको ज्ञात हुआ होना उसी के अनुसार वे तत्सम्बन्धी कवि का नाम लिखते गये और वहाँ किसी कवि का नाम नहीं मिला वहाँ बैठ ही उनको रक्त दिया ।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि महाकवि ने अपने जीवन में कदाचित् एक ही ग्रन्थ की रचना की थी और वह रचना मात्र काव्य है अन्य श्लोक तो फुटकर हैं जिनमें कुछ तो मात्र के हो सकते हैं और कुछ नहीं ।

१ पदसारी 'और सरपरव' काव्य के रचयिता स्व० पं० यमुनाचल जी अर्मा राजगुह के कनिष्ठ भ्राता रामोदर जी व जगन्नाथजी के । मयनमोहन जी इन्हीं रामोदरजी के कनिष्ठ पुत्र हैं जिनको यमुना चल जी ने बतक कप में पुत्र स्वीकार किया । जगन्नाथ जी के नामुरत जी व इस ग्रन्थ के लेखक मयनमोहन हैं ।

महाकवि माघ की संक्षिप्त जीवनी

तथा

उनका व्यक्तित्व

इस बात का पहले ही ध्यान हो चुका है कि प्राचीन कवि को कुछ निश्चय से उस वर अपने स्वर्ण के विषय में वे प्रायः मौन ही रखते थे। कोई-कोई कवि ऐसे घबराए हुए हैं जिन्होंने प्रशस्ति के रूप में बार-बार स्तोकों में बंध बर्णन कर दिया है। घपना ब्रह्म रूप में घपना तथा अपने घण्ट घाँव का नाम भी उल्लिखित कर दिया है। महाकवि माघ ऐसे कवियों में से एक हैं।

माघ की जीवनी तैयार करने में हमें जिन बातों से सहायता मिली है वे हैं—जनों वैज्ञानिक कहते हैं कि कविता कहानी नाटक उपन्यास घाँव के द्वारा सैलक को विष प्रस्तुत करता है वे सब समाज की उपरि हैं। जिस समाज में वह रहता है उससे प्रभावित होता है। इस प्रतिबिम्बित रूप में कवि का व्यक्तित्व भी लघुचित्र होता है। संक्षेप में कविता में वर्तनीय घाँवों के रूप में सब वह रूप प्रस्तुत करता है तब कवि का लेखक का करियर बन जाता है। उस घंटे में कुछ समाजिक समाज और कवि का व्यक्तित्व तीनों घमाये होते हैं।

महाकवि माघ ने भी एक प्रशस्ति मिली थीर १२वें वर्ष के अन्त में इस प्रशस्ति में कुछ रूप से घपना नाम रखा। इस प्रशस्ति का वह रूप माघ के पिता, पितामह घाँव के नाम देना तथा उनके कार्यों के सम्बन्ध में संकेत करना था। अपने काव्य में अपने व्यक्तित्व जीवन से सम्बद्ध संकेत भी वह रख रिखे हैं। घण्ट व्यक्तियों ने भी अपने घण्टों प्रबन्ध कथाओं घाँव में माघ के सम्बन्ध में कुछ लिखा। इन सबसे माघ की जीवनी निम्न करने में बड़ी सहायता मिली है।

माघ की जीवनी—

पर्यायान्त के अधिनिकट सिरोही राज्य है। उसी के सर्गीय भोगमान एव तहसील है जो राजस्थान राज्य के अन्तर्गत है। किसी समय यह एक विद्यालय काय नगर था यहाँ कितनी ही विद्यालयार्थ बंधिर एवं मधन थे। प्रशस्त राजमार्ग थे इस नगर की प्रतिष्ठि बुर बुर तक फैली हुई थी। भारत वर्ष में जब विष के मार्ग से घरब भोग घाँव घोर इस देश को जोय कर जब वे यहाँ अपना प्रमुख स्थापित करने सगे सभी बर्हों के बावड़ों ने जगह लाहा लिया। बार-बार के घाकमलों से बावबंध हीण हो गया। हारे हुए बाव भोग पादर की घोर बन पड़े। घरकों का एक बार घोर घाकमल हुआ, जित डटकर रोहने बासा घाँवों के परबाद् भोगमान का नामभट्ट प्रतिहार ही था जितने घाँवों के परबाद् भोगमान को घपनी

राजधानी बनाया था। भीममास पर प्रतिहार नंद का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। पुत्र की विधीयिका अब न रही। प्रतिहार भोज के बन्धन तक शाही कुलों का उत्पात प्रायः समाप्त हो चुका था। पारस्परिक युद्ध घनत्व होते रहते थे। इन्हीं छोटे-मोटे युद्धों से प्राचीन नंद मुप्त होते जा रहे थे। प्रतिहार नंद इन नये नंदों में सबसे प्रबल था। इसकी शक्ति का परिचय एक बार नहीं बनेक बार युद्धों में मिल चुका था।

घाटगीं छताम्बी का काल उत्तरी भारत में एक प्रकार से राजनैतिक अस्थिरता का काल था। युद्धों से इस समय जातियाँ बगती जाती थीं और विपक्षी जाती थीं। इसी समय में महाकवि माघ का जन्म इसी इतिहास प्रसिद्ध प्राचीन नगरी भीममास में राजा बर्ममास के सुदृढ कार्य के मंत्री सुप्रसिद्ध शाहीवीर ब्राह्मण सुप्रमोद के सुबोध्य पुत्र कुमुद्वर्धित (वत्स) की बर्मपत्नी ब्राह्मी के गर्भ से मान नक्षत्र की पूर्णिमा को हुआ था। इनके जन्म समय की कुंडली को देखकर ज्योतिषियों ने भविष्य बाणी की कि यह बालक महान् विद्वान्, परमविनीत ब्रह्मन्, बानी और भैरवसाती होगा। किन्तु जीवन की घंतिमात्रस्था को प्राप्त करते ही वह भिन्न होकर ब्रिह्मावस्था में व्याकुल होकर लेप जीवन ही कुलवध विताता हुआ मनुष्योचित धाम्य को पूर्ण करके पौरो वर सुख पाते ही इस समार संसार को छोड़ के लिए त्याग दिया। ज्योतिषी के वाक्यों पर विश्वास करके उनके पिता कुमुद्वर्धित वत्स ने जो एक घंटी (बनी) से यह समझकर कि मनुष्य की धाम्य ही यहाँ की होती है और एक वर्ष में ३६० दिन होते हैं धनीस ह्वाट नई में एक रत्न-परिपूरित बड़ा रत्न कर उसे बंध करवा दिया। इस के पश्चात् भी जो कुछ बचा उसे माघ को दे दिया।

माघ धर्म धर्म बड़े भाइ प्यार से पोषित होकर अब वास्तविक में प्रविष्ट हुए, उस इनका उपनयन संस्कार किया गया और इनके पढ़ने की व्यवस्था सुचारु रूप से कर दी गयी। बालक माघ परम पुण्यपुरुष थे। व्याकरण के पुष्पों को कण्ठ्य कर लेते थे तथा अमरकोश के प्रविष्ट संस्कृत के दूसरे कोषों को भी मुखाब्ज करते जाते थे। कुछ ही दिनों में इनकी प्रतिभा जनक बड़ी। इन्होंने अन्त्याय्य ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। विद्या समाप्त कर जब वे ब्रह्मासन में प्रविष्ट हुए उस समय तक इन्होंने वेद पुराण शास्त्र उपनिषद् आदि का अध्ययन कर लिया था। इनका वास्तविक और विद्याधी जीवन उत्तमता से बीते किन्तु युवावस्था में बरख रलते ही वे संसार की बलपुर्बधा में ऐसे पड़े कि उससे निकलना इनके लिए कठिन सा हो गया था। माघ दाहों का बल युवावस्था तथा राज्य में प्रभुत्व की प्राप्ति—इन सब बातों ने युवक माघ को व्यवहारपटु तथा सामाजिक बनाया। एक नागरिक का बिलासी जीवन भी वे बिठाने लगे। जीवन के धान्य का उपयोग करते हुए भी वे अपने समय को व्यर्थ नष्ट नहीं करते थे। इसकी विनयों प्रायः नियमित थी। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठते अभी समय ब्राह्म तो कविता की रचना करते। स्नान-संध्या आदि से निवृत्त होकर निर्यकर्म के पश्चात् राज दरबार में जाते। राज परिवार की पाणीबंदि देकर अपना राज-सम्बन्धी कार्य करके फिर वहाँ से लक्ष्मण १ या ११ बजे पर सीट पाते। वर पर कुछ विद्याधियों को बजाते। ब्रह्माह्न की संध्या करके भोजनोपान्त पीढ़ी देर विधाय करते प्रबुध काव्य धारण पुराण आदि ग्रन्थों का अवलोकन करते। लक्ष्मण ३ या ६ बजे तक इस भाँति पढ़ना

पद्मात्मिका जलता रहता फिर कभी मोछी में मिनों के साथ मनोविनोद करते। सार्यकाल सम्पूर्ण
पाशनापराम्भ भोजन से निवृत्त होकर फिर अपने विद्याय भवन में बने बाते जहाँ पर कभी
कभी रात्रिभर मनोरंजन का कार्यक्रम चलता रहता। ऐसी अवस्था में वे प्रातःकाल सुपौत्र
होने तक सोते रहते। उनका जीवन अपने बंध का था। वे लोक-मर्यादा धनका लोक-मत का
पर्याप्त धारण नहीं करते थे। राय रंज में अधिक व्यस्त रहने के कारण किसी सात्त्विक में
परामर्श होने के कारण धनका किसी अन्य कारण से राजा के वा परिवार वालों के कोप
भाजन बनने के प्रत्यक्ष रूप में अपने देश को छोड़ना पड़ा था। इस काम में उन्होंने श्रद्धा
रिक्ता से पूर्ण कविता की है। अतः-मर्त्यन बन बिहार, जब बिहार धारि के कई प्रसंग इसी
समय के मिले हुए हैं। बानी तो वे ही हैं इसलिये उनका बहुतसा जन मान में भी समाप्त
हो गया। बहुत बड़ा सा जन लेकर वे बैसादन को निकले। स्वान-स्वान पर अपनी विद्वता
तथा कवित्व से लोगों को अत्यन्त एवं प्रभावित करते हुए जब वे बर लौट कर आये तब
मृत हो चुके थे। धिगुपासवण का कुछ भाग तो उन्होंने परदेस में रहते हुए ही रचा और
शेष भाग अपनी मुद्रावस्था में बर पर बैठे हुए लिखा। इस समय पति शिवायका में थे।
मौन प्रबन्ध में उनकी पत्नी प्रलाप करती हुई बहती है कि जिसके द्वार पर एक दिन राजा
प्राप्त्य के लिए ठहर करते थे आज वही व्यक्ति जाने-बाने के लिए चरख रहा है। माघ इस
मास के लिए शिवायका में प्रौढिष सिद्धांतवासी १२० वर्ष की पुण्यति वा ११६ वर्ष की एक
मास की पुत्रपुत्र प्राप्त करके इस संसार को छोड़ के लिए त्वाय कर सन् ८८० के आठवाँ
परमोक्तवासी हो गये। मरते समय भी माघकों को जान न दे सकने की स्थिति उनके लिए
दुःख रही।

माघ की अंतिम अवस्था में उनका क्रिया-कर्म तक करने वाला परिवार का कोई भी
व्यक्ति न रहा। उनके बाह-संस्कार की सम्पूर्ण क्रिया प्रविहार भोजन से स्वयं करवाई। माघ
का लिखा हुआ केवल एक धिगुपासवण महाकाम्य आज भी विद्वानों की आचरण में आत
देता है।

अंती सुप्रसन्न का बंध सदा के लिए समाप्त हो चुका था क्योंकि वरक के पुत्र महा
कवि माघ के कोई पुत्र नहीं था। एक पुत्री अवश्य थी वह भी विधवा होने पर पति के साथ
चली हो गई। वरक के कनिष्ठ भ्राता सुबंकर मोछी के एक माघ पुत्र सिद्ध थे। वे अपने जीवन
के प्रथम काल में पुत्रा विलेने तथा वरना-मनन आदि मनुषियों में फँस गये थे फिर माता की
मार्तन्दा से वे जीन साधु बन गये और सिद्धि के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने उपमिति भव
प्रबंध कथा लिखी थी।

माघ का व्यक्तित्व—

महाकवि माघ का वैदिक सम्भा, पौराणिक धार्मिक या वे आर्ययुग कथानु या स्वरूप थे।
गते में मृत्युवान् मौक्तियों का कष्टा धाम्पत्य के रूप में धीरे धीरे बस रत्न पर प्रतीयमान रहता।
वे बहुत ही महीन सप्रेम मोती कारण करते थे तथा उनके कर्म के चारों ओर उपवेशन पड़ा
रहा था। वे स्वभाव से किमोदी व्यक्तित्व थे। जब कभी किसी के साथ संभाषण करते तब

उनके बोझों में वैश्वीय भरा रहता था । वे प्रायः प्रसन्नचित्त रहते थापत्तियों के प्रबन्धों पर भी वे मुस्कराते ही रहते । उनका व्यवहार बहुत ही कोमल एवं उदार था । प्रकृति से तो वे विनीत थे पर वे जो कुछ कार्य करते उसके लिए बंध प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा की एक उत्कट चाह उनके हृदय में बनी रहती थी । उनका काम्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने इसी मर्यादा के कारण अपने वाणिज्य व्यवसायी प्रतिभा एवं बहुमता का स्थान-स्थान पर परिचय दिया है । कभी-कभी तो वे कालिदास से टक्कर मेटे हुए दिखाई पड़ते हैं और कभी मारुति को परास्त करते हुए से प्रतीत होते हैं । उनमें कवि और पंडित का समन्वय स्पष्ट है । बर्म के प्रति उनके समचार थे । किसी भी बर्म के प्रति उनकी कोई अप्रसन्नता दिखाई नहीं पड़ती । वे आत्मिक समन्वय में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे । जैसे वे विष्णु सनातन बर्म परम्परा के पौषक व अनुगामी थे फिर भी जैन बौद्ध आदि उत्काल प्रचलित विभिन्न बर्मों के प्रति भी उनकी आस्था थी ।

इन सब बातों के प्रतिरिक्त महाकवि माच अपने जंग के गुरु गार-मेमी एतिका व्यक्ति थे । सरल एतिका के कारण प्रेम की गहराई के वर्णन उनके जीवन में नहीं होते । उनका प्रेम वाचना प्रधान है ऐसा कहना यदि उचित नहीं है तो कम से कम उन्होंने जिस प्रेम का वर्णन किया है वह वाचना का वर्णन है प्रेम का नहीं । उसमें अपने प्रिय प्रबन्ध प्रेमी के प्रति जो भावों की प्रवेक्षित उमठा एवं विस्मयता प्रपवा सर्वस्व समर्पण करने की भावना होती बाह्ये उसके वर्णन नहीं होते । उनके व्यक्तित्व का यह कोना सूक्ष्म सा है, बड़ा रिक्त भी ।

महाकाव्य—शास्त्रीयदृष्टि

कविता का सामान्य स्वरूप —

यह महाकवि मान के जीवन सम्बन्धी तथ्यों को प्रस्तुत करने के पश्चात् उनके महाकाव्य विमुपासक की शास्त्रीय दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत करता समीचीन है। इसके सिवे यह प्राग्गदक है कि कविता के सामान्य स्वरूप पर विचार करते हुये महाकाव्य के सफल के सम्बन्ध में प्राचीन और आधुनिक विचारों को सामने लाया जाय।

साहित्य समाज का कर्ण कहलाता है। लोगों का यह पारस्परिक सम्बन्ध असादि काय से जाता था रहा है। यदि कवि शास्त्रीयिक में अपने महाकाव्य सामाज्य में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था को चित्रित किया है। उनका इस महाकाव्य को सिद्धने का प्र्येय प्रयत्न प्रकट था। उसकी पूर्णता मानव के आदर्श स्वरूप को प्रस्तुत करने से सम्बन्ध थी इसलिये उनके महाकाव्य में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का चित्रण प्रभावशाली हो ही गया। इस महाकाव्य को रचकर शास्त्रीयिक में प्रमाणित कर दिया कि कवि पृथ्वी पर स्वर्ग की प्रवर्तारणा करता है। यह समाज की व्यवस्था-व्यवस्था, धर्म-धर्म कर्म-धर्म, नीति-अनीति छिद्र-चार-प्रसिद्धाचार यदि मानवीय एवं अमानवीय इकारणक व्यापारों के माध्यम से अपने आदर्शों को, जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को सुन्दरतम भाषा में अभिव्यक्त करता है। कवि का सुन्दर, सत्य और धर्म का सामक होता है। उसका सत्य सौन्दर्यमय धर्म का अभिव्यञ्जन करता है, इसी तरह उसका धर्म भी सत्य को प्रत्यक्ष के रूप में और सुन्दर को छीर के रूप में स्वीकार करता है। कवि की कला निर्माण करी और सौदृष्ट होती है। समाज निर्माण के एक बड़े काम में यह कला एक प्रसूत प्रेरणा बनकर काम करती है। प्रतिभा क्षति-सम्पन्न व्युत्पन्न साधक एवं संवेदनशील कवि की बाली से प्रसूत जो मानवी बाली है बड़ी कविता है। कविता निरचन ही मनोविशेष की सामग्री नहीं है। मनोविशेष जलसे होता प्रसरण है। परिचितियों की टकराहट में धर्म और अधर्म इन दोनों में भिन्न एक-दूसरे सामा कवि आत्मानन्द क विवे जो कुछ मिलता है यह अपने भाव ही समाज के सिवे कल्याणकारी हो जाता है। उसी प्रेरणा बल की प्रेरणार्थ, उसके स्वयं बल के स्वयं बन पाते हैं। उसकी भाषा सीमित लोगों की होती है पर मान सर्वज्ञानी आधुनिक और आधुनिक होते हैं। स्वार्थ के लक्षों से ऊपर, बहुत ऊपर उठा हुआ कवि नाम का सदा निरचन ही ऐसे प्रसूत लोक का सृष्टि करता है जहाँ मानव मन को चरम सुख की अनुभूति होती है। इस तरह कवि का आत्मानन्द लोक का आनन्द बन जाता है। उसका स्व व्यक्ति-निष्ठ होते हुए भी समाजनिष्ठ बन जाता है।

उनके बोलने में वैचित्र्य भरा रहता था । वे प्रायः प्रसन्नचित्त रहते आपत्तियों के सबसरोँ पर भी वे मुस्कराते ही रहते । उनका व्यवहार बहुत ही कोमल एवं ज्वार था । प्रकृति से तो वे विनीत थे पर वे जो कुछ कार्य करते उसके लिए बस प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा की एक छल्लट चाह उनके हृदय में बनी रहती थी । उनका काम्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने इसी यशोनिष्ठा के कारण अपने पाण्डित्य, जगत्कारी प्रतिभा एवं बहुश्रुता का स्वाम-स्वाम पर परिचय दिया है । कभी-कभी तो वे कामिवास से टकराते होते हुए दिखाई पड़ते हैं और कभी मारुति को परास्त करते हुए से प्रतीत होते हैं । उनमें कवि और पंडित का समन्वय स्पष्ट है । बर्मे के प्रति उनके सम्मान थे । किसी भी बर्मे के प्रति उनकी कोई अप्पछा दिखाई नहीं पड़ती । वे जामिक सम्बन्ध में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे । जैसे वे विमुक्त समाज के बर्मे परमपरा के पोषक व अनुयायी थे फिर भी जैन बौद्ध आदि उत्काल प्रचलित विभिन्न बर्मे के प्रति भी उनकी आस्था थी ।

इन सब बातों के अतिरिक्त महाकवि माधव अपने ईश के श्रुत-प्रेमी दृष्टिक व्यक्ति थे । सरल दृष्टिकता के कारण प्रेम की बहुराई के वर्णन उनके जीवन में नहीं होते । उनका प्रेम वाचना प्रधान है, ऐसा कहना यदि उचित नहीं है तो कम से कम उन्होंने बिना प्रेम का वर्णन किया है वह वाचना का वर्णन है प्रेम का नहीं । उसमें अपने प्रिय बनवा प्रेमी के प्रति जो माँगों को प्रवेष्टित उद्यता एवं बिनामता बनवा सबस्व समर्पण करने की भावना होती चाहिये उसके वर्णन नहीं होते । उनके व्यक्तित्व का यह कोना सूक्ष्म था है बोझा रहित भी ।

महाकाव्य—वास्वीयहटि

कविता का सामान्य स्वरूप —

यह महाकवि माध के जीवन सम्बन्धी तथ्यों को प्रस्तुत करने के परचाए उनके महा काव्य विपुलासवन की शास्त्रीय दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत करता समीचीन है। इसके सिरे यह आवश्यक है कि कविता के सामान्य स्वरूप पर विचार करते हुये महाकाव्य के सफल के सम्बन्ध में प्राचीन और सर्वाचीन विचारों को सामने लाया जाय।

साहित्य समाज का दर्शन कहलाता है। दोनों का यह पारस्परिक सम्बन्ध अनादि काल से बना आ रहा है। यदि कवि वास्वीयहटि ने अपने महाकाव्य रामायण में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था को चित्रित किया है। उनका उस महाकाव्य को मिलने का ज्येष्ठ बचपन प्रसिद्ध था। उसकी पूर्णता मानव के आदर्श स्वरूप को प्रस्तुत करने से सम्भव की दृष्टिसे उनके महाकाव्य में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का चित्रण अभावित हो ही गया। इस महाकाव्य को रचकर वास्वीयहटि ने प्रमाणित कर दिया कि कवि पृथ्वी पर स्वयं की व्यवस्था करता है। वह समाज की व्यवस्था-व्यवस्था, धर्म-अधर्म कर्म-अकर्म नीति-अनीति शिष्ट-चार-अशिष्टाचार यदि मानवीय एवं अमानवीय इच्छात्मक व्यापारों के माध्यम से अपने आदर्शों को, जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को सुन्दरतम भाषा में अभिव्यक्त करता है। कवि का सुन्दर, सत्य और सच का साक्ष्य होता है। उसका सत्य धर्मार्थमय सच का अभिव्यक्ति करता है, इसी तरह उसका सच भी सत्य को प्राप्त के रूप में और सुन्दर को घोर के रूप में स्वीकार करता है। कवि की कला निर्वास्य करी और रोहिणी होती है। समाज निर्माण के एक बड़े काम में वह कला एक अमूल्य प्रेरणा बनकर काम करती है। प्रतिभा शक्ति-सम्पन्न व्युत्पन्न, साधक एवं खेदवशीन कवि की बाली से प्रसूत को भावमयी बाली है बही कविता है। कविता निरचय ही मनोविशेष की साधनी नहीं है। मनोविशेष जसते होता अवरण है। परिस्थितियों की टकराहट में सच और असच इन दोनों में बिरेक रहने वाला कवि आरामानन्द के सिरे को कुछ लिखता है वह अपने आप ही समाज के वि-कस्यालकपी हो जाता है। उनकी प्रेरणा अन्त की प्रेरणाएँ, उसके स्वरूप अन्त के स्वरूप बन जाते हैं। उसकी भाषा सीमित लोगों की होती है पर माध सर्वज्ञानी, आर्वाणीयिक और आर्वाणीयिक होते हैं। स्वार्थ के स्तरों से ऊपर, बहुत ऊपर उठा हुआ कवि माध का कटा निरचय ही ऐसे अमूल्य लोक को सृष्टि करता है जहाँ मानव मन को अन्त नुच को अन्तुष्टि होती है। इस तरह कवि या आरामानन्द लोक का आनन्द बन जाता है। उनका स्व-निष्ठ होते हुए भी समाजनिष्ठ बन जाता है।

इस सम्बन्ध में प्राचीनकों ने कविता का मानवीकरण किया। उसके धरीर और आत्मा की कल्पना की। इस तरह कविता के दो पक्ष हुए भावपक्ष (आत्मपक्ष) और भाषा-पक्ष (कलापक्ष)। इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कविता के सत्य को अपनी अपनी भाषा में अपनी-अपनी जीवन दृष्टि के अनुसार बनाये। उनमें से कुछ यहाँ प्रस्तुत किए जायेंगे। इस सम्बन्ध में पवित्र रामचन्द्र सुक्त कहते हैं 'विश प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान तथा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य की बाणी को सत्य विचार करती है उसे कविता कह्ये है।

प्रागुक्त समय की प्रसिद्ध कवयित्री सुषी महादेवी वर्मा के अनुसार— 'कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उसमें बेसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में धारिण्य हो जाती है।'

संस्कृत काव्य के विकास और काल के तीन युग—

(१) आदि कवि वास्त्विक की रामायण के बाद कामिवास और अस्वभाव के महाकाव्यों में कविता सरस एवं स्वाभाविक है और इसी कारण उनकी कविता लोकप्रिय हो गई है। अद्भुत कल्पना-शक्ति अरिच-विचित्र की अद्वितीयता प्रकृति पर्यवेक्षणा की निष्पुणता शृङ्गार के साधक-कला का सुन्दर संनिवेश अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग एवं भाषा का अद्भुत समुत्पन्न—ये भागो इन दोनों की कविता के सहजगत लक्षण हैं।

(२) आदि और माघ की कविता सम्बन्धी दृष्टि एक रूप में संकीर्ण है। उनके मत में कविता अपनी बहुमता को प्रदर्शित करने का एक साधन है। इसके लिये वे अलंकार कभी घोंसी का आश्रय लेते हैं। कविता का ऐतिहासिक भागो उनके लिए सबसे बड़ा पक्ष है। कविता के क्षेत्र में इस प्रकार परिवर्तन के लिए मारुत की बरसती हुई वे राजनीतिक परिस्थितियों उत्तरदायी हैं जिन्होंने अत्युक्त कवि को राज्याभ्युदय बना रखा। राजकीय जीवन की विनाशिता तथा कुचिन्ता का विपाकत प्रभाव कवि पर निश्चित रूप से पड़ा। राज दरबारों में प्रतिपाद्य शृङ्गाटी भजना वाकपट्ट लोप रहते वे अत्यन्त नायक-नायिकाओं के प्राहार बिहार, हाव भाव भूविनाशिक की चर्चाओं से उनकी रचनाएँ मोत मोत रहती थीं। विमल धर्मों वाले दमोको की भयना अस्वभाव गुरजबन्ध भीमूषिकावन्ध सर्वतोमह अर्धभ्रमक प्रतिभोमानुमोमपाद प्रतिभोमयमक समुत्पन्नक अर्धभयनाभी आदि बन्ध की रचनाएँ राज दमार्थों और कविनीष्टियों में आकर पायी थीं। पर इसका अर्थ यह भी नहीं कि महाकवि माघ भयना आदि केवल इतने मात्र को ही कविता कहते हों। माघ ने तो स्पष्ट लिखा है—

‘नासम्बन्धे वैदित्वा न निपीयति पोष्ये।

राज्यार्थां सत्प्रविरिष द्वयं विद्वानपेक्षते ॥२८६॥

पदवी दृष्टि में केवल राज्यार्थ—समुत्पन्न ही कविता नहीं है। वह कहते हैं—

‘‘स्यामिनाऽर्थे प्रवर्तन्ते भावा स चारिणी यथा।

रम्येकस्य भूपासस्तथा नेतुर्महीभूत ॥२८७॥

(१) घाये बसकर श्री हर्ष आदि के समय में संस्कृत कविता सम्बन्धन घटित हो गई। भाव का स्थान छवित्वविषय के ले लिया। यही संस्कृत-कविता के पतन का काल है।

कवि (शास्त्रीयदृष्टि) —

समीक्षा शास्त्रों के अनुसार कवि के बुद्धिमान् होने के साथ-साथ स्मृतिमान् भवितुम् और प्रज्ञावान् होना आवश्यक है। कवि केवल व्युत्पन्न भवना केवल धम्म्यासी भवना केवल प्रतिमाघासी हो तो वह अपने महान् कवि-कर्म को सम्पन्न नहीं कर सकता। इसीलिए प्रतिमा, व्युत्पत्ति और धम्म्यास इन तीनों को सम्मिश्रित कहा गया है "काव्य इतत्" नहीं। इन तीनों में प्रतिमा सर्वाधिक वांछनीय मानी गई है। कवि काव्य "कुचल" या "कुञ्ज घट्टे" वाला हो "द" प्रत्यय या "कृ" प्रत्यय से निकलता है जिसका धर्म है वर्णन करने वाला। कवि विभिन्न रूप में किसी वस्तु भवना मनोमान का वर्णन करता है। कोई कवि गौड़ी रीति का (जिसमें समास तथा अनुमास का प्रयोग अधिक होता है) कोई 'पांचाली' रीति का (जिसमें समासों का प्रयोग अल्प होता है) तो कोई 'बर्बर' रीति (जिसमें अनुमास तो होते हैं किन्तु बहुत कम समास होते हैं) का प्रयोग करते हैं। कवि बही होता है जो बुद्धिमान् भी होता है चाहे स्मृतिमान् हो चाहे वह भवितुम् या प्रज्ञावान् किन्तु असीत वस्तु का ज्ञान (स्मृति) जिसका परमात्मक है उसका ही वर्तमान वस्तु का ज्ञान (भक्ति) भी होता भवितुम् है। यदि भविष्यत् वस्तु का ज्ञान (प्रज्ञा) जिस कवि में होता तो वह होने में लुप्तभी का कार्य देता। प्रतिमा कवि सदाशिव है। वह ही प्रकार की होती है। कारकिर्जी-प्रतिमा के द्वारा कवि विविधकारी काव्य-वस्तु को प्रस्तुत करता है और भावविशी-प्रतिमा के द्वारा वह काव्य वस्तु को वाक्यात्मक बनाता है। प्रतिमा के के दो भेद घाली दो गुण हैं जो एक दूसरे के पूरक होकर कविता को सम्पूर्ण रूप देते हैं। एक गुणों हैं (प्रतिमा व्युत्पत्ति और धम्म्यास) सम्पन्न कवि कई प्रकार के घाले गये हैं। उनमें तीन प्रकार के कवि मुख्य हैं—शास्त्र-कवि^१ काव्य कवि और उन्नत कवि। ये तीनों ही अपने-अपने क्षेत्र में विपरीत रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

(१) शास्त्र-कवि—काव्य का निर्माण कराने वाली होती है। कुछ तो पूर्वजन्म के संस्कार (आहार्य) से प्राप्त होती है। बहुत-सी बातें मन्त्र, शास्त्र आदि के उपदेश से प्राप्त की जाती हैं।

(२) भावविशी—जो कवि के चरित्र और अभिप्राय का बोध करावे। इतके कवि का कर्म सफल होता है। काव्य को बलकार और सरल बनाने वाला भावक होता है। जब धर्मों को तोड़ मरोड़ कर सीधा धर्म न निकाल कर लोग एक दूसरा ही धर्म लपटाते हैं उस भावविशी धर्म की समझाने वाला भावक ही होता है। वह देखता है कि कौन-सा हक सही है और कौन-सा बलवती।

(३) शास्त्र कवि तीन हैं—शास्त्र का निबन्धन करते हैं शास्त्र में काव्य का सम्मिश्रण करते हैं (लोहितराज का वैद्यक ग्रन्थ) जो काव्य में शास्त्रार्थ का सम्मिश्रण करते हैं (नैषध चरित में बर्जन तप या सिन्धुपातक में राजनीति धर्म)। काव्य कवि घाट हैं—रचना धर्म, धर्म, मनोहार, उत्ति, रस, भाव और शास्त्रार्थ कवि। घाटों गुण वाला महत्कवि होता है।

कविता सम्बन्धी मत —

इस प्रकार के कवियों की बाणी से प्रसूत कविता के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय संस्कृति साहित्य साधकों ने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं उनमें ये प्रमुख हैं :—

१. अग्निपुराण—विज्ञान में सब्यों की पारिभाषिकता इतिहास में सत्य के प्रति निष्ठा का बँधा महत्व है काव्य में वैसा ही महत्व अग्निबा (शब्द का प्रत्यक्ष सञ्चितिक अर्थ) का रहता है । इस भाँति अग्निबा को ही काव्य के लिए महत्व देते हुए, धामे अग्निपुराण में काव्य को संक्षेप में कहा हुआ ऐसा वाक्य बताया गया है जिसमें अलंकार और सुष्ठों का सम्मान हो और दोनों का अभाव ।

२. हप्ती—अग्नीष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाले सुविश्वस्त शब्द ही काव्य की संज्ञा को वास्तव्य करते हैं ।

३. चरक—इष्टार्थ व्यञ्जित्वन पद्यावली को काव्य कहते हैं । इस मतानुसार में अर्थ से युक्त शब्द की कोई स्थिति नहीं मानी गयी है । ये दोनों काव्य-गुण के धरीर और आत्मा हैं भव दोनों का सम्बन्ध ही काव्य का वास्तविक रूप प्रस्तुत करता है ।

४. आचार्य रामानुज—काव्य अलंकार से ही प्राप्त है । अलंकार काव्य का सौन्दर्य है । काव्य शोधरहित और सुखानलंकार संनिविष्ट होना चाहिये । इस सौन्दर्य की आचना रीति से होती है इसलिये उन्होंने रीति को प्रधान मानते हुये काव्य की आत्मा बताया (रीतिपरमा काव्यस्य) । (यही रीति जाने जानकर खोजी कहमाती) ।

५. कुन्ता—वक्रोक्ति से युक्त अलंकारविशेष ही काव्य है । वक्रोक्ति वहाँ से उचित अर्थ में न होकर अर्थ और रस भावि तक की शोचिता है ।

६. आचार्य बर्चन—‘काव्यस्य आत्मा अग्निः । अग्नि काव्य है । वहाँ अग्नि को प्रकृष्टा देकर काव्य की आत्मा कहा गया है ।

७. आचार्य विश्वनाथ—रस से परिपूर्ण वाक्य ही काव्य है । वहाँ रस को प्रधान मानकर उसे काव्य की आत्मा कहा गया है ।

८. जयभार्य—रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है । यहाँ अर्थ को काव्य का धरीर और रमणीय अर्थ को इस धरीर का आत्मा माना गया है ।

९. आचार्य मम्मट—छन्द से सहमत होकर रहते हैं ।

१. शास्त्रे अथ्य प्रधानत्वमितिहासोपनिष्ठा । अग्निबायाः प्रधानत्वस्तुत्तम्यं ताव्यां विनिश्चये ॥

२. संक्षेपाद् वाच्यमिदानीं व्यञ्जित्वमा पद्यावली । काव्यं स्फुरत्कर्तारं सुखबोधवर्जितम् ॥

३. धरीरं तावद्विद्वान् व्यञ्जित्वमा पद्यावली । ननु अलंकारं काव्यम् ।

४. काव्यं प्राह्वं अलंकारात् । सौन्दर्यमलंकारः । सर्वोयं सुखानलंकाराणां आत्मा ॥

५. आचार्यं तद्विद्वान् बह्वं कवि व्यापार आनिनि । अर्थमे व्यञ्जित्वो काव्यं—।

६. वाक्यं रसतत्त्वक काव्यम् ।

इस तरह संस्कृत साहित्य विचारकों के अनुसार काव्य के स्वरूप की विवेचना संक्षेप में प्रस्तुत हुई। काव्य का जो उपादान जिसकी मुख्य भाव पड़ा उसे उसने काव्य की धारणा बनाया और शेष उपादानों को सरीर धारणा उसके प्रमाण बताया। इस तरह सम्भवकारी धारणाओं ने काव्य में रस भाव, धींचित्य, यमि रास्यपक्षि मुख्य अलंकार धारि का स्थान निश्चित किया और इनके विधातक (स्रोतों) तत्त्वों का भी वर्णन किया। यहाँ इन दृष्टिकोणों का संक्षिप्त विवेचन ही उचित है। विस्तार में नीचे लिखे ग्रन्थों को विवेचन रूप से देखा जा सकता है।

कविता के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के पश्चात् यह भी उचित है कि कुछ पारश्चात्य दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किये जाय—

पारश्चात्य देश काव्य को कला स्वीकार करते हुए विभिन्न मत प्रस्तुत कर रहे हैं—

(a) कला कला के लिए (b) कला जीवन के लिए (c) कला जीवन में प्रविष्ट होने के हेतु (d) कला सेवा सुखी के लिए (e) कला जीवन में पसावन के लिए (f) कला ध्यान के लिए (g) कला विरोध के लिए (h) कला आत्मापुष्टि के लिए। कविता क्या है इसके लिए इसके विभिन्न मत निम्नलिखित हैं।

(१) कविता मूल में जीवन की आलोचना है—मणू पार्सल्ल

(२) कविता सन्ति के समय स्मरण की हुई उल्टे भावनाओं का सहजोप

—वर्ब तवर्ब

(३) कविता सत्य जीवन तथा धर्म के लिए होने वाली कृति का ही मुखरण है यह अपने आपको प्रत्यक्ष कल्पना तथा भावना के आधार पर कहा करती और निर्दिष्ट करती है। यह भाषा को विविधता तथा एकता के विधान पर स्वर-जय सम्पन्न करती है—ने हू

(४) कविता उत्तमोत्तम धर्मों का उत्तमोत्तम अविविचार है—अधरिज

(५) उरस अथप्रमूलक और आत्मात्मक होना ही कविता है—मिस्टन

(६) कविता सर्वोपय रचना है—आनसन

८—रमणीयार्थ प्रतिपादक साधः काव्यम् ।

जीव—निर्दोष सुखकाव्यमनन्दकरैरलंकृतम् ।

हैमचन्द्र—अदोषी सगुणी सारकारी व सम्भाषी काव्यम् ।

विद्यादास—गुणालंकार अद्विती राधाधर्मी शोचकविती काव्यम् ।

बागमट्ट—सम्भाषी निर्दोषी सगुणी प्राक् सारकारी काव्यम् ।

अन्नामोद—निर्दोषा ललाटावती सरीतिगुणामुपपत्ता ।

सारकाररत्नानेकभूतिर्वाकाव्य नामवाक् ॥

(*) साहित्य दर्पण, काव्यप्रकाश, काव्यादर्श अन्नामोद, काव्यालंकार

(a) Art for Arts sake (b) Art for life sake (c) Art as an escape into life
(d) Art for service sake (e) Art as an escape from life (f) Art for joy (g)
Art for recreation (h) Art for self realization.

कविता सम्बन्धी मत —

इस प्रकार के कवियों की बाखी से प्रसूत कविता के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय संस्कृति साहित्य शास्त्रियों ने जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं उनमें ये प्रमुख हैं —

१. अग्निपुराण—विज्ञान में धर्मों की पारिवर्षिकता इतिहास में सत्य के प्रति निष्ठा का बीसा महत्व है काव्य में बीसा ही महत्व अग्निषा (सध्व का प्रत्यक्ष संचितिक धर्म) का रहता है । इस मति अग्निषा को ही काव्य के लिए महत्व देते हुए, आने धनिपुराण में काव्य को संक्षेप में कहा हुआ ऐसा वाक्य बताया गया है जिसमें धर्मकार और गुणों का सम्भाव हो और दोषों का प्रभाव ।

२. द्रष्टा—समीष्ट धर्म को व्यक्त करने वाले सुविश्वस्त शब्द ही काव्य की संज्ञा को धारण करते हैं ।

३. छन्द—दृष्टार्थ व्यवस्थित पदावली को काव्य कहते हैं । इस कारण में धर्म से पुनः शब्द की कोई स्थिति नहीं मानी गयी है । ये दोनों काव्य-पुस्त्य के शरीर और आत्मा हैं मत दोनों का समन्वय ही काव्य का वास्तविक रूप प्रस्तुत करता है ।

४. आचार्य बामन—काव्य धर्मकार से ही प्राप्त है । धर्मकार काव्य का सौम्य है । काव्य बोधरहित और गुणालंकार संनिविष्ट होगा बाह्ये । इस सौम्य की साधना रीति से होती है इसलिये सन्निविष्ट रीति को प्रधान मानते हुये काव्य की धारणा बनाया (विविधता काव्यत्व) । (यही रीति आने चलकर खेती कहलाती है)

५. कुतल—बक्रोक्ति से कुछ शब्दार्थविश्यास ही काव्य है । बक्रोक्ति यहाँ से उचित धर्म में न होकर ध्वनि और रस आवि तक की बोधिता है ।

६. आचार्य चरन—'काव्यस्य धारणा ध्वनि ।' ध्वनि काव्य है । यहाँ ध्वनि को मुख्यता देकर काव्य की धारणा कहा गया है ।

७. आचार्य विश्वनाथ—रस से परिपूर्ण वाक्य ही काव्य है । यहाँ रस को प्रधान मानकर उसे काव्य की धारणा कहा गया है ।

८. बगमाच—रमणीय धर्म का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है । यहाँ शब्द को काव्य का शरीर और रमणीय धर्म को इस शरीर का धारणा माना गया है ।

९. आचार्य बम्भ—छन्द से सम्मत होकर रहते हैं ।

१. आर्ये धर्म प्रधानत्वमितिहासेषु निष्ठता । अग्निषायाः प्रभावत्वात्काव्यं ताव्यां विमिश्रते ॥

२. संसेवाद् वाचयमिहायं व्यवस्थित्वा पदावली । काव्यं स्फुरत्कर्तारं गुणबहुवर्धितम् ॥

३. शरीरं तावदिहायं व्यवस्थित्वा पदावली । ननु शब्दार्थं काव्यम् ।

४. काव्यं प्राहुः धर्मकारात् । सौम्यधर्मकारः । सर्वेषु गुणालंकारहानावनाम्नाम् ।

५. धर्मार्थं संहिती एक कवि ध्यापार धामिनि । प्रथमे व्यवस्थितौ काव्यं—

७. वाच्यं रसात्मकं काव्यम् ।

इस तरह संस्कृत साहित्य विचारकों के अनुसार काव्य के स्वस्व की विवेचना संक्षेप में प्रस्तुत हुई। काव्य का जो अपादान जिसको मुख्य ध्यान पड़ा उसे उसने काव्य की आत्मा बनाया और शेष अपादानों को सरीर प्रथमा उसके प्रसाधन बताया। इस तरह समन्वयकारी भाषायों ने काव्य में रस भाव, मौखिक व्यक्ति व्यवस्थित गुरु, धातुकार प्रादि का स्थान निश्चित किया और इनके विनाशक (दोषों) तत्त्वों का भी वर्णन किया। यही हम इष्टिकोशों का संक्षिप्त विवेचन ही उचित है। विस्तार में नीचे निम्ने शब्दों को विवेचन रूप से देखा जा सकता है।

कविता के प्रति भारतीय दृष्टिकोश को प्रस्तुत करने के पश्चात् यह भी उचित है कि कुछ प्रास्ताव्य दृष्टिकोश भी प्रस्तुत किए जायें—

प्रास्ताव्य देष्ट काव्य को कला स्वीकार करते हुए विभिन्न मत प्रस्तुत कर रहे हैं—

(a) कला कला के लिए (b) कला जीवन के लिए (c) कला जीवन में प्रविष्ट होने के हेतु (d) कला सेवा सुभूषा के लिए (e) कला जीवन से पसाधन के लिए (f) कला आनन्द के लिए (g) कला विनोद के लिए (h) कला आनन्दभूषि के लिए। कविता क्या है इसके लिए इसके विभिन्न मत निम्नलिखित हैं।

(१) कविता मूक में जीवन की आलोचना है—मैथ्यू आर्नल्ड।

(२) कविता धानि के समय स्मरण की हुई उत्कट भावनाओं का सहस्रक

—बर्ट रसेल

(३) कविता तत्त्व, सौम्य तथा शक्ति के लिए होने वाली कृति का ही मुहरण है यह अपने आपको प्रत्यक्ष कल्पना तथा भावना के आधार पर खड़ा करती और निर्विष्ट करती है। यह भाषा को विविधता तथा एकता के सिद्धान्त पर स्वर-लय सम्पन्न करती है—जे ह्यू

(४) कविता उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम व्यवस्थान है—कवर्नर।

(५) सरल प्रत्यक्षमूलक और आनन्दमय होना ही कविता है—मिल्टन।

(६) कविता संक्षेप रचना है—बालसन।

घ—रक्तोपास्य प्रतिपादक अर्थ काव्यम्।

शब्द—निर्दोष सुलभाकाव्यमार्गकाररत्नम्।

हेमचन्द्र—शरीरी सुगुणी सारंगरी व आध्यात्मिक काव्यम्।

विद्यानाथ—सुलभाकर सङ्गीत आध्यात्मिक शोषमयी काव्यम्।

बाणभट्ट—आध्यात्मिक निर्दोष सुगुणी प्रायः सारंगरी काव्यम्।

अभ्रानोक—निर्दोष आनन्दमयी सरील्लिखितामुपला।

सारंगरीरत्नानेककृतिविकाव्य नाममात्रम्॥

(*) साहित्य दर्पण, काव्यप्रकाश, काव्यावर्ध अभ्रानोक, आध्यात्मिक

(a) Art for Art's sake (b) Art for life's sake (c) Art as an escape from life

(d) Art for service's sake (e) Art as an escape from life (f) Art for Art (g)

Art for recreation (h) Art for self realization,

(७) कविता सत्य तथा प्रसन्नता के सम्मिश्रण को कला है जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है—बानसन ।

(८) कविता स्थिति तथा सर्वोत्तम धारणाओं के परिपूर्ण अर्थों के लेखा है—श्रीमे ।

(९) सर्वोत्तम क्रम में (विन्यस्त) सर्वोत्तम शब्द की सजा ही काव्य है—कामरिज ।

(१०) शब्दार्थ का उच्चाति तथा कोटि का समन्वय यदि कहीं सम्भव है तो काव्य में ही । काव्यविषयक सत्य और सौंदर्य के नियमों द्वारा निश्चित स्थितियों में की गई चीजन की प्रामोदना ही काव्य है—मैथ्यू आर्नेल्ड ।

(११) विचार और शब्द जिनके रूप में मनोवेग उत्क्रांत स्वयं इन बातें हैं काव्य इसके प्रतिरिक्त और है ही क्या वस्तु—जान स्टुयर्ट मिल ।

(१२) भावात्मक तथा लघुबद्ध भाषा के माध्यम से मानव मन (चेतना) की मूर्त और कलात्मक अभिव्यक्ति ही काव्य है—जेम्स रॉबर्ट्स (एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका)

(१३) कवि का कर्तव्य सभी प्रकार अनुकरण करना अवश्य है पर आत्मा पर प्रभाव डालना तथा भावना को आवृत करना सर्वोपरि सर्वोत्तम है । केवल अनुकरण ही तो यह कार्य नहीं कर सकता—फ्रेडरिक गी ।

Foot-note could

- (1) Poetry is at bottom a criticism of life
 - (2) Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotions recollected in tranquillity
 - (3) The utterance of passion for truth, beauty and power embodying and illustrating its conceptions by imagination and fancy and modulating its language on the principles of variety in unity
 - (4) Poetry is the best words in the best order
 - (5) Poetry should be simple sensuous and passionate.
 - (6) Poetry is metrical composition.
 - (7) Best words in the best order
 - (8) Poetry is simply the most delightful and perfect form of utterance that human words can reach. It is nothing less than the most perfect man, that in which he comes nearest to being able to utter the truth.
 - (9) Poetry is a criticism of life under the conditions fixed for such criticism by the laws of poetic truth and poetic beauty
 - (10) What is poetry but the thoughts and words in which emotion spontaneously embodies itself.
 - (11) Poetry is the concrete and artistic expression of the human mind in emotional rhythmical language
 - (12) It is true that to imitate will is poets work but to affect the sound excite the passions and above all to move admiration (which is the delight of the serious plays) a bare imitation will not serve
- Poetry is the expression of imagination.

१३ काव्य यदसंश्रयं कृते व्यवहारविधे विवेतरसात्म्ये ।

संघः परमिव सत्ये कान्तासम्मिश्रतत्त्वोपदेशयुजे ॥ काव्य प्रकाश १/२

● कविबर धनी काव्य की प्रतिभा की ही प्रति व्यञ्जना स्वीकार करते हैं। इसी प्रतिभा के विषय में काव्य तथा कोमलिक का मत एक सा है। काव्य की कल्पना के तीन रूप हैं—सम्प्रे-
सक प्रतिभा उत्पादक कल्पना तथा सौंदर्य कल्पना। ज्योती काव्य की महनीयता तथा सुन्दरता को बाह्य व कहकर अन्तः स्फुरण कहते हैं। ये कवियों की प्रभर से तुलना करते हैं जो भाषा-
उद्यानों में से समुदायि एकत्र कर लाता है फिर कल्पना के पंखों से कोमल होकर तन्म को
व्यक्त करता है। स्फूर्ति, प्रेरणा या प्रतिभा ही कविता का बीज है।

भारतीय दृष्टि इस बीज की व्याख्या में वास्तविक व्यापक है। विशेष के लिए
बहुलता, धारणा वर्णन अभिनवकृत रावबेबल, कुलक व महिमयु की संतरंग परीक्षा पर
विचार करें।

सब से यह है कि कविता सर्वत्र और सर्वत्र पर स्थित है। सर्वत्र कविता का साम-
रिक भाग है तथा सर्वत्र बाह्य भाग। ऐसी हुई बात को (प्रतिभा की वस्तु से) धर्मों का
सुन्दर कवैबर देकर रसी व्यापक वह बात 'रस' का 'पर' के साथ तात्पर्य होकर 'साधारणी-
करण' से रस प्राप्ति में अवश्य सहयोग देती। 'हृदयवाङ्मय' कविप्रपञ्चना 'रसविता' की
कविता नहीं कहलाती। वास्तविक कविता का रूप तो विशेष प्रकार की धारणाप्रवृत्ति को
लिए हुए किसी विषय प्रबोधन के लिए ही प्रवृत्त होता है।

उत्तर हमने भारतीय और यूरोपीय साहित्याचार्यों के कविता सम्बन्धी मतों का उल्लेख
किया। कवियों ने अपने काव्यों में भी वन वन कविता के लक्षण बताये हैं।

माय कवि ने अपने विदुषात्मक महाकाव्य में इस सम्बन्ध में निम्न प्रकार से
प्रकाश वाला है—

मुणु—तेजः क्षमा वा नैकान्त कालशरम महीपतेः ।

नैवमीत्र प्रसादो वा रसमात्मविद कवेः ॥ २-८३ ॥

रस—स्वायिनीर्ध्व प्रवर्तन्ते भाषा-संचारिणो यथा ।

रसस्मैकस्य सूर्यासस्वभा नेतुर्महीभूत ॥ २-८७ ॥

शैली—असीमसीमणि धनामनस्यगुणकल्पिताम् ।

प्रनारयन्ति कुलमादिषवा बाधं पटीमिव ॥ २-७४ ॥

माय के इन काव्य लक्षणों को देखने से विदित होता कि वह मयम्बवारी साहित्यिक
वे। उनके अनुसार वाग्य का प्रमाण यह था—

'तदवोपी गणुणी सरसी सासंवागौ सवदार्थो द्वायम् ।

हमने कविता राज्य पर पाठकों का ध्यान आकषित करते हुए कहा था कि माय मुकवि
उत्ती को कहते जिसके वाक्य में वा कविता में धर्म और धर्म दोनों ही धरेला हो बंसे देव

पर त्रिन्यासों की कुशलता है, धनुषासी, पञ्चक रसैय, बल्लोहित, स्वभावोहित धारि का सुन्दर धाकपल्लव है किन्तु नहीं, उसमें रस रूप, आत्मा को प्रविष्ट करने की भी एक सुन्दर प्रतिमासा मिली दक्षित है और वह ही वास्तविक काव्य है। इसीलिए कहा गया है 'काम्येषु माय काम्यो मे माय ही सर्वोपरि है यह उक्ति खरी सतरती है।

महाकवियों की कुछ ऐसी विलक्षण शक्ति होती है कि वे किसी भी व्यक्तिगत भाव को सार्वजनिक और सार्वकामिक रूप में देते हैं। इनका प्रकृति निरीक्षण इतना सूक्ष्म और संवेदनापूर्ण होता है कि उससे प्रसूत वर्णन सहृदय मान की स्वाभाविक शक्ति के उन्मेष और विकास में सहीपक का काम करता है। यह वर्णन चाहे मानवीय प्रकृति का हो और चाहे सैय प्रकृति का और वर्णन करने वाला महाकवि चाहे यथार्थ कवि हो या धावर्ष कवि अपना प्रभाव जोड़ा वा वर्णक के मनो पर निश्चित रूप से छोड़ता है। कवि का—समर्प कवि का—सम्बन्ध इस प्रभाव से है इसीलिए उसकी मंगलमयी शक्ति भी उससे जुड़ी रहती है। इस शक्ति से जो धाम्नि मिश्रता है वही रस की प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए कवि को दम्भ-सर्वियों का अवलंबन नैवा बढ़ता है। इसी प्रसंग में दम्भ-व्यक्तियों ध्वनि, धर्मकार, रीति गुण और शेष धारि पर विचार स्वाभाविक हो जाता है। समीक्षकों में कविता के तत्त्वों का वर्णन मिला है। यह वर्णन विस्तेषलात्मक है। रस एक पूर्णतः संविष्ट वस्तु है, जिसका विस्तेषण असम्भव है। जिन रूपों में होकर, जिन जोड़ों के माध्यम से रस—चाहे वे जोड़ कथानक के हों चाहे पात्रों के, और चाहे परिस्थितियों के—(वातावरण) रस विस्तेष की अनुभूति होती है इनका अवयव ही विस्तेषण संभव है। कविता के तत्त्वों का विचार इन्हीं बातों के विस्तेषण का विचार है। कविता के मुख्यतः ४ तत्व माने गये हैं—वाचतत्व कल्पना तत्व बुद्धि तत्व और सौखी तत्व। भाव कल्पना और बुद्धि के काव्य के आत्मतत्व के (भावपत्र) निर्माता हैं और इनसे प्रेरित और प्रसूत सैती काव्य के धारी की (कलापत्र) निर्माता। महाकाव्य में इन तत्वों का सम्पूर्ण उपयोग होता है, इसीलिए कविता के दूसरे जेहों की अपेक्षा महाकाव्य के द्वारा रसानुभूति एक बहुवचन स्थापित को लेकर होती है। यह कहना ठीक ही है कि कवि अपनी प्रतिभा से अपने कुछ कुछ, अपनी कल्पना और जीवन की ध्वनिमयता के भीतर से संसार के समस्त वस्तुओं के निरन्तर रूप के आवेगों और जीवन की आत्मिक बातों को आप ही प्रतिध्वनित कर देता है और वही कवि महाकवि के रूप में जाया के माध्यम से मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति द्वारा अपनी रचना को सदा के लिये समर बना देता है। हिन्दी साहित्य के महारथी डा० दयानन्दराय इसी बात को इन शब्दों में लिखते हैं कवि अपनी दम्भराया में प्रवेश करके अपने अनुभवों तथा भावनाओं से प्रेरित होता है तथा अपने प्रतिपाद्य विषय को बूझ निकालता है और महाकवि अपनी दम्भराया से बाहर बाकर सांसारिक इत्यों और रायों में बैठता है और जो कुछ बूझ निकालता है उसका वर्णन करता है। कवि का क्षेत्र आवातमक व्यक्तित्वप्रधान है (धार्मिक आत्मनिर्मलकता प्रधान) और महाकवि का क्षेत्र विषय प्रधान (जीविकता प्रधान) है जीविकता प्रधान काव्य में वर्णन की प्रधानता रहती है यद्यपि यह वर्णन प्रधान काव्य ही कहा जा सकता है। विषय प्रधान कविता अनुभव की कर्मशीलता से उत्पन्न होती है। प्राचीन महाकाव्यों के मूल में प्रथम मित कीरपूजा की भावना ही कार्य करती है। ऐसी कविता में कवि के विचारों तथा अनु

१ धारम्यायिका, ४ कथा ५ धर्मिण्य (युक्तक) काव्य । महाकाव्य सर्वव्यापक काव्य का ही दूसरा नाम है । इसमें महान विषय का निष्पन्न अवसर हो घाम्य शब्द न हो धर्म सौम्य धर्म कार की छाटा तथा नाट्यिक वा धरुण्य कौटि की कथा की का वर्णन हो, राजवर्या, युव धारम्य, युवादि के विषय के साध नायक का धर्म्यय धर्म में अवसर हो । नाटक की पत्र सन्धिवाँ उसमें होती है जिसमें कथानक की अधिक व्याख्या की आवश्यकता नहीं जो स्वयं उत्कर्षपूर्ण होता है । काव्यगत छाटा ने साथ ही जिसमें चतुर्वर्ग्यकम (धर्म धर्म काम मोक्ष) का भी समावेश हो । धर्म की प्रधानता के साथ ही उसमें जो स्वभाव (स्वाभाविकता का गुण) उसमें रहता है । समस्त रसों की छाटा भी रहती है । धर्म में नायक को, जो धारम्य में कुलीन धर्मिणासी, प्रतिनायक व विद्वान् विद्याया गया है, विद्वान् भी विद्याना धारम्यक है । वह न हो कि किसी धर्म पात्र की सफलता के हित उसका भव विद्या विद्या जाय । धारम्य ईश्वरी (काव्यावर्ग में) —

(२) महाकाव्य की कथा-वस्तु कवि कल्पना प्रसूत न होकर किसी प्राचीन सास्त्रानुसंग या ऐतिहासिक कृत के आधार पर होनी चाहिए । नायक बीरोदात्त प्रकृति का हो । उसमें नय, समुद्र पर्वत, भूत, सुखदय चन्द्रोरय बलश्रीका उद्यान विहार, विवाह पात्रा पुत्र तथा विजय प्राप्ति आदि विषयों का बलुन उपयुक्त स्थानों पर होना चाहिए । उसमें शृङ्गार धर्मवा बीर रस प्रधान रहता है और दूसरे रस मौल्य रूप में विहित होते हैं । सम्पूर्ण काव्य सभी में विभाजित रहता है । धर्म बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए । प्रति धर्म में एक ही कृत के स्तोत्र रहते हैं । किन्तु धर्म के धर्म में भिन्नकृत होना आवश्यक है । मयसाधारण धारम्यवादात्मक, नयसाधारणक धर्मवा वस्तुनिर्देशात्मक होना चाहिए ।

(३) विरचना (धर्म साहित्य धर्म्य में) — जिसमें धर्मों का विरचन हो वह महा काव्य है । इसमें एक देवता वा सर्वशक्तिविश्व जिसमें बीरोदात्त भावि प्रसूत हों नायक होता है । कहीं पर एक रस के सत्कुलीन धर्मक भूप भी नायक होते हैं । शृङ्गार, बीर धारम्य आदि में से कोई एक रस धर्म होता है धर्म रस भी रहते हैं । सब नाटक सन्धिवाँ रहती है । कथा ऐतिहासिक वा लोक में प्रसिद्ध सज्जन वीरविजयी होती है । धर्म धर्म काम और मोक्ष रस चतुर्वर्ग्य में से एक उसका कर्म होता है । धारम्य में धारम्यवा विरचन वा धर्म्यवस्तु का निर्बन्ध होता है । कहीं-कहीं पर दुष्टों की निष्ठा और सज्जनों का युष्ठावर्त्तन होता है । इसमें न तो बहुत ही छोटे, न बहुत ही बड़े धर्म से अधिक रस होते हैं । उनमें प्रत्येक में एक ही धर्म होता है किन्तु धर्म्यय पद्य (धर्म का) भिन्न धर्म्य होता है । कहीं-कहीं धर्म में धर्मक धर्म भी विसर्त हैं । धर्म के धर्म में धर्मवा कथा की धर्मवा होनी चाहिये । इसमें सज्जन धर्म चन्द्रमा धर्म प्रदीप धर्मधार दिन प्रातःकाल मध्याह्न, धर्मवा विहार, पर्वत धर्म (पर्वतधर्म) धर्म समुद्र धर्मवा धर्मवा धर्म धर्म नय, धर्म धर्मवा धर्म, विवाह धर्म पुत्र और धर्म्यय आदि वा धर्म धर्मवा धर्मवा धर्म होता है । इसका नाम धर्म के नाम से (धर्म) वा धर्म के नाम से धर्म धर्मधार धर्म धर्म धर्मधार धर्म के नाम से धर्म 'धर्म' होना चाहिये । कहीं धर्म के धर्मवा धर्म धर्म होता है धर्म 'धर्म' धर्म की धर्मवा धर्म से धर्म का नाम भी रक्षता जाता है ।

उपर्युक्त बातों का विधान उस समय का है जब संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की रचना हो चुकी थी। उन लक्ष्य ग्रन्थों के निर्माणोपरान्त ही लक्षण ग्रन्थों की रचना हुई। इन सारे बातों का समरस पालन सभी महा काव्यों में होना प्रायः असम्भव है। इन लक्षणों के आधार पर (भारतीय भाषाओं के अनुसार) महाकाव्य का स्वरूप कुछ इस प्रकार का बनता है।—

१—महाकाव्य का सर्वव्यापक होना आवश्यक है जो अवन्तर के गुणार्थ संबंधों से युक्त हो।

२—उसका नायक पाठकों को प्रवेश देने वाला भीरोदात्त अभिय भवता हैवता होना चाहिए।

३—यह पाठकों से बड़ा तथा अनेक वृत्तों (कव्यों) से युक्त होना चाहिए।

४—महाकाव्य की कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है अथवा सम्भवनामित्र जिसमें जीवन काल तथा प्रकृति के विभिन्न घटकों का चित्रण सुन्दर रूप में आता है।

५—युद्धार, वीर छान्द रसों में कोई एक रस प्रबल रूप में होता है।

६—प्रकृतिचरित्र के रूप में इसमें नगर, बर्तन समुद्र पर्वत सम्पदा प्रातःकाम, संश्रम यात्रा तथा ऋतुओं आदि का वर्णन भी आवश्यक है।

७—यही है काव्य शीघ्र तथा काव्य के समस्त प्रमुख गुण विकसित रूप में हो।

पाश्चात्य दृष्टिकोण—

पाश्चात्य महाकाव्यों के अध्ययन के पश्चात् वहाँ के समीक्षकों ने भी महाकाव्य के नीचे निम्ने लक्षण बताये हैं जिनका सार यह है—

१—महाकाव्य एक विद्यालयका वर्णन प्रमाण (Narrative) काव्य है।^१

२—युद्ध प्रिय इस महाकाव्य का नायक होता है तथा अन्य पात्र हीरो गुण की प्रशंसा करने होते हैं।

३—केवल व्यक्ति का ही चरित्र चित्रण हो ऐसी बात नहीं किन्तु उसमें सम्पूर्ण जाति के क्रिया कलाप का भी वर्णन अवश्य होता है इसके अतिरिक्त व्यक्ति की अपेक्षा उसमें जातीय भावनाओं की भी प्रधानता रहती है।

१ साहित्यदर्पण १, ३१४, २४ देखिये।

२ अन्य आलोचक कबु कहते हैं कि प्राचीन घटनाओं के चित्रण के लिये एक कथक के रूप में महाकाव्य लिखा जाता है। (क) रीति का कहना है कि महाकाव्य की घटनाएँ न तो बहुत ही प्राचीन होनी चाहिए और न अत्यन्त नवीन ही। (ख) युद्ध का तो कहना है कि प्राचीन घटनाओं की अपेक्षा वर्तमान घटनाएँ ही महाकाव्य की वृद्धिमान बनाने के लिए उपयुक्त हैं। (ग) डेवनाग्र कहते हैं कि महाकाव्यों का आधार प्राचीन घटनाओं पर ही प्रतिष्ठित होता है और यह होना भी चाहिए।

४—(कुछ विद्वानों के मतानुसार) महाकाव्य के पात्रों का सम्पर्क देवताओं से रहता है इसीलिए जब-जब भी उनके कार्यों की विस्तार्य निर्धारित होती है तब तब में देवताओं का अपना भाग्य का हाथ प्रवेश रहता है किन्तु कुछ इसके प्रतिवृत्त हैं ।^१

५—इसका विषय परम्परा से प्रतिष्ठित और लोकप्रिय होता है ।

६—इसका सम्पूर्ण कथा सूत्र नायक से बँधा रहता है ।

७—इसकी रीती उच्चता को लिए हुई विशिष्ट शासीन होती है तथा एक ही रस का प्रयोग धारि से अन्य तक रहता है ।

ये हैं महाकाव्य के सम्बन्ध में भारतीय तथा पारश्चात्य दृष्टिकोण । पारश्चात्य महाकाव्यों में वहाँ पर जातीय भावनाओं के समावेश पर अधिक बल दिया गया है वहाँ पर भारतीय महाकाव्यों में जातीय भावनाओं के युद्ध, यात्रा तथा ऋतु धारि का वर्णन आवश्यक माना गया है । भारतीय महाकाव्यों में रसों की विविधता का नियमन है जबकि पारश्चात्य महाकाव्यों में धारि से अन्त तक एक ही रस का प्रयोग होता है । जीवन का आकाशवादी दृष्टिकोण जीवन की अनन्ता में विराट् अस्त का सत में विस्मय धारि का द्विज में समाहार और अनुत्तर का सुन्दर में परिणाम धारि वहाँ भारतीय महाकाव्य की विशेषताएँ हैं । भारतीय महाकाव्यों के सुखान्त एवं आनन्दवादी होने का रहस्य इन विशेषताओं से समझ में आ सकता है ।

संक्षेप में यदि यह निकसता है कि पारश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य पर इतना सुस्माति सुख विचार नहीं किया जितना हमारे संस्कृत के आचार्यों द्वारा किया गया है । पारश्चात्य दृष्टिकोण महाकाव्य की विस्तृत सीमा, वर्णन बाहुल्य लोचप्रिय व विख्यात पटना पात्रों की वीरता कथानक की प्रबलकता तथा रीति की महानता को धमिकार करता है ।

आधुनिक दृष्टिकोण—

विज्ञान के इस युग में वहाँ अन्य समस्त वस्तु में बिनास दिखलाई पड़ता है वहाँ महाकाव्यों के स्वरूप पूर्व जगहों में भी कवियों के दृष्टिकोणानुसार पर्याप्त रूप से बिनास हुआ है । वहाँ संस्कृत के आचार्य कथावस्तु का केवल व्यापक होना ही स्वीकार करते थे वहाँ सही कथानक के व्यापकत्व के साथ-साथ सुमरठित होना भी स्वीकार करते हैं तथा पाठकों की भावनाओं को तरंगित करने वाले व्यापारों का वर्णन भी उसमें होता है । हृदय जब तक प्रीतिवित न हो तब तक उस कवि की भाव व्यंजना ही क्या हो सकती है अतः ऐसी भाव व्यंजना का भी समावेश होता है । संवादों में रचिबर्जक चारित्र्य के गाय-त्रास नाटकीयता और प्रीतिवित का गुण भी आनन्द आवश्यक समझा गया है । रीति का प्रीत होना तो अनिवार्य है ही किन्तु उदारा की महानता भी उसमें स्वीकार की गई है । ये सब बातें तुलसी के महाकाव्य 'राघवचरितमानस' के लिए बरतित हैं । यह धार्य महाकाव्य आधुनिक दृष्टिकोण

१ सुकन का कहना है कि महाकाव्य के पात्रों के आश्रयस्थानों में देवताओं तथा देवी प्रति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए ।

ये हो सकता है। तुमही के पदचातुर्धर कवियों ने इससे भिन्न दृष्टिकोण को अपनाया है। इनमें इतिवृत्त (कथानक) अति संक्षिप्त तथा सूक्ष्म रहता है। स्थूल-वटमारों भी प्रायः नमस्कार ही हैं, मानसिक संघर्ष इनमें अधिक है बाह्य संघर्ष का अभाव सा है। इनके पात्र में उनकी हृदयतमों की अभिरुचि का ही साव-साव सूक्ष्म मनोविस्फोष भी बिखलाई पड़ता है। ये वर्तमान युग की समस्याओं पर अत्यधिक प्रकाश डालते हैं जिनके भीतर पाठकों के लिए कुछ संदेश भी रहता है। 'कामायनी' में ये रूप देखने के लिए मिलेंगे।

इस भाँति महाकाव्यों का भाव विनोदित रूप अवश्य परिवर्तित होता जा रहा है किन्तु इन महाकाव्यों में संस्कृत साहित्याचार्यों वाली उन अनेक बातों का तथा उस नम्रोत्साह का एक ऐसा अभाव है जो सचमुच में एक महाकाव्य में होना चाहिए। यह बात अवश्य है कि महाकवि किसी महान् पात्र या संवाद को बताने वाली महान् काव्य रचना का गुण अथवा लक्ष्य भी रहे हुए हैं।

त्रिमुपासक महाकाव्य

पादवार्य दृष्टिकोण के अनुसार

त्रिमुपासक महाकाव्य की बटना प्रति प्राचीन है जिसका वर्णन महाभारत पुराण तथा रामायण आदि ग्रन्थों में मिलता है। इसकी कथा तो बहुत छोटी है किन्तु इसको प्राचार्य रूप में रखकर कवि ने कल्पना की जैसी ऊँची-ऊँची उड़ानें मरी हैं उन सब को देखते ही बनता है। इसके अतिरिक्त उसमें वर्णनों की प्रचुरता को देखकर यदि उसको बहानप्रधान (Narrative) महाकाव्य कहें तो कोई शरुक्ति न आवेगी। श्रीहृत्पद द्वारा त्रिमुपासक का बहान कवि द्वारा इस पौराणिक बटना को लेकर इस महाकाव्य की रचना हुई है। बटना क साध प्रसंगवत् तो कथा प्राप्ति है। वर्णनों की अधिकता से इस विषय प्रधान काव्य को दोनों भवों का एक मिश्रित रूप भी कह सकते हैं। इसका प्ररूपस बड़े सुन्दर ढंग से किया है अतः विषय प्रधान काव्य के अन्तर्गत भी यदि इसको ले लिया जाय तो कोई बहुत प्रसंगवत् बात न होनी और वास्तव में देखा जाय तो यह काव्य विषय प्रधान (Objective) है भी। इसके नायक श्रीहृत्पद एक ब्रह्मा के रूप में हैं। अन्य पात्रों में भी सर्वे प्रधान वृत्त प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। महाकाव्य को धारि से अन्त तक देखने से साठ होता है कि उसमें केवल श्रीहृत्पद के चरित्र को ही चित्रित नहीं किया गया है किन्तु उसमें अनिय आदि के कित्वा-कित्वाओं का सुन्दर वर्णन है। यह बात दूसरी है कि आतीत जावनाओं की प्रधानता न देकर वहाँ पर तो व्यक्ति की ही प्रधानता स्पष्ट रूप में दिखावायी गयी है। श्रीहृत्पद एक ईश्वरी पुरव है। त्रिमुपासक महाकाव्य का विषय परम्परा से प्रतिष्ठित है जिसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित रूप में है। श्रीहृत्पद लोकप्रिय हैं। दुष्टों के हनन के लिए उन्होंने वहाँ पर भयंकर किया है। इसका सम्पूर्ण कथा-सूत्र मायक के अधीन है। इसकी खेची भी विभिन्न घासीनता और उन्नता को लिए हुए है। इसके अतिरिक्त २० सर्गों में प्रति सर्ग में विभिन्न-विभिन्न छन्द हैं। एक सर्ग में ही छन्द बदलता है किन्तु अन्त में जाकर बदल जाता है। इस सब बातों को देखते हुए पादचार्य विद्वानों ने महाकाव्य के जो मसाले बताये हैं वे इस महाकाव्य पर भी पड़ित होते हैं।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार

समस्त ग्रन्थों के अनुसार 'मायकाव्य' वर महाकाव्य के लक्षण पूर्णतया पटित होते हैं। काव्य का मुख्य रस वीर है। कथानक महाभारत से लिया गया है। यह कथानक श्रीहृत्पद के जीवन की एक मुख्य घटना है। इसमें २० सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में न तो ५० से म्यून और न १५०

से अधिक श्लोक हैं। एक सर्ग में प्रमुख छन्द एक है। सर्गान्त में लक्ष्यानुसार छन्द का परिवर्तन किया गया है। केवल अतुल्य सर्ग ही इस बात का अपवाद है कि जिसमें कई छन्दों का प्रयोग किया गया है। तृतीय सर्ग का अधिक भाग द्वारिकामन्द के वर्णन अथवा समुद्र के वर्णन में है। जिसके ठट बल से टकरा रहे हैं। अतुल्य सर्ग सम्पूर्ण ही रैचतक पर्वत का मुम्बर शिव उपस्थित कर रहा है। पंचम सर्ग में भीकृष्ण के शिविर का वर्णन मुख्य है। छठा सातवां आठवां सर्ग पद् अतुल्य के वर्णन से भरा हुआ है जहाँ पर पुष्प-वयन तथा जलकीड़ा का वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। अश्वमेध जिसमें होना है जिसका शिव विविध वर्णन नायक-नायिकाओं के साथ सुन्दर रूप से किया गया है वही यह नवम सर्ग है। दशम सर्ग में नायिकाओं के साथ नायक की राशि खीड़ा वा वर्णन है। ग्यारहवां सर्ग प्रभात की छटा का सुन्दर दृश्य उपस्थित करता है। बारहवें सर्ग में आकर भीकृष्ण की सेनाका रैचतक पर्वत से हन्रमस्व की ओर प्रस्थान वर्णित है। अंत में युवना मरी का वर्णन आता है। अन्तिम तीन सर्गों में बहुत सेना युद्ध स्वर्ण में आकर निमगी है और वहाँ पर भीकृष्ण और सिन्धुपात्र में भयंकर युद्ध होता है। इस भाँति काव्य के अधिक भाग में अच्छे वर्णन किये गये हैं। वास्तविक बटना भीमी गति से चलती है। कार्य की शक्ति का भी (quality of Action) कवि को ध्यान रहा है। आरम्भ से लेकर अन्त तक कथा अपने छद्म रूप को संभावे हुए है।

(१) दही के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु कवि कल्पना प्रसूत न होकर किसी प्राचीन आख्यान अथवा ऐतिहासिक वृत्त के आधार पर होनी चाहिये। पारंपार्य आधार भी इस बात की पुष्टि करते हैं। वह कहते हैं कि महाकाव्यों का आधार प्राचीन बटनाओं पर ही प्रतिष्ठित होना चाहिए जिससे कवि कल्पना की ऊँची सृष्टि लेने में समर्थ हो सके। ऐसे विवरण में ही अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता रहती है अतः वह अपने मन के भावों को विविध रूप में उस घटना में प्रतिबिम्बित करता हुआ आगे बढ़ता जाता है।

सिन्धुपात्र का वध एक प्राचीन आख्यान है जिसका वर्णन समापर्व के अन्तर्गत 'पिण्ड पात्रवध' नाम से महाभारत में आया है अतः इसका आधार ऐतिहासिक वृत्त है जो बहुत ही प्राचीन घटना है। इस घटना का वर्णन करने के लिए कवि ने कहीं-कहीं पर कल्पना की ऊँची सृष्टि के साथ अपने मन के भावों का विविध रूप से आत्मरूपा के रूप में सांकेतिक वर्णन किया है। ये कल्पनाएँ एक ओर तो प्रकृति में सहायक सिद्ध हुई हैं और दूसरी ओर कवि के समय जाति और व्यक्तिगत स्थिति आदि का स्पष्ट और ध्वस्त रूप निर्देश कर रही हैं।

(२) महाकाव्य का सर्वव्यापी होना आवश्यक है जिसमें एक से दस पात्रों किन्तु सर्ग का अन्तिम छन्द समान न हो और इनके साथ ही अन्त में आने वाले भाग का सम्बन्ध पात्र आरम्भ होने वाले सर्ग से सम्बन्धित हो। सर्ग में ३ से न कम श्लोक हों और न १२० से अधिक। सर्गों की संख्या कम से कम ८ और अधिक से अधिक ३०।

‘महाकाव्यं षष्ट्यर्गा न तु न्यूनं त्रिसप्तत्यष्टिनामिदम् ।

मायान्तविस्तरः सर्गास्त्रिंशत्वा वा न श्यते ॥”

‘एकवृत्तमयं पदैरवसानेभ्यवृत्तकैः ।

नातिस्वल्पानाति दीर्घा सर्गा मष्टाधिका इह ।

नामा वृत्तमयः कथापि सर्गः कण्ठन हयवते ।

सर्गास्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।

साहित्य दर्पण पृष्ठ ५० १२०, २१ ।

जैसा ऊपर बताया गया है ये सहाण 'चिन्तुपालवच' में देखने को मिलते हैं ।

(३) उसका नायक भीरोबात सखि भगवा देवता होना चाहिए । नायक बुद्धिमि हो और उसके पात्रों में श्रेष्ठगुण की प्रधानता हो । कुछ पात्रोपेक्ष करते हैं महाकाव्यों के पात्रों का सम्पर्क देवताओं से रहता है । उनके कार्यों की विद्या निर्धारित करने में देवताओं भगवा माय का हाथ रहता है किन्तु पात्रव्यत्य विद्यान् भुक्त ऐसा नहीं मानते हैं । सम्पूर्ण कथा सूत्र की नायक से बना जाना चाहिए ।

'चिन्तुपालवच' महाकाव्य के नायक सखि भंवावर्तस बहुकुल विरोमणि श्रीकण्ठ नाथ हैं जिसमें नायकत्व के सब ही गुण विद्यमान हैं । वह विनयशील सुन्दर, स्वाधी, कार्य करने में कुशल त्रिम होलने वाले लोकप्रिय कुछ भाषणपटु लक्ष्यबन्धक, स्तिरचित्त युवा बुद्धिपुत्र साहसी स्मृतिशाली कलावेमी, धारणाधिनानी सम्य धारणा धूर एवं ठेकसी हैं । भीरोबात नायक के निम्ने गुण होने चाहिए ये सब जनों विद्यमान हैं । नाथ के श्रीकण्ठ परब्रह्म होत हुए भी अनुपम हैं । वे भवतार भवन्त हैं पर जममें मानवीयता अधिक है । उनका भवतार 'परिभाषाण साधुना विभाषाम व कुम्भताम्' ही हुआ है । और इसीलिए महाकवि नाथ अपने काव्य के प्रारम्भ में ही कह देते हैं 'मिय पति भीमति धारित् वयम्जनधियासो बहुदेव तन्मयि' । वे दुष्टों का वध करने के लिए बरसन्त चिन्तुपाल भावि दुष्टों को दम्भ देने के लिए तथा समझनों पर अनुग्रह करने के लिए इस धृष्टी पर जाये वे । उनमें सेवा धाम अधिक है । ये बड़े उदार चरित्र हैं । इनमें कवि ने किस कुशलता से धृष्टि के साथ समा तथा हड़ता और भाग्ययोग्यके साथ विनय और निरतिमानता प्रदर्शित की है । नाथ ने महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही इन्ह सम्येध के रूप में चिन्तुपाल के वच का प्रस्ताव श्रीकण्ठ के सामने रखा था । श्री कण्ठ ने 'मोम्' कहकर अपनी स्वीकृति भी दी और तदनन्तर ही समस्त साधन जुटाये गये अन्त में वच करके अपनी प्रतिज्ञा को नायक श्री कण्ठ ने पूर्ण की । इस भाँति हम देखते हैं कि चिन्तुपालवच काव्य में सम्पूर्ण कथा सूत्र की नायक श्री कण्ठ से बँधा हुआ है, जो वचा को पत भी धोर से जाता है । श्रेष्ठगुण सम्पन्न श्रीकण्ठ सदाय में धाम्ति और स्ववस्था देखना चाहते थे, उनके लिए वहाँ धारयकता नहीं उन्होंने कुछ के मार्ग को भी अपनाया । उनके दुष्टों का बर्लन धम्तिन तीन सर्गों में है ।

(४) १५ बार और और धाम्ति रसों में कोई एक रस जैसी रूप में होता है 'चिन्तुपाल वच' जैसा कि नाथ ने ही स्पष्ट है कि वह और रस प्रधान काव्य है । १५ बार रस वहाँ गोला रूप से है । मस्तिनाय लक्षकथा नाम्नी टीका में मिलते हैं 'नेतास्मिन् मनुजन्म' स भवनाम् भीरप्रधानो रसः १५ गाराविजरीयनाम् विजयते पूर्णा पुनर्बर्लना । इत्यम्ययमाधुपादविषयार्थ धारणाः कर्म, धम्ती नायकविर्चयं शुक्रतिव तत्पुति संतेवनाम् ।

(१) प्रकृति वर्णन के रूप में नगर, ग्राम (समुद्र) पर्वत संख्या, प्रातःकास, संध्यामात्रा तथा ऋतु धारि का वर्णन भी महाकाव्य में आवश्यक है।

‘विशुपालवच’ में जैसा पहले लिखा गया है इन सब का वर्णन मिलता है, कहीं-कहीं तो वह परिवर्तित रूप में भी है।

(१) मंगलाचरण आशीर्वादात्मक ममस्कारात्मक प्रवचन वस्तुनिर्देशात्मक होना चाहिए।

विशुपालवच में “भिम पति श्रीमति सासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव-सदृमनि महाकवि ने इस भाँति मांगलिक “श्री” शब्द से अपने ग्रन्थ का आरम्भ करके “वस्तुनिर्देशात्मक” मंगलाचरण किया है। यस्मिन्नाद्य निश्चये है— ‘आशीर्वादात्मकतमस्य प्रवचन मुक्तसह सात्वात्म्य काव्यरूपं विशुपालवचबीजभूतं भवतु श्री कृष्णस्य गारुड वर्णनरूपं वस्तु आशीर्वादात्मकप्रयोगपूर्वकं निश्चिन् कथामुपनिषत्ति’ श्री वस्त्रमदेव लिखते हैं “अभिलपित चिह्नमर्च मंगलादि काव्यं कर्तव्यमिति स्मरणात् कवि श्री सत्यमावीप्रमुक्तते।

() महाकाव्य अतिसंक्षिप्त नहीं होना चाहिए क्योंकि महाकाव्य को एक विशालकाय वर्णन प्रधान (Narrative) काव्य कहा है।

आगे सर्वभार भी गई कथा को देखने से विदित होगा कि विशुपालवच कथा तो बहुत संक्षिप्त है पर वर्णनों से वह एक विशालकाय महाकाव्य बन गया है।

इस प्रकार भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्याचार्यों के अनुसार विशुपालवच एक महाकाव्य है।

शिशुपालवध महाकाव्य की कथा के स्रोत

शिशुपाल महाकाव्य में जिस कथा का वर्णन है उसको महाकवि माघ ने किस ग्रन्थ से लिया है, कबानक में कहाँ तक मौलिकता है, मूल-कथा में क्या परिवर्तन किया गया है, परिवर्तन का क्या स्वरूप है आदि आदि बातों का वर्णन यहाँ समीष्ट है।

शिशुपालवध वाली कथा कई ग्रन्थों में पाई, सत विद्वानों का मत इस विषय में विभिन्न है। विद्वान् तो कहते हैं कि यह कथा महाभारत के समापर्व से ली गई है किन्तु कई मानते हैं कि यह मुख्य रूप से भीष्मपरायण के दशम स्कन्ध से ली गई है। इस कथा का वर्णन कई पुराणों में हुआ है। महाभारत के समापर्व में अर्वाहिरण्य कर्ष है। इसमें भी शिशुपालवध का वर्णन है। इन सब बातों को देखते हुए प्रथम हम शिशुपाल वध सम्मन्विनी कथाओं को निम्न-निम्न ग्रन्थों में पाई हैं एक-एक करके संक्षेप रूप में लिखते तत्पश्चात् इस निष्कर्ष पर आयेगे कि महाकवि किस ग्रन्थ का आश्रय लिया है और मुख्य रूप में कहाँ से उस कथा को ली है फिर उसमें क्या परिवर्तन किया है आदि।

महाभारत (समापर्व)—एक बार दानव द्वाप बनाई हुई पाण्डवों की सभा में नारद ऋषि लोगों में इधर-उधर विचारण करते हुए अनेक ऋषियों सहित पाण्डवों के निवास स्थान पर पहुँचे। युधिष्ठिर ने प्रसन्न करने के पश्चात् उन्हें आसन दिया। युधिष्ठिर सहित इन पाण्डवों ने नारदजी की उपदेशमय नीति को सुना। तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने अति नम्रता से पूछा कि क्या इस नीति की श्रवण इससे भी अधिक सुन्दर कोई समा सन्तोंने कहीं देखी है। इस प्रश्न के उत्तर में नारदजी भीति नीति के राजाओं देवताओं और इन्द्र की सभा का वर्णन करते हुए राजा हरिश्चन्द्र के विषय में जब कह रहे थे तब युधिष्ठिर ने सद्गता अपने पिता पाण्डु की पितृभूमि में देखने को कहा। इसके उत्तर में नारद ने कहा कि राजा पाण्डु ने राजा हरिश्चन्द्र के वनवास को देखकर मनुष्य लोक में आते हुए मुझको नम्रता से यह कहा है कि तुम भी हरिश्चन्द्र की भीति राजभूषण बन करो क्योंकि समयतः पृथ्वी को भीतने में तू भी उसी प्रकार समर्थ है। ऐसा करने से मैं भी हरिश्चन्द्र के सुख ही बहुत वर्षों तक इन्द्र की सभा में धान्य करूँगा। नारद के बले जाने पर युधिष्ठिर ने भार्गवों के साथ राजभूषण बन के विषय में परामर्श किया। तब ब्राह्मणों, राजाओं तथा यादवों की यह सम्मति हुई कि यज्ञ किया जाय। अब युधिष्ठिर ने भीष्मपरायण का मन से ध्यान किया और उन्हें बुलाने के लिए हुन भेजा। दारिका में भीते ही हुन ने जाकर संक्षेप सुनाया कि भीष्मपरायण इन्द्रसब के साथ इन्द्रस्य को बल पड़े और वीर्य ही युधिष्ठिर के निकट पहुँचे। युधिष्ठिर ने भीष्मपरायण को कहा कि यदि आपका मत हो तो मैं राजभूषण बना करना चाहता हूँ। इस पर भीष्मपरायण ने कहा कि

विचार बिलकुल ठीक है और धाय अधिकारी भी हैं। बात इतनी ही है कि बरासम्ब इस समय समस्त राजाओं को अपने अधीन करके सम्राट बना हुआ है अब जब तक उसकी मारकर राजाओं को मुक्त न कर दो तब तक यह सब किसी भी शक्ति से भी पूरा नहीं हो सकता। परामर्श के बाद निर्णय हुआ कि भीम धर्मुन और श्रीकृष्ण बरासम्ब पर विजय प्राप्त करने के लिए मनम को बाध्य। वे वहाँ गए। श्रीकृष्ण की बताई हुई शक्ति के अनुसार भीम ने बरासम्ब को मार डाला। सब भाइयों ने सब बिरादों को भीत भिया। विजय के साथ बुधिशिर के कोप की भी वृद्धि हुई। राजसूय यज्ञ की तैयारी होने लगी। श्रीकृष्ण भी उस समय घा पहुँचे थे। उन्होंने बुधिशिर को कहा कि तुम्हीं सम्राट और राजसूय यज्ञ के अधिकारी हो। मुझको तो तुम किसी सेवा में लगा देना। भीष्म पुरोहित द्वारा बनाई गई सब सामग्री लाई गई। यज्ञ में वेदव्यास ब्रह्मा जनार्दन तथा भीष्म होता बने। ब्राह्मणों ने बुधिशिर को यज्ञ की बीसा में निरुक्त किया। श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के चरण चोने का कार्य अपने ऊपर लिया। यज्ञ के उपरान्त भीष्म ने राजा बुधिशिर को राजाओं का यथायोग्य सत्कार करने के लिए कहा जब कि ब्राह्मण प्रादि सब घाए हुए लोगों को समुद्र किया जा चुका था। भीष्म ने कहा कि प्राचार्य ऋत्विज संयुक्त स्नातक नृप और प्रिय वे ६ धर्म देने के योग्य माने गए हैं। अब इनमें से प्रत्येक के लिए धर्म तैयार करो और प्रथम धर्म इनमें जो श्रेष्ठ हो वनको प्रदान करो। बुधिशिर ने इस पर पितामह को कहा कि धाय ही बताइये कि प्रथम धर्म के लिए धाय किसको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इस पर भीष्म ने श्रीकृष्ण को ही अब सर्वश्रेष्ठ बताया तो सहदेव ने विधिपूर्वक श्रीकृष्ण के लिए उत्तम धर्म उपरक्षण किया। श्रीकृष्ण ने धर्म ग्रहण किया किन्तु विष्णुपाल ने श्रीकृष्ण की पूजा का अनुमोदन नहीं किया अब उस समा में विष्णुपाल ने भीष्म और बुधिशिर को फटकारकर श्रीकृष्ण को फटकारना प्रारम्भ किया। वह जन भीष्मादि से इस भाँति अपमान्य कहकर अपने ऊँचे शासन से उठ कर और अन्य राजाओं के साथ उस समा से बाहर निकल गया। इस पर बुधिशिर ने उसके पास जाकर बहुत बचनों से कहा कि भीष्म सब कुछ जानते हैं तुमको इनका अपमान नहीं करना चाहिए। इस पर भीष्म फिर श्रीकृष्ण की पूजा को सर्व प्रथम करनी चाहिए इतना कहकर चुप हुए तो सहदेव ने भी कहना प्रारम्भ किया कि जो श्रीकृष्ण की पूजा नहीं चाहता उसके मस्तक पर यह मेरा चरण है। मैं उस राजा को मारकर ही छोड़ूँगा। वैदिराज विष्णुपाल योंन लास-लास करके शोक पूर्वक राजाओं को कहने लगा कि मैं संन्यासि बनकर स्थित हूँ धाय शोक बिन्धा न करें। हम इकट्ठे ही कृष्ण और पाण्डवों को बेर कर युद्ध करेंगे। इस भाँति उसने यज्ञ-विध्वंस करना बाधा जिससे बुधिशिर के यज्ञ का अभियेक तथा श्रीकृष्ण की पूजा न हो सके। बुधिशिर ने चिन्तित होकर भीष्म से सम्मति माँगी तो भीष्म ने कहा कि जब तक श्रीकृष्ण अभी मिह को रखा है तब तक ही ये राजा और विष्णुपाल द्वाजगुप्त भी रहेंगे हैं। तुम्हें बिन्धा नहीं करनी चाहिए। इस पर विष्णुपाल ने फिर भीष्म को कठोर वाणी सुनाना प्रारम्भ किया। फिर भीष्म ने भीम को जो विष्णुपाल के बचनों को सुनकर कोप में भर गए थे कहना प्रारम्भ किया कि विष्णुपाल तीन घोंक और बारमुजा बना उत्पन्न हुआ था। इसने उत्पन्न होकर ही बने की भाँति रेंकना प्रारम्भ किया। परिवार वाले विह्वल इसकी भावति से जब परामर्श तो पारायवाणी हुई कि यह महा वनवास होना इस पर माता ने अब पूछा कि मैं उस देव या

मनुष्य का नाम सुनना चाहती हूँ जो मेरे इस पराक्रमी पुत्र की मृत्यु बनेगा। फिर बारी हुई कि किस राजा की गोद में जाते ही इसके दो भुजायें और तीसरा ससाट का नेत्र फिर बाबदा बही इसका नाशक धनु होमा। इस भाँति जब सब राजाओं की गोद में बैठ लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण की गोदी में बैठ तो बही हुआ। माता ने बरवान मीना तो श्रीकृष्ण ने भी अपराध समा करने के लिए उसे कहा था। इसीलिए श्रीकृष्ण के घर से हो अभिमानी होकर हम न तुमको इस भाँति मर्षकर बोल रहा हूँ। इस पर फिर भीष्म को सिधुपाल ने क्रोध से कहा शरणागति किया तब भीष्म ने कहा कि वे श्रीकृष्ण विजयमान हैं बिगड़ी हमने पूजा की है अब जिसकी बुद्धि भीषण भरलु चाहती है वह उन्हें कुछ के लिए आह्वान करे। इस पर सिधुपाल श्रीकृष्ण से कुछ करने की इच्छा से उनको कठोर वचन कहने लगा। श्रीकृष्ण ने इस वर फिर सबके सम्मुख सिधुपाल को भी तुलाने योग्य बात सुनाने लये और अन्त में कहा कि अब इसके सौ अपराध पूर्ण हो चुके हैं। अब वां यह और पाये वह गया है अतः मैं इस सुरक्षित जल से इसके चिर को पूरक करूँ। इतने ही में उसका चिर जल से पृथक होकर फिर बढ़ा। सिधुपाल के देख से निकला हुआ तब श्रीकृष्ण के देख में राजाओं के देखते-देसते प्रवेश कर गया। सिधुपाल के मारे जाने पर कुछ राजा तो हर्षित हुए और कुछ क्रोधित। तत्पश्चात् उसके मृत शरीर का दाह संस्कार कराया गया।

भारत के इशम स्कन्द में शिशुपाल की कथा

भारत की मे गरकासुर के बच और मकेसे कृष्णचन्द्र का बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह होने का बच बहुत मुना तो घटि उत्कंठा पूर्वक भगवान् श्री कृष्ण की सहचरी देखने के लिए द्वारिकापुरी में आये । श्री कृष्ण का उनकी पत्नियों के सोनह सहस्र महलों से सुसो-भित उस पुरी में श्री सम्पन्न निवास था । उनमें ॥ एक विद्याल भवन में श्री नारद जी ने प्रवेश किया वहाँ पर उन्होंने भगवान् को स्विमणी श्री के साथ देखा । नारद को देखते ही श्री कृष्ण बठ खड़े हुए, प्रणाम किया और अपने पास पर बैठे । कुछस पृथी और अपने प्रापको प्रस्तुत किया । नारद श्री कृष्ण की प्रार्थना करते हुए उनकी योगमाया को देखने के लिए उनकी दूसरी पत्नी के भवन में गए । वहाँ पर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया और उदयजी के साथ और देखने में व्यस्त थे । नारद जी को देखकर पूर्ववत् उत्कार किया । इस मोति नारदजी ने विभिन्न भवनों में भगवान् को विभिन्न रूप में देखा और प्रसन्न भित हो भक्त में उन्हीं का स्मरण करते हुए बसे पडे । एक बार ब्राह्म मुहूर्त में उठकर भगवान् जब नित्यचर्चा में व्यस्त हुए उस समय बराबर के कापलास में पडे हुए राजाधों द्वारा प्रेषित एक दूत ने आकर कहा कि बराबर घटि पवित्र होकर हमको जो आपकी प्रजा हैं, भवन्त कष्ट है रहा है । बराबर रूप कर्म-भजन से बच हम लोगों को धन धाप ही आकर छुड़ाये । दूत के इस प्रकार प्रार्थना करते ही विगतबाण बराबारी परमेश्वरकी देववि नारद जी वहाँ सूर्य के समस्त प्रकट हुए । उन्हें देखते ही समस्त लोकपालों के प्रभु भगवान् कृष्ण ने सम्पूर्ण समासद् और अनुचरमण के सहित उठकर प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया फिर विविपूर्वक आसनादि देकर उनका उत्कार किया और मजुर वाली से कहा आप तीनों लोगों में विचारल करते हो यत् आपको सब बात है कि क्या होने वाला है । मैं इसीलिए आपसे पूछता हूँ कि धन पाण्डव क्या क्या करना चाहते हैं । नारद जी ने इस पर कहा कि आपसे कोई बात छिपी नहीं है । आप तो बड़ा हैं किन्तु इस समय अनुप्य-नीला कर रहे हैं यत् पुषिष्ठिर की जो कुछ करने की इच्छा इस समय है उसे बताओगे । भगवान् पुषिष्ठिर ब्रह्मचरिष की इच्छा से राजसूय यज्ञ द्वारा आपका यजन करना चाहते हैं आप उसका अनुमोदन कीजिये । उस यज्ञ यज्ञ में सम्पूर्ण देवतादि और बड़े-बड़े यज्ञस्वी नृपगण आपके चर्चनों की इच्छा से आयेंगे । श्री कृष्णजी ने देखा कि विजय प्राप्ति के लिए भवन्त उत्सुक अपने पदा वाले पारवन्त नारदजी की बात को स्वीकार नहीं कर रहे हैं तो उन्होंने अपने अनुपठ यज्ञ उदय से मुत्काराकर कहा यज्ञ ! तुम बराबों के यथावत् प्रकाशक तथा शुभ सम्पत्ति का धर्म जानने वाले हो यत् तुम धन बताओ कि हर्षे क्या करना चाहिए । पाण्डवों के यज्ञ में जाना चाहिए या बराबर

के वहाँ जाकर राजाओं को उसके कारागार से मुक्त करना चाहिए। इस पर राजा भी कहने लगे नारद भी के कहने के अनुसार आपकी आज्ञा कराने वाले अपने भूरे भाई युधिष्ठिर की सहायता करनी चाहिए और शरण में आये हुए राजाओं की रक्षा करना भी कर्त्तव्य ही है किन्तु राजसूय यज्ञ वही कर सकता है जो चारों दिशाओं को भीत से घेर उस दिग्बिजय में बराहसंघ को भी पीटना आवश्यक होगा तथा बराहसंघ को भीतने से (यज्ञकर्म और शरणापठरता) दोनों कार्य सिद्ध हो जायेंगे। बराहसंघ के बच से अनेक कार्य सिद्ध होंगे अतः प्रथम राजसूय यज्ञ ही में जानिए। यज्ञबली की प्रतिष्ठा के कारणों का सबने ही ध्यान किया। तत्पश्चात् भी कृष्ण जब वहाँ पर जाने की तैयारियाँ कर जलने लगे तो नारदजी बराहसंघ को प्रशाम कर आकाशमार्ग चले गए। बराहसंघ ने ब्रह्म को यह कहकर बिना किया कि राजाओं को जाकर यह कहना कि मैं क्षीर ही बराहसंघ का बच कराऊँगा। इस पर बराहसंघ मानते, लौकीक पक्ष और कुम्भेश्वर की सापेक्ष पर्यंत नहीं पुर, प्राण, अन्न और धातुओं को पार करते हुए हृदय की ओर सरस्वती से उतर कर पांचाल और अस्त्य देश का पर्यटन करते हुए इन्द्रप्रस्थ के निकट पहुँचे। भी कृष्ण के आगमन को सुनकर बन्धु बर्ष तथा उपाध्याय सहित युधिष्ठिर प्रति प्रसन्न होकर नगर से बाहर आये। भी कृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया। नर-नारी उन्हें देखने के लिए राजमार्ग पर इकट्ठे हो गये। तत्पश्चात् भी कृष्ण ने राजमार्ग में प्रवेश किया वहाँ पर वह सबसे मिले। युधिष्ठिर ने भी कृष्ण को उनकी सेवा के सहित ऐसे स्थान पर रक्षा वहाँ पर वे निवसन्त सुख प्राप्त करें। बराहसंघ ने भी युधिष्ठिर का प्रिय करने के लिए वहाँ कुछ मांस वस्त्रों का सम्राट्। एक दिन युधिष्ठिर ने सबके सम्मुख भी कृष्ण को कहा कि मैं आज करना चाहता हूँ अतः आप मेरे इस संकल्प को पूर्ण कीजिए। इस पर भी कृष्ण ने उनके विचार को ठीक बताते हुए कहा कि समस्त राजाओं को भीतरकर, सुमन्त्र को भी भीत करके यज्ञ की समस्त सामग्री एकत्र कीजिए। युधिष्ठिर ने इस पर भाव्यों की दिग्बिजय के कर्म में निवृत्त किया। भाव्यों ने दिग्बिजय करके युधिष्ठिर को प्रभु बल दिया किन्तु बराहसंघ को अनेक सुनकर युधिष्ठिर जब निवृत्त हुए तब भी कृष्ण ने उन्हें अपाय बताया। यज्ञ बराहसंघ को पीतने के लिए धर्म भीत, और भी कृष्ण बल वड़े। भी कृष्ण ने अन्त में भीत हाथ बराहसंघ का बच करवाया और राजाओं को मुक्त कर के इन्द्रप्रस्थ आये तब युधिष्ठिर के मन में सम्मिश्रित हुए। यज्ञ की बीसा तथा यज्ञकी की विधिपु पूजा के बाद यज्ञ यज्ञ में आये हुए सभी राजाओं का भी सम्मान करना था। उन्हें भी धर्म देकर सन्तुष्ट करना था। वहाँ आये हुए सभी राजा अपने की बहुत समझते थे। यज्ञ प्रसन्न हुआ कि यज्ञ पूजा किसकी की जाय? वहाँ एक की धर्मता एक बड़ा था अतः जब किसी का निश्चय न हुआ तब युधिष्ठिर के भाई सहदेव ने भी कृष्ण की आज्ञा प्रसन्न करते हुए कहा कि भीकृष्ण की पूजा से सब प्राणियों की पूजा हो जायगी अतः भी कृष्ण की ही यज्ञ पूजा करना चाहिए। तब मैं बैठे हुए सभी धर्म बुद्धों ने यज्ञ सहदेव की बात का अनुमोदन किया तो युधिष्ठिर ने भी कृष्ण का पूजन किया। भी कृष्ण की पूजा जब हम गाँठि हो गई तब हमबोध के पुत्र विष्णुपाम भी कृष्ण के पुणों से ईर्ष्या होकर उनकी कठोर बचन सुनाने लगा। इस प्रकार विष्णुपाम धर्मों अपराध कहता ही गया। फिर भी भी कृष्ण कुछ नहीं बोले। राजाओं में

मागवत के वशम स्कन्ध में शिशुपाल की कथा

नारद जी ने नरकासुर के सब धीर धकेले कुप्यशत्रु का बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह होने का सब बलन सुना तो धति उत्कंठा पूर्वक मगवान् श्री कृष्ण की दृष्टियाँ देखने के लिए द्वारिकापुरी में आये । श्री कृष्ण का उनकी पत्नियों के सोनह सहस्र माहों से सुखो-मिष्ट उस पुरी में श्री सम्पन्न निवास था । उनमें ॥ एक विद्याल भवन में श्री नारद जी ने प्रवेश किया वहाँ पर उन्होंने मगवान् को बकियाली श्री के साथ देखा । नारद को देखते ही श्री कृष्ण उठ खड़े हुए, प्रणाम किया धीर अपने आसन पर बैठ गया । कुशल पूछी धीर अपने प्रापको प्रस्तुत किया । नारद जी कृष्ण की प्रशंसा करते हुए उनकी योगमत्मा को देखने के लिए उनकी झुंझटी पत्नी के वचन में गए । वहाँ पर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया धीर उदबजी के साथ नीमर वेलने में व्यस्त थे । नारद जी को देखकर पूर्ववत् उत्कार किया । इस भाँति नारदजी ने विविध वचनों में मगवान् को विविध रूप में देखा धीर प्रसन्न चित्त हो घन्ट में उन्ही का स्मरण करते हुए चले गये । एक बार बाह्य मूर्त में बैठकर मगवान् जब मिरमचियाँ में व्यस्त हुए उस समय अराधन के कारणों में पड़े हुए राजाओं द्वारा प्रेषित एक दूत ने आकर कहा कि अराधन धति बकित होकर हमको जो धापकी प्रजा है अत्यन्त कष्ट दे रहा है । अराधन रूप कर्म-बन्धन से बद्ध हम लोगों को धब धाप ही आकर कुड़ाह्ये । दूत के इस प्रकार प्रार्थना करते ही पिबलवर्त बढायाटी परमेश्वरी देववि नारद जी वहाँ सूर्य के समान प्रकट हुए । उन्हें देखते ही समस्त मोरुपालों के प्रभु मगवान् कृष्ण ने सम्पूर्ण सनासद् धीर अनुचरपल के सहित उठकर प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया फिर विधिपूर्वक आसनारि बैठकर उनका सत्कार किया धीर मगुर वाली से कहा धाप लोगों लोगों में बिचरतु करते हो धत धापको सब मात है कि क्या होने वाला है । मैं इसीलिए आपसे पूछता हूँ कि अब पाण्डव पण क्या करना चाहते हैं । नारद जी ने इस पर कहा कि आपसे कोई बात छिपी नहीं है । धाप तो ब्रह्म हैं किन्तु इस समय अनुप्य-नीसा कर रहे हैं धत युधिष्ठिर की जो बुद्ध करने की इच्छा इस समय है उसे बढाढेन । मगवान् युधिष्ठिर अन्धकारित्व की इच्छा से राजसूय यज्ञ द्वारा धापका यजन करना चाहते हैं धाप उतका अनुमोदन कीजिये । उस यज्ञ यज्ञ में सम्पूर्ण देवतादि धीर बड़े-बड़े यदासी भूपण धापके वर्तनों की इच्छा से धार्येन । श्री कृष्णजी ने देखा कि विजय प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक अपने पदा वाले बाहवण नारदजी की बात को स्वीकार नहीं कर रहे हैं तो उन्होंने अपने अनुगत बल उदब से मुत्काराकर कहा यज्ञ ॥ तुम वराओं के धाबावत् प्रकाशक तथा शुभ सम्पत्ति का धर्म जानते बाने हो धतः तुम धब बढापी कि हमें क्या करना चाहिए । पाण्डवों के यज्ञ में जाना चाहिए या अराधन

के बहाँ जाकर राजाओं को उनके कारागार से मुक्त करना चाहिए। इस पर उद्यम भी कहने लगे नारद भी के कहने के अनुसार ध्यापको बस करने वाले ध्यापने फूँके माई मुनिष्ठिर की सहायता करनी चाहिए और धरत में भाये हुए राजाओं की रक्षा करना भी कर्तव्य ही है किन्तु राजसूय यज्ञ बड़ी कर सकता है जो चारों दिशाओं को भीत से धरत उस दिग्बिजय में बराबर को भी भीतना धाकड़क होना तथा बराबर को भीतने से (यज्ञकर्म और धरत-गतरक्षा) दोनों कार्य सिद्ध हो जायेंगे। बराबर के बस से धनेक कार्य सिद्ध होंगे अतः प्रथम राजसूय यज्ञ ही में चलिए। उद्यमजी की मुक्तिमुक्त बाधों का शक्ने ही पावर किया। तत्परचात् धी कृष्ण जब वहाँ पर जाने की तैयारियाँ कर चलने लगे तो नारदजी जगवान् को प्रस्ताव कर धाकड़प्रस्ताव जले गए। मयवान् ने बूढ़ को यह कहकर बिदा किया कि राजाओं को जाकर यह कहना कि मैं सीमा ही बराबर का बच कराऊँगा। इकर जगवान् धानत, लौकीर मर और कुसुम को लापकर पर्वत, नदी, पुर, धाक, बस और पाकरी को पार करते हुए हवाइती और सरस्वती से उतर कर पाकाल और मास्त बस का उत्सव्यन करते हुए इन्द्रप्रस्त के निकट पहुँचे। धी कृष्ण के धागवान को सुनकर बन्धु बर्य तथा जगध्याय सक्षित मुनिष्ठिर सति प्रतम होकर नगर से बाहर धाये। धी कृष्ण ने इन्द्रप्रस्त में प्रवेश किया। नर-नारी उन्हें देखने के लिए राजमार्ग पर इकट्ठे हो गये। तत्परचात् धी कृष्ण ने राजमार्ग में प्रवेश किया वहाँ पर यह सबके मिले। मुनिष्ठिर ने धी कृष्ण को उनकी सेवा के उद्दिष्ट ऐसे स्थान पर रक्षा वहाँ पर वे निम्नतुल्य सुख प्राप्त करें। मयवान् ने धी मुनिष्ठिर का शिप करने के लिए वहाँ कुछ मास ठहरना प्रस्ताव समझा। एक दिन मुनिष्ठिर ने सबके सम्मुख धी कृष्ण का कहा कि मैं सब करना चाहता हूँ मर-धाप मेरे इस संकल्प को पूर्ण कीजिए। इस पर धी कृष्ण ने उनके विचार को ठीक बताने हुए कहा कि समस्त राजाओं की भीतकर, बुरासन को बड़ी बूढ़ करके बस की समस्त सामग्री एकत्र कीजिए। मुनिष्ठिर ने इस पर बाइनों की दिग्बिजय के कार्य में निमुक्त किया। बाइनों ने दिग्बिजय करके मुनिष्ठिर को प्रभुर बन दिया किन्तु बराबर को धनेय सुनकर मुनिष्ठिर जब चिन्तित हुए तब धी कृष्ण ने उन्हें उपाय बताया। सब बराबर को भीतने के लिए धर्जुन, भीम, और धी कृष्ण बस गये। धी कृष्ण ने बस में भीम हाथ बराबर का बस करवाया और राजाओं को मुक्त कर के इन्द्रप्रस्त धाप तथा मुनिष्ठिर के पक्ष में सम्मिलित हुए। यज्ञ की सीता तथा बाइनों की बिबिध पूजा के बाद सब पक्ष में भाये हुए सभी राजाओं का भी सम्मान करना बा। उन्हें भी धार्प्य देकर वस्तुत करवा बा। वहाँ भाये हुए सभी राजा ध्यापने को बहुत तपस्यो ने। सब प्रसन्न उठा कि धरत पूजा किसकी धी जाय? वहाँ एक धी प्रपेता एक बड़ा बा धरत सब किसी बा निरपय न हुआ तब मुनिष्ठिर के माई सहदेव ने धी कृष्ण की धरत प्रपंथा करते हुए कहा कि धीकृष्ण की पूजा से सब प्राणियों की पूजा हो जायेगी यज्ञ धी कृष्ण की ही सब पूजा करना चाहिए। वना में बैठे हुए सभी पक्ष पुरुषों ने जब सहदेव की बात का धनुषोत्तर किया तो मुनिष्ठिर ने धी कृष्ण का पूजन किया। धी कृष्ण की पूजा जब इस याति हो गई तब रमण के पुत्र शिषुपान धी कृष्ण के मुलों से ईर्ष्यानु होकर उनको कठोर बधन मुनाने लगा। इस प्रकार शिषुपान धनेकी धपयक कहा ही गया। फिर भी धी कृष्ण कुछ नहीं बोले। राजाओं में

कुछ तो मन ही मन विष्णुपाल को बायीं हिने लगे कुछ ने कामों को बन्द कर बिना किन्तु शोक के मारे पाण्डु पुत्र मत्स्य देश व रंजय देश के राजा अपने-अपने खस्त्रों को उठाकर विष्णुपाल के मारने को सन्नद्ध हुए तब विष्णुपाल ने उन राजाओं को मारने के लिए आज्ञा उसवार उठा ली । श्री कृष्ण ने यह समझकर कि यह अति बलवान् है अतः यह सबको मारेगा इससे मैं ही इसको मारूँ यह विचार कर उसी समय उठकर उन्होंने अपनी धोर से राजाओं को निवारण करके सम्मुख धाते हुए अपने सन्तु विष्णुपाल के धिर को चक्र से काट दिया । उस समय विष्णुपाल के देह में से निकली हुई ज्योति सबके देखते देखते श्री कृष्ण में मिल गई । जय विजय की सनकासिक का स्थापनमा अतः बार-बार जन्म हुआ इस भाँति यह विष्णुपाल पहले जन्म में हिरण्यधर और हिरण्यकश्यप हुए, दूसरे जन्म में रावण और कुम्भकर्ण हुए, तीसरे जन्म में विष्णुपाल और दम्बवक्र हुए इस भाँति तीन जन्म के चले आये और से तन्मय बुद्धि से कर्म का ध्यान करते-करते उसी कर्म को प्राप्त हुए अर्थात् पार्षद् हो गए । इसके परन्तु चक्षुर्वर्ती राजा बुद्धिधर ने यज्ञ के कपने वाले ब्राह्मणों को धीर बड़ी सभा में बैठने वाली को दक्षिणा दी फिर विविधवैक सब का पूजन करके यज्ञान्त स्नान किया ।

पुराणों में वर्णित कथा

(क) पद्मपुराण में त्रिभुवात्मक बर्तन—अध्याय २३२ में वर्णित हिरण्य कथा के कुछ होने के पर्याप्त बराबर का भीम के द्वारा नष्ट करवाया गया है फिर त्रिभुवात्म के बरत का वर्तन इस भांति है—

अथ ताम्बामित्रप्रसवं जप्त्वा कामदेवस्तत्र महाशक्तं राजकुलं युक्तिरिदं कारयामास । तत्र समालो कृती अष्टपुत्रीं भीष्मानुवर्तेन कृप्याय दत्तवान् ॥१३॥ तत्र त्रिभुवात्म कृप्यं बहून्वा शेषवत्कथाम्बुजवान् ॥१४॥ कृप्याग्नेयि सुवर्चनेन तस्य शिरदिबन्धये ॥१७॥ अस्त्री जन्मत्रया वसाने हृतेः सास्त्वमपवत् ॥ १८ ॥

(ख) विष्णु महापुराण में त्रिभुवात्म सम्बन्धित कथा—ब्रह्मर्षि के तपोरस अध्याय में पृष्ठ संख्या १६१ से इस भांति प्रारम्भ है—

ब्रह्मवचनमपि वैदित्यो ब्रह्मचोपनामोपमैवे ॥४४॥ तस्मा च त्रिभुवात्म स वा पूर्वं सम्पुकार निष्कमो दैत्यानामापि पुण्यो हिरण्यकशिपुर्ममत् ॥ ४६ ॥ यश्च भववता सकल लोकपुण्या कार्त्तिकहेन भाठितः ॥४७॥ पुनरपि अजयवीर्यं शीर्यं संपत्सपक्रमं मुलास्त्रमाक्रान्तं वरुणसौकेरवरप्रयागो दधानगो नामाभूत् ॥४८॥ बहुकावोपशुक्लं यववत्सकादावाप्तघटीर पातोद्भवपुष्पकमो जनकता रात्रवत्पिण्डा शोभन्निभनमुपपातित ॥४९॥ पुनरवैदित्यवस्य ब्रह्मचोपस्यात्मजश्चिदुपावनामात्मवत् ॥५०॥ त्रिभुवात्मत्वेऽपि भववतो सूमापवतारणामाव तीर्त्तपत्न्यं पुंघटीकनयनाक्यस्योपरि हेवानुर्वचं यतिपरांश्चकार ॥५१॥ भववता च स निभन मुपानीतास्तर्षं परमात्मभुते भवस एकाग्रतया सायुज्यमवाप ॥५२॥ यद्यवान् यदि प्रसप्तो यवाभिनविष्टं ब्रवाति तदा अमसप्रोऽपि निष्पन्नं हिम्यन्नुपचं स्वानं प्रपद्यति इति बभूवैष अध्यायः ।

हिरण्यकशिपुले च राजाण्ये च विष्णुना । अवाप निहृतोभीषानप्राप्यात्ममरैरपि ॥१॥ तत्त्वयं वनर्तेनैव निहृतं स कथं पुनः ॥ संश्रान्तः त्रिभुवात्मस्य सायुज्यं यावत्तै हृती ॥२॥ एतदिच्छाम्यहं भोतुं सर्वधर्ममुठावर । कीदृहमपरेणैतत्पृष्टो मे बभूवहंमि ॥ दैत्यवरस्यैव धामाधिसक्तोऽर्त्तातस्वितिविनाशकारिणापूणं तनुपहृत्वं कुर्वता नृसिंहकथयानिहृतम् ॥४॥ तत्र च हिरण्यकशिपोर्विष्णुरपमित्येतन्न मनस्यभूत् ॥५॥ निरतिशयं पुण्यं समुद्भूतमेतत्सर्वं काठमिति ॥६॥ रजोद्वजं प्रेरितैकाग्रमतिस्तत्रभावनाजीयाततोवाप्तवचं हेतुर्वा निरतिशया मेवापि स वैमोपधिक्ववात्सली दधानतर्कं पोषतपदमवाप ॥७॥ न तु स तस्मिन्मननादि नियमे परब्रह्मभूते यद्यवापनार्थं निहृते मनसस्तत्सत्यमवाप ॥८॥ एवं दधानमत्सेप्यन्परा

धीनतया जानकीसमासकत भैरवा भगवता वासरवि क्यमारिणा हृतस्य तद्रूप वर्णनमेवासीत् ।
नाममभ्युत इत्यादिदिपिपद्योतकरणे भानुपबुद्धिरेव केवलमस्याभूत् ॥ १ ॥ पुनरप्यभ्युत
विनिपात मात्रफलमखिलभुम्बलस्ताभ्य भैरवाजकुले जन्म अभ्याहृतैरन्यैः सिमुपासत्वेऽप्यत्राप
॥ १० ॥ तत्र स्वसिसानामेव स भगवताभ्यां त्वंकार कारयुगमवत् ॥ ११ ॥ ततश्च तत्काल
कृतानां तेषामभेदाद्यमेवावभ्युतनाम्नामनवरतमनेकजन्मसुबद्धितविद्वेवानुबंविचितो विनिबन
सतर्जमारिपुष्कारयुगक्रोत् ॥ १२ ॥ तच्च क्यमुत्पुष्पपद्मवत्तामसाक्षिमस्तुज्ज्वलप्रीतवस्त्रधार्यमन
किरीटकमूरद्वारकटकाविद्योभितमुबारकगुर्वाहृ संवत्सरकयवावरमक्षिमकञ्जैराभुभावावटनमोजन
स्नानासनधयनारिष्वेधोपावत्तामशरेषु नाश्वरोपययावस्य भैरव ॥ १३ ॥ ततस्तमेवाकोलेपुष्पा
र्यस्तमेव हृदयेन चारयन्नामववाय यावद्भगवत्तत्तत्कर्त्तुमाभोज्यकलमख्य तेजस्वरूपं ब्रह्म-
भूतमपवत्त वेपादिबोध्यं भगवत्तत्तमेवासीत् ॥

(ग) अग्निपुराण में बहुतों अभ्यास से १२ अभ्यास तक 'बराह्मणार्चिहृदीनामवता
राणां वर्णनम्' है । मुद्रकम् में सिमुपासक की कथा का संकेत है । पाठक नीचे निम्नी
पंक्तिमें पर मनन करें—

अग्निदवाच—

भवतार बराहस्य बरमेष्टं पापनाशनम् । हिरण्यसौमुरेणोभूदेवाभित्वा विविस्मृतम् ।
देवैर्मत्वा स्तुतो विष्णुर्वज्रकपो बराहक । अभूतं वागर्षं हत्वा दीप्तं सार्धं तू कष्टकम् ॥ बर्म
देवादिरयाकततः सोऽन्तर्यवेहृदि ॥ हिरण्यकस्य बीजाता हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ त्रितदेवमज
भायः सर्वदेवाधिकारकत नार्चिहृं वपु कत्वातजपान मुदं सह ॥ रावणान्वेर्षमार्याय वपुर्वा-
भूतस्त्वम् हृदि । रामो वराहनामः कौसल्यायां बभूव ह

×

×

×

ब्रह्मोभावावतारार्थं देववर्गां वपुर्देवनः । हिरण्यकशिपो पुत्रा पश्यमर्षीवनिग्रया ॥

(घ) ब्रह्मर्षिर्बर्तपुराण में सिमुपासक—

वयोवयाधिकसततमोभ्याय—

कप्लो मुधिष्ठिराहृवागात् प्रवपी इम्तिनापुरम् ।

कुन्ती सम्भाष्य भ्रातृञ्च नृपारं प्रमुखाभित ॥ २३ ॥

उपायेन प्रारम्यं निहृत्य दान्त्वमेव च ।

वरायामास यज्ञञ्च विविधोचित दक्षिणाम् ।

मुनीर्गृह्य नृपेर्गृह्य राजमूयमभीप्सितम् ॥ २४ ॥

दिगुपाम दस्तवत् तत्र यज्ञे प्रवान स ।

पत्नीच निम्नां कुर्बन्तं गभायी मुरभुरयो ॥ २५ ॥

पपाठ तच्छरीरञ्च प्रीतोमता हरे परम् ।

न हृत्वा तत्र मर्देम मुग्धाधाय मायवम् ॥ २६ ॥

शिष्टुपाल उवाच

वेदानां जनकोऽसि त्वं वेदांगानाम्ब माधव ।
 मुराणाममुराणाम्ब प्राक्तनानाम्ब देहिनाम् ॥२७॥
 मूर्त्तौ विनाय छटिम्ब कम्पनरे करोषि च ।
 मायया च स्वयं ब्रह्मा संकरे क्षिप एव च ॥२८॥
 मनसो मुनयश्चापि वेदाश्च सृष्टिपालका
 कलाधिनापि कसया दिक्पालाश्च प्रहावय ॥२९॥
 स्वयं पुमान् स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकम् ।
 कारुण्यम्ब स्वयं कार्यं बन्धश्च जनक स्वयं ॥३०॥
 यद् यन्त्रस्व बुद्ध्या योया यन्त्रिणश्च भूतीभूतम् ।
 सर्वं यन्त्रा यन्त्रा यन्त्री त्वयि सर्वं प्रसिद्धितम् ॥३१॥
 समापराधं मूढस्य स्तोत्रेण विस्मयं ययु ।
 परिपूर्त्तवमं कला मेनिरे कण्ठायीश्वरम् ॥३२॥
 कायित्वा राजसूय योजयामास ब्राह्मणान् ।
 कुर्व पाण्डव युद्धम्ब कारवामास मेरुत ॥३३॥
 भुवो भाव्यवतरणं चकार स कृपानिधि ।
 पुनर्मयी द्वारकाञ्च विरं स्मित्वा नृपाङ्गया ॥३४॥

(४) आगम में वर्णित शिष्टुपाल कथा—

शिष्टुपाल पुराजित् विनेमश्च बहुर्भुज ।
 पितरौ चापि तं दृष्ट्वा हार्तं नै चक्रमुर्मतिम् ॥
 धर्मोन्मत्तार नमसो वायेवमसरीरिणी ।
 नैव स्वाण्यो महाराज । भीमम् बीरो मयिष्यति ॥
 स चाज्य बधको धात्री यं दृष्ट्वा न भविष्यत ।
 बाहूत्रं च सहसा तस्माद्वै पाप्मतामयम् ॥
 कौतुकाद्य तं द्रष्टुं नृपा सर्वे क्षमाययम् ॥
 यथाह पूर्व न षोडशींश्च पुत्रं तेषां न्यवेशयत् ।
 नाप्सी प्राप्तिविकारं च कण्ठाद्यप्यत्र बाण्यवात् ।
 तं दृष्ट्वा व्यथिता माता कप्लु भरययाचत ॥
 न बन्धोऽयं तस्या देव । पुत्री न दीयतामिति ।
 सहित्ये दत्तयापीति तामुवाच हरिस्तथा ।

किरातार्जुनीय का कथानक (माघ-काव्य के कथा विकास के लिए स्रोत)

मुबिष्ठिर घृत में हार गये जब उनको तेरह वर्ष का वनवास हुआ। पाँचों भाई शीपरी को लेकर काम्यकवन (ईतवन) में चले गये। मुबिष्ठिर यहाँ रहकर भी दुर्व्यसन की चिन्ता से मुक्त हो ऐसा नहीं था। एक दिन दुर्व्यसन का राजकाज व प्रजापालन सम्बन्धी नीति को जानने के लिए मुबिष्ठिर ने एक वनवासी को 'भर' बनाकर ब्रह्मचारी के रूप में हस्तिनापुर भेजा जिसने शीशों देखा बलुन करछे हुए मुबिष्ठिर की बोध्यता नीति व्यापरीमता उत्कृष्ट प्रजापालन तथा प्रजा को समुरक्त बना देने की बातें कहीं। जिसने यह भी संकेत दिया कि पुत्र के बहाने जीटी हुई पृथ्वी को यह नीति से भी जीत देने की चेष्टा में गया^१ है। सारी बातें बताकर जब वनचर लौट गया जब शीपरी ने मुबिष्ठिर की क्षमिता धाम्नि तथा महनशीमता की कड़ी निन्दा की और अपने ऊपर किसे गये सरयाचारों और पापबलों पर भाई हुई विपत्तियों का भी चिन्त खींचा। मुबिष्ठिर की समायीमता को ही सारे घनबों का मूल बताते हुए उन्हें धरम चरण करने के लिए उसने प्रष्टि किया। वह कटु-शब्दों का प्रयोग करती हुई कहने लगी कि धाम्नि तो उपस्थियों के लिए उचित है अशियों और उनमें विषेय कर राजाधों में उसका होना कायरपन की निशानी है। इन सब बातों को सुनकर भीमसेन ने उसका साथ लिया। उन्होंने शीपरी की बातों की पुष्टि की और अपनी ओर से भी बहुत कुछ कहा सुना। उसने कहा कि हम चारों भाइयों के साथे युद्ध में कोई छद्म नहीं सकता^२ यह मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ फिर युद्ध कर दुर्व्यसन से अपनी राज्य बर्षों नहीं छीन लेना चाहिए। ऐस कार्य में तो बिलम्ब करना भी नहीं चाहिए। प्रतिज्ञा का निर्वाह उसके साथ किया जाता है जो स्वयं प्रतिज्ञा का निर्वाह करता हो^३ जबकि की प्रतीक्षा भी निम्न कृतिबाने के बामने नहीं करनी चाहिए। भीम ने आपण को सुनकर मुबिष्ठिर ने प्रथम तो उनके आपण की प्रस्था की राजनीति का चक्षु समझाया और अन्त में कहा कि तेरह वर्ष के वनवास की प्रतीक्षा को छोड़ना अच्छा नहीं है। समय आने देना चाहिए जब पैसा उचित होना वैसा ही किया जायगा इस भाँति नीति विचारक मुबिष्ठिर ने एक कुपन महावत की भाँति मदमस्त जब सरीखे भीम को नीति की सक्तियों से जैसे ही धाम्नि किया कि महवि व्यास ज्ञापि भा गये। व्यास जी के सामने समस्या प्रस्तुत हुई। व्यासजी ने कहा कि युद्ध में उसी की विजय होती है जिसके पास सेना तथा अस्त्रादि का विषेय बन है।

१ बुरोवरचद्मप्रिता समीहते नयेन किनुजपती मुषोपन—किरात १७

२ प्रप्रेनरलेतवानुजाद् क्षिपता क दातमगुनेजस—किरात २ २३

३ अपचदबधि प्रतीक्षते कथमाविरुतजिह्वकृतिना—किरात २ सप्त

स्वाम से तुम लोगों को तेरह वर्ष पश्चात् राज्य मिलना चाहिए किन्तु सभसों से तो बात हाँटा है कि बुद्धिमान प्राप्त हुए राज्य को तुम्हें बीबी तीर से नहीं बीटायेगा । कुछ तो करना ही होगा । प्रतापीय, कर्ण तथा श्रेष्ठार्थ धारि बीबी को बीच सके उन दिव्य धर्मों को पाने के लिए मैं धर्म को एक र्थ देता हूँ जिसके द्वारा वह कठिन तपस्या कर इन्द्र प्रदाय को प्रसन्न करेगा । दिव्य धर्म की प्राप्ति पर कुछ में विषय होती वस यही मेरे धाम का उद्देश्य है । ऐसा कहकर व्यासजी ने धर्म को र्थ-बीजा की धीर एक यज्ञ को उसके साम करके चले गये । धर्म को पाने के लिए कठिन देखकर शीपरी ने धर्म से कहा कि जब तक तपस्या पूरी न हो आपको हम लोगों के लिए व्यग्र नहीं होना है, क्योंकि बिना प्राप्ति के कोई कार्य सिद्ध नहीं होता है । शीपरी के शोक पर बाकी को सुनकर धर्म में जोर थाया । वह वन्य तीर, तरण लेकर इन्द्रकीस पर्वत की ओर तपस्या के लिए चल पड़ा ।

इन्द्रकीस पर्वत की ओर चल के सात बाटे हुए धर्म ने धर्म की सोमा को देया । सभासभ में कमलों की सोमा थी । चारों ओर शीत में बाल थे । इस सोमा को देखकर धर्म उसमें तल्लीन हो गये । यदा वे उनको धर्म के गुणों का वर्णन किया । वे विरिष्ठाव हिमालय पर पहुँचे । वहाँ की अद्भुत प्राकृतिक सुषमा ने धर्म को सुष कर दिया । उससे चुड़े हुए धर्मक देवी-देवताओं अथि सुनियों तथा महा मानों के प्रसंग सनके स्मृति-मय में प्रवर्तित हुए । हिमालय के वर्णन के बाद वह ने धर्म को इन्द्रकीस पर्वत के विषय में बहुत-सी बातें बताई । धर्म ने कहा कि नहीं उन्हें उसका कारण कर तपस्या करना होगा । तपस्या में बहुत ही विषय बाबाओं उपस्थित होंगे उनको दूर करने के पश्चात् ही धर्म की प्राप्ति होगी । इसलिए आप इन्द्रियाण्य को त्यागकर नवबान् धर्म की तपस्या में लीन हों । लोकपाल और इन्द्र आपकी तपस्या की वृद्धि करेंगे । इस बात धर्म को आशीर्वाद देकर वह अपने स्वान पर चला गया और धर्म अपनी कार्य-विधि के लिए इन्द्रकीस पर निवास करने लगे ।

इन्द्रकीस पर्वत पर विरि-सरिताओं के जलकणों से अत्यन्त दीप्तम मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित हो रही थी । धर्म ने प्राकृतिक छटा वाले इन्द्रकीस पर्वत पर धान्य बाठावरण में तपस्या आरम्भ की । सांसारिक विषयों से चित्त को हटाकर इन्द्रियों को बरीभूत करने जब धीर तप में लीन हुए । सामुद्रिकी तपस्वी धर्म की देखकर जिसका सर्व सिद्ध व्यापारि ने उस स्वान को छोड़ दिया । उन पशुओं ने इन्द्र को आकर धर्म की तपस्या के विषय में सब कहा तो इन्द्र ने अपने हर्ष से धारण को रोक कर उनकी तपस्या की परीक्षा के लिए धर्मराओं को बुलाकर कहा कि तुम लोग काम के प्रमोद धर्म हो । तुम जाओ और इन्द्र कीस पर्वत पर धर्म की परीक्षा को ।

महेश्वर के भवन से इन्द्रकीस पर्वत पर धर्म के समीप प्रस्थान करती हुई उन धर्मराओं के रसधार्य इन्द्र ने हाथी रथ चोड़ों के साथ अपने भूर्यों को भी भेजा । इन्द्रकीस पर्वत पर पहुँच कर संयर्बग्य विधियों को बनाकर गया । समीप हरी-हरी पहातों से भरी हुई भूमि पर रहते हुए उस स्वान की घोषा बढ़ाने लगे ।

तमबगल छ मुक्त होकर देवायनामें बस में बिहार करने लगीं । कबि ने इस प्रष्टम सर्ग में मानिनी नायक-नायिकाओं के पारस्परिक व्यापारों तथा बेपटारों का विवरण कराया है । इसमें पुण्य जयन बलहीन भावि का सुखर बर्णन है । अस-बिहार के बर्णन के बाद नवम सर्ग में कबि ने सूर्यास्त तथा अश्वोदय भावि का बर्णन किया है । इसके बाद रात्रि में नायक-नायिकाओं के मनुषान तथा रति व्यापार का बर्णन है । प्रभाव हो गया । कुछ सो जाने से उन संयनाओं का रतिव्यय बेच बुर हो गया । दशम सर्ग में धर्जुन को सुमाने के लिए अस्पृष्टों का प्रसन्नत रूप में हाव भावों कटाकों द्वारा आगमन दिखाया है । इसी में बर्पादि अनुष्ठानों का भी बर्णन है । सब कुछ अष्टांशों के करने पर भी धर्जुन विचलित न हुए सो विन्य घमनाओं ने बाकर इन्द्र को कहा । इन्द्र ने धर्जुन के उपोन्मुखान को देखने के लिये मुनिवेश बाराण किया । मन्त्रेय में आए हुए इन्द्र को देखकर धर्जुन धारमन्त प्रभावित हुए । धर्जुन ने उत्कार किया । इन्द्र ने धर्जुन का उपवेश दिया किन्तु धर्जुन ने कहा कि आपने जो कुछ कहा है वह तो युक्तियुक्त है किन्तु मैं यहाँ पर उपोन्मुखान करने के लिए क्यों आया हूँ इस उत्स्य को जब तक आप जान न लेंगे तब तक आपका यह उपवेश मेरे लिए ठीक नहीं रहेगा । धर्जुन ने अपनी बूट में युधिष्ठिर के पदचब से लेकर इन्द्रकीस पर्वत पर आकर उपस्था करने तक की छारी कबा कह सुनाई । इस पर - इन्द्र ने धर्जुन को महादेव की आराधना करने के लिए उपवेश दिया ।

इन्द्र के जाने जाने पर उनके उपवेशानुसार सब धनु न शिवजी की आराधना करने लगे । धर्जुन के उप प्रभाव सहन न कर सकने के कारणसु महापिपण शिवजी की सरण में पहुँचे । शिवजी प्रकट हुए । महापिपण ने धनु न के उप के प्रभाव का बर्णन करना आरम्भ किया । इस पर शिवजी ने कहा कि नाचगल का संघ नाचवेय भीकण का मित्र बनबय है । यह मुझको ही प्रसन्न करने के लिए ध्यान में लीन है । बेवकार्य में लगे हुए इसको देखकर विन्य आया डालने के लिये सल से बराह रूप को बाराण कर मूक दानव बीतना जाहेना । उसी समय में किछत रूप आरण कर मेरे द्वारा उसके मारे जाने पर भी धर्जुन के भी एक साज बाण चलाने के कारण वह मुझ से अपनी चिकार के लिए भयङ्ग पड़ेगा । उस समय मेरे साज और संशाम करते हुए धर्जुन के पदचब को आप मोन देख लेना उत्तरबाह शिवजी ने किछतवैद्य बाराण किया । किछत सेना भी तैयार होकर सिंह के समान नर्तना करने लगी और शिवजी से आशिष्ट होकर नृत्या के बहाने से बीतरज फँस गयी । पहल तो गलों के साथ महादेवजी अयंकर रूप बाराण कर सबको भयभीत करते हुए धनु न के आश्रम पर पहुँचे । वहाँ घाँटे ही धनु न की और बाबा करते हुए बराह रूपपाटी मूक दानव को देखकर किन्हीं भड़ाहूँ किराओं के साथ शिवजी उसके पीछे चल पड़े । धनु न ने मह इत्य देखा । धनु न को सम्येह हुआ कि यह बराह रूप कोई इन्द्रबाल तो नहीं है । जो कोई भी हो परबय में इन हिमक नो माईया । ऐसा सोचकर धनु न ने पाँदीय अनुप पर बाण रक्षा और उधर भयबाहू पाँवर ने भी अपने पिताक अनुप को बलाबड़ किया । दोनों ने बाण एक साथ ही चलाये । चंकर धरापावी हुए । फिर धर्जुन अपने बाण को बाण सेने के लिए उस बराह की आर चल पड़े । वहाँ आकर मृत बराह को देख सेने के बरबाह

शिवजी के द्वारा भेजे हुए धामात्मक ही उपस्थित एक बनेबर को धनु न में देखा । बनेबर ने कहा कि मेरे स्वामी के बाण को आप न लें । आप बोले थे ही उस बाण को लेने के लिए प्रभुत हुए हैं । किरातपति के सिवाय यह बरह मारा नहीं जा सकता इसलिए उनका बाण लौटाकर राम सुधीन की भाँति उनसे भँजी कर लीजिये । इस पर धनु न ने कहा आपकी बाणी नैसे ही मनोहारिणी है । कोई तो केवल सम्पादम्बर को पसंद करते हैं कोई सरल रचना से अपने हृष्य भाव को प्रकाशित करने में तुरुर होते हैं वो कोई केवल नूतन रचना में पट्ट होते हैं परन्तु आप तो इन सब गुणों से युक्त हैं । किरात होकर भी आप जिसमण्डता से बोलते हैं और साम्प्रदायिक प्रलोभन से रहित आहूत हैं जिससे अनुचित भी अनुचित ही प्रतीत हो । ठीक बात तो यह है कि आपके स्वामी का बाण कहीं छिप गया है इसके लिए वो बन पर्वतों को ढूँढ़ना पड़ेगा । सुरेन्द्र के बाण को भी मैंने लेना न चाहा तो किरात राज के बाण की तो बात ही क्या है । आपके स्वामी मिय्या धारोप लगाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं । यदि वह स्वयं बाण लेने नहीं चाहते तो मैं अच्छी तरह उसका मजा बच्चा दूँगा । बनेबर यह कहकर शिवजी के पास बसा गया कि हमको भीतना इतना घरस नहीं है जितना तुम समझते हो । बाद में शिवजी ने आत्मा से किरात सेना गरजती हुई धनु न से सड़ने के लिए जल पड़ी । शिवजी भी किरात सेना में पिनाक धनुष धामकर खड़े हुए । शिवजी के गण धनु न पर दूट पड़े । धनु न ने अपने मुख-कीर्ण से सारी शिव-सेना को भूषित कर दिया ।

यस शिव-धनु न का भी कुछ छिन्न गया । महादेवजी की सेना अपने धातुधर्मों को छोड़कर भाग गई । मय के गारे काविकेय के सैनिक भी भाग गये । काविकेय के बचनों की ओर भी सेना ने ध्यान न दिया । अतः यस शिव के साथ धनु न का युद्ध है । धनु न द्वारा छोड़े हुए बाणों को शिवजी ने छिन्न-भिन्न कर दिया । धनु न भी शिवजी के बाणों का निवारण करते रहे । शिवजी ने कहा से प्रवित होकर सर्ववैषी बाणों को नहीं फटा । धनु न उनके अनेक बाणों से आहत होते हुए भी नहीं पबड़ाये । सुमुख कुछ देकर यस शक्ति हो गये ।

यस धनु न किरातपति की संप्रदाय कुशलता को देखकर एवं शक्ति से होकर अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगे । हाथी भी नहीं घोड़े भी नहीं रथ भी नहीं पठाकार्यों भी नहीं और मोझा भी नहीं रखेगी धनु न भी नहीं फिर भी मेरी शक्ति क्यों क्षीण हो रही है । क्या यह कोई माया है ? या मुझे ही मति विभ्रम हो रहा है या मैं वह धनु न ही नहीं हूँ ? वास्तव में वह किरात नहीं आश्रम पड़ा । धनु न ने प्रत्यागमन को विघ्न मानकर नागपाशों को बड़ाया । शिवजी ने पड़ारुण से नागपाश को बुर करने के लिये धारातमंडल को पड़ारुण बना दिया । धनु न ने धामेपाश बनाया तो शिवजी ने बरुणाश का प्रयोग किया । अतः मं धनु न ने सारे अस्रों को विघ्न जानकर शिवजी से बाहु-युद्ध की इच्छा की । फिर धनु न ने दिव्यास्त्रों के समाप्त हो जाने पर भी चर्य बारण कर एक बार और सात-सात धाँध कर शिव-सेना पर दूट पड़े किन्तु महादेव के प्रति फिर भी उनके सब यत्न विघ्न हुए । धनु न बहुत पबड़ाये । फिर से होय में धाँध पुनः पुनः

क्रिया । तदनन्तर भगवान् शंकर ने अपना स्वल्प प्रकट कर शर्जुन के सारे बाणों को एक साथ मष्ट कर दिया । शर्जुन बाणों के मष्ट हो जाने से चिन्तित हुये वही भीष शिवजी ने शर्जुन को मर्मबाणी बाण मारकर अधिक व्यथित किया । शन्त में दोनों का बाहु-मुझ हुआ । भगवान् शंकर ने शर्जुन को बाहु-मुझ में धाया धानकर आप-सर स्थाप कर मुष्टि प्रहार किया । बाहु-मुझ करते-करते शर्जुन ने आकाश में उठे हुए शिवजी के चरणों को पकड़ लिया । शिवजी ने शर्जुन को गले से लगा लिया । शन्त में शिवजी किरातवेस को छोड़कर स्वच्छ भस्म को रमाये हुए चन्द्रकला से सोमिल कक्षेपर की चारण कर प्रकट हो गये । शर्जुन भी वही शंकर मूर्ति की बैठकर प्रणाम करते हुए उनके सम्मुख नत-मस्तक हो गये । हुन्नुमि की दिव्य-ध्वनि होने लगी पुष्प बर्षा हुई । शर्जुन सब तपस्या का फल प्राप्त कर शरणाग्र भगवन्त से शंकर की स्तुति करने लगे । शर्जुन ने शिवजी से वर मांगा तो शिवजी ने पादुपतास्र और समग्र अनुबेद पड़ाया । अनुबेद मूर्ति धारण कर उपस्थित हुआ । इन्द्रादि ने प्राचीर्वाद पूर्वक अपने-अपने मनोव शक्तों को लेकर शर्जुन की प्रोत्साहित किया । अभीष्ट प्राप्ति के अनन्तर शर्जुन अपने बाईयों के पास लौटे ।

माय काव्य की कथा [सर्गवार]

प्रथम सर्ग—समस्त लोकों के धामधारभूत ब्रह्मीपति श्रीकृष्ण एक दिन अपने पिता बसुदेव के दह में बैठे थे उसी समय उन्होंने आकाश से नीचे की ओर फैलते हुए एक को देखा। उन्होंने प्रथम तो उस वस्तु को कोई ठेकपुंज समझा किन्तु कुछ समीप जाने पर हाव वीर आदि की कुछ-कुछ भुंभली भाकृति देखकर खरीर बाधे हैं ऐसा अनुमान समझा किन्तु जैसेही वह भाकृति निकट आई तो पुष्प के लक्षण वाले ध्वंश प्रारंभों से उन्होंने जान लिया कि वह एक पुष्प है और फिर ध्यस्त में उन्होंने देखा कि वह तो नारद भवि है। नारद वीर बर्त के थे। कमल देवता की ही उनकी बटावें थीं। देवता पहिने हुए, हृष्य मुख-वर्म को खरीर पर डाले हुए सुवर्ण सूत्र से बना हुआ यशोपवीत धारण किसे और हाव में स्फटिक की माला मिए हुए थे। उनके साथ देवलोभ भी तो थे जो उन्हें द्वारिका नगरी तक पहुँचाने के लिए आये थे। नारद श्रीकृष्ण के प्रणाम की ओर उठते और देव लोचों से आपन स्वर्ग की ओर प्रस्नान किया। नारद ने निकट आते ही श्रीकृष्ण अपने ऊँचे धामन से वेग पूर्वक उठ खड़े हुए और नारद ने उसी समय धू माय पर वीर रखे। श्रीकृष्ण ने पूजा योग्य देवपि नारदजी की धर्म पाठ आदि पूजा की सामग्रियों से यथावत आतिथ्य किया और समुचित मासन पर उनको अपने सम्मुख ही बैठाया। नारद ने कमण्डल के समस्त तीनों के बल को संवसुत करके श्रीकृष्ण को प्रविष्टि किया। श्रीकृष्ण ने नम्रता पूर्वक नारदजी से द्वारिकापुरी की ओर आगमन का कारण पूछा। नारदजीने स्तुति रूप में श्रीकृष्ण की प्रशंसा की और अपने आगमन का कारण इस प्रकार बताया। आपने वृष्णी के बार को हल्का करने के ही लिए अवतार धारण किया है। आपने तो हिरण्यग प्रभृति महान् बुद्धिध धमुरों का संहार किया है ऐसे कार्य के सम्मुख कौन बल की बात तो अति मुञ्च ही है। जब आप लोकलोहितों के दमन करने में स्वयं प्रवृत्त हैं तो मेरे लिए कहने को कुछ भी नहीं बचा है। फिर भी सुराधिपति इन्द्र ने मेरे द्वार को खदिय निजबामा है उसे आपसे निवेदन करना मेरा कर्तव्य है। दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु हुए हैं उन्होंने धमुर नाम को सार्वक करते हुए देवताओं के चित्त को बधनीत कर दिया था। उन्होंने दिक्पालों की समस्त सम्पति अपने अधीन की। देवगण ने अब इससे बचप रहने के लिए दुर्न बनाये गया रण-साधनों से अपने को मुसम्पन्न किया। अब नृसिंहावतार धारण करके आपने हिरण्यकशिपु को मार दिया अब सभी हिरण्यकशिपु ने 'रावण' के रूप में पुन जन्म धारण किया। रावण ने मिथुवन के अधीनस्थ बनने की इच्छा से अपने गव दीप को काटकर सबके भिर की भी धारण्य अस्ताह से भुचककर शिवजी के सम्मुख रखता बाह्य। उसने सर्वतपज कीर्तन को धैर्य में ही ऊपर उठा लिया इन्द्र के आज निरोध कर समरावली पर

जड़ाई की घोर स्वर्गपुरी में उपह्वय मचाकर अस्तव्यस्तता फैला दी। बरहण सूर्य इन्द्र घोर प्रमिषि धादि इसके सकल बन गये। राम के रूप में आपकी धनधार सेना पड़ा। आप से भी उसने लड़ाई ठानी जानकी का अपहरण हुआ। धातिर आपने तो इस वृष्ट राजस को माघ घोर संसार ने मुक्त की सीस ली। वही राजस आज इस भू-मण्डल पर सिन्धुपाल नाम से ठिठ दिखलाई पड़ रहा है। यह सिन्धुपाल बालपन में विष्णु की भाँति चार भुजाओं वाला तथा तीनों नेत्रों से शिव स्वरूप था। भुजावस्था में इस समय राजाओं को धाकास्त कर अपनी इच्छा से ही देवताओं बेटों तथा राजसों पर क्रूरता तथा प्रहार बिखाता हुआ यह सिन्धुपाल महादेव के घर से शक्ति पाने वाले राजस का भी परिहास करता है। यह बगल को अपने पराक्रम के अभिमान में जलीकृत कर रहा है अतः बिखाता की भी धाका को सम्मिलित करने वाले इस सिन्धुपाल को अब आप नष्ट कीजिये। असम्भवों का विनाश करना आप जैसे सत्पुरुषों का कर्तव्य है। इन्द्र के इस संकेत को कह कर नारद जैसे ही धाकास की घोर जाने गये श्रीकृष्ण ने कहा कि ऐसा ही होना घोर सिन्धुपाल के प्रति शोक कुटिल चूकटि बनासी।

द्वितीय चर्य—इन्द्र का सम्येध मुन लेने के पश्चात् एक घोर तो राजसुय यज्ञ के लिए सुविष्टिद्वारा धामनिष्ठ क्रिये गये तथा दूसरी घोर सिन्धुपाल पर अभिमान करने के इच्छुक श्रीकृष्ण द्विधा में पड़कर व्याकुल हो उठे। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण सख्य घोर बलराम को साथ लेकर तात्कालिक निर्णय लेने के लिए रत्न बटित समा जवन में गये। वहाँ स्वयं धातिर ध्वस्त रत्नबटित से जन्में तीनों का प्रतिबिम्ब चारों घोर दिखलाई पड़ने से केवल वन तीन व्यक्तियों के बहो होने पर भी वह समा जवन चारों घोर घनेक पुरुषों से भय हुआ था प्रतीत हो रहा था। वहाँ पर वे ऊँचे सिंहों से धातिर स्वर्ण धातनों पर बैठ गए। श्रीकृष्ण ने बेटे ही इन दोनों कुम्हनों से इन दोनों महान् धातव्य कर्णों के परस्पर विरोध की बात कही। मन्द-मन्द ईसी ईसते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि नाटक में जिस भाँति पूर्व रंग से धावे की कपावस्तु का विकास होता है उसी भाँति मेरे धातव्यक बचन से आप दोनों को अपनी विवेकपूर्वक सम्मति प्रस्तुत करने का अवसर मिलेगा। उन्होंने कहा—सुविष्टिद्वारा अपने बही माइनों की सहामता से हमारे बिना भी अपना यज्ञ पूर्ण करने में समर्थ है। कस्याण की इच्छा रखने वाला व्यक्ति कभी भी बढ़ते हुए धनु की अपेक्षा नहीं करता। सिन्धुपाल को मेरे साथ मुझे रूप में होइ करता है उसकी तो मुझे कोई चिन्ता नहीं किन्तु उसका सब धाधारण को कुल देना मेरे हृदय में चोट पहुँचा रहा है। तत्पक्ष भी धकेला होने पर कर्तव्य के निरन्धर कर लेने में संविध्य हो जाता है। अतः आप दोनों की सम्मति मेरे लिए बहुमूल्य है। श्रीकृष्ण के इस कथन को सुनकर बलराम बोले—अपनी अग्रति घोर धनु का विनाश के ही दो मोर्चि की बातें हैं। सम्योप विकास का पालन होता है। धस्य सम्मति में ही सुस्तिर मानने पाव पुण्य को विपाणा भी धावे नहीं बढ़ाता। स्वाभिमानी पुरुष धनुषों का समूह माघ धिग बिना सम्मति नहीं प्राप्त करते। कथिम सख्य तथा प्राकृत शिव घोर धनु भी कार्यबध कभी धातिर बन जाते हैं। जगहारी धनु के माघ भी सन्धि कर सेना धातिर है किन्तु धातव्यारी शिव के माघ नहीं। मुझे धिक्कली वा हरण करते समय सिन्धुपाल को जो पराजित किया था वही पराजय सिन्धुपाल की धातुना का मूल कारण है। नरकामुर को धातने के लिए अब

दुर्न गये हुए वे तब उसने झारिकापुरी को बेर लिया और बहुत यात्रा की स्त्री का अपहरण किया। हम लोगों का इसी गति धनक बार उसने अपकार किया है अब वह हमारा कृत्रिम धनु हो चुका है। सामाजी भी क्या बारम्बार अपराध करने वाले को सहन कर सकता है ? सामाज्य धनका मैं क्या पुरुषों का भूषण है। किन्तु अपमान या पराजय के धनकर पर पराक्रम ही उनका धामूषण है। इन्ध के स्थान पर सामाजीति का व्यवहार करना अपना ही अपकार करता है। इन सब बातों पर विचार कर तुम इन्द्रप्रस्थ को बायो और विद्युत्पाम के साथ युद्ध की ओपणा कर दो।

बलरामजी की बाणी सुनने के पश्चात् धीकप्य ने उद्वनजी को अपनी सम्मति देने के लिए संकेत किया। उद्वनजी कहने लगे बलरामजी प्रसन्नपाणि हैं अब राजनीति सम्बन्धी बातों पर ध्यान न देकर धूरवीरता को ही उन्होंने प्रथम स्थान दिया है। मैं बँसा नहीं कर सकता। धरार सीमित है किन्तु उन्हीं से बँसा सम्मान बन जाता है। स्वर सात है किन्तु उन्हीं के सुन्दर मेल से अनन्त गाने बन जाते हैं। प्रतिमा पृथक् पृथक् है अब उसी प्रतिमा से बहुत सी संयत बातें भी कहो जा सकती हैं तो बहुत सी धसंयत भी। प्रयोजन बिना कहा हुआ व्यर्थ होता है। मुख्य प्रयोजन से संश्लिष्ट प्रबन्ध कठिनाई से ही बनता है। धाप स्वयं नीतिग है फिर आपके सम्मुख नीति की बातें करना बल्का की कोई विशेषता को नहीं प्रमा र्णित करते। यह बात तो बल्का के सम्पाद की इच्छा के लिए बार-बार उसी को बोहयने की गीति है। इसलिये मेरा तो यह कहना है कि पीतने वाले राजा की प्रभु धक्ति का दून कारण है मन्त्र और उत्साह धक्ति को धपने में बारण करना केवल बुद्धि पर प्रबलत्वित रहने पर ही सम्पाद नहीं होता किन्तु बुद्धिपूर्वक उत्साह सम्पाद होने से ही सिद्धि भिता करती है। तीव्र बुद्धि तथा सूत्र बुद्धि में महत्त्व है। तीव्र बुद्धि भी है तथा उत्साह भी है किन्तु प्रभावशाली यदि उस कार्य में यह नहीं तो फिर सफलता कहाँ ? उत्साह धक्ति को न छोड़ना हुआ व्यक्ति सम्मुख को धनस प्राप्त करता है। समय को पहचानने वाला कोई नियम नहीं रखता। वह तो समय पर धान्ति तथा समय पर उधवा का रूप बारण करता है। धनु अपकार कर रहा है किन्तु मन में उसके प्रति किने हुए भावों को प्रकट नहीं करता किन्तु समय की प्रतीक्षा करता रहता है समय पड़ने पर ही कोप प्रकट करता है। सामाज्यक प्रयुक्त ज्ञान ठेक ही सकन होता है। दैन और पुत्रपार्थ का तो सम्प्रयोग्यायय सम्बन्ध है। धान्ति पूर्वक किसी धनकर की प्रतीक्षा करने वाले निजय की इच्छा रखने वाले राजा के धन्य राजा भी सहायक हो जाते हैं। धपने और पराये राष्ट्र के रहस्य को जानने वाला नीतिग सामाजि धपानों से महान् से महान् धनु पर भी निजय प्राप्त कर लेता है। धक्ति (प्रभाव उत्साह मन्त्र) को चाहने वाले राजा को पशुपता (संक्षि विषहाकि) स्त्री रसायन का सेवन करना चाहिये इससे राजा के धन (स्वामी) धनपद, धमाय कोप धुर्न तथा धीर धिन) ही पर में धनुधात धीर स्वरित स्वर्णों को मीका कर देता है। विजुपाम धनेसा है धन सर तवा से बीटा जा सकता है ऐसा न समझें क्योंकि यह रोगों के समूह राजपदमा की गीति राजाओं का समूह है। महान् सहायता प्राप्त करने वाला धति बुद्ध भी धपने प्रयोजन की

विद्रिष्ट कर सेवा है। आत्ममग्न करने पर उसके भिन्न धीर तुम्हारे शत्रु उसके पास जैसे जाने
 धीर इस भाँति राजभूषण यज्ञ में विष्णु बालने के लिए समस्त राजाधों के समूह को लुब्ध करके
 तुम ही सर्व प्रथम युधिष्ठिर के शत्रु बन जाओगे। युधिष्ठिर ने तो मार को उठाने में समर्थ
 समझकर मानको ही यज्ञ का उत्तरदायित्व सीपा है। अभी शत्रु को तो समय बीत जाने पर
 बल से भी बच में किया जा सकता है किन्तु भिन्न को बेमनस्य होने पर कठिनाता से प्रसन्न
 किया जा सकता है। देवताओं की प्रसन्नता के लिए यदि धिस्तुपास का संहार अधिक उपयुक्त
 है तो देवता तो हृदिस्थ योद्धा होते हैं। उनकी तृप्ति यज्ञ से होगी। फिर तुमने यह भी तो
 प्रतिज्ञा कर रखी है कि वी अथवाय कर देने पर ही धिस्तुपास को माफ़ेगा उसका भी तो
 वासन करना है अन्यथा अपकीर्ति प्राप्त होगी। उद्यम के इन बचनों को सुनकर भीकृष्ण
 आसन से उठ खड़े हुए।

तृतीय सर्ग—उद्यम की सम्मति सुन लेने पर तुरन्त युद्ध का आग्रह समाप्त हो जाने से
 सौम्य भाकृति वाले भीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ की ओर इस भाँति चल पड़े जैसे उष्ण किरणों वाला
 सूर्य उत्तर दिशा को त्याग कर दक्षिण दिशा के मार्ग को ग्रहण कर सेवा है। अन्न, वामन,
 मणिमौ से बड़े हुए मुकुट वाले भीकृष्ण कानों में मरकट मणि से बड़े हुए स्वर्ण कुंडल पहिने
 हुए वे लाल नख से नीले कर्णबासे वस्त्र-स्वज पर मोतियों का हार वा कौस्तुभमणि आरण
 किए हुए वे तथा कटि घुन से घेर के घाते तक मोतियों की माला पड़ी थी। बेहमाय पर
 पीताम्बर वा। हाथों में सुवर्ण चक्र कीमोवकी पद्म मंडल आर्य आर्जुन शत्रु धीर पाँच
 बन्ध धंध वा। भीकृष्ण के चलते समय नयाहों की प्रतिध्वनि हो रही थी। यादव सेना
 भीकृष्ण के पीछे-पीछे चली जा रही थी। हाथियों का मरकट टपक-टपक ब्रूल में मिचने से
 कीचड़ बना रहा वा धीर रथों के पहिये उस पीछे कीचड़ में भेज पर्वत बंसे वा रहे थे।
 अस्वारोही घोड़ाबादी बोकों पर बैठकर लयामों को बंधते हुए जा रहे थे। हारिकापुटी की
 घोमा को देखने में भीकृष्ण ललील थे। यह हारिकापुटी समुद्र के बीच में अपनी सुवर्णमयी
 नहार दीवारी की घोमा से सुशोभित थी दिवका प्रतिध्वनि समुद्र के जल में स्वर्ण की छाया
 क तुल्य दिखाई दे रहा वा। इस सुन्दर नगरी को छोड़कर जब भीकृष्ण समुद्र जल के पार
 नीले पत्तों वाली बनावली में जा पहुँचे। वहाँ पर भी समुद्री वायु इसामची की लताओं के
 संपर्क से सुमग्नित होती हुई बसीने की बूंदों को गुला रही थी। सैनिक धार समुद्र के समीप
 उस कच्छ भूमि के प्रवेष्टों में पहुँच गये जिसमें ञ्जि-ञ्जि ताड़ के वनों से निकली हुई वायु
 केतकी के पौधों धीर पुष्पों को सिर के वेतों के तुल्य दो भागों में विभक्त कर रही थी।
 लंबे के पुष्पों की मालाधों से विभूषित नारिकेल के जल को पीते हुए तथा गीली सुपारियों
 का आस्वादन करते हुए सैनिक चले जा रहे थे। जब यादव सेना समुद्र से दूर निकल गयी
 थी। समुद्र में धीर यादव सेना में जब बहुत अन्तर पड़ गया वा।

चतुर्थ सर्ग—भीकृष्ण ने मार्ग में चलते हुए अग्रणीय मणि के साथ विविध प्रकार
 की वायुधों से युक्त विष्णुचल पर्वत की भाँति पथि उच्च पर्वत रैवतक को सेवा। कहीं-कहीं
 पर इन पर्वत पर बड़ी-बड़ी नद्याँ हैं जो वहाँ लतायें फँसी हुई हैं जिन पर मंन्दे मकल रहे
 हैं। अनेक जिलों से यह एक धीर आकाश को घेरे हुए हैं वी दुसरी ओर यह समीपवर्ती

छोटे-छोटे पर्वतों की श्रृंखलों से पृथ्वी मंडल को बँटे हुए हैं। इसके विचार इतने ऊँचे हैं कि वे सूर्य के समीप से जाग पड़ते हैं। उन शिखरों में बहुमूल्य रत्न गरे हुए हैं। भूतलों का प्रवाह भी नीचे घिसाघों पर गिरकर अनुपम छटा को प्रदर्शित करता है। यहाँ पर स्फटिक के टट की किरणों से बनेत जलवाणी तथा दूसरी धोर इन्जनीनमणि की कान्ति से नीले जल वाली नदियाँ बनुना के नीले जल से सुषोभित गंगा की घोमा को धारण करती हैं। माँति माँति के पुष्पों पर यहाँ भ्रमर मंडराते रहते हैं। निचकबरे बालों वाले हरिण यहाँ पर बिचरण करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। कमलों से गरे जलसाय यहाँ हैं। कदम्ब के पुष्पों पर पत्तीपण्ड पालें छिपती हैं। यहाँ पर जोड़े के समान मुख वाले किरर कहीं बिचरण करते हैं। कहीं पर समाधि करने वाले योगीजन समाधिस्थ हैं। इस पर्वत की भूमि कहीं पर मरकतमणि गयी है तो कहीं-कहीं पर जन्मकान्त मणि से निकसे हुए जल प्रवाह से यहाँ की भूमि स्नान करती है। इस पर्वत की भूमि में नदियाँ प्रवाहित होती हुई समुद्र की ओर जा रही हैं।

बाँबर्बा सर्व—सुखपुत्र बाबक ने रँबतक पर्वत की छटा जब श्रीकृष्ण को दिखावाई तब श्रीकृष्ण ने कुछ समय तक यहाँ पर निवास कर प्रीति करने की इच्छा की। ध्वजा पताकियों से सुषोभित श्रीकृष्ण की विद्यासकाय सेना जब रँबतक पर्वत की ओर प्रस्थान करने लगी। हाथी सैन्त जोड़े इत्यदि से जा रहे थे। रँबतक पर्वत के समीपवर्ती शान्तों में रौड़ते हुए रनों से जो बूँत लट्टी वह चारों ओर फैल गई। श्रीकृष्ण के अनुचर राजाघों ने यहाँ पर पहुँचकर मुखाघों के बरों को अपना आवास बना लिया तथा धन्य वृषतिपण्ड ने भी श्रीकृष्ण के वरक ध्वजा वाले शिबिर के समीप ही अपने अपने शिबिरों को लगाया। यह समय श्रीमन् ऋतु का जा घट के सैनिक बूँतों की छाया में जाकर बैठने लगे। जो स्त्रियाँ बाहनों पर भी कपडों को लीने लटारने में व्यस्त थे। नीचे लहरते समय उन रानियों के बूँट का बल्ल जोड़ा सा शिखर जमा ठो सोय कुम्हल से उनकी मुखघी को देखने लगे। स्त्रियाँ अपनी केसरघाघि पर रंग बिरंगे पुष्पों को धुँसे हुए थी। शरीर पर जोती सुषोभित हो रही थी। सेना के साथ बैरपायों भी थी जो नय निवास स्थान पर मुखमिन्न होकर मार्ग की वक्रान से सिद्ध सैनिकों का निमिष उपचारों से स्वागत कर रही थी। सेना जब पर्वत पर शिबिर तान कर मनोबिभोद करने में व्यस्त थी। हाथियों की बीरायें एक ओर देखने योग्य थीं तो जोड़े तथा बैल भी अपनी छटा दिखाने में बूखी ओर निराने ही प्रतीत हो रहे थे।

दठा सर्व—जब श्रीकृष्ण ने रँबतक पर्वत पर बिहार करने की इच्छा की तो उस ही ऋतुर्ष अपनी-अपनी समुद्रि लेकर यहाँ पर एक साथ ही जा पहुँची। वरन्त ऋतु की ही सर्व प्रथम श्रीकृष्ण ने देखा जिसके धाने से पत्ताघों के जल में नये-नये पत्त निकल धाये थे पराप से परिपूर्ण एक ओर कमल खिल रहे थे। घुप भी गर्मी के कारण सताघों के कोमल पत्ते कुछ मुरझा गये थे और माँति माँति के पुष्पों से मुन्दर सुगन्ध निकल रही थी। मलयामिन्न प्रवाहित हो रहा था। कुरबक पुष्पों की कान्ति भ्रमरों के कारण कमनीय थी। जम्पा पुष्पों के मध्य विकसित शरीरक पुष्प सुषोभित था। प्राज्ञों से रजकण गिर रहे थे। बहुत पुष्प

रस रूपी घासब के पान से अधिक मधुर स्वर वाली भ्रमरावासीयाँ इतस्तत् गुंवार कर रही थीं। पसाध पुष्पराशियाँ शशास्त्रिणी थीं। यह ग्रीष्म ऋतु है यत् धिरीय पुष्प के पराय की कान्ति हरित तथा पीठ रूप बारण कर रही है। इसमें चमेरी की सुगन्धि से वायु सुशब्दित है। कोमल पादम की कमियों को विकसित करने वाले ग्रीष्म ऋतु के पवन के प्रवाहित होने पर कील कामाकुल गहीं होता ? वर्षा ऋतु में बार-बार बिजली रूपी घाँसों की चमकाती हुई चमड़े हुए विद्याल ठंडे ठंडे हुए पयोधर यैषों की पत्तियाँ समय की बिना प्रतीक्षा किए ही इस पर्वत पर घायई। यगल मंडल यन्त्राकार कुम्हार काय यैषों से भाञ्जित है तो मन्त्राकार इन्द्र वतुप बूसरी धोर। काले यैषों में बिजली क्या चमक जाती है मानों तमाम बृश के मुख्य प्राकाश रूपी बृश की छायाओं पर मकरी हो। पवन कन्वसी के पुष्पों को कंपाता हुआ वन के वृक्षों को झकोर रहा है। यैषों का बबन नगरों के शब्द का अनुकरण करता हुआ मयूरों को नवा रहा है। नवीन कषम्य के मकरन्द से यह वायु पवन को साज रस का बना रही है। यैषों में बल वृष्टि कर प्रथम बल यैषों से गर्मी को दूर कर दिया और पुष्पी की वृत्ति साध होगई। इंसों के मधुर रस सब इस धारण ऋतु में सुनाई पड़ने लगे हैं। मयूरों के स्वर तो कर्कश हो गये हैं। सब प्रत्येक वन भाग-भाग रंग के बबानुसुम तथा विकसित नील भिटी (पियाबास) से सुशोभित हैं। बबूक के पीले-नीले पत्तों में पराग से युक्त लाल रंग की केसर भी छिन्नी सुन्दर है। सरोवरों में जाल कमल हैं। सतवरण के पुष्पों के पुष्पों से सुगन्धित यह वायु छिन्नी कामोत्तेजक है। जाल सुनवासी तोतों की पंक्तियाँ प्राकाश में उड़ती हैं हरे-हरे पत्तों से ऋतु माला की भाँति हैं जिसमें बीच-बीच में लाल-लाल मूठम पस्तक बुँदे हुए हैं। सरोवरों में निर्मल जल है जिसमें कमल खिल रहे हैं और स्वेत हंस बिचरण कर रहे हैं। सब हेमन्त की वायु प्रवाहित हो रही है जो छिन्नी छँड़ी है। प्रियंदु लताओं के पुष्प इस ऋतु में विकसित हो रहे हैं। सूर्य की किरणें अब तीव्र नहीं हैं सर्वमसता तथा कुन्वसता भी विकसित हो रही है।

साठवाँ सर्ग—बीकण्ठ ने उस रौबतक पर्वत पर लहों ऋतुधर्मों की खोना देखी सब से अपने अनुचरों सहित वन बिहार कर रहे हैं। यह बंधियों ने भी अपने प्रकार के पुष्पों को बारण करने वाले वनों में अपनी सुबती रमणियों के साथ ही बिहार करने की इच्छा की। वे स्थिति विद्याल जगन प्रदेय पर स्वरण की कई लक्षियों की बनी करबनियों को जो रत्नों से जड़ी हुई बहुत सी छोटी-छोटी छिन्नीयों से युक्त हैं सटकाव हुये हैं। पर्वत में महावर लवा रक्षा है जिसमें मयूरों का मधुर गन्ध हो रहा है। स्थिति पुष्प कुलने में स्थित हैं उनके प्रिय तम उनके भाँति भाँति के अनोखेनोर कर रहे हैं। स्थिति वृक्षों में वस्त्र धीरे धीरे से कणों को बिबुधिन करती है। बड़े-बड़े भित्तियों तथा कुचों वाली वे रमणियाँ इस भाँति बहुत देर तक वन बिहार करने के कारण घायन्त पक जाती हैं।

साठवाँ सर्ग—वन बिहार से पड़ी हुई विद्याल स्तनों वाली उन पारव स्थितियों के कि कमल बन होने लगे और छिन्नी भाँति पुष्पी पर जाने की धीरे धीरे चरणों को रणनी हुई बलाजम की धीरे चलने लगी। वे पक्षिबद्ध जा रही थी मार्ग में जो बृश भाँते से उनकी छाया में जाने से वे कुछ-कुछ पीठलता का अनुभव कर रही थीं। स्थितियों में बाँटे समय रूप से

बचान के लिए प्रियतमों ने अपनी बाहर तान ली तो कुछ स्त्रियों ने छातों ही को तान कर रूप का बचान किया। वे प्राप्तपूर्वक मन्द-मन्द गमन करती हुई हँसियों को भी पार्श्व में डाल रही थीं। मार्ग में नदियों को देखती जा रही थीं जिनके बाहु के तटों पर लीपियों के फट जाने से मुक्ता बिखरे हुए ऐसे घोषित हो रहे थे मानों उनकी सुन्दर शम्भा हो। तदनन्तर वे रमणियाँ एक पुष्करिणी के समीप पहुँच गईं जहाँ पर कमल पुष्प विकसित थे पत्तियों के कलरव हो रहे थे तथा बचन सहर्षे बमती हुई फेज उत्पन्न कर रही थीं। धन कोई रमणी तो अपने प्रियतम के हाथ को पकड़ कर जल में प्रविष्ट हो रही है तो कोई रमणी बस की बाह सेने के लिए अपने कोमल करणों को धीरे से धावे बढ़ा रही है। जैसे ही वे धावे बढ़ रही थीं कि बस में उनका धंगराय छूटने लगा इस भाँति वह पुष्करिणी समुद्र-जित हो गई। कोई रमणी तो पीठ से मयनीत हुई तट पर ही बैठी हुई थी तब उसके प्रियतम ने बस के नीचे उतरके बिलाव को बेसने की इच्छा से उसको जैसे ही भिगोया तो उसने अपने दोनों हाथों को जो बचाया वह भी वर्चनीय इत्यथा। कोई तब परिणीता रमणी लग्नावध पति के साथ बस में प्रविष्ट न होने लगी तो सखियों ने तट से जैसे ही उसे बस की ओर हटकेस दिया तो वह पति से मिल पड़ी। कोई तो अपने प्रियतम को कन्धे तक बस में खड़े हुए जानकर उसके समीप जैसे ही निर्मलपूर्वक बसी कि प्रियतम ने वह समझकर कि वह मैं बड़ी ही थी कि सहर्षे सा धाकर स्तन युगलों तक परिरोहित होकर वह प्रवर्धित करने लगी कि जो स्त्रियों का एक बार भी स्पर्श पा जावे है उनके लिए मरणा बड़ा? कुछ रमणियाँ तो कुछ काय तथा विस्तृत बाहुओं से बच ठहरने लगीं तो शरीर का बस सुग्ग सा प्रतीत हुआ। धन वे विविध प्रकार से जलप्रवीणा करने लगे। रमणियों को जलप्रवीणा की सामग्री रूप में बस के कि के यन्त्र सुवर्धित पदार्थ उनके विद्यालय स्तनों को छूने के लिए कुमुम्भी रूप की चाड़ियाँ संयूरी बहिरा तथा प्रियतम का सामीप्य यह छारी बलप्रवीणा की सामग्री बहाँ थी ही। जलप्रवीणा के पश्चात् जैसे ही स्त्रियाँ बाहर निकलीं तो बरत भीय कर स्तनों की तटस्थी पर बिपके हुए तथा बस विष्णु को बुलावे हुए बने सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। कोई तो दोनों कंधों पर केपों को जमाकर मुखा रही थी तो कोई केपों को बाँधती हुई मुण्डो-बिल हो रही थी। इस भाँति शरीर में स्नान करने के पश्चात् सब लोग स्वस्थ बिल होकर जैसे ही नींदने लगे कि मूर्धन्य वस्तु होता हुआ विद्यमान पड़ा।

नवाँ सर्ग—सूर्यास्त का समय था। चिकित्सकों में एक दूसरे ही प्रकार के जीवन का धारण्य हुआ। रमणीय रविक्रीडा के लिए अत्यन्त आनुर सा दिखाई पड़ने लगा। पीठम बाहु बढ़ रही थी। पानी अपने आवातों में नींद चुके थे। संध्या का समय था। दियार्थे नाम बर्ण की हो गईं जलन में धैर्य भी नाम बर्ण हो गये। सुप का नाम-नाम विष्णु धन धाये रूप में समुद्र में डूबता हुआ दीप्त रहा था। बचन बन्द हो रहे थे। इस समय गर्मी बिलकुल नहीं थी यद्यपि मूर्धन्य वस्तु हो गया था। विष्णु धाका में न तो सारे ही थे और न बग्गा ही बलित हुआ। धनप्रकार भी अभी नहीं हुआ इस भाँति धाका की धूर्ध्र छटा थी। विकसित कुमुम्भी के पुष्पों के सुम्प नाम रूप से मुक्त संध्या के धायमन पर खाने से प्रणाम किया।

रत कपी घासक के पान हैं अधिक मधुर स्वर वाली प्रमदावातियाँ हलसत गुंवार कर रही थीं। पनास पुष्परासियाँ बाबागिरी थीं। यह प्रीप्प ऋतु है धर सिरीप पुष्प के पत्तन की कान्ति हरित तथा पीठ रूप भारण कर रही है। इसमें जमेसी की सुगन्धि से वायु सुगन्धित है। कोमल पाटल की कलियों को विकसित करने वाले प्रीप्प ऋतु के पवन के प्रवाहित होने पर कौन कामाकुस नहीं होता? यहाँ ऋतु में बार-बार बिजली कपी धाँकों को चमकाती हुई चमके हुए विद्याल ऊँचे छठे हुए पक्षोपर मैनों की पछियाँ समय की बिना प्रतीक्षा किए ही इन पर्वत पर घायर। पवन मंडल नवाकार कुण्ड काय मैनों से घाण्डित है तो मडमाकार इन्द्र वनुप इसरी धोर। कामे मैनों में बिजली का चमक जाती है मानों तमास भुज के तुल्य घाकास कपी भुज की साक्षात् पर मचरी हो। पवन कल्पनी के पुष्पों को कपाठा हुआ वन के वृक्षों को झकोर रहा है। मैनों का गर्जन मवारों के सव्य का समुकरस करता हुआ मयूरी को गवा रहा है। मपीन कल्प के मकरन्द से यह वायु मगन को लाल रंग का बना रही है। मैनों ने कम वृष्टि कर प्रथम जस वृक्षों से पर्वों को दूर कर दिया और पुष्पी की बुलि घास होमई। इसी के मधुर रस धन इस धार ऋतु में गुनाई पड़ने लगे हैं। मयूरी के स्वर तो कर्कश हो पड़े हैं। धन प्रत्येक वन लाल-लाल रंग के बबानुसुम तथा विकसित नील भिटी (नियावास) से सुगन्धित है। बबूक के पीले-पीले पत्तों में पराग से युक्त लाल रंग की कैसर भी कितनी सुन्दर है। घरोवरों में लाल कमल है। सतबरण के पुष्पों के दुग्धों से सुगन्धित यह वायु कितनी कामोत्तेजक है। लाल भुजवाली लोतों की पछियाँ घाकास में उड़ती हुई हरे-हरे पत्तों से ऋतु माना की भाँति है जिसमें बीच-बीच में लाल-लाल नूतन पस्तक बुँबे हुए हैं। घरोवरों में निर्मल वन है, जिसमें कमल खिल रहे हैं और खेत हंस बिखरण कर रहे हैं। धन हेमन्त की वायु प्रवाहित हो रही है जो कितनी ठंडी है। भिबंदु सताओं के पुष्प इन ऋतु में विकसित हो रहे हैं। सूर्य की किरणें धन तीव्र नहीं हैं लचबलता तथा कुन्दलता भी विकसित हो रही है।

साठवाँ सर्ग—भीकपण ने उस रसतल पर्वत पर उल्लो ऋतुओं की घोमा देखी धन के अपने समुचरों सहित वन-बिहार कर रहे हैं। मयू बंधियों ने भी धनेक प्रकार के पुष्पों को धारण करने वाले वनों में अपनी मुबती रमणियों के साथ ही बिहार करने की इच्छा की। वे सिवाँ विद्याल जपन प्रवेद पर स्वर्ण की कई लक्षियों की बनी करपणियों को जो रत्नों से बरी हुई बहुत सी छोटी-छोटी क्रिस्त्रियों से युक्त हैं लटकाने लगे हैं। वीरों में महावर सया रचना है जिसमें मयूरी का मधुर सव्य हो रहा है। सिवाँ पुष्प भुजने में व्यस्त हैं उनके मिय लम उनसे भाँति भाँति के मनोकिनोर कर रहे हैं। सिवाँ वृक्षों के पस्तक और भूनों से कणों को बिबुनिग करती है। बड़े-बड़े नितम्बों तथा कुर्बों वाली वे रमणियाँ इस भाँति बहुत देर तक वन बिहार करने के कारण धायन्त थक जाती हैं।

आठवाँ सर्ग—वन बिहार से बरी हुई विद्याल स्तनों वाली धन यादव सिधों के कम कमप बन्ध होने लगे और कितनी भाँति पुष्पी वर जाने की और अपने बरणों को रखती हुई जनाजय की घोर चमने लगी। वे पंक्तिबद्ध जा रही थी मार्ग में भी गुप्त घाते में उनको धमा में जाने से वे कुछ-कुछ भीतता का अनुभव कर रही थीं। सिधों के बाँटे सनव भुप से

बचाव के लिए प्रियतमों ने अपनी बाहर तान ली तो कुछ स्त्रियों ने जातों ही को तान कर रूप का बचाव किया। वे धानस्यपूर्वक मग्न-मग्न यमन कण्ठी हुई हँसियों को भी धारचर्च में डाल रही थीं। मार्ग में मदियों को देखती या रही थीं जिनके मांस के टटों पर सीपियों के फट जाने से मुखवा बिकारे हुए ऐसे सोभित हो रहे थे मानों उनकी सुन्दर शय्या हो। तरलतर के रमणियाँ एक पुष्करिणी के समीप पहुँच गई जहाँ पर कमल पुष्प विकसित थे पतियों के कलरव हो रहे थे तथा बचल सहर्ष बसती हुई फेज उत्पन्न कर रही थीं। जब कोई रमणी तो अपने प्रियतम के हाथ को पकड़ कर जल में प्रविष्ट हो रही है तो कोई रमणी बल की बाह लेने के लिए अपने कोमल चरणों को पीरे से घासे बढ़ा रही है। जैसे ही वे घासे बढ़ रही थीं कि जल में उनका धनराज झूटने लगा इस भाँति वह पुष्करिणी भगुरंजित हो गई। कोई रमणी तो धीरे से भयभीत हुई तट पर ही बैठी हुई थी तब उसके प्रियतम ने जल के भीतर उसके बिलास को देखने की इच्छा से उसको जैसे ही भिषोया तो उद्यने अपने दोनों हाथों को जो बचाया वह भी दर्शनीय दृश्य था। कोई तब परिणीता रमणी लज्जावश पति के साथ जल में प्रविष्ट न होने लगी तो सन्धियों ने तट से जैसे ही उठे जल की धोर डकेल दिया तो वह पति से लिपट गई। कोई तो अपने प्रियतम को कन्धे तक जल में धकेल हुए बागकर उसके समीप जैसे ही निर्वयपूर्वक जाती कि प्रियतम ने वह समझकर कि वह झूठ बायेगी उस सुन्दरी को अपने संघों में बिपटा लिया। कोई रमणी तो नाभिपर्वन्त जल में खड़ी ही थी कि सहर्ष पा धाकर स्तन युगलों तक अभिरोहित होकर वह प्रवर्धित करने लगी कि जो स्त्रियों का एक बार भी स्पर्श पा जाते हैं उनके लिए मर्यादा कहाँ ? कुछ रमणियाँ तो कुछ काय तथा विसृष्ट बाहुओं से जब ठहरने लगीं तो सरोवर का जल धुम्क सा प्रतीत हुआ। जब वे विविध प्रकार से बमक्रीड़ा करने लगे। रमणियों की बमक्रीड़ा की सामग्री रूप में जल केति के यत्न सुपमित पदार्थ उनके विद्याल स्तनों को ढकने के लिए कुमुदनी रूप की छाड़ियाँ अंगूठी मदिरा तथा प्रियतम का सामोप्य वह घाटी बसक्रीड़ा की सामग्री वहाँ की ही। बमक्रीड़ा के पश्चात् जैसे ही स्त्रियाँ बाहर निकलीं तो बरच भीव कर स्तनों घोर निवन्धों पर चिपके हुए तथा जल किन्तु की डुबाते हुए बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। कोई तो दोनों कर्चों पर केचों को लँकाकर मुखा रही थी तो कोई केचों को बाँधती हुई मुछो-मिछ हो रही थी। इस भाँति सरोवर में स्नान करने के पश्चात् सब लोग स्वस्व विध होकर जैसे ही लौटने लगे कि मूर्ध्वं वसत होता हुआ बिसासाई पड़ा।

नवों सर्व—सूर्यास्त का समय था। चिहिरों में एक दूसरे ही प्रकार के भीषण का धारण्य हुआ। रमणीय रतिजीवा के लिए अत्यन्त आनुर सा बिसाई पड़ने लगी। तीव्रत बासु बढ़ रही थी। पानी अपने धावालों में लौट चुके थे। संध्या का समय था। दिवायें साम बलों की हो गई यमन में शेष भी साम बणुं हो गये। सूर्य का साम-साम विष्वं दश घाबे रूप में समुद्र में डूबता हुआ लीस रहा था। नमस बन्ध हो रहे थे। इस समय गर्मी बिलकुल नहीं थी यद्यपि मूर्ध्वं वसत हो गया था। किन्तु आकाश में न तो ठाँदे ही न धीर न चन्द्रमा ही जलित हुआ। धन्यकार भी पानी नहीं हुआ इस भाँति आकाश की प्रभुर्ष धन्य थी। विकसित कुमुद के पुष्पों के मुष्प साम रूप से मुक्त संध्या के धायमन पर सबसे जते प्रणाम किया।

बलवान्क धन पुष्क हो गये। धन धन्यकार से समस्त संसार व्याप्त हो गया, संख्या बीच गई। धन्यकार गुणधर्मों के भीतर से धाकर बाहर फैल रहा था। इस प्रवाह धन्यकार में धनुराण कपी विषय धन्य को सदाकर स्थिरा अपने प्रियतमों के आवास की धोर जाने सगी। नखन बमकने सने। चन्द्रमा भी आकाश में उदय हुआ। चन्द्र के उदय होने पर रमणियों ने अपने अपने प्रियतम के प्रागमन का निश्चित समय जानकर साज शृं पार करना आरम्भ किया। प्रियतम के सम्बन्ध में होती हुई बातों को प्रियतमाएँ प्रति उत्कण्ठित होती हुई सुनने सुनाने सगीं। कहीं-कहीं पर इतिय भेजी जाने सगीं तो कहीं मायिकासें प्रियतमों के समीप अपने सहित भेजने सगीं। इतियहीं पठियों के सहित जाने सगीं। कहीं पर सुन्दरी के कक्ष में धाये हुए पति के प्रति उत्कार प्रदर्शन के लिए जैसे ही रमणी छटती है कि वेमपूर्वक प्रियतम उसका आनिगन कर लेता है। इस भाँति मान कपी धिन्न को प्राप्त करने वाली चन्द्रमा की किरणों ने इतियों की भाँति उन रमणियों को नायकों के साथ मिलाने में पराप्त सहायता की।

बतवाँ सर्ग—पति छोडा का उपदेश देने वाली मरिच का तथा पतिछोडा का इसमें वर्णन किया गया है। सुन्दर प्रियतमार्थों के मुख ही कहीं पर जो मुखों के सुगन्धान बन गए। उन कामुक युवकों ने अपनी प्रियतमार्थों के मान को बुर कर मरिच के व्याज से अपने प्रेम का पान कर लिया। प्रियतम के मुख के प्रतिबिम्ब से युक्त नूतन धाव के कोमल पत्तों के डालने से सुगन्धित सुगन्धु अमरों के अन्धार से युक्त तथा भीतल मरिच में उन नामकों तथा रमणियों की इन्द्रियों बुर वृत्ति हुई। अमर ही सुगन्धानो पर बैठ थे। प्रियतमा छाप ही हुई मरिच पीने जाने पति को बहुत ही स्वादिष्ट प्रतीत होती थी। मरिचपान के समय नमकीन पदार्थों के जाने के प्रतिभापी प्रियतम मरिच के समान ही स्वादिष्ट भोष्ठ के पान करने पर यद्यपि प्रियतमा के अचरों पर तथा हुआ साक्षा का रंज छूट गया था फिर बाँतों के काटने से साता सा ही रंज हो गया था। तीन बार के मरिच पान से उत्पन्न प्रचंड गया से मतवाली मुन्तरियाँ अलम्बन राज्या रहित हो गईं। धन के उपहास कीड़ा में निरुद्ध हो गई। मरिच का पान करने ही गये में स्थिरा अपने अर्थों में विद्यमान अप्रकाशित विभाज को इन भाँति प्रकट करने सगी जैसे घातु में विद्यमान अर्थों की उपवर्ण प्रकट कर देता है। सब विचार के प्रकट होठ ही के स्थिरा अचुरे बाधन मोल रही थी गिरते हुए बरन का घातु बलों तथा की उदया कर रही थी तथा बिना किसी कारण छठकर जाने जाने का प्रयास करने सगी। मरिच में मरत के घटने सहज हराभाव को भी प्रकट करने लग गई। मरिच पान करते ही उनकी संमोक्षेच्छा तीव्रतर हो गई। पथगान ने मतवाली गुरु संमोग के लिए सामान्यित रमणियों के मेज बिसाम की बरसना में कामों तक रूँके हुए थे। कोई तो इतनी मुग्ध थी कि पति ने सम्हायण करने की इच्छा रखकर भी पोसने में धनमर्त्य रही। कहीं पर तो प्रियतम प्रपनी की बोनी को जैसे ही छीबता है वह उगड बरा-बरा से जाकर बिगड जाती है वहीं नाडी के धन्य को गीबते हुए जैसे ही प्रियतम ने माड आनिगन किया कि प्रियतमा का रंग निमित्त कैकण टूट गया। कामादेव के साथ पति ने प्रियतमा के बल-वचन को पीड़ित कर माड आनिगन किया तब भी अपने रतन कलस कटित होने के कारण तनिक भी टेडे नहीं हुए। स्नेह-रस से पूर्ण रमणियों का देह धन भीतर से घाई हो गया था क्योंकि प्रियतम के माड आनिगन करने पर पहिले हुए बरनों को के त्रियो रही

को खींचकर मुक्कनस का बाँध बन्ध कर जीस पाव कर रहते बैसे ही धपर बिम्ब के काट लिए जाने पर तरणियाँ धपने मग भगते हुए कंकसों से कुछ हाव से मना कर रही थी । किसी से तो रमणी के पीतल नेत्रों का ही कुछ समय तक चुम्बन किया । कहीं पर त्रियन्म मीठी बचन को जोसने में व्यस्त थे किन्तु रमणियाँ उन्हें रोक रही थी तथा मुममुर स्वर से मुस्कृ गती हुई निवेद कर रही थी । तरणियों के धंयों में सोया हुआ कामदेव बाहु पीड़न निर्दम आलसित केसद्रहण मज्जत ईतदधन धादि व्यापारों से निमग्न बाग कर उठ खड़ा हुआ । रमण काम में वे निजयी 'हाम थी' 'मैं मरी' का भीत्कार करती हुई कभी-कभी कण्ठ दलित से निवेदमूकक वाक्य तथा हँसी छोड़ती हुई धामूपारों की ध्वनि भी एक साम ही कर रही थी । रति स्त्रीका के धनन्तर के मज्जा से धमिभूत हो गई । रात्रि धव बीत गई थी ।

प्यारुर्वा धर्म—प्रभात हो गया । प्रातःकाल स्तुति पाठ करने वाले बन्धीजनों के निकार रहित मधुर ध्वनि से जो दूर-दूर तक जा रही थी धार्मिक श्रुतियों से युक्त पद्व स्वर को बिना छिपाये हुए पंचम स्वर को छोड़कर तथा बीणा-बादल के धाय धपम स्वर से रहित धाताप में रात्रि के बीतने एवं प्रभात के धायमन का धार्मिक कर उनके वे मृदग योगों को बचाने लगे । कठिनाई से विचार पड़ने वाले ध्रुव मलय के ऊपर धायंत स्पष्ट रूप से विरचित रूप में रीसा हुआ यह धर्माय मंडल बमक रहा है । धपने पड़ने के समय को बिता कर सोने का इच्छुक 'पहरेदार' जब दूसरे पहरेदार को जिसकी पहरे देने की पारी धाधुकी की 'उठे बायो' कह कर बार-बार जोराने लगा । सलमर तक धयन करके फिर तुरन्त ही उठे हुए राधा सोन कवियों की धांति रात्रि के पिछले प्रहर में बुद्धि के धयन्त निर्दम हो जाने पर काम्य के समान कठिनाई से प्रवेस करने योग्य धाम धाम धादि धयोषों का निर्वाचन कर धर्म, धर्म, काम की धिन्ता करने लगे । धड़ीर मधयन निकालने के लिए मज्जाती दासकर धग्गीर धग्ग करती हुई धग्गीर धटकी में स्थित धड़ी को धपने लगे । धुर्व धव ठँसे स्वर के मोम रहे थे । बीणा के धाम-धाय बजते हुए मैयु के स्वर में स्वर मिलते हुए मधुर करतान की धरनियाँ होने लगीं हैं । धैताधिक धपने मुन्तर एवं मधुर धायनों द्वारा धन बाध धनों में धपने स्वरों को धिलाकर राधाधों को उठाने में लगे । बीड़े धड़े ही दोनों धाँधों को बन्ध करके जो सो मए वे धव प्रभातकाल के होंसे ही जग गये धीर मधुनों को उठकाते हुए धाये पड़ी हुई धास को जाने लगे । धुर्व धिया में धयय हुआ अन्तरा धव धरिधन धिया को जाता हुआ प्रभाहीन हो गया था । निजयी को पति के धरचात् सोई बीं धव धति के धूष ही उठ गई । कुमुदिनिधों की धोधा धीकी पड़ गई । प्रातःकाल के मालती के धुप्यों की धुगधिय से युक्त धाधु प्रभाहित होने लगी । धूर्ध का प्रकाश होने वाला था धत- धीपधिया धी रात धर प्रकाशित होती हुई धव धिमधियाती हुई धवि हीन हो लगी । कयधों की धुपधिय से धन्मध धमर धमुधाय धर धधर उठने लगा । धैर्यायें धव राधाधों के धिधियों से बाहर निबलकर जाने लगीं । धमिधारिकायें भी धिम्होंने रात्रि के धमय धपने-धपने धिपधियों के धाप धधि धरण क्रिया या प्रातःकाल होने के धूर्ध ही धरनों को धग्धागती हुई धीध ही धपने धर की धीर मधनती हुई जा रही थी । धाकाध में धारे धुप्य हो केने थे । धूर्धोय्य होने के धूष धग्ग धार मध होण जा रहा था । धयबाक के धमीय धिरह धुग्ग से धुधित धग्गबाधी धा रही

चक्रवाक घब पृथक् हो गये। अब चक्रवाक से समस्त संसार व्याप्त हो गया संख्या कीत गई। चक्रवाक गुफाओं के भीतर से बाहर बाहर फैल रहा था। इस प्रवाह चक्रवाक में अनुराग की विषय संजन को लपकाकर स्थिरा अपने प्रियतमों के आवास की ओर जाने लगी। नक्षत्र बमकने लगे। चन्द्रमा भी आकाश में उदय हुआ। चन्द्र के उदय होने पर रमणियों ने अपने अपने प्रियतम के आगमन का निश्चित समय आकर साज श्रृंगार करना आरम्भ किया। प्रियतम के सम्मुख में होती हुई बातों को प्रियतमाएँ धृति उत्कण्ठित होती हुई सुनने सुनाने लगीं। कहीं-कहीं पर द्रुतिय भेजी जाने लगीं तो कहीं नायिकायें प्रियतमों के समीप अपने संवेद्य भेजने लगीं। द्रुतियाँ पतियों के संवेद्य जाने लगीं। कहीं पर सुन्दरी के कक्ष में प्राप्ति हुए पति के प्रति उत्कार प्रदर्शन के लिए जैसे ही रमणी उठती है कि वेपपूर्वक प्रियतम उसका आतिथन कर लेता है। इस भाँति मान कभी विष्णु को दान्त करने वाली चन्द्रमा की किरणों ने द्रुतियों की भाँति उन रमणियों को नायकों के साथ मिलाने में पर्याप्त सहायता की।

इसका सर्व—पति कीड़ा का उपदेश देने वाली मरिच का तथा रतिव्रीडा का इसमें वर्णन किया गया है। सुन्दर प्रियतमाओं के मुख ही कहीं पर दो मुक्कों के सुरापान बन गए। उन कामुक मुक्कों ने अपनी प्रियतमाओं के मान को दूर कर मरिच के व्यास से अपने प्रेम का पान करवाया। प्रियतम के मुख के प्रतिविम्ब से युक्त नूतन धाम के कोमल पत्तों के झलने से सुगन्धि सुन्धारु भ्रमणों के रंजित स मुक्त तथा धीतन मरिच में उन नायकों तथा रमणियों की इन्द्रियों बूझ लुप्त हुई। भ्रमर भी सुरापानों पर बैठे थे। प्रियतमा छायी थीं मरिच पीने जाने पति को बहुत ही स्वादिष्ट प्रतीत होती थी। मरिचपान के समय नमकीन पदार्थों के खाने के अनिवार्य प्रियतम मरिच के समान ही स्वादिष्ट घोट के पान करने पर यद्यपि प्रियतमा के चबटों पर लवा हुआ साक्षा का रस सूट गया था फिर बाँटों के काटने से साक्षा का ही रस हो गया था। तीन बार के मरिच पान से उत्पन्न प्रबंध लक्षा से मरवाली सुन्दरियाँ अत्यन्त मज्जा रहित हो गईं। अब वे उपद्राव कीड़ा में निरत हो गईं। मरिच का पान करते ही नष्ट में स्थिरा अपने धर्मों में विद्यमान प्रप्रकाशित विमल को इस भाँति प्रकट करने लगी जैसे बाहु में विद्यमान धर्मों को उपसर्ग प्रकट कर देता है। सर विकार के प्रकट होते ही वे स्थिरा बहुरे वाक्य बोले रही थीं फिरते हुए वस्त्र का प्राप्ति पशों तक को उपेक्षा कर रही थी तथा बिना किसी कारण उठकर जाने जाने का प्रयास करने लगी। मरिच में मस्त वे अपने सहज स्वभाव को भी प्रकट करने लगे। मरिच पान करते ही उनकी संभोदना तीव्रतर हो गई। मज्जाग स मरवाली सुरत संभोग के लिए लालायित रमणियों के नेत्र विमल की वक्ष्यता में कामों तक फैल गए थे। कोई तो इतनी भुग थी कि पति से सम्प्राप्य करने की इच्छा रखकर भी धोने में प्रमत्त रही। कहीं पर तो प्रियतम प्रेयसी भी जोनी को जैसे ही जीबता है वह उमक बस स्वयं से आकर चिपट जाती है कहीं माड़ी के ध्वज को जीबते हुए जैसे ही प्रियतम ने पाद आतिथन किया कि प्रियतमा का ध्वज निमित्त लँका हुआ गया। कामाक्षेय के साथ पति न प्रियतमा के बल स्वयं को पीड़ित कर पाद आतिथन किया वह भी समके स्तन कक्ष कठिन होने के कारण तनिक भी हँसे नहीं हुए। स्नेह-रस से पूर्ण रमणियों का देह अब भीतर से घाय हो गया था क्योंकि प्रियतम के पाद आतिथन करने पर पहिले हुए वस्त्रों को वे धिक् रही

को बँधकर मुखकमल का धाँव बन्ध कर वहीं पान कर खौरये बँधे ही घमर बिम्ब के काट लिए जाने पर तबलियाँ अपने भ्रम भ्रमाते हुए बँकसों से युक्त हाथ से मना कर रही थी । किसी ने तो रमणी के दीपक नेत्रों का ही कुछ समय तक चुम्बन किया । कहीं पर प्रियतम नीबी बन्धन को बीसने में व्यस्त थे किन्तु रमणियाँ उन्हें रोक रही थी तथा कुमपूर स्वर से मुस्तु गती हुई निर्णय कर रही थी । तबलियों के धोंयों में छोटा हुआ कामदेव बाहु पीड़न निर्णय प्राप्तिमान बेधग्रहण मल्लकण, दंतपद्म धारि व्यापारों से निश्चक बाग कर उठ साड़ा हुआ । रमण काल में वे त्रिषयी 'हाय जी' 'मैं मरी' का बीत्वार करती हुई कभी-कभी कस्तुर छत्ति से निवेद्यमूक वाचन तथा हँसी झोड़ती हुई धासुपर्यों की ध्वनि भी एक साथ ही कर रही थी । रति स्त्रिका के धनन्तर वे सज्जा से अधिभूत हो गई । रति धब बीठ गई थी ।

प्यारहर्षा सग—प्रयास हो गया । प्रातःकाल स्तुति पाठ करने वाले वन्दीत्रनों ने विकार रहित मधुर ध्वनि में जो दूर-दूर तक जा रही थी धार्मिक धुतियों से मुक्त पद्म स्वर को बिना दियाये हुए, पंचम स्वर को छोड़कर तथा बीणा-बादन के साथ श्रृपन स्वर से रहित धाताप में राति के बीचने एवं प्रयास के धायपन का बल्लम कर उनके वे मृदम सोंनों को ब्यापन सने । कटिनाई से दिनाई पड़ने वाले म्रुप मलन के ऊपर धरयंत स्पष्ट रूप से विस्तृत रूप में फैला हुआ यह स्रष्टाव्य मल्ल बयक रहा है । अपने पहले के समय की कृता कर सोने का हनुमुक 'पहरेदार' जब दूसरे पहलेवार को जिसकी पहरे देने की पारी धासुली थी 'उठे बायो' कह कर बार-बार बँधान लगा । लक्षणर तक धयन करके फिर गुरम ही उठे हुए राजा लोग कबियों की प्रति रति क पिछले ग्रह में बुद्धि के धरमन्त निर्मल हो जाने पर काम्य के समान कटिनाई से प्रवेश करने योग्य साथ धाम धारि प्रयोगों का निर्वाचन कर गर्म, धर्म, काम की चिन्ता करने लगे । ग्रहीर मन्त्रन विकासन के लिए मघामी शानकर यन्मीर छन्द करती हुई यन्मीर यटकी में स्थित रही को मचने लगे । मूर्धे धय ऊँचि स्वर से बोत रहे थे । बीणा के साथ-साथ बजते हुए बैणु के स्वर में स्वर मिलाते हुए मधुर करताल की ध्वनियाँ होने लगीं हैं । वैतासिक अपने कुन्दर एवं मधुर वायनों द्वारा उन बाध यन्त्रों में अपने स्वरो को मिलाकर राजाओं को जटाने में लगे । मोड़े पड़ ही सोनों धाँवों को बन्ध करके जो सो मए से धब प्रसन्न-बाल के होते ही जग गये धीर मधुनों को फड़काते हुए धांग बड़ी हुई बाध को खाने लगे । पूर्व दिशा में उद्यम हुआ अग्रभा धब परिचय पिपा को जाता हुआ प्रवाहीन हो गया था । त्रिषयी जो पति के पदधात् लोर्ड थीं धब पति के पूर्व ही उठ गईं । कुमुनिनों की सोभा कीची पड़ गई । प्रातःकाल के मालती के पुष्पों की सुबधि से मुग बाहु प्रवाहित होने लगी । मूर्धे का प्रकाश होने वाला था धता दीपतिधा भी रात भर प्रकाशित होती हुई धब टिमटिमाती हुई धमि हीन हो गयी । लयनों की सुबधि से उन्नत भ्रमर धमुग्य इधर उधर उड़ने लगा । बैरपायें धब राजाधों के त्रिषियों से बाहर निकमकर जाने लगीं । धमिधारिकायें भी त्रिष्यों रति के समय धपद-धपने प्रियतमों के साथ धमि धरण किया था प्रातःकाल होने के पूर्व ही बरनों को सम्भाषणी हुई धीम ही अपने घर की धोर लदवती हुई जा रही थी । धावाध में तारे मुप्त हो गये थे । मूर्धेय होने के पूर्व धग्ध बार नष्ट होता जा रहा था । अग्रभा के लयीय धिरह दृग से बुलित अग्रबाधो धा रही

भी । पृथ्वी तथा धर्मों पर विकसित होने लगे । पक्षियों ने कलरव प्रारम्भ कर दिया । अग्नि होशियों के प्रत्येक घर में प्रचण्ड ज्वाला के साथ अग्नि जल रही थी । वेष्ठ पुरोहित ब्राह्मण नौम सास्त्रानुसार उषात अनुषात तथा स्वरित स्वरों में जन्मारख करते हुए समिधा छोड़ने के मन्त्रों का पाठ करके अग्नी प्रकार से हवि बाँटने लगे और घाग की लपटें उसका आस्वादन करने लगीं । उपस्थी नौम मन्त्रों का वाप करने लगे । सूर्योदय हो गया । पूर्व दिशा में सुबर्ण के तुल्य पीले रंग की सूर्य किरणें सोमिती हो रही थी । अब सूर्य बीरे बीरे आकाश में बढ़ रहा था । सूर्य के उदय होते ही प्रणत व्यक्तियों ने उसकी प्रणाम किया । किरणें अब नदी तटों पर भी मुहोमिती हुईं । ऋक्षों की वाहियों से होकर सवन कक्ष के भीतर प्रवेश करने वाली वाह-सूर्य की किरणें छोटे हुए प्रियतमों पर बाण की भाँति पड़ रही थीं ।

बाह्य-सर्व—आत-काश होने पर जब सूर्य उदय हो गया तब रबों बोझों तथा हावियों पर आकाश होकर उषागण धिबिर के प्रवेश द्वार के बाहर प्रसाधन के योग्य रूप आरण किए हुए भीकप्य की प्रतीक्षा करने लगे । इतने में भगवान् भीकप्य भी तीक्ष्णामी बोझों वाले रव पर आकाश होकर आ गये । बँधे ही भीकप्य बचने लगे अन्ध तथा भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े । कहीं पर तो गजराज अपने पिछले चरणों को धुकाकर अपने ऊपर उठी के सहारे महावत को बढ़ा रहे थे तो कहीं घरबारोही प्रथम बीरे से प्यार के साथ प्रथम की पर्वतों पर हाव डेरने लगे और तब अन्धों ने भी समस्त देह को हिलाकर अपनी स्वयं प्रकट की । तब घरबारोही हाव में सधाम भेकर और उसे काँधी पर रख कर बीघठा तथा चतुरठा के साथ उनकी पीठ पर बढ़ गये । ऊँट पर बढ़ने वाले उन पर बैठ भी नहीं पा रहे थे कि वे बीघठामी ऊँट स्वयं से उठकर नकेस की उपेक्षा करते हुए बीघठा से चल पड़े । रघवान रव को बोतने लगे । कहीं ऊँट नकेस को इच्छापूर्वक खँच लेने पर आधी चलाई हुई नौम की पक्षियों को बाहर निकालता हुआ उच्च स्वर से बल बजाने लगा । कहीं पर नाव की रस्सी को पकड़ने पर भी अपने दोनों छीयों को हिलाता हुए बीच में "हूँ-हूँ" करते हुए पीठ पर काँधी को नहीं रखते बिना । प्रस्थान करती हुई वह सेना विभिन्न प्रकार के स्वर करती हुई आ रही थी । प्रस्थान करने पर भी कप्य का पीचजय संज्ञा सुनाई पड़ा तो उबर नमाओं की आनि सुनाई दी । सुबर्णामी ब्रह्म रैवतक पर्वत के नीचे मार्गों पर छा गई । छीची पर्वत को घाँसे की ओर फैलाए हुए एवं गले की बँटियों को बजाते हुए ऊँटों ने लम्बे-लम्बे झों से चरणों को भूमि पर रखते हुए लम्बे मार्ग को बाण भर में ही तय कर लिया । रबों ने चलते समय पृथ्वी माय की विचित्र किमा उत्पन्नात् उनके पीछे जाने जाने हावियों ने अपने पैरों से उस भूमिको दबाकर ऐसे समान कर दिया मार्गों प्रथम हल जलाकर कृषि के लिए फिर पाटा फेर दिया गया हो । विद्यालय काय ऊँचे पर्वतों व नदियों को समीपती हुई वह यावत् सेना चली आ रही थी । कहीं पर हावियों के "हूँ-हूँ" अन्धों से अयमीत अन्धों ने ठन्ड-ठाकड़ भूमि में बीकटे हुए छारबी से समायों को धु बाकर अपने छोटे से रव को ठोड़-छोड़ बाधा । रैवतक का लीचकर अब सेना आने बढ़ गई और बहुत-सा मार्ग तय कर लिया । कहीं पर मार्ग में उन्हें कप्यधार मृग दिखाई पड़े । अब आनू स्थान के आ जाने से घरबारोहियों हाट यत्नपूर्वक सभामों को लीचकर जकड़े जाने से थोड़े बड़ी कठिनाई से आ रहे थे किन्तु

जैसे ही समस्त भूमि घाई सवारों ने सपाय की छिन्न कर दी और वे छोड़े शीघ्रतापूर्वक कुनों से टपटप करते हुए दौड़ने लगे। सेना जब घातों में होकर जा रही थी तो घाम बहुरे धीकण को मोट में होकर क्षिप क्षिप कर देखने लगी। श्रीकण्ठ ने भी मोहर भूमि में बैठे हुए गोपालों को मन्त्रसाकार में बैठे हुए देखा। कहीं-कहीं पर घान के सेतों की रखवाली करने वाली स्त्रियाँ ठोठों को उड़ा रही थीं तो दूसरी ओर मुनों के समूह घानर करने लगे गये व्याकुल स्त्रियों को मंद-मंद मुस्कराते हुए धीकण ने कुछ देर तक देखा। जनघाम सेतों में कहीं पर हंसों का शब्द सुनाई दिया। घाये जब सेना का रही थी तो पर्वतों के शिखरों तक पहुँच गई थी। जब वह सेना ऊँचे पर्वतों की भी पार करती हुई घाये बढ़ी। हाथी बादलों को अपने आग्राम के हाथों से चीरते हुए जा रहे थे। वे घाम के कुलों को भी उखाड़ते जाते थे। श्रीकण्ठ ने समीपवर्ती पर्वत की पाटियों से पर्वत पर बढ़ती हुई सैन्कों से अधिक हाथियों की पंक्तियों को देखा। पर्वतों पर नित्य बढ़ने के आभास से अधिक उत्तम स्थलों वाली आँखना के बन में बँधी हुई पहाड़ी स्त्रियों ने भी कण्ठ को देखा। कहीं पर सिंह सेते हुए थे। वे समीप में जाती हुई सेना को देखकर भी घमभीत न हुए क्योंकि युगलय थे। इस शक्ति कहीं बहुत नीचे और कहीं बहुत ऊँचे ओर कहीं प्रकाशयुक्त तो कहीं अत्यन्त दुर्बल विषम स्वरूप वाले पर्वत का मोहती हुई वह सेना नदी में प्रवेश करती हुई निकल आई। वह सेना मार्ग में घाये हुए अनेक नगरों की जड़ों के भवन सँकेर चुने से पुते हुए विघास काम से उत्थित कर घाये बढ़ी। जब यमुना नदी तक वह सेना पहुँच चुकी थी। सैनिकों ने यमुना को भी पार कर लिया।

छैष्वां छर्ग—यमुना पार हो जाने पर अर्धरात्रि बुधितिर की समाचार प्राप्त हुए कि श्रीकण्ठ जा रहे हैं तो उनके आयमन का सबाह सुनते ही वह इतने प्रसन्न भित्त हुए कि तुरन्त ही अपने कनिष्ठ भ्राताओं को साथ लेकर उनकी अग्रगामी के लिए श्रीकण्ठ के सम्मुख आकर पहुँच गये। कुम्भसिखों की सेना में हर्ष सेनबाहों की सम्जी स्त्रि होने लगी। बाघ पर्वों की प्वलि इतनी हुई कि कोई कुछ न सुनकर सँकेतों से ही बाध करने लगे। इस अवसर पर श्रीकण्ठ और बुधितिर की दोनों की सेनायों प्रीति पूर्वक एक साथ चलने लगी। बुधितिर दूर से ही श्रीकण्ठ को देखकर अपने रथ से नीचे उतरना ही चाहते थे कि श्रीकण्ठ ने उनसे पूर्व ही शीघ्रता के साथ अपने रथ से उतर कर विशेष निमग्नसिता विषबाई ओर उतरने के साथ ही उन्होंने बुधितिर का बँधव प्रसाय किया। बुधितिर ने भी उन्हें अपने भुज-मंजरी में समेट लिया और फिर उनके मस्तक को सूया। उत्पत्त्या श्रीकण्ठ ने भी बुधितिर के अनुभूत भीम धर्मन धार्मिक को मानियनानि द्वारा सम्मानित किया। वहीं नहीं यावत् रमणियाँ ओर पांडव रमणियाँ भी एक दूसरे का मानियन करने लगीं। दोनों सेनाएं परस्पर मिलकर बढ़ी हो गई। केवल हाथियों को पूषक रखा गया। बुधितिर ने जब श्रीकण्ठ को कहा कि रथ पर चढ़िये तो श्रीकण्ठ अनुभूत से अपना हाथ मिलाए हुए अपने पैदावार रथ पर आकृष्ट हो गये। वे जब हृदयस्थ की ओर जब चलने लगे तो बुधितिर ने अनुदाय में भरकर स्वयं मेव घोड़ी की सभाम को पकड़ा। भीम श्रीकण्ठ पर चढ़र हुआ रहे थे। अनुभूत श्रीकण्ठ के ऊपर रथेय घन भारण किये हुए थे। श्रीकण्ठ के नीचे बहुत ओर उद्देश अनुभूत कर रहे थे। बुधितिरों का नाद हो रहा था। धितिर नगर के बाहर बनाये गये थे। श्रीकण्ठ ने पूषक

की । पृथ्वी सतहों पर विकसित होने लगे । पक्षियों ने कलरव प्रारम्भ कर दिया । ध्वनि होधियों के प्रत्येक घर में प्रचण्ड ज्वाला के साग्न ध्वनि बल रही थी । वेष्ठ पुरोहित बाह्यस्थ मोन धास्त्रानुसार उवाच भनुवाच तथा स्वरित स्वरों में उच्चारण करते हुए धमिया धोड़ने के मन्त्रों का पाठ करके अन्धी प्रकार से ह्वि बालने लगे और प्राण की लपटें छसका धास्त्रा बन करने लगीं । तपस्वी भोग मन्त्रों का बाप करने लगे । सूर्योदय हो गया । पूर्व दिशा में मुबल के तुल्य पीले बरु की धूर्व किरणें धोषित हो रही थी । अब सूर्य बीरे-बीरे प्राकाश में बड़ रहा बा । सूर्य के उदय होते ही प्रणत व्यक्तियों ने उसको प्रणाम किया । किरणें अब नदी तटों पर भी मुबोधित हुईं । अरोहण की वातियों से होकर सबन कम के भीतर प्रवेश करने वाली बास-सूर्य की किरणें सोते हुए प्रियतमों पर बास की भांति पड़ रही थीं ।

बाह्यार्चनार्च—प्रातःकाल होने पर अब सूर्य उदय हो गया तब रथों बोड़ों तथा हाथियों पर प्राक्क होकर राजागण धिबिर के प्रवेश द्वार के बाहर प्रसावन के योग्य वेव बारण किए हुए भीकृष्ण की प्रतीक्षा करने लगे । इतने में भगवान् भीकृष्ण भी धीबबामी बोड़ों वाले रथ पर प्राक्क होकर आ गये । जैसे ही भीकृष्ण चलने लगे ध्वन्य राजा भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े । कहीं पर तो गजराज अपने पिछले चरणों को धुकाकर अपने ऊपर बड़ी के छहारे महावत को बठा रहे थे तो कहीं धरवाररोही प्रथम बीरे से प्यार के साथ धस्त्र की गर्वनों पर हाव फेरने लगे और तब धस्त्रों ने भी धमस्त बेहू को हिलाकर अपनी स्वर प्रकट की । तब धस्त्रारोही हाव में लगाम लेकर और उसे काठी पर रख कर धीप्रता तथा अनुरता के साथ उनकी पीठ पर बड़ गये । ऊँ पर बड़ने वाले उन पर बैठ भी नहीं पा रहे थे कि वे धीप्रबामी ऊँट स्वर से उठकर नकेल की जपेला करते हुए धीप्रता से चल पड़े । रथवान रथ को बोतने लगे । कहीं ऊँ नकेल को हड़तापूर्वक लेंच लेने पर धाबी बवाई हुई नीम की पत्तियों को बाहर निकालता हुआ अन्ध स्वर से बल बसाने लगा । कहीं पर नाव की रस्ती को पकड़ने पर भी अपने दोनों धीबों को हिलाता हुए बीच में "धूँ-धूँ" करते हुए पीठ पर काठी को नहीं रख दिया । प्रस्थान करती हुई वह सेना विभिन्न प्रकार के स्वर करती हुई आ रही थी । प्रस्थान करने पर भी कृष्ण का पाँचधन्य धस सुनाई पड़ा तो सबर नवाड़ों की ध्वनि सुनाई दी । मुबलमयी धूम रैवतक पर्वत के नीचे मार्गों पर छा गई । धीबी गर्वन को धागे की और फैलाए हुए एवं बने की पत्तियों को बधाते हुए ऊँटों ने लम्बे-लम्बे ढबों से चरणों को धूमि पर रखते हुए लम्बे मार्ग को धस मर में ही तय कर लिया । रथों ने चलते समय धूम्यी मार्ग को बिधीरुं किया तत्पश्चात् उनके पीछे जाने वाले हाथियों ने अपने पैरों से उस धूमिको बकाकर ऐसे समान कर दिया मार्ग प्रथम हल बसाकर ध्वि के लिए फिर पाटा फेर दिया गया हो । विद्याल काव ऊँचे पर्वतों व नदियों को कलांगीती हुई वह यावत सेना बली पा रही थी । कहीं पर हाथियों के "धूँ-धूँ" धम्बों से जयभीत लम्बतों ने ऊबड़-बाबड़ धूमि में बीड़ते हुए धारपी से लामों को धु बाकर अपने छोटे से रथ को ठोड़-ठोड़ जाता । रैवतक को साँवर धन सेना धागे बड़ गई और बहुत-सा मार्ग तय कर लिया । कहीं पर मार्ग में उन्हें कृष्णधार धुन दिखलाई पड़े । अब बासू स्नान के आ जाने से धस्त्रारोहियों बाण यलपूर्वक लामों को लीचकर बड़ने जाने से बोड़े बड़ी कठिनाई से आ रहे थे किन्तु

जैसे ही समस्त धूमि धाई सवारों ने लनाम को सिधिस करती घीर के घोड़े सीधतापूर्वक सुरों से टपटप करते हुए बीड़ने लगे। सेना जब प्रायों में होकर जा रही थी तो ग्राम बधुई धीहृष्ण को घोट में होकर लिप लिप कर देखने लगी। धीहृष्ण ने भी गोबर धूमि में बैठे हुए गोपालों को मण्डलाकार में बैठे हुए देखा। कहीं-कहीं पर पान के सेतों की रखवाली करने वाली शिपयाँ तोतों को पड़ा रही थी तो घुसरी घोर मुनों के समूह बाकर करते लगे गये व्याकुल स्त्रियों को मद-मद मुस्कराते हुए भीकपण के कुछ देर तक देखा। जबप्राय देसों में कहीं पर हत्तों का घण्ट मुनाई दिया। भागे जब सेना जा रही थी जो पर्वतों के चिखरों तक पहुँच गई थी। अब वह सेना ऊँचे पर्वतों को भी पार करती हुई चले बढ़ी। हाजी बावतों को अपने धप्रभाय के दांतों से बीरते हुए जा रहे थे। वे धार्य के धूर्तों को भी सबाड़ते जाते थे। धी कृष्ण ने समीपवर्ती पर्वत की चारियों से पर्वत पर चढ़ती हुई संकड़ों से धधिक हाथियों की पंक्तियों को देखा। पर्वतों पर नित्य चढ़ने के धम्यास से धधिक उग्रत स्तनों वाली धाँवका के बल में बँटी हुई पहाड़ी स्त्रियों ने धी कृष्ण को देखा। कहीं पर सिंह सोते हुए थे। वे समीप में जाती हुई सेना को देखकर भी मयवीर न हुए क्योंकि मृगदाब न। इस धाँति कहीं बहुत नीचे घीर कहीं बहुत ऊँचे घीर कहीं प्रकाशमुख तो कहीं धव्यन्त दुर्गम विषम स्वरूप जाने पवतों का साँघती हुई वह सेना नदी में प्रवेश करती हुई निकल धाई। वह सेना मार्ग में धाव हुए अनेक नगण को बहा के मवन सदेर घूने से घुटे हुए बिछाल काम के उर्जाय कर धाये बढ़ी। अब यमुना नदी तक वह सेना पहुँच चुकी थी। सैनिकों ने यमुना को भी पार कर लिया।

तैरुवाँ सर्व—यमुना पार हो जाने पर धर्मदाब धुधितिर को समाचार प्राप्त हुए कि धीकृष्ण जा गये हैं तो उनके आग्रसन का सवाय मुनते ही वह हलने प्रसन्न चित्त हुए कि सुरन्त ही धरने कनिष्ठ ज्ञाताओं की साथ निरु उनकी धयवानी के लिए धीकृष्ण के सम्मुख प्राकर पहुँच गये। कुस्वधियों की सेना में हर्ष से नयाहों की मन्गीर ध्वनि होने लगी। बाव यन्त्रों की ध्वनि हटती हुई कि कोई कुछ न मुनकर संकेतों से ही बात करने लगे। इस धयसर पर धीकृष्ण घीर धुधितिर की दोनों की सेनामें जीति पूर्वक एक साथ चलने लगी। धुधितिर दूर से ही धीकृष्ण को देखकर अपने रथ से नीचे उतरना ही चाहते थे कि धीकृष्ण ने उनके पूर्व ही धीमता के साथ अपने रथ से उतर कर विधेय विनयवीलता दिखलाई घीर उतरने के साथ ही उन्होंने धुधितिर को दबबत् प्रणाम किया। धुधितिर ने भी उन्हें धयने धुध-नयनों में समेट लिया घीर फिर उनके मस्तक को छुआ। तत्पश्चात् धीकृष्ण ने भी धुधितिर के धनुज भीम धर्जुन धादि की धानिगतादि द्वारा धम्यामित किया। यही नहीं बाव्य रथधियाँ घीर पौरव्य रथधियाँ भी एक दूसरे का धानिगन करने लगीं। दोनों सेनाएँ परस्पर मिलकर लड़ी हो गईं। केवल हाथियों को गुपक रखा गया। धुधितिर ने जब धीकृष्ण का कहा कि रथ पर चढ़िये तो धीकृष्ण धनु न से धयना हाथ मिलाए हुए अपने वैद्यकर रथ पर धारक हो गये। वे अब द्रष्टव्य की घीर जब चलने लगे तो धुधितिर ने धनुधाय में धरकर स्वयं मैव मोड़ी भी लनाम को पकड़ा। भीम धीकृष्ण पर चंबर हुआ रहे थे। धर्जुन धीकृष्ण के ऊपर रथेय धय धारण किया हुए न। धीकृष्ण के नीध नहुस घीर लहदेम धनुधरण कर रहे थे। धुधियों न नार हो रहा था। धिधिर नपर के बाहर बनाये गये थे। धीकृष्ण ने पृथक-

पूषक बने हुए जब प्रवेश द्वारों से घोषित इन्द्रप्रस्थ मन्त्री में पाँचों पाँचों के साथ प्रवेश किया। उस समय श्रीकृष्ण को देखने के लिए अग्न्य समस्त बाघों को छोड़कर प्रत्येक सड़क और गली में आ-आकर मगर रमणियाँ उपस्थित हो गईं। वे घटारियों पर चढ़कर उन्हें देख रही थीं। मगर प्रवेश के अनन्तर उन्होंने बस छिड़कने से बूझ रहित सड़कों को पार किया। उत्पन्नाद् वे समा मण्डप में दीर्घ ही पहुँच गयी। समा मण्डप अत्यन्त सुन्दर था जिसमें विभिन्न प्रकार की मणियाँ बड़ी हुई थीं। रत्न जटित बीमारों थीं। भवन के समीप ही बृष जने हुए वे जिनके घालनालों में बस भरा हुआ था। उस समा भवन में कयसिनी के नीचे बस ऐसा दिया हुआ था कि उस पर स्वस की भान्ति हो जाती थी। यही नहीं कही पर उसी समा भवन में प्रायन्तुक बस के भ्रम से दूर से ही अपना वस्त्र ऊपर उठा लेते थे। समा मण्डप के सम्मुख आकर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर रथ से नीचे उतर पड़े। समा-भवन देखने के अनन्तर युधिष्ठिर तथा श्री कृष्ण प्रकाश से युक्त विद्याल विद्यालय पर एक साथ बैठ गये। मूर्त्तियाँ आकर उत्तमोत्तम बाघों के स्वर के साथ नवीन-नवीन पीतों को सुन्दर ढंग से जाती हुई मृत्यु करने लगीं। वे दोनों परिषद प्रबन्धोपरान्त बैठे-बैठे संभाषण करते रहे।

श्रीकृष्ण सर्व—युधिष्ठिर श्री कृष्ण से कहने लगे कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो बाहु कारी की बातें सुनकर लज्जित होता हो किन्तु आप में वह बात देखी कि आपकी प्रसंघा करने वाला तो लज्जित नहीं होता किन्तु उसे सुनकर आप ही लज्जित होते हैं। आप स्तुतियों से प्रसन्न नहीं होते। मैं जो कुछ आपकी प्रसंघा कर रहा हूँ वह मिथ्या नहीं है। आपके सामर्थ्य से ही यह बात सर्व निरालम्ब तक मेरे अधीन हो गया। अब मैं यज्ञ करना चाहता हूँ अथ आप राजा प्रधान कीलिए। मैं इसके लिए आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। अब आपके आ जाने से मेरा यह यज्ञ विष्णु बाबाओं से रहित हो गया है। मैं हवन करके धाम-धर्म पूर्वक बकाये हुए धन को बाह्यालों को देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि प्रथम आप ही हवन कीलिए। सोमदान कर आपके यज्ञ की समाप्ति होने पर मैं प्रथम यज्ञ स्नान कर देने के पश्चात् अपना उत्तम राजसूय यज्ञ प्रारम्भ करूँगा। आप ही मुझको कर्त्तव्य की शिक्षा दीलिए। आपके ही आग्रह प्राप्त हुआ यह धन किस उपयोग में लावेगा? आप ही इसका सुव्यवहार कीलिये। इस पर श्री कृष्ण कहने लगे कि आर्यवर्ष को अधीन हुआ है उसे अपने ठेक व अपनी नीति की महिमा से ही आपने उसको अपने वश में किया है। इसमें मेरा क्या है? आप सब प्रकार से सुयोग्य हैं अथ राजसूय यज्ञ आपके अतिरिक्त और कौन कर सकता है। मैं तो आपके दुष्कर आदेशों को भी पालने में अपना कर्त्तव्य समझता हूँ अथ आप मुझको करणीय कार्यों में अपनी इच्छा के अनुसार वहाँ बाँहें नहीं निपुण करें। मेरा सुदर्शन यज्ञ उस राजा के धिर को देख से पूषक कर देना जो आपके इस राजसूय यज्ञ में सेवक की भाँति कार्य न करेगा। इस पर युधिष्ठिर यज्ञ के समारम्भ में प्रवृत्त हो गए। वे ब्रह्मजल से स्नान कर धन राजसूय यज्ञ के यज्ञमान बन गए। राजा युधिष्ठिर यक्षविज्ञेय धारि यक्षीय विधानों में सम्मिश्रित नहीं हुए वे फिर श्री पुरोहितों द्वारा सब अनुष्ठानों के कर्त्ता वे ही थे। पुरोहित यज्ञ कर रहे थे और राजा युधिष्ठिर सब देख रहे थे। यज्ञ कर्त्ता पुरोहित भी कुछ उच्चारण करते हुए सब स्पष्ट स्वर से याग्या मुक्ति का उच्चारण कर आभिहित देवताओं को सकय करके धामि में प्राहुतियाँ छोड़ने लगे। उद्गाता लोग कर-विन्यास द्वारा अस्त्रनिर्घ्न स्वर से सामवेद

का पाल करने लगे । हीठा तथा अन्नार्थुं ज्येष्ठ और यजुर्वेद का पाठ करने लगे । कुशों की सुन्दर मेखला पारस्य किये हुए यजमान की पत्नी प्रोपदी हुबनीय पदार्थों का निरीक्षण कर रही थी । व्याकरण शास्त्र के विद्वान् पुरोहित सदातादि स्वर बलकर अपने यजमान के प्रकृत कर्म के अनुकूल धर्म का निश्चय कर रहे थे । यज्ञाग्नि भी हँसती हुई पड़े हुए वृत्त का आस्वादन कर रही थी । हवन करने के साथ ही दिशाओं को धूमिल करता हुआ धुमा आकाश में ऊपर की ओर जा रहा था । उस राजसूय यज्ञ में बितनी भी क्रियाएँ सम्पन्न हुईं किन्हीं में कोई दोष नहीं हुआ तथा यज्ञ की सभी नामधियाँ पूरी पड़ गईं । तत्पश्चात् परम उत्तारता से कुछ राजा युधिष्ठिर ने वशिष्ठा के उपयुक्त पात्र पक्षियों में बँटे हुए पायस ब्राह्मणों के निष्कट बहुचक्र चर्चें राजसूय यज्ञ के उपयुक्त उचित बलिधायें प्रदान कीं । उन्होंने धर्मनि में संकल्प का ज्ञान देने के साथ ही स्वर्ग की कामना से विपुल धनराशि का प्रचुर बलिष्ठा उन ब्राह्मणों को दी । यही नहीं उन्होंने अपने हस्ताक्षरों से कुछ पट्टे के पत्रों पर लिखकर अन्न तथा सुर्ब की स्थिति पर्यन्त स्थिर रहने वाली विपुल धूमि ब्राह्मणों को दान में दी । वे ब्राह्मण भी कुछ आचरण बाधे, वेद सम्मत धार्मिकों को पारस्य करने वाले बर्ल-संकरता । रहित कुमीन गुली वे । प्रतिनि-संस्कार में उन्होंने जोड़ी थी भी बलाघट का अनुभव नहीं किया । जिस बहुमूल्य रत्नों को राजाओं ने युधिष्ठिर को भेंट किया था उनमें से एक से ही युधिष्ठिर का यज्ञ व्यय निकल सकता था । किन्तु स्थायी राजा ने इन सब को व्यय कर दिया । उनका तो भेंट में प्राप्त धन को ब्राह्मणों को दान रूप में देने में बितनी प्रसन्नता होती थी उसी प्रसन्नता कोप में उन्हें रखकर कमी नहीं होती । समस्त राजाओं ने विषय की भाँति प्रसन्नता पूर्वक राजा के बताये हुए प्रत्येक कार्य को किया । पात्रों को भी उन्होंने पूर्णतया समुद्र किया । मानते पर अन्न भी विलम्ब न दिया और न ही उन्होंने पात्रना करने वालों का शक्ति भी अनादर किया बाह्य वे पात्रक पुली हों या न ही । बाह्य की भाँति वे तो ऊपर धूमि पर बरसने लगे । भाए हुएों को चर्चों रचों से कुछ जीवन भी कठपा राजसूय यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर राजा ने धर्म शास्त्र का निवार करते हुए जब धर्म्य-दान के सम्बन्ध में पूछा तब भीष्म जी ने सभा के अनुकूल उत्तर देते हुए बोल्ता आरम्भ किया कि तुम करणीय वस्तु को जानते हुए भी जो पुत्रजनों को पुष्टते हो वह सदाचारानुक्रम है । स्नातक पुर, बन्धु पुरोहित आत्मता तथा राजा ये ६ धर्म्यपात्र कहे गए हैं और ये सब बुम्हापी समा में पाये हुए हैं । इन सब की एक मात्र ही पूजा करनी चाहिए यद्यपि इनमें से अत्यन्त दुर्लभ कुछ किसी एक ही की पूजा करनी चाहिए । यह भी एक विधि है । इस समय ब्राह्मणों और राजाओं के इस समायम में भी मुझे तो ममस्त पुत्रों के आचार अनुष्ठान के निवारक भी इच्छा ही एक मात्र पूजा के अधिकांश विषयार्थ पड़ते हैं । इन ती इच्छा को केवल अनुष्ठान ही न मानना चाहिए ये तबस्त जगत् में परे एवं सभी प्राणियों के अन्तर्गामी परमात्मा के संजघूट हैं । इन्होंने ही मित्र-मित्र अन्तार आरण करके दुष्टों का वधन किया है । वेदि मरेग पिपुयाल का लुटीम मैत्र प्रबंध बापु की भाँति इन्हीं की इच्छा को प्राप्त कर दीपक की भाँति बुझ गया । युधिष्ठिर ! तुम धन्य हो जिसके सम्मुख भगवान् स्वर्ग आनन्द उपरिपठ हुए हैं । यज्ञार्थी लोग यज्ञों में परीक्षा में भी इन्हीं की विधिपूर्वक पूजा करते हैं अतः तेम वरम पुण्य भगवान् की इच्छा की पूजा करके तुम जब तक यह संसार रहेगा तबतक के लिए साधुवाद प्राप्त करो ।

सुविष्टिह मे श्रीष्म पितामह की बातों को अभी भाँति सुनकर समस्त राजाओं के सम्मुख श्री कृष्ण की विविधत पूजा की ।

पन्नाहरी सर्व—पूजा के पश्चात् बेबि मरेस धिबुपाल की कृष्ण की उस बुद्धि को देखकर मन से डेप करने लगा । उसने सभा के मध्य मुनिष्ठिर द्वारा किये गए उस सम्मान को सहन नहीं किया । वह पहले से ही भगवान् की कृष्ण पर क्रोध मुक्त तो था ही और फिर मुनिष्ठिर द्वारा की गई उस पूजा से उसका क्रोध द्विगुणित हो गया । अब उसने जैसे ही सभा में बैठे हुए अपने सिर को हिलाया कि उसके मुकुट-मणियों की फिरछों चारों ओर बमकने लगीं । क्रोध के मारे घाँसों में घाँस भर घाये तथा क्रोध की गर्मी से खीर पसीने में तर हो गया । झुकटियाँ टेढ़ी हो गईं । घाँसों काज बर्छों की हो गईं । उसने तत्तबार की ओर देखते हुए सभा में जाँचो पर ताव ठोककर कहा कुन्ती-पुत्र मुनिष्ठिर अपने प्रियजनो को गुणवान् सब ही मानते हैं अतः इस सभा में भी कृष्ण पर विशेष प्रेम होने के कारण तुमने सज्जनों द्वारा प्रयोजित की पूजा की । जो राजा भी नहीं है ऐसे कृष्ण के लिए तुमने जो राजोचित पूजा के पश्चात् को सेंट किया है वह तो कुत्ते द्वारा हविष्य देने के समान है । सब तुम्हारी सत्यता की प्रशंसा करते हैं किन्तु निन्दा के पाव कृष्ण की इस भाँति पूजा करना तुम्हारी असत्यता को प्रकट कर रहा है । तुम्हारा धर्मराज नाम क्या इसी रूप में है जैसे श्रीम भर्षाई भगवत्क बार को प्रशस्त होने पर भी क्रोध संगतबार कहते हैं । हे कुन्ती पुत्रों यदि कृष्ण ही तुम्हारे लिए विशेष पूजनीय था तो फिर अन्य राजाओं को निमन्त्रण देकर इस भाँति हुजाना जनका प्रयमान था । हो सकता है आप सब भूर्ख हैं किन्तु व्यर्थ ही नाम पका कर बुझा और नष्ट बुद्धि वाला यह भीष्म इस प्रसंग में कैसे असत्यवान और असत्यता बन गया । हे सान्त्व पुत्र तुमने १ व्यक्तियों को धर्मपात्र बताया उनमें से यह कौनसा सान्त्व है बिचका तुमने भटों की तरह प्रशंसा की । बाहिर निम्नता के ही तो पुत्र ठहरे क्यों न जैसे राजाओं को छोड़कर नीच कृष्ण में स्निह यक्ति प्रशंसित करते । हे कृष्ण राजाओं के योग्य इस पूजा को तुमने क्यों स्वीकार किया ? तुमको स्वयं को तो शोचना चाहिए था कि तुम कौन हो । मधु नामक राजस को मारा इस पर हमको विश्वास नहीं होता किन्तु तुमने उन्हे मधु की मन्त्रियों को मारा है अतः मधुसूदन कहलाते । क्या तुमको स्मरण नहीं है कि राजा मुकुन्द की धर्मता तुम्हारे लिए शरणदायिनी हुई और मनबपति बरासम्भ ने तुम्हारे तेज को प्रस्त कर दिया था ? जो तुम सबस कहलाते हो वह तो जनराम के साथ रहने के कारण है । अरु प्रिय नाम तो सत्यमामा के साथ प्रेम रहने के कारण प्रसिद्ध हुआ अन्यथा प्रशंसा कर तुमने कई बार झग किया है । मुख में मधु सेना के भय से व्याकुल तुम अपने बह (सेना) को तो नहीं सम्मान सकते किन्तु 'बलावर' नाम को प्रसिद्ध हुआ वह तो जन के जनके (धुर्योधन बह) को सर्वत्र बाण्य करने से है । 'भी पति' को कहलाते हो वह तो समुद्र की कन्या भी नाम्नी के साथ विवाह करने से परिवार के लोगों द्वारा रक्ता हुआ नाम है अन्यथा यमाति के साथ से तो मधुसूदनो की राजसदमी तो कभी की ही बली गई । मुख में कभी विक्रम नहीं दिखाया । बरासम्भ के साथने तुमको भूमि छोड़नी पड़ी । समस्त युद्धों से विहीन वह तुम्हारी की गई पूजा उपहास जनक सिद्ध होगी । उत्पन्नात् स्वपत्नीय राजाओं को उत्साहित करने के

लिएकहने लगा—देखिये धाय जैसे सिद्धों के रहते हुए कुम्भी पुत्रों ने पीरक के तुल्य इस कण्ड की पूजा की है। यह धाय लोगों का ध्यमान है। जिस कण्ड में वृषभ कम्पाटी धरिप्रासुर का संहार किया वह अपवित्रात्मा क्या पूजा की पात्रता प्राप्त कर सकता है। इसमें पूतना के स्तन का पान किया क्या वह इसकी माता नहीं हो गई ? फिर इसने क्या नहीं बिसर्गाई ? धकटासुर का ब्रह्म यमत्तार्जुन का जय घोषबर्ग का ठप्पर उठा लेना कोई धार्षर्ष्यजनक बात नहीं है। हाँ माय बरारते हुए कंठ का जो पत्र किया वह तो वास्तव में ही बड़े धार्षर्ष्य का कार्य है। हे मुनिष्ठिर, तुणों द्वारा ही मनुष्य पूजनीय होते हैं किन्तु कण्ड में पूजा के भोग्य कोई पुण्य नहीं। इसकी बर्षा तो दामील मूल किसान के कर्म में करते हैं। यह तो धकटा है, फिर कड़े प्रसन्न किया जायगा ? प्रिय का प्रमिय मित्र का सन्तु को यह समान बेसता है। उपकारकों का भी यह व्यक्ति प्रत्युपकार करना नहीं चाहता। यह धुल से बिहीन है दूसरे महान् लोगों के तुल्य भी इसके समीप आकर विनीत हो जाते हैं। सिधुपाल की कठोर बातों से भी कण्ड कुछ भी धुम्प न हुए। भी कण्ड के संकेत से मधुर्षसी राजाओं ने भी प्रकटव्य में कोई कोष न किया। भी कण्ड प्रतिज्ञा बद्ध में सहस्रों अपराध करने वाले सिधुपाल के इस अपराध को ही प्रथम अपराध के रूप में मिला। जब सिधुपाल ऐसी अपमानजनक बातें कर रहा था तो भीष्म ने कहा प्रारम्भ किया। हे राजाओं जिस किसी राजा को धाज इस सभा में धरे द्वारा की गई मयजान् भी कण्ड की पूजा सहा नहीं है वह अनुप कहा से यह मेरा बाबाँ पैर ऐसे सभी राजाओं के सिर पर रखना का रहा है। सिधुपाल के पक्ष में रहने वाले राजाओं ने भीष्म की यह बात सुनी तो अत्यन्त खोब से भर गये। बाणामुर का मुख स्नेह से भर गया। क्रुम राजा लाभ हो गया तरकासुर के पुत्र बेनुवाटी का हृदय भी जल उठ्य। राजा उत्तमीका का मुख विकरास हो गया। राजा बंतवन्न भट्टहास कर स्नेह सूचित करने लगा। वनमल्ली हुरस के समय का स्वरस हो धाया। सुबल नामक राजा ने तो स्नेह के भारे पैर भरती पर पटका। बाह्मिक नामक राजा सिधुपाल पक्षीय होने पर भी जिस में धावी मुठ के प्राक्मल से अधिक प्रसन्न हुआ। काल मन्न राजा भीर भी सर्वकर हो गया। राजा वसु तो बड़े ही पैर पटन रहा था कि बस्त्रों में उत्तम कर गिर गया। उत्तरबाद मुठ के धमिजापी सिधुपाल पक्षीय राजा खोब बेय से उठ पड़े हुए। सिधुपाल भी कड़वी बातें कहता हुआ समा-मन्न से बाहर निकल गया। वासु पुत्रों ने धनुज से साध धनेकों अपराध कर लेने पर भी उस सिधुपाल की रोका। पर सिधुपाल जैसे हूँ जाने लगा उसके पक्ष के राजा मोव भी उन्नी के पीछे चल पड़े। वह तीव्रवाणी थोड़े पर से इन्द्रप्रस्य के चला गया भीर प्रपनी सेना के सिमिर में पहुँच कर उसने सेना को तैयार होने की धावा दी। किसी ने संल बजाया तो किसी ने रणभेरी की ध्वनि की। सबने धपने-धपने करब बहिन लिए। हावी बोड़े भी सजाये गए। मुठ के लिए प्रस्थान के समय रमगिर्बों को बावी धर्मपत की सूचना होने लगी। किसी के हाथ स मरिछ का प्याला प्रियधन को देने समय वृष्ठी पर गिर कर बजनासुर हो गया। धावी में न धासू को रोपने हुए भी विनी का धासों से वृष्ठी पर दो धासू गिर ही गये। विनी ने तो पाँच समय दीक दिया।

सौतहाँ सर्व—रणयात्रा की तैयारी के अनन्तर सिधुपाल द्वारा भेजे पर एर इन

मे घमा में मगवान् श्रीकृष्ण के समीप धाकर स्पष्ट रूप में दो सपनों वाली (प्रिय और अप्रिय) बातें कहना प्रारम्भ किया। चिन्तुपाल उन अपमानजनक बातों को कहकर इस बात का परचाया कर रहा है वह उत्कण्ठित बिच ध यहाँ धाकर धापके कोष को क्षान्त करने के लिए धापका धर्म्य (बध) करना चाहता है। धाप बड़े-बड़े राजाधों के सन्तु (पुत्र्य) हैं और अपने मुख नीच (हार) चुके हैं। इस भाँति व्यर्थक बातें जो बैचने में प्रिय किन्तु अप्रिय सगने वाली की कहीं यमी तो उसके रूप हो जाने पर श्रीकृष्ण के धर्म से सार्वकिक ने उत्तर देना प्रारंभ किया है दूत। तुम्हारा एक ही वाक्य बाहर है। अर्थात् कोमल तो भीतर बड़ी वाक्य बहुत कठोर है। उस बाणी को सुनकर धर्मन पुत्र्य भी उड्डित हो उठे हैं क्योंकि यह बाणी तो बिच मिले हुए धर्म की भाँति धर्मव्यवस्थित है। यदि राजा मुनिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की पूजा की तो इस पर राजा चिन्तुपाल को क्यों रोष होता है? यदि कोई मुनिष्ठिर पुत्र्य को अपने सिर पर बड़ाता है तो उस पुत्र्य से ईर्ष्या कौन करेगा? यदि ऐसा कोई करता है वह वाक्य है मुर्ख है। छोटे मनुष्यों का हृदय भी तुम्हें होता है। धर्म अप्रिय सगने वाली बातें उनमें कहीं समायेंगी? सज्जन तो परपेकारो होते हैं किन्तु उनकी उन्नति भी दुष्टों के हृदयों में भारी रोष पैदा कर देती है। दुष्ट सोम साकाश बैचि की भाँति हैं। मगवान् श्रीकृष्ण ने राजसभा में गासियाँ चिन्तुपाल द्वारा सुनी किन्तु उसके इस भाँति बकते रहने पर भी उन्होंने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। सिंह तो बाबलों का गर्जन सुनकर ही दहाकता है मृज्जालों की ध्वनि से नहीं। चिन्तुपाल के इस भाँति प्रसायों से क्या श्रीकृष्ण की प्रविष्टा में कमी आई है? क्या पुत्र्य की धूल से कमी हुई मणि की महामुस्सता कहीं लगी जाती है? दुष्ट के भीतर दूधरों के सन्तुष्ट करने योग्य कोई गुण नहीं होता वह नीच पुत्र्य वास्तव में दूधरों के धर्मगुण की कथाओं से ही अपने लोभों को संतुष्ट करने की इच्छा करता है। दुष्ट सोम अपना रोष ईर्ष्या में स्वभावतः धर्म होते हैं किन्तु छोटे-छोटे धर्मगुणों को निकालने में दिव्य-दृष्टि होते हैं। अपने पुत्रों का बचाने के लिये स्वर धर्म करते हैं किन्तु दूधरों की प्रसन्नता के धर्मपर धर्म बारदा कर लेते हैं। महान् पुत्र्य कायर की भाँति प्रसाय नहीं करते किन्तु कष्ट होने पर पराक्रम दिखावाते हैं। धर्म सात्विक दूध की प्रिय और अप्रिय बातों का उत्तर देते हुए कहते हैं—तुम्हारा राजा चिन्तुपाल बिच भाँति धर्म नीचा है (युद्ध करके धर्मवा सधि करके) यदि श्रीकृष्ण को बैचने का इच्छुक है तो धाकर बैच से समको उचित उत्तर देने में मगवान् बिसम्भ न लगायेंगे। यदि चिन्तुपाल मगवान् के साथ सन्धि करने का इच्छुक है तो युद्ध की तैयारी बिच लिए की। यदि धाकमण के सिये ऐसा किया है तो उसके धर्म ही होगा। अभी तक तुम्हारे राजा की चिन्तुपाल ने अपनी बाणी से मगवान् श्रीकृष्ण के प्रति वह सी धर्मराज धर्मधर्म ही पूरे नहीं किये थे किन्तु धर्म तो दूध के मुख से उसने वह सी धर्मराज भी पूरे कर लिए हैं धर्म धर्म यदि कोई अप्रिय बात कहोवे तो तुम्हें धर्म मिलेगा। सात्विक की इन धर्म मगवरी बातों को सुनकर वह चिन्तुपाल का दूध पुत्र्य अपना मय त्याग कर यह बात बोला। बुद्धिधर्म्य नीच सोम यदि स्वयं अपने कल्याण की बातें नहीं जानते तो इसमें धाकधर्म ही क्या है? यह तो बुद्धिधर्म्य लोगों की बात है कि स्वयं धर्मगुण किए बिना निपतियों को नहीं जान पाते और न दूधरों के कहने पर ही निश्चाय करते हैं। है कृष्ण सुनह और निधम की एक साथ को धर्म बात कही है

उनमें से जो कल्याणकारी तुमको ज्ञात हो उसी के करने में श्रम सीधे-सीधे करो। मूर्ख पांडवों का प पूजित एवं सत्कृत हो जाये। से तुम्हारी कोमलता कहाँ से बढ़ गई ? सौ अपराधों को क्षमा करने वाली बात जो छायापति ने धनी-धनी नहीं है। उसके लिये तो यही उत्तर है कि इन अपराधों को क्षमा करने वाले आपका अतिक्रमण अपनी केवल एक ही क्षमा ने कर दिया है। सम्पत्ति अधिकारी हूँ करने पर आपके प्रतिशर में समर्थ होत क्योंकि वह क्षमा तुमोपित नहीं थी। विधुपास तुमको श्रम नष्ट कर देगा। मेरा तुम की उपदेश देना व्यर्थ होया क्योंकि वह तुम पर व्यर्थत कुछ है। तुमको तो तुम्हारे पक्ष के अनुबन्धियों को बुद्धार्थ समझाने के लिये भेजा है क्योंकि वह राजा चोरों की भाँति छिपकर अनुबन्धों का सहित नहीं करता। वह विधुपास श्रम प्रवृत्त बल प्रवाह की भाँति कुछ के लिये अनिवार्य रूपसे जाने जाता है। तुम यदि श्रम बँट की भाँति नष्ट हो जाओगे तो श्रम जाओगे सम्पत्ति बल रूप में तो टूट ही जायेंगे। अविमान से उद्वेग को कोई राजा अपने धिर की विधुपास के बरसों पर रखने की इच्छा नहीं करता उसके धिर पर वर्ष विहीन हमारे राजा विधुपास स्वयं ही अपने बरस रख देते हैं। विधुपास की वैवस्विका में सूर्य भी उनकी समानता नहीं कर सकता। पराक्रमी विधुपास युद्धभूमि में सीधे ही तुम्हारा श्रम करे और तुम्हारी रदन करती हुई स्वियों पर क्या करके उनके विधुओं की रक्षा करता हुआ अपने "विधुपास" नाम की शर्षक करे।

समस्तार्थ सत्य- दूत ने उन वर्षीर बच्चों के कहने पर वह सभा अत्यन्त दुःख हो उठी। वहाँ के उपस्थित राजा शोच शोच के कारण नाम बल के होकर पसीने से भीग गये। वे वर्षाओं को पीटने लगे और बीतों तथा होठों को काटते हुए अपनी हृदयियों का प अपने कंधों को पीट रहे थे। समस्त तो दूत की प्रवृत्ति करने के भाव से अहसास करने लगा। अस्त्रुक नामक राजा जो कुछ चाहता ही था अतः हर्ष से फूट पड़ा। युष्मानि नामक राजा हृदयान्ति से बल पड़ा। निषधनामक राजा जो बल प्रवापति के बल को विभवं करने के लिए उद्यम बल के लिये वीरजड ने जैसा नवानक रूप धारण किया था वैसे ही विप्लव रूप में प्रदीत हुआ। सुमन्वा राजा हृदयियों को बल भीष रहा था तो सुबल की अनुवृत्ति रमक छाकर पिस गई। धातुकि नामक राजा अपनी उत्तरी अनुवृत्ति को शोच के मारे बुझा रहा था। प्रद्युम्न की पति तो विविध ही प्रकार की थी। दूत राजा रहा क उल्लाह से अपने बल स्वयं को सहमाने लगा। गान्धिनी के पुत्र अक्षरुनी शोच के मारे अपने धारे से बाहर हो गये। राजा प्रमत्ताब्धि मतवाली शोचों को बुझाने लगे। यद्वेष्टना नामक राजा का वैह पसीने से व्याप्त हो रहा था नात्यपि के पितामह चिति ने शोच के कारण पृथ्वी पर जो बरस पड़का उससे परती के पीढ़ी सी कटमाने से पलायन लोक सुप्रकाशित हो गया और नाम बल सम्पत्ति होने लगे। राजा धारण बार-बार धिर को कपाने लगे और राजा विधुरूप शोच से कुछ बढ़ने लगे। इन भाँति शत्रु के दूत की कठोर बातों से सभा में शोच द्य गया फिर भी भीष्टता का बिल मोड़ा का भी सुख न हुआ। यही व्यवस्था उद्वेग की थी। अनु बन्धियों की उस सभा में जब उस दूत ने शोच से धनि रूप हुए राजाओं को देखा तो धीरे से तिरक गया। उत्तरवायु भीष्टता की सेना में कुछ को संघापी होने लगी। नवानक नवाड़े बजने लगे।

सैनिकों ने कबज पहिन लिए, हाथियों पर उनके योग्य फूल धीरे धीरे रखते हुए रथों में घस्त्रों को बोधते हुए तथा भोजों पर भीन रखते हुए व्यक्तियों को राजा गण त्वरा करने के लिये बार-बार कहने लगे । भीरों ने कमर में तलवारें लटकानी तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं भी धनिवार्य घस्त्रों से युक्त होकर निकरास रूप धारण किया । अब वह अपने रथ पर बड़े । पताका पर पक्ष घोषित थे । भगवान् का रथ जैसे ही युद्ध के लिये चल पड़ा सैनिक भी पीछे-पीछे प्रसवकाल की भाँति घाब हो लिये । हाथियों की बिबाह भगाओं का गंभीर शोष भोजों का हिन हिन हिनाजा ये सब धाकाध भडस को विचित्र से करने लगे । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण जिस पिशा में था रहे वे सामने घाती दूर से शत्रु सेना की घुल सड़ती हुई बिब नाई पड़ी । कुछ ही समय के पश्चात् उनकी बमकयी तलवारें भी बिबाई पड़ी तो श्रीकृष्ण ने बिभुवास की सेना बैसकर क्षण भर में ही यह अनुमान लगा लिया कि वह कितनी धीरे करीबी है । अब वह सेना समीप घागी धीरे श्रीकृष्ण की सेना की धीरे ही बीड़ पड़ी तो श्रीकृष्ण के सैनिक भी शत्रु सेना की धीरे धनिक बेव से बड़े । घुल छमर जट्टी लगी । दिव् बिबल घुल से धाँसाधित हो गया । घण्ट में गजराओं ने अपने भडसल की दृष्टि कर युद्ध स्वसी की बूझी को सान्ठ कर दिया ।

प्रत्यहरथ सर्व—युद्धभूमि से बोझ भी पीछे न हटने की इच्छा रखने वाले वे दोनों पक्षों के सैनिक युद्ध में जुट पड़े । पैदल-पैदल से बोड़े-बोड़ों से हाथी-हाथी से, तथा रथी रथी से बिड़ पड़े । इसी भाँति रथमेरी की गंभीर धनि रथों की बर बराहट बरघाओं की घुनुल बिबाह धीरे घस्त्रों की हिनहिनाहट ने सब परस्पर भिसकर मानों परमात्मा की प्रस्यक्त सत्ता में लो पड़े हों । अनुपवारी लोच हड़ लूक लघत धीरे मोलाकार अनुषों को बड़ाते हुए टंकार करने लगे । अब दोनों सेनामें परस्पर भिस गई तब अपना धीरे पछवा पक्ष जानना बड़ा कठिन हो गया । इस युद्ध में रक्त इतना धनिक बड़ा मानो भसंख लखिनी प्रवाहित हो रही हों । पसीगाण भांस जाने की इच्छा से धाकाध में इस भाँति मंडरा रहे वे मानो भीवण घस्त्रों के भाबाध से धीरे को त्याग कर जाने बाब प्राण ही मूर्तिमान होकर अब भी अपने धीरे को बेव रहे हों । वह रणस्वनी इस भाँति मरे हुए प्राणियों के भंग प्रस्यों से सब धीरे से व्याप्त होकर ऐसी बिबाई पड़ने लगी मानो धर्म भिमित धाकृति समूहों से व्याप्त बिबाधा की बिबाध सृष्टि की निर्माण स्वनी हो । इस भाँति गर्व से परिपूरित बिभुवास पसीय राजाधों की सेनाएं निरन्तर बैग पूर्वक धाने बड़ती हुई श्रीकृष्ण की सेना के धाब बम धीरे पराबम के धनोह में घुलती हुई युद्ध करने लगी । उस समय दोनों सेनाधों के मध्य भारी कोलाहल मचा हुआ था ।

उत्तोरसर्ग सर्ग—बाण के पुत्र राजा बैलुवारी ने जब देखा कि शत्रु बाणिय राजाधों का संघर्ष हो रहा है तो वह हन्र युद्ध के लिए सठ बड़े हुए । बैलुवारी जब दूर से अपनी सेना की धीरे बीड़ रहे वे तो बलराम ने सिंह की भाँति उस भव की धीरे देखा । फिर बल राम रथ पर धाक्य होकर उस बैलुवारी के सम्मुख युद्ध के लिए बीड़ पड़े । बैलुवारी ने जब धनैक बाण बलराम पर छोड़े तो बलराम ने भी क्रोध होकर उस पर तीक्ष्ण बाण छोड़े । बाणों से मूर्च्छित होकर बैलुवारी को जनका सारनी बचाकर ले गया । सात्यकि के पितायह

ब्रिटिश की प्रभावशाली सेना विजयवास पक्षीय शासन की सेना को भीतकर अपना हीय हाँकन लगी। कच्छ पक्षीय सम्मुख राजा सस ब्रूम राजा को प्राप्त कर विशेष रूप से उन्नति हो उठा। ब्रिटिशों के भाई स्वभा ने अपने हथियार उठाकर जिस बाली से कच्छ पक्षीय राजा ब्रूम के समुद्र की निम्न की भी सुरक्षित ही राजा ब्रूम ने भी ऐसे बात बसाये कि वह अपने प्राणों से निराश हो गया। श्रीकच्छ के पुत्र प्रद्युम्न ने अपने पीछे देव से माँगी हुई सब राजाओं की सेना को अपने ही छोड़ दिया। कच्छ भारी सब सेना ने भी प्रद्युम्न पर बात बर्बा करना प्रारम्भ किया अनेक सहायकों से युक्त बालासुर को प्रद्युम्न ने बालों से बंध दिया। बालासुर की सेना को भी बाँध बांधा प्रकट करके अपना पराक्रम दिखा रही भी प्रद्युम्न ने समुद्र की ओर अपना हाँक कर दिया। युद्ध में उत्तमीका राजा को पराजित कर प्रद्युम्न ने अपने नाथ की शान्तिता प्रकट की। प्रद्युम्न के कृत्यों का देखकर देव तामों ने पुण्य-कृति की ओर उसका सब बाँटें ओर बँध गया। विजय की प्रद्युम्न को प्राप्त हुई। वह देखकर विजयवास को प्रार्थित हो गया। वह बसुन्तिली सेना के साथ प्रद्युम्न की ओर दौड़ पड़ा। विजयवास की सेना में प्रत्यक्षा के टंकार के साथ तथा विजय वास बजने लगे। बौद्ध विजयिताने लगे। तबबारें बमकने लगीं विजयवाद करते हुए धर्मिक युद्ध के लिए उत्सुक थे। प्रत्यक्ष हाथी युद्ध के लिए दौड़ पड़े। विजयवास की वह सेना सर्वतोभद्रकाल भौमनिका प्राप्ति बिना-बलों से युक्त थी। समुद्रस्थलों की वह सेना भी विजयवास की सेना पर दृष्ट पड़ी। बसुन्तिली की सेना की हाथियों से परिपूर्ण थी। भीषण व्यक्ति के साथ प्रभाव होने पर भी विजयित न होने वाले हाथियों (गाँवों) ने युद्ध भूमि में बसे रहकर प्रसूत मदजल की बर्षा की। युद्ध भीषण था किन्तु राजा लीलों ने विपत्ति में पड़कर भी नीति मार्ग का उत्पन्न नही किया। उस युद्ध भूमि में कहीं रक्त की गरिमा प्रभावित हो रही थीं तो कहीं यन्त्रा भीर बसा को खाने के लिए उत्सव भीर विजय वास प्रसन्न हो रहे थे। विजयवास द्वारा रखनुमि में इस भीति अपने धर्मिकों का अवरोध करते देखा तो अपना धर्मिक प्रत्यक्ष युद्ध के लिए उपस्थित हो गये। वे कौस्तुभमणि तथा पीताम्बर बालस किमे हुए थे। उन्होंने सर्व प्रथम विजय वास प्रत्यक्षा के युद्ध अपने समुद्र को भुकाया सब से इतनी सीमा से घर संभाल कर रहे थे उनका केवल समुद्र ही पराधीन अवस्था में नहीं दिखाई पड़ रहा था किन्तु समुद्र-सेना भी अवधीन होकर पराधीन दिखाई पड़ी।

भीषण सर्व—श्रीकच्छ के ऐसे पराक्रम को न सहन कर अपने के कारण विजयवास कोय में भर गया। उसकी भुक्तियाँ ऐसी हो गईं और प्राप्त प्रवेश पर तीन देड़ी रैतामें बीच पड़ी। वह निर्भय होकर श्रीकच्छ को युद्ध के लिए लज्जकारने लगा उसके कारणों ने उसके रक्त को श्रीकच्छ के सम्मुख धाकर सड़ा कर दिया श्रीकच्छ का धारण भी विजयवास के सम्मुख पड़ा। उसके सम्भीर कोय से विजयों पुरित हो गई थी। यदि मरेला विजयवास ने समुद्र की प्रत्यक्षा की ओर भीषण टंकार उत्पन्न किया। उनके बाण-समूह इस भीति विजयने में त्वरा कर रहे थे मानो मारी के मुख से बल निकलते हों। अपना धर्मिक प्रत्यक्ष विजयवास के द्वारा बड़े हुए सब समस्त बालों को अपने अनेक बालों से इस भीति बांध कर निरा दिया जैसे मारी के प्रयाणों को विजयारी काट्य प्रयाणों की युक्तियों द्वारा निरा देता है। कभी कभी दोनों के बाण बस्य हैं ही टंकार कर धर्म की विपत्तियों पराक्रम करने लगे। विजय

पाम ने सैकड़ों बाण धनवान् भीकप्य पर बलाये जो मर्म भेदी थे किन्तु वे सब उसके किए हुए सौ धनपनों के समान उन्हें कुछ भी व्याधा नहीं पहुँचा सके। अब सिधुपाल ने माया द्वारा जीतने की इच्छा से भीकप्य पर प्रस्थापन नामक धर्म का प्रयोग किया। इससे भीकप्य की समूची सेना मित्रा में निमग्न होने लगी। इस पर भीकप्य ने कोस्तुमणि को देखा देखते ही प्रकाश हो गया और उससे सब सैनिक जब मये। इतना ही नहीं हुआ वे बहुत का पूर्व से भी अधिक संहार करने मये। प्रस्थापन धर्म को इस भाँति निष्फल होता हुआ देखकर सिधुपाल ने मुर्मनास्य का प्रयोग किया। इसके प्रयोग से हजारों भीषण सर्प एक साथ ही प्रकट हुए। सूर्य उस समय उषि के उबने की भाँति लाल वर्ण का ऐसा प्रदीप्त हो रहा था मानो राहु ने उसको घस लिया हो। बारम्बार अपनी भीम लपकपट्टे हुए वे नाथ पक्ष धनवान् भीकप्य की सेना के व्यर्थों के ऊपर लगी हुई मयूरों की पृष्ठों से संसक्त होकर बाण चर के लिए पोछे की धोर नीट पड़े किन्तु फिर मयूरशियों की सेना को बचाने के लिए यम के पाश की भाँति उन पर दूट पड़े। तदनन्तर धनवान् भीकप्य ने धनजाधरी इष्टि से मंद-मंद मुसकुराते हुए अपनी एक भी से अपनी पठाका के ऊपर स्थित पछिछाव मकड़ की धोर जैसे ही संकेत किया वैसे ही एक घण्ट से सहस्रों मकड़ उड़-उड़ कर बाहर निकले। मकड़ास्य के द्वारा नागास्य को विफल होते हुए देखकर सिधुपाल ने धाम्नेय धर्म छोड़ा। वह धमि जब समस्त बाण को बलाती हुई भी दिखलाई थी तो धनवान् ने कम्पसास्य छोड़ी। मेघ धम चरकते हुए शिवालों को धाच्छ-स्थि करने लगे। सूर्य उषों में विनीत हो गया। शिवाली जमकने लगी। उस जसती हुई भीषण धमि को धान्त करने के लिए इसनी वर्षा हुई कि नदियों में बाढ़ छा गयी। धमि की धान्त कर मेघ धाकास्य में स्वयं ही विनीत हो गये। इस भाँति सिधुपाल ने कुपित होकर जिन-जिन धर्मों को प्रयोग किया था भीकप्य ने भी उन धर्मों को विफल करने के लिए उनके प्रतिकूल धर्मों का प्रयोग किया। इस तरह पराजित सिधुपाल भीकप्य को वचन कमी बाखों से व्यस्त करने लगा। धान्त में गाभी बकते हुए सिधुपाल के सरीर को सुस्वदन बल ने फिर से बिहीन कर दिया। सिधुपाल का शिर कटकर जब पृथ्वी पर पड़ा तब राजाधर्म ने अपने विस्मित नेत्रों से देखा कि परम दीप्तिमान देव सिधुपाल के सरीर से निकल कर भी कृष्ण के सरीर में प्रविष्ट हो गया।

प्रस्थिति—(अभि बंध बर्लन)—भी बर्मल नामक राजा के सर्वाधिकारी मन्त्री की सुप्रभवेश थे। वे पुष्पास्या नामिक निरासक्त इष्टि वाले रजोगुण रहित तथा दूसरे देवता की भाँति थे। महाराज बर्मल उनकी बातों को इस भाँति सुनते थे जैसे तबागत धनवान् बुद्ध की बातों को सुनते हों। उन्हीं के बतक नामक पुत्र था जो सवार अमासीन कोमल प्रकृति तथा बर्मनिष्ठ था जो बुराव मुचिहिर था। वहीं बतक लोभों द्वारा "धर्यामय" इस नाम से भी पुकारा जाता था। उन्हीं पुष्पशील बतक के पुत्र माध ने सिधुपाल-बध नामक काव्य की रचना की जिसमें भीकप्य के पावन चरित्र की बर्णना है और जिसके प्रत्येक सर्ग की समाप्ति में "भी" शब्द का प्रयोग है तथा अन्ते कवियों की पुर्जन कीर्ति पाने की दुराशा से ही बंध रचा गया है।

सगवद्ध कथा के अनुश्रोतन से प्राप्त तथ्य

४

सामाजिक व्यवस्था—महाकवि माघ के समय में विष्टाचार का एक विधिवत् स्वरूप था।^१ प्रायः या ज्ञात में अपने से जो बृद्ध होता उसका समुचित सम्मान और स्वागत किया जाता था। जब वह कहीं जाता तो उसको बाहरपूर्वक विद्या दी जाती थी। प्रथम समय में देवता भोग नारद को द्वारकापुरी तक पहुँचाने मयन मंडल में धाये थे। इसी तरह जब नारद श्रीकृष्ण के यहाँ पहुँचे तो श्रीकृष्ण ने बड़ा और सम्मान पूर्वक उनका स्वागत किया था। हाथ जोड़ कर प्रणाम भी किया करते थे वह उस युव की सम्मता थी। धार्मिकों को इस व्यवस्था का न केवल सम्बन्ध अपितु भावनापूर्वक पालन किया जाता था। “अर्घ्यं प्राण्याह तन्मनसि पुन स्वविर प्रापति प्रत्युत्पानाभि-वाद्याभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते।” तात्पर्य यह है कि कुटुंब के सम्मुख या बाहे पर पुरुष के प्राण ऊपर उठ जाते हैं पहले ही बैठकर प्रणाम करके तथा विसमपूर्वक प्रणाम करने से वे पुनः यथास्थित हो जाते हैं। अर्घ्य पाद्यादि पूजा की सामग्रियों से विविधत् पूजा करने की प्रथा कानिदास रूप में पूर्ण से चलती हुई आ रही थी। पूजा के परवात् अपने हाथ से दिए हुए धातन पर वे अतिथि देव विराजमान होते थे। परिवर्तों में बड़े-छोटे अपने से जो कनिष्ठ होता उसके मिलने के दबतर पर प्रथम उसका चिर सूँघता था तब फिर कहीं बूझती बातें होती थीं। चिर सूँघना भावे पर हाथ रखना घाघी-बाद के दौटक है। राजा बुधिशिर ने श्रीकृष्ण का चिर सूँघा था फिर परस्पर में मिले बैठे थे।^२ समान आयुवाले परस्पर जीने के लीला मजाकर मिलते थे। स्त्रियों भी इसी तरह मिलती थीं।^३ अतिथि का एक वेवठा के रूप में बल्लाह और चत्तास से परिपूर्ण उत्कार किया जाता था। “अतिथि-देवो यव” इस सूत्र में उस काल के अतिथि-उत्कार का स्वरूप समाविष्ट है।

माघ के समय में बलीभक्षणव्यवस्था का कदाचित् और था। जो जायें बत्तों में सम्मिलित न थे उनकी संज्ञान बर्ण-संकर कहलाती थी। बर्णसंकर संज्ञान का समाज में बाहर न था। जिस बर्ण ही कुलीन समझे जाते थे। राजा बुधिशिर बह्वर्ण्यादि धातनों के निबन्ध थे। समाज के व्यक्तियों का वैदिक जीवन था। गौरी की रक्षा करना भी धृष्ट्य के प्रमुख कर्त्तव्यों में सम्मिलित था (सर्वे श्रीरक्ष को देखिये)

नोट—१ माघ १—११

२ माघ १३—१४, १५

३ माघ १३—४३ को देखिये।

नगर-निर्माण तथा उनकी रक्षा—

माघ के समय में नगरियों के चारों ओर रक्षा के निमित्त परकोटे बुर्ज तथा बनता के आवागमनार्थ चार पाँच या इससे भी अधिक विधानक्रम द्वार-वेश होते। बड़ी-बड़ी नगरियाँ देखने योग्य भी वहाँ पर बड़ी-बड़ी मट्टानिकाएँ, तोरख-द्वार, राजमार्ग राजमार्गों पर बल का द्विक्रम था। बुकाने अनेक विक्रय वस्तुओं से परिपूर्ण रहती थीं। वहाँ हीरे, मोटी मणि-आणिक आदि बहुमूल्य वस्तुओं का व्यापार होता था। नगरियों में रात्रि के समय पहरे लगा करते थे जिससे जोरी छूट बसोटा तथा घम्व वालों से बह सुरक्षित थी। पहरेदार पारी पारी से अपने पहरे को बदला करते थे।^१ प्रातःकाल हो जाने पर नगरियों राजद्वारों तथा महाद्वारों के चारों पर नीबल बबली थी। उदयपुर (मेवाड़) के जगदीश मंदिर तथा राजमार्गों में रियासती समय तक भारत के स्वतंत्र होने के बाद महाप्राक्स्थान बनने तक बह प्रया जासू थी। इससे लोगों को प्रातःकाल छठकर अपना रैनिक छुस्य करने की सुविधा होती थी।^२

नगर के चारों ओर खाई भी होती थी। कहीं-कहीं पर दुग भी। इन सब दुगों में नगर-रक्षक सेना मोढ़ाओं से सुसज्जित रहती थी।^३ हाथी बोड़े रथ ऊँट पैदल सेना के संग थे। युद्ध की नीति में जाहे थोड़ा बहुत घातर घबराव था बसा था, पर सेना संगठन प्राचीन भारत जैसा ही था और रैनिक आदर्श भी प्राचीन ही थे। शरणापत की रक्षा का भाव माघ के समय में था जो राजपूत युग की एक विशेषता है। प्रतिरक्षा के भी भाव पूर्वकों जैसे ही थे।

राजकीय जीवन

राजा लोग प्रातः ही छठकर सम्भा बंरगादि से निवृत्त होते तथा नियत स्थान पर बैठ जाते वहाँ पर दरवाज़ी बस रहट्ट होती थे। राजा के छठने पर वे जो अपने घर का मार्ग लेते और राजा मन्त्रालय में राज्य का कार्य देखने को पहुँच जाते। प्रातःकाल से रात्रि तक की उनकी जीवन-वर्षा सुनिश्चित थी। यह जीवन-वर्षा स्मृतियों तथा चाणक्य-नीति संगत थी। वहाँ इसका विचार वर्णन देखा जा सकता है।

ग्राम्य जीवन—

ग्रामों की स्थिति नगर से भिन्न थी। किसान कृषि योग्य भूमि को जोतते थे। उस पर पहले हल चला कर जीत देते। तत्पश्चात् उस पर पाटा केर कर उस भूमि को एक सवाल कर लेते। ग्रामवासियों का जीवन उस समय धरम्य सुख था। वे गोचरभूमि पर बैठे हुए बंरगाकार में मत्त लड़ाया करते थे जो कुछ लक्षणकृत करते हुए पाने व घट्टास करते। इति

१ माघ ११४

२ माघ १११

३ माघ १४३

जीर्ण का उनमें पर्याप्त प्रकार था। गाँवों में कहीं तो गाये हुए कुहीं बाँटी तो कहीं वान के
 क्षेत्र की रसवासी होती और कहीं गारियाँ गीत गाती हुई हरिणों को मग्न मुग्ध सी करती।
 संसेप में गाँवों का जीवन साँतवम तथा सुखी था।

मारी-जीवन

माय कालीन स्त्रियाँ शिक्षित थीं मगर नहीं इसका तो सम्भावनाओं पर कुछ भी पता
 नहीं पड़ता किन्तु वे रणभूमि में बाँटी और अपने पति के पूर्व ही मरना पसन्द करती थी।
 बड़े स्त्रियाँ प्रायः बरेलू जीवन ही बिताती थीं। पर शास्त्रकाम में कदाचित् राजपूत कालि
 कायों को अपने घरों में ही और प्रकार की शिक्षा के साथ चलन-चित्रा भी ही जाती होती
 जिससे वे समय पड़ने पर अपनी तथा कुल मर्यादा की रक्षा कर सकें और यदि आवश्यकता
 हो तो मंदिर में चहुँ से भी मोरना लें। ऐसे सामाजिक व्यवहार भी होते थे जहाँ स्त्री-पुरुष
 एक विशेष मर्यादा का निर्वाह करते हुए मनोरंजन में निर्वाचन रूप से प्रवृत्त हुमा करते थे।

विवाह जब होता था तब उसके पूर्व यह व्यवस्था देख लिया जाता था कि वर व बहू
 नहीं एक योन के हो नहीं हैं। विवाह होने पर माय की तरह कन्या का योन अपने माता
 पिता के योन पर नहीं चलता था किन्तु पति का योन ही उसका योन हो जाता था। पति
 को इसीलिए 'योनिभित्' की उपाधि दी गई है।^१ स्वयंप्रसन्न में रहती हुई विवाहिता बहू का
 कर्तव्य हो जाता था कि वे पुरुषों के पूर्व ही बाह्य मूर्त में उठ बैठें।^२ प्रायः होते ही स्त्रियाँ
 वर के कार्य में व्यस्त हो जातीं। कुर्से से पानी भरकर माता जनका एक अधिकार दैनिक
 कर्तव्य था।^३

पूषट प्रथा का रूप पूर्व से इस काल में व्याप्तिक था। स्त्रियाँ पुत्र पर पूषट दानवीं
 तथा घरों के भीतर रहती थीं। माय ने जो वर्णन किया है उसे देखिये—

यानाध्वनः परितः नरवतार्यमाणा राजीर्नरापनयना कुस सौविदत्ता ।

सस्तवागुच्छनपटा, क्षणसदयमाणा सवत्रधिय समयकौतुहमोक्षाने स्म ॥१७८

परिवर्तों द्वारा बाह्यों से नीचे उतारी जाने वाली देखने वाले लोगों को डर हटाने
 में परेषान कञ्चनियों से युक्त, उन स्त्रियों की मुलभी को जिनके पूषट का वस्त्र नीचे उत
 रते समय निवृत्त गया था शत्रु, भर क मिए लोगों ने मय मिथित कुतूहल से साथ देना मिया।

शीघ्रपण इन्द्रमय से शायं में जा रहे हैं तब प्राचीण स्त्रियाँ उन्हें सेतों की बाढ़ की
 घोट से नीचे मुककर चुपके से देख रही हैं। यह भी घरों का ही एक रूप है। इन्द्रमय से

नोट—१ माय ८ व

२ ८ १०

३ ११ ४२ देखिये।

समा मरण में प्रियतमों के साथ महीन समापन होने से नववधुरों लज्जा के मारे बूझती घोर मूढ़ करके बड़ी खूबी यह भी पर्वी प्रथा का ही एक रूप है ।

समाज में सती प्रथा का प्रचार इस समय कदाचित् खोरी पर था । कवि ने इस प्रथा की प्रशंसा इस रूप में की है कि जो सती होती है व बूझते जन्म में अपनी प्राकृष्टा की प्रति करके परम माम्यद्यातिनी होती है ।^१ भाव का काम विनाशमय जीवन का काम था । उस काम में मरिचकान भी तो खोरी पर था ही । विधवां दुःख से भी होती थीं जन्ममें दुःख तो वेत्यावृत्ति को स्वीकार कर लेती थीं, कुछ प्रच्छन्न व्यभिचार रह होती थीं ।

नव विवाहिता पुत्री को अपनी ओर में बेटाकर अपनी पुत्री को पहनने का आभूषण पिता दिया करता था ऐसी प्राचीन काल में एक और प्रथा थी । देखिये—

रथांगमर्षेर्ममनर्षं वराय यस्याः पितेव प्रतिपादितम् ।

प्रोम्योपकण्ठं मुहुरकभाजो रत्नावलीरम्भुधिरावबन्ध ॥३३६॥

वरायपुर के मांसमन्त्रप्रथम में हमने ऐसी ही प्रथा का रूप आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व देखा था । घन्तर इतना ही था कि वहाँ पर नव विवाहिता को अपने कंध में पिता न लेकर धर्मपिता (स्वसुर) लिगा करता था । (मांसमन्त्र एक पर्वतीय प्रदेश है जो भारत घोर पहाड़ों से भिरा हुआ है ।)

कम्पार्थे जब पठिहुँ जाती थी विवाह के उस समय माता-पिता रुत करते थे । उस समय का हस्त बड़ा कस्योत्पावक होता था । यह भी कप मेवाड़ में आज तक भी देखने को मिल सकता है । कम्पा जैसे ही पिता के घर से विरा हुई कि उसे सम्बन्धी आस पास के पड़ोसी माता-पिता भाई-बहिन सबभय धाम की सीमा तक जब पहुँचाने जाते तो वे इस मौति का करण कर्मण करते हैं कि बरौचों का पित्त ब्रवीभूत हुए बिना नहीं रहता । कम्पा भी उसे में मन्त्रा बालकर विवा की सीमा तक रोती हुई जाती है । इन पंक्तियों के लेखक ने मांसमन्त्र में ऐसा ही हस्त देखा है और माय के निम्न लिखित श्लोक को पढ़ते ही स्मृति पथ पट पर आ जाता है—

अपराकमकपरिवर्तनोचितद्विजिता पुरपतिमुपतुमारमन्त्रा ।

अनुरोहितोत्र कस्योत्र पत्रियां विरतेन वरसतसमय मिन्नगा ॥४४७॥

विधवां रूप से बचने के लिए छाया लगाती थी । वेवाह के छाया स्त्रियाँ नहीं मना सकती थी । किन्तु येछाबटी की विधवां मिन्नकोष छाया लगाती है ।

पेनभूपा—

पुरुषों के वस्त्र—पुरुष प्रायः जो वस्त्र पहनते हैं । एक तो पयोद्वस्त्र को बोटी के ही रूप का था तथा दूसरा ऊर्म-वस्त्र जिसको गुण्डा भी कहते हैं । ऐसे रंग के गुण्डा पुरुष पहना करते थे । उस समय कदाचित् आज की भाँति बिले हुए बरौचों का इतना अधिक

नोट—१ भाव १३ ४३.

२ भाव ६ १३, ५७ । १-७३ देखिये ।

प्रकार नहीं था। बोली पर क्वाचित् करघनी पहनी जाती थी। उनके गले घटीर पर सूत्र निमित्त पीसे धबका छठेय रंग का यज्ञोपवीत रहता था।

स्त्रियों के वस्त्र आसूषणानि—अधिकारिण स्त्रियाँ माघ के काल में कुमुदत रंग (कौमुद्य) की छाड़ी पहनती थी। इसके नीचे वीरबन्धन नामा बेरदार बाजप होता था। स्वन प्रदेश पर कौचसियाँ रहती थीं जो स्त्रियों को धाये ढकी रहती थीं।*

स्त्रियाँ गले में मोतियों का हार तथा कणों में कण धूम पहनती थीं। कटि प्रदेश पर करघनी पैरों में मुरुर और महावर सयाली तथा मोतियों की माला भी पहनती थीं। होठों पर वे धातव का रंग कपोलों पर सोम पुष्प की रज तथा नैवों में धर्मज सयाया करती थीं।*

धार्मिक स्थिति—

माघ महाकाव्य के प्रथम श्लोक 'यिष पति भीमसि सासितुं जयजयपतिवासी वसुदेव धर्मनि। वसुदेवर्षावतरन्तमम्बपठिरिष्य यमसिपुर्बं मुनि हृदि ॥' से तो स्पष्ट है कि इस युग तक धाते-धाते जहाँ पर सूर्य की पुजा होती थी वहाँ ऋ के साथ ही-साथ 'विष्णु' नामक देवता का भी महत्त्व बढ़ गया था। मानव माघ का सत्कार माना जाकर विष्णु देवता ने जो धर्म वैदिक काल से पहले धाते हुए बरहू तथा सूर्य का स्थान ग्रहण कर लिया था। उस युग में दिव्य देवताओं में बहु सब से अधिक प्रतिष्ठित और वर्य माने जाने लगे थे। यहाँ तक कि छोटी छताम्बी तक कुछ को भी विष्णु का अवतार मान लिया गया और हिन्दू उन्हें देवता मानकर उनकी उपासना भी करने लगे। वैदिक युग के अवसान होने के पूर्व ही विष्णु का 'वासुदेव' के साथ धन्यीकरण हो गया था। यही वासुदेव महाकाव्य युगीन अनुभूति में देव-की पुत्र यीहृण्य नाम के उपास्य देव थे। यह कारण दिन प्रतिदिन बढ़ होती जा रही थी कि विष्णु पृथ्वी को सकटमुक्त करने के लिए बार-बार अवतार धारण करते हैं। राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार माना जाने लगा था। नारद इसी हेतु इन्द्र-सदेव सेक्टर विष्णु के अवतार यीहृण्य के निकट वसुदेव के घर धाये जहाँ पर जयत् का नियन्त्रण करने के लिए ही अवतरी धर्मवली जो मन्वी-नवकपिणी थी के साथ निवास कर रहे थे। विष्णु पुत्रण में भी कहा है "उपवत्सै यमेव सीता धर्मवली कृष्ण जगमनि।" इस भाँति प्रथम वस्तु निर्दोषात्मक संमत्ताकरण के रूप में कवि ब्रह्मा के पुत्र नारद को विष्णु स्वरूप यीहृण्य के निकट प्राकाश मार्ग से निजवाकर विष्णु पर भी सर्व महता प्रदणित करता है। अवतार माना इस युग तक धाते-धाते बढ़ हो चुकी थी। पीराणिक न्यायों पर पूरा विश्वास हो करने का स्मरण दिलाते हुए पाते हैं। प्रथम सर्ग श्लोक संख्या ३४ प्रथम ही वाचस्पतिक की पीराणिकी कथा का उल्लेख करता है। ३६वें श्लोक में स्पष्ट रूप से अवतार धारण करने के माघ समिहित है। कंधादि का बध करने के लिए यीहृण्य ने अवतार अवस्थ धारण

नोट—१ माघ ३ ३३

२ माघ ६ ४६

किया। अबतार तक होते हैं जब संसार में आसुरी कृति सामाजिक समुत्थान को बिगाड़ देती है। हिरण्यकशिपु की पौराणिक कथा को साकर नृसिंह का अबतार उसके संहार के लिए मारव ने उपस्थित किया। हिरण्यकशिपु मर तो गया किन्तु बदला लेने के लिए तबाराण के गर्भ से उत्पन्न मुनाम्नो की कुजली मिटाने के लिए रावण रूप से दूसरे युग में परवन्त भयंकर राक्षस हुआ जिसका संहार भी विष्णु मयबान् ने रामावतार में किया। राक्षस बेह को त्यागने पर दूसरों को ध्वजने में उत्तर यह रावण नट के कान्तर भी भाँति दूसरे बन्ध में सिधुपास रूप से उत्पन्न हुआ है जिसका संहार विष्णु स्वरूप श्रीकृष्ण के हाथ से ही सम्भव है क्योंकि उस कृष्ट ने चारों ओर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया है। धर्म का नाश हो रहा है। सज्जन संवत्स है पर नय ही अपेक्षणीय है। श्रीकृष्ण ने भी उस सन्देश को स्वीकार किया यह समझ कर कि ऐसे समय में सिधुपास का संहार करना सन्धी का परम कर्तव्य है। भागवत, रामा दस महाभारत तथा पुराणों में अबतार भावना ही प्रमुख भावना है।

इस अबतार भावना के साथ सृष्टि संबंधी यह पौराणिक कल्पना भी उस युग में बर बर चुकी थी कि पृथ्वी शेपनाग के फणों पर स्थित है। स्कोक संख्या ११ में कहा गया है कि नारवकी के खरीर का भार इतना अधिक था कि उनके बरती पर पैर रखते ही शेप के फण नीचे की ओर झुकने लगे। अतिसयोक्ति अवश्य है किन्तु शेप नाग का पृथ्वी को अपने फण पर बाराण करने की यह कल्पना सन्धी प्रन्थों की देन है। सृष्टि के सम्बन्ध में प्रसंग की कथा का भी बड़ा महत्व है। स्कोक संख्या २१ में कहा गया है कि प्रलयकाश में समस्त संसार एव उसके जीव निक्काय परमात्मा के खरीर में स्थित हो जाते हैं इस भाँति चौखटो धुननों की स्थिति जिस खरीर में हो जाती है अर्थात् प्रलय काश में समस्त जीव समूहों को अपने में समेट लेने वाले श्रीकृष्ण के खरीर में निश्चित संसार विस्तारपूर्वक स्थित रहता है। इस भाँति प्रलय के समय सारी सृष्टि का जल मग्न हो जाने की बात विश्वासी गयी है।

तीसरी बार्मिक भावना जिसका उस युग में प्रचार था वह है तीर्थ भक्ति। स्नाक संख्या १८ इसका स्पष्ट उदाहरण है नारवकी अपने कमन्धु में धु मन्त्र के समस्त तीर्थों का जल लेकर प्राये वे धीर श्रीकृष्ण को उस जल से अभिषिक्त किया था।

चौथी बात आनामगन का जल है। आत्मा अजर अमर अवश्य है किन्तु यह निज रूप बाराण करती रहती है। हिरण्यकशिपु ने अपनी कुजली मिटाने के लिए अपने मन की इच्छानुसार रावण रूप बाराण किया है। रावण ने भी अपने मारने वाले राम का बदला लेने के लिए धिपुपास बाका नट रूप बाराण किया है। इससे तो यही तात्पर्य निकलता है मनुष्य अपनी इच्छानुसार भी जाने का जन्म बाराण कर सकता है और इस भाँति आनामगन की बात तो सिद्ध हो जाती है। जैन तो जन्म जन्मान्तर को मानते ही हैं। बौद्ध सोप भी इसे किसी-न-किसी रूप में मानने से नहीं बच सके।

पाँचवीं भाष्यता यज्ञ संबंधिनी है। श्रीकृष्ण स्कोक संख्या १७ में “यज्वन्ती प्रिय” राज्य से संबोधित किये गये हैं जिसका अर्थ होता है यज्ञकर्ताओं के प्रिय। उस युग में यज्ञ का विधान था। उसका करना बहुत समझा जाता था। बड़े यज्ञों के साथ वैदिक यज्ञ भी होते हैं—कई प्रयोग-विधिवाँ प्रचलित थीं। अनुष्ठान होते थे।

मोक्ष प्रथमा निबन्ध—

छठी माय्याता मोक्ष की है। योयी ध्यानावस्थित होकर संसार से विरक्त हो जाते हैं। ऐसे मोक्ष के श्रेष्ठियों को भी श्रीकृष्ण की ही शरण में जाना पड़ता है। श्रुति का कथन है। 'तमेव विशिखाश्रिति मृत्युमैतिमान्य पन्था विद्यतेऽग्रमाय' तथा 'न स पुनरावर्तते' अर्थात् उसी परम पुरुष को प्राप्त करके ही मृत्यु से मुक्तकारा मिसता है इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है और नहीं पहुँचकर फिर संसार सागर से लौटना नहीं पड़ता है। वे योयी सोय वित्त श्रुतियों को अन्तर्मुखी करके अम्मात्म-वृष्टि से किसी प्रकार आत्म साक्षात्कार करते हैं। वे आत्मा को उदासीन महावादि विकारों से पृथक् निगुणारमिका (सत्य रजस् एव तमस गुणों से सिद्ध) प्रकटि से भिन्न विज्ञान धन अनादि पुरुष के रूप में इस याति निर्गुण रूप का प्रतिपादन सुन्दर रूप से किया है। इन्हीं स्तोकों के नीचे के ६ स्तोक सगुण रूप की प्रशंसा में हैं जिनके विषय में पहले विचार हो चुका है।

क्रिया । अवतार तब होते हैं जब संसार में घातुरी वृत्ति सामाजिक सम्बन्धन को बिगाड़ देती है । हिरण्यकशिपु की पौराणिक कथा को सागर नृसिंह का अवतार उसके संहार के लिए मारुत ने उपस्थित किया । हिरण्यकशिपु मर तो गया किन्तु बदमा सेने के लिए तब राण ने गर्व से उत्पन्न भुजाओं की जुबानी मिटाने के लिए राक्षस रूप से दूसरे युग में प्रत्यन्त भयंकर राक्षस हुआ जिसका संहार भी विष्णु भयमान् ने रामावतार में किया । राक्षस देह को त्यागने पर दूसरों को छानने में तत्पर यह राक्षस गट के ब्याम्बर की भाँति दूसरे जन्म में सिमुपाल रूप से उत्पन्न हुआ है, जिसका संहार विष्णु स्वर्ण्य श्रीकृष्ण के हाथ से ही संभव है क्योंकि उस कुत्र ने चारों ओर प्रत्याचार करना प्रारंभ कर दिया है । बर्म का नाश हो रहा है । सम्जन संवत्स है अतः अब ही अपेक्षणीय है । श्रीकृष्ण ने भी उस सम्बन्ध को स्वीकार किया यह समझ कर कि ऐसे समय में सिमुपाल का संहार करना उन्हीं का परम कर्तव्य है । भागवत, रामा यश महाभारत तथा पुराणों में अवतार मानना ही प्रमुख मानना है ।

इस अवतार मानना के साथ सृष्टि संबंधी यह पौराणिक कल्पना भी उस युग में बर कर चुकी थी कि पृथ्वी दोपभाग के फणों पर स्थित है । स्लोक संख्या ११ में कहा गया है कि नारदजी के शरीर का भार इतना अधिक था कि उनके शरीर पर वीर रखते ही शेष के फण नीचे की ओर झुकने लगे । अतिसंबोधि अवस्था है किन्तु शेष भाग का पृथ्वी को अपने फण पर भारण करने की वह कल्पना उन्हीं उन्वों की है । सृष्टि के सम्बन्ध में प्रलय की कथा का भी बड़ा महत्त्व है । स्लोक संख्या २१ में कहा गया है कि प्रलयकाल में समस्त संसार एवं उसके बीच निकाय परमात्मा के शरीर में स्थित हो जाते हैं इस भाँति चौदहों भुवनों की स्थिति जिस शरीर में हो जाती है अर्थात् प्रलय काल में समस्त जीव समूहों को अपने में समेट लेने वाले श्रीकृष्ण के शरीर में निश्चित संसार विस्तारपूर्वक स्थित रहता है । इस भाँति प्रलय के समय सारी सृष्टि का सब मज्ज हो जाने की बात विश्वतापी गयी है ।

तीसरी जामिक मानना जिसका उस युग में प्रचार था वह है तीर्थ भक्ति । स्लोक संख्या १८ इसका ज्वलत उदाहरण है नारदजी अपने कम-हुनु में भू मंडल के समस्त तीर्थों का बल लेकर आये थे और श्रीकृष्ण को उस जल से अभिषिक्त किया था ।

चौथी बात आश्रममन का चक्र है । आत्मा अजर अमर अवस्था है किन्तु यह निम रूप धारण करती रहती है । हिरण्यकशिपु ने अपनी जुबानी मिटाने के लिए अपने मन की इच्छानुसार राक्षस रूप धारण किया है । राक्षस ने भी अपने मारने वाले राक्ष का बदला लेने के लिए सिमुपाल नामका गट रूप धारण किया है । इससे तो यही तात्पर्य निकलता है मनुष्य अपनी इच्छानुसार भी आये का जन्म धारण कर सकता है और इस भाँति आश्रममन की बात तो सिद्ध हो जाती है । जैन तो जन्म जन्मान्तर को मानते ही हैं । बौद्ध लोग भी इसे किसी-न-किसी रूप में मानने से नहीं बच सके ।

पाँचवीं माप्यता यज्ञ संबंधिनी है । श्रीकृष्ण स्लोक संख्या १७ में "यज्वन्तो प्रिय" शब्द से संबोधित किये गये हैं जिसका अर्थ होता है यज्ञकर्ताओं के प्रिय । उस युग में यज्ञ का विधान था । उसका करना बड़े समझा जाता था । बड़े यज्ञों के साथ दैनिक यज्ञ भी होते हैं—कई प्रयोग-विधियाँ प्रचलित थीं । अनुष्ठान होते थे ।

मोक्ष अथवा निर्वाण—

छटी माग्यता मोक्ष की है। योगी ध्यानावलिप्त होकर संसार से विरक्त हो जाते हैं। ऐसे मोक्ष के इच्छुकों को भी दीक्षुण की ही शरण में जाना पड़ता है। भुक्ति का कर्म है। तमेव विदित्वा प्रति मृत्युमेतिमायं पन्था विद्यतेऽननाय” तथा ‘न स पुनरावर्तते’ अर्थात् जहाँ परम पुत्र्य को प्राप्त करके ही मृत्यु से पुनरावृत्ति मित्रता है इसके अतिरिक्त कोई दूसरा माय नहीं है और वहाँ पहुँचकर फिर संसार सागर से सौटना नहीं पड़ता है। वे योगी लोग विद्वत्पुरुषों को अन्तर्मूर्खी करके अध्यात्म-दृष्टि से किसी प्रकार धारम साक्षात्कार करते हैं। वे धारमा को उदासीन बहुवादिक विचारों से शृङ्खल विगुणायिका (सत्त्व रजस् एव तमस पुणों से विप्लव) प्रकृति से भिन्न विज्ञान धन अनादि पुरुष के रूप में इस भाँति निर्गुण रूप का प्रतिपादन सुन्दर रूप से किया है। इन्हीं स्मोर्कों के नीचे के ६ श्लोक सगुण रूप की प्रशंसा में हैं जिनके विषय में पहले विचार हो चुका है।

स्रोतों से प्राप्त कथामों की मात्र काव्य की कथा से तुलना

पहले जिन ग्रन्थों से शिशुपाल संबंधी कथामों को लिया गया है वे ही ग्रन्थ इस महाकाव्य की कथा के स्रोत हैं। महाकवि ने शिशुपाल वध काव्य को लिखने के पूर्व अपना कथानक बनाया हो ऐसी कोई बात बिलसाई नहीं पड़ती। कवि मात्र काश्मिर तथा विद्वान् पंडित थे। उनमें सारपाहिणी प्रवृत्ति थी। वह पूर्ण धर्म्यवसायी थे। उनको प्रत्येकानेक ग्रन्थों की उपस्थिति थी। शिशुपाल वध काव्य को लिखते समय जब जैसा अवसर पाता गया अपनी कथा को सुबिधिपूर्ण बनाने के लिए अपने धर्मग्रन्थों की उपस्थिति का सहयोग भी उन्हें प्राप्त होता गया। इस तरह इनका कथानक बन गया। यहाँ पर उन प्रवृत्तियों का शिशुपाल वध काव्य की कथा के साथ कहीं-कहीं पर कंसा साम्य तथा कौन-कौन से ऐसे स्वतः हैं जहाँ पर वैषम्य का प्रतीत हो रहा है। यह बिलसना है। संक्षेप में इस तुलनात्मक विवेचन को पाठकों की सुविधा के लिए निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

- (क) नारद का प्रागमन।
- (ख) संदिग्ध कथन।
- (ग) श्रीकण्ठ का विचार-विमल तथा हृन्मग्न की ओर प्रस्थान।
- (घ) मुचिष्ठिर की विनिमय।
- (ङ) यज्ञ में श्रीकण्ठ के लिए प्रस्ताव उनके द्वारा स्वीकृत कार्य।
- (च) वध का निरोध बर्णन।
- (छ) धर्म्यपूजा का प्रश्न तथा प्रस्ताव के अनुमोदन करने वाले व्यक्ति।
- (ज) शिशुपाल का क्रोध।
- (झ) शिशुपाल वध तथा अन्तिम हृत्पथ।
- (ट) किरातार्जुनीय और मात्र-काव्य के कथानकों की समीक्षा में साम्य और वैषम्य।

नारद का प्रागमन—महामारुतकार, मायवतकार तथा शिशुपालवध काव्यकार इन तीनों ने नारद के प्रागमन को लिया है। ग्रन्थ कथा-स्रोतों में ऐसी कोई बात नहीं मिली परितरित इसके कि “किरातार्जुनीय” के कवि ने व्यास का प्रागमन कराया है जो नारद की ही पंक्ति मुचिष्ठिर के सम्मुख सहसा उपस्थित हो जाते हैं। महामारुत के नारद लोकों में विचरण करते हुए, कृषियों की साथ लेकर श्रीकण्ठ के स्थान द्वारिकापुरी में न पहुँचकर मग

वासन द्वारा निमित्त पुनिष्ठिर के ही समा-वसन में पहुँचते हैं वहाँ पर भाइयों सहित घठकर पुनिष्ठिर उनका स्वागत करते हैं । नारद पुनिष्ठिर द्वारा किये गये वासन पर बैठ जाते हैं ।

भीमह्मावयव में नारद के वासन के पूर्व वरतत्त्व के कारावास में गये हुए राजाओं द्वारा प्रेषित एक ब्रूत श्रीकृष्ण के पास तक जाता है जब वह ब्राह्म मुहूर्त के ईदिक कर्त्तव्यों को पूर्ण करते अन्य कार्यों से व्यस्त होने को होते हैं । वह राजाओं द्वारा कही गई कष्ट कथा को तथा उनकी मुक्ति की बात को श्रीकृष्ण से कह ही रहा है कि 'पियत-वर्ण बटावापी परम तेजस्वी देवपि नारद वहाँ पर भूम की भाँति सज्जता प्रकट हो जाते हैं । उनको देखते ही श्री कृष्ण समस्त समावस्य पीर धनुषधराण के सहित उठकर प्रसन्नतापूर्वक नमस्तस्क होकर प्रणाम करते हैं । तत्पश्चात् विविधपूर्वक वासनवि देखकर उनका उत्कार करते हैं ।

माध काव्य (मिथुपालवध काव्य) के नारद—यगत् का वासन करने के लिए लक्ष्मीपति श्री कृष्ण जब वनुरेव के सद्य पर द्वारिकापुरी में निवास कर रहे हैं तब सज्जता वासाय मार्ग से लखीन पयोधरों के नीचे-नीचे उतरते हुए जाते हैं जो सूर्य की भाँति तेजस्वी हैं जिनके द्विर पर पीतजटायों^१ द्विधात्मक वर्षण पर उषी हुई पक्षी पीली लताओं की प्रपञ्चा कमलकेसर की प्रवीठ हो रही है, जो पीर वस्य हैं और जिनके कर्णों पर यक्षोपवीत है और धरीर पर मन्त्रमर्मे है । वह अपनी धनुषि से बीणा बजाते हुए जा रहे हैं । बीणावादन में स्वर बाम तथा मूर्धन्य स्पष्ट सुनाई पड़ रही है । निरन्तर बीणा के बजाते रहने से धनुषियों और धनुषों के मानून की जाल-जाल कागि जाली होमा से हाथ में पड़ी हुई माता श्री मात की दित्त रही है । द्वारकापुरी के ऊपर तक आकाशपायो देवता नारद भी को पहुँचाकर बने जाते हैं जब वे श्री कृष्ण के स्वाग पर जाते हैं । महाभारत में तो ऋषियों सहित नारद पुनिष्ठिर के स्थान पर जाते हैं किन्तु वहाँ पर जैसे कोई अपनी सीमा तक पहुँचाता है और प्रणाम करके नीट जाता है वही तब धनुषापी देवों का लीट जाता दिखाया गया है । द्विर धनुष जब पर दिखते हुए सूर्य की भाँति श्री कृष्ण के सम्मुख बढ़ रहे हैं । पृष्ठी पर उतरने की क्षी पाते हैं कि श्रीकृष्ण से नारद ही हैं ऐसा निश्चय करके वेगपूषक पहले ही वादन के निरुद्ध पड़े होते हैं । पूजा-योग्य देवपि नारद की धर्म पाशादि पूजा की सामग्रियों से विविध पूजा कर लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण अपने हाथ से धर्मपित किए हुए वासन पर नारदजी के सम्मुख सादरपूषक बैठ जाते हैं ।

संदिग्ध कथन—सीमा कथास्रोतों में नारदजी द्वारा नीतिप्रद उपदेश सुनिष्ठिर को दिये गए हैं । उसी बीच में पुनिष्ठिर पति मन्त्रता से नारदजी को पूषक^२ ११३३

(१) राजदुते व बरदेव देवपि परवत्त ति । विभक्तिपत्रतानारं प्राकृतार्थ^३ ११३३ ।
मं इन्द्रा जगवानृष्यं सर्वतोदेवदेववर । बरद पन्थितः इन्द्रा^४ ११३३
तामुपौ मुवा ॥ ११३३ ॥ ११३३ ॥

(२) बभाममभोदृतेऽरमुतिव्रता धारवधमरीचिरोविबन्ध ।
विप्रादिपसुहिनसमीरुहो धराधरेणं जगतीतीरिध ॥ ११३३ ॥
वत्तपत्तवप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोत्रय पावस भुवि व्यनी^५ ॥
विरेस्तविमानिध तावदुपवर्जितेन बीठानुवर्गितरमु^६ ॥ ११३३ ॥

वति सर्वत्र है यह तो बताइये कि कहीं पर इस भाँति की प्रथा इससे भी अधिक सुन्दर कोई समा भाने देखी है । नारद को राजसूय यज्ञ का सम्येष्ट देने का एक अष्टम अवसर प्राप्त हो जाता है । पर उत्तर में नारदजी भाँति भाँति के राजाओं देशताओं तथा इन्द्र की समा का वर्णन करते हुए राजा हरिश्चन्द्र के विषय में कहने लगते हैं । सभी सहसा मुग्धितर अपने पिता पाण्डु को पितृशोक में डेढ़ने का प्रयत्न कर बैठते हैं । नारद तो चाह ही रहे थे कि कोई प्रसंग ऐसा आ जाय कि वह राजसूय यज्ञ का सम्येष्ट दे सकें । अवसर पाठे ही उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र के व्रत की बात तो पाण्डु ने मुग्धितर को कहलवाई थी क्यों की रमों कह दी तथा यह भी कहा है कि पाण्डु ने वहाँ से गृध्रशोक में आते हुए उनसे कहा था कि मुग्धितर भी हरिश्चन्द्र की भाँति राजसूय यज्ञ करे क्योंकि समस्त पृथ्वी को जीत देने में वह भी समर्थ है । यदि वह ऐसा कर ले तो पाण्डु भी हरिश्चन्द्र के ही तुल्य बहुत वर्षों तक इन्द्र की समा में ध्यान कर सकेंगे । नारद ने अन्त में कहा 'हे मुग्धितर, तुम भी अपने पिता के संकल्प को पूर्ण करो जिससे तुम्हारे पूर्वज ध्यान प्राप्त करें । ऐसा कह देने के पश्चात् नारद मुग्धितर से जाने के लिए अनुमति माँगते हैं । नारद पाण्डु का राजसूय यज्ञ करने का सम्येष्ट देकर वहाँ से चले जाते हैं ।

भीमप्रभावतकार माग काव्यकार की भाँति नारद के धारण ग्रहण कर लेने के पश्चात् पिताचार से सम्बन्धित रखने वाली कुशलक्षेमादि की बातें नहीं करता । माग ग्रीक भाषा में बहुत ही अधिक साम्य का प्रतीत होता है । भाषा ने भी व्यास के भाषमन पर किरणार्जुनीय में कुछ इन्हीं भावों से मिलती जुलती बातें की हैं ।^१ उन बातों को देखने से पता चलता है कि भाषा का माग पर पर्याप्त प्रभाव है । अस्तु, भीमप्रभावतकार कीकृत्य के मुख से यदि मधुर वाणी में कहलाते हैं । आप तीनों लोकों में विचरण करते हैं पर आपका सब विषय है कि कहीं पर क्या होने वाला है । मैं इसीलिए आपसे पूछता हूँ कि अब पाण्डवगण क्या करना चाहते हैं ?^२ बरारस के कारावास में पड़े हुए राजाओं द्वारा प्रेषित हुए सम्येष्ट कथन के पश्चात् उत्तर की प्रतीक्षा में वहाँ पर बैठा हुआ है इसी मध्य में नारद

(१) विष्वं निर्वर्त्यपहृत्प्राणि श्रेयः परिस्मोति तनोति वीरिषि ।

सर्वार्थं लोकागुरोरमोघं तवात्मयोगेति किं न वत् ॥ ११७ ॥ किरत ।

निरात्यर्थं प्रसङ्गुहमित्थमस्मात्स्वकीनां किमु नित्युहाणम् ।

तवापि कस्यालकरीं निरं ते वा न्योतुमिच्छा मुञ्चदीकरोति ॥ ११८ ॥ किरत ॥

हरत्पथं सम्प्रति हेतुरेव्यतः शुभस्य पूर्ववर्तितं कृतं शुभं ।

घटीरमात्रं मन्वीय दर्शनं ध्वनितं कालभित्तयेऽपि योग्यताम् ॥ ११९ ॥ माग

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजाधृता पुपात्रनिशेपनिराकुलात्मना ।

सरोपयोगेऽपि पुष्टस्त्वमस्यो जिनिः सुतीनां वनसम्पवामि ॥ १२० ॥ माग

विनोदनेनैव तवानुना नुमे कृतः कृतार्थेऽपि निर्वहताहृत् ।

तमापि शुचिद्वर्हं मरीयसीगिरोऽपवा व्येति केन तुष्यते ॥ १२१ ॥ माग

अनात्तं पुन्योपचर्येण तावा कनस्पनिर्धृततजः सवित्री ।

तुम्हा ववर्हानसंपदेवा बुधैर्विवा भीतवताहृताया ॥ १२२ ॥ किरत ॥

कृष्ण के परस्पर के ये संवाद चल रहे हैं। मारद यहाँ पर दूत बनकर सम्बोध कहने के लिए महाभारत तथा माघ काव्य की याँति उपस्थित नहीं हुए हैं। यहाँ पर वह दूसरे रूप में अवसर उपस्थित किये गए हैं किन्तु बात वही राजसूय यज्ञ की है। श्रीकृष्ण के प्रश्न के उत्तर में मारद कहते हैं। आप से कोई बात नुप्त नहीं है। आप तो ब्रह्म हैं किन्तु इस समय मनुष्य सीता कर रहे हैं घट मुनिष्ठिर की जो कुछ इच्छा इस समय करने की है वह मैं आपसे कहूँगा। भगवन् ! मुनिष्ठिर ऋक्षवर्तित्व की अभिलाषा से राजसूय यज्ञ द्वारा आपका यजन करने जाते हैं। आप उसका अनुमोदन कीजिए। उस यज्ञ में वेद व मृग लगभग सब ही पायेंगे। श्रीकृष्ण ने देखा कि दाहवमण विजय प्राप्ति के लिए प्रथम उत्सुक हैं अतः उन्होंने मारद की बात को गुरुत्व ही स्वीकार नहीं की और अपने अनुगत भक्त उद्वेग से मुसकराते हुए कहा—परायों के यथावत् प्रकाशक तथा शुभ सम्पत्ति के यम को जानने वाले उद्वेग ! यज्ञ में जाना उचित है भगवा जरासंध के यहाँ पर जाकर राजाओं को कारावास से मुक्त करवाना। उद्वेग जी ने उत्तर में कहा कि राजसूय यज्ञ बड़ी कर सकता है जो विभिन्नवर्ग हो। जरासंध को तो जीतना सेप ही है घट राजसूय को जीते बिना कैसा ? इनके बीच लने पर यज्ञ-कर्म और चरणा मल रसा दोनों कार्य सिद्ध हो जायेंगे। जरामज महाबली है। वह भीम द्वारा ही इन्द्रमुष्ट में जीता जा सकता है अन्य उपायों से नहीं। घट राजसूय यज्ञ में ही प्रथम यजना उचित है। उद्वेग जी के अनुमोदन को सब ही स्वीकार कर लेते हैं। फिर भी कृष्ण वहाँ पर जाने की तैयारी में मन जाते हैं। तब मारदजी भी आकाश मार्ग से भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके चले जाते हैं। श्रीकृष्ण उस समय दूत को प्रसन्न करने के लिए जरासंध के कारावास में बन्दी राजाओं के द्वारा प्रेषित सम्बोध कथन के उत्तर में यह कह कर प्रस्थान करा बैठ है कि तुम सब राजाओं को जाकर कह दो कि वे किसी प्रकार जा भय न करें। मैं वीर्य ही जरासंध को मारकर तुम्हारा कल्याण करूँगा। दूत संदेश के उत्तर को लेकर प्रसन्नता पूर्वक चला जाता है।

माघ काव्यकार सम्बोध को इस तरह कहसकता है। श्रीकृष्ण और मारद के अपने अपने प्रासन पर बैठ जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण कहते हैं कि आपके दशन तो पूर्वजन्म में किये गये मुहूर्तों का परिणाम है।^१ मैं तो आपके इस दर्शन से ही हृत हूँ। फिर भी आपके पदार्णव का जो कारण है उसको मुझे का प्रति अभिलाषा है क्योंकि अधिक कल्याण प्राप्ति की इच्छा किमकी नहीं रहती। दर्शननाम में तो कल्याण मिल ही जाता है किन्तु सेवा-कार्य भी यदि मिल जाए तो फिर और भी अधिक कल्याण आनन्द भला या मरता है।^२ आप कहें कि हम बैरागी हैं हमें क्या कार्य कराना है फिर आगमन का कारण क्या बताया जाय तो प्रसन्न है जो ऐसा प्रश्न पूछा जा रहा है किन्तु उस घटवत् को हमारे मौरव को प्रकट करने वाला आपका यह प्रार्थनीय मुभागमन ही और विस्तृत कर रहा है।^३ धन्य मैं मारद ने अपने जाने के कारण की बात कहे बिना नहीं कहा जाता। वह कह उठते हैं कि जोगी मंतर से विरक्त मन ही हों किन्तु परमोक्त की शिखा उन्हें भी रानी दे

(१) वेतो माघ १ २६

(२) वेतो माघ १ २६

(३) १ ३०

घोर योगियों के पुत्र ही प्रिय हो ।^{१०} इस भाँति वाचस्पति के ही प्रसंग में श्रीकण्ठ की विभिन्न रूप में इस भाँति की प्रशंसा करते हैं कि वे नर नहीं मारपण रूप हैं । धवतारों के प्रसंग को छोड़ते हुए श्रीकण्ठ को भी धवतारी बताकर बहु कहते हैं कि जम्म जम्मातर से देवताओं के परम बिरोधी केदिनूप शिशुपाल का जो श्रीकण्ठ की पुत्रा का पुत्र है और जिसने धराजकता तथा धर्म्यवस्था पैना रखी है नाश करना उनके धवतार का एक प्रयोजन है । इसी प्रसंग में हिरण्यकशिपु रावण और शिशुपाल एक ही हैं । बहु बताते हुए बहु राज का संकेत बहु देते हैं । श्रीकण्ठ भी शिशुपाल का बच ही इसका संकेत मुकुटि बक करके देते हैं और नारद से कहने लगते हैं कि ऐसा ही होगा । तत्पश्चात् इन्द्र संदेस की बात को पक्की करवाकर नारद धाकाए की घोर बल देते हैं । श्रीकण्ठ के पास बुधधिर के राजसूय यज्ञ का भी निमन्त्रण था हुआ है ।^{११} बहु कार्य इत्यादि हैं ।

महामातृ तथा भीमदामवत नारद के बैठे ही विष्टाचारिक बाने कुसमसेम के प्रसंग न कहकर संसार की क्या स्थिति है याचि की बातें कराते हैं क्योंकि नारद एक स्वान से दूसरे स्वान पर जाया ही करते हैं पर जैसी बातें संसार की उन्हें मात्स्य है धर्म्य पुत्रों की वहाँ से हो सकती है ?^{१२} किन्तु माव नारद के धाने पर धानिपूर्वक कुसमसेम पुछाते हैं तथा मधुर वपनों से धाने का कारण जानना चाहते हैं । महामातृ का नारद सीधे रूप में तना का वर्णन करते हुए पाण्डु की इच्छा को बुधधिर के सम्मुख रख देता है और बहु संदेस देकर बता जाता है कि तुमको भी राजसूय यज्ञ अपने पिता की बतवती इच्छा को पूर्ण करने के लिए करना चाहिए । उबर भी मधुमायवतार के धनुषार माव काय्यकार नारद की के मुख से श्रीकण्ठ की इस भाँति की प्रशंसा करता है जो परब्रह्म के स्वरूप के लिए उपयुक्त है । इन दोनों के श्रीकण्ठ को नर न बताकर मारपण का रूप दिया है ।^{१३} महामातृ तथा भीमदामवत से संदेस राजसूय यज्ञ करने का है धन्तर इतना ही है कि महामातृ ही स्पष्ट रूप में राजसूय यज्ञ करने का संदेस प्रस्तुत करता है । किन्तु माववत में श्रीकण्ठ के मुख से धन्तर प्रसंग प्रसंग करता है कि पाँचव बया करना चाहते हैं । इस पर नारद कहते हैं कि बलवर्धन की इच्छा से बुधधिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं । महामातृ में महाराज पाण्डु की इच्छा है, माववत में स्वयं बुधधिर की ही इच्छा राजसूय यज्ञ की है । महामातृ में पाण्डु के मुख से कहलबाबा है कि समस्त पृथ्वी को पीत लेने में हरिवन्ध्र की भाँति बच तुम भी समर्थ हो तो फिर राजसूय यज्ञ क्यों नहीं करते किन्तु माववत नारद के मुख से कहलबाबी है कि बुधधिर की इच्छा का धनुमोदन प्राप्त कीजिए । यह नहीं कहा कि बुधधिर योग्य भी हैं या नहीं । बराधय को पीते विना राजसूय कैसा ? यह तो धन्तर की बात थी कि परार्थ के कारणसे मैं पके हुए राजाओं द्वारा प्रेषित हुए

(४) १, २१

(५) २, १

(६) देखो जबबत धर्म्या ७० धर्मवर्ण के ३३, ३६ तलोक

(७) माववत १० । २७ धर्म्या के ३७, ३८ और ३९ तलोक देखिये, माव १ तल के ३२, ३३, ३४, ३५, ३६ ३७ ३८

श्रीकृष्ण के समीप नारद के समीप नारद के पूर्व ही यह सन्देश लेकर आ गया था कि यह वरासंघ को मारकर उन राजाओं को मुक्त करें अथवा नारद के सन्देश का महत्त्व नहीं रहता । माघ काव्यकार का सन्देश विघुपास का बंध करामा है । उस सन्देश के लिए उन्होंने पहले ही एक सुन्दर मूकिका सीधी है जिसका आधार आमतौर पुराण है । आमतौर में लिखा है कि जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने इस संसार में सत्पुरुषों की रक्षा और दुष्ट पुरुषों को दंड देने के लिए पंचतार चारण किया है^१ और बहमदपुरा में नरहरि ठारिकापुरी में ही रह रहे हैं ।^२ इन बातों को ध्यान में रखकर माघ ने अपने काव्य के प्रथम श्लोक में समस्त जगत के आधार श्रीकृष्ण की स्तुति की है कि वह जगत् का निमग्नण करने के लिए श्री सम्पन्न बसुदेव के चर्म में रह रहे हैं ।^३ शीक ही है वरासंघ से हार लाने के पदचाद श्रीकृष्ण जब मधुरा छोड़कर ठारिकापुरी में कटाचित् इसीलिए रहने लग गये कि वे वही पर बैठे २ बमत् की व्यवस्था सुचारु रूप से करते रहेंगे । पुरुषों को दंड तथा सज्जनों को पुरस्कृत किया जाता है तब ही शासन चल सकता है यद्यपि वही वान को देखकर इन्द्र ने नारद को श्रीकृष्ण के समीप प्रेषित किया है क्योंकि श्रीकृष्ण ही विघुपास जैसे पांडि को भंग करने कास दुष्ट का वनन करने के लिए पर्याप्त हैं किन्तु यह सबैय सीधा नहीं है । आप विघुपास को मार दीजिय इस सन्देश से क्या कार्य हो सकता है यद्यपि सन्देश देने के पूर्व यदि अपने माघ काव्य में उन उन बातों को प्रस्तुत करता है जिससे श्रीकृष्ण को विघुपास के बंध के लिए प्रेरणा प्राप्त हो । यद्यपि श्रीकृष्ण को नारद के मुख से यह कहलवाता है कि आप आरव्य बोध से स्वयं दृष्टी हुई इस परती के भार को हटाने के लिए स्वयं स प्रवर्तीर्ण हुए हैं । यदि ऐसा न होता तो मदीयमत्त कर्मादि में पीड़ित इस बिषय की रक्षा करने की सामर्थ्य फिर किसमें होती ।^४ पातस्य को त्यागकर आप लोकनोहिषों को पीस टासन के लिए स्वयमेव प्रवृत्त हैं । प्रथम श्लोक में जगत् की व्यवस्था का प्रयोजन बताने के बाद भी आप श्रीकृष्ण से एकान्त में इन संबंध में बात की गयी है ।^५ इन्द्र का सन्देश साधारण पुरुष को तो दिया नहीं जाता । यद्यपि ने अपने कला-नीयस से प्रथम श्रीकृष्ण को बहुरूप बताया फिर उन्हें एक अवतार का रूप दिया जिसका उद्देश्य लोक रक्षण है । इससे श्रीकृष्ण की शक्ति घामिता सब विरहित होती है । आगे चलकर विघुपास की जन्म-जन्मान्तर की प्रतिशोध वाली भवना का वर्णन है जिससे श्रीकृष्ण को यह ज्ञात हो जाय कि विघुपास तो जगद्गी के हाथ से मष्ट किया जा सकेगा । इस जन्मजन्मान्तर की कथा को माघ कवि ने प्रणिपुण्य से विशेष रूप से तथा विघु पुरुष एवं पद्मपुरुष न दिया है ।^६

(१) १०।७०।२७ माघवत

(२) १०।२७।३३ माघवत

(३) माघ १।१

(४) माघ १।१५।१७

(५) १।४०

(६) वैजये कवा श्रोत सखा ३४३

कथा में हिरण्यकशिपु का परजन्म रावण के रूप में और रावण का परजन्म शिशुपाल के रूप में हुआ बताया गया है।^१ शिशुपाल को कंठ से भी अधिक पापारमा के रूप में रखा है। हिरण्यकशिपु रावण तथा शिशुपाल को बिम्बु के पार्ष्व जब का जो घनशुमारों से घापित वा घनतरण मागा है। स्पष्ट रूप में तो कवि शिशुपाल तथा कण्ठ की घनता बनिमणीहरण वाली कथा के कारण नहीं बताता किन्तु वह संकेत रूप में यह भी कहसका देता है।^२ नारद के मुख से कवि शिशुपाल सम्बन्धिनी सब बातों को प्रथम कहसका देता है क्योंकि जब तक किसी के विषय में पूर्णतया जानकारी प्राप्त नहीं की जाय तब तक कोई किसी पर आक्रमण कैसे कर सकेगा। भीतरी बाहरी सब रक्षकों को जानना ही बाहिए घट शिशुपाल के जन्मजन्मास्तर के प्रतिघोष की बात है पहले वह हिरण्यकशिपु या फिर रावण देह को चारस किया और जब वही शिशुपाल रूप में आया है।^३ माघ ने पुराणों के आधार से शिशुपाल के जन्म की कथा को प्रस्तुत किया है।^४ एक बात महामारुत के समा पर्व के अन्तर्गत आई है जहाँ पर शिशुपाल का वर्णन आता है। उस स्थान पर विरामह जीप्न जीम को कहते हैं^५ कि बेरिप्राज के वंश में यह शिशुपाल तीन भाई और चार पुत्र बाला उत्पन्न हुआ था। माता पिता के चिन्ता में व्यथ होने पर आकाशवाणी हुई कि हे नमते यह शिशुपाल तेरे कुल में बड़ा ऐश्वर्यशाली एवं महान् बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ है इसलिए इस पुत्र से तू अस्त न हो निर्विक होकर इस पुत्र की पूरखा कर।

इस मीति संश्लेष कवन को माघ काव्यकार ने एक शिथिल हाथ से न पकड़ कर उसका निर्बाह नामा पुराणों की कथाओं का ठोस आधार लेकर किया है। शिशुपाल की उद्गता मरी बातों और जयत् के उत्साहक कार्यों का वर्णन उसको बन्ध सिद्ध कर देता है। इस मीति जैसे ही इन बातों को अपने बानवकीधन से नारद कहते हैं श्रीकृष्ण के नाम पर तीन रेखाएँ जोष के बारे समर घाटी हैं उस संग के साथ 'ऐसा ही होमा' भुनकर नारद अपने को कृपा मानते हैं और फिर वे जले जाते हैं। कवि को स्मरण है कि नारद आका धमार्ग से एकाकी ही आण थे अतः वे एकाकी ही जा रहे हैं। कई चमत्कारों ने इस बात का ध्यान न रखा। उन्होंने ऋषियों के साथ उनका आना बताया पर लौटते समय अकेले ही आकाध मार्ग से उनका गमन बताया।

श्रीकृष्ण का विचार-विमर्श तथा इन्द्रप्रस्थ की और प्रस्थान—महामारुत में नारद के जले जाने पर बुद्धिहर भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ के विषय में सम्मति लेने के लिये ब्राह्मणों राजाओं तथा भाइयों की यह सम्मति हुई कि यज्ञ किया जाय। जब बुद्धिहर ने श्रीकृष्ण का मन से ध्यान किया और उन्हें सुसाने के लिए दूत भेजा। द्वारिका में असे ही दूत ने आकर संश्लेष सुनाया कि श्रीकृष्ण इन्द्रसेन के साथ देवों को मीचते हुए इन्द्रप्रस्थ जले

(६) माघ १। ६२

१ २।१५ २ १ ४८ ३ ६५, १ ६२, माघ काव्य ३ १ ७

४ बेरिप्राजकुलेजातस्यैव एव अनुजुजः। वैर्हतं तस्य ती हृद्वा त्वापायजुक्तां वतिम्।

एव ते गुपते पुनः श्रीमन् आतो बलाविकः। तस्मादस्मात्प्रभैतमम्ययः पाहिर्बन्धियुः॥

गए। भागवत में मारव के सम्मुख हो विचार विमर्श हो जाता है तथा मारव जरासम की ममरी से बन्धी राजाओं द्वारा प्रेषित होकर चले जाते हैं तब भगवान् धान्य सौवीर, मर धीर कुक्षीय को सौंपकर पकव गयी धाम पत्र धीर लानों (माहन्स) को पार करते हुए हपडरी धीर सरस्वती से उतर कर पांचाल धीर परस्य देश का उत्सर्जन कर इन्द्रप्रस्थ के निकट चल पड़ते हैं। भागवत में इन्द्र सन्देश लेकर मारव के चले जाने पर भीकृष्ण घस मंस में पड़ जाते हैं क्योंकि राजभूय पत्र का निमग्नण कमी का मिल चुका है वहाँ पर जाना आवश्यक है किन्तु विद्युत्पातवश भी उपेक्षणीय कार्य नहीं। कुछ विद्युत्पात दिनों दिन घटवकता देना रहा था। उसको भीतकर अपने धर्मीय कर लेना भी साधारण कार्य न था, घट द्वितीय धर्म में उद्वज धीर बलराम के साथ विचार विनिमय करने के लिए भीकृष्ण समा भवन में बैठते हैं। सभी प्रकार के वे विचार एक राजनीतिज्ञ के लिए ऐश भवसर पर जानने जरूरी होत है। घन्त में उद्वजजी की सम्मति को कार्योचित मानकर उसी के अनुसार सन्तुष्टि राजभूय में जाना ठीक समझ धीर इन्द्रप्रस्थ पवन के लिए सेवा एवं घटव हाथी शस बासी प्रादि को तयार करत हैं। विद्यालकाय सेवा के साथ भीकृष्ण द्वारिबानगरी की रम्यभूमि को लीकते हुए कच्छभूमि के क्षार-समुद्रवासी भूमि के निकट पहुँच जाते हैं। घाते जात हुए दूर से रैवतक पकव से घाते ऊँचे ऊँचे पहाड़ी, नदियाँ नालों नगरों सड़कों ऊँचे नीचे भूमि भागों को पार करते हुए पाठकों को वहाँ पर लाकर छोड़ देता है वहाँ मनुना प्रवाहित हो रही है धीर इन्द्रप्रस्थ घागमा है। युधिष्ठिर स्वागताथ भाइयों सहित पहिले ही घने हुए हैं।

विचार विमर्श भी तीनों धर्मों में है किन्तु जो विचार-विनिमय माघ काव्यकार ने कराया है वह पूर्ण तथा सुष्ठियों से परिपूर्ण है। किसी काय को करने के पूर्व उसकी घण्टी घुरी घब ही बातों पर ध्यान देना हितकर होता है। विचार पुष्कट किया हुआ कार्य वैया फलदायक सिद्ध होता है वैया दीप्तता में किमा हुआ घयवता भलीभाँति न विचार हुआ काय सिद्ध नहीं होता।

युधिष्ठिर की विनिमय—महाभारत में युधिष्ठिर प्रादि जब सब भीकृष्ण व परस्पर मिल चुकते हैं तब युधिष्ठिर भीकृष्ण को इन्द्रप्रस्थ बुलाने का प्रयोजन बताते हैं, मेरी इच्छा राजभूय पत्र करने की है धीर यह भी मैं जानता हूँ कि राजभूय पत्र करने का धर्मावारी कौन हो सकता है। किन्तु किया क्या जाय ? सब ही मुझको मर करने के लिए कह रहे हैं। इसक उत्तर में भीकृष्ण कहते हैं कि राजभूय पत्र करने का नाम अस्तुत्तम है तथा अधिपारी भी भाप ही है किन्तु इस मार्ग में थोड़ी बाधा विद्युत्पात की घयव है क्योंकि वह राजाओं का धर्मीय करके सम्राट बना हुआ है घन पत्र को पूरा करने के लिए उसका वध आवश्यक है। युधिष्ठिर इस पर भीम धर्मुज धीर भीकृष्ण को बलराम पर विजय प्राप्त करने के लिए भेज देते हैं वहाँ पर भीकृष्ण भीम द्वारा जरासम का वध करवा कर विनिमय करके राज भूय पत्र की संधारी में युधिष्ठिर को याग देते हैं। इस भाँति पत्र होने के पूर्व विनिमय का काय सम्पन्न होता है। भागवत में भी महाभारत की ही भाँति प्रथम जरासम का वध भीम द्वारा करवाया गया है तब युधिष्ठिर के राजभूय पत्र की संधारी हुई है। भीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ

में पढ़ते हैं। नरनारी उन्हें देखने के लिए राजमाग पर एकत्र हो जाती हैं। श्रीकृष्ण राज भवन पर जाकर सबसे मिलते हैं। युधिष्ठिर उनको ऐसे स्वाम पर ठहराते हैं वहाँ सेना सहित सर्व सुख उनको प्राप्त हों। एक दिन युधिष्ठिर सबके सम्मुख श्रीकृष्ण को कहते हैं कि मैं यम करना चाहता हूँ भ्रष्ट धाप मेरे ह्य संकल्प को पूर्ण कीजिये। श्रीकृष्ण इस विचार को ठीक बतलाते हैं और कहते हैं कि भूमण्डल को बड़ीभूत करके यज्ञ की सामग्री एकत्र कीजिये। माई विन्मिष्य करके स्रष्टृ भन युधिष्ठिर को देते हैं किन्तु बरासभ को घबेय मुनकर जब युधिष्ठिर विन्मिष्य होते हैं तो श्रीकृष्ण अर्जुन और भीम युधिष्ठिर की धात्रा लेकर बरासभ पर विजय प्राप्त करने के लिए ब्रह्म पकते हैं। श्रीकृष्ण भीम और अर्जुन सप्रवेपचारी ब्राह्मण बनकर बरासभ के निकट जाते हैं और सबसे दान रूप में गदापुष्ट मांगते हैं। बरासभ और भीम का गदापुष्ट होता है अन्त में श्रीकृष्ण की बर्राई हुई नीति से भीम बरासभ का ब्रह्म करते हैं। बम्बी राजाओं की मुक्ति होती है। बरासभ के पुत्र सद्देव का राज्याभिषेक हा जाता है। श्रीकृष्ण सब युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होते हैं। इस तरह राजार्थ की बारासभ से मुक्ति करके श्रीकृष्ण अपनी एक प्रतिष्ठा पूर्ण कर देते हैं।

मात्र काम्यकार विविधत्व के मायने में पूर्ण सतर्क है। श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ पहुँच जाते हैं उनसे विविधत्व के लिए सम्मति नहीं मानी जाती। महाभारतकार तथा भाववत्कार ने भीम द्वारा बराहचक्र का बन्ध करा दिया किन्तु यदि कुछ भी सम्पाद हो जाता तो फिर राजसूय यज्ञ के सम्पन्न होने की बात समाप्त हो जाती। मात्र ने इस बात को समझ घोर एक घोर ता' इसके द्वारा श्रीकृष्ण को राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण घोर वृद्धी घोर सिन्धुपाल बन्ध के लिए इन्द्र का सम्बन्ध मित्रवासा। इन दोनों कार्यों को कतुरता के साथ-साथ इस तरह सम्पन्न करवाया कि साँप भी मर गया घोर साठी भी नहीं टूटी। बात केवल यही आती है कि दोनों कार्यों में से किस काय को प्रथम किया जाय। राजसूय की बात तो वहाँ की गयी है न कि विविधत्व की। मात्र काम्यकार तो बुद्धिधर को सम्राट् स्वीकार कर ही बैठे हैं पर उद्वेग द्वारा नीति-सम्बन्धी विचार विनिमय की बातों में स्पष्ट बचावा है कि सब ही राजे महाराजे वहाँ पर आये। सिन्धुपाल तथा उसके पक्ष के राजा भी वहाँ आये। उस समय जैसे ही बर्मचक्र चट्टन मल्लि से श्रीकृष्ण को आकर दगे सिन्धुपाल घोर उसके पक्ष के राजा प्रीति हो उठे। सिन्धुपाल भीम द्वारा बराहचक्र बन्ध की बात को तथा वनिमली के दिवाह वाली बात को स्मरण करके मुझ के लिए उठ खड़ा होगा। सिन्धुपाल का भारने का वह उपयुक्त अवसर होया। उस समय श्रीकृष्ण की १०० वासियों के सहन करने की तथा राजसूय यज्ञ में सहयोग देने की बातें पूर्ण हो जायेंगी। बन्ध की बात तो राजसूय यज्ञ हो जाने पर तब होगी जब अथर्वान का अवसर आयगा घोर उस समय यह भी प्रमाणित हो जायगा कि श्रीकृष्ण ही वास्तव में नरों में श्रेष्ठ घोर पूरुष के योग्य हैं। इस नीति बन्ध ने विविधत्व की बात को ता' विसृज्य ही उड़ा दी। मुझ की बात अवश्य की क्योंकि सिद्ध

1 2104 104 118 112, 114

१३३

३३३०५

पास के साथ युद्ध तो करना ही था। इसीलिए अपने पक्ष के राजाओं के पास जब मुमिष्ठिर का निमन्त्रण भेजा गया तब यह भी युद्ध रूप से कहना दिया कि वे सेना में मुमिष्ठिर होकर प्रायः जिसस समय जाने पर सिमपास के साथ युद्ध किया जा सके*। साथ ने जो दिग्विजय के प्रसंग में धीरे परिचयन किया है उसका सामरिक औचित्य है। रघुक पक्ष पर सिमिह बालरुद्र जलविहार जलविहार पुष्पजयन चन्द्र दधान आदि बाते जिस प्रकार एक महाकाव्य के लिए उपयुक्त हैं उसी प्रकार मलिक हट्टि से भी उगड़ा औचित्य है। संतियों के लिए आनन्द प्रसाद की व्यवस्था इसीलिए की जाती है कि वे अपने पर धीरे परिवार का मोह छोड़कर उत्तमान पूरक अपने देश प्रसन्न स्थानी को रक्षा के लिए सह सकें और यदि मरना भी पड़े तो हंसते-हंसते अपने प्राण दे सकें।

साथ काव्यकार ने श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ नगरी में प्रवेश का एक सुन्दर दृश्य उपस्थित किया है। भगवान् श्रीकृष्ण के नगरी में प्रविष्ट होते ही दुन्दुभियों की घम्भीर ध्वनिमा के साथ ही नगर की रमणियाँ श्रीकृष्ण को देखने के लिए अपने आवश्यक कार्यों को भी त्याग कर मूय-मुय खोई-सी* घटारियों गलियों ओरों की ओर आकर खड़ी होती हैं और उन्हें एक दृष्टि से देखने लगती हैं। श्रीकृष्ण उबर होकर सब वानज द्वारा निमित्त सम्राट में पहुँचते हैं।* मुमिष्ठिर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए श्रीकृष्ण को कहते हैं कि मैं यज्ञ करना चाहता हूँ अब उनके लिए आप अनुज्ञा प्रदान कर मुझे अनुपहीत करें। इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि आप राजसूय यज्ञ करने के सर्वथा योग्य हैं।

यहाँ तक तो साथ काव्य में आनन्द का अनुसरण है, वर्णन में चरम ही कहीं-कहीं घटार है। साथ काव्य का वर्णन विचित्र है। महाभारतकार श्रीकृष्ण की प्रसन्नता का दृश्य उपस्थित नहीं करता। वह तो उन्हें नीचे मुमिष्ठिर आदि के पास उपस्थित कर रहा है। यहाँ तक काव्य बाते प्रायः बेसी ही हैं।

साथ काव्यकार दिग्विजय की बात नहीं साता जब कि महाभारतकार और भागवत कार ने राजसूय यज्ञ से पूर्व दिग्विजय को आवश्यक बताया है। वराहचरित्रों के साथ में बाधक है। साथकाव्यकार तो राजसूय यज्ञ की बात को ही प्रारम्भ करता हुआ श्रीकृष्ण से कहता देता है कि मैं चाहते (मुमिष्ठिर के) दुन्दुभ आदिनों का भी वामन बनना अब मुमिष्ठिर करणीय काय में अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहें वहाँ पर गया दीजिए। जो राजा आपरा इस राजसूय यज्ञ में मृत्यु के लक्ष्य काय न करेगा उसके शरीर को जपन् का शिरीष रूप मेरा यह मुद्राङ्गन कर गिर में धूँक कर देगा। इसमें पता चलता है कि महाभारत मुमिष्ठिर ने दिग्विजय पहले से ही प्राप्त करली है। सब राजा महाराजा न्य यज्ञ में मृत्युवन् कार्य करने के लिए कटिबद्ध हैं।

४ ११४

१ १४ का १४ वाँ भाग

२ १४ का १५ वाँ भाग।

यज्ञ में श्रीकृष्ण के लिए अथवा उनके द्वारा स्वीकृत कार्य—महामारु में राजसूय यज्ञ जब प्रारम्भ हो जाता है तब श्रीम्य पुष्टिष्ठ द्वारा बताया नहीं सब सामग्री मेंगवाई जाती है । यज्ञ में वेद व्यास ब्रह्मा धर्मव्यय योग के प्रधान धार्या उचुवाता याज्ञवल्क्य और पैत धर्म्य तथा श्रीम्य होता बने । ब्राह्मणों ने मुषिष्ठिर को यज्ञ की बीसा में नियुक्त किया । श्री-कृष्ण ने ब्राह्मणों के घरणों की बोने का कार्य अपने हाथ में लिया ।

मागवत् में यज्ञ की बीसा तथा याचकों की विविधत् पूजा के पश्चात् ही धर्म्य का प्रश्न उपस्थित हो जाता है । वहाँ पर तो श्रीकृष्ण को करने के लिए कोई कार्य ही नहीं दिया गया ।

विशुपास द्य में केवस इतना कहकर कि मेरे कस्याणकारी कार्यों में धाप के उप-स्थित रहने पर मेरी सयस्त सम्पत्ति स्थिर रहेगी मुषिष्ठिर मान्यवधित से यज्ञ के समारम्भ में प्रवृत्त हुए ।^१ श्रीकृष्ण न तो पहले ही कह दिया था कि अत्यन्त दुष्करकार्य में भी लया रहेगा अथ मुम्ह को करणीय कार्यों में अपनी इच्छा के अनुसार वहाँ चाहें तहाँ नियुक्त करें । धापके कार्य ही मेरे परम कर्तव्य हैं ।^२ वे फिर कहते हैं कि धापके इस राजसूय यज्ञ में जो राजा मृत्यु के मुख्य कार्य नहीं करेगा उसके घटीर को बचत् का हितपी रूप मेरा यह सुदर्शन बल घिर से विच्छन्न कर देगा ।^३

उपयुक्त बातों से पता चलता है कि उस राजसूय यज्ञ में श्री कृष्ण ने कौन-सा ऐसा कार्य था जिसको नहीं किया । प्रत्यक्ष में भले ही ऐसा प्रतीत हो रहा हो कि उन्होंने कुछ नहीं किया किन्तु परोक्ष था अग्रत्यल रूप में राजसूय यज्ञ को सफल बनाने के लिए उन्होंने सब कुछ किया यह बात मुषिष्ठिर के वाक्यों एवं स्वयं श्रीकृष्ण के बचनों से स्पष्ट है । मुषिष्ठिर के लिए श्रीकृष्ण का भगवान् स्वल्प है अथ भगवान् की कृपा-दृष्टि (नवरबीजत) ही पर्याप्त है । उनका तो संकेत भर काफी है । इस पर भी कवि यह बात नहीं बूल पाया है कि महाकाव्य के मायक श्रीकृष्ण नारायण रूप में उपस्थित हैं होकर नर के रूप में एक सन्निवामी नर के रूप में हैं । इसीलिए वह श्रीकृष्ण के मुख से भी साराण लौकिक पुरुष बीधी बातें कराता है । बीसे कार्य कुछ नहीं है और यदि देखा जाय तो सब कुछ है ।

यज्ञ का विशेषम वर्णन—माघ के अविरिक्त किसी ने यज्ञ का यथावत् वर्णन नहीं किया है । जान पड़ता है अपने समय में उन्होंने या तो ऐसा महान् यज्ञ देखा है अथवा उन्होंने धार्या होकर कोई यज्ञ सम्पन्न कराया है । माघ की बीवनी में इसका उल्लेख किया जा चुका है ।

धर्म्यपूजा का प्रश्न—धर्म्य पूजा की बात तो तीनों ग्रन्थों में आयी है । प्रथम धर्म्य किसको किया जाय ? यह प्रश्न क्यों उठा ? क्या मुषिष्ठिर ने ही पहली बार राजसूय यज्ञ किया था ? इसके पूर्व क्या राजसूय यज्ञ हुए ही नहीं ? यदि हुए हैं तो बीसा ही यहाँ भी क्यों नहीं हुआ ? इसका उत्तर स्पष्ट है कि ब्राह्मण श्रीकृष्ण को भगवान् का ही रूप मानते

१ १४ का १७ वां माघ

२ १४ का १५ वां माघ

३ १४ का १६ वां माघ

ये । वे सब जानते थे कि सब कर्मों में तथा यज्ञ में भगवान् का पूजन करना चाहिये । पर श्रीकृष्ण नर रूप में आकाश तो थे नहीं इसीलिए महारथियों, शास्त्रज्ञों ऋषियों तथा विद्वानों के बीच ऐसी बात उपस्थित हो ही गयी । फिर विष्णुपात ने नामवरा मुनियों को तथा उन सभी व्यक्तियों को माहू मिया या घट उन सबों ने बालक के तुल्य यह प्रदन उठा ही लिया ।

दूसरी बात यह भी कि यदि यह प्रश्न उपस्थित न होता कि यज्ञ में प्रथम पूजा घाने योग्य कौन है तो विष्णुपात श्रीकृष्ण की निन्दा भी क्यों करता ? बिना निन्दा किये भगवान् उसको मारते भी कैसे ? प्रतिज्ञा जो ठहरी । महाकवि माघ ने इन बातों का भीक्षित समझा और इसीलिए महाभारतकार तथा भाष्यकार इन दोनों से इन विषय में वे अधिक स्पष्ट हैं । महाभारतकार यज्ञ के पश्चात् भीष्म के मुख से युधिष्ठिर को राजाघों का यथायोग्य सत्कार करने के लिए कहलबाटा है कि ऋत्विक् याचार्थ संयुक्त स्नातक प्रिय धीर नृपति ये ९ धर्म्य वेने योग्य हैं अतः प्रत्येक के लिये धर्म्य तैयार करके जो खेठ हों उनको ही सर्व प्रथम धर्म्य प्रदान करना है । युधिष्ठिर ने इस पर वितामह भीष्म की सम्मति माँगी कि प्रथम धर्म्य का अधिकारी कौन ? भीष्म ने श्रीकृष्ण को ही सर्वश्रेष्ठ बताया । तब सहदेव ने विधिपूर्वक श्रीकृष्ण को धर्म्य समर्पित किया । भाष्यकार ने पाँहु पुत्रों में सबसे कनिष्ठ सहदेव के मुख से कहलबाटा कि विद्वद् ही कृष्ण का रूप है यन्नादिक भी कृष्ण रूप ही हैं सब कृष्ण पदार्थ हैं, अतः इनकी पूजा करने से सब प्राणियों की पूजा हो जायगी' तथा मैं सभी ने सब कहा सब कहा यह कहकर इस कथन का समर्पण किया ।

माघ काव्यकार को भी सब देख भीजिए । राजा का समाधान कितना भीक्षित से वह करता है । शास्त्रीय रीति का प्रयोग भी कितना सुस्पष्ट और सुन्दर है । महाभारतकार तो सीधे सीधे कह देते हैं कि धर्म्य के योग्य ९ प्रकार के व्यक्ति हैं और भीष्म की अनुमति देकर धर्म्य का प्रथम मुसल देते हैं । वह एक आदेश जैसा है जिसमें बुद्धि को प्रवर्धन नहीं । भाष्यकार ने सहदेव से श्रीकृष्ण का प्रस्ताव करवाकर छुट्टी ली । किन्तु महाकवि माघ ने इसमें भी काव्योक्ति परिवर्तन किया है । साम्य केवल यही है कि श्रीकृष्ण ही धर्म्य के लिए योग्य हैं । यज्ञ के समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर ने जब धर्मशास्त्र का विचार करते हुए धर्म्य शान के सम्बन्ध में पूछा तब भीष्म ने कहा कि स्नातक मुख बन्धु, पुरोहित जामाटा तथा राजा इन ९ को पंडितों ने धर्म्य का पात्र बतलाया है । इस तथा मैं ये सभी विद्यमान हैं । इन सबकी एक साथ ही पूजा करनी चाहिए, यह भी एक बिधि है । आगे कवि कहलाता है कि इस समय भूमिवेद आकाशों और नरदेव राजाघों के इस सम्पूर्ण समापन में भी भुमरों तो तम्बूएँ गुणों के धामार देवताघों ने धनुषों (धमुरों) के त्रिनायक भगवान् श्रीकृष्ण ही एक मात्र पूजा के अधिकारी विगलार्थ वह रहे हैं । इस शक्ति ने तो स्पष्ट ही नर दिया कि कृष्ण नरों पूजा के अधिकारी हैं । देवविपुहारी विरोधण के साथ-साथ पहले के यज्ञघाटी इत्यों का बर्णन करके एक ओर तो उनको देवतुल्य बताया है । (देवता की पूजा प्रथम होनी भी चाहिये) और दूसरी ओर उन्हें सम्पूर्ण गुणाकार कहा है । साथ में ही "भुमरों" यह शब्द

जाकर रक्सा है जिससे कोई यह सोच न है कि पक्षपात हो रहा है। कबि ने यहाँ अपने कौशल से श्रीकृष्ण को विभिन्न अवतारों का रूप दिया। अन्त में सिंधुपात के सामने ही उससे जगत् सम्मुख रखने वाली विनेय बाणी कथा का स्मरण भी समासों को कर दिया। इसमें कबि का एक अभिप्राय और है वह यह कि अभिमानी तथा धातमस्वामी सिंधुपात को श्रीकृष्ण की स्तुति के क्षोभ उत्पन्न हो और पापल होकर अनर्गल अपसम्भ कहने लगे जिससे उसका मन आवरबद्ध हो जाय। इस तरह धर्म जम्मीर भीष्म की उक्ति का मन पाकर नर्मदाज बुद्धिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की विविधता पूजा की।

सिंधुपात का स्वेच — महाभारत में सिंधुपात ने श्रीकृष्ण की उस पूजा को पसन्द किया घट वह उस घमा में भीष्म और बुद्धिष्ठिर को घृता-अमा कहते हुए भी कृष्ण को इधर-उधर की उत्पटीय बातें कहने लगा। जब वह अपने ऊँचे धातम से उठकर धर्म राजाधों के साथ उस घमा से बाहर निकल आया तो बुद्धिष्ठिर ने प्रति मन्त्र सम्मो न सिंधुपात को कहा कि भीष्म सब कुछ जानत हैं उनका इस भाँति घनावर नहीं करना चाहिए। इस पर भीष्म ने फिर कहा कि श्रीकृष्ण की पूजा क्यों सर्वप्रथम करनी चाहिए। तदनन्तर सहदेव ने भी इसका समर्थन किया और अन्त में यह कहा कि जो श्री कृष्ण की पूजा नहीं चाहता है उसके मस्तक पर यह मेरा करण है। मैं उस राजा को मार कर ही छोड़ पा। वैदिराज सिंधुपात ने धर्मो नाम करके क्रोधपूर्वक राजाधों को कहा कि मैं सेनापति बनकर स्थित हूँ आप लोग बिन्दा न करें। हम साथ मिलकर ही कृष्ण और पाण्डवों को घेर कर मुँह करते। फिर उसने पन्न-विध्वंस करना चाहा जिससे बुद्धिष्ठिर का अश्वधियेक तथा श्रीकृष्ण की पूजा न हो सके। बुद्धिष्ठिर बिन्दा में पड़े और भीष्म से सम्मति पायने लगे। इस पर भीष्म ने कहा कि श्रीकृष्ण रूप सिंह अभी सोमा हुआ है इसी से ये राजा कपी रूप मौक रहे हैं। इस पर सिंधुपात ने फिर भीष्म को कठोर बाणी सुनाया प्रारम्भ किया। श्रीकृष्ण की निन्दा को सुनकर भीम भी क्रोध में भर पड़े। भीष्म ने उनसे कहा कि वह सिंधुपात? ठीक घोंस और बार भुजा वाला उत्पन्न हुआ था। इसने उत्पन्न होय ही पने की भाँति भोजन प्रारम्भ किया। परिवार वाले पचरावे। माता ने आकाश की मार देकर पूछा कि इस बसन्तानी की मृत्यु किसके हाथ हो सकती है। उत्तर में आकाशवाणी ने कहा कि जिसकी योग में जाने पर इसकी दो भुजा और सीतल नेत्र मुँह हो जाय वही व्यक्ति इसका काम होगा। सब राजाधों की बोली के पश्चात् श्रीकृष्ण की गोपी से जब यह होगा गया तब इसका सीतल नेत्र और दो बूँदों मुँह से मुँह हो गई। इस पर माता ने श्रीकृष्ण से वरदान माँगा। उन्होंने ही अवराम लया करने का वचन दिया। श्रीकृष्ण के तब का यह भय है और सब भवबान् इस तब का धप हरात करना चाहत है। श्रीकृष्ण के वर से ही वह इतना दर्शन कर रहा है। इसपर सिंधुपात फिर शोक भरे वाक्य भीष्म को कहत गया। इस पर भीष्म ने कहा कि मैं श्री कृष्ण विसमाज है जिसकी हमने पूजा की है अब जो शोक ही मरण चाहता है वही इन्हें मुँह के लिए आह्वान

- (१) माप में भी वह ही बात कही गई है लेकिन प्रथम सर्ग और १४वें सर्ग में घट वह बात इसने महाभारत से ली है अन्य सर्गों में सिंधुपात का जग्य दर्शन नहीं मिला है। मापन में भी यह कथा आई है किन्तु वह भी महाभारत की ही रचना है।

करे। इस पर सिधुपाल भी क्रुपण से मुह्र करने की प्रतिज्ञापा से उन्हें कठोर बचन कहने लगा। श्री क्रुपण ने भी क्रुरा मत्ता कहा और अन्त में घोषणा की कि अब इसके ली अपराध पूर्ण हो चुके हैं और यह सीमा से घाये भइ गया है। अतः मैं इस मुदर्थन अतः से इसके घिर को पूरक करता हूँ।

उपर्युक्त में कुछ बातें छटकती हैं। सहदेव के मूह से यह कहसकाना कि श्री क्रुपण की पूजा को स्वीकार नहीं करता उसके मस्तक पर यह मेरा बायाँ चरण है घोषा नहीं देता। यह तो बचपन ही बात हो गई। सहदेव बचपे तो नहीं थे। अतः माया का प्रयोग करना था। किन्तु माया ही क्रोध या पाप किन्तु सम्मनों को जेसा से काम लेना चाहिए और यदि ऐसा भी नहीं किया जा सकता था तो फिर उस क्रोध को कुछ होश के साथ काम में लाते। दूसरी बात छटकने वाली यह है कि श्रीक्रुपण महान् व्यक्ति हैं और वे जानते हैं कि सिधुपाल दृष्ट और पापारता हैं तो फिर जब वह गाली देता है तो अन्त में वे भी क्रुरा मत्ता सुनाने लगे। उनके लिए ऐसी बेटी बाँटे सुनाना सीमा नहीं देता। शान्ति से कहते कि माई अब तक तुम्हारे १०० अपराध तो क्षमा किये जा चुके हैं किन्तु अब तुम्हारा घाये बढ़ना प्रसङ्ग हो जायगा यदि।

सीमा नामक में बेरिदास सिधुपाल श्री क्रुपण की इस पूजा के कार्य को समुचित सम्मकर बिगड़ बैठा है और अपन हाथ को ऊँचा करके निर्मय होकर श्री क्रुपण को कठोर बचन कहने लगता है। क्या गावों का चरणे वाला कुल को दोष लगाने वाला इन सब राजाओं को छोड़कर एक नामक के कहे हुए बचन से ही पूजा के योग्य हो सकता है? यज्ञ में देवताओं के योग्य बलि को कौसा कैसे ग्रहण करने योग्य हो सकता है। इस प्रकार सिधुपाल अनेकों अर्थवत् बचन शोक रहा था फिर भी श्री क्रुपण कुछ भी न बोले। राजाओं में कुछ तो मन-ही-मन सिधुपाल को गाली देने लगे कुछ ने गावों को बन्ध कर लिया किन्तु कुछ गहब उठाने सिधुपाल को मारने के लिए बात तत्कार करने लगे।

माघ-काम्य में युधिष्ठिर ने जब श्री क्रुपण की पूजा की तो सिधुपाल समा के मध्य में किये गए श्री क्रुपण के सम्मान को सहन न कर सका क्योंकि वह पहले ही मयबान् श्रीक्रुपण पर अनेकमुक्त तो था ही और फिर युधिष्ठिर द्वारा की गई इस पूजा से उसका क्रोध और भी बढ़त गया। क्रोध ने विकृत होकर उसने समा में युधिष्ठिर को अपातन्त्र दिया फिर भीष्म को मत्ता क्रुरा कहने लगा। अतःचाह सिधुपाल ने श्रीक्रुपण को अनेकों कठोर वाक्य कहे किन्तु श्री क्रुपण उसम लज्ज भाव भी लुप्त न हुए। परन्तु भीष्म ने कहा कि जिस किसी राजा को आज्ञा हम मत्ता में भेरे द्वारा की गई पूजा (मयबान् श्री क्रुपण की) वह नहीं है वह अनुप जग से। यह मेरा बायाँ पैर ऐसे सभी नाममति राजाओं के घिर पर रक्ता जा रहा है। सिधुपाल पत्नीय राजा यह सुनकर दुःख हो गये और वेग से छट ताई हुए। श्रीक्रुपण को तो वे मृगधन् सम्म रह थे। युधिष्ठिर को तो वे नया मिलते जब भीष्म से ही वे तनिक भी अयभीत नहीं थे। अब सिधुपाल भी बिपेसी बातें करता हुआ समा-मध्य से बाहर निजल बढ़ा। युधिष्ठिर ने लज्ज से कहा कि अब जाये पर सिधुपाल ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। सिधुपाल के पास वाले राजा भी उसके पीछे चल पड़े। सिधुपाल दुःखामी

मोड़ों पर बढ़कर इन्द्रप्रस्थ की राइकों को साथ गया और धिबिर पर पहुँचकर सेना को तैयार होने की उम्मेद दिला दे दी। मुडार्थ संश्रित होकर क्योंकि भीर लोग जाने मये कुछ घपराकुन हुए जो भावी विजय का कारण हो रहे थे। अभियान की तैयारी हो जाने पर सिधुपास का दूत श्रीकृष्ण के समीप जाकर इयर्बक (भिय और अभिय) बातें कहने लगा। दूत की उन बातों की समाप्ति पर श्री कृष्ण के संकेत से सात्यकि ने दूत की भर्त्सना की तबनन्तर सिधुपास को भी बोटी चरी मुनाई। सात्यकि ने यह भी पूछा कि यदि सिधुपास भी दृष्ट के साथ सन्धि करने का इच्छुक है तो फिर युद्ध की तैयारी उसने किस लिए की? यदि श्री कृष्ण को बमकाने या बचाने के लिए ऐसा किया गया है तो श्री कृष्ण भय से या धाकड़मण से विनम्र हो जायें यह अवश्यमय बात है। यदि उसका यह निचार हो कि भवमान् ही घपराव समा करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं और सी घपराव हुए भी नहीं हैं, तो यह भी उसका भ्रम है क्योंकि सी घपराव तो कभी के पूरे हो चुके हैं। अब यदि कोई अभिय बात हुई तो वह दृष्ट का भावी है। सिधुपास का दूत मर्ममयी बातों को सुनकर फिर भय त्याग कर बोला कि तुमह सबका विग्रह दोनों में से किसी एक को चुन लीजिए किन्तु आप हमारे उपदेशों पर ध्यान ही क्यों देने लगे आप घुटावही को ठहरे। हमारा राजा सिधुपास महान् ही रहेगा चाहे युधिष्ठिर ने मरी समा में श्री कृष्ण की पूजा की है। तुम ही घपराव समा करने की बातें क्या कहते हो क्या सिधुपास ने भीष्म की कन्या वरिमासी का अपहरण करने पर प्रतिकार में समर्थ होते हुए भी समा नहीं किया है? तुम्हारे पक्ष के यदुबंधियों को मुडार्थ चलकारने के ही लिए मुझको मेवा है क्योंकि सन्धि करने का मेरा संकेत तुम्हारे लिए अब व्यर्थ है। अब युद्ध के लिए उद्यत राजा सिधुपास प्रबल बल के प्रवाह की तरह बका सा रहा है मत है श्रीकृष्ण। तुम अपने आपकी रक्षा करो। दूत की इस प्रकार की बातों को सुनकर श्री कृष्ण की समा तुरन्त ही दुःख हो उठी। श्री कृष्ण पक्षीय राजाओं का शोक भी बहुत पड़ा किन्तु श्री कृष्ण दान्त थे। राजाओं को शोकपूर्ण हुंकारें मरते देखकर दूत चुपके से वहाँ से चिपक गया। तब श्री कृष्ण ने सेना को तुरन्त ही युद्ध की तैयारी की आज्ञा दी। सिधुपास के सैनिक हथियारों को बीचकर संस्तप्त वेग से दौड़ पड़े। अब दोनों सेनाएँ एक स्थान पर घा डी—पैरल पैरल से जोड़े घोड़ों से हावी हावी से तयार रबी रबी से निकल पड़े। उत्तरचाव् इन्द्र युद्ध हुआ। श्री कृष्ण के पराक्रम को न सहन कर सिधुपास क्रोधित हुआ और विकराल अनुवृद्ध करने लगा। पर वह भी दृष्ट के सामने टिक नहीं सका।

महाभारत और सिधुपास जब मैं सिधुपास के शोक के सम्बन्ध में बहुत कुछ सवानता मिलती है। सहदेव के राजा भीष्म के के बावय जिसमें इन दोनों के राजाओं को सम्बोधित करते हुए कहा है कि श्री कृष्ण की पूजा को स्वीकार न करने वालों के मस्तक पर यह मेरा बायाँ चरण है सज्जता मिले हुए धन्य है किन्तु फिर भी भीष्म की उक्ति में जोड़ी बहुत शोक के साथ सम्मिलित मधित होती है। वास्तविकता वाली अपलता नहीं। भागवतकार और सिधुपास जब मैं सिधुपास की क्रोधोत्पत्ति मिलती-जुलती सी है। महाभारत और भागवत दोनों में बहुरिक्तों के बाद तुरन्त ही श्री कृष्ण के द्वारा सब कर दिया गया है जब कि सिधुपास जब मैं कवि ने दोनों के बीच हुए युद्ध का भी बड़ा सुन्दर और विस्तृत वर्णन किया

है। वह युद्ध साधारण युद्ध नहीं है। जगियों में जो प्राचीन काल में युद्ध होते रहे, उनका एक भावों देखा सा यह विषय है। हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से, रथी रथी से, पैदल से पैदल। सब के सब जुड़ने के पश्चात् दोनों नायक प्रतिनायक बड़ते हैं। यह परिवर्तन सिधुपाल वन के घटितरिक्त सम्मान नहीं मिलता। इसकी काम्योपयोपिता स्पष्ट है। श्री कृष्ण का मनीषिक सौम्य उससे व्यक्त होता है। यदि प्रतिनायक साधारण नहीं है तो नायक तो मनुष्य साधारणता को लिये हुए है।

सिधुपाल का वन तथा अन्तिम दृश्य — महाभारतकार ने यहाँ एक बाहुवर के बाहु का सा काम किया है। वह श्री कृष्ण से कहलवाता है कि इस सिधुपाल के भूँक घन १०० धपराय हो चुके हैं और वह अपनी मर्यादा से घाने बड़ गया है, घन में इस सुबधन वक्र से इसके धिर को घृषक करता हूँ। इसने ही में उसका सिर बड़ से घृषक होकर फिर पड़ा। यह भी क्या बाहु है? सिधुपाल ने कोई प्रतिकार न किया। करता भी कैसे? सुबधन वक्र के सम्मुख कीन ठहर सकता था। सिधुपाल के देह से निकला हुआ तेज श्री कृष्ण की देह में राजाओं के देखते-देखते प्रवेश कर गया। उसकी मृत्यु पर कुछ राजा हर्षित हुए और कुछ कोषित। फिर उसके शरीर का भीरोषित सम्मान के साथ दाह-संस्कार करवा दिया।

मागधकार का कहना है कि जब श्रीकृष्ण पक्षीय राजाओं ने सिधुपाल के विरोध में काल सतवार उठायी तो श्रीकृष्ण ने यह समझकर कि सिधुपाल यदि घटितघाती है कहीं यह इन राजाओं को मार न दे उन्हें राजाओं को धाये बड़ने से रोका और सामने लड़े हुए सन्तु सिधुपाल के धिर को वक्र से घृषक कर दिया। उस समय बड़ा कोलाहल हुआ। सब अनुपक्षीय राजा वहाँ से भाग गये। उसी समय सिधुपाल के देह में एक ज्योति निकली जो सब लोगों के देखते-देखते श्रीकृष्ण में विलीन हो गयी। इसी के पश्चात् मागध में सिधुपाल के वन्य जन्मान्तर का वर्णन आता है। जब विषय को अनकारिक का घाप लगा घन-उनका बार-बार वन्य हुआ। सिधुपाल ने तीन वन्यों के बसे घाने वीर से उन्मय बुद्धि से श्रीकृष्ण के रूप का ध्यान किया और वह अपनी भावना के अनुसार अनका हो गया। इसके बाद वर्णन आता है कि अकर्मणी राजा मुषिष्ठिर ने वन में उपस्थित होने वाले बाहुओं को बड़ी-बड़ी दक्षिणा दी फिर विधिपूर्वक सबका पूजन करके यज्ञान्त स्नान किया।

मागधकार का कहना है कि श्रीकृष्ण और सिधुपाल के बीच जब समाधान युद्ध हो रहा था तब घन में सिधुपाल ने समझ लिया था कि श्रीकृष्ण अजेय है और ज्योंही बतने बाकवाण बताया कि वक्र ने उसके धिर को उड़ा दिया। उसके शरीर से निकला हुआ तेज श्रीकृष्ण के देह में प्रविष्ट हो गया।

इस भाँति हम देखते हैं कि गान्धी बड़ते हुए सिधुपाल के धिर का वक्र से घृषक होना तो तीनों वन्यों में मिलता है। जब पुराण और विष्णु पुराण में भी संतोष में यही बात मिलती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में सिधुपाल के मरने की बात तो है पर जब के बाद धिरो-ज्येष्ठ की बात नहीं है। तेज का तेज में मिल जाना भी सब वन्यों में मिलता है। विष्णु सिधुपाल के मृत शरीर का क्या हुआ इस बातपर महाभारत को छोड़कर प्राय सब ही वन्य मौन हैं। महाभारत में मृत शरीर का दाह संस्कार किया गया ऐसा लिखा है। बड़ा

वैवर्तक पुराण में मृत्यु के प्राप्त हो जाने पर शिशुपाल की जीवार्त्ता श्रीकृष्ण की प्रशंसा करती है कि हे श्रीकृष्ण आप वेद वेदांगों मुर धमुर, प्राकृत तथा देहाधारियों के जनक हैं और इस सृष्टि को माया के द्वारा सूक्ष्म रूप में बनाकर आप स्वयं ही बहुत खंडर तथा शेष रूप को प्राप्त हो गये हैं। सब यन्त्रों के आप ही यन्त्री हैं। भरे अपराध को क्षमा श्रीजिये धारि-धारि और धन्त में धाकर माय ने सम्बन्ध का जैसा निर्बाह किया है वह आश्चर्यजनक है। उसमें और बातों को समझा प्रबन्ध है किन्तु उनको प्रस्तुत करने की अपनी शैली है। शिशुपाल कृष्ण को अजेय समझ लेता है। तब वह ही वाक्वाण छोड़ता है। श्रीकृष्ण उसको अपने सुवर्धन चक्र से मार देते हैं। उसका फिर पृथ्वी पर फिर पड़ता है। राजाधों ने उस समय विस्मित भेदों से देखा कि अपने घमन्ध प्रकाश से आकाश में सूर्य की किरणों को मन्त्र करता हुआ एक परम शक्तिमान् तेज शिशुपाल के शरीर से निकल कर भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया।

यह है सम्बन्ध का निर्बाह और यह है प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का ढंग। शिशुपाल क्रोध में बहुत सी गालियाँ दे देता है। किन्तु १०० गालियाँ बहुत होती हैं। किससे इतनी गालियाँ दी जा सकती हैं? कबाबिज् यही समझ कर शिशुपाल की माता ने समझ होगा कि यह बरदान छीक रहा। १० गालियों के पश्चात् तो श्रीकृष्ण के हाथों उसके पुत्र की मृत्यु होनी। म तो यह इतनी गालियाँ दे सकेगा और न यह श्रीकृष्ण के हाथ से नरैया हो। ईश की तो गति निश्चिन्त होती है। क्रोध में वाली देता हुआ सभा छोड़कर अपने चिबिर में सेना को तैयार करने के लिए चला जाता है तब श्रीकृष्ण के निकट अपने दूत को भिजवाता है। दूत प्रिय तथा अग्रिम लज्जे वाली स्नेहमयी बातें कहता है। दूत के मुख से पाली के सब्यों को श्रीकृष्ण सुनते हैं। कहा जाता है जो कुछ दूत कहता है वे सब वाक्य मेरे जाने जाने के ही माने जाते हैं। दूत का व्यक्तिगत उसमें कोई अपराध नहीं होता है अतः दूत प्रबन्ध ही माना जाता है। दूत ने १० गालियों की पूर्ति जैसे ही की श्रीकृष्ण की ओर से संकेत हो जाता है कि अब यदि आगे बढ़ा तो फिर और नहीं। उसी समय दूत वहाँ से बिस्वक जाता है। यह साध प्रसंग बढ़ा रोचक है। मुठभूमि में श्रीकृष्ण और शिशुपाल अपना अपूर्व पञ्चक्रम दिखलाते हैं दोनों ही बाँके सूरवीर हैं। शिशुपाल भी एक ही है तो श्रीकृष्ण की दक्षता भी दाँत तले धनुली बजाने योग्य है। धन्त ने मोह के अस्त्र से श्रीकृष्ण को अजेय समझकर जैसे ही उसने १०१वीं वाली निकाली कि श्रीकृष्ण ने अस्त्र बाँधी उस शिशुपाल को मोठ के बाट जतार दिया। प्रतिज्ञापूर्ण हो गयी। सब घन्टों में तेज का तेज में मिल जाता सिखा है किन्तु माय ने उस तेज को निकलते हुए प्रकाश पूर्ण के रूप में धारिभूत होकर श्रीकृष्ण के रूप में विनीत होते हुए दिखलाया है। बाह-छंस्कार कराना प्रबन्ध सब को जटा कर लेजाना तो माटक न काम्यों में उचित नहीं माना जाता। अतः माय ने पुण्य वृष्टि, पादे बाजों की ध्वनि में प्रकाश को प्रकाश में लीन होते हुए दिखाने एक सुन्दर रूप में पटाक्षेप किया है। वहीं काम्य की समाप्ति होगयी है।

किरातार्जुनीय और शिशुपालवध के कथानकों की रूप रेखा में साध्य और वैचर्य— यह तो सुनिश्चित है कि शिशुपाल-वध महाकाव्य की रचना आरविहृत किरातार्जुनीय के बाद

की है और लोगों महाकाव्यों को बड़े ध्यान से पढ़ने पर पाठकों के हृदय में स्वतः यह भाव जाग्रत होता कि महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य के निर्माण के पूर्व भारविकृत किराठार्जुनीय को बहुत ही ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा वरना पहले लिखा था हुआ है महाकवि माघ चाहते थे कि वह भी महाकवि की शीति को प्राप्त करें। इस इच्छा से प्रेरित होकर आपने महाकाव्यका निर्माण किया। महाकवि भारवि के महाकाव्य से अच्छी रचना अब तक प्रस्तुत नहीं हो तक उनको घपना घसीट नहीं मिल सकता था। संभवतः इसीलिए माघ ने किराठार्जुनीय को बार-बार पढ़ा हो। माघस्य के वक्ष्य स्कन्ध अथवा महाभारत^१ के सर्गाध्याय के अन्तर्गत धिमुपान-वच पर्व से एक छोटी सी कथा को लेकर उन्होंने अपनी प्रतिमा में अपने महाकाव्य की रचना की। कलामक की रूप रेखा, माघों कल्पों अलंकारों वृत्तियों ध्वनियों बन्धों आदि पर महाकवि भारवि का प्रभाव स्पष्ट है। इस प्रभाव का सुस्पष्टतम तुलनात्मक दृष्टि से किया जा सकता है।

1

7

1

(१) महाभारत में ये ही वाक्य सहस्रव कह रहा है। (२) महाभारत और माघ के काव्य के मिले स्थान — महा १।१६।२१-२२, २७ ३१ एवं त्रिगुण १।४।२२-२८ तथा १२।१ महा २।१६।२८, २।४।२१ एवं त्रिगुण १२।१८-२९, महा २।४।२३ अतः ४ वृत्तार्थ ८९ एवं त्रिगुण १६।२६-३७, महा १।४।१० एवं त्रिगुण १२।३८ महा २।४।४० एवं त्रिगुण १२।४६

कथामकों की सुसना

माघ

- (१) महाकाव्य के मसलों से मुक्त है।
- (२) विष्णु का महिमा वर्णित है।
- (३) महाकाव्य के प्रारम्भ में 'श्री' शब्द का प्रयोग मंत्राचरण के लिए है।
(विष्णु पति श्रीमति वासिष्णु)
- (४) प्रति सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'श्री' शब्द का अन्तेज है। इसीलिए यह महाकाव्य अद्वय कहलाता है।
- (५) माघ विष्णु भक्त हैं अतः उन्होंने महा माघ से कृष्ण सम्बन्धी एक छोटी सी घटना को चुनकर उसका उपस्था पत्र २० सर्गों में एक कथा धूलें डेन से किया है। (कथावस्तु को देख लेने पर किष्कावुनीय की कपरेका मस्तिष्क में एक बार घूम जाती है।)
- (६) माघ में नारद श्रीकृष्ण के समीप आते हैं। इन्द्र का संवैष प्रस्तुत करते हैं। इसमें सिधुपाल के अस्थाचारों का समाचार भी समाविष्ट है।
- (७) माघ इतिवृत्त के वर्णन में एक दम नहीं चुट पड़े १२ १३ पंक्तियों में धाकाध से छठरी नारद का वर्णन भूमिका के रूप में देते हैं। नारद का स्वागत होता है, तब वह अपने आचमन का कार्य करता है।

किरात

- (१) महाकाव्य के मसलों से मुक्त है।
- (२) शिव की महिमा वर्णित है।
- (३) महाकाव्य के प्रारम्भ में 'श्री' शब्द का प्रयोग मंत्राचरण के लिए है।
(विष्णु कृष्णामविपत्य)
- (४) प्रति सर्ग के अन्त के श्लोक में 'श्री' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी लिए यह महाकाव्य अद्वय कहलाता है।
- (५) भारवि शिव भक्त हैं अतः उन्होंने महामाघ से शिव सम्बन्धी एक घटना को लिया है। यह घटना १० सर्गों में वर्णित है (माघ के काव्य की कथा वस्तु भारवि की कथा वस्तु की ही प्रतिवृत्ति (रेप्लिका) कही जा सकती है।)
- (६) किरात में प्रथम सर्ग में बनेवर मुनिठिर के निष्ठ आता है। वह मुनिठिर को दुर्गमन संबंधी समाचार देता है।
- (७) भारवि सुरंग ही भक्तव्य प्रस्तुत कर देते हैं इसके लिए कोई भूमिका नहीं बाँचते।

- (८) कृष्ण धीर नारद के मध्य भी वार्ता-
लाप होता है वह अज्ञापूर्ण सादर भाव
से परिप्लुत है ।
- (९) माघ के द्वितीय सर्ग में बलराम भी
कृष्ण धीर उद्धव के मध्य राजनीति
विषय की बातें होती हैं । इसमें राज
नीतिक मन्त्रणा है । माघ ने इस सर्ग
में भारविसे धार्मिक राजनीति में अपना
पक्षिण प्रदर्शित करने की चेष्टा
स्नान स्नान पर की है । वहाँ पर
बलराम धीर उद्धव की वस्तुवाच्यों पर
सुलकीति तथा कामन्दकीय नीतिशास्त्र
का प्रभाव स्पष्ट है । (१) बलकार
धारन, बर्धन और व्याकरण का ज्ञान
भी वहाँ यत्र तत्र मौजूद है ।
- (१०) माघ में देवर्षि नारद एक प्रस्ताव
रखते हुए मार्ग-वर्धन भी करते हैं ।
- (११) माघ में भीकृष्ण रैवतक पर्वत के
निकट पड़ाव डालते हैं ।
- (१२) रैवतक का वर्णन यमक में किया है ।
- (१३) अनुर्व सर्ग का रैवतक वर्णन षष्ठ
सर्ग का ऋतु वर्णन तथा ७ से १०
सर्ग तक का वन-विहारादि संख्या
राशि जम्बोदय, ऋतुओं एवं वाचा
का यथा स्नान वर्णन है इनके वर्णन
से महाकाव्य के लक्षणों की पुष्टि
हुई है ।
- (१४) अष्टराश्यों के विहार के चित्र बड़े
सुन्दर हैं ।
- (१५) विष्णुनाम श्रीकृष्ण को मुञ्च में उतार
जित करने के लिए दूत भेजता है ।
- (८) व्यास के व्यासमन पर बुधितिर का भाव
भी अज्ञापूर्ण सादर से युक्त है । (१)
- (९) किरात के द्वितीय सर्ग में बुधितिर, भीम
धीर शीपदी के मध्य राजनीति-विषयक
बातें होती हैं । इसमें राजनीतिक
विचारों में नीतिक अनुभवों तथा
बुधितियों का साधारण धार्मिक निपा है ।
शास्त्रीय धाधार मौल रहा है (२)
वहाँ पर भीम धीर बुधितिर राजनीति
में पूर्ण बल दिखाये गये हैं ।
- (१०) किरात में महर्षि वैदव्यास पांडवों को
मार्ग बताते हैं ।
- (११) किरात में धर्म्युन इन्द्रकील पर्वत पर
उपस्था करने के लिए जाते हैं ।
- (१२) हिमालय का वर्णन यमक में किया है ।
- (१३) अनुर्व सर्ग से नवम सर्ग तक के वर्णनों
से महाकाव्य के लक्षणों की पुष्टि हुई
है । इस वर्णन से माघ प्रभावित से
दिखलाई पड़ रहे हैं । संख्या, राशि
जम्बोदय, ऋतुओं एवं वाचा का यथा
स्नान वर्णन है ।
- (१४) अष्टराश्यों के विहार के चित्र बड़े
सुन्दर हैं ।
- (१५) किरात में किरात वैद्यपारी चित्र धर्म्युन
को मुञ्च के लिए उत्तजित करने की

(१) माघ १ २६ तथा किरात ३ ६

(२) किरात १, ११, ४२, २ ११ २० २१ ३० ३१, ३७ ४६

(३) माघ २ २६, २८ २९, ३० ३६, ३७ ३४ ३३, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१ ४२, ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

बुल की जाया अपमान पूर्ण है ।

(११)

(११) ११वें सर्ग में सिधुपाम के बूल तथा सात्यकि के बीच सत्तेजसा पूर्ण संभाषण है ।

(१२) १२वाँ सर्ग विश-काव्य बँसा है ।

(१३) इन्द्र बुल के पूर्व विपक्षियों की सेनाओं में संघर्ष है ।

(१४) अतुल्य सर्ग में विविध क्षत्रों का प्रयोग है ।

बुल भेजते हैं । बुल की जाया अपमान पूर्ण है ।

(१५) १५वें और १६वें सर्ग में अतुल्य तथा किरात कपटारी विश के बीच सत्तेजसा पूर्ण संभाषण है ।

(१६) १६वाँ सर्ग विश-काव्य बँसा है ।

(१७) इन्द्र बुल के पूर्व विपक्षियों की सेनाओं में संघर्ष है ।

(१८) अतुल्य सर्ग में विविध क्षत्रों का प्रयोग है ।



दोनों में साम्य

वर्णन साम्य

माघ

- (१) धनु-वर्णन—प्रथम सर्ग
- (२) राजनीति-वर्णन—द्वितीय सर्ग
- (३) प्रवाल-वर्णन—चतुर्थ सर्ग
- (४) प्रकृति-वर्णन—चतुर्थ सर्ग
- (५) पुष्पावलय-वर्णन—सप्तम सर्ग
- (६) वनछीड़ा वर्णन—अष्टम सर्ग
- (७) साय तथा रात्रि वर्णन—नवम सर्ग
- (८) मुरछीड़ा-वर्णन—दशम सर्ग

भारवि

- (१) धनु वर्णन—प्रथम सर्ग १ से २५ श्लोक
- (२) राजनीति-वर्णन—प्रथम द्वितीय तृतीयसर्ग ।
- (३) प्रवाल-वर्णन—चतुर्थ और सप्तमसर्ग ।
- (४) प्रकृति-वर्णन—पंचम सर्ग ।
- (५) पुष्पावलय-वर्णन—अष्टम में १ से २६ श्लोक
- (६) वनछीड़ा-वर्णन—अष्टम में २७ से ३७ श्लोक
- (७) साय तथा रात्रि वर्णन—नवम में १ से १० तक श्लोक ।
- (८) मुरछीड़ा-वर्णन—नवम में ११ से १८ श्लोक ।

माघ के वैमिन्य का सौम्य

माघ एक कलाकारी कवि है। जहाँ कामिमाध को रस-कवि कहा गया है वहाँ उन्हें धर्मकार कवि बताया गया है। उन्होंने द्वितीय सर्ग में भुववि की पहिचान ही इस रूप में बताई है (१) वे सम्य तथा धर्म दोनों के सौम्य पर अधिक बल देते हैं। यद्यपि रसों और भावों को जानने का काम कवि के लिए भी उनके हृदय में सम्मान है। (२)। उन्होंने अपनी कविता को क्या भीतर से तथा तथा बाहर से सुख समस्त करने का प्रयत्न किया है। शास्त्रम कवि होने ही के कारण उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों का मार्ग अपनाया है। वह मौलिक प्रविभा का परिचय देते तो उनका कवित्व और अधिक प्रसुटित होता और वह मात्र स

(१) शास्त्राची सत्त्वविरिण इय विद्वानपेणते (२ ८६)

(२) वैमिन्ये माघ २ ८३

कहीं ठंढे पय पर धापीम होते । वस्तु, पांडित्य प्रदर्शन करना धान्दलक रूप से धापीय या तथा इस तरह मुकवि बनना या इसीलिए वहाँ पर उनका वैमिश्र (वैधित्य) विस्तार पड़ा है वहाँ वहाँ पर वह भारतीय जैसे कसावादी कवियों से कई गुणा अधिक बढ़ गये हैं । माघ में कलात्मक सजावट शब्दों का मण्डार तथा कल्पनाओं की विविधतापूर्ण विपुलता ये सब उनके वैमिश्र के औचित्य को अभिव्यक्त करते हैं । उनकी छतियों में धनूतपन है ।^१ धर्म कारों को एक सूत्र में रखने की धनूर्ध्व समता है तथा उनकी छंदों में एक धनूर्ध्व संकीर्णता है । उनका माघ पद्य भी अपने ढंग का है ।

संवेदकपन में वहाँ पर साम्य है वहाँ पर अपने वर्णन वैमिश्र में माघ भारतीय से कहीं धाने बढ़ गये हैं । भारव श्रीकृष्ण की धिष्टता बरी बातें इसका एक अच्छा प्रमाण है जिसमें माघों की मौलिकता स्पष्ट है । राजनीति की बातों में वहाँ साम्य है वहाँ पर सात्त्विक प्रभाव देकर पांडित्यप्रदर्शन द्वारा अपने भावों को नून सजाकर रखना वह उनकी विशेषता है । उनकी वर्णन करने की छंदी है जिसमें एक धनूर्ध्व औचित्य लाकर रक्खा है । दूत का बाद-विवाद तथा युद्ध का वर्णन जो कम सुन्दर नहीं है । प्रकृति वर्णन में भी विप्लव है । बमक बाते प्रकृति वर्णन धर्मकारों से बने हुए जान पड़ते हैं । बड़े धर्म का जो प्रकृति वर्णन है वहाँ धर्मकों के होने पर भी सरलता के कारण वैमिश्र का विषाद नहीं हुआ है । उनका धर्म-स्तुत विधान सुपाठि सुनोविन एवं सुसज्जित है ।

धिमुपासक की कथा-परिवर्तन, उनका औचित्य तथा कवि का कौशल—

धिमुपासक वच महाकाव्य की कथा-वस्तु यद्यपि महाकवि माघ को महाभारत धनवना भीम-धनवच से बनी बनाई मिल गई थी किन्तु वच काव्य में कुछ ऐसे भी स्वतन्त्र हैं वहाँ कवि ने कुछ परिवर्तन किये हैं । कवि अपनी मौलिक सज्जानता छवि अपने महाकाव्यों के काव्यों एवं काव्यों के प्रसिद्ध कथानकों को अपने उद्देश्य सिद्धि के लिए एक नवीन रूप दे रहे हैं ।

कुनसी उमायल और वाम्भीकि-उमायल की मिलता स्पष्ट है तथा छतर-उमचरित नाटक को कुनान्ता से बचाने के लिए महाकवि भवसूचि ने अन्त में अपने निजी कौशल से सीता और राम का मिलन दिखाया है । धाकुनल में कुप्यल के चरित की रत्ना के लिए कुनान्ता के धाप की भी कल्पना करनी पड़ी । इसी तरह धिमुपासक महाकाव्य के कथानक में भी महाकवि माघ ने कुछ परिवर्तन किये हैं । इस गति के परिवर्तनों से कथानक दून रूप से मिल सर्वथा एक मुठन रूप धारण न करने देविहासिक और पौषणिक सत्य में कहीं बिरोध न था बाप इसका ध्यान कवियों को रखना पड़ा है । महाकवि माघ इस धीर भी चतर्क है । धिमुपासक की कथा में एक दो बड़े परिवर्तनों के परिचित छोटे-छोटे परिवर्तन भी हैं क्योंकि उनका काव्य लिखने का उद्देश्य न केवल धिमुपासक का ही वच है यद्यपि वच प्राप्ति पूर्वक हरि (श्रीकृष्ण) गुणायान (परिवर्णन) करना भी है ।

१ बाप ६, ४२ तथा १३ ४६ धीर धिराव ४ ३३ कौशिकिये ।

यह हम क्रमानुसार उन परिवर्तनों को प्रस्तुत करते हैं। कवि माघ त्रिशुपास के बच की भूमिका गाँवते हैं। त्रिशुपास जैसे एक बीर पुरुष का बच कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं कर सकता। सृष्टि के व्यवस्थापक और धार्मिक के संस्थापक महान् सचिवासी श्रीकृष्ण ही इस कार्य को सम्पन्न कर सकते थे। श्रीकृष्ण को सीने रूप में यह कह देना कि आप त्रिशुपास का बच कर दीजिये क्योंकि वह उन्मुख है तथा पापी है तो कोई बात नहीं हुई। एक बड़े काम के लिए बड़ी ही धनधारणा चाहिये। कवि इसीलिए नारद द्वारा मूँह-ह-बतार, रामावतार धार्मिक के प्रसंग छेड़ कर श्रीकृष्ण के भ्रमण को उत्पन्न करता है जो त्रिशुपास के बच का सूचक है। यह तो एक छोटा सा परिवर्तन है किन्तु इस परिवर्तन से सारे कथानक को एक मोड़ मिलता है ऐसे मोड़ को श्रीकृष्ण के चरित्र का एक बीरतापूर्ण तथा तेजोमय स्वरूप प्रस्तुत करता है। माघ के श्रीकृष्ण धर्म कवियों के श्रीकृष्ण की भाँति न तो केवल देव ही धीर न जाधूवर ही है। वह तो एक सांसारिक पुरुष की भूमिका में है। नारद की पूर्णता का धामास हमें माघ के श्रीकृष्ण में स्वाम-स्वाम पर मिलता है।

इस का ख़ूबसूरत नारद के आचमन की बात तो महाभारत तथा श्रीमद्भगवत में भी है किन्तु नारद का आकास मार्ग से घाते हुए एक तेजोमय रूप में प्रथम दिखलाई पड़ना फिर धाकाय से नीचे उतरती हुई उस तेजोमयी वस्तु के निकट जाने पर हाव, पैर धारि की बूमती धाकति को देखकर यह पता लगाना कि वह व्यक्ति है फिर धीरे समीप जाने पर स्पष्ट रूप से चिर, हाव और धारि धारों के सूचक-सूचक दिखलाई पड़ने से वह व्यक्ति की मुख्य रूप में धीर धर्म में नारद के रूप में प्रकटि होना धीरे तब उसको ग्रहण करने के लिए उपस्थित जन का महापुरुष कहें हो जाना यह सब महाकवि माघ की सद्भावना धार्मिक का परिचय देता है।

दुबरे तब मैं उद्वेग और बलराम से श्रीकृष्ण सम्मति लेते हैं। इस बात पर कि पहले उनकी राजसूय यज्ञ में जाना चाहिए यवना त्रिशुपास का बच करना चाहिए। महाभारत में इस भाँति की मंजुरा नहीं मिलती। हाँ, भावगत में ही धर्मस्य श्रीकृष्ण ने उद्वेगों से सम्मति चाही है। वहाँ उद्वेगों अपनी सम्मति दे बैठे हैं धीरे श्रीकृष्ण उसे मान लेते हैं। माघ कवि ने इस प्रसंग को एक नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। भारवि के किरात में भी शीघ्र ही धीरे धुमिलिहिर का संवाद ऐसे ही प्रसंग पर हुआ है। उसका एक स्वामाधिक प्रभाव माघ पर है। उन्होंने अपने महाकाव्य में नारद श्रीकृष्ण बलराम उद्वेग का संवाद प्रस्तुत किया है। राजनीति की तुल्य बर्षा यहाँ हुई है। राजनीति की बर्षा में मुख धीरे रामा इन दो पलों पर प्रायः सभी कार्यों में विचार हुआ है। मध्ययुग में चलती भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँट हुआ था धीरे युद्ध के प्रसंग प्रायः घाते ही रहते थे। सम्भवतः इस समयान्तिक परिस्थिति से प्रभावित होकर भी माघ ने इन प्रसंग को उठाया धीरे प्रसंगीय पति से उसका विकास किया। धर्मने भी यदि इन प्रसंग पर विचार किया जाय तो यह एक पूर्ण प्रसंग के रूप में पाठकों को धारणित कर सकेगा। यह होते हुए भी कि भारवि के राजनीति विषयक संवाद का प्रभाव माघ पर है धीरे इस संवाद की रचना एवम माघ के सतिष्ठ की उन्नत नहीं है माघ का यह संवाद अपने ढंग का है। यह संवाद श्रीकृष्ण के भ्रमण की दृष्टि कदी

कहीं ठीके पर पर घायीन होते । वस्तु, पश्चिम प्रदर्शन करना आवश्यक रूप से अभीष्ट था तथा इस तरह शुक्ति समाप्ता का इष्टीमिष्ट वहाँ पर उनका वैशिष्ट्य (वैशिष्ट्य) दिखलाई पड़ता है वहाँ वहाँ पर वह भारी बँधे कलावादी कवियों से कई गुणा अधिक बढ़ पड़े हैं । माघ में कलात्मक सजावट शब्दों का मन्दार तथा कल्पनाओं की विविधतापूर्ण विपुलता से सब उनके वैशिष्ट्य के वैशिष्ट्य को अभिव्यक्त करते हैं । उनकी उत्तमों में अनुपपन्न है । 'मन कारों को एक सूत्र में रखने की अपूर्व समता है तथा उनकी सीसी में एक अपूर्व संपीठ की कटा है । उनका ध्यान पदा भी अपने ही का है ।

सद्व्यक्तन में वहाँ पर साम्य है वहाँ पर अपने बर्तन वैशिष्ट्य में मात्र भारति से कहीं जाने बढ़ पड़े हैं । गारु भीकृष्ण की छिट्टा घरी बार्ते इसका एक अच्छा प्रमाण है जिसमें भारों की मौलिकता स्पष्ट है । राजनीति की बातों में वहाँ साम्य है वहाँ पर सात्त्विक प्रमाण देकर पश्चिमप्रदर्शन द्वारा अपने भारों को सुब सजाकर रखना वह उनकी विशेषता है । उनकी बर्तन करने की सीसी है जिसमें एक अपूर्व वैशिष्ट्य लाकर रखा है । ब्रुत का बाद-विचार तथा ब्रुत का बर्तन जो कम सुन्दर नहीं है । प्रकृति बर्तन में भी मिलता है । समक बासे प्रकृति बर्तन समकारों से बने हुए जान पड़ते हैं । लड़े धर्म का जो प्रकृति बर्तन है वहाँ समकों के होने पर भी सरलता के कारण सौन्दर्य का बिचाव नहीं हुआ है । उनका भद्र स्तुत विधान सुपठित सुशोभित एवं सुसम्पन्न है ।

विष्णुपासक की कथा-परिवर्तन, उनका वैशिष्ट्य तथा कवि का कौशल—

विष्णुपासक महाकाव्य की कथा-वस्तु यद्यपि महाकवि माघ को महामात्र अपने भीमव्यापक से बनी बनाई मिल गई थी किन्तु उस काव्य में कुछ ऐसे भी स्वतः हैं वहाँ कवि ने कुछ परिवर्तन किये हैं । कवि अपनी मौलिक कलावना बलि अपने महाकाव्यों बंध काव्यों एवं काव्यों के प्रसिद्ध कथानकों को अपने जड़त्व सिद्धि के लिए एक नवीन रूप दे देते हैं ।

कुलवी रामायण और वाल्मीकि-रामायण की मिश्रता स्पष्ट है तथा उत्तररामचरित नाटक को बुझावता से बचाने के लिए महाकवि महाशक्ति ने धन में अपने निजी कौशल से सीता और राम का मिश्र विभागा है । साकुम्भस में दुष्पन्न के चरित की रत्ना के लिए दुर्वापा के धाप की भी कल्पना करनी पड़ी । इसी तरह विष्णुपासक महाकाव्य के कथानक में भी महाकवि माघ ने कुछ परिवर्तन किये हैं । इस भाँति के परिवर्तनों से कथानक मूल रूप से मिस सर्वथा एक नूतन रूप कारण न करके ऐतिहासिक और पौराणिक सच में कहीं कम न था बाव इसका ध्यान कवियों को रखना पड़ता है । महाकवि माघ इस धोर भी सच हैं । विष्णुपासक की कथा में एक दो बड़े परिवर्तनों के अविरत छोटे-छोटे परिवर्तन भी हैं क्योंकि उनका काव्य लिखने का उद्देश्य न केवल विष्णुपासक का ही नभ है अपितु यद्य प्राप्ति पूर्वक हरि (भीकृष्ण) गुणापास (परिवर्तन) करना भी है ।

१ माघ १, ४८ तथा ११ ४९ और किरात ४ ११ को देखिये ।

यह हम क्रमानुसार उन परिवर्तनों को प्रस्तुत करते हैं। कवि माघ विजुपास के बच की भूमिका बताते हैं। विजुपास जैसे एक बीर पुरुष का बच कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं कर सकता। सृष्टि के व्यवस्थापक और शक्ति के संस्थापक महामु सतिष्ठासी श्रीकृष्ण ही इस कार्य को सम्पन्न कर सकते थे। श्रीकृष्ण को चीने रूप में यह कह देना कि माघ विजुपास का बच कर दीजिये क्योंकि वह उन्मुख है तथा पापी है तो कोई बात नहीं हुई। एक बड़े काम के लिए बड़ी ही धनधारणा चाहिये। कवि इसीलिए नारद ऋषिहा वठार, रामावठार आदि के प्रसंग छेड़ कर श्रीकृष्ण के भ्रमण को उत्पन्न करता है जो विजुपास के बच का सूचक है। यह तो एक छोटा सा परिवर्तन है किन्तु इस परिवर्तन से सारे कथानक को एक मोड़ मिलाता है ऐसे मोड़ को श्रीकृष्ण के चरित्र का एक बीरतापूर्ण तथा ऐश्वर्यपूर्ण स्वरूप प्रस्तुत करता है। माघ के श्रीकृष्ण धन्य कवियों के श्रीकृष्ण की भाँति न तो केवल देव ही और न मानव ही हैं। वह तो एक सांसारिक पुरुष की भूमिका में हैं। नारद की पूर्णता का आभास हमें माघ के श्रीकृष्ण में स्वान-स्वान पर मिलता है।

इस का सम्यक् लेकर नारद के आचमन की बात तो महामारुत तथा श्रीमद्भाष्यव में भी है किन्तु नारद का आकाश माघ से घाते हुए एक ऐश्वर्यपूर्ण रूप में प्रथम दिखलाई पड़ना फिर आकाश से नीचे उतरती हुई उस ऐश्वर्यपूर्ण रूप के निकट घाते पर हाथ पँर आदि की बुझती आकृति को देखकर यह पता लगाना कि वह व्यक्ति है फिर और समीप घाते पर स्पष्ट रूप से घिर, हाथ पँर आदि धर्मों के पुरुष-पुरुष दिखलाई पड़ने से उस व्यक्ति को पुरुष रूप में और अन्त में नारद के रूप में धन्यवि होना और तब उनको प्रणाम करने के लिए उपस्थित जन का महापूर्वक लड़े हो जाना वह सब महाकवि माघ की उत्कृष्टता का परिचय देता है।

द्वारे सर्व में उदय और बसराम से श्रीकृष्ण सम्मति लेते हैं इस बात पर कि पहले उनको राजसूय यज्ञ में जाना चाहिए यमना विजुपास का बच करना चाहिए। महामारुत में इस भाँति की संवला नहीं मिलती। हाँ भावगत में ही धन्य श्रीकृष्ण ने उदयनी से सम्मति ली है। वहाँ उदयनी अपनी सम्मति दे देते हैं और श्रीकृष्ण उसे मान लेते हैं। माघ कवि ने इस प्रसंग को एक माटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। भारवि के चित्र में भी शी-शी, श्रीम और मुनिष्ठिर का संवाद ऐसे ही प्रसंग पर हुआ है। उसका एक स्वानादिक प्रसंग माघ पर है। उन्होंने अपने महाकाव्य में नारद श्रीकृष्ण बसराम उदय का संवाद प्रस्तुत किया है। राजनीति की सुन्दर कथा यहाँ हुई है। राजनीति की कथा में मुट्ट की-मुट्ट की-मुट्ट की पत्तों पर प्राय सभी कालों में बिचार हुआ है। मध्ययुग में उदय माघ से-मुट्ट की-मुट्ट की-मुट्ट की से बँटा हुआ था और मुट्ट के प्रसंग प्राय घाते ही रहते थे। सम्भवतः इस सम्मति-सम्मति-सम्मति विधि से प्रभावित होकर भी माघ ने इस प्रसंग को उदाया और प्रस्तुत किया है। यकैसे भी यदि हम प्रसंग पर बिचार किया जाय तो यह प्रसंग के रूप में वाद्यों को आकर्षित कर लेता है। यह हाथ हुआ भी कि प्रसंग के-प्रसंग के-प्रसंग के संवाद का प्रभाव माघ पर है और इस संवाद की रचना प्रसंग के-प्रसंग के-प्रसंग के नहीं है माघ का यह संवाद अपने ढंग का है। यह प्रसंग के-प्रसंग के-प्रसंग के

है। एक कठिनासी कड़ी। धाने का सारा कमानक इस संवाद से बल पाता है और उसमें कहीं भी बीजापन या सदोपचा नहीं धाने पाती।

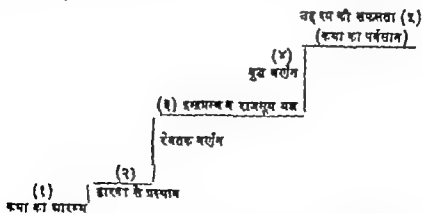
इस संवाद से जहाँ कमानक को पुष्टि मिलती है वहीं कवि की राजनीति के विषय में कवि का परिचय भी मिलता है। उसके व्यक्तित्व जीवन पर समसामयिक राजनीति का प्रभाव व्यक्त होता है। जैसा बहुमतता वाले प्रसंग में व्यक्त किया गया है इसको पढ़ने से मान के राजनीति विषयक पाठ्य का पूरा परिचय मिस जाता है। विद्युत्पातनक पर लिखने वाले दूसरे प्रत्यकारों ने इस तरह की राजनीतिक जर्ना प्रस्तुत नहीं की है।

दूसरे सर्व के परभाव धर्मवान तक कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता। मुक्ति-जीति के हस्तुक्त माध अपने सर्वों में काव्य सम्बन्धी बातों को लिखकर माने दूसरे बड़े कवि धाने वाले कवियों को परास्त करने के प्रयत्न में हैं। महाकाव्य के सखाओं का अधिकार निवाह इन्हीं सर्वों पर अवलंबित है। इस भाँति देखने से तो रैवतक बर्लान से कोई बड़ा परिवर्तन हो रहा है ऐसा दिखलाई नहीं पड़ता बल्कि कुछ लोगों को यह धनावश्यकता विस्तार की प्रतीति हो सकता है। किन्तु यदि सूर्य रूप से देखें तो पता चलता कि सेना को इस भाँति घिरि के रूप में रैवतक पर्वत पर धान्य विचार के लिए रचना जिससे बर बहस्वी की निता से मुक्त हो जायें तथा सरीर न मन से स्वत्व होकर हस्तप्रसन्न बर्लान पर विद्युत्पात निराकुल उत्साह के बिना संभव नहीं है। धान भी सामरिक प्रशिक्षण तथा सामरिक सज्ज के लिए सैनिकों के मनोबिभोष का ध्यान रखा जाता है ऐसे मनोबलानिक बल किन्ने बाते हैं जिनसे सैनिक अपने बरवार सब को घुल जाय और सेनापति की धावाज ही उनके लिए सबसे बड़ी धावाज बन जाये। इसे परिवर्तन न कहकर परिवर्तन कहना अधिक समीचीन होगा। यह परिवर्तन जहाँ महाकाव्य की इस धावस्वकता को पूरी करता है वहीं एक रुप निवेद्य की सामाजिक चेतना को भी अभिव्यक्त करता है।

धाने वर के सभी बर्लान धाते हैं। धर्म का अधिकारी कौन ? इस प्रश्न को लेकर कवि ने एक परिवर्तन प्रस्तुत किया है। वह विद्युत्पातनक काव्य का हृदय बड़ा परिवर्तन है। इससे काव्य निबद्ध सा उठा है। मानवत पुराण महामाया और भित्ति की धर्म धर्मों में विद्युत्पातनक के सम्बन्ध में कुछ लिखा गया है उन सब में धर्म के परभाव की कल्पना की प्रविष्टा को न सह सकने वाले विद्युत्पात के द्वारा वातिर्षा दिसलाई हैं, क्योंकि बरवान था कि १०० परराज तक तो कीर्तुष्ण समा कर लेने किन्तु धाने बड़ जाने पर उसका कीर्तुष्ण के हाथों बच हो जायगा। धान सब ही प्रत्यकारों ने इस बात का अनुकरण किया है पर महा-कवि माध ने यहाँ विश्व नीतिक परिवर्तन को दिया है वह उन्हें धर्म प्रत्यकारों से कहीं ऊँचा उठा देता है। मानी देते हुए धार देना एक जयत्कार जैसा लगता है। क्या विद्युत्पात नीर न था ? क्या उसने हाथों से कुट्टिका पहिन रखी थी ? क्या वह अभिन न था जो कुछ न करता ? योश्वी पुष्प अपने पुष्पों के प्रति अपने से अधिक क्रिये नये उत्कार को सहन नहीं करते। कीर्तुष्ण को धर्म दिया जाय और विद्युत्पात को अपने को इन्हीं के समान पति-गानी तथा नीर समझता हो वह बँस ही चुपचाप बैठा बैठा देखता रहे ? माध ने अपने पूर्व

के प्रत्यक्षकारों की इस कमी को समझा और राजसूय यज्ञ की निविन्धन समाप्ति पर फिर पुत्र के लिए एक भूमिका खींच ली। अर्घ्य के प्रदान पर भयङ्क बँटना समा की छोड़कर अपने सिविर में बसे जाना, वही विमल उतिर्मों से सेना को समझाना, युद्ध को भेजकर भीकपण को युद्ध के लिए उत्तेजित करना फिर युद्ध में पराजयी भीकपण के पास को यह कहकर म्याय मुक्तता देना कि वह राजमनों की रक्षा के लिए पुष्टों का समन करते हैं राजमनों के प्रति धारमीयता यह सब उसी भूमिका का विस्तार है। भागे लड़ते-लड़ते सिधुपाल जब भीकपण को धरनों से वरजित नहीं कर सका तो फिर नातिमों सेने लगता है। १०० नातिमों की समाप्ति पर भीकपण अपने अपराधी राजू सिधुपाल का वध करते हैं। इस परिवर्तन से वन रूप कार्य का सुन्दर समाधान हो गया है।

वह दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि सिधुपालवध काव्य इन परिवर्तनों से एक सफल महाकाव्य बन गया है। प्रथम द्वितीय तृतीय तथा चतुर्थ सर्ग तक कथा का आनन्द आता है किन्तु आगे चलकर जब रैवतक पर्वत का वर्णन आता है तब ऐसा प्रतीत होने लगता है मानों कवि उसी के वर्णन में इतना रत हो गया कि उसे कथानसु के विकास का ध्यान ही नहीं रहा। पर ऐसा समझना ठीक नहीं है। रैवतक पर्वत का वर्णन अपने आप में एक पठनीय वस्तु है इतना ही नहीं कथानक प्रसार में भी उसका योग है। रैवतक पर्वत का वर्णन कथानक को वही पर भेकर तो नहीं बँध गया है। धनुष्य के मुख भाग के पश्चात् त्वर भाग आता है जो बड़ा होता है और कुछ लम्बा होता है और जिसके अस्तित्व से बाहरी की स्तिर बीवनी घटि बनी रहती है। वही अवस्था सिधुपालवध में रैवतक वर्णन की है। उसमें रैवतक की घोट में उस लाली काठों का वर्णन है जिनसे (लसखों के अनुसार) वह महाकाव्य कहता सका है। रैवतक-वर्णन के बाद कवि किसी ही इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर राजसूय यज्ञ का वर्णन कर देता है। इस बीच कोई ऐसी बात उसे नहीं भगती जिसका वह विस्तार के साथ वर्णन कर सके। भागे युद्ध का वर्णन आ जाता है। तारे कथानक को नीचे दिये प्राफ से समझ आ सकता है—



इन रेखांकन (प्राफ) से बता चलता है कि कथावस्तु क आरम्भ और पर्वदान के बीच तीन चीजों का वर्णन आया है रैवतक का उसके बाद इन्द्रप्रस्थ में होने वाले राजसूय

यह का धीर फिर कुछ का । इसमें प्रस्तावना उसका समाधान, तबनुकूल कार्य तथा उद्देश्य की प्राप्ति में पाँचों बातें आ गयी हैं । इससे महाकाम्य को सम्पूर्णता मिल गयी है । काम्योचित धीरत्व का—कल्पना धीर धनुषप्रति इन दोनों के समय का पर्याप्त माप में नहीं निर्वाह हुआ है । कथावस्तु के विभिन्न अंशों का यह तब उसमें हो चुका है । महाँ पर उसको एक क्रम से रसकर इस प्रकार की समाप्ति कर दी जायेगी । काम्य का धारम्भ नाटकीय रूप से हुआ है । एक धारवर्चस्वक रीति से नारद इन्द्र का सर्वेष्ट लेकर धाते हैं । वह वह समेत है । एक धीर राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण तो दूसरी धीर शिशुपाल के वन की धार स्मरणा सामने है । किस काम को पहले किया जाय धीर किस काम को पीछे ? कवि ने अपने कीधस से उसे एक कठिन समस्या बना दिया है । उस पर विचार समान बैठता है । दूसरे सर्व में बलराम धीर छत्र के बिचारों को भीकृष्ण सुनते हैं धीर इस निश्चय पर धाते हैं कि राजसूय यज्ञ के लिए प्रस्ताव करना चाहिए । वहीं पर शिशुपाल के वन का धारसर आ जायगा । काम्यपूर्वक काम करना है । एक महागोत्रा का वन करना केल तो नहीं है । उसके पक्ष में भी कितने ही उपाय हैं जो भीकृष्ण की सेना से लोहा ले सकते हैं । भाववत्कार, महामातृकार धनका धन्य धन्यकारों की भांति कवि माव इस बात को सामकारिक धनका बीबी घटना के रूप में दिखाना नहीं चाहते वह इसे मानवीय रूप में ही घटित करना चाहते हैं । कुछ के लिए भीकृष्ण अपनेसे नहीं बल पहले उनके साथ सेना है जिसमें हानी भोड़े और धारि बाह्य सैनिक उनके मनोविनोद के लिए सुन्दरियाँ तथा सुष्ठु धारि सभी धारस्वक बस्तुएँ हैं । सेना हारका से इन्द्रप्रसन्न के लिए प्रस्ताव कर रही है । जैसे मार्ग में हस्ती की सीमा नहीं । घट उन हस्ती में से कुछ इत्य कवि ने ऐसे चुने हैं जिससे पाठकों की उत्सुकता बनी रहे । रैवतक के वर्णन में कवि की उद्गम मुक्त-वृत्तियों का विलास है । रैवतक की उपलब्धा में धार बायी सैनिकों के आमोद-अमोद की बर्षा एक धारिक धारस्वकता तो है ही इसके साथ ही साथ उसका काम्योचित महत्व है—इसका निर्वहण पहले हो चुका है घट यहाँ विस्तार में जाने की धारस्वकता नहीं । किन्तु कुछ के वर्णन में जबकी परिपक्व बुद्धावस्था का प्रभाव है । उसके लिए भीकृष्ण केवल एक मोड़ा नहीं है । वह तो इस संसार में स्वाय संस्थापन के लिए धनवीर्य एक ईश्वरीय विसृति है । इसीलिए यहाँ कुछ का जो वर्णन हुआ है उसमें एक एक घटकाय की अपने धाराम्य के प्रति धारि का माव अपने सम्पूर्ण अर्थों से मुखरित हुआ है । धर मानो कवि अपने धारको भीकृष्ण के रूप में विलीन करने के लिए धातुन है । धार काम्य में धन में शिशुपाल वन का जो मुख्य उद्देश्य है वह तो पूर्ण हुआ ही है किन्तु धार ही धारका परमारमा में सीग हो जाय इसी में श्रेय है कितना सुन्दर है । इस सबके बीच कवि ने जहाँ भी सम्भव हुआ अपने जीवन की बातों की भी सावधानी से रखा है । कथानक में किसी भांति बरि कहीं चिन्तितता भी धार तो उसकी पूर्ति कवि ने अपने कीधस से यथा स्थापन करदी है । धारम्भ से धनसाग तक अत्युक्ता को किस रूप से धारस्वक रखा गया है वह नीचे के रेखांकन से विशिष्ट हो जायगा ।

					१०वीं सर्ग धनसाग
				१८ १९ सर्ग उत्सुकता	
			१७ सर्ग	१७ १८ सर्ग उत्सुकता	
			१६ सर्ग	१६ १७ सर्ग उत्सुकता	
			१५ सर्ग	१५ १६ सर्ग उत्सुकता	
			१४ सर्ग	१४ १५ सर्ग उत्सुकता	
			१३ सर्ग	१३ १४ सर्ग उत्सुकता	
			१२ सर्ग	१२ १३ सर्ग उत्सुकता	
			११ सर्ग	११ १२ सर्ग उत्सुकता	
			१० सर्ग	१० ११ सर्ग उत्सुकता	
			९ सर्ग	९ १० सर्ग उत्सुकता	
			८ सर्ग	८ ९ सर्ग उत्सुकता	
			७ सर्ग	७ ८ सर्ग उत्सुकता	
			६ सर्ग	६ ७ सर्ग उत्सुकता	
			५ सर्ग	५ ६ सर्ग उत्सुकता	
			४ सर्ग	४ ५ सर्ग उत्सुकता	
			३ सर्ग	३ ४ सर्ग उत्सुकता	
			२ सर्ग	२ ३ सर्ग उत्सुकता	
			१ सर्ग	१ २ सर्ग उत्सुकता	
प्रारंभ	१	२	३	४	५

उत्सुकता को बढ़ाये रखने के लिए बीच-बीच प्रस्तुत किये गये कथोपकथन, परिचयिण वर्णन वगैरह जिसमें भाषा, सुभाषितियाँ और वर्णन हैं भाषा का समावेश है। भाषा की इसी प्रशंसा में इन चीजों की जहाँ विस्तृत रूप से की जायगी।

भाषा की कथावस्तु के सम्बन्ध में संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि ने एक छोटी घटना को लेकर उसके चहारे अपनी यह रचना की है। इस घटना को चुनने के दो प्रयोजन हैं—एक तो यह कि उसके चहारे उन सारी बातों को प्रस्तुत किया जा सकता है जो उस समय तक स्वीकृत तथ्यों के अनुसार इस रचना को महाकाव्य का रूप दे सकती थी, और दूसरे यह कि सीक्रेण्ट के जीवन की यह घटना है इसके द्वारा कवि अपनी भक्ति का प्रकाश कर सकता था। कहना न हाया कि दोनों ही प्रयोजन इस छोटी-सी कथावस्तु से ध्वनिपूर्ण रूप में सिद्ध हुए हैं।

माधे काव्य के प्रमुख संवाद

काव्यों में संवाद एक नाटकीय तत्व है। संवाद^१ (१) कथावस्तु का विकास करते हुए सबसे (२) संघर्षता का समावेश करते हैं और (३) पात्रों के मनोवैधों और विचारों को प्रत्यक्ष कर उनके चरित्र-विशेष में सहायक होते हैं। इन्हीं के द्वारा पाठक पात्रों के साथ सावात्म्य का अनुभव करते हैं। जिन काव्यों में संवादों की सुधीयता होती है उनसे पाठक एक नाटकीय ध्यान-सा अनुभव करते हैं। यान् यो धातोचक संवादों को काव्य का एक महत्वपूर्ण धन मानने लगे हैं। कभी-कभी तो उन्हें काव्य की धात्वा भी कह दिया जाता है।

सिधुपालक में विशेष ध्यान देने योग्य दो संवाद हैं—

(१) श्रीकृष्ण और नारद संवाद प्रथम सर्ग में आया है। (२) सिधुपाल के दूत और सात्विक का संवाद सोलहवें सर्ग में है। इन संवादों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण बजराम और जड़न के भाषण द्वितीय सर्ग में तथा अर्जुन के समय श्रीकृष्ण की पुत्रा के लिए प्रविष्टिरी काव्य तथा सिधुपाल के आवाज हैं।

(१) श्रीकृष्ण और नारद संवाद—यह संवाद माधे कवि की अपनी श्रुति है। इस संवाद से कवि की प्रथम योजना-शक्ति का परिचय मिलता है।

महाकाव्य का नाम सिधुपालक है। सिधुपाल का क्या क्यों? किन्तु के द्वारा? यही क्या धारम्भ का सूत्र है। कवि ने इन दोनों प्रश्नों का समाधान नारद-श्रीकृष्ण के संवाद के रूप में किया है। प्रवा सिधुपाल के आस्थाधारों से यदि कुछी थी। सारे देवता तथा उनका प्रतिपति इन्हीं तक बसते आसक्ति थे। इस संवाद के द्वारा महर्षि नारद ने प्रवा की श्रुति केवला का आवास करने श्रीकृष्ण को उनके अशरीर होने के अवोदन का स्मरण करवाया है। बात ही बात में एक बड़े काम की व्यवस्था हो गयी है। महाकाव्य का कथानक बन गया है।

जैसे ही नारद का आग्रह होता है श्रीकृष्ण अपने स्वाम से उठ जाते हैं। महर्षि के निष्ठ धाने पर प्रत्यक्ष पूर्वक आसन धारि देते हैं। जब दोनों का संवाद प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण मधुरता के साथ बोले मैं आपके बर्तनों को प्राप्त कर भाव्यापानी हुआ हूँ।^२ विरक्त पुरुषों को कथपि संसार से कोई अवोदन नहीं रहता फिर भी आपका जो बह पदार्थ

१ भाष १ १६ १ २२।

२ भाष १ ६५

हुमा है सबसे मेरे मन में स्वतः यह प्रश्न उपस्थित हो रहा है कि क्या कारण है जो पाप मेरे यहाँ पकारे है। इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं—

पापको यह नहीं कहना चाहिए कि मैं संसार से विरक्त हूँ फिर भी यहाँ पर कैंस आया। विरक्तों को भी तो यहाँ आना पड़ता ही है क्योंकि योगियों के भी तो पाप ही व्येय है। इस तरह संशेप में बड़ी सुन्दरता से महर्षि ने बता दिया कि श्रीकृष्ण भवतारों पुरुष है, वह धन्तर्यामी है मत उनको कार्य अकार्य सब निश्चित है। महर्षि तो मानो अर्जुन की प्रेरणा से किसी आने वाली घटना के लिए निमित्त बनने वाले आये हैं। इतना कहने के बाद वह बड़ा भवतार का प्रत्यक्ष सेहते हैं जिससे युग-युगों से चलने वाली उनकी उद्धारकारी भावना को उभार चिन्ते। इसके आगे उन्होंने संकेत दिया कि बाल्यकाल से श्रीकृष्ण मोक्ष-कल्याणकारी भावना से संतुष्टि हुएों के नाथक हैं। इसके बाद धीरे धीरे श्रीकृष्ण के भीरु कृत्यों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—मैं एक बात पापको एकान्त में कहने के लिए आया हूँ और यही मेरे आने का प्रयोजन है। वह बात क्या हो सकती है—बड़ी सम्झी बात है वह ऐसी बात जिसका जन्म-जन्मान्तरों से सम्बन्ध है जिसको मारक जैसे महर्षि ही बताते के अधिकारी भी हैं। नाथ सबसे प्रथम हिरण्यकशिपु के दुर्व्यवहार का जिन उपस्थित करते हैं। फिर नृसिंह कर्म में उनके हाथ नहीं से विहीन किये जाने की बात कहते हैं। फिर रावण के दुर्व्यवहार का बर्णन करते हुए उनको अपने रामावतार की स्मृति दिलाते हैं इस भाँति श्रीकृष्ण के पूरे जन्मों में वे कौन से और किस भाँति जब-जब भी लोक में दुर्व्यवस्था अथवा अनाति अचर्म अन्धकार फैला उसी समय उनका नाथ करने के लिए कौन-कौन-सा भवतार उन्हीं लिये यह बताते हुए विष्णुनाम के जन्म की घटना की याद दिलाते हुए श्रीकृष्ण का पावदपक कर्तव्य कहा है। दूसरी ओर उन्होंने संकेत दिया है कि पापक सिवाय और किसी से यह मरने का नहीं है। पाप ही इसका संहार करेगा। अतः पाप इस पापी को लोक कल्याण के लिए मार दीविए जिससे प्रजा सुखी हो तथा सुव्यवस्था बने। इस नदिस को सुनते ही श्रीकृष्ण का भ्रूणन हुआ।

सन्देश वे ही शब्दों आने जाते हैं। जिनमें किसी उत्कर्ष के लिए बलवती प्रेरणा हो। सन्देश भेजने वाला व्यक्ति उसका अधिकारी हो और पाने वाला व्यक्ति बल कर्म को मपन्न करने के लिए उत्पन्न हो। संदेशवाहक रूप की प्रेरणा उत्पन्न करने की कला में कूटज्ञ हो। इन संवाद का प्रयोजन एक लोक हितकारी कर्म है ऐसा कर्म जिसके लिए ईश्वरचैय विभूतियाँ इस संसार में प्राप्ती हैं। सन्देश भेजने वाला धार्मिक-मार्ग का अधिकृत प्रतिनिधि है, सन्देश पाने वाले श्रीकृष्ण उस काम को कर सकते हैं। मारक के दोष में किसी पंथा को अक्षय्य नहीं। इस तरह सभी दृष्टियों से यह संदेश प्रशंसनीय है।

दूत-सात्त्विक-संवाद

दूतपत्र संवाद है श्रीकृष्ण के माध विष्णुनाम के दूत का संवाद। जब विष्णुनाम उस तरी आया से उत्तर लोक में कुछ बहुबलाता का अपने गिरि में आकर मुख धोयला करता

है और सेना सभ्य होती है। सभी वह अपने एक निपुण दूत को सभा में श्रीकृष्ण के पास भेजता है। दूत वहाँ पहुँचकर दो सर्वोपार्थी (प्रिय और अग्रिम) भाषा में समेष कहता है। १४ श्लोकों में वह ऐसी बातें कहता है जो सीखने में तो स्तुतिपरक थीं किन्तु बहुराई से धोचने पर निम्न से व्याप्त थीं। साम्यिक ने उस प्रिय सभने जहाँ समेष के विषय का अनुमन किया और ६ श्लोकों में (१६-२१) उसने उसका उत्तर दिया। प्रथम तीन श्लोकों में (१४वाँ सर्व का १७ १८ व १९) तो दूत की भर्त्सना की तत्पश्चात् एक-बात को धोतकर उत्तरें करता उत्तर दिया। साम्यिक की मर्मभरी बातों को चुनकर वह दूत फिर निर्भय होकर बोला—जो कुछ मैंने कहा वह सब भले के लिए कहा है और श्री सर्वोपार्थी में उचित विग्रह दोनों की बातें हैं। इनमें से जो बात आपको अधिकतर हो बड़ी करें। किन्तु आप हमारे उप देशों पर ध्यान ही क्यों देने लगे ? जो ही अपराध की बात आपसे कही गई है उसका भी उत्तर सिन्धुपात ने एक ही सभा में ब्रह्मली-दूरस्थ के समय दे दिया है। यह प्रत्युत्तर भी बड़ा सरल है। इस संवाद में अन्तिम और विग्रह के विषय का अनुष्ठे पर काम्योचित ढंग से प्रतिपादन है। दूत विद्वान् और विरचय स्वर्णि है और अपने स्वामी की प्रतिष्ठा बनाये रखने में प्रयत्नशील है। यह संवाद भी अपने ढंग का एक है।

कृष्ण मुचिष्ठिर संवाद—

इन दो संवादों के अतिरिक्त भाग में और भी संवाद हैं उनका भी यहाँ वर्णन करना समीचीन है।

इन्द्रप्रस्थ में सब परिणामों से मिल लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण और मुचिष्ठिर में परस्पर बातें हुई हैं। मुचिष्ठिर ने कहा—यह ठीक है कि आप बाहुकापी की बातों से स्वयं मज्जित हो जाते हैं चाहे प्रसक्त मज्जित न हा किन्तु आपके लिए ही कोई भी स्तुतिमयन सूटा नहीं हो सकता। मैं आपके लिए प्रसंसा की बहुत सी बातें कहे हुए भी मिथ्यावादी नहीं हो रहा हूँ क्योंकि आप तो सारे अवयवों से रहित हैं। आप ही से सब भक्ति के गुणों की सम्पदा उत्पन्न होती है। मैं यज्ञ करना चाहता हूँ उसके लिए आपकी आज्ञा का इच्छुक हूँ। अब आपके समीप होने से यह मेरा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जायगा। पूर्व के समीप होने पर विन की छाया को कील दूर कर सकता है। अपना आप ही हवन कीजिये। सोमशान का आपके यज्ञ की समाप्ति होने पर समग्रुत स्नान कर लेने के पश्चात् मैं अपना उत्तम राजसूय यज्ञ की समाप्ति करूँगा। इस यज्ञ का और उपयोग भी क्या हो सकता है। इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि आप सब प्रकार से योग्य हैं अतः राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान भी आप कर सकते हैं। मैं तो आपके पुनः आदेशों का पालन करता रहूँगा। धार्मिक यज्ञ में विघ्न बाधा की बात ही नहीं करते हैं। जो राजा इस यज्ञ में भूत के मुख्य कार्य नहीं करेगा उसके शरीर को यह वेद जल धार से विहीन कर देगा।

महाश्वि आप जैसे यज्ञ संवादों में सहज हुए हैं इसी भाँति इस कृष्ण मुचिष्ठिर संवाद में भी उनको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। ऐसे संवादों की बहना पारिवारिक संवादों में की

जाती है। यहाँ श्रीकृष्ण अपने स्वभाव को छोड़ कर युधिष्ठिर के परिवार के एक छोटे व्यक्ति के रूप में सामने आये हैं। युधिष्ठिर का कोई भी काम हो छोटा या बड़ा वे भृत्य की तरह उस करेंगे। अपने महान् व्यक्तित्व को भूलकर। साथ ही वह युधिष्ठिर को निर्भय होकर मश करने की बात भी कह देते हैं। उनके मन में बाधा पहुँचाने वाला भीति नहीं रह सकता। इस संवाद में भारतीय पारिवारिक जीवन का एक उत्तम स्वरूप प्रस्तुत हुआ है।

शिषुपाल और भीष्म संवाद

संवाद की दृष्टि से तो असफल ही कहा जायेगा क्योंकि इससे न तो क्या ही आगे बढ़ती हुई सी प्रतीत हो रही है और न रागात्मकता ही इस संवाद में आने पाई है। शिषुपाल कोई उत्तर प्रत्युत्तर नहीं कर रहा है वह तो कोप में आसक्त हुआ होकर शास्त्रगुरु भीष्म श्रीकृष्ण युधिष्ठिर आदि को बुरा भना कह रहा है। उसका उत्तर किसी ने न दिया। हाँ भीष्म से श्रीकृष्ण की निन्दा सहन न हुई। तब भीष्म ने उत्तर में कुछ कहा। इसमें संवादत्मकता नहीं है, फिर भी संवाद जैसा रूप इसका है।

इस तरह शिषुपाल वचन के उपरिभिन्न छीनों संवाद मचीब देने हैं और कवि के प्रवृत्तम नित्य की अभिव्यक्ति करते हैं। इन संवादों से वक्तव्यों व चरित्र पर प्रकाश पड़ता है और उनको कर्म व्यापृत होने के लिए प्रेरणा मिलती है।



उद्धव और युधिष्ठिर के बसन्त की तुलना

तथा

अम्य पार्श्वों का चरित्र चित्रण

द्विस्त में युधिष्ठिर—युधिष्ठिर का चरित्र उनके संभावण से किराठार्जनीय के तृतीय सर्व में प्रस्तुतित हुआ है। वह सत्य प्रतिज्ञा समाधीन तथा सत्यवादी है। द्रौपदी और भीम के उत्तेजक वापलों से भी उनका हृदय जुझ नहीं हुआ। वे कितने ईर्ष्याहीन हैं? बहुत ही स्थिर भावा में अपने भाई भीम को समझाते हैं। यद्यपि तुमने अभी अति निर्णय किया है फिर भी मेरे हृदय को सतोष नहीं हुआ है। कलक (संवि-विचारादि) का विवेकपूर्ण समतया नहीं जाना जा सकता। मनुष्य को एका-एक कार्य नहीं करना चाहिए। अविशेष आपत्तियों का परम स्वाम है। विचार कर कार्य करने वाले की सेवा संपत्तियों स्वयं करती हैं। शास्त्र का अनुवीक्षण मानव को सुपित करता है। शांति उसका धामपुत्र है। शांति का पूरक पराक्रम है। उसका प्रयोग नीति-संपादित सिद्धि ही है। व्यापार की प्रवृत्ति में व्यापकित बहुत कर्तव्य पथ पर प्रवीण की अति विवेकियों द्वारा अनुवीक्षित शास्त्र ही प्रवृत्त शास्त्र है। प्रवृत्तनीय पुत्र वाले महात्माओं के अति पर को अपने हैं उन पर ईश्वरी मनन की पक्ष तो वह उत्तम के समान ही है। जीतने की इच्छा रखने वाला राजा पहले क्रोध पीत बैठा है फिर महत्वपूर्ण फल सिद्धि की (जिसका उत्तरकाश में नाश न हो) तब कर तथा के पराक्रम का उपयोग करते हैं। राजा के समान समुद्रों का नाश करने वाला और कोई शास्त्र नहीं। शास्त्री शास्त्र भविष्य को समाने वाला तथा अधिक कर्मफलों का करण है। अभी अपेक्षा करने पर भी दुर्बोध समुद्रों राजाओं को कभी बच में नहीं कर सकेंगे। बादव सोम इन सोमों के स्वाभाविक स्नेह से बंध हुए हैं। उनका व्यवहार हम लोगों से वैसा है वैसा दुर्बोध से नहीं है। बादवों में संबंधी (भाई बन्धु मामा आदि) और मित्र जो दुर्बोध के पीछे हैं वे स्वयं बस आश्चर्य दुर्बोध को मान रहे हैं। समय पड़ने पर हम लोगों से पिन बाँधेंगे। दुर्बोध मग से सख्त है। वह राजाओं का अपमान किये बिना नहीं रह सकता। अपमानित राजाओं में श्रेयनीति को कार्य कर दिखावही वह सविष्य ही बतावेगा। शास्त्राण पुरव ही जब अपना अपमान नहीं सह सकता तो सोकोत्तर तैजसासा राजवंशल उसे जैसे सह सकता है। समाप्त आदि में जोड़ा भी भेद राजा का नाश कर शास्त्र है। नृपों की शक्तियों और रपड़ से उत्पन्न प्राप्त सम्पूर्ण पर्वत को जमा शास्त्री है। इस नीति के भावस से युधिष्ठिर के ईर्ष्य शक्तिता आदि पुण्य प्रकट होते हैं। वे गुण शांति तथा समा के दीपक हैं। राजनीति का भी इनको अच्छा परिचय है। नीति के शास्त्र के सम्मुख अनीतिमय जीवन को यह तुल्य समझते हैं।

माघ में उद्धव—उद्धव का चरित्र उद्धव के संवाद में 'सिमुपास बच' के द्वितीय सर्व

में प्रस्तुति हुआ है। वे वर्षहीन गरीब तथ्यवस्था एवं कुशल राजनीतिज्ञ हैं। कृष्ण के सम्मुख विमुक्तता पर प्रथम प्रतिक्रिया करना चाहिए इस बात का जिन जिन मुक्तिपथों का माध्यम लेकर बलराम ने कहा उन सबका संकलन उद्धव ने बड़ी योग्यता से किया था। उन्होंने 'मुक्ततापाणिना' शब्द का प्रयोग करके एक धीरे धीरे को ध्वनि में ही समझा दिया कि बलराम केवल धुरधीर हैं राजनीति से इनका कोई सम्बन्ध नहीं तथा दूसरी ओर मोटी बुद्धि वाले बलराम को यह बता दिया कि उन्होंने सब कुछ कह दिया है। इन्हीं बातों को कहना ऐसा ही प्रतीत हो रहा है जैसे एक द्वारा प्रमाणित बात हो जाने पर उसी को मौलिक संदेश के रूप में कहना। इससे उद्धव की धिष्टता पूर्ण भक्तता टपक रही है। बल एकाधिक होने और इन्हीं बातों से उद्धव बलते हैं जिनसे पूजा हुआ यह सम्बन्ध किन्ना विचित्र होता है। स्वर धात ही होते हैं किन्तु उनसे किन्ती राय रायिनियों की उत्पत्ति हो जाती है। यह तो अपनी प्रतीति है। संगत और अलगवत सभी बातें उससे कहो या सच्यो हैं किन्तु मुख्य प्रयोजन से सबक न छोड़ने वाला प्रबन्ध कठिनाई से ही उपस्थित किया जा सकता है यद्यपि कुशल वक्ता को चाहिए कि सत्यता मुक्त पक्षों से मुक्त होते हुए भी धर्म से भरी हुई घनेक मुक्तों से मुक्त पक्षों वाली वाली का प्रसार करे। यहाँ उद्धव ने बलराम की प्रशंसा भी कर दी और निम्ना भी। इससे उद्धव की वाक्पटुता प्रकट होती है। युक्तिपर ऐसे वाक्पटु नहीं हैं। श्रीकृष्ण से उद्धव कहते हैं—'याव नैति-सात्त्व के परम विद्वान् हैं यावके सम्मुख जो मैं नीति-सात्त्व की यह कथा कर रहा हूँ वह तो केवल मेरे धर्मार्थ के लिए ही है। मेरी इसमें कोई विशेषता नहीं है। इससे उद्धव की निरभिमानीता टपकती है। साथ ही इस कथन में धिष्टता एवं सम्पत्ता की भी परकाया है। उनको कहने की रीति पार है। इसी नीति बलराम की वाली की प्रशंसा और निम्ना धर्म स्थानों पर भी भक्तव्रती है'। उद्धव न केवल वाक्पटु, मधुरभाषी एवं निरभिमानी ही हैं किन्तु उनकी नीतिज्ञता भी प्रसिद्ध है। वे नीति शास्त्र के एक माने हुए आचार्य हैं। उन्होंने जो नीति की बातें बताई हैं वे कोटिस्त कामन्दक और मुक्त धादि नीति शास्त्र के आचार्यों को माध्य हैं। युक्तिपर वे जो कुछ कहा है वह नीति सम्मत होत हुए भी एक सरल माम न अधिक शब्द-स्वभावी व्यक्ति का सा कथन है। इनमें नीति पटुता की गहृता का प्राम प्रभाव है। विद्वान् नीति तथा विमुक्तता रूप से कुछ उद्धरण दिये जाते हैं। जिनके दोनों के नीति संबंधी विचारों के लिए जो प्रस्तावना की गयी है उसकी रीतियों की तुलना हो सकेगी।

किराताजु नीय (युक्तिपर)

अपवर्जितविषयमे मुक्तो हृदयप्राहिणि मंगलात्म्यम् ।

विमसा तव विस्तरे गिरा मतिरादय इवामिदम्मत ॥ २ २६ किरात ॥

स्फुटता न पदरपाहता न च न स्फोट-उमप-भीरवम् ।

रविता पृथग्वर्षता गिरा न च सामर्थ्यमपाणि बहसिम् ॥ ३ २७ किरात ॥

उपपत्तिरदाहता बलादमुमानन न चागम-दात ।

इदमोहमोहमाद्य प्रसभं यस्मुपकमेत न ॥ ३ २८ किरात ॥

दिग्गुपाल बध (उद्धव)

संप्रत्यसाग्रतं बन्धुमुक्ते मुमसपाणिना ।

निर्घास्तिर्ष्य लेखन लभूस्त्वा लभुवाविहम् ॥ २ ७० माघ ॥

तथापि मग्मय्यापि ते गुरुरित्यस्ति गौरवम् ।

तत्प्रयोजकस्तु स्वमुपैति मम जल्पत ॥ २ ७१ ॥

बहुवपि स्वेच्छया काम प्रकीर्णमभिधीयते ।

अनुविमृताश्च सम्बन्ध प्रबंधो दुस्साह्यः ॥ २ ७२ माघ ॥

बर्णो कतिपर्यदेव प्रचितस्य स्वर्गरेव ।

अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विविचिता ॥ २ ७३ ॥

अदीपसीमपि घनामनल्पगुणकस्थिताम् ।

प्रसारयन्ति कुदालादिज्वालां भाष पटोमिव ॥ २ ७४ ॥

गुणिष्ठिर और उद्धव दोनों के कहने की रीतियाँ यहाँ हैं। गुणिष्ठिर के कहने में वह माधुर्य और व्यंग नहीं जो उद्धव के कहने में मिलता है। उद्धव बड़े जतुर एवं जानी हैं। उनकी बाणी में सर्वसमीक्षा है। गुणिष्ठिरजी धाम्य प्रकृति के हैं। जोर से परिपूर्ण व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए इसको उन्होंने समझा है और समझ कर प्रथम उसके भाषण की प्रशंसा की है कि यदि तुम्हारी बाणी से तुम्हारे हृदय के भाव स्पष्ट नासून पड़ रहे हैं। तुमने तो सब बातें जोरकर रक्त की। धर्म-वीर्य के पूर्ण तुम्हारे कवन में पुरुषार्थ का प्रदर्शन करने की बात है जो नीति के भी प्रतिकूल है। तुम्हारी बातों को कौन स्वीकार नहीं कर सकता।

जगत्कृत में माघ ने भारवि से नीति चर्चा की कपरेला भी दे देखा प्रतीत होता है, किन्तु उनकी बहस करने की रीती ऐसी थी जिस और विधिष्ट है कि सारी चर्चा एक ही महीन कृति ही जान पड़ती है।

दोनों के मार्गों में साम्य

किराताबु नीय—

दिग्गुमीर्षयिक यरीयसी फलनिष्पत्तिमद्विपितामतिम् ।

विगणय्य भयन्ति पीड्य विविक्तलोचरया विगीयम् ॥ २ ३५ किरात ॥

अपनैयमुदेतुमिच्छता तिमिर रोपमयं मिया पुर ।

अविमिष्ट मिताहृत तमः प्रमया नाधुमताप्युत्थिते ॥ २ ३६ किरात ॥

वसन्तानपि कोपजग्मनस्तमसो नाभिभव रणद्वि य ।

शयपदा इवन्दवी कला सकला हन्ति स राक्षससम्पदः ॥ २ ३७ किरात ॥

शिष्टपास वध—

प्रसोऽज्ञाहावत स्वाभी यतेताघातुमात्मनि ।

सौ हि मूसमुदेप्यन्त्या जिगीपोरात्मसंपद ॥ २ ७६ माघ ॥

सोपाघानो घिय धारा स्वेयसीं सद्वयमि मे ।

तमानिधं निपणास्ते जानते जानु न श्रमम् ॥ २ ७७ माघ ॥

यहाँ भी भाव साम्य है शब्दत्व पर श्रावण के पुर्विष्ठिर जहाँ निर्विकार हृदय से काम करने की बात उनकी प्रकृति के अनुकूल सरभता से कहते हैं वहाँ भाव के सङ्ग किमी भी काम के लिए प्रसा और उत्साह दोनों की आवश्यकता बताते हैं । केवल उत्साह से काम नहीं चलता प्रसा और उत्साह दोनों चाहिए । इसी बात को उन्होंने एक रूपक बाँधकर पुष्ट कर दिया है ।

मागवत और भाव के सङ्ग—

मागवत में सङ्ग भीकृप्य के अन्त हैं तथा भीकृप्य के परम अन्त के रूप में चित्रित किये गए हैं । भाव के सङ्ग भीकृप्य धृत्य न होकर पुत्रजन के रूप में है । उनका काम वहाँ भी भीकृप्य को परामर्श देना है । वे वहाँ राजनीति के धारण हुए बाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं । उनका स्वभाव सरस और प्रकृति धाम्य है ।

वसराम और भीम के वक्ष्य में साम्य—

किराल में भीम एक बीरोज्जत मायक है । बीरोजी के उत्तेजक बाध भीमसन को प्रति दबिकर हुए अन्त युक्तिभर से कहा कि बीरोजी की बाणी आपको भी पसन्द आनी चाहिए क्योंकि उसमें कुछ ही कुछ है । फिर कहने लगे इससे अधिक और कुछ क्या होगा कि धनुषों ने आपकी इस निश्चित बात में डाल दिया है जिससे आपका पीछा नष्ट हो रहा है । वहाँ आपका यह पीछा जिसकी देखा भी प्रशंसा करते व और वहाँ आपकी धात्र की यह हीनदया । अन्त धन धनुषों के प्रति अपेक्षा ठीक नहीं है । धनुषों की बहुतों हुई प्रमुगति की जो अपेक्षा करते हैं उनकी सखी धीमा ही नहीं जानी है । यदि उन्हें कि हम धात्र बुद्धि हैं धात्र सोय प्रवत हैं तो दुर्बल का प्रवत के साथ युद्ध करना ? इसका उत्तर यह है कि जो राजा भीम भी हो गए हों निम्न उनका स्वाभाविक धात्र ऐश्वर्युग नहीं हुआ है यदि वे समृद्धि के लिए उद्योग करते हैं तो प्रजा द्वितीया के अन्त से सधान उनको प्रणाम करती है । कोप और दण्ड के कारण पंचाय (कार्य के धारकों का उपाय महायक वृत्त मण्डल धात्र, देव काम का विभाग, धर्म का प्रतिहार और कार्य मित्रि) का टीक-टीक निर्णय करने वाली नीति ही कर्तव्य विषय उत्साह का सहारा लेती है । नीम वृत्ति धात्र में प्रवृत्त प्रजा माध का सहारा लेती है । यदि वही नि हम सोय उन्माद भी करें तो नीम बाध-मिडि होगी क्योंकि हम सोयों का धात्रवत महायक ही नहीं है ? यह भी उचित नहीं

क्योंकि मनस्वी पुरुष जो उच्च पद के धर्मितापी हैं वह अपने पीछे से धर्म का प्रतिकार कर सकते हैं। नोड़ी डेर के लिए मांग लीविए कि सज्जु धोय आपको बिना लड़े राज्य लौटा देने से बठाइये आपके भाइयों की मुजाधों ने किया ही क्या ? धर्मिमान ही को जन मानने वाले बीर अपने नगर प्राणों से स्वाधी मर का ही समझ करते हैं। नमती के नम को मुख्य और विद्वत्-वितास के समान बंचल सबकी को गीए समझते हैं। नमती हुई धाम पर कोई वीर नहीं रहता। राज के डेर पर हर कोई वीर रह देता है। पचमव के मय से मानी मुख पूर्वक प्राण छोड़ देते हैं पर ठेक को नहीं छोड़ सकते। किसी कल की धर्मितापा से पबते हुए मेचों की धोर सिंह बीड़ता है। महापुरुषों का स्वभाव ही है कि वे सज्जु की उन्नति को नहीं सह सकते। इसलिए प्रभाव से उत्पन्न मोह को छोड़कर बुद्ध के लिए समझ हो भाइये। इस भाषण से धारणि ने मीन का स्वभाव लीसा चिहित किया है इसका धर्म्यी उच्छ पठा मपता है। उनके चरित में बाहुबल का प्राबल्य तथा पचकमपसपातिवा प्रकट होती है। भीमसेन सज्जु कोटि के राजनीतिक नहीं हैं। असमय में ही बुद्ध का प्रस्ताव करते हैं जो सर्वथा धार्मिकता पूर्ण है। क्रोधचय विपक्ष के बनावस का वह कुछ भी विचार नहीं करते। उनको नैतिक मर्यादा के मय का भी ध्यान नहीं है। कनि ने भीम के छत्र आपण से सूचित किया है कि बलियों में प्राय विवेक नहीं होता है। भीमसेन अपने को प्रथम श्रेणी के राजनीतिक भी समझते हैं। उनके नीति सम्बन्धी विचार इस भाषण में निहित हैं। इस भाषण से उनके बीरोद्ध स्वभाव का अच्छा परिचय मिलता है।

विद्युत्पासवच में बसराम—

माय ने बसराम के चरित को एक ही श्लोक में इस भाँति संक्षिप्त किया है।
तत सपत्नापमयस्मरणाभुषयस्फुरा ।

ओष्ठेन रामो रामोष्ठबिम्बजु बनजु बुना ॥२१४॥

इस श्लोक में बसराम की बीरता तथा शृङ्गारिका दोनों का समन्वित वर्णन किया गया है। जिस प्रकार के परम विक्तापी हैं उसी प्रकार के सज्जुओं के परम सज्जु भी हैं। सज्जुओं के उदय की बात भी उनको सझ नहीं है।

बसराम एक धिपाही है राजनीतिक नहीं है। उद्धव के “भुसमपाति” शब्द से भी यही संकेत मिलता है। इस श्लोकार्थ में बसराम की नीति का सार दे दिया है। माय में “आत्मोदय परध्यानिर्जय नीतिरितीयति ।” इस श्लोकार्थ में बसराम की नीति का सार दे दिया है। धर्ममानिष होकर रहना वह किसी वधा में भी सहन नहीं कर सकते। वह करते हैं—

पादाहत यदुत्पायमूर्धनमभिरोत्तित,

स्वस्पादेवापमानेनपि दहिनस्तद्वारं रज ॥४६॥

उनकी तमक में नम्रता बढ़ा थापी शेष है—
धकाचिरोपितमृगदधम्रमा मृगसाधन ।

केसरी निष्ठुरशिष्टमुगधूयो मुगाधिप ॥५१॥

रात्रु से प्रतिबोध सेते समय उन्हें मित्र के कार्य की कुछ भी चिन्ता नहीं ।

यजतां पांडव स्वर्गमवस्विम्रस्तपस्विनः ।

ययं ह्यमाम द्विपथ सर्वे स्वार्थं समीकृते ॥६५॥

यस यह तो केवल यह स्वप्न देखते हैं—

प्राप्यतां विद्युतां संपरसंपर्कादकरोचिषाम् ।

सस्त्रद्विपक्षिरन्ध्रदप्रोच्छलन्ध्रो हितोकिमैः ॥२-६६॥

इस भाँति बलराम का बँसा बिज होना चाहिए बँसा ही कब से संकट किया है ।
उच्छल का अस्तित्व बलराम के विरोध में ही निखर सका है । इसके अतिरिक्त बलराम पर
किरातार्जुनीय के द्रोपदी और भीम के भाषणों की भी आप है ।

बलराम और द्रोपदी तथा भीम के भाषणों में साम्य की प्रतीति होती है । पर नाम
का बलराम भारवि के द्रोपदी और भीम हैं अधिक राजनीति का पक्षित है । भीम उत्साह
और पुनर्वास की ही बातें कर रहा है । किन्तु बलराम बिज और रात्रु की प्रकृति से पूर्ण
परिचित है—

सखा गरीषान् रात्रुद्वज कुत्रिमस्ती हि कायत

स्याताममित्रौ मित्र च सहज प्राकृतावपि ॥२-६६॥

उपकर्त्रारिणा संघिनं मित्रेणापकारिणा

उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः ॥२-३७॥

विधाय वैरं सामर्थ्यं करोऽरी य उवाचते

प्रतिशोषविष कदा रोयेतेऽभिमास्तम् ॥२-४२॥

इस तरह भाव के उच्छल तथा बलराम दोनों ही भारवि के सुविष्टिर तथा द्रोपदी
और भीम से कही अधिक व्यवहार कृतान एवं राजनीति शास्त्र के ज्ञाता हैं ।

अपकर्त्रारिमका इन सृष्टि में मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसकी मानसिक शक्ति
सबसे अधिक विरुद्धि पाई जाती है । उसके मन में लोक प्रचार के अन्धे और बुरे विचार
उठते हैं कल्पना शक्ति से वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर, एक काल से दूसरे काल तक,
एक रूप से दूसरे रूपों में उड़ानें भरता है । कुछ कल्पनाएँ कुछ विचार सरल होते हैं तो कुछ
घटित । सरल और घटितता के साथ विभिन्न प्रयोगों में “कु” और “यु” जुड़ जाता है ।
मानसिक अस्थिति और अस्थिति का सम्बन्ध “कु” अथवा “यु” की अधिकता से है । जब
कई भावनाएँ परस्पर विरोधिनी ही होकर मन में उठती हैं तो उनमें जिसको स्वीकार दिया
जाय तथा बिसे छोड़ा जाय—इस बीज को लेकर जो एक भंजन संपर्क होता है वही काव्य
में अन्तर्द्वन्द्व बहुलाता है । अत्येक मानव प्राये बहुला जाहता है यदि “यु” मार्ग से वह चल
पड़ा तो उठरी गलना यत्ने आदितियों में होती है और यदि उसने बुभार्य का अवलम्बन कर
लिया तो वह बुरा आदमी बहनाता है । बुभार्य या बुभई इसीलिए ह्य मानी जाती है ।

कि उसका स्वरूप लोक रंजक न होकर लोक पीड़क होता है। “शु” मार्भरत मानवों का “शु” पुत्रपौ से विद्वेय होना स्वाभाविक है। जब यह विद्वेय बढ़ जाता है तो इन्द्र की स्थिति पैदा हो जाती है। काम्य का धामार मानसिक भावनाएँ तथा कल्पनाएँ होती हैं। मानना को कल्पना उड़ान देती है। उसे बोधगम्य भवना धनुभूति के योग्य बनाती है। “शु” पुत्रप भवना क्यों है धीर कृपुण्य बुरा क्यों ? इन प्रश्नों का समाधान मानवीय धर्मवृत्तियों भवना भावनाओं के समझने से होता है। जब धर्मवृत्ति लोकोपकारशील होती है तो उसका स्वरूप दूसरा होता है और जब यह लोकोपकार में लक्ष्य जाती है तब उसका स्वरूप धीर भी होता है। इन दोनों प्रकार की वृत्तियों से व्यक्तियुक्त एवं सामाजिक सार पर एक इन्द्र सा बनता करता है। जब यह वृत्तियों का इन्द्र व्यक्तियुक्त होता है तो उसे ज्ञानि का रूप मिल जाता है। काम्य में दोनों प्रकार के इन्द्रों को धर्मइन्द्र की संज्ञा दी गई है। जिस प्रकार जीवन के विकास के लिए संघर्ष पर्याप्त आवश्यक है उसी प्रकार काम्य के विकास के लिए धर्मइन्द्र बढ़ा बढ़ाएँ है। धर्मइन्द्र का ही दूसरा नाम समस्या है। सेलक किसी भी प्रबन्ध काम्य कहानी या नाटक में एक समस्या प्रस्तुत करता है पात्रों के द्वारा यह समस्या धर्मइन्द्र का रूप धारण कर लेती है। समस्या का समाधान होते ही धर्मइन्द्र समाप्त हो जाता है, वही कम प्राप्ति भवना उद्दिष्ट प्राप्ति कहलाती है। पात्रों का जीवन किस तरह किसी काम्य की फल प्राप्ति में समाहित होता है जब इस बात का विचार उस काम्य की गठनाओं की समग्र दृष्टानुमि में किया जाता है तो उसे धातोचना की भाषा में चरित्र-चित्रण कहते हैं। चरित्र-चित्रण से काम्य इष्टि स्वीकृत बनकर सामोख्य काम्य को समझने में सहायक होती है। इसी इष्टि से सिधु पालक काम्य के पात्रों का चरित्र-चित्रण आवश्यक भी है।

महाकाव्यों भवना कथाकाव्यों में जब चरित्र-चित्रण किया जाता है तो यह देखा जाता है कि कौन सा पात्र प्रधान है और कौन सा विरोधी भवना सहायक। किस पात्र को प्रधान माना जाय। कथा और कथावस्तु जिस पात्र के सहारे अपने उद्देश्य की ओर बढ़ती है वही मुख्य पात्र कहलाता है। जो पात्र उस उद्देश्य का सबसे प्रबल विरोधी होता है उसे प्रतिनायक भवना सहायक की संज्ञा दी जाती है। येव पात्र या दो नायक के सहायक होते हैं या प्रतिनायक के।

सिधुपालक महाकाव्य में गारुड श्रीकृष्ण के निकट इन्द्र समीप को लेकर धाते हैं। समीप कवन के साथ ही श्रीकृष्ण को स्मरण दिलाते हुए कहा कि जब-जब भी बिस्म किसी बड़ी घापीति में त्रस्त हुआ घापीने ही विनिमय रूप धारण करके दुष्टों का संहार किया। इस समय जब सिधुपाल समस्त राजाओं तथा नगर निवासियों को कष्ट पहुँचा रहा है घापी उसका बन्ध करके संहार को कष्ट से मुक्त करिए। श्रीकृष्ण के सामने समस्या है कि घापी सिधुपाल का बन्ध किया जाय। एक निर्णय पर पहुँचकर वे सौम्य राजसूय यज्ञ में जाते हैं। वहाँ पर सिधुपाल से अग्रहा होता है। मुद्र भविष्य हो जाता है। मुद्र में श्रीकृष्ण के हाथों सिधुपाल का बन्ध होता है।

यह है शिशुपाल की संक्षिप्त कथा । अन्त में महाकवि ने कहा है —

यो दाक्षरम्यकृतसर्गसमाप्ति-भक्तम सङ्गीतपदैश्वरितकीर्तनभास माय
तस्यात्मजः सुकवि कीर्ति सुराधयाय काव्यं व्यमत्तशिशुपालवधाभिधानम् ॥

काव्य का अर्थ है श्रीकृष्ण के चरित्र का गुण गाण करते हुए पृथ्वी पर शिशुपाल जैसे युद्ध का संहर कर कर इन्द्र सन्देश को पूरा करना है और इसी अर्थ के प्रति के आशय से सुकवि कीर्ति की भी प्राप्त करना है ।

इस अर्थ से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्य के नायक हैं श्रीकृष्ण और प्रति नायक है शिशुपाल । नारायण उग्रव वनराज सुविष्टिर, भीम शास्त्रिक नायक के सहायक हैं तथा वे सब राजा लोग को यादों के विरह लड़ते हैं शिशुपाल के सहायक हैं । अर्जुन का मूर्त रूप है श्रीकृष्ण और शिशुपाल का युद्ध और अमूर्त रूप है सत् की रसा और असत् का विनाश । इस प्रसंग में पाशों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया जायगा ।

श्रीकृष्ण और शिशुपाल —

शिशुपाल के प्रसंग में श्रीकृष्ण का वर्णन जहाँ जहाँ पर आया है उस सबसे शिशुपाल वह काव्य का वर्णन विभ है । पुराणों में श्रीकृष्ण एक ईश्वरीय अविष्मक्ति है । मानव में श्रीकृष्ण ने जिस प्रति भक्त द्वारा शिशुपाल का वध कर दासा जिससे भी उनकी ईश्वरीय शक्ति ही प्रकट होती है । महाभारत में अयोध्या पर्व के अन्तर्गत शिशुपाल वध पर्व आया है, जहाँ पर भी शिशुपाल की क्रोध गयी बातों एवं ली नायकों के समाप्त होते ही श्रीकृष्ण मूर्धन्य भक्त का स्वरण करते हैं और जब हाथ में धा जाता है तब वह अच्युत से कहते हैं कि इसकी माता ने ली अपराध क्षमा करने की माचना की भी को प्राप्त तक तो क्षमा कर दिये गये । वह अपनी सीमा का प्रति क्रमण कर रहा है, जब मैं आप लोगों के सम्मुख इसको आऊँगा । इतना कहते ही उसका तिर नक से काट दासा ।

तथा दूषत एवास्य भगवाम्भुसूदन ।

ममसार्धभक्तमन्त्रक दीप्त्य यमनिपूतनम् ।

एतस्मिन्नेव काले तु भक्ते हस्तगत्ये सति ।

उवाच भगवानुत्तरीर्वादिदं वाक्य विदारय ।

ममभक्तु मे महीपासा येनैतत्समितु मया ।

अपराध-दातं क्षाम्य मातुरस्यव याचने ।

दत्ता मया याचितं च तर्ह्ये पुण हि पार्यमा ।

प्रभुनावधायिष्यामि पदयतां को महीतिताम् ।

एवमुक्त्वा यदुद्येष्ट-वैदिराजस्य तत्क्षणात् ।

व्यपहारञ्छिरः कूटारचक्रेणामिभनयण ।

स पपातमहाबाहुर्ब्रह्महृत इवापस ॥२३॥

महाभारत सभा पर्व विभुपास अध्याय ७४

महाकवि माघ के श्रीकृष्ण में ईश्वरीय से नृपत्य वा मनुष्यत्व ही अधिक है। वह भीति शास्त्र में लिपुण, उबार बलिष्ठ कुलों के शत्रु धीर साधुओं के मित्र धारक राजा है।

महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में ही माघ श्रीकृष्ण के चरित्र को इस भाँति चित्रित कर रहे हैं —

स्वियं पतिं श्रीमतिं साधितुं जगज्जगन्निवासो बसुदेव-सद्व्रमनि

कवि ने श्रीकृष्ण को "ब्रह्मनिवास" शब्द से विभूषित किया है जो मुक्तिबुद्ध है। श्रीकृष्ण ब्रह्म के साधारण पुरु हैं। ब्रह्म के निवासी उन्हीं पर आश्रय लिए हुए जीवित हैं। यही कारण है कि श्रीकृष्ण ब्रह्म को नियन्त्रण करने के लिए पुरुषों का व्रत तथा सम्बन्धों पर अनुग्रह करने के लिए श्री सम्बन्ध बसुदेव के हृदय में रह रहे हैं। नर रूप श्रीकृष्ण में नियन्त्रण करने की अहम्य शक्ति है। जगत का शासन उसी व्यक्ति से चल सकता है जो सत्तवी रक्षा करने अथवा पालन करने में समर्थ हो। श्रीकृष्ण की नियन्त्रण शक्ति में विश्वास रख कर ही वो कदापि नारद के द्वारा हम्ब ने अपना सम्बन्ध दिया था।

श्रीकृष्ण नर हैं। एक क्षत्रिय राजवंशी हैं। ऋषि मुनि ब्राह्मण धारि का वह यशो वित धारक करते हैं। नारद देवमुनि का आकाश मार्ग से जैसे ही धूमि पर परावर्ण हुआ कि वह अपने ऊँचे आसन से सीम ही स्वागत के लिए उठ खड़े हुए। उनकी धर्म्य, पाद धारि पूजा की सामग्रियों से विविध अर्चना की माग मिलते हैं —

पठत्पठंमप्रतिमस्तपोनिधिं पुरोक्ष्य यावत्तु भुवि व्यसीयत् ।

मिरेस्तद्विस्वानिज तावदुष्कर्मकैर्बन्धेन पीठावुपविष्टरभ्युत् ॥१,१२॥

तमर्घ्यमर्घ्यादिक्यादिपूरणं सपर्यया साधु स पर्यपूजत् ।

युहानुपेतु प्रणयादमीप्सवो भवन्ति नापुष्यकृता मनीषिणः ॥१,१४॥

न यावदेतावदुपपन्नमुत्थितो जनस्तुपारांजनपर्वतादिभिः ।

स्वहस्तवसे मुनिमासने मुनिविचरतनस्तावदभिन्मयीविधात् ॥१,१५॥

अर्चना के परभाव श्रीकृष्ण ने उन्हीं अपने हाथ से आसन दिया और अपने सम्मुख ही धारक पूर्णक बैठाया। गुह्यनों एवं ऋषि मुनियों में अटूट भक्ति रखने वाले श्रीकृष्ण अत्यन्त मधुर भापी हैं। माघ का यह वर्णन उनकी मधुरभाषिता का परिचय देने में पर्याप्त है। माघ किस भाँति श्री कृष्ण के मुख से कहता रहे हैं —

सितं सतिष्मा सुतपं मुनेर्बुधिसारिभिः सीममिवाय सम्मयम्

द्विधाबलिभ्याजनिधाकराधुभिः शुचिस्मितां बाधमनोजदभ्युत् ॥ १ २५ ॥

हृदयर्ष सम्प्रति हेतुरेभ्यत शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभै-

धरीरभाजो भवबीयदसंनं व्यनक्ति कामभितवेर्षय योग्यताम् ॥ १ २६ ॥

अपरमपर्यन्तसहस्रभाभुना न भनितुमस्तु समभावि भाभुना
 प्रसह्य तेजोमिरसंस्पर्ता गतैरदस्त्वया मुक्तमनुत्तम तम ॥ १ २७ ॥
 कृत प्रजाक्षेमकृता प्रभासुत्रा सुपात्रा-निक्षेपनिराकुमारममा
 सद्योपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो मिथि धृतीनां धनसम्पदामिव ॥ १ २८ ॥
 विसोकनेनैव तवामुना मुने कृत कुतार्थोऽस्मि निबद्धितां हृदा ।
 तत्रापि भुवपुरहं गरीयसो गिरोऽप्यवा येयसि केन लुप्यत ॥ १ २९ ॥
 गतस्य ह्योऽप्यगमन प्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यथा ।
 तनोति नस्तान्मुदितारमगौरवो मुक्तस्तव वागम एव पृष्ठताम् ॥ १ ३० ॥

चिदनी वाक् चातुरी एवं सिद्धता श्लोक संख्या ३० में मरी पड़ी है। विरक्त गारवजी के द्वारका में आचरण का प्रयोजन पूछता चूटता है किन्तु उस चूटता को प्रोत्साहन देने वाला स्वयं जहाँ का धारमन ही वो है। श्री कृष्ण की मूढ़ एवं मिष्ट भाषिता पर एक हिन्दी कवि की यह उक्ति पटित होती है —

मीठी बाली बोलिए, मन का धापा खीय ।
 धीरों को धीतस करे धापा धीतस होय ॥

श्री कृष्ण में उक्त सहज मुखों के साव-साव नीति निपुणता भी परमोच्च श्रेष्ठ की है। वह एक मोर रोव मोर धनुं दोनों को समान बता कर धनु के समूलनाश की बात कहते हैं वो दूसरी मोर वह परदुःख कातर भी ज्वली ही ऊँची भेली के हैं।

उतिष्ठमानस्तु परोनोपेक्ष्य पश्यमिच्छता ।
 समी हि धिष्टैरान्नातो बरन्तावामयं सख ।
 न दूये सात्वती सूर्ययग्महामपराधमति ।
 यतु दम्बहृते लोकमयो दुःसाकराति माम् ॥ २ ११ ॥

बाहे वह भोला के समुद्रम बात कहें और बाहे प्रविष्टम दोनों परिस्थितियों में उनके कहने का डप ऐसा है जिस पर भोला का धारपति नहीं हो सकती।

ममतावग्मतमिह श्रुयतामयवामपि ।
 ज्ञातसारोऽपि क्षत्वेकं संदिग्धे कामवस्तुनि ॥ १२ ॥

इसमें कहते हैं कि तब को जानने वाला भी यदि धकेला हो तो कर्त्तव्य के निरूपण करने में संदिग्ध ही रहता है। जल्दही स्वयं मे इस भाँति सिद्ध रूप से अपने भावों को तथा अपनी नीति को स्पष्ट किया है। वे तत्त्व हैं इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है किन्तु एकान्ती व्यक्ति को परिस्थिति केशी होती है वह अपनी बात से स्पष्ट है। सिद्धता के साव मित्रभाषिता एक दूसरा कुछ जगमें विद्यमान है जो महान् व्यक्तित्व के लिए धरम्य आवश्यक है।

मनुष्य में यदि कोई दुर्बलता है तो वह ज्ञान प्रशंसा भी ही हो सकती है। सर्व गुण सम्पन्न होते हुए भी व्यक्ति अपनी प्रशंसा को मुन कर अपने आपको धूल बताता है। कभी-कभी

तो उसको मुनिकर उसमें इतना मुग्ध हो जाता है कि बर्माभर्म को नहीं देखता । परात्प प्रसंसा सुनने की भूख कभी-कभी तो इतनी तीव्र होती है कि जिस किसी ने उस समय उस धुबा की वृष्टि कर दी वही उसकी कृतज्ञता का भाग्य बन गया । श्री कृष्ण इस कमजोरी से दूर हैं । वे चावुकारी की बाधों से भाप ही सज्जित हो जाते हैं । चाहे प्रसंसा करने वाला प्रसंसा करता हुआ सज्जित न भी हो । श्री कृष्ण स्वयमेव स्तुतिमों के स्वामी हैं उनके लिए कोई भी स्तुतिवचन दिख्या हो नहीं सकता इसीलिए वे स्तुतिमों से प्रसन्न नहीं होते । मुनिष्ठिर उनके लिए कहते हैं जिसमें जनकी विनम्रता भी स्पष्ट है —

सज्जतं न गवितं प्रियं परोक्षस्तुरेव भवतिप्रपादिका

ब्रीहमेति न तव प्रियं वदन् ह्रीमतामभवत्तैव सूयते ॥ १४ २ ॥

तोपमेति वितथै स्तवै परस्ते च तस्य सुसभा शरीरिभिः

अस्ति न स्तुतिवचोऽनृतं तव स्तोत्रं योग्यं न च तेन सुप्यति ॥ १४ ३ ॥

वे भवगुणों से रहित हैं अतः सब प्रकार के गुणों की सम्मत्ता इन्हीं से उत्पन्न होती है ।

बहूपि प्रियमयं तव ब्रुवन् ब्रजस्थनृतविवर्ता जन-

संभवंति यवदोषदूयिते सार्वं सर्वगुणसंपदस्त्वयि ॥ १४ ॥

श्री कृष्ण जिसके मित्र हैं उसके वह निरक्षय मित्र हैं । उसके लिए उन्हें कोई वस्तु प्रिय नहीं । उनके प्रतिष्ठय सामर्थ्य से ही मुनिष्ठिर अपना साम्राज्य बना सका । राजसूय भी इन्हीं की सहायता से निविध्य समाप्त हो सका । भीष्म के हाथ भी कृष्ण का जो वर्णन हुआ है वह निरक्षय ही एक प्रति मानव का सा चित्रण है । इस प्रकार के वर्णन के लिए भीष्म का व्यक्तित्व उत्तरदायी है । भीष्म से श्री कृष्ण अवस्था में छोटे थे केवल एक ही मार्ग उनके प्रति अपना अन्धा को व्यक्त करने का सम्भव था और वह यही कि वह श्री कृष्ण को एक भक्तार के रूप में देखें । देखिये श्रीकृष्ण सूर्य की श्लोक संख्या ११९ १२१ १२२ १३ १४ १५ १६ १७-१८ से ८१ तक । विष्णुपान के वृत्त की इमर्षक उक्ति में श्री कृष्ण के उल्लेखन बारिष की श्लोक स्पष्ट है । मान काव्य का सोलहवाँ सर्ग देखें —

श्री कृष्ण तेज में घग्नि और सूर्य के तुल्य हैं । वे संयत चित्त तथा समर्थ कार्य करने वाले हैं । धनु हाथ धारणन्य जनता की वे स्वयं रक्षा करते हैं । वह बड़े निर्भीक हैं । वह विनम्र तथा चरार होते हुए भी आत्मभिमानों तथा अजेयनापूर्ण परिस्थितियों में भी धनुत एवं प्रतितीय ईर्ष्याही हैं ।

अभिवन्ति पतगतेऽसौ नियतस्वान्तसमर्थं कमणः

तव सर्वं विधेयं ब्रतिमाप्रणतिं विभ्रति केन भूमुत ॥ १५ २ ॥

जनतां मयशून्यधी परस्मिन्मुतामवलम्बसे यता

तव कृष्ण गुणास्ततो नरैरसमानस्य दक्षत्यगम्यताम् ॥ १५ ३ ॥

अहितादमपत्रपत्रसन्नतिमाभोजिमत्तमोरमानास्तिक-

विनयोपहितस्त्वया कुतः सहसोभ्योगुणं वाग्विस्मय ॥ १५ ४ ॥

सक्तापिहितस्वपोदयो नियसम्भापववधितोद्यम-

रिपुस्मन्तधीरचेतस सततस्याधिरनीतिरस्तुते ॥१६ ११॥

इन सब युद्धों के प्रतिरिक्त वह एक अद्वितीय वीर एवं रणभूमि के कुशल योद्धा है। उनकी अप्रतिम वीरता के वर्णन उन्नीसवें सर्ग में होते हैं। शिषुपाल ने रणभूमि में शत्रु की कपल के संभिकों का परबरोध किया तब भीकपल से रहा नहीं गया। वह स्वयं युद्ध क्षेत्र में पहुँच गये। इन्होंने सर्व प्रथम बढ़ाई गई विद्यास प्रत्यंभा से युद्ध करने अनुप को मुन्नाया फिर मुन्दर पाँठों वाले बाणों को बढ़ाकर उसकी प्रत्यंभा को सींचा जिससे टंकार छन्द हुआ देखिये—

निमुज्यमानेन पुरं कर्मभ्यतिगरीयसि ।

धारोप्यमाणोकपुण भर्षा कार्मुकमानमत् ॥

तत्रबाणो सपुत्रय समधीमन्त चारव ।

द्विषामभुत्सपक्षपस्तस्याकृष्टस्य चारव ॥१६-१२॥

वीरता का प्रसूत्र हृदय श्लोक संख्या १६ से १०६ तक विस्तारित है।

बाण चलाते की अपूर्वमनुता एक धनुक परसम्भान देखने ही योग्य था। शिषुपाल क्रुद्ध होकर भीकपल को युद्ध के लिए तत्पर करने के लिए जैसे ही प्रस्तुत हुआ भीकपल का वह सब भी शिषुपाल के सम्मुख बौझ पड़ा। दोनों का मुमुन युद्ध देखने योग्य था। भववान भीकपल ने अपनी कुहिनियों को निकोड़कर घातू नामक अनुप की प्रत्यंभा की शानों तक चँका उठ समय उनका बल स्वतः ऊँचा एवं विद्यमान हो गया कम्बे कुछ नीचे की ओर झुक गये, मस्तक नयूर की भाँति ऊँचा उठ गया एवं एक मुट्ठी घाते की ओर तथा दूसरी पीछे की ओर धा गई। कभी वह चक्रास्त का प्रयोग करने लगे तो कभी बबलास्त था।

प्रतिकुचितकूपरेख सेन धवणोपान्तिकनीयमानगम्यम्

धनति स्म धनुर्धनात् मत्तप्रभुर कौचरवानुकारमुष्णे ॥२० १६॥

उरसा विततैन पातिर्ताम स मयूरचित्तमस्तकस्तदानीम् ।

हाणमासिकितो मु सौष्ठवेन, स्मिरपूर्वावरमुष्टिरावर्धो वा ॥२० २०॥

दोनों के मुमुन युद्ध को जिस गति कवि ने चित्रित किया है वह अचलनीय है। जब शिषुपाल ने भीकपल को अनेक भाव मिया तब वह वाली बाण फेंकने लगा।

मृष्टि गर्तरपि पराम् ।भिर्बदित्वा बाणोरज्यमभिष्वित्तमममिस्तम्

मर्मातिपरमनुगुमिर्नितरामशुद्धैर्वाक्रमायकरय तुनोद सदाविपदा ॥ ०।७७-८

बाण में घामी भरते हुए जब शिषुपाल के घाटीर की फिर से विहीन कर दिया। उनके घाटीर ने निवमता हुआ दीप्तिमान क्षेत्र भीकपल में प्रविष्ट हो गया।

महाकाम्य को घाटोपान्त वह मैने पर पाठकों का भीकपल में रामायण के राम के वर्णन होने है, भीकपल के नहीं। जब युद्ध मान करते जाना वीर समय पर मुम्भचते

जो पदको सुनकर उसमें इतना मुग्ध हो जाता है कि बर्मानर्म को नहीं देखता । धारम प्रशंसा सुनने की भूख कभी-कभी तो इतनी तीव्र होती है कि बिना किसी के उस समय उच धुबा की स्तुति कर दी जाती उसकी कृतकृता का आशय बन गया । श्री कृष्ण इस कमजोरी से दूर हैं । वे आदुकारी की बातों से धाप ही नञ्जित हो जाते हैं चाहे प्रशंसा करने वाला प्रशंसा करता हुआ सञ्जित न भी हो । श्री कृष्ण स्वयमेव स्तुतिगियों के स्वामी हैं उनके लिए कोई भी स्तुतिवचन मिथ्या हो नहीं सकता इसीलिए वे स्तुतिगियों से प्रसन्न नहीं होते । भुविष्ठिर उनके लिए कहते हैं बिचमें जनकी बिनभता भी स्पष्ट है —

सज्जते न गदित प्रियं परोवक्तुरेव भवतिनपाविना

ब्रीडमेति न तव प्रियं वदन् ह्रीमतात्रभवसेव सूयते ॥ १४ २ ॥

तोयमेति बितर्क स्तुतौ परस्ते च तस्य सुभमा शरीरिभि

प्रस्ति न स्तुतिवचोऽनुतं तव स्तोत्र योग्यं न च तेन तुष्यति ॥ १४-३ ॥

वे प्रवक्तुओं से रहित हैं जब सब प्रकार के गुणों की सम्मिश्र हन्ती से उत्पन्न होती है ।

वह्नुपि प्रियमयं तव ह्युष्मन्नजस्वनृतवदितौ जन

संभवन्ति यददोषकृतिते सार्व सर्वगुणसंपदस्त्वयि ॥ १४ ॥

श्री कृष्ण जिसके भित्र हैं उनके वह निश्चय भित्र हैं । उनके लिए उन्हें कोई वस्तु प्रिय नहीं । उनके प्रतिष्ठन सामर्थ्य से ही भुविष्ठिर अपना साम्राज्य बना सका । राजसूय भी हन्ती की बहापता से निश्चित उपाप्त हो सका । भीष्म के द्वारा श्री कृष्ण का जो वर्णन हुआ है वह निश्चय ही एक प्रति मानव का सा चित्रण है । इस प्रकार के वर्णन के लिए भीष्म का व्यक्तित्व उत्तरदायी है । भीष्म से श्री कृष्ण व्यवस्था में छोटे वे केवल एक ही मार्ग उनके प्रति अपनी बड़ा की व्यक्त करने का सम्भव या धीर वह नहीं कि वह श्री कृष्ण को एक व्यवहार के रूप में देखें । देखिये श्रीकृष्णें सर्व की वलोक सक्या ११ ६ ११ १२ १३ १४ १५ १६-१७-१८ ॥ २९ तक । चितुपात्र के गूठ की इवर्क उक्ति में श्री कृष्ण के उन्मूलन चरित्र की मूलक स्पष्ट है । माघ काव्य का सोलहवाँ सर्ग देखें —

श्री कृष्ण तेज में अग्नि धीर सूर्य के पुरुष हैं । वे सर्वत्र चित तथा सर्वत्र कर्म करते वाले हैं । धनु द्वारा पादागत जनता की वे स्वयं रक्षा करते हैं । वह बड़े निर्भीक हैं । वह विनाश तथा बधिर होते हुए भी भारतभिमानी तथा उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियों में भी अस्तुत एवं अतितीव्र वीरवानी हैं ।

अधिपन्निह पतंगते ब्रह्मो नियतस्त्वान्तसमर्थं वमण

तव सर्व-विषेय वतिनःप्रणति विभ्रति केन भूयुत ॥ १५ ५ ॥

जनतां भवधूम्यधी परैरभिमुतामवसम्बन्धे यत

तव कृष्ण गुणाम्स्ततो नरैरसमानस्य बभूवगव्यताम् ॥ १६ ६ ॥

अहितावनपत्रपस्त्रसन्नतिमाशोऽग्निस्यभीरुनानास्तिक

बिनमोपहितस्त्वया कुत सहशोभ्योगुणवानविस्मय ॥ १६ ७ ॥

सकसापिहितस्वपीरूपो नियतव्यापदवधितोदय

रिपुश्चतुर्धोरचेतस सततम्बाधिरनीतिरस्तुते ॥१६ ११॥

इस सब बुद्धों के अतिरिक्त वह एक अद्वितीय वीर एवं रक्षाभूमि के कुप्रभ बोझा है। उनकी अग्रतिम शीरसा के दर्शन उसीसर्वे सर्व में होते हैं। शिशुपाल ने रक्षाभूमि में सब भी कृष्ण के सैनिकों का अवरोध किया तब भीकृष्ण से रहा नहीं गया। वह स्वयं युद्ध क्षेत्र में पहुँच गये। इन्होंने सर्व प्रथम बड़ाई गई विद्यात प्रत्यक्षा से युक्त अपने वभुष को झुकाया फिर सुन्दर बाँटों वाले बाणों को चढ़ाकर उसकी प्रत्यक्षा को सीधा जिससे टंकार ध्वज हुआ देखिये—

नियुज्यमानेन पुर कर्मव्यतिगरीयसि ।

धारोप्यमाणोऽगुरुं भर्षां कार्मुकमानमत् ॥

तत्रबाणाः सपुस्य समधीयन्त चारव ।

द्वियामभूत्तपक्षपस्तस्याकृष्टस्य चारव ॥१६ १२॥

बीरता का अपूर्व इस लोक संख्या १९ से १०६ तक दिखाई देता है।

बाल बचाने की अपूर्वतुला एवं धनुक धरसन्धान देखने ही योग्य था। शिशुपाल कूट होकर भीकृष्ण को युद्ध के लिए मत्तकारने के लिए जैसे ही प्रस्तुत हुआ भीकृष्ण का वह रथ भी शिशुपाल के सम्मुख रीढ़ पड़ा। दोनों का युद्ध युद्ध देखने योग्य था। अथवा भीकृष्ण ने अपनी बुद्धिबलों की शिकोड़कर धाक नामक वभुष की प्रत्यक्षा को कानों तक लेबा उस समय जबका वभ स्वयं ऊँचा एवं विद्यात हो गया, कन्धे कुछ नीचे की ओर झुक गये, मस्तक मथुर की भाँति ऊँचा उठ गया एवं एक मृद्वी घाने की ओर तथा दूसरी पीछे की ओर था गई। कभी वह बबहास्व का प्रयोग करने लगे तो कभी बबहास्व का।

प्रतिकु धितकूर्परेण तेन धवलोपान्तिवनीयमानगध्यम्

ध्वनति स्म धनुर्धनान्त मत्तप्रभुर जीवरत्नानुकारमुष्मै ॥२० १६॥

उरसा धिततेन पातितोम स मयूराक्षितमस्तकस्तवानीम् ।

क्षणमानिजितो नु गीष्ठवेन, स्थिरपूर्वावरमुष्टिरावर्षो वा ॥२० २०॥

दोनों के युद्ध युद्ध की जिस भाँति कवि ने चित्रित किया है वह अचरुनीय है। सब शिशुपाल ने भीकृष्ण को अजेय मान लिया तब वह बाणी बाण फेंकने लगा।

वृद्धि गगरवि पराम् । मिबिदिस्था, बाणेरजम्यमधिघटितमममिस्तम्

मममितिगैरनुदुग्धमिनितराममुष्टैर्बाकसायकैरव तुतोड तदाविपद्य ॥ ०१७७-४

अप्य में पानी बहते हुए सब शिशुपाल के शरीर को फिर से बिहीन कर दिया। उनके शरीर में निकलता हुआ बीधमान तेज भीकृष्ण में प्रविष्ट हो गया।

महाकर्म को धाधोपान्त पक्ष सेने पर बाणों से भीकृष्ण में रामायण के अथ के दर्शन होते हैं बीरकृष्ण के नहीं। यह युद्ध संहार करते जागा वीर समय पर मुक्कपट

मुष्कराते धनु को समाप्त कर देना, यह है इस काव्य में श्रीकृष्ण का भर कर्म में वीर चरित्र बर्हा हुआ नहीं किन्तु श्रीकृष्ण ने एक दृष्ट का दमन किया है। बीसा बहने कहा या चुका है, महाभारत में वही कार्य एक बाहु बली के डंग से करना कहा है। गाली बकते हुए सिम्पुल को मारने के लिए सुदर्शन चक्र का स्मरण किया गया वीर जब वह हाथ में था यमा ठक फिर राजाओं के सम्मुख श्रीकृष्ण ने लुटे रूप में मर्जना की कि धाज ही धपराध समाप्त हो चुके हैं अतः धम में इसको धापके सम्मुख ही मारेंगे। कहने में विसम्भ ही नहीं होता कि सिम्पुल का फिर सुदर्शन चक्र से पुनः कर दिया जाता है। यह भ्रातृकृतिक या लपटा है। महाभारत धापक तथा पुण्ड्रों में श्रीकृष्ण का जो चरित्र-चित्रित हुआ है उससे कहीं अधिक बल हुआ वीर स्वाभाविक चरित्र मात्र ने अपने महाकाव्य में दर्शित किया है।

एक बात धीर है। चाहे सिम्पुल जब का एक बहुत बड़ा भाव मृत्कार की बिना सिता से व्याप्त क्यों न हो किन्तु फिर भी वहाँ श्रीकृष्ण के पुनर्जीव चरित्र की रक्षा मात्र ने बड़ी साधना की है। यदि कवि अरु भी धराधरा हो जाता तो श्रीकृष्ण को बिना सिता के चक्र में डाल देना विसकुल साधारण ही बात थी। महाकवि मात्र ने श्रीकृष्ण के भर कर्म का एक धारण निज प्रस्तुत किया है। वह चित्र बहुमुखी होते हुए भी स्वाभाविकता से परिप्लुत है।

पुण्ड्रों में सिम्पुल बहुत ही जोषी धीर दृष्ट स्वभाव के राजा के रूप में दर्शित है। धन्याय करने धीर धपक्यों का प्रयोग करने से वह एक ही है। राजनीति से तो बानो उसको कोई बास्ता ही नहीं है। ईप्सन्ति से पूर्ण उसका जीवन है। इसके विपरीत महाकवि मात्र का सिम्पुल वीरचित्र सिम्पुल से कहीं ऊँची खेती का है। अन्त में क्रोध के साध-साध बन्नीरता थी है, धपक्य धापी वह धवरक है पर उसके साध-साध वह बाक्यदु तथा वीर ईप्सन्ति होने के साध-साध वह आत्माविषाणी भी है। राजनीतिज्ञ धीर विद्वान् भी है यद्यपि उसको जब नायक अथवा प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है फिर भी कहीं-कहीं उसके हृदय की धुनता के दर्शन होते हैं वहाँ वीरचित्र सिम्पुल से सहसा दृष्टा होती है वहाँ मात्र के सिम्पुल के प्रति प्रवृत्ता तथा सहानुभूति का भाव भी कभी-कभी बाह्य होता है। बीजे के उदाहरण से सिम्पुल की बीरता का परिचय मिलेगा।

अमिर्तर्जयन्निव समस्त भुवणमसावकम्पवत् ।

सोममुकुटमणिरश्मि धर्मरक्षण प्रक म्यत जगत् नय धिर ॥१५३॥

व्यनमस्तभाम अक्षमीरमनरवगमीरवागमी ।

वाचमवदति १)पञ्चमादति सिधुस्फुल्लगणरायसी ॥१५४॥

सिम्पुल सज्जन मेघ के वर्जन के समान बन्नीर धन्य करते हुए निर्मय होकर सदा धरम की स्मृति करते हुए अत्यन्त क्रोध के बावेल में अत्यन्त कठोर एवं स्पष्ट सदार्थ वाली वाली में इस भांति बोलने लगे।

कन्होंने क्या कहा ?

यदपुपुजरत्वमिह पाप मुरजितमपुजित सताम् ।

प्रेम विससति महत्तबहो दयितं जन- लक्ष्मणुणीति मय्यते ॥१५५॥

यह है सिधुपाल के कहने की घसी । क्रोध के साथ-साथ गम्भीरता की भाभा उप-
र्युक्त श्लोक से स्पष्ट है । नीचे के श्लोकों में पाठक देखेंगे कि उसकी अभिप्रायण में भी बाक-
पट्टा एवं बीरता की भाभा है देखिये—

प्रतिपत्सुमग घटते च म तय नृपयोग्यमहणम् ।

कृष्ण कलय मनुकोऽभूमिति स्फुटमापदा पदमनात्मवेजिता ॥१५ २२॥

मुमुक्षुस्तस्य धरणस्य भगवत्पतिघातिनीजम् ।

सिद्धमबल सयलस्यमहो तव रोहिणीवनम् साहचर्यम् ॥१५ २४॥३

गविय भीष्म पर इत्यर्थक भाषा में जो व्यंज वर्ता उसने की है वह अपने हँस की है ।

अबनीमूर्ता स्वमपहाय गणमतिजडं समुन्नतम्

नीचि नियतमिह यक्षपत्तो निरत स्फुट भवसि निम्नगासुत ॥१५ २१॥

इसी भाँति कृष्ण को मधुसूदन (श्लोक २१) सत्यधिय (श्लोक २५) बक्रधर (श्लोक २६) श्री पति (श्लोक २७) विक्रमी (श्लोक २८) गिरिधारी (श्लोक ३०) भूमिपाल (श्लोक ३१) आदि शब्दों से संबोधित किया है । इन शब्दों में जो व्यक्ति हैं वे श्रीकृष्ण पर छोटा कभी का काम करती हैं ।

सिधुपाल को क्रोध आता था तब उसकी घाँतों में धाँसू आ जाते, सरीर पसीना पसीना हो जाता 'कृद्विमां अत्यन्त टैडी हो जाती घोर घाँतें लागू हो जाती । कहा जाता है कि क्रोध में मनुष्य को अपने मन-बुरे का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है । क्रोध उठर जाने पर ही मनुष्य अपने वास्तविक रूप में आता है तब वह समझ पाता है कि उसे क्या करना चाहिए वा घोर क्या नहीं ? सिधुपाल क्रोधी था फिर भी उसने अपने आपको सबका नहीं छो दिया था । उसने अपनी जीत में ही अपनी मुक्ति के वर्धन किये हैं । ऐसा लगता है कि मानो अपने धारकी जीवन के बंधन से मुक्त कराने के लिए ही वह चुन-चुनकर अपराधों का प्रयोग करता है ।

बहु परम असहासी एवं अपूर्व श्रेयसासी व्यक्ति है ।

अनिवादानिघट्टघंक्तमुच्चनुरास्त्रासितमम्बननुपेण ।

अपसानिप्त ओषामान वस्पदायकालानिघिहानिभस्फुरज्जयम् ॥२०॥४७॥

समकालमिवाभिसदृशीय ग्रहसंघान विकर्यस्यापदयो ।

अथ साभिसारं धारेस्तरस्वी स तिरस्वर्तुमुपेन्द्रमम्यवपत् ॥२०॥६॥

सिधुपाल अहंकारी था । श्रीकृष्ण का भरी सभा में मुचिष्ठिर द्वारा किया गया गम्यान उसको दबिकर प्रतीत न हुआ था । श्रीकृष्ण के साथ उसका जोष पूर्व से तो था ही किन्तु श्रीकृष्ण को अपने सामने बुद्धि देताकर अहंकार के मारे इतना जोष धीरे धीरे अधिक बढ़क उठा ।

अथ तव पादुसनयेन सदसि विहितं मुरखियम् ।

मानमसहृत् म वेदिपति परवृद्धिमत्सरि ममोहि मानिमात् ॥१५ १॥

पुर एव शाङ्गिणी सवेरमय पुनरमु तदर्शया ।

मधुरमङ्गलगाढतरः समवोपकाम इव देहिम चरः ॥१५ २॥

चिन्तुपान श्रीकृष्ण का प्रतिनायक है । श्रीकृष्ण के चरित्र की उज्ज्वलता और उचा रता उस ही प्रतिमासित हो सकती थी जब उनका प्रतिनायक भी उनके समान ही विद्वान् और बीरहोता और शोक तथा रसियाचार में भी साथ-साथ अद्वितीय होता । माध के चिन्तुपान में श्रीकृष्ण के प्रतिनायकत्व के मुख भीख है ।

महाकवि माध भक्तकवि थे । उनकी भक्ति का वर्णन अत्यन्त किया गया है । यहाँ पर पार्श्व के द्वारा कवि की भक्ति मुखरित हुई है । उन पार्श्व के चरित्र-चित्रण की प्रस्तुत किया जाता है । ये पात्र हैं —

नारद भीष्म और युधिष्ठिर ।

नारद

महामातृ में नारद को एक ऐसे महर्षि के रूप में बताया गया है जो स्वान-स्वान पर विचरते रहते हुए लोक को उपदेश देते हैं और जनमान को अच्छी की सहायता के लिए प्रेरित करते रहते हैं ।

भायवतकार ने भी नारद को लोगों-लोकों में विचरण करने वाला बताया है ।

माध काव्यकार के नारद सूर्य की भाँति ठेक के पूँज हैं । आकाश मार्ग से उतरने के पूर्व श्री कृष्ण तथा उपस्थित भद्रमण को बचा हो जाती है कि वह प्रकाश कँसा ? धर्म की पति तो सदा नीचे से ऊपर की ओर जाने वाली है तथा सूर्य बल नति वाला है फिर वह ठेक पूँज क्या है जो ऊपर से नीचे की ओर आ रहा है ?

धाकति में वे भीरु नहीं हैं, कमल केसर की भाँति पिबल जटा बारण किये हुए हैं, पीली मूँज की मेखला सरीर पर है, सूक्ष्म सुनहले रंग का यज्ञोपवीत है, कृष्ण मृग चर्म बारण किये हुए हैं, जिसके बीच-बीच में सफेद-सफेद बन्धे से होने से वह चितकनक सा चित्तबाई पड़ता है । हाथ में भीण्डा है और अप करने के लिए स्वच्छ स्फटिक की माला है । वह अतीन्द्रियज्ञाननिधि है अतः जब द्वारकाद्वारी की ओर प्रस्थान करते हैं तो आकाश में रहने वाले देवदेव उन्हें तेजस्वी तथा ज्ञान के निधि समझकर अपनी सीमा तक पहुँचाने के लिए आते हैं । भगवान् श्री कृष्ण की जनमें प्रसाद भजा है । वह आशाने के पूर्व ही उनके सम्मान में बड़े होते हैं । (शास्त्रकारों ने कहा ऊर्ध्व प्राणाहृत्यामन्त्रि यून स्वर्गिर ध्यायति प्रपुत्ताना-भिवाद्याम्ना पुनस्तान् प्रतिपद्यते ।) धृष्टी तल पर चरख रहते ही उनकी धर्म्याणि से पूजा होती है । (सामने घासन दिया जाता है । श्री कृष्ण ने स्तुति में उन्हें सूर्य की भाँति तेजस्वी प्रजानात्मकार को दूर करने वाले श्रुतियों के अक्षय निधि बताया है । ये विद्वेषण उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं । नारद स्वयं अपने विषय में कहते हैं । मैं संसार से विरक्त धर्मस्व है किन्तु फिर भी हम जैसे संसार से उपासीन पुरुषों को भी प्रायः जैसे के समीप आना ही पड़ता है (संसार में अनौषि को पनपते ऐसे लोक देख नहीं सकते) वहाँ ऐसा लगता है मानो

मय कवि नारद के रूप में अपनी शक्ति प्रदर्शित कर रहे हैं। हे भयवान् माय तो योगियों के भी तो साक्षात्करणीय हैं (यह कह कर प्रथम तो यह प्रमाणित कर दिया कि योगी बाह्य संसार से विरक्त हों किन्तु अपने परमोक्त की चिन्ता उनको भी तो रहती ही है)।^१ मायके दर्शन से बढ़कर और अधिक क्या महान् कार्य मेरे सम्मुख हो सकता है। अब यह एक भक्त की भाँति अपने भयवान् का कीर्तन करने लगते हैं। जिस तरह एक भक्त अपने भयवान् को भोक रसा के लिए आश्रय करता है उसी तरह नारद भी कृष्ण को अपने धनधार की स्मृति बिभाते हुए गिरिपुत्र की बन्ध-जगन्नाथर की कथा कहने लगते हैं। इन्द्र के सम्मुख की वस्तु रता से सामने रखते हैं। नारद अपने कार्य में प्रवृत्त योग्य है। शक पट्ट एवं एक कुशल नीतिज्ञ है। सज्जनों की प्रतिष्ठा के लिए तथा भोक्त में सुख्यवस्था के लिए भयवान् को घाम म्बल देते हैं तथा उन्हें दुष्टों के वसन के लिए प्रेरित करते हैं। गिरिपुत्र बच की सफलता नारद की इसी प्रेरणा शक्ति की सफलता है। इस महाकाम्य में नारद को एक प्रेरक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भीष्म—राजसूय यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् राजा जुबिष्ठिर ने जब बर्ष-प्राप्त का विचार करते हुए धर्मदान के सम्बन्ध में पूछा तब साधु के पुत्र भीष्म ने उस सभा के अनुकूल को उत्तर दिया है उससे यह स्पष्ट है कि भीष्म न केवल प्रप्रथिम योद्धा ही थे बल्कि राज्यों के भी प्रकोष्ठ पंडित थे इतना ही नहीं एक सर्व मान्य कम-काफी भी। उनकी भयवान् की कृष्ण में प्रवृत्त निति भी जिस प्रकार कवि ने नारद के रूप में भी कल्प के प्रति अपनी शक्ति प्रकट की है उसी प्रकार भीष्म के रूप में भी कवि ने अपने आराध्य के प्रतिभत्ता के भाव प्रवर्तित किये हैं। प्रथम है कि भी कृष्ण को धर्म क्यों देना चाहिए? भीष्म स्तुति के रूप में कह रहे हैं कि दैत्यों और राज्यों को भुक्ताने वाले भयवान् की कृष्ण को तुम केवल अनुप्य न मानो क्योंकि यह तो परमात्मा के धर्म हैं।^२ हे जुबिष्ठिर! तुम बन्धु हो! तुम्हारे सम्मुख भयवान् भी कल्प स्वयं आकर उपस्थित हुए हैं। इन्हीं की विविध पूजा करके तुम साधुवाद प्राप्त करो। इस भाँति भीष्म ने एक ओर तो आराध्य के रूप में स्वयं के अनुधार किंचित शक्ति कार्य करना चाहिए आदि बातों का उपदेश दिया है तो दूसरी ओर भयवान् के भक्त के रूप में उन्होंने भी कल्प के प्रति अधिकतर बड़ा प्रकट की है। इतना ही नहीं गिरिपुत्र ने भी इसी ओर संकेत किया है कि भीष्म भी कृष्ण में विचार शक्ति रखते थे।^३ गिरिपुत्र के द्वारा भी यह निम्न की भीष्म सहन न कर सके भय समुत् की भाँति नग्यीर होकर कहने लगे कि जिस किसी राजा की आज्ञा इस सभा में मेरे द्वारा की गई भयवान् की कृष्ण की

१ किराता १ ११ ४२ २ ११, २०, २१, ३०, ३१ ३० ४६।

२ १ १२, १३ १४।

३ १, ११

२ माय २ २१ २० २६ ३०, ३६, ३७ ४४ ४५, ४६, ४७ ४९ ५१ ५२ ५३, ५४, ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ १०९ ११० १११ ११२ ११३ ११४ ११५ ११६ ११७ ११८ ११९ १२० १२१ १२२ १२३ १२४ १२५ १२६ १२७ १२८ १२९ १३० १३१ १३२ १३३ १३४ १३५ १३६ १३७ १३८ १३९ १४० १४१ १४२ १४३ १४४ १४५ १४६ १४७ १४८ १४९ १५० १५१ १५२ १५३ १५४ १५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

२ १४ २६ से ८६ तक के स्तुति के श्लोक देखिए।

३ १५, १६।

पूजा सहा नहीं है वह अनुप बढ़ा ने। यह भैया बोया पैर ऐसे सभी राजाओं के सिर पर रखा जा रहा है। भीष्म के ये वाक्य अभिमान या गर्वोक्ति से पूर्ण नहीं हैं किन्तु इन वाक्यों से उनकी भी कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ ममता भी उसी का परिचय मिलता है। भक्त अपने भगवान् की निन्दा नहीं सुन सकता भक्त-धर्मशास्त्री होते हुए भी वह क्रोध केवल आन्तरिक नहीं है, उसकी व्यावहारिक उपयोगिता भी है। भीष्म सर्वांग प्रिय महापुरुष थे। भक्त के भी भगवान् की एक मर्यादा होती है। उसके बाहर भी बात वह नहीं सुन सकते थे। फिर वह भीर भी थे। मन्दुत धीर्य के बनी। जैसे महाभारत के समान यहाँ भी भीष्म पाण्डवों के कर्तव्य कर्तव्य के विषय में परामर्श देने वाले धात पुरुष हैं। उनके व्यक्तित्व का पाण्डव परिवार में सर्वाधिक मान है। कवि ने उनके द्वारा जो कार्य यहाँ कथित हैं वह उनके परम्परागत स्वरूप के सर्वथा उचित हैं।

मुचिष्ठिर—मुचिष्ठिर का बल स्वयं चौड़ा नहीं था किन्तु हाथ दुर्गन्धित मटकते थे।^१ उनका कव कवाचित सम्भा हो। वे बड़े विनीत प्रतिबिम्बेरी तथा श्रीकृष्ण में पूर्ण अनुराग रखने वाले थे जब श्रीकृष्ण दूर से ही दिखाई दिये तब पहले से ही श्रीकृष्ण को सम्मान देने के लिए भगवानी के समय यमुना पार के स्थान पर ज्यों ही उन्होंने रथ पर से उतरना चाहा कि श्रीकृष्ण उतर पड़े हैं। श्रीकृष्ण जब इन्द्रप्रस्न की ओर चलने लगे तब मुचिष्ठिर ने अनुराग में लीन होकर श्रीकृष्ण के चरणों की भगवान् को स्वयं ही पकड़ लिया। राजा मुचिष्ठिर बड़े सरवशी थे। उनकी धाँधों से स्नेह बरसता था तथा बोली ॥ मित्रध। वह भानो धर्म-वृत्त थे। उनका साम्राज्य धर्म विषय का प्रतीक था। उनके अधीन बड़े-बड़े राजा थे जो न केवल उनका तथा उनके लोक विभूत भाइयों की बीछा से बरन उनकी धर्म परामर्शता से भी बखीमूठ हुए थे।^२ वह परम उदार थे। दानियों को दान दक्षिणा उचित भावर के साथ प्रतिदिन देना उनका एक सामान्य सा नियम कर्म था। महाकवि ने राजसूय यज्ञ के समय उनके दान की गाथा बड़े सुन्दर शब्दों में बारी है। ब्रह्मचर्यादि धर्मधर्मों के मुचिष्ठिर एक नियन्ता थे। यह उनके स्नेहमय श्रीधर्म का ही प्रभाव था कि उनके प्रति सब ही का ऐसा सहज स्नेह था कि छोटे बड़े सभी राजा जिस किसी काम में निपुण किये जाते थे उस काम को बड़े मीरक तथा पारस्परिक स्पर्धा के साथ करते थे।^३ वह ज्ञान के सम्भार थे। इतने समुद्रवान होते हुए भी उनका चित्त कभी भी राजसद भयवा बन मर से कन्तु पित नहीं हुआ। इतना सब कुछ होते हुए भी वह धर्ममीरक थे। श्रीकृष्ण की महिमा को जानते हुए भी उन्हें धर्म की इच्छागुहार प्रथम धर्म्य न देकर सास्त्र का विचार करने के लिए भीष्म से परामर्श किया। धर्म सास्त्र व सवाचारों का पालन उन्हें प्रिय था। परामर्श देते हुए भीष्म ने कहा कि तुम समझ बुद्धि भीर दोषों के जानने वाले तथा कर्तव्यकर्तव्य विवेक में कुशल हो। यह गुह्यारा धुवर्गों के प्रति समाधि का मान है कि तुम हमसे परामर्श करते हो।^४ उनकी माधुर्य का प्रभाव यहाँ तक था कि धिमुपान जैसे दुष्ट भी उन्हें पमराज ॥ नाम से सम्बोधित करते थे। उनके विनय की पराकाष्ठा यहाँ देखने को मिलती है जब धिमुपान क्रोध के वाक्यों को कहकर जब ज्योंही सभा मण्डप छोड़कर जाता है मुचिष्ठिर उसे अनुनय के साथ

कहते हैं कि आप मत जाइये, कहीं जा रहे हैं ? वह क्षमा से पवित्र चित्तबाने से घट पर धामे धनु का भी धरमान वह कैसे करते जाहे वह सोपों का ही घर था । युधिष्ठिर को क्रोध घाबाना चाहिए था फिर भी 'क्षमा बहुत को चाहिए, छोड़ने को उत्पात' वाली कहावत वहाँ परितार्थ हो रही थी । लुब्ध होने की अपेक्षा वह विनम्र मार से बच जा रहे थे ।

मार काव्य में युधिष्ठिर का जो चरित्र चित्रित है उसके माध्यम से भी महाकवि ने श्रीकृष्ण के प्रति अपने अतिशय को व्यक्त किया है ।

सात्यकि

यह धिनि के पौत्र थे । मिथुपाल के दूत ने जाकर श्रीकृष्ण के सम्मुख ४ वर्षों (त्रिभूत और अत्रिभूत) बड़ी ठग श्रीकृष्ण ने दूत को एक धन्य उत्तर दिया बाय इस दृष्टि से सात्यकि की ओर सकेत किया । इससे प्रमाणित होता है कि सात्यकि जैसे को ठेका उत्तर देने में कुशल होंगे । इन्होंने दूत की ही नीति ग्रहण करने वाली किन्तु समंवादिनी मातें कही । वह राजनीति में निपुण हैं । उनकी वक्तृता में सुभाषितियों की भरमार को देखकर ज्ञात होता है कि वह एक अनुभवी व्यवहार कुशल एवं राजनयिता तथा बुद्धता के पारंगत थे ।

सात्यकि की वक्तृता की वजह से अनुमान होता है मार अपने आराध्य के प्रति कहे गये चुनौतियों को सहन नहीं कर सकते थे और ऐसे व्यक्तियों का वह कैसे को ठेका उत्तर देते थे ।

मार, भीष्म युधिष्ठिर और सात्यकि ये सभी श्रीकृष्ण के भक्त हैं । श्रीकृष्ण ने अपनी जीवन सीमाओं में जो भी लोकहित के कार्य किये हैं उनमें इन तीनों का एक महत्वपूर्ण योग रहा है । मिथुपाल की कथा का महाभारत के सूत्रधार श्रीकृष्ण से सीधा सम्बन्ध है । मार कवि श्रीकृष्ण के प्रथम भक्त थे । वृद्धावस्था में वह अतिशय और भी समझ पड़ा था । इन पात्रों के माध्यम से उन्होंने यह ठग अपने अतिशय का निवेदन किया है । उनके चरित्र पर मार को प्रेरणा भीष्म की अविचल भक्ति युधिष्ठिर की अतिवि सेवा तथा उदात्ता तथा सात्यकि के अनुग्रह भक्ति का प्रधान देखा जा सकता है ।

शिशुपाल वध महाकाव्य के दृश्य

(मौगोमिक आधार पर)

(१)

शिशुपालवध का प्रथम दृश्य असुरदेव का भी सम्मेलन प्राप्त है। मयमान श्रीकृष्ण जबकि का नियन्त्रण करने के लिए कुहों का समान और सम्बन्धों की रक्षा के लिए वहीं पर निवास कर रहे हैं। एक मास वह ही अपव के पापार भूत हैं। वहीं से वह नारद मुनि को आकाश मार्ग से पाते हुए देखते हैं। उनके पीछे बैचक हैं जो पुष्पी के निकट पाते ही उन्हें प्रणाम करके सीट बाँटते हैं। नारद श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं। श्रीकृष्ण उन्हें प्रणाम करके आदर पूर्वक आसन आदि देते हैं। वहीं पर उन दोनों के बीच प्रेम वृषक वार्तालाप होता है। इन्द्र का संदेश देकर नारद वहीं से वापस आकाश मार्ग से भाट जाते हैं।

यह है पहला दृश्य जिसमें श्रीकृष्ण को नारदमुनि द्वारा शिशुपाल के वध करने का इन्द्र संदेश द्वारिकानगरी में प्राप्त हुआ था। द्वारिकापुरी यह श्रीकृष्ण की राजधानी थी जो कुवलय के पश्चिमी भाग पर है। इसको कुरुक्षेत्री भी कहते हैं। धातकन यह सीपड़ में है।

(२)

दूसरा दृश्य भी द्वारिकानगरी में ही है श्रीकृष्ण नारद के जाने पर, वहीं से उठ करनमस्ति करने के लिए बनारस और उदय के छात्र समा सदन में जाते हैं। यह समा भवन बहुत भूस्मयान रत्नों से वरिष्ठ है। वहीं पर तीन ही व्यक्ति हैं पर इनका प्रतिबिम्ब इन रत्नों में पड़ता है इनसे ऐसा लगता है मानो बहुत से व्यक्ति वहीं पर बैठे हैं।^१ वहीं पर वह प्रसिद्ध जर्जा होती है जिसका विषय है पहले शिशुपाल के वध के लिए प्रस्ताव किया जाने लंबा इन्द्रप्रस्थ जाकर युधिष्ठिर के मंत्र में सम्मिलित हुआ था। प्रसंगवश राजनीति का विचार विवेचन भी हो जाता है।

१ शिशुपाल वध में समा के लिए कहा है—

रत्नस्तम्भेषु सक्रान्त प्रतिमास्ते जगत्पिरे ।

एकाकिनोऽप परित पोष्येयमुता इव ॥२४॥

अध्यासामासुस्तु गह्वरपोटागियाभ्यमी ।

तेरुहे केसरिक्रान्तत्रिकूट शिखरोपमा ॥२५॥

इसमें कहा गया है कि समा भवन रत्नों से वरिष्ठ था और स्तम्भों में प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा था। वहीं पर तीनों व्यक्ति ऊँचे स्वर्ण के आसनों पर विराजमान थे।

(३४२)

१ सभा—प्राचीन काल में सभा और समिति का नाम बार-बार आया है 'सभा' व समितिस्वायत्ता प्रजापतेषु द्वितीय संविधाने । ये दोनों ही स्वाम्य जनता के एक स्वाम्य पर एकत्र होने के लिए बनाये जाते थे वहीं पर मनुष्य आकर एक स्थान पर बैठते और अपनी सम्पत्ति स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करते । सभा एक सम्पत्ति देने वाले व्यक्तियों का कुल है जिसमें राज्य परिवार के मुख्य व्यक्ति मित्रान् ब्राह्मण पुरोहित और दूसरे प्रसिद्ध नागरिक हुआ करते थे किन्तु समिति में घासुन सम्बन्धी व्यक्ति ही होते थे । सभा में स्वाम्याधिक रूप से सम्पाद राधा के सभाहकार थे ही होते जो उसके निकटस्थ संबंधी हों घबरा ये व्यक्ति जिनमें उस राजा का पूर्ण विश्वास हो और जिनके हाथों में वह घासुन की बागडोर ले सकता हो । ब्रह्मसम हिमैडॉट का तो कहना है कि सभा का सर्व मनुष्यों के एकत्र होने का स्थान है किन्तु समिति किसी कार्यवश एकत्र हुए व्यक्तियों के समूह का ही नाम है । सभा का सर्व है यह शक्ति अनीष्ट निश्चयार्थमेकत्र यह सूँटे सा एवं सदा जैसे 'न का सभा यत्र न सति पूजा श्रीगारापलुनत्र बन्धोपाध्याय Development of Hindu Polity and Political Theories. में पृष्ठ १०० पर लिखते हैं ।

It is difficult to determine the original character of this gathering. The word Sabha (cf. Ind. En. Sabha) is derived from a root closely associated with O. E. Sibbi Ger Sippe Got Sibja all meaning an association of the kin, tribe, family or the clan.

Probably early Sabhas were of this type but later on with further development the Sabha became not only an association of kinsfolk but of men bound together either by ties of blood or of local contiguity. Consequently it came to mean any kind of gathering for religious purposes for sport or for discussion of local interest. In a state of society characterised by the free working of public opinion gatherings for various purposes were very common and their existence is proved by references to them in literature. Sabha was a central aristocratic gathering associated with the king.

सभा—The place of Assembly and the समिति the Assembly it self—Sabha was the advisory body to the king—Hillebrandt. The members of the Sabha acted as assessors and it was presided over in a later age by the king himself.

समिति—Was an Assembly of the people and accord with it was vitally important to the king. It was a gathering of the whole folk of the community. It had a close connection with the Royal person and met on coronation, national calamity. It was convened to elect and accept the king or to approve of his acts. It was the Assembly of राष्ट्र इन सर्वसे भिन्न यह निश्चय कि सभा बुने हुए कुछ ही व्यक्तियों की परामर्श समिति होनी थी जो किसी समस्या पर कुछ रूप से विचार करती थी ।

(१)

तमो मयन में लिए हुए निर्युय के अनुसार इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान करते हुए सेना समेत भीष्मपुत्र का यह वृक्ष है। उनके मस्तक पर मणियों का मुकुट है। कामों में सुवर्ण के कुण्डल हैं जिनमें भरकट मणियाँ बड़ी हुई हैं। दोनों भुजाओं पर केनूर पड़े हुए हैं वक्ष्य बारण किये हुए हैं। वक्ता स्वस पर मोतियों की माला पड़ी हुई है कौस्तुभमणि को भी बारण किये हुए हैं। कटि-धूम में बंभी हुई घोर पैरों तक नीचे कौमोदकी महा मन्दक नामक बाहु छात्र नामक अनुव पांचवन्म नामक संक्ष को लेकर उस पुष्प रत्न पर विराजमान हुए हैं। रत्न की खूबियाँ पर पड़ गई हैं। प्रस्थान करते समय नवाजों का मन्गीर शीघ्र हो रहा है भीष्मपुत्र के पीछे-पीछे यावन सेना बनी जा रही है। बँसवधाली सुन्दर हारिकापुटी बहुत पीछे रह जाती है। भीष्मपुत्र सेना के साथ सार समुद्र के निकट उस कच्छ भूमि के प्रवेशों में होकर जा रहे हैं वहाँ पर ठाढ़ के बन केवकी के पीछे गारियस सुपाटी एवं सर्वप अताण हैं। कच्छ का समुद्र मारुतवर्ष के पश्चिमी भाग में स्थित है। यह भाग कच्छ की खाड़ी के नाम से पुकारा जाता है।

(४)

अपनी इस रैवतक पर्वत (१) का प्रत्यक्ष भूमि का है। यावन सेना कच्छ-भूमि को पार करती हुई समुद्र से बहुत दूर निकल गई है और दोनों में पर्याप्त व्यवधान हो गया है। अब रैवतक तिरि दिखलाई पड़ रहा है वहाँ पर विविध प्रकार की बाटुएँ बमक रही हैं। दूर से मेघमाला स्पर्श करती हुई भी प्रतीत हो रही है। कहीं कहीं पर किरण जामें कें पड़ने से उसकी चोटों सुवर्णमयी दिखाई पड़ रही है। सताशों वृक्षों ऊँटों घाबि से इतना सुन्दर प्रतीत हो रहा है कि उसको बार-बार देखने पर भी वह नवीन-सा दिखलाई पड़ रहा है। सारणि ने भीष्मपुत्र के समक्ष उसकी सुन्दरता का वर्णन किया। तब भीष्मपुत्र वहाँ मनोविभो-वर्ण कुछ समय के लिए ठहरे। सेना भी वही प्रवेश में ठहर गई। सैनिकों ने अपने-अपने छिदिर सुन्दर स्नान देखकर लजा दिये। एक ओर नगिया की कुकान लग रही है तो दूसरी ओर धल धर में ही अपने उस नवीन निवास स्नान पर शय्या को सुव्यवस्थित कर नूतन प्रसा बनें एवं प्रसंकरलों से सजी हुई वेस्मानें मार्ग की ककान से सित पुष्पों की ककानट को घीतल अल एवं ताम्बूल घाबि कपचारों से दूर करने लगी। हाथी चोड़े ऊँट, साँड भी अपनी अपनी क्रितोषे कर रहे हैं। सैनिक रैवतक पर्वत पर पञ्चमरु का सा ध्यान से रहे हैं। वे बन-विहार के परचाट जल-विहार का ध्यान लुटते हैं। इतने में शय्याकासीन इस उपस्थित हो जाता है। दिन भर के किमोलों में मस्त हुए यावन मलु गरिण पाग कर रात्रि में अपनी अपनी प्रियतमाओं के साथ शीत में निमोर्त है। फिर प्रभात हो जाता है और वहाँ से इन्द्र प्रस्थ के लिए सेना चल पड़ती है।

चतुर्थ इन्द्र बहुत ही लम्बा सा जान पड़ता है। इसका वर्णन कवि ने चतुर्थ सर्ग से प्रारम्भ करके ११वें सर्ग में आकर समाप्त किया है।

विजय-रैवतकतिरि—यह भारत के पश्चिमी भाग में कच्छ की खाड़ी की ओर है

बाब यह विदितार पर्वत के नाम से बुलाया चौपाय के पास स्थित है। विशेष के लिए रंग तक पर्वत का जो इतिहास लिखा है उसको देखिए।

(३)

अपने हस्त में मार्ग का बर्णन है। श्राव-काल होते ही सेना अपने निश्चित स्थान के लिए चल रही है। वह उज्जैन की भूमि को पार करती हुई नीमच की ओर घाबे बढ़ती है। वहाँ की भूमि सुवर्णमयी भूमि से विभूषित है। (बात बुरैर्मुहम्मदों विपत्रे विरेरन काबनभूमिर्ब रब. ॥१२२॥१॥) उत्तरवात् वह मरुभूमि (राजस्थान में प्रविष्ट हुई जहाँ पर जलाशय, खंडल आदि बड़ी-बड़ी तलियाँ हैं और मार्ग बड़ा ऊँचा-जाबड़ है, कहीं पर भूमि कटी हुई है कहीं पर बचरीसी है तो कहीं ऊँचे-ऊँचे पहाड़ भी हैं। देखिए श्लोक २३ और २४ बाख्ने तर्ब का) टीले आते हैं तो नाच भी। एक टीले से उकरकर बाकी की भूरी टूट गई है उससे बरिष्ठ का पाव भी टूट गया (श्लोक २६) कहीं पर उतार है तो कहीं पर सम भूमि है। इस प्रति मरुभूमि को पार करके सरयूपुर से मरुत की ओर आते हुए (देखिए श्लोक ३८) सेना ने यमुना नदी को पार किया।

इस समय में कोई विशेषता नहीं है किन्तु कवि ने ऊँटों, भेड़ों, हाथियों तथा बैलों का जो यत्नान्त्र चित्रण किया है वह बहुत सुन्दर है। सेना पैयी से घाबे बढ़ रही है। इसलिये इतने जल्दी मार्ग को देखते हुए वे बर्णन बोधे हैं।

(६)

अपना हस्त इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश का है। श्रीकृष्ण की सेना यमुना पार कर चुकी है। पर्यटन सुविधिर को यह समाचार मिल गया है। वह रथों में अपने कनिष्ठ भ्राताओं के साथ श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। पौंड्र सेना उनकी व्यवधानी के लिये घाबे बढ़ गई है। नगाड़ों का नम्बीर घोष कील रहा है। दोनों सेना मिल गई हैं। अब वे मापस इन्द्रप्रस्थ की ओर चल रही हैं। इतने में सुविधिर दूर से श्रीकृष्ण को देखे हैं। वह रथ में नीचे उतरना ही चाहते हैं कि श्रीकृष्ण उनके भी पूर्ण सीपता करके नीचे आ बड़े होते हैं और सुविधिर को उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। सुविधिर उनकी अपने बुज बंजर में समेट लेते हैं। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण सुविधिर के अनुजों को यथा योग्य आतिथ्यनाथि से सम्मानित करते हैं। तत्पश्चात् मापस रथियों और पौंड्र रथियों एक बूँदों से मिलती हैं। अब सुविधिर भी कृष्ण को रथ पर बढ़ने के लिए कह रहे हैं। श्रीकृष्ण धर्म के साथ रथ पर आबड़ हो रहे हैं। सुविधिर प्रम में विमार होकर श्रीकृष्ण के चोड़ों की मगाम को पकड़ लेते हैं। भीम श्रीकृष्ण पर बैबर कुलाने हैं। मन्त्रुन रथेय धन पकड़ लेते हैं। पीछे-पीछे नकुल और सहदेव चल रहे हैं। गम्भीर दुर्गुमियों के घोष के मध्य श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश करते हैं। प्राचा लड़क नर-नागे उन्हे देखने के लिए राजमार्ग गली छत बिरकी भरोका आदि से देखते हैं। इसने वा यह डंग राजपूत काल का है। श्रीकृष्ण ने नगर-प्रवेश के अनन्तर अनुसूचित स्थिी मय के द्वारा बनाई हुई धामा में जाते हैं। सभा मचन आदिकर्म चरित कर देने वाला है। श्रीकृष्ण सभा मचन के सम्मुख रथ से उतर कर अन्तर जाते हैं और एक विराम सिंहासन पर सुविधिर और श्रीकृष्ण दोनों बैठ जाते हैं। गर्तियाँ श्रीकृष्ण के सम्मुख गाय

करती है। यहाँ मुनिष्ठिर श्रीकृष्ण से कहते हैं "मैं यज्ञ करना चाहता हूँ मगर आप आज्ञा प्रदान कीजिए। श्रीकृष्ण कहते हैं कि आप सब प्रकार से योग्य हैं मगर राजसूय यज्ञ के अधिकारी भी हैं। मैं इस यज्ञ में आपके भारेसों का वाहन करता रहूँगा और जो राजा मृत्यु के मुक्त्य आपके कार्य नहीं करेगा उसके शरीर को यह सुवर्सन चक्र छिद्र है बिहीन कर देगा। मुनिष्ठिर अब यज्ञ के सन्तारम्भ में प्रवृत्त हो रहे हैं।

(७)

यह यज्ञ का हव्य है। मुनिष्ठिर ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है। यह हव्य बल-विश्व सा विभार्य होता है। छिद्रने व्यापार एक साथ हो रहे हैं। यज्ञकर्ता पुरोहित गण धातुत वैवताओं को तन्त्र कर मन्त्रों के सुष्ठ उच्चारण के साथ अग्नि में द्वातुतिर्या ओढ़ने आने हैं। उस यज्ञ में सामवेद के पूर्ण ज्ञाता उच्चारण करविन्यास द्वारा स्वर्णों को व्यवस्थित करते हुए अस्त्वित स्वर् से सामवेद का वाहन कर रहे हैं। इसी भाँति होता और अर्धवर्ग अन्वेद का वाहन कर रहे हैं। कुष्ठों की सुन्दर मैकला कारण किये हुए यजमान की पत्नी श्रौणवी इवनीय पद्माओं का निरीक्षण कर रही हैं। पुरोहित शास्त्रीय विधानों से यज्ञी भाँति सुव्यस्त इन्द्रों का अग्नि में होम कर रहे हैं। यज्ञाग्नि मन्त्र पुर्वक द्वातुति किए गए वृत्त का बार-बार आस्वादन कर रही हैं। यज्ञ का बुध द्वाकाश अम्बल में अम्बलित है। राजसूय यज्ञ की समस्त क्रियाएँ सम्पन्न हो चुकी हैं। कोई भी दोष नहीं रहा है। सामधियाँ भी पूरी पक चुकी हैं। अब राजा मुनिष्ठिर ने बधिर्या के उपयुक्त पानों को बधिर्या भी प्रदान कर दी है। राजसूय यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर अमसास्त्र का विचार करते हुए मुनिष्ठिर अब अर्धब्रह्म के विषय में भीष्म से पूछते हैं तब भीष्म सभा के अनुकूल ही उत्तर देते हुए श्रीकृष्ण को ही सर्वथा अर्ध के योग्य बताते हैं। श्रीकृष्ण की मुनिष्ठिर विधिवत् पूजा कर केते हैं तब वेदिकतम सिद्धवाच सभा के मध्य क्रोध कर बैठता है।

इस हव्य में महाकवि ने एक और अपने नैयाकरण में पवित्र होने का आमास स्थान स्थान पर दिया है तो इसी ओर यज्ञ का निज उपस्थित करके यह भी प्रवर्धित कर दिया है कि वह यज्ञ सम्बन्धी बातों को क्लृप्त जानते थे।

(८)

इस हव्य में सिद्धवाच श्रीकृष्ण की पूजा को सहन नहीं कर पा रहा है। उसने अपने मिर को भीरे से क्रोध में हिलाया। क्रोध के धीनू धीनों में है तो देह नाप क्रोध की धर्मों से पचीना-पचीना हो रहा है। उसकी धीनों क्रोध से अत्यन्त जाल हैं। उसने क्रोध के जाल में अपनी रक्षा पर ठाक ठीक दी है। क्रोध में धाग बहूसा होकर अपने विकारों को छिताने में वह प्रसमर्थ है। अब वह सभा के मध्य में नन्हीर सख्य करती हुए स्पष्ट सब्दों में श्रीकृष्ण की पूजा का विरोध करता है। श्रीकृष्ण सिद्धवाच की कठोर बातों को सुनकर भी चुप रहते हैं। श्रीकृष्ण पक्ष के लोग भीन कारण किये हुए बैठे हैं। भीष्म को क्रोध था जाता है। जिसे श्रीकृष्ण की पूजा सख्य नहीं है उसके छिद्र वर बाँया पैर रखने को वह प्रसन्न है। सिद्धवाच के पक्ष के लोग भी क्रोध पूर्ण धारणा में हैं। इस पर सिद्धवाच के पक्ष वाले जाने क्रोधाग्निवत्

हो गई है । बाखासुर इमराज, सप्तमीया, स्वामी सुवस आदि के क्रोध करने पर भी श्रीकृष्ण बोधिसत्व की शक्ति निश्चय रहते हैं । वे राजा क्रोध में छठकर वहाँ से चमने लगे और सिंधुपाल भी उनको मड़काने वाले मान्य कहता हुआ क्रोध में धरा हुआ तीसवामी बोधे पर राज मार्ग की मान्यता हुआ चला जाता है । सोच सोचने लपते हैं कि धन क्या होने वाला है ।

सिंधुपाल अपने चिविर में जाकर अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयारी का आदेश देता है । इसमें ही ब्रज उठती है । सिंधुपाल पत्नीय राजा कबच आदि पारण कर लेते हैं ।

(५)

इस इत्थ में सिंधुपाल श्रीकृष्ण के पास अपने दूत को भेजता है । दूत प्रत्येक बात को ऐसी भाषा में बोल रहा है जिसके दो अर्थ हैं एक प्रिय और दूसरा अग्रिय । बचिमे -

अभिधाय तदा तवप्रिय सिंधुपालोऽनुसय पर गत ।

अनतोऽभिमना समीहते सकृप कतु मुपेत्य भागनाम् ॥१६॥ २॥

सिंधुपाल के दूत की इन कठोर और ऊपर से प्रिय बोलने वाली इन बातों को सुनकर श्रीकृष्ण सात्विक को संकेत कर रहे हैं कि इन बातों का मुँह तोड़ उत्तर दिया जाय ।

सात्विकी बँधा ही करता है ।

मयुरं बहिरतरप्रियं कृतिमाध्याधि वचस्तथा स्वया ।
सकृद्भायंतया विभाष्यते प्रियमन्तर्बहिरप्रियं यथा ॥१६-१७॥
अतिकोमलमेकतोऽन्यत सरसाम्मोच्छ्वन्तकर्कशम् ।
बहुति स्फुटमेकमेव ते वचन शाकपलाशदेयताम् ॥१६-१८॥
बसपूरिपुरा महीपतिर्न मुखेन स्वयमामर्षा सतम् ।
अयं संप्रति पयपूरत्तयसो दूतमुखेन धाकिण ॥१६॥ ३६॥

सात्विकी की मर्म मरी बातों को सुन कर सिंधुपाल का दूत फिर अपनी भव स्वाय कर कहने लगता है —

उभयं मुमपममोदितं स्वरया साम्त्वमये तरण्य ते ।
प्रियमग्र्य पृथङ्मनीयया स्वमुखं यत्किम तत्करिष्यसि ॥१६-४२॥
प्रहित प्रथनाय माभवाहमाकारयितु महीभूता ।
म परेषु महीजसदृशादपबुर्बन्ति ममिम्भुवा इव ॥१६-४२॥
तवयं समुपैति भूपति पयसा पूर इवाग्निवारितः ।
अविसम्बितमेधि वेतस्तकृष्णमाचय मा स्म भग्यया ॥१६॥ ४३॥

दूत की बातों को सुनकर राजा के आति दुःख हो उठते हैं । क्रोध का विकार उनके मय प्रत्येक पर लप जाता है । श्रीकृष्ण पत्नीय राजा भी उन सिंधुपाल पत्नीय राजाओं की शक्ति क्रोध के आगे नहीं था करते हैं किन्तु श्रीकृष्ण के मुख पर कोई विकार नहीं है । अर्जुन

में एक कोसाहन या हो जाता है। यमसर पाकर सिधुपाल का दूत चुपके से-वहाँ से चिपक जाता है। श्रीकृष्ण की सेना युद्ध की तैयारी करती है।

(६)

रणभेरी बज रही है। धाने-धाने हाथी जा रहे हैं, उनके पीछे बड़े-बड़े विभिन्न प्रकार के पर-म्बास करते हुए चल रहे हैं। कुछ ही दूरी पर सन्तुषीय सेना की चढ़ती हुई रज दिखलाई पड़ रही है। अब तो रण की स्थितियों से बीरों को जोस घटपट होने लगा है। अणमर में युद्ध स्थल जग बीरों से आकाश हो गया है। श्रीकृष्ण के सैनिक ललकार कर सिधुपाल पक्ष के सैनिकों को बुलाते हैं। वे भी अपने खस्त्रों के साथ धाने बढ़ते हुए दिखाई पड़ रहे हैं। श्रीकृष्ण के सैनिक जग पर आक्रमण करते हैं। वीर-वीर से बड़े-बड़ों से हाथी-हाथी से रथी रथी से जिक्र रहे हैं। दोनों सेनाओं में तुमुल युद्ध हो रहा है। सैनिकों के परस्पर युद्ध के साथ-साथ राजाधों का परस्पर युद्ध छिड़ गया है। बैलुवारी राजा वलपम की के साथ अनुपुंड कर रहा है। श्रीकृष्ण पक्षीय उन्मुक्त राजा द्रुम राजा के साथ अपने हाथ का कौशल दिखा रहा है। प्रद्युम्न ने उत्तमोत्तम राजा को जब परास्त किया तब सिधुपाल चतुरमिणी सेना लेकर प्रद्युम्न की ओर बढ़ने लगा है। सिधुपाल की सेना सर्वतोभ्रम चक्र मौमिका धारि चक्रों को बाँध कर चढ़ रही है। धर्मिणी सिधुपाल स्वयं युद्ध भूमि-में पहुँच कर सन्तुषीय सैनिकों का आगरोध करके उन्हें पराजित करने लगा है। बहू बैलकर श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध के लिए उपस्थित हुए हैं। श्रीकृष्ण इतनी क्षीमता से सर सम्मान कर रहे हैं कि उनका केवल अनुप ही मध्यलीकृत सबस्था में दिखाई पड़ रहा है। इससे सन्तुषीय सेना मजबूत होकर एक स्थान पर संजयीकृत हो होने लगी है।

(१०)

यह अन्तिम दृश्य है श्रीकृष्ण और सिधुपाल दोनों में परस्पर युद्ध-छिड़ चुका है। दोनों नायक और प्रतिनायक आग्नेय सामने आकर खट गए हैं। देखिये —

मुसमुल्लसितत्रिरेसमुष्मिदुरप्रभुगभीपण दधान ।

समिताविति विक्रमानमुप्यभगतभीराहृत्त भेविराभ्मुरारिम् ॥२०॥१॥

सिधुपाल अपने रज की श्रीकृष्ण की ओर बढ़ाता है। श्रीकृष्ण भी अपने रज की सिधुपाल के सम्मुख बढ़ाते हैं। सिधुपाल एक साथ ही अनुचरों सहित श्रीकृष्ण को अपने बाणों से अभिभूत करने के लिए अनुप पर बाणों को रज कर उनकी वृद्धि कर रहे हैं। सिधुपाल के बाणों ने पूर्व मण्डल को भी आच्छादित कर लिया है फिर श्रीकृष्ण ने सिधुपाल द्वारा फेंके गये बाणों को अपने धौलक बाणों से बिछ कर काट दिया है। मोटा के रूप में श्रीकृष्ण का यह स्वरूप दर्शनीय है :—

प्रतिकृषितकूर्परेण तेन श्वखण्डोपान्तिकनीयमानमय्यम् ।

ध्वनति स्मधनुषमान्तमत्तप्रचुर क्रीवरवानुकारमुधै ॥२०-१६॥

उरसा विततेन पातितांसं स मपूरुषितमस्तकस्तदानीम् ।

अणमासिखितो गु सौष्ठवेन स्थिरपूरुषपरमखिरावमी वा ॥२०-२०॥

श्रीकृष्ण और शिशुपाल के बास परस्पर टकराकर धूमि उत्पन्न कर रहे हैं। श्रीकृष्ण ने जब ऐसे बास कहे हैं कि सूर्य मध्यम आन्धकारित हो गया है। शिशुपाल की सेना व्याकुल हो रही है। जब शिशुपाल श्रीकृष्ण को भाषा द्वारा बीचने के लिए प्रस्तापन भास का प्रयोग कर रहा है। श्रीकृष्ण ने कोस्तुभमणि के प्रयोग से संवसार को दूर कर दिया है।

शिशुपाल ने जब मुनवास्त छोड़ा है श्रीकृष्ण ने मरुतास्त द्वारा उसको भी विपन्न कर दिया है। फिर आग्नेवास्त के छेक देव पर श्रीकृष्ण पद्मनास्त का प्रयोग करते हैं। जब शिशुपाल ने अपने को अतमर्थ समझ लिया है। श्रीकृष्ण को अनेक समझ कर जब वह मर्म को विदीप्त करने वाले कुटिल तथा अस्सीस बचन कपी बाणों से श्रीकृष्ण का पीड़ा बढ़ा रहा है। श्रीकृष्ण ने वाली बकते हुए शिशुपाल के शिर को अपने सुवर्धन चक्र से उठी समझ पृथक कर दिया है। शिर के पृथक होते ही शिशुपाल के शरीर से निकला हुआ पैर श्रीकृष्ण के पैर में प्रविष्ट हो गया है। शिशुपाल का बच मानो आत्मा के परमात्मा में मिल जाने का एक प्रकार है।

इन दलों द्वारा से अनुमान किया जा सकता है कि कथनांक कितना छोटा है। कवि ने काव्य में विभिन्न दलों को प्रस्तुत करके कथनांक को गम्भीर गति से बढ़ाया है। जैसे कथनांक चारों बहुत छोटा है, पर दृश्य बोधना बड़ी सूक्ष्म एवं विस्तीर्ण है। चित्ती भी दृश्य को से लिया बाध उसको पढ़ने से मानस-बन्धु के सम्मुख बस बिना सा नाचने लगता है। कहीं तो प्रकृति परस्पर कर्णों में सहृदयों के मनो को गुंथ करती है तो कहीं पशु-वपु मानवो-व्योपी रूप में अपने विविध व्यापारों में मग्न हैं। एक ओर तो मानवशृङ्गार कपी प्रकृति अपने विषय विषयों में प्रकट होती है और दूसरी ओर दुरन्ति मानव की अस्वाभ कृति मानवीय द्वेषों पर बन्धपल करके मानो लोक द्वितीय मानव के क्षीय को लक्ष्यकरती है और उसके आविर्भूत होने पर अपने आपको अपने लक्ष्य करके ही चल पाती है। इतना ही नहीं जब सब के साथ-साथ कवि का मन हुए भी अपने आराध्य के प्रति इन विविध विधियों को अपनी भावमयी उपासना के रूप में व्यक्त करता है। इस तरह नवा प्रकृति का वर्णन तथा और शृङ्गार भव वितासों और बीरतापूर्ण सांसारिक व्यापारों के चित्रण, और तथा देव विपदा रति को अभिव्यक्त करने वाले चक्र के समर्पणप्रसक्त भावों के निवेदन सभी सहृदयों कर्णों में सहृदयों तथैव अभिव्यक्तिओं के साध्य के साधने आते हैं। इन बिन्दु के उपचार से चर्चा महाकाव्य का एक उत्तम स्वरूप मिलता है, नहीं ये बिन्दु अपने उत्तम-अलग कर्णों में भी एक विशेष प्रकार का सीमार्ग रखते हैं। उनकी भी मार्गों एक स्वतंत्र अभिव्यक्ति है।

महाकवि का काव्य सौष्ठव

महाकाव्य सम्बन्धी प्रायः सभी मुख्य-मुख्य विषयों पर एक बिहंगम दृष्टि विशेष कर लेने के पश्चात् अब हम इस सिद्धि तक आ पहुँचे हैं कि पाठकों के समक्ष इस महाकाव्य की काव्यमय विशेषताओं को प्रस्तुत करें। माघ मध्य युग के कवि हैं अतः सर्व प्रथम मध्ययुग की काव्य सम्बन्धी मात्सत्यों को प्रस्तुत कर देना उर्भीनीय होया।

विद्वानों का मत है कि आरम्भिक साहित्य का स्वल्प सरलता एवं स्वाभाविकता को लिये हुए प्रसार युग से पूर्ण था। पर जैसे समय बढ़ता गया काव्य के साप-साव काव्य सिद्धान्तों की ज्वाँ बढ़ने लगी। इस ज्वाँ का कुछप्रभाव यह पड़ा कि कविता की सरलता स्वाभाविकता तथा कविता की प्रसारमयता कम होने लगी। एक समय तो ऐसा भी आया जब धर्मों की विविध शोचना का ही एक बड़ा बुरा समझ जाने लगा। ऐसे बहुत से कवि हुए जिन्होंने कविता में मनीष भावों के लाने की काई बिन्ता न करके सत्य चमत्कार पर ही अपनी समस्त शक्ति का ध्यय कर जमा। धर्म प्रसार के स्थान पर धर्म विलुप्ता कविता पर छा गयी। स्वाभाविकता का स्थान कृत्रिमता ने ले लिया। कवित्व के साथ बहु विषयक पाण्डित्य का अब से धोम हो गया तब से ही कविता की प्रेरणा शक्ति का ह्रास होने लगा। एक समय जाया जब संस्कृत कविता का स्थान अपनी स्वाभाविक प्रेरणासन्निध के कारण लोक भाषाओं ने ले लिया। मध्ययुग के प्रायः समस्त संस्कृत काव्य इसी बीसी में लिखे गये हैं। कालिदास की रचनार्ह संस्कृत काव्य के आरम्भिक युग की काव्य चेतना की प्रतिनिधि हैं। उनकी कविता का वह सहज साहित्य भावों की वह मनोहारी छटा भाषा का वह मधुर लोभ छेनी का वह सुकुमार संयमन धनकारों का वह मनोरम लीन्य तथा रसों का वह विष्य परिपाक परपुत्रीय कवियों में कहीं-कहीं ही दिखायी देता है। मध्ययुग के कवियों को प्रायः धनकार कवि कहा जाता है। भारवि धीर माघ दोनों को धनकार छेनी के प्रवर्तक माना जाता है। इनकी कविता में मध्ययुग की कविता के सभी लक्षण मिलते हैं। जिस प्रकार प्रथम युग के प्रतिनिधि कवि कालिदास हैं उसी भाँति भारवि धीर उनसे भी कहीं अधिक माघ मध्ययुग के प्रतिनिधि कवि हैं। इनकी रचना में धर्म धीर भाव की धीर बितना ध्यान दिया गया है उतना ही भाषा की धीर भी ध्यान दिया गया है। कहीं-कहीं तो धर्म की धीर कम ध्यान रखकर भाषा (सत्य वैविध्य भषणा सम्बर्तकार) पर विशेष ध्यान दिया गया है।

उदाहरण के लिए—

इह मुहुर्मुषितीः कमभैरव प्रतिदिश क्रियते कसमरव ।

स्फुरति भानुवन समरीचम कमकरलभुवा च मरोचय ॥४॥६०॥

किन्तु सुन्दर कवि ब्रह्म है ? अन्दासकारों की प्रमुखता है। किन्तु यह निरर्थक तो नहीं है। रसवत् पर्वत पर हामी धम्म करते हैं, जमरी गाने इतस्तत् बिचारण करती हैं और वही सोने और रत्नों के स्थान हैं इन बातों को चमत्कृत रूप में कवि ही इस तरह रक्त सकता है। यह वह युग वा जिसमें महाकाव्यों का सिक्का ही कविता का प्रमाण माना जाने लगा था। कोई भी कवि महाकाव्य सिधे बिना अपने आपको सफल नहीं समझता था। इसी के फलस्वरूप प्रभाव सध्या मधी, पर्वत, नक्षत्रिण जलक्षीका आदि के वर्णन धर्मकारों के प्रयोग तथा छन्दों के द्रुत परिवर्तन को निर्दिष्ट रूप सध्या में प्रस्तुत करके कवि अपनी इतिकर्तव्यता समझ बैठता था। ऐसी कविताओं में अनुपुति कव तथा विद्वता प्रकटा कता अधिक होती थी। कभी-कभी तो वह निरा बुद्धि का व्यापार ही बन जाता था। यह पर स्मरत घात में बिज-बन्धुओं की जाहूगरी तक पहुँच गई। ये सस्कृत कवि अपने धाममदा शर्मों को अपनी जाहूगरी से प्रसन्न करते थे। ऐति कालीन हिन्दि कवियों पर भाव का सीधा प्रभाव है।

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि महाकवि भाव जिस धर्म के प्रवर्तक थे उसमें प्राय रस भाव, प्रसकार, बहुलता आदि सभी बातें विद्यमान थीं। हाँ यह बात धरत्य थी कि उनकी टीली प्रस्वबोध और कालिदास की, सहज एवं सरल होती थी नहीं थी किन्तु फिर भी भाव कवि की कविता में हृदय और मस्तिष्क का अपूर्व मिश्रण था। बुद्धि व्यापार, अनुपपुत वर्णन, धर्मकारों का महा प्रदर्शन, छन्दों का द्रुत परिवर्तन आदि बातें महाकवि भाव के परवर्ती कवियों में उची गति आ गई जिस गति महात्मा बुद्ध के अनुकरण करने वालों में कई प्रकार के तापिक प्रपंच। भाव कवि के अनुकरण करने वाले हर बिजय बर्म धर्माम्बुष्य श्रीकण्ठ चरित्र में भी वही सारी बातें मौजूद हैं। जब हम महाकवि के नाव्य सौष्ठव पर इतिनिक्षेप करते हैं तो धारचर्म होता है कि विमुपासक की छोटी सी कथा को जिसकी मधुना पुराणों में गति सामान्य कथाओं में भी जाती है। लेकर कवि ने १९५० स्तोत्रों का एक ऐसा महाकाव्य रच डाला जिसके हस्त एक से एक धनुषे हैं। हस्तों की इस प्रकार की योजना से बटनाओं की कमी इसकी नहीं लगती। कई जगह प्रसंगों की उद्गाधना बड़ी सुन्दर हुई है। इसी तरह कई स्थानों पर सुन्दर भाव भी प्रस्तुत किये गये हैं। पाठक मानो इन हृदयों, प्रसंगों प्रकटा भावों में अपने आपको भुस जाता है। कथा बोड़ी धावे बढ़ती है कि धर्मकारों के लिए फिर एक आधार भूमि सी मिल जाती है। प्रस्तुत विधान के लिए कवियों की धाम्य चाहिए वह कथा को बहुत मन्दर गति से धाये बढ़ने पर उसे मिलता जाता है। इस कवि की धर्म में एक विशेषता और मिलेगी वह यह है कि जैसे राजस्थान की राजधानी जयपुर की गतिधर्म धर्म में धाकर राजमार्ग पर ही मिलती है जाहे किधर ही धादय धपरिचित व्यक्ति भाव न भूयेगा उची तरह इस महाकाव्य की राजधानी में विभिन्न भावों की सममंजुत मार्ग कवी बीविधों काव्य के नाव्य धीकृष्ण कवी प्रधान राजमार्ग पर ही धाकर समाप्त होनी प्रत्येक सग वा प्रवसान 'धी' धावकित दसोक पर है।

यह कहने की सम्भवत धावधकता नहीं कि मध्ययुग के नाव्य की समस्त विशेषताएँ इस महाकाव्य में विद्यमान हैं। वर्णन जाहूय भाव नाव्यीय, कोजसपदमाध निरह

परोपम्यास तथा यद्वितीय सम्बन्ध प्रादि बातें केवल इसी महाकाव्य में नहीं हैं। उस समय के कवियों को अपनी काव्य-रचनाओं में संस्कृत भाषा की शारीकियों को दिखाने की बड़ी उत्सुकता रहती थी। इसी कारण वे उनकी कविता में धार्मिकता स्वयं या बाती थी। किसी भी भाषा की विशेषताएँ अधिकतर किसी सूक्ष्म भाषा या ग्रीक ह्रस्व के वर्णन से मसीमांति प्रकट होती हैं। इसीलिए कला की दृष्टि में वे प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन निश्चये हैं। भाषा काव्य में प्राकृतिक वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है प्रकृति के एक से एक सुन्दर चित्र नहीं हैं। यही व्यवस्था भाषा-शास्त्रीय की भी है। ह्रस्व के सुव्यतिरेक्य अन्तरंग भावों को उनके अपने रंग रूप में दिखाना प्रत्येक कवि के लिए सम्भव नहीं। उसके लिए पहले तो कवि का भाषा पर अधिकार चाहिए फिर समय पर उक्त भावों को उपयुक्त शब्दों में प्रकाशित करने की स्मृति चाहिए। भाषा पर जिस कवि का अधिकार होता है वह कभी-कभी अपने शब्दों को बहुत कुमाव या डेर डेर से रखता है। फिर भी वर्णन सौन्दर्य में कोई कमी नहीं आती। भाषा काव्य में किन्हीं किन्हीं शब्दों पर भाषा-शास्त्रीय देखकर पाठक आश्चर्य प्रकट हो जाते हैं। कठिन परोपम्यास तथा शब्दकल्प की सुस्मिष्टता जैसी भाषा काव्य में देखने की मिलेगी जैसी अन्यत्र बहुत कम काव्यों में मिलेगी।

महाकाव्य का कला पक्ष —प्रत्येक मनुष्य के पास विचार और भाव होते हैं। वह एक सामाजिक प्राणी है। उसकी सामाजिकता का निर्वाह विचारों तथा भावों के आदान प्रदान से ही होता है। इसलिए वह नीतिक व्यवस्था जिसमें भाषा के द्वारा उनको एक दूसरे के पास पहुँचाता रहता है। ऐसा करते समय उसकी यह हार्मिक अभिभाषा बनी रहती है कि उसकी चिन्तना और अनुभूति उसके विचार और भाव इस तरह व्यक्त हों कि पाठक या श्रोता पर उनका भविक से भविक प्रभाव पड़े। इस विचार या भाव भाषा के परिधान में ही पुरस्कृत होते हैं, यद्यपि श्रोता पहले शब्द परिधान की ओर ही भाङ्ग होता है। सुन्दर भाषा की योजना एक बहुत बड़ी कला है। काव्य के भाषा-पक्ष को साहित्यकारों ने कलापक्ष यह नाम दिया है। कवि पद्य करते हैं, 'भाषा संसार का नाव-नैविध्य है। अनिमय रहस्य है। यह विन्म की हृदयतन्त्री की अङ्कुर है जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है। भाषा की इस विशेषता के लिए शब्दचयन की आवश्यकता पड़ती है। महाकवि भाषा की भाषा के स्वरूप और सौष्ठव को समझने के लिए हमको उसके शब्दकोष व्याकरण पर्योजना शब्द शक्ति, प्रयोगकोष तथा धार्मिकता प्रादि सभी की सूक्ष्म रूप से देखना होगा तभी हम उन महाकवि के काव्य सौष्ठव को समझ सकेंगे। यद्यपि कविता की धारणा यह है प्रथम पक्ष भी यह पक्ष ही है। फिर भी हम कला पक्ष को प्रथम लेते हैं। इसका कारण यह है कि कवि के लिए प्रेरणा के रूप में यह पक्ष प्राथमिकता को पाता है और कला पक्ष उसके बाद आता है। धर्मान् पहले आलोच्य होता है फिर भाषा के द्वारा अभिव्यक्त होता है पर पाठक या आलोचक के लिए पहले कवि का कला पक्ष व्यवस्था भाषा पक्ष ही सामने आता है और फिर उसके द्वारा वह भाषा पक्ष तक पहुँच पाता है। महाकवि भाषा का शब्द कोष धन्यस्त अथवा गुरु था। वह संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। अमर कोष विरचकोप तथा और भी न मान्य विद्वान् कोष उनके मुखाभ थे। जब किसी भाषा को व्यक्त करने की प्रेरणा

मिसत्री तो उन्हें उसके लिए उपयुक्त शब्दों को ढूँढ़ने में कोई कठिनाता नहीं होती। फिर वह व्याकरण में निपटात है। नवीन काव्यों की रचना करके वह अपना काम निर्यात भेजे है।

उदाहरणार्थ —

तदयुक्तमगं तत्र विद्वत्पुत्रा न वृत्तं दीक्षसुसहस्रतयम् ।

प्रकटीकृत्वा जगति येन सखु स्फुटमिन्द्रसाध मयि गोत्रमिदा ॥६॥८०॥

पति के लिये 'गोत्रमिदं' की कल्पना मात्र बीसा कवि ही कर सकता है। पति मोक्ष भेटी होता ही है। फिर यह शब्द इन्द्राक्ष में पठित होकर कितना सार्थक बन गया है ?

क्यों-कहीं पर तो शब्दों का प्रयोग इतना उत्तम बन पड़ा है कि भावों का प्रकटीकरण बिना किसी प्रयास के स्वतः ही हो जाता है। ऐसे शब्द एक नहीं बनें हैं उदाहरण के लिए —

निदायधामानमिवाबिदो धिति

मुदाविकासं मुनिमम्पुपेयुषो ।

विलोचने बिभ्रदधिधितुधियो

स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटाभिवत् ॥

अमर कोष के पुण्डरीकाक्ष शब्द का इस श्लोक में पाकर कितना सार्थक प्रयोग हुआ है। अमरसिंह ने अमरकोष में विष्णु के नामों को पिनारते समय 'पुण्डरीकाक्ष' गोविन्दो मन्त्र ध्वज कहा है। मात्र कवि ने शब्द को किस प्रकार सार्थक बना दिया है ? व्याकरण शास्त्र में तो यह निष्पात है। वह स्वयं भी अपने पाँपको महाव्याकरण निकाले हैं। कन्नडा में भी उनकी अतिशक्ति कवि रूप में न होकर पण्डित रूप में ध्वजित है। उनके एकासरी, द्वयसरी तथा त्रिजवन्ध के श्लोक भी जलीसने सर्प में हैं शब्दों के प्रयोग की निपुणता से भरे हैं किन्तु नवीन, नूतन और भुविमधुर शब्दावलि का प्रयोग उसकी अपनी विशेषता है। भट्टी की याँति व्याकरण के सूत्रों का उदाहरण उन्होंने नहीं दिया न कीर्त्य की याँति बटिल शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर पदों की ही सजाने में वह मग्न रहे। मात्र ने भाषा की कीर्तुति करने ही के लिये उसमें अमरकार प्रदर्शन के हेतु ही बिलने नूतन शब्दों का प्रयोग किया है उतना किसी अन्य कवि के अकेले नहीं बन पड़ा है। यही कारण है कि सुन्दर के 'पालोचनों ने 'नव सर्प गठे भावे नव शब्दो न विद्यते' यह कहा। जो सर्पों के समात हो जाने पर कोई ऐसा शब्द नहीं रह जाता है जिसका प्रयोग कविता के क्षेत्र में कहीं सम्भव हुआ हो।

पदबोजना शब्द-शक्तियों के सुन्दर साहचर्य को वाकर ही मात्र प्रकाश में सकलता प्राप्त करती है। धमिमा, सलसा एवं व्यञ्जना ही के द्वारा तो रचना सौन्दर्य के रक्षण होते हैं। महाकवि मात्र की रचनाओं में इन शक्तियों का प्रभाव पूर्ण स्पष्ट है। सदाशा के ही धाधित भाषा की एक अन्य प्रौढ़ शक्ति है प्रतीकार्मकता। समूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने में समर्थ कवि ही इसका प्रयोग करते हैं। योग्य भाषा के महाकवि कीदृश ने पठम्भ का जो इतना सुन्दर वर्णन किया है उसकी सुन्दरता वा रहस्य व वर्णन ही प्रतीकार्मकता में है। मात्र ने कल्या की विवाह का करण इत्य प्रतीकार्मकता शब्दों में बीसा व्यञ्जित है :—

अपराधकर्मकपरिवर्तनोचितास्थसिता पुरः पतिमुपेतुमात्मजा ।

अनुरोदितीव कक्षणेन पत्रिणा विस्तेन वत्सभतयैव निम्नमा ॥४१४७॥

इस मति के प्रतीक बिच बहुतों सर्ग में अपनेको देखने को मिलेने । ससंसा से भाषा में बैराग्य तथा समुत्ति भाती है और व्यंजना से बकता और तीक्ष्णता भाती है । अथ मधुरा शक्ति का प्रभाव नीचे लिखे श्लोक में द्रष्टव्य है :—

सरजसमकरन्वनिर्भरासु प्रसन्नविभूतिषु मूढहो विरक्तः ।

ध्रुवममृतपनामवाक्षयासावधरममु मधुपस्तवाभिहीते ॥७१४२॥

इस श्लोक में सख्यशक्ति मूढ ध्वनि के अनुरोध से जो धर्म चिये गये हैं । वे ये हैं ।

मकरन्व और मधु से व्याप्त बूझों और सताओं की पुष्पसमृद्धि से विरक्त होकर यह मधुप निश्चय ही 'अमृतप' (अर्थात् तुम्हारे अन्तर के अमृत का पान करने वाला) नाम प्राप्त करने की इच्छा से तुम्हारे होठों पर सा रहा है । यह मधुप पारिषद शरीरधारियों के रसो रीत्य सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाली संतान परम्परा से विरक्त होकर अमृतप अर्थात् वैश्लोक में पहुँच कर अमृतपान करने वाला बनने की इच्छा से वारन्वत एव पुष्पी से सम्बन्ध न रखने वाले इस परलोक का मार्ग खूँड रहा है ।

नीचे लिखे श्लोक में कोई जम्बिता नायिका अपने अपराधी नायक को फटकार देती हुई अपने भावों को प्रकट कर रही है । यहाँ व्यंजना की शक्ति को देखिये —

न सलु बयममुष्य शानयोग्या पिपति च पाति च यासकी रहस्त्वाम् ।

प्रज विटपममु दवस्व तस्यै भवतु यत् सहस्रोश्चिराय योग ॥७१५३॥

तव कित्तव किमहितेषु या न शितिरूपस्तवपुष्पकर्णपूर् ।

मनु जनविचितैर्भवद्व्यमीकैश्चिरपरिपूरितमेव कर्णयुग्मम् ॥७१५४॥

मुहुरस्वहसितामिवाभिनादैवितरसि न कसिका किमर्थमेनाम् ।

वसतिमुपगतेन धाम्नि तस्या दृष्ट कसिरेवमहास्त्वयाद्य दत्त ॥७१५५॥

सुभाषोक्तियां अथवा सूक्तियां —

मात्र कवि के स्थान-स्थान पर सूक्तियों तथा सुभाषोक्तियों का प्रयोग कर भाषा को सुन्दर बना दिया है । भाषा की सूक्तियाँ और मुहावरे वाक्य का सहज रंग बनकर प्रयुक्त हुए हैं । पाठक इन सूक्तियों अथवा सुभाषोक्तियों को परिशिष्ट में देखें । यहाँ पर हम नमूने के रूप में कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

उज्जतानामनुगमने सलु सम्पदोदयत स्या ॥७-२७॥

किमिव न दाकितहरं ससाध्वसानाम् ॥७-५२॥

न परिचयो मसितात्मनाप्रधानम् ॥७-६१॥

मीबाहो विरमति कौतुकम् प्रियेभ्यः ॥८-६१॥

भ्रान्तिभावि भवति क्व विवेकः ॥१० ५॥
 न क्षमं भवति सत्त्वविचारे मत्सरेण हृतसंवृतिभेत् ॥१० ३५॥
 दास्त्रं हि निदिनसधियां क्व न सिद्धिमेति ॥५-४७॥
 मेवात्मनीनमयवा क्रियते भदायै ॥५ ४४॥
 मान्यमन्य गन्धमपिमानमुत्तं सहन्ते ॥५ ४२॥
 प्राक्यास्तितो न वधमेति महान् परस्य ॥५ ४१॥
 सभयिणा सह गुणाम्यधिकैर्बुं यसस् ॥५-१६॥
 सर्वं प्रिय सप्तु भवत्यनुरूपभेत् ॥५ ६॥
 परवृद्धिमत्सरिमनो हि मानिनाम् ।

कवि की चित्रता पाश्चित्य चम्पू भण्डार एवं कवित्व शक्ति की विमलशुद्धता ने ही सुन्दर-सुन्दर सव्यचयन विभिन्न प्रयोग प्रयोजना के सुन्दर रूप को सार्बक बनाया है। ऊपर किये हुए विवेचन से स्पष्ट है कि संयत अनुप्रास की छटा तो भाषकी विनमय भाषा में सर्वत्र ही मिलेगी। ऐसे पुनरुक्ति धमक का भी प्रयोग चमत्कार रूप में स्थान-स्थान पर देखने को मिलेगा।

माघ काव्य में जमा छठिठीय सव्यबंध है। बीसा सस्कृत साहित्य में तो क्या प्रन्थ भाषाओं के साहित्यों में भी बहुत कम देखने को मिलेगा। माघ कवि कदाचित् इसी सव्य बंध के कारण बरनाम है। भासोचकों ने इसी लिए माघ काव्य को विलुपता तथा भर्त्सना-कटा से पूर्ण बताया है। उनको माघ काव्य में प्रयास की गन्ध धारी है जिससे वह इसे एक हनिम या काव्य कहते हैं। उनका कहना है —

कविता यनिता नैव सरसा स्वयमागता ।

बलादाकुप्यमाणा भेत् सरसा विरसायते ॥

सव्य योजना धीर पर योजना में सूक्ष्म अन्तर है। किस जगह किस सव्य का उपयोग लिया जाना चाहिए धीर किस जगह नहीं। इसका सम्बन्ध सव्य चयन शक्ति से है। वह सव्य वाक्य में समझा पद्य में किस स्वरूप में किस संघटना के लिए आया है उसमें पर योजना शक्ति काम करती है। सव्य का ही अभिव्यक्त स्वरूप पद्य बनता है। इसलिये सामान्यतया सव्य योजना धीर पर योजना एक ही कह दिया जाता है। यहाँ इसी सूक्ष्म पर तात्त्विक अन्तर को दृष्टि में रख कर पर योजना पर अलग से भासोचना प्रस्तुत की जाती है।

माघ पदों के ललित विन्यास में भी सव्य चयन की भाँति पूर्ण सिद्धहस्त थे। परमा धुर्य की निपुणता यदि किसी को देखनी हो तो उसे माघ में देखना ही लकटा है। माघ के पदों में कई स्थानों पर अतिमधुर पद्यों की ऐसी संगीतारमक एकरसता है जो बीणा व तारों की भँदरि की भाँति धर्म ग्रहण से पूर्व ही हृदय को रस-मग्न कर देती हैं। धर्मों के बन्धों में सर्वत्र अनुपम धीर संतुलन है जिसके कारण नहीं-नहीं पर सव्य श्रुतियों की छोटी-छोटी लक्ष्मि बन कर एक कोमल भँकार उत्पन्न करते हैं। बन्धों का यह कसारमक मुष्कन ही

सन्ध्यासंकाशों की धारणा है। आधा को इनसे प्रति मिलती है। नीचे लिखे पदों में भगवत्
साहित्य का ध्यान आता है—

भगवत्साक्षात्प्राप्त्यनन्तं तत् स्फुटपरायपरगत्यर्पणम् ।

मृदुमतान्तसतान्तमसोक्यत् स सुरभि-सुरभि सुमनोमरं ॥६२॥

वदनसोऽमनोमपरिभ्रमद्भ्रमरसंभ्रमसंभृतसोभया ।

अनितया विषये कसमेससाकसकसोऽमकसोसहसाम्यया ॥६३॥

मधुरया मधुमोषितमाधवी मधुसमुद्रिसमेधित मेधया ।

मधुकर्णमनया मुहुर्नमवन्निभृता निभृताक्षरमुग्धये ॥६४॥

विकचकमसगन्धैरन्धयन् सुगमासा-

सुरभितमकरन्धं मन्दमायाति वायु ।

समदमदनमाद्यौवननोद्दामरामा

रमणरमसत्वेदत्वेदविष्येदददा ॥६५॥

इन उपर्युक्त पदों में अनुप्रास और यमक की अपूर्व छटा एक ओर दिखाई पड़ती है तो मधुर शब्दावलि दूसरी ओर सुनिश्चय हो कर ध्यान में विभोर कर देने वाली है। अनुप्रास पद्योद्भवा में ध्वनन और स्वर दोनों की ही प्राप्ति वास्तव में प्राप्ति की वरिष्ठ शीलुति करती है। यमक के पद्यवर्णनों में शब्दों की ही यही वरिष्ठ रूप में दिखाई पड़ती है। एक उदाहरण और—

इह मुहुर्मुहितैः कसमे रवः प्रतिदिशं क्रियते कसमैरवः ।

स्फुरति आनुवर्गं यमरीचयः कमकरस्तमुवां य मरीचयः ॥४६॥

इसमें “कसमे रवः” “और कसमैरवः” तथा “यमरीचयः” और “य मरीचयः” शब्दों की देखिये। इसी भाँति पदों में कहीं-कहीं तो कोमल गूँथे छोटे बुबक्यों की भाँति गुँथे हुए हैं। यमक का प्रयोग मात्र कवि ने ध्वनित्य पद वर्णों की सजावट के लिए ही किया है। इस प्रकार के यमक पद्य के एक मात्र में होते हुए भी सारे पद्य को यमकृत कर देते हैं। यमक के प्रयोगों में कवि ने कहीं-कहीं आनुवर्ग यमका गोरक्षचन्द्रे वंश काव्य भी किया है। मात्र कवि एक किनोटी घाली थे। अतः उनके यमकों तथा अनुप्रासों में धनकी वह किनोटी शील प्रकृति प्रकटती है। जहाँ पर स्वाभाविक रूप से इस प्रकार की पद्य योजना हुई है वहाँ तो यम की बुझा नहीं है पर जहाँ पर एक सिलबाद के लिए पद्यों में ऐसा किया है वहाँ प्रत्यक्ष ही यम विमृष्टा हुई है जो भिरबकता की सीमा तक पहुँच गयी है। इसी भाँति यम व्यवस्था भी इस प्रकार की रचना में हुआ है। कुछ शब्द यमका शब्दसमूह मिल कर इतने मुँह होते हैं कि वे ध्वनि मात्र से ही यमका यम व्यक्त कर देते हैं। यम व्यवस्था का ध्यान नीचे लिखे पद्य को बार-बार पुनरागै से आता है।

विकचकमसगन्धैरन्धयन् सुगमासा-

सुरभितमकरन्धं मन्दमायाति वायु ।

प्रमदमदनमाद्याधीनोहामरामा-

रमणुरमसखेयस्वैरविन्देयवला ॥११-१६॥

इस छन्द के पदों से ही वायु की धीवतता, मन्दता एवं शान्तता हो गयी है।

इन्हीं कवि की धीमी साधारणता सरल स्निग्ध आवाजही परिष्कृत और चित्त-कर्षक करी गई है। कहा जाता है कि उन्होंने धीमे समाधों और दित्तु तथा कित्तु पदावलि का प्रयोग नहीं किया अतः उनके पद सुप्रसूत और सौन्दर्य की सृष्टि करने वाले हैं। इसीलिए अनेक पदावलियाँ सारगम्य और स्पृहणीय भी प्रवीण होती हैं। ऐसा चित्तनाई देता है कि कवि इन्हीं को शब्द कोष पर पुरा-भूत अधिकार या धीरे उनका प्रयोग जब कोटि के कौशल और सत्तावारण पाण्डित्य का प्रदर्शन है। समुद्रास और वयक के प्रयोगों की समुपमता देखने योग्य है —

‘कुमारभाषाभिप्रायभाषाधर्मावपावस्मीकृतारवोरबोपहृतिरसमीरणारणामिमा
मेन मानेताम्बुधाराधर्षं राजानमकापु’ “ इस शक्ति की पदावलियाँ वास्तव में मनोहर तथा हृदय को झँझुकर देने वाली हैं। मध्य यद्यपि विरग्यस्व पुरुषस्य “इस प्रकार की पद योजना से इस तरह भाव का भी भाव पर पूर्ण आधिपत्य या अतः उन्होंने विरग्यस्व की भी रचना कर ली। भाष कवि का पद आधित्य भी इन्हीं के पद आधित्य के समान अत्यधिक सरल स्निग्ध, आवाजही, परिष्कृत, चित्तकर्षक एवं सजीव है। देखिये —

। नवमसाधयसाधवन पुरः स्फुटपरागपरागतपकञ्जम् ।

मृदुलतान्त्रसतान्त्रमलोकयत् स सुरभि-सुरभि सुमनोमरं ॥१६-२॥

वसन्त का कैसा सजीव सरल मन्द आवाजही परिष्कृत तथा चित्तकर्षक वर्णन है। वयक की छटा से संपूर्ण पद जिस ठठा है। छटा सर्व वयक तथा समुद्रासों से भरपूर है। नीचे लिखे भाव के श्लोक को ध्यान से देखिये —

दधानैर्यनसाहृदय ससदामसदसर्ग ।

तत्र कांचनसन्ध्याया सख्ये त आराधनि ॥१६-१॥

उपमा और रूपक की एक साथ छटा को दिखाते हुए कवि भाव ने इस श्लोक में कोई भी ऐसा शब्द नहीं रखा है जो झोठ से उत्पन्न होता है वह है निरोद्ध रचना का सा मान्य है। वयक की छटा यहाँ भी ब्रह्म है —

बाहनाजमि मानासे साराजाधनमा सत ।

मत्तसारगराजैमे जारीहावज्जमध्वनि ॥१६-६॥

निध्नज्जवहारीभा भेजे रागरसातम ।

सतमानवभारासा सेना मानिजनाहवा ॥१६-१॥

देखिये कवि की चातुरी, ठेठीसर्ग श्लोक को उसटने से चौंटीसर्ग श्लोक का पूरा भाव बन जाता है। यह है वह श्लोक प्रतिलोभ वयक विमने लिये दली ने कहा है —

प्रावृत्ति-प्रातिसोम्येन पादार्थस्लोकगोपरा ।

यमकं प्रतिभोमत्वात्प्रतिसोममिति स्मृतम् ॥

उपयुक्त श्लोकों में कवि का प्रयोजना विषयक प्रयास स्पष्ट है। वहाँ धर्म की निमित्तता होते हुए भी एक प्रकार का सौन्दर्य है। इस तरह उद्गीर्णार्थ धर्म इस भाँति के विकट बन्धों से पूर्ण है जो कवि की धराधारण पर योजना शक्ति का परिचायक है। एक और श्लोक प्रस्तुत है जिसका शब्द ऐसा है कि वाक्यों को उलट कर पढ़ने से भी वही शब्द वही धर्म का वत जाता है। यह भी प्रतिभोम यमक ही कहलाता है —

विदितं दिवि केऽनीके त यात निजितामिनि ।

विमल गवि रोझारो योद्धा यो नतिमेति न ॥१६६॥

इसी तरह कहीं पर अठावन्न भसरोँ बाजा श्लोक है तो कहीं पर अष्टयुक्त भसरोँ बाजा श्लोक अपनी छटा बिखना रहा है। इस भाँति कहीं पर कवि अपनी प्रतिभा को क्या एक सौन्दर्य के धर्म की कुसमता में प्रयुक्त करता है तो कहीं सच्चिन्म विसेषकों के धर्म भवना चित्रण में प्रयुक्त करता है। यहाँ यदि कोई ऐसा कहे कि महाकवि कवी हैं महाकवि मात्र शब्द जवन परमात्मनि और पाश्चित्य प्रदर्शन में आते हैं तो इस कथन में अत्युक्ति नहीं है।

बैसा पहले भी कहा था चुका है, शब्द तथा पदों की योजना का सम्बन्ध अन्य तथा धर्मकार से भी घट्ट है। जब तक शब्द और धर्मकारों का धार्मिक प्रयोग न हो वे वर्तन के अनुकूल न हो तब तक वे रचना की सोचा नहीं बढ़ा सकते, बरन् उसको अनुत्तर ही बना सकते हैं। मात्र की रचना से ही ऐसे उदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। मात्र के शब्दों में बलि है। धनावश्यक पाद-पूरण समझें नहीं है। प्रायः सब ही शब्द धार्मिक, एक-से एक विशेष धर्म को प्रकट करते हैं इसी लिए उनके वाक्य विन्यास तथा पर योजना उन शब्दों की गति के प्रवाह को गिरन्तर बनाये रखने में सहयोगी है। मात्र मामिनी छन्द के प्रयोग में अधिक कुशल है (उनका पत्नीके नाम से उसका जो श्रुति-शाम्य है) वही तरह जैसे कानिवास वसन्त-तिसका छन्द के प्रयोग में। एक ही इस छन्द की गति ही अपने धर्म की है फिर उसमें धर्मकार योजना उसको और भी अधिक सुन्दर बना देती है।

कवि ने जैसे तो प्रायः सभी शब्दालंकारों का प्रयोग किया है फिर भी श्लेष यमक और अनुप्रास अधिक मात्र में प्रयुक्त हुए हैं। यमक नमत्कारप्रधान धर्मकार है। मात्र ने एक धर्म तो इसी से भर दिया है। यमक के लिखने में कवि सिद्धास्त है इसी लिए इनका प्रयोग वह वही सफ़लता तथा सरलता के साथ कर सका है। एक उदाहरण प्रस्तुत है —

अधिपतासन्नमुदप्रतापं रवि वषामेऽन्यरविन्दधाने ।

शु गावन्मियस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ॥६१२॥

“रविन्दधाने” तथा “अरविन्दधाने” इन दोनों शब्दों में शब्द-श्लेष मूलक विरोधा धर्मकार है। यमक धर्मकार तो है ही। कुछ स्वभावोक्तिपूर्ण ही इन धर्मकों के प्रयोग से बन गयी है। एक चित्र सामने उपस्थित है किसी के गिर जाने पर जीव हँस रहे हैं —

पुनस्त्रिमुत्कृत्य निरस्तसाधिनं
सहासहाकारमसोक्यज्जन ।
पर्याणत सस्तमुरोविसम्बिन

स्तुरगमं प्रदुत्तमेकया दिशा ॥१२ २२॥
द्वयरा मन्वावस्तु का वर्णम वेत्तिमे —

उत्तीर्णमारसपुनाप्यसपूतपीय
सौहित्यनि सहवरेण तपोरवस्तात् ।
रौमन्यमम्बरजसद् गुरुसास्नमासा

चक्रे निमीसवससेछणमीककेण ॥१३ ६२॥

कैसा सुन्दर चित्र है ? वैन पुष्टकाय है । वे वृत्त की घनी छाया के नीचे बैठे-बैठे बीरे
बीरे पुमान्नी कर रहे हैं विचित्रे जगका विस्तृत यत्न कम्बल बीरे-बीरे हिल रहा है बीरे दोनों
पक्षि घातस्य से भर कर घबर्मुही हो रही है । यह है पशु प्रकृतिका मन्वावद् चित्रण बीरे बी
दुस उदाष्टण मही प्रस्तुत किये जा सकते हैं —

प्रतिकुचितकूर्परेण तेन मन्वाणोपान्तिकनीयमानगम्यम् ।
ध्वनति स्म धनुर्वनान्तमत्तप्रचुर कौशरवानुकारमुर्ध्व ॥२० १६॥
उरसा विचतेन पातितास स मयरांचित मस्तकस्तदानोम् ।
क्षणमानिचितो नु सौष्ठवेन स्मिरपूर्वापरमुष्टिराबमी वा २० २०॥

प्रम्यावतो म्यावतसूर्यतणकां
निर्याणहस्तस्यपुरो बुधुसत ।

वर्गादुगवाहुँकृतिचास नियती

मरिमघोरसत गोमठस्मिकाम् ॥१२ ४१॥

गोष्ठेयु गोष्ठीकृतमण्डसासनाम्

सनादमुत्पाय मुहु स मस्तक ।

प्राम्यानपत्यद् कपिधं पिपासत

स्वगोत्रसमीर्तनमावितात्मन ॥१२-३८॥

निम्नानि दुःसादवतीर्य साधिमि

सयस्नमाष्टक्या धर्मी धर्मी

उत्तेष्टमाससुरारव द्रुता

दसपीहन्तप्रप्रहमवतां प्रजां ॥१२-३९॥

इसी भाँति जग की उपमाएँ भी इतनी ही रोचक हुई हैं । नीचे लिखी उपमा कितनी
शर है :—

अनुसन्ततिपातिनः पदुत्पन्नं वषट् शुद्धिमूर्तो एहीतपसा ।

बदनादिब याविनोऽथ सध्या क्षितिमतु र्धनुषः सरा प्रसस्तु ॥२०॥११॥

इसमें वचन के पक्ष में भी बाण के समस्त विशेषण प्रयुक्त होये जिनका अर्थ इस भाँति होना निरन्तर निकलने वाले धर्म प्रतिपादन में समर्थ व्याकरण सम्मत् किसी न किसी पक्ष से युक्त । धीरे धीमे —

तद्विपुलसज्जातरूपपुंस्तु समय स्थाममुद्धरमिध्वनश्मि ।

असदैरिब रंहसापतश्चिः पिद्वे सहतिशालिमिः शरीरे ॥२०॥१३॥

इपुर्धर्मनेकमेकबीरस्तवरिप्रच्युतमच्युतः पुवल्के ।

अथ याविकृत-प्रमाणमन्यै प्रतिवादीब निराकरोत् प्रमाणी ॥२०॥१८॥

एक स्थान पर प्रातःकाल की पहकती हुई चित्रियों का उद्धार बड़े को बल में कुबोले के सज्ज होने वाले कुलकुल सज्ज के समान बताया है तो दूसरी ओर प्रभाववेला में यह के दीपों की मन्त्र कान्तिवाली धिमा को डेबते हुए चूर्ण के मैनों के गुम्ब बताया है । विधुपाम की सेना का बीकृष्ण की सेना का चिह्नना बीसा ही है बीसा नदियों के बल का महासागर की बलकुम्भी धर्मियों से टकराना ।

काव्य के सीहन्व से कवि की कला का परिचय मिलता है । भाषा के होप कला की अभिव्यक्ति होती है । कलापूर्ण भाषा सुन्दर होती ही । सम्बोधना, परबोधना अन्य तथा ध्वनिकार हन्नी के द्वारा कर्त्ता मूर्तस्व बाण्य करती है । सब से पहले नाम कवि की सम्बोधना परबोधना वाक्य-विन्यास अन्य अनुप्रास वमत्त कपया धादि की छटा पाठकों को अपनी-अपनी ओर आकृष्ट करती है । उनको सम्मय करती है । अब एक और है—

“नवपलासपलासवर्नं ततः स्फुटंपरागपरागत पंकजैम्”

“मधुरमा मधुबोधित मामयी मधुसमृद्धिसमैधितमेधेया”

इस प्रकार के वाक्यों को सुनते हैं तो उन्हें मन ही मन बार-बार पुनरुक्ताने मक्ते हैं । इसी को वाचा सीहन्व कहते हैं जो काव्य-सीहन्व का धामकतत्व है । ऐसे से बकर धेनवा सुनकर बाटक मन्त्रमुख से काव्य की आत्मा की ओर आकृष्ट हो जाते हैं धर्म हो समझते हैं और धर्म ग्रहण के साथ ही रसानुभूति जनको होने लगती है ।

चित्रण

कलाकार के मन में बिज अनुभूति का साक्षात्कार होता है उस अनुभूति को वह जानक्यता के साथ अन्य रेखाओं को संक्षिप्त करता है । इस ध्येय को साहित्य में चित्रण यह संज्ञा दी है । इस चित्रण के एक समवेत स्वरूप से बिज बन जाते हैं । ये बिज अपनी विभिन्न स्थिति को रखते हुए जब कथा वस्तु की भित्ति पर पना स्थान प्रतिष्ठित हो जाते हैं तो फिर काव्यधरी-रक्तता निर्वाह हो जाता है । बिज प्रकार विभिन्न धर्म धीब काग हाथ पर और उनके भी धनवन अपना एक सीहन्व रखते हुए यथास्थान मुनिविर्भू होकर

एक सुन्दर मानव शरीर की रचना कर देते हैं उसी प्रकार ये सम्प्र-विष काम्य अपना महा-
काम्य की ऐसी रचना कर देते हैं जो इन्द्रिय गोचर होकर सहस्रव को कवि हृदय तक पहुँचा
देता है । यही इनका महत्त्व है और यही इनकी उपयोगिता ।

महाकवि माघ ने भी जो मञ्जुर चित्रों से समवेत रचना की है वह अपने विविष्ट रूप
में सहस्रवों के इन्द्रिय गोचर होकर उन्हें माघ की अनुसूतियों से एकात्म करने में प्रयुक्त
सहायक हुई है । माघ काव्य के कुछ बाठवें सय शृङ्गारिक चित्रों से भरे हुए हैं । पाठक
वहाँ ऐसे एक नहीं अनेक भाँति भाँति के चित्र पावेंगे जो उनके मानस पटलों पर प्रतिबिम्बित
होकर उनकी एक समूह पूर्ण स्पन्दना करेंगे । सराहरणार्थ ऐसे चित्रों को निबा बा सकता है
जिसमें धीरे धीरे रत्न नायिका के सुशील शरीरों से लिपट गये हों । बरबों के शरीर से चिपक
जाने के कारण रमणियों की निर्मल न मोटी-मोटी याँतल जगहों एक बिन्दु प्रकार की
घाकृति को लिए हुए व्यक्त होती हैं, जिसरी हुई जनकों पर जन कण मोतियों से जलकने
समते हैं तथा सिकक शीर जनराम के कुल जाने पर मुख की सहज घोमा निहार जाती है ।
कवि ने इस प्रकार के सभी चित्रों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ शब्दों के सहारे दक्षित किया है ।
स्नान के बाद धमिसार का रूप निम्न श्लोक में वर्णनीय है ।—

स्वच्छाभ्यं स्नपनविधौ तमंगमोऽस्ताम्भूलघुतिविषादो बिसासिनोनाम् ।

वासह्य प्रतनु विविक्तमस्तिवतीयानाकस्यो यदि कुसुमेयुणा न धूम्य ॥८॥७०॥

स्वच्छ वस्त्र में स्नान करने से बुला हुआ निर्मल शरीर, ताम्बूल की सामिमा से सुगंध
नित सुन्दर शरीर तथा सूक्ष्म एवं सुन्दर वस्त्र धारण करना फिर एकान्त स्थान यही ही
वस्तुएँ बिसासिनी स्त्रियों की सुन्दर वैभवमूपा है यदि ये काम देव से धूम्य न हों । ऊपर में
“यदि कुसुमेयुणा न धूम्य” इन शब्दों से सादा चित्र ज्ञेयमगा ठठा है । शरीर की कान्ति
छिन्नी पड़ी हुई है यही यही सुन्दर गुण्टा तथा सहसा बहान लिये हैं कान्ति के मालो चार
बाँद लप गये हैं । इसके ऊपर के श्लोक में नायिका अपने हावों से बड़ा बोध रही है,
(सीपन्त निबन्धमुपपत्ती कराम्याम्) एकान्त स्थान है, संयम की इच्छा उसके मन में है इसके
हास बिलास भावि मानो काम के संकेत हैं । समूचा यह चित्र पूर्ण सौन्दर्य को लिए हुए है ।
इसी भाँति के बहुत कपचित्र पूरे उतरे हैं ।

आइये नीचे जो श्लोक दिये गये हैं उनके चित्रों में जो स्फूर्ति की पूर्ण लब्धिवकता है
वह भी अनुभव करने योग्य है ।—

अवसोकनाय मुरविद्विषा द्विप-

पट्टमणाद्विहितोपहृतय-

भवभोरिताम्यकरणीमसत्वर-

प्रतिरप्यभीशूरय पीरयीपित ॥१॥६०॥

अभिधीक्य सामिहृतमण्डनं यती

करद्वयनीविगसदंशुका स्त्रिय-

- १६८ दधिरेऽधिभित्तिपटहप्रतिस्वने
 १६९ स्फुटमट्टहासमिव सौधपक्ष्म ॥१३।३१॥
 १७० रमसेन हारपवत्तकाञ्चय-
 १७१ प्रतिमूर्ध्वेजं निहितकर्णपूरका ।
 १७२ परिवर्तिताम्बरयुगा समापतम्
 १७३ बसयीकृतभरणकुण्डला स्त्रिय ॥१३।३२॥
 १७४ व्यतनोदपास्य चरण प्रसाधिका-
 १७५ करपस्तवाग्रसबसेन काचन ।
 १७६ मृत्पावककपवचिनितावनि
 १७७ पदवीं गतेषु गिरिणा हृत्पर्वताम् ॥१३।३३॥
 १७८ कैंसी हड़बड़ाहट लगस्थित हो गई । बीकम्प को देखने के लिए अपने कामकाज की सुब
 १७९ कुंभ भूलकर स्त्रियाँ भापी जा रही हैं । शीघ्रता में किसी स्त्री ने मुख्यमाता के स्थान पर
 १८० करवनी पहन भी ली किसी ने केसों पर काग के धामुपण पहन लिये थे किसी ने घोड़ने के
 १८१ कुपट्टे को पहन कर पहनने की छाड़ी घोड़नी भी किसी ने स्तनों को ढकने वाली चौड़ी को
 १८२ जंभाओं में पहन लिया था तो किसी ने काग के कुण्डल को कहीं छुसरी बगल । कोई तो
 १८३ झूझार करने वाली झूठी के करपस्तनों से अपने पैर को छुड़ाकर पीले मायक से रंगे गये एक
 १८४ पैर से बरखी तल को रंगती हुई जाकर देखने के लिए चली हो गई । कितना लचील चित्र
 १८५ यह है । प्रतिसयोधि ने इस चित्र के रंगों को ग्रहण करके ज्वार दिया है ।
 १८६ अनुनयमगृहीत्वा व्यावसुप्ता पराधी
 १८७ कृतमयकृकवाकोस्तारमाकण्य कस्ये ।
 १८८ कस्यपि परियुक्ता निद्रमाग्रा किन्तु स्त्री
 १८९ सुकुनितनयनीवास्तिव्यति प्राणनाथम् ॥१३।३४॥
 १९० प्रियतम की रति प्रार्थना को धस्तीकार कर सोयी हुई जब पूर्वक बूझती धोर मूँह
 १९१ किये हुये कोई चुम्बरी प्रयास के समय मुँह की तीव्र धावाज सुनकर बगड़ाई लैने के बहाने से
 १९२ क्रियावति के सम्मुख हो गई है धीर भीर से धाँसे मूँहकर भागो बिना जाने ही अपने प्रियतम
 १९३ से धाकर छिपट गई है ।

इसमें कैंसी रेखाओं का प्रयोग है । नायिका प्रियतम की रति प्रार्थना को धस्तीकार कर सल पूर्वक पीठ केरे हुए सो गई है किन्तु धाँसों में नींद कहीं वह तो बहाना बना रही है कहीं नायक उसको प्रसन्न करे मनावे किन्तु ज्यों का त्यों पड़े रहना नायक की धोर से कुछ भी संकेत न दिसना धाँस भागो इस चित्र की रेखाएँ हैं । नायिका का हृदय बासना से लदीप्त है प्रयास का समय होने को है वह मुँह की तीव्र धावाज को सुनते ही तुरन्त ही पंग भन के बहाने से अपनी धाँसों को बन्द किये हुए ही करपट बलकर अपने प्राणनाथ के चिपक जाती है इस सबसे चित्र कितनी यहुराई को वा गया है । चित्र साकार हो उठ्य है माहुर की सहानुभूति का सबसे ठोस प्रालंबन बन गया है । नायक नायिका को पीड़ा तन

करना चाहता है, उसका एक दूसरा ब्यार्थ बिगलु यही है :—

सरमसपरिरम्भारम्भसंरम्भभाजा
मर्दाघनिदमपास्त सस्ममेर्मागनामा
मसनमपि मिद्यान्ते नेप्यते सत्प्रदातुं
रमचरणविद्यासघौणिसोसेशाणेन ॥१॥२३॥

रात्रि के समय बीमतापूर्वक धार्मिक करने के प्रयत्न इन्धुक्त प्रियतम ने रमली का जो बदन छीन लिया था उसे प्राप्त-काल हो जाने पर भी रम के बक के समान विधत्ति मुन्दरी के निरन्तर स्पर्श को रोकने के सोच से वह नहीं लौटा रहा है।

मधुर केश की एक हल्की रेखा से बिज की बीजना, कहीं-कहीं पूरी रेखा बीजना कहीं पर एक अवसर को ही उधार कर एक ही अनुभव द्वारा बिज में समीपता माना कहीं केवल छाया का प्रयोग करना माथ जैसे महा कवियों का ही काम है। प्यारहूँ सर्व में इस प्रकार के प्राय सभी बिज ब्यार्थ करते हैं। इन बिजों से कवि स्वयं की अनुभूतियाँ सङ्ग्रहों की अनुभूतियों से तादात्म्य हो गया है। सूक्ष्मता का एक प्रकृति बिज भी दर्शनीय है।—

द्रुतघातमुन्मनिममगुप्तो मपुरर्धमन्मपुप पयसि ।

रक्तेर्विठिचिनसिन्मबुह्मजसदण्डकैकतरसण्डमिव ॥१॥२४॥

तपाये हुए स्वर्ग के तुल्य काष्ठियुक्त बिम्ब के धई माथ के समुद्र के जल में डूब जाने पर सूर्य का मध्वत ब्रह्मा के मध के द्वारा दो भागों में विभक्त ब्रह्माण्ड के एक अण्ड की भाँति सुघोमित हो रहा था।

दूसरे सर्वों में भी कवि ने स्वान-स्वान पर अनेकों बिज उपस्थित किये हैं। प्रथम सर्व में मारहायसन पर मारक का बिज, दूसरे सर्व में सना तथा तीनों समासदों के बिज चतुर्थ सर्व में रसक बर्षत का बिज फिर जनविहार, जनविहार आदि से सम्बन्धित बिज, इन्द्रप्रस्थ में वाधबों के शीघ्रप्ल के मिलन पत्र के बिज में क्लेशमुक्त धिमुदास का बिज भीरस युद्ध आदि के बिज से सभी बिज सजीव हैं, प्रभावोत्पादक एवं आह्लादकारी हैं। कहीं कवि की संक्षिप्त योजना प्रत्यक्षबल है तो कहीं विरोध मावना को पम्पीरसर बना देती है। इन बिजों में रंगों और प्रकाश के साथ स्वाभाविकता और ब्यार्थता पूर्ण रूप से विद्यमान है। कवि ने सम्म जगत् के बल पर ही यह सब कुछ कर दिखाया है।

राज बोझना एवं पदबोझना को लेकर हयने राज्य प्रसङ्ग पर तथा बिगलु धक्ति की जो बातें रही हैं उनके द्वारा अभिप्राय यही है कि हम महाकवि माथ के काव्य सामर्थ्य का भान करके जिससे सङ्ग्रह ग्रहण होकर उनके काव्य से सरमता पूर्वक आनन्दानुभूति को प्राप्त करें।

यहाँ वह बात ध्यान देने की है कि इस महाकाव्य के लिए पाठक में जो बड़ा बाह्य छवरा धार्मिकता सभी हो लज्जा है जब वह स्वयं विद्वान् हो, उसे सम्यक् शक्तियों का परि-
ज्ञान हो विभिन्न विषयों का उसमें परिचय हो और इन सब बातों के साथ-साथ वह सद्-
बल भी हो। इस प्रकार की लड़ा के बिना कोई भी पाठक या आलोचक माथ कवि के प्रति न्याय नहीं कर सकता।

काव्य में रस-यस

पूर्व प्रकरण में बार-बार आनन्द अनुभूति आदि का उल्लेख किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि यह आनन्द क्या है? साहित्य मर्मज्ञों ने इस आनन्द को रस की संज्ञा दी है जिस पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं। साहित्य में इस रस का अभिप्राय काव्यात्मक है। व्याकरण के अनुसार रस की व्युत्पत्ति है 'रस्यते इति रसः' जो आस्वादि किंवा नाम रही रस है। रस धातु का कर्म है आस्वादि करना और स्नेह करना 'रस आस्वादि स्नेहयो'। इसका निकटवर्ती तो यह निकला कि जिससे मन को इषीमान के साथ स्वाद मिले वही तो रस है। जो वस्तु हृदय को इषीमान करती हुई उसी रस (स्वाद) में तल्लीन कर दें वही काव्य है। टीटिलीय उपनिषद् के ११. ७. १ में जो कहा है 'रसो ब्रह्म, रस इत्यमं ब्रह्मात्मनी भवति' ठीक ही है। यह रस ही तो काव्य पुरुष की आत्मा है अमरकार पीति कल्प बिजल आदि तो इसके बाह्य उपकरण हैं। बामन रस को कान्ति पुण्य का मूल तत्त्व स्वीकार करते हैं। (वीतरसार्थं कान्तिः)। दण्डी खट नामह आदि ने अमरकार को सब कुछ मानते हुए इसको ही काव्य की आत्मा कहा है। इसी युग में महाकवि मान हुए जिन्होंने बामन के ही अनुसार कान्ति को काव्य में माना आवश्यक समझा। यह कान्ति प्रीतित्व के बिना नहीं आ सकती। यदि सब्य का प्रीतित्व तथा अर्थोचित्य हो तो फिर कविता में कान्ति का उदय हो जाता है यही कान्ति रस बन जाती है। कान्ति बिहीन कविता नीरस और निरस्य हो जाती है। कहा है—

एते रसा रसवतो रमयन्ति पुंसः
सम्यक् विमग्न रजितादधतुरेण चारु ।
यस्मादिमाननयिमम्य न सर्व रम्य
काव्यं विधातुमममत्र सदात्रियेष्ट ॥

रस की अनुभूति कैसे हो? किसी विषय का अनुभव प्राप्त किए बिना मानव हृदय को आनानुभूति कैसे हो सकती है? कवि को जब सहज अनुभूति होने लगती है तभी वह भाव संज्ञा को प्राप्त कर लेती है। कवि भित्ति ही प्रतिमाधारी हो जब तक उसको सहज अनुभूति प्राप्त नहीं हो तब तक उसकी रचना कविता नहीं कहला सकती। अनुभूति भावों को
● बापट पद्याओं में कर्तों में रस अनुरक्तन तरल पदार्थ संवीत में कर्ण द्वारा प्राप्त आनन्द, चिकित्सा में तर्कोक्तुष्ट प्राणवायिनी प्रीत्य आध्यात्म में वरमात्मा साहित्य में काव्य से आस्वादि से प्राप्त आनानुभूति रस है।

सहस्रपात्र बनाती है। यह सहस्रपात्र साधारणीकरण है। इस साधारणीकरण के सम्बन्ध में शुक्लजी कहते हैं 'रसोऽन्वेषण की शक्ति किसी भी भाव में एक एक नहीं पा सकती जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में न लाया जाय कि वह सामान्यतः सबके समीप भाव का सामन्वय हो सके। जब कोई भी व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस भाँति अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति लाय सके तो वह साधारणीकरण की शक्ति रखता है। अनुभूति तो सभी में होती है और सभी किसी भी भाँति उसको पोढ़ा बहुत व्यक्त करने की शक्ति रखते हैं पर साधारणीकरण की शक्ति सब में नहीं होती। यही कारण है कि अनुभूति और अभिव्यक्ति के होते हुए भी सब कवि नहीं हो पाते। जिसको लोक हृदय की पहचान हो वो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सकता हो जिसकी अनुभूतियाँ विधेय स्वरूप सजग हों जिसकी भाव-शक्ति विधेय रूप से समृद्ध हो ऐसा ही कवि भाषा का भावमय प्रयोग करते हुए साधारणीकरण द्वारा पाठकों के हृदय में रस (मानव) का उत्पन्न करता है।

डाक्टर गजेन्द्र शैलिकाव्य की भूमिका में अभिनव भुक्त के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "मानव भाषा प्राकृत है सभी भाषाओं में विधेयक सहस्रों की भाषाओं में स्वभाव से सांसारिक अनुभव पूर्वकण्य व्यवसाय-माल-घादि के समस्त रूप कुछ भूतपत बावनाएँ ही पारिभाषिक यन्त्रावलि में स्थायी भाव कहलाती हैं। विभाव अनुभाव और संघारी के कुसम प्रवर्धन से ये भुक्त वाचनाएँ वा स्थायी भाव ही उत्पन्न होकर रस रूप में परिणत हो जाते हैं अर्थात् उस व्यवस्था को प्राप्त हो जाते हैं जहाँ एक मानवमयी चेतना के रूप में उनका अनुभव होता है। यहाँ आकर भाव की संवर्धिता गूढ़ हो सकती है। वह नेत्र या हृदय का न रह कर साधारण भाव मात्र रह जाता है और इस प्रकार सर्वसाधारण बनकर एक साथ इतना तीव्र हो जाता है कि उसका भाव ही गूढ़ हो जाता है। केवल एक मानव मयी चेतना रह जाती है। अद्वैतात्मक का मत है कि काव्य की प्रकृति ही ऐसी है कि सहस्र को पहले उसका अर्थ-अर्थ फिर मानव अर्थानि विविध रूप से चिन्तन और इसके उपरान्त गुरुत्व ही मानव प्राप्ति सहस्र में हो जाती है, परन्तु अभिनव भुक्त कहता है कि रस की स्थिति सहस्र की भाषा में ही है, काव्य उसकी अभिव्यक्ति मात्र करता है। यह ठीक भी है रस बर्णा विषयीगत है सहस्र की भाषा में ही उसकी स्थिति है वस्तु में नहीं। कवि जब अपनी अनुभूति को समवेध बना देता है और सहस्र व्यक्ति इस समवेध अनुभूति को जब ग्रहण कर लेता है वह मानव की उपलब्धि होती है। सहस्र की रसानुभूति से ही वो उचका घामम होता है। 'मैं हूँ' यही रस का सार उत्तर है जिसको हम भक्तवृत्तियों का सामय्य स्वीकार करते हैं। इस भाँति अपनी ही अस्मिता वृत्ति का आस्वादन मानव (रस) बड़ा गया है। यह रस दोनों में ही है यदि दोनों ही व्यक्ति, कवि को अपनी अस्मिता के आस्वादन का रस वृत्ति के हों। अनुभूति को अभिव्यक्ति करने में कवि को अपनी अनुभूति को समवेध बना पाता है। कवि अपनी समवेध अनुभूति को ग्रहण करने में सहस्रक साथ अपनी अस्मिता का आस्वादन कर पाता है। कवि अपनी अनुभूति का रस को स्वयं का भी है सहस्र के पास भी भेजता है।

काव्य में रस-पक्ष

पूर्व प्रकरण में बार-बार ध्यान्य अनुभूति भावि का उल्लेख किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि वह ध्यान्य क्या है ? साहित्य मर्मज्ञों ने इस ध्यान्य को रस की संज्ञा दी है जिस पर विद्वानों ने विभिन्न मत हैं। साहित्य में इस रस का अभिप्राय काव्यानन्द का है। व्याकरण के अनुसार रस की व्युत्पत्ति है "रस्यते इति रसः" जो आस्वादिष्ट किया जाय वही रस है। रस वायु का धर्म है आस्वादन करना और स्नेह करना "रस आस्वादन स्नेहो"। इसका निष्कर्ष तो यह निकला कि जिससे मन को इरीमाव के साथ स्वाद मिले वही तो रस है। जो वस्तु हृदय को इरीमूठ करती हुई उसी रस (स्वाद) में लसीन कर दें वही काव्य है। छिंदीय उपनिषद् के ११ ७ १ मं. को कहा है "रसो ब्रह्म, रस इव ब्रह्मं सप्त्तानन्दी भवति" ठीक ही है। यह रस ही तो काव्य पुरुष की आत्मा है धर्माकार पीति एवं विषण्ण भावि तो इसके बाह्य उपकरण हैं। वाग्म्य रस को कान्ति बुद्ध का मूल तत्त्व स्वीकार करते हैं। (पीतरसत्वं कान्तिः)। बम्पी खट नामक भावि ने धर्माकार को सब कुछ मानते हुए इसको ही काव्य की आत्मा कहा है। इसी युग में महत्कवि माधव हुए जिन्होंने वाग्म्य के ही अनुसार कान्ति को काव्य में आत्मा आबश्यक समझा। यह कान्ति प्रीतिरस के बिना नहीं जा सकती। यदि काव्य का प्रीतिरस तथा प्रबोधित्व हो तो फिर कविता में कान्ति का जय हो जाता है वही कान्ति रस बन जाती है। कान्ति बिहीन कविता नीरस और निरस्य हो जाती है। कहा है—

एते रसा रसमतो रमयन्ति पुंसः
सम्यक् विमज्ज्य रचितापचतुरेण चाद ।
यस्मादिमाननधिगम्य न सर्वं रम्यं
काव्यं विधातुमसममं तदात्रियेत ॥

रस की अनुभूति कैसे हो ? किसी विषय का अनुभव प्राप्त किए बिना मानव हृदय को भावानुभूति कैसे हो सकती है ? कवि को जब सहज अनुभूति होने लगती है तभी वह मात्र संज्ञा को प्राप्त कर लेती है। कवि कितना ही प्रतिमासापी ही जब तक उसको सहज अनुभूति प्राप्त नहीं हो तब तक उसकी रचना कविता नहीं कहना सकती। अनुभूति भावों को

● ज्ञात वदार्थों में कतों में रस मयुरतम तरल पदार्थ संवीत में कर्तुं द्वारा प्राप्त ध्यान्य विविधता में सर्वोत्कृष्ट प्राणुदामिनी प्रीतिरस आध्यात्म में वरमात्मा साहित्य में काव्य से आस्वादन से आद्य ध्यान्यानुभूति रस है।

यदि कवि के कहने में कोई रस नहीं है तो सङ्कल्प के हृदय में स्थित रस सुस्त पड़ा रहैगा और इसी तरह यदि सङ्कल्प के हृदय में रस नहीं है तो नवि का समवेष्ट निष्फल रहेगा। यही कारण है कि अनेकों निष्फल शब्द बेजाने को मिलते हैं और अनेकों अरक्षिक व्यक्ति।

उदाहरण के रूप में हम यहाँ पर शृङ्गार अथवा और को लेकर इस बात को स्पष्ट करेंगे। कल्पना करती जाय कि अमुक व्यक्ति किसी सुन्दर स्त्री को घबरा घपने समान ही बनघासी किन्तु किसी कारणवश नैमनस्य को प्राप्त ऐसे व्यक्ति को वैभवा है तो उसके हृदय में सहसा सङ्कल्प होने के कारण वैसा ही भाव बाह्य हो जाता है। कामिनी के प्रति वासना की प्रवृत्ति तथा समान बलघासी के प्रति युद्ध की अभिभावा। वर्णन के रूप में उस भाव को बहूण करना फिर कार्य करने के लिए प्रवृत्त हो जाना भाव तो रस नहीं है। वर्णन करने पर भाव बाह्य ही है जो संस्कारधीन मनोविकार है। यह अस्थिर अनुभव है। स्वभाव वृत्ति या म्भा से इस संस्कारधीन अनुभव का सम्बन्ध है। इस मनोविकार पर हमारी मनोवृत्ति को एक स्थिर मनोव्या घबरा इष्टिकोण है और जिसका क्लम मिमाल अनेक मनोविकारों और मानसिक क्रियाओं द्वारा होता है और जो मनोविकार से अपेक्षाकृत स्थिर तथा जिसका सम्बन्ध विचार से है अर्थात् जिसमें बौद्धिक तत्त्व भी अभिवाँत विद्यमान रहता है उस कार्य को कर देने पर प्रवृत्त हो जाती है। कार्य का कर सेना प्रत्यक्ष अनुभव है जो रस नहीं हो सकता है। कवि का प्रत्यक्ष अनुभव उस अनुवृत्ति को जो भाव में प्रसन्न न रहकर संस्कार मान रह गई थी काव्य रूप देने का अर्थात् बिम्ब रूप में उपस्थित करने का अनुभव है। काव्य रूप देने में वह उस संस्काररूप अनुवृत्ति का चिन्तन (भावन) करता है। चिन्तन की इस प्रक्रिया में एक तरह ऐसा घाता है जब उनके अपने हृदय का भी भाव उद्बुद्ध हो जाता है। कवि के मांस में उसी काव्य रूप पूर्ण हो जाता है और उस ही वह रस का अनुभव प्राप्त कर लेता है। बाहर से प्राप्त किसी अनुवृत्ति के संस्कार का भावन नहीं हुए अपनी हृदय स्थित भावना को जान सेना ही तो रस रचा को प्राप्त कर लेता है। यही सङ्कल्प करता है और वही कवि। काव्यानुवृत्ति संवेदन से ही निर्मित है। इन संवेदनों में धर्मवत्त्व और अन्विष्टि बँटे ही स्थापित हो जाती है तो फिर हमारी अनुवृत्ति मधुर होती है। काव्य जीवन की ही अनुवृत्ति है और काव्य के चिन्तन का अर्थ ही अन्वयत्वामें व्यवस्था स्थापित करना है और यही भाग्य है। इसी भाँति जीवन के कटु अपने तत्त्व रूप संवेदनों के समन्वित हो जाने से ध्यानप्रवृत्त बन जाते हैं। संवेदन अपने पाप में कटु और मधुर नहीं होते। कटुता और मायुर्ग तो अनुवृत्ति का गुण है। इन कवय को भाव की कविता पर चर्चित करके इस प्रकार को समाप्त किया जायगा।

महाकवि माय का समय एक घोर तो मुझ का वा जब राजपूत मोय नवीन राख्यों की स्थापना अपनी सेनाओं ने बस पर कर लिया करते थे अर्थात् प्रतिहारों ने किया बापा राजन ने किया तो बूखी और वह विसास का भी था। ये मोम लक्ष्मी के पुत्र ने बना भाव न था बिन वस्तु की अभिभावा होती वह वस्तु तुरन्त उनके समीप या जाती। अतः मोम विसास का भाग्य भी उन्होंने बना। प्रतिहारराजपूत मधिरा श्री नामिनी में लित रहने जाने थे। अतः विसासिता उनकी भाँति में पाये जावती थी। यही कारण है कि उनके महा-

काव्य विद्युत्पातवत् में एक घोर वीरता की भावना व्याप्त है तो दूसरी घोर शृङ्गारिकता । इस महाकाव्य के पाठ से धनुर्व ध्यानन्द की सपसन्धि होती है । पाठक भाव-विमोह हो जाते हैं । कुछ क्षणों के लिए सुबबुब को बैठकर कवि के भावों से आत्मसात् हो जाना ही तो ध्यानन्द का धनुर्व है । धनुर्वृत्तियों का सामंजस्य यही तो है । कवि के कहने में रस है यत् यह पाठक के हृदय के रस को उत्कृष्ट करके साधारणीकरण द्वारा रस का आस्वादन करा रहा है । हम महाकवि का काव्य पढ़ते-पढ़ते अपने संवेदनों में योग्यतानुसार सामंजस्य और सम्वन्धि स्थापित करने लग जाते हैं । उसकी रसामुभूति से ही रसोदय हो जाता है । हम उसमें अस्मिता वृत्ति का ध्यानन्द लेते लगते हैं । कवि अपनी विश्व धनुर्वृत्ति को कर पाठकों के सम्मुख रखता है वह सब कान्तिमुक्त (ध्यानन्दप्रव) बन जाती है । एक उदाहरण देना यहाँ समीचीन होगा—

अवर्णकमकपरिवर्तनोभित्ताश्चक्षिता पुष्ट पतिमुपेतुमात्मजा ।

अमुरोदिताश्च कक्ष्येन पत्रिणां विवर्तेन वरसलज्जय निम्नया ॥ ४-४७ ॥

कम्पा की बिवाई का कक्ष्य हृदय कैसा उबीब एवं बिचोपमता को लिए हुए है । योग्य छन्द का ऐसे अवसर पर उसी क्षण में लिखना और धर्मकार से बिवाई को स्पष्ट करना किटना प्राक्वर्क और चित पर प्रभाव डालने वाला है ? कोई भी पुत्री वाला जिसने अपनी पुत्री को पति के घर अवभावसर पर प्रेषित किया है इस वक्तो को पढ़कर वास्तव्य । प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा । उसकी माँओं के सम्मुख क्यों ही अपना अनुवृत्त वह हृदय धावेगा, वह बोझी देर के लिए अपने धापको विस्मृतावस्था में पावेगा । अस्मितावृत्ति का उदय धनुर्वृत्ति के सामंजस्य और सम्वन्धि से उत्पन्न ही होने लगेगा ।

कानिदास ने अमिजान बाहुन्तमम् में इस प्रकार की धनुर्वृत्ति के सम्बन्ध में टीक ही कहा है —

रम्याणि वीक्ष्य मधुरीरव निखम्य धम्भान्

पयस्सुवी भवति यत्सुखिनोऽपिपन्तु ।

तच्छेत्तसा स्मरति नूनमवोधपूर्वम्

भाव स्मिराणि अम्भान्तर सोहृदानि ॥ अंक ५ ॥

ऊपर की पंक्तियों में 'वाचस्विराणि' से स्वामी भाव की ओर ही कवि का संकेत है और मुनि को धाने का अमिप्राय अनेकन नन से चेतन नन में घा जाना है । इस अवसर पर चित की एकाग्रता के कारण समीपुल और दूरीपुल के ऊपर सरोपुल की प्रधानता रहती है और धारणा को स्वयं प्रकाश या स्वाभाविक ध्यानन्द उत्पन्न करने लगता है । यह है कवि की अमिस्वन्धि और यह है ध्यानन्द की चराकाठा । उक्त उदाहरण में नयी समुद्र की ओर प्रवाहित होती हुई लकी का रही है किनारे के लकी बहुत रहे हैं माली रैनतक नवत पिता के रूप में कक्ष्या से अमिभूत होकर कन्दन कर रहा है क्या इस हृदय को देखकर कोई दुहस्वी धम्मना नहीं हो उठता ? क्या उसे धनापास ही पूर्वजन्म की मुनि नहीं घा जाती ? क्या यह हृदय स्वाधी भाव को उत्कृष्ट नहीं करता ? एक उदाहरण और है जिसमें विद्युत् रूप की धनुर्वृत्ति एक धम्मनत भाव से जानो बोधर होती है ?

घट्टजसजराजीमुग्धहस्ताप्रपादा

यहुसमपुपमासावज्जलेग्दीबरासी ।

अनुपतसित बिरासी पत्रिणां व्याहरन्ती

रजनिमचिरबाता पूर्वसंध्या सुतन ॥ ११ ४० ॥

मात कमलों की पंक्ति रूप सुन्दर हृदयियों एवं पदतलों से युक्त अनेक भ्रमर पंक्ति
कमी कमल से सुशोभित नीले कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली तथा पक्षियों के कलरव में
बातें करती हुई यह प्रमादकाल की संध्या जोड़े दिनों की कन्या की भाँति अपनी माता रानी
के पीछे बीड़ने लपटी है ।

रस पक्ष

माघ के कला-पक्ष पर विचार करने के बाद कला की धारणा इसके सम्बन्ध में बहुत संक्षेप में एक सीमा ही प्रस्तुत की गयी। अब माघ काव्य के रस-पक्ष पर वाङ्मे से विस्तार के साथ विचार कर लेना प्रसंगानुसृत है।

महा कवि माघ ने अपने काव्य को श्री कृष्ण के चरित्रवर्णन के उद्देश्य से बनाया है यह बात उसके द्वारा निर्मित अन्तिम श्लोक से विदित होती है। श्री कृष्ण के चरित्रवर्णन के अनेक बक्ष हैं। कवि ने श्री कृष्ण को विष्णु का अवतार माना है। इस मान्यता के अनुसार भववान् विष्णु ही सृजनों की रक्षा के लिए तथा दुष्टों के संहार के लिए समय-समय पर अवतार धारण करते हैं। प्रथम वर्ण में ही इस बात की ओर पर्याप्त संकेत है। नारद का भावमन इसी हेतु हुआ था कि उस समय धिष्णुपक्ष जैसा दुष्ट अपने बक्ष के वर्ण पर घम प्राण प्रजा पर अत्याचार कर रहा था। प्रजा उसके अत्याचारों से अत्यन्त दुःखी थी। नारद ने श्री कृष्ण को अपने अवतार का स्मरण दिलाया और पृथ्वी के भार को हस्त करने के लिए इन्द्र का संदेश कह सुनाया। श्री कृष्ण को धिष्णुपक्ष का बक्ष करना अत्यावश्यक जान पड़ा मत इसी निमित्त मंत्राला करके अपनी यज्ञ, अस्त्र तथा वराधि देना के साथ इन्द्रास्त्र की ओर युक्तिष्ठिर के रामतुल्य बक्ष में जाग लिया। धिष्णुपक्ष का बक्ष करना साधारण कार्य न था। वह कई राजाओं का अभिषेध था। उसे भारते के प्रयत्न का वर्ण था एक भयंकर युद्ध का साक्ष्य। युक्तिष्ठिर का बक्ष ही अपूर्ण रखकर एक महायुद्ध को लेड़ देना भी अनुचित था। वहाँ धिष्णुपक्ष के पहुँचने की बात पड़ी थी। किसी न किसी प्रसंग को लेकर उसके कथनित हो जाने की पूरी सम्भावना थी। उसकी वह उत्तेजना उसके बक्ष का कारण बन जायगी, इस सम्भावना को लेकर इन्द्रास्त्र वाले का निश्चय किया गया था। वंसा ही हुआ। श्री कृष्ण का भवमान करने के प्रयत्न में धिष्णुपक्ष को युद्ध की योजना करनी पड़ी और फिर श्री कृष्ण के हाथों जड़का बक्ष हुआ। काव्य का उद्देश्यपूर्ण हुआ और उसकी समाप्ति हो गयी। महा कवि माघ धनपुत्र युग के कवि थे। इस युग की सीढ़ ही प्रधान भावनाएँ थी और भावना श्रुति यादना और भक्ति भावना। सांस्कृतिक संस्कृत कविता मुख्यतः इसी तीन पाठ्यों में प्रवाहित होती थी। राजदरबारों में वे ही कवि सम्मान पाते थे जो कवि होने के साथ-साथ बहुम भी होते थे। वीरता के प्रसंसक और विनाशप्रसन्न जीवन के उत्तमक कवि वहाँ विशेष रूप से सम्मानित होते थे। वीरता के आत्मन्व होते थे रक्त रित्त होने वाले युद्ध और श्रुति याद के आत्मन्व होते थे नायक-नायिकाओं के विभिन्न कालों के व्यापार। बक्ष भावना इन दोनों भावनाओं को किसी ईश्वरीय अवतार में संनिहित करने में सहायक है।

जाती थी। इससे मौखिक और पारलौकिक हितों का समाधान हो जाता था। विष्णुपाल बच काव्य का मुख्य रस भीर रस है केवल शृङ्गार रस नहीं। महाकवि माघ ने हिन्दू संस्कृतिके प्रतीक भार्ये महाराज की कृष्ण की बीरता के गुण गाकर एक भीर काव्य की रचना की है जिसमें शू नाट्य रस घन रूप से आ जाते हैं। मस्तिनाथ ने इस विषय में कहा है —

“नेतास्मिन् ययुर्मवम स भगवान् भीर प्रधानो रसः

शू गारादिमिरङ्गवान् विजयते पूरुषा पुनर्बर्णना।

इन्द्रप्रस्थगमाद्युपायविषय श्वेच्छावसाद्य फल

घन्यो भाव कविर्वयं तु कृतिम सत्सूक्ष्मसखेवनात् ॥’

महा कवि माघ ने मुखभीर भावर्षे पुरुष की कृष्ण का वर्णन किया है। उस वर्णन के रूप में कहीं-कहीं पर अपने समय के अछिन्नासी महाराजा यादवराह नामधारी भोज की प्रशंसा में भी कवि ने प्रस्तुति से काम लिया है देखिए —

तरसुराशि भवति स्थित पुन क क्नु यन्नतु राजसखण्डम्।

उद्युतो भवति कस्म वा भुक् ओ बराहमपहाय योग्यता ॥ १४, १४ ॥

भीर रस का स्थायी भाव सखाह है तथा उसके सहयोगी रीढ़ भीर भवानक हैं।

महाकवि माघ ने भी कृष्ण की मुख भीरता का बहुत ही विस्तृत वर्णन किया है।

उनके वर्णन भीर प्रकृति वाले व्यक्तियों में लक्ष्मीवन का संचार कराते हैं। कवि के चरित नायक हिन्दू संस्कृति के रसक एवं दुष्टों के संहारक एक अन्तारी पुरुष हैं। भीर रस के वर्णन की सफलता के लिए कवि के लिए यह भी आवश्यक है कि वह अपने चरितनायक के विरोधी के धर्म का भी वर्णन करे। भीरता का आनन्द तो गर्वना कर उल्लस कर भाते हुए बिहू की धिकार से मिलता है, बेचारी धीन बाखी में में कपटी हुई मेड़ों के मारने से नहीं। बीचों सर्ग में विष्णुपाल और श्री कृष्ण के मध्य जो तुमुन मुख क्षिप्ता इसका भीर १८वें और १९वें सर्गों में मुख भूमि में क्या-क्या हुमा कपटा है इस पर सविस्तर वर्णन है। वहाँ कवि की भीरता पूर्ण अनुभूतियों के प्रत्यक्ष वर्णन होते हैं। ये वर्णन एका ही नहीं हैं उनमें अपने चरित नायक के अनुभूती चरित की मर्मावा का पूरा ध्यान रखा गया है। वहाँ भीर रस के सहयोगी रीढ़ भीर भवानक रसों का भी समास्वाग समावेश हो गया है पन्द्रहवें सर्ग के श्लोक संख्या ४८ से श्लोक संख्या ५७ तक रीढ़ रस के स्थायी भाव शोक के अनुभावों का वर्णन है। नीचे भीर रस के एक दो सदाहरण प्रस्तुत किमि जाते हैं —

आक्रम्यकामप्रपादेन अध्यामस्यापुष्पैराददान नरेण।

सास्थिस्वान दास्यहारुणात्मा कश्चि मभ्यात्पाटयाभास दन्तो ॥ १८, ५१ ॥

रणेषु तस्य प्रहिता प्रपेक्षसा सरोपकुंकार पराङ्मुखीकृता।

प्रहृतिरेवोरधराजराजसो जवेग कष्टे समभा प्रपेदिरे ॥ १९, ५६ ॥

भीर रस के वर्णन में कवि की सफलता का मुख्य कारण यह है कि केवल पुरुष वर्णों की भरमार करके ही भीरता के वातावरण को उत्पन्न नहीं करता किन्तु वह उसके

लिए स्वानुभूतियों से प्रेरित एक सत्साहस्य वातावरण बनाता है। ऐसा वातावरण जो राज्य धृति के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता। फिर उसका इस प्रकार की रचना का एक उद्देश्य है, एक महान् उद्देश्य जिसका सम्बन्ध लोक रक्षण से है।

कहने में कोई संशय नहीं है कि भारतीय संस्कृति के समासक एवं आततायियों के संहारक श्रीकृष्ण से मानव को तथा उस समय के समाहित प्रजस प्रबोधीक धिषूपात से प्रतिमासक को चुनकर उनके बीच हुये सुमुख युद्ध के प्रसंग से मानव ने अपने काम्य कौशल का प्रदर्शनीय परिचय दिया है। मान के बीररसारसक इस काम्य का अनुकरण प्राप्त रहे जाने वाले अरि काम्यों में बिना गया है। अरि काम्यों के लोभों की पलना में इस महाकाम्य का मान प्राप्त के साथ बिना जाता है। धिषूपात तथा महाकाम्य के १८वें सर्ग में युद्धों का वर्णन अरि कर्मों का है। माने बताया जायेगा कि किस तरह हिम्मी के बीरवाचा काम के काम्यों में सेनाओं का प्रयास लक्ष्यों की चमक हाथियों की बिपाह मोठारों का पारस्परिक युद्ध आदि पर मान का प्रभाव है।

किन्तु बीर रस की प्रभावता होते हुए भी मान काम्य में शृङ्गार के हस्य अधिक है। इसका कारण युग का प्रभाव है। मान कवि युग निर्वाता तो वे नहीं वह तो युगानु सारी कवि थे। युद्धोत्तर-काल में राज कर्णों में जो होना उनीसे प्रभा प्रभावित रहती। जब वही वाचना का उद्देश्य स्वरूप बनने लगा तो बनता है भी वाचनमय जीवन को प्रपना सिमा। फिर बीररस के साथ ही शृङ्गार रस का सबसे सुन्दर वाच बनता है। बीर ही विलासमय जीवन को बिता सकते हैं और फिर बिपाह को तिलांजलि भी दे सकते हैं। जितने भी महाकाम्य हैं यदि उनको इस दृष्टि से पढ़ा जाय तो पता चलेगा कि उनमें अधिकतर महाकाम्यों का आधार कोई नायिका है जिसके कारण बीरता की प्रवृत्तारणा हुई है। उदाहरण और महाभारत जैसे राष्ट्रीय महाकाम्यों में सीता और द्रौपदी को केन्द्र मानकर सारे युद्धों की प्रवृत्तारणा की गयी है। फिर महाकाम्य के लक्षणों में युद्ध और मान के वर्णनों के साथ-साथ अनुवर्णन बन-बिहार बन बिहार आदि की भी परिगणना कर दी गयी है। और और शृङ्गार के स्वाभाविक योग-योग्य के कारण तथा परम्परागत भारतीय काम्य प्रवृत्ति के अनुसार मान ने इस महाकाम्य में बीर और शृङ्गार भावना का समुचित मिश्रण कराया है। इस महाकाम्य में संस्कृत के और महाकाम्यों की तरह बीर रस ही प्रधान माना गयीरस है और शृङ्गार उसका अंग है।

साहित्य रसालकार ने शृङ्गार की परिभाषा इस भाँति की है —

शृङ्ग हि मन्मथोदयेदस्तदागमनहेतुः ।

उत्तम-प्रकृति प्रायोरस शृङ्गार उच्यते ॥

शृङ्ग (कामोद्भूत) के आगमन वा (उत्पत्ति वा कारण), हेतु शृङ्गार कहलाता है। वह उत्तम प्रकृति का होता है। ऐश्वर्यवाता माय से युक्त कामोद्भूत शृङ्गार नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उरमें तो सारी निगता वा ही आधाय होता है। शृङ्गार के आत्मन्म मानव मानवता छोड़कर बाकी बाकी सारी वृत्त, परिहास अनुवर्णन बन, उपवन अम

विहार और चरित्र आदि हैं। हाथ माथ भृङ्गुटिर्भय आदि उसके अनुभाव हैं। स्थायी भाव रति है। छपटा कुपुष्पा मरण आनन्द आदि को त्याग कर सेव अनुया ब्रुति आदि सभी भाव संचारी हैं। इस भाँति नायक नायिका का पारस्परिक प्रेम बनीभूत होकर उसमें रतिभाव स्थापित हो प्राप्त करता है। रति का सहाय बतया गया है ?—

“रतिर्भक्तोऽनुकूलैर्भक्तैर्भक्तैः मनस प्रसङ्गायितम्” श्लोक में हम इस भाँति कह सकते हैं कि स्त्री पुरुष के हृदय में एक दूसरे के प्रति एक स्वाभाविक आकर्षण बन हो जाता है तो वह अनुकूल परिस्थिति में आकर होकर मानसिक तथा शारीरिक व्यापारों द्वारा बन बनी भाव से प्रसिद्ध होता है तो वह रति रूप से शृङ्गार कहलाता है।

काव्य के क्षेत्र में आकर तो सभी चीजें मानवीय मन की विचार व्यवस्था अनुभूतियाँ बन जाती हैं। शृङ्गार भी इसीलिए मन का ही विचार है इसीलिए उसमें मन की क्रोमल जीवन्त भावनाओं को ही प्रमुखता मिलती है। हाँ इस मानस विचार पर दो व्यक्तियों का साम्यात्मिक योग होता है उसके अभाव में स्थायी भाव नहीं हो सकता। काश्चित् शृङ्गार के प्रमुख कवि हैं, उन्हें मानसिकता और साम्यात्मिकता दोनों के संतुलित योग से शृङ्गार की अवधारणा करावी है। प्राये के कवियोंमें यह संतुलन कम देखनेको मिलता है वहाँ साम्यात्मिकता पर मानसिकता अथवा शारीरिकता का प्रभाव अधिक पड़ गया है। यह दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि माय कवि का पुत्र संस्कृत काव्य को अलंकारमय बनाने का मुख था जिससे विशिष्ट पद रचना के साथ अपने अमपरिहार भाव को कवियुक्त रूप दिया करते थे। महाकवि भाव स्वयं एक व्यक्ति बैभव संपन्न घर में पोषित हुए विमोही प्रकृति के बीच थे घूमने फिरने का उनको व्यसन था समकालिक कवियों में एक विशिष्ट स्थान को प्राप्त करने की उनकी अभिलाषा थी इसीलिए उनकी रचना पर भी भौतिकता का प्रभाव है। उनकी रसिकता उनके शृङ्गारिक वर्णनों में प्रत्यक्ष होती है। वहाँ शृङ्गार का विचार अधिक है रति का स्थायी भाव कम। वहाँ तो प्रायः शारीरिक और मानसिक दृष्टि की अधिक अपेक्षा है। हेतु —

अनुबपुरपरेण बाहुभूषणप्रतिमुखाकलितस्तनेन निम्बे ।

निहितवदनवाससा रूपोमेविपमविसीर्णपदं बलादिवान्या ॥१७२१॥

कस्यचित्समदनमदनीयप्रेयसीवदनपानपरस्य ।

स्वादितं सङ्घविवासव एव प्रसृतं क्षणं विदंसपदेऽमृतं ॥१०१०॥

सरमसपरिरम्भारम्भसंरम्भभावा, यदधिनिसमपास्तं वस्त्रभेर्नागनाया ।

वसनमपि निशान्ते मेघ्यते तत्प्रदानु रथभरणं विद्यालयोणिभोमेक्षणेन ॥११२३॥

शृङ्गार के दो पद हैं शयन और विप्रसम्भ। नायक नायिका के परस्परानुत्पन्न में मिलन भेदात्म्य ही ‘विप्रसम्भ’ है। इस विप्रसम्भ के चार रंग (वेव) हैं—पूर्वराग माग प्रवात और करण। पूर्वराग में आसम्भन की अनुपस्थिति सर्वथा अनिवार्य हो ऐसी कोई बात नहीं है किन्तु मिलन के अवसर अथवा साधन के अभाव के अस्तित्व उसकी अवस्था में

मानसिक क्लेश तो बना ही रहता है। मान का अभिप्राय कोप (प्रणय कोप) है जिसके दो भेद कहे गये हैं—प्रणयसमुद्भूतमान (प्रणय मान) और ईर्ष्यासमुद्भूतमान (ईर्ष्या मान)। प्रकारण कोप को प्रणय मान कहते हैं पर ईर्ष्यामान में किसी दूसरी प्रेमिका पर अपने प्रेमी की भाविका के देखने, सुनने याचना अनुभव करने के कारण नायिका के प्रेम का मानन होना पड़ता है। यहाँ नायक की अन्य प्रेमिकावस्थित का जो धमनाम है वह तीन प्रकार का है—

सत्त्वज्वायितव्य (स्वप्न द्वारा नायक से अन्य प्रेमिका की बातें बड़बड़ाने से उत्पन्न) जोषाकुलव्य (नायक के शरीर पर अन्य नायिका-संयोग के चिह्नों के देखने से उत्पन्न) नीलवस्त्रमवप्य (सहसा नायक के मुख से अन्य नायिका का नाम निकल पड़ने से उत्पन्न)

विनयति सुहृदो हृदो पराग प्रणयिनि कोसुममानमामिसेन ।

सहस्रित मुवसेरसीक्ष्णमक्ष्णोर्द्वयमपि रापरजोमिरापुपूरे ॥७५॥

अन्य प्रेमिकाविषयक भावस्थित वर्णन से उत्पन्न ईर्ष्यामान इसमें है।

‘नवमक्षपबर्धम गोपयस्वभुकेन, स्वगवसि पुनरोष्ठ पाशुना वन्धवष्टम् ।

प्रतिविभमपरस्त्रीसंगदासी विसर्पेन्नवपरिमलमन्ध केन शक्यो बर्गभुम् ॥११३४

संयोगचिह्न से अनुमित ईर्ष्यामान उपर्युक्त में है।

मान में प्रेमी कुल का विच्छेद ही नहीं होता केवल दोनों के बतों के मध्य एक ऐसे व्यवधान पड़ जाता है कि संयोग भी नहीं बियोग (विप्रवन्ध) बन जाता है। जिस माँति पूर्वराय को बियोग के अन्तर्वर्त नहीं स्वीकार करते क्योंकि पूर्वराय भोग के पूर्व की स्थिति है। जहाँ अविताया की छप्पटाहट तो है किन्तु प्रेम का परिपाक वहाँ पर अभी नहीं है। इसी माँति मान को बिना संयोग का ही धंग स्वीकार करते हैं। विरहोपित भाम्नीय वहाँ नहीं है। पूर्वराय बनना मान में प्रवास जैसी अवस्था की वह भाम्नीयता वहाँ नहीं है। प्रवास से उत्पन्न विरह भाम्नीय का वर्णन करने में अधिकोप कवि इसने सफल नहीं हुए हैं जिसने सौँझता के बान भाषि के बर्तनों में उन्हीं पूर्ण सफलता प्राप्त की है। मान कवि का बहुत ब उत्पन्न सर्व इसके लिए एक अच्छा उदाहरण है। संयोग में कपवर्णन तथा मिलन की बातें आती हैं। जिसमें शरीर सुख के विनिमय के साथ बिलोद और विहार की भी बातें आती हैं।

सुन्दरता और असुन्दरता की परिभाषा सापेक्षित है। बिहारी कवि ने स्पष्ट कहा है कि जिसका मन जिस वस्तु की ओर अधिक झुका हुआ हो वही वस्तु सुन्दर है। रस-विज्ञान में देव ने रूप के विषय में कहा है—देखत ही जो मन हरे, मुख लीखियन को देई।

महाकवि माघ ने धर्मों के साधन का वर्णन करके रूप का आकर्षक वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—

दधत्पुरोजडपमुवतीसर्व भुवो गतेष स्वयमुर्बन्दी तमम् ।

बभौ मुलेनाप्रतिमेन काचन मियायिका ता प्रतिमेनका च न ॥२-८६॥

प्रतिशय परिणामान् वितेने बहुतरमपित रत्नकिंकरीणि ।

प्रसधुनि अघनस्यसे ऽपरस्या ध्वनिमधिकं कलमेकसाकसाप ॥७,५॥

यानाञ्जनं परिमनेरवतार्यमाणा, राज्ञीर्मरापनयनाकुलं सौमिवत्साः ।

अस्तावगु ठनपटा क्षणसक्यमाणवक्त्राभिय समयकीपुकमीकते स्म ॥१,१७॥

माय कवि के इस प्रकार के सौम्य बर्णनों में इन्द्रिय तुष्टि का प्राधान्य रहा है । झील कटि मोटे-मोटे नितम्ब जिस पर करबनी पड़ी हो स्तन विद्याल हो पीरों में महाभर व नृत्य हों हाथ से कंकण पहने हुए, लहंगे को घुमाती हुई नृत्य के पट से मूँह को दिखाती हुई माय की नायिका बस रही है जिससे उसको मानन्द आ रहा है । इन उदाहरणों को कम बर्णन की श्रेणी में रखना जाता है । संयोग की प्रगती स्थिति यह है जो उपभोगमूलक होने के कारण वासनामयी होती है । इन बर्णनों में कवि का दृष्टिक मन अधिक परंगित हुआ है । इन बर्णनों में वह स्वयं उनमे से मालूम होते हैं । उदाहरणार्थ —

सीमस्तं निजमनुबध्नुती वराम्यायासरूप स्तनतटबाहुमूलभागा ।

मर्माभ्यां सुहृदिभिरभ्यता निवध्य, मैवाहो विरमति कीतुर्कंप्रिये ॥८,६॥

प्रवेद वारिसविशेष विपक्षमंगे कूर्पासकं क्षतनसक्षतमुत्तिपन्ती ।

भाविर्नवदूषनपयोधर बाहुमूला धातोदरी युवदृष्टा क्षणमुत्सवाभूत् ॥५,२३॥

ऊपर के श्लोक में तो कोई सुन्दरी अपने केसपाश को जब हाथों में बाँध रही थी तब उसके बाहुमूल एवं स्तन प्रवेश दिखाई पड़ रहे थे जिसको उसका प्रियतम उसे अनुरागपूर्वक बार-बार टुकटकी लयाने देख रहा था ।

नीचे के श्लोक में पत्नीने से जो कंकुकी पीग गई है उसको कोई नायिका जब निकाल रही थी उस समय मोटे-मोटे स्तन और बाहुमूल भाग जब ही दिखाई दिये कि युवक वनों के लिए क्षणिक उत्सव का कारण बन गई ।

देखा न बाहुमूल के उमड़ जाने पर तथा विद्याल स्तन प्रवेश के दिखासाई पड़ जाने मात्र से नायक व्याकुल होकर टुकटकी लयाने हुए उसके चारों ओर मध्यराता फिर रहा है । इन दोनों श्लोकों में छवि द्वारा व्यञ्जित इन्द्रिय वासना की माधुर्य और भीनी भीनी मधु मय्य है । इन्द्रियों के लिए यह एक क्षण भर के लिए पर्व-सा उपस्थित हो गया है ।

मिसन की तुष्टि में प्रेमियों के समस्त मानसिक और धारीरिक व्यापारों की निहिति है । कवि ने नायक माँ की रस भेष्टार्थ सुष्ठु बतलाने, बस बिहार आदि का बर्णन निर्ममार्थ होकर किया है । पक्षानुबर्णन में समझे हुए मानन्द का बर्णन है । कवि प्रेममय्य होकर बरलती हुई नृत्यों का एक साथ ही बर्णन कर जाते हैं । इन बर्णनों में संयोग और वियोग के चित्र धंफित होते हैं । नायक काय के छठे और सातवें सर्गों में संयोग और वियोग के घने चित्र मिलते हैं । नायिकाओं के विशेषणों को स्पष्ट करने वाले वीरियों चित्र नहीं मिलते । वही भुग्ता, मय्या और प्रयत्ना के चित्र हैं जो स्वाधीनपक्षिका नायक उन्माद चित्रता आदि नायिकाओं की अवस्थाओं के चित्र हैं जो सर्वोप सुन्दर हैं ।

मे बर्लेन महाकवि के कामधाम सम्बन्धी गहन अध्ययन का परिचय देते हैं ।

वर्जयन्त्या अने- संगमेकान्तस्तर्कयस्यासुखसंगमे कान्ततः ।

योपर्यप स्मरासन्नतापांगया सेष्यते ज्ञेयया सन्नतापांगया ॥४,४२॥

अप्रसन्नमपराद्धरिपत्नी कोपदोषसुररीकृतमैर्यम् ।

आनित मु क्षमित मु बधूनां प्रावि तं मु हृष्यं मधुबारे ॥१० १४॥

उत्तरीयविमयात्नपमाणा रुचती किम तदीक्षणमायम् ।

आवरिष्ट विकटेन विबोदुर्ध्वक्षसीव कुक्षमण्डमन्वा ॥१०,४२॥

अंशुकं हृतवता सनुबाहुस्वस्तिकापिहितमुखकुक्षाम्ना ।

मिन्नयंजवलयं परिणेत्रापर्यराग्नि रमसादधिरोढा ॥१०,४३॥

पीडिते पुर उरः प्रतिपेसंमर्तरि स्तनयुगेन युवत्पा ।

स्पष्टमेव दत्तः प्रतिनार्यास्तम्मयत्वमभवद्वयस्य ॥१० ४६॥

दीपितस्मरमुरस्सुपपीडं वस्त्रमे घनममिष्वजमानै ।

वक्रतां न ययतु कुक्षकुम्भी मुसुब कटिमतारिष्येन ॥१०,४७॥

ह्रीमरादवनतं परिरम्भे रागवानवदुजेऽप्यवकृष्य ।

अपितोष्ठदसमाननपद्योपितो मुकुसितासमबाक्षीत् ॥१० ५२॥

केनचिन्मधुरमुस्त्रणारागं आभ्यतप्तमधिकं विरहेषु ।

प्रोष्ठवत्सवमपास्यमुहूत सुभ्रव सरसमक्षिपुमुन्वे ॥१० ५४॥

विश्व में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसमें वाचना न हो । सृष्टि की उत्पत्ति ही प्रीति पर प्रबलित है । संयोग सुख की मधुरता तथा सरसता बनाये रहने में सृष्टि का हित है । हमारे आशामें तथा ज्वलि महानियों ने इस बात पर बड़ा ध्यान दिया है । भरतमुनि कहते हैं—

प्रारसेपधुम्बननक्षत्रकामबोध क्षीघ्रत्व मैथुनममस्त सुखप्रबोधम् ।

प्रीतिस्ततोर्भिरसभावनमेवकार्यमेवनितास्त अनुरा मुचिरं रमन्ते ॥

आस्तेपधुम्बननक्षत्रकामबोध संमर्दनं प्रसरणं क्षनु विक्षितानि ।

जिह्वाप्रवेधरसनाग्रहण तुनामी क्षामं रस वदति बाह्य रसानि तन्म ॥

महाकवि माघ में इस कथन का प्रतिबिम्ब बघनीय है ।

बाहुपीडनमचग्रहणाम्यामाहतेन मसदस्तनिपातै ।

बोधिनस्तनुद्ययस्तदुणीनमुग्मीमीस विदारं विषयेषु ॥१०,७२॥

अर्थात् विश्वों के शरीर में रहने वाला कामदेव निर्दय प्रालम्बन कैसर्पण ग्रहण एवं वन्दन नक्षत्रों से जयाये जाने पर अकृता रहित होकर अम लटका है ।

भरतमुनि ने बाह्योपचारों का इस भाँति ज्ञान बतलाया है

प्राश्नेप प्रथमं कुर्माद्वितीयं कुम्भन तथा ।
 द्वितीयं मखदाम च दंष्ट्राघातं चतुष्पदम् ॥
 पंचमं क्षेपणं प्रोक्तं पष्ठं प्रहुरणं तथा ।
 सप्तमं कण्ठशब्दश्च वंशाक्ष्यं चाष्टमं रतम् ॥

प्राश्नेप वात्स्यान्य इस ग्रंथ भागसे हुए इनका क्रम इस भाँति बता रहे हैं —

प्राश्नेपन कुम्भन मखदाम दंष्ट्राघातं प्रहुरणं छीत्कार, पुष्पायित उपसृष्टक
 उपरिष्ठक ।

प्राश्नेपन करने की विभिन्न-विभिन्न विधियाँ हैं जिनसे कामेच्छा जाग्रत होती है । रति
 क्रिया में इनका व्यवहार जानकर और विचार का बढ़ाने वाला होता है । प्राश्नेप कहते हैं —

धास्त्राणां विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा मरः ।
 रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव धास्त्रं न च क्रमः ॥

अब अन्य प्रकार के भी प्राश्नेपन होते हैं महाकवि माघ के प्राश्नेपन देखिये —

उत्तरीयं विनयात्मपमाणाकृन्वतीं किसतदीर्घाणामागम् ।

आवरिष्टं विकटे न विबोदुर्धससैवकुचमण्डलमग्न्या ॥१०४२॥

दोनों ही अन्यमनस्क से बड़े हुए हैं । नायक इतने में ही अपनी नायिका का उत्तरीय
 धँसल वा कुचकी सींच लेता है । फिर क्या है ? नायिका क' स्थान खुल जाते हैं । वह लज्जित
 होती है । वह भला इस बात को कैसे बहिकर समझे कि उनके जन खुले हुए कुचों को नायक
 देखले । इसका वह तुरन्त ही उपाय सोच लेती है । नायक की दृष्टि उसके कुचों पर पड़े
 इससे पहले ही अपनी छाती को नायक के बस स्वस में बिपका देती है ।

प्राश्नेपन के और भी विषय देखने योग्य हैं—

प्रियतमेन यया सख्या स्थितं न सहसा सह सा परिरम्य तम् ।

स्तनमिति क्षणमलमतांगना न सहसा सहसा कृतवैपद्युः ॥६२७॥

साधवराओं में बिना वृत्ताधिक्यक प्राश्नेपन का वर्णन किया है उसका स्वस्म माघ
 के नीचे के श्लोक से होता है—

विमसितमनुकुर्वती पुरस्ताद्वरणिस्सहाभिरुहो यमुर्मतायाः ।

रमणमुच्यते पुर सखीनामकमितचापसदोपमासिसिग ॥७४६॥

इसी भाँति का एक दूसरा प्राश्नेपन—

ससमितमवसम्य पाणिनासि सहचरमुच्छ्रितगुच्छवाङ्मह्याया ।

सकसकसभकुम्भभिन्नमाभ्यामुरसिरसादवतस्तरैस्तन्याभ्याम् ॥७४७॥

प्रियतमा अपने प्रियतम को प्राश्नेपन करना चाहती है पर प्रियतम इस बात को

समझ ही नहीं पाता। सब कूल के बुद्धों को छोड़ने के बहाने प्रियतमा उसके कंधे को पकड़ कर उसे उठती है और धामिगन भी स्वतः हो जाता है। सैन्धी मञ्जु कल्पना है।

रमणियों के वैष के सम्बन्ध में आचार्य वात्स्यायन कहते हैं—

प्रतनुदसङ्गत्वात्पदकृतता परिरमितमाभरणं सुगन्धितानास्तुम्बराणामालेपनं तथा
भुक्तान्यन्यानि पुष्पाणीति बह्वारिको वेद्यः ।'

महाकवि माघ भी अपने सिधुपाल वच महाकाम्य में लिखते हैं—

न नेपथ्य पथ्यं मधुतरमनंगोत्सवविधौ ।

अन्योत्सव प्रसंगे सुरतकाल में बहुत से वस्त्राभूषणों का प्रयोग उचित नहीं होता। लज्जा स्त्रियों का आभूषण है किन्तु यही सम्भा उचितकाल में विद्य है। महाकवि माघ ने इस रति रत्न को एक उत्तम प्रकार से बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है—

'अन्यदाभूषणं पु स' क्षमा सज्जैव योपित' ।

परिक्रम परिमव वैसात्य सुरतेष्विव ॥२,४७॥

महाकवि माघ के अनुसार रमणीयता यह है जो प्रतिभास नवीन लपटी है—

'सारे सारे यन्नवता मुपति तदेव रूप रमणीयताया ।'

अधिकोच देखा जाता है कि संयोग के समय पुरुष अपनी पत्नी को अपनी इच्छानुसार सचेष्ट न पाकर एक निश्चित ही निराशा का अनुभव करता है। संयोग के समय अपनी स्त्री की निरक्षमता एवं स्विरता से वह समझता है कि उसको आनन्द नहीं आता। वह उसको उस समय अत्यधिक आनन्दित देखना चाहता है। वात्स्यायन ने इसका हलाक बताया है, वह है पुरुषोचित। इसी बात को महाकवि माघ इस रूप में रखते हैं।

'यद्येव वदने सचिरेभ्यः सुभ्रूवो रक्षि तत्तदकुर्वन् ।

आनुकूलिक्रममा हि मरणाणाम् दिपन्ति हृदयानि सख्यम् ॥१०,७१॥'

रति रत्न की एक बात और है। देखा जाता है कि पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक स्वार्थी होता है। वह नहीं सोचता कि स्त्री भी उसे चाहती है कि नहीं। इसी को बलात्कार कहते हैं। इसका परिणाम यह होता है दोनों की अन्तिम तो क्षीण होती है पर सहवास से कोई आनन्द की अनुभूति नहीं होती। महाकवि माघ के पास इस प्रश्न का उत्तर है—

'स्वरयति रन्तुमहो जनमनोभू ।'

महाकवि माघ के शृङ्गार के चित्रों को धारि से अन्त तक देख जाने पर छापर ही कोई एक भाव बिज ऐसा होता प्रियमें विप्रसम्भ शृङ्गार का वर्णन हो। विप्रसम्भ में शृङ्गार के आध्यात्मिक पक्ष की अनुभूति होती है बही भाग्य को निरक्षमता आनन्द की उपमिति कराती है। कर्मिदास और भक्तभूति की समरता उनके विप्रसम्भ वर्णन के कारण ही है। बाहे विप्रसम्भ शृङ्गार के वर्णन के लिए सिधुपाल वच की कथावस्तु उपयुक्त नहीं है, पर

उसके धमाक में माघ कबि उस ऊँचाई पर नहीं पहुँच सकते जहाँ कालिदास और भवभूति पहुँचे हैं। कई कारणों में एक कारण यह भी है कि माघ कबि आसोचकों की दृष्टि में प्रथम स्थानीय नहीं बने।

यह हुआ शृङ्गार रस का भी वर्णन। वीर और शृङ्गार के अतिरिक्त इस महाकाव्य में अन्य रसों का समावेश यत्रतत्र हुआ है। इन रसों के भी कुछ उदाहरण यहाँ छंदों के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं—

बीमत्स रस—

स्फुटमिवोज्ज्वल कोचन कान्तिमिधुतमसोकमशोभत चम्पकै-
विरहिणा हृदयस्य भिवाभूत कपिशित पिशितं मवनाग्निना ॥६५॥
नैरन्तर्माच्छिन्नबहान्तरात् पुमंशस्य ज्वालिताना वाशितेन ।
योद्धुर्वाणम्रीतमावीप्य मांस पाकापूर्वस्वादमावे श्लिवाभि ॥६६॥
ग्लानिच्छेदनीक्षुत्प्रबोधाय पीप्वा रक्ताष्टिं क्षोपिताजीणशेषम् ।
त्वादु कार कामसङ्गोप दशंशोष्टा डिम्ब उपज्जणदुग्धस्वनज्ज ॥६७॥
प्रसूतनो भ्रमस्रतिमानवमज्जवसादनम् ।
रक्ष पिशाचं मुमुवे नवमज्जवसादनम् ॥६८॥

रीर रस—

रोपावेसादामिमुक्येन कौचित्पाणिग्राहं रक्षसोपमाटी ।
हिरवा हेटीर्मल्लवम्मुष्टिपातं भ्रमसो बाहूबाह्वि व्यासुजेताम् ॥६९॥
रीररस के स्वाधीनाम कोच के अनुभाव—

क्षितिहारकानुमितताम्रनयनमरुणीकृत क्लृप्ता ।

वायुबदनमुदवीपि भिये जगतः सकीलनिब सूर्यमण्डलम् ॥७०॥

इसी भाँति प्राये के ६ रसों में इन अनुभावों का वर्णन है।

हास्य—रमसेन हारपददलनाचयः प्रतिमूर्धजं मिहितकलापूरका ।

परिब्रित्ताम्बरयुगाः समापतम्बलयोक्तय्यवणपूरका स्त्रिय ॥७१॥

महाकवि माघ के व्यभिचारी भावों को भी देख लीभिये जिनका वर्णन उन्होंने प्रियुपालवच महाकाव्य में हस्ततः किया है—

हर्ष—मन की प्रसन्नता ही हर्ष है। किसी समितपित वस्तु की प्राप्ति से यह संभव है। घानश्राद्ध पिरते हैं, गर्हण स्वर होता है इसी भाँति अन्य विकार भी होते हैं।

‘युगान्तकास प्रतिसंहृत्तारमो जगन्ति मस्यां सविकारमासत ।

तनो नमुस्तत्र न नैटमद्विपस्तपोवनाभ्यागमसंभवा मुद ॥’

हृत् का सम्पन्न मनोरथान्न योग्यवस्तु सिद्धि मित्र र्जन्य, देवता प्रसाद, बुधप्रसाद राजप्रसाद आदि-आदि से सम्भव है ।

चिन्तोष—नैतन्मा की पुनः प्राप्ति ही चिन्तोष है और यह निद्रा के दूर करने वाले कारणों से हुषा करता है । इसमें असाई, अयकाई, बाँस मीथना अर्थात् का देखना आदि आदि हुषा करते हैं ।

‘धिररति परिशेषप्राप्त मित्रासुखानां
 चरममपि सविस्वा पूर्वमेव प्रमुखा ।
 अपरिचक्षितगात्रा कुर्वते न प्रियाणा,
 मणिष्णितमुज्ज्वलापमेपमेदं सरुष्य ॥

धिरकात तक रति कीड़ा से परित्याप्त प्रेमियों के छो जाने पर ही प्रेमिकार्यों के छोने का अवसर प्राप्त हुआ । किन्तु इसके पूर्व कि प्रेमी जब जाय प्रेमिकार्यों जग पड़ी । वे जाय तो पड़ी किन्तु मित्रित प्रेमियों के बुजानिगन के विविक्ष हो जाने के सय से बिना हिंसे हुने जैसे पड़ी थी जैसे ही पड़ी रहीं

अवस्मार—विच की विलिप्तता ही अवस्मार है । प्रह, भूष, प्रव आदि के आवेष ही इसके कारण हैं । इसके होने से पृथ्वी पर मोट पड़ना, कँपकँपी पसीना निकलना मूँह में अम भरना तार टपटना आदि दाँत होती हैं—

प्राक्षिप्तधूमि रक्षितारमुक्थे सासद्सुजाकारहृत्सरङ्गम् ।
 केनायमानं पति आपगानामसावपस्मारिणमाद्यत् ॥

उपरिर्मुक्त समुद्रवर्त्म में अवस्मार के हाथ कोई रक्षपरिपोष किया गया प्रतीत नहीं हो रहा है । हेमचन्द्र आचार्य ने काम्यानुशासन में इसी को अवस्मार के अन्त्यय सेवे हुए कहा है ‘अर्ध न प्राय धामाद्येवम धोमते इस उपक्रम के साथ यही रक्षामात्र का परिपोषण माना है जो दुक्तिपुक्त भी है । साहित्य रचयकार ने तो इसको अवस्मार के रूप में उद्धृत किया है ।

असूया—स्वभाव की उद्वतता के कारण दूसरे की कुछ समृद्धि के सहन न कर सकने को असूया कहा जाता है । इसमें दूसरे के दोष का उपयोग किया जाया करता है, मोहों बड़ जाया करती हैं दूसरे को तिरस्कृत किया जाता करता है कोषयती बेष्टाप होने लपटी है और इसी भाँति के अग्राग्य विकार पैदा हो जाते हैं सिद्धिप्राप्त का असूया देखिये—

अथ तत्र पाण्डुतनयेन सवसि विहितं मधु द्विप-

मानमसह्य न चेदपि परबुद्धिमत्सुरि मनो हि मानिनाम् ॥

स्तानि—मुक्तिव नयनतारा-

‘बन्ध ॥११ २०॥

अथ—प्राप्यमग्नय

‘केरय ॥१०-८१॥

मात—नस्याली

‘रमय्य ॥८ २५॥

अथ—हावहारि-

मदेन ॥१० १५॥

मित्र—प्रह्वरकमपीय-

‘मपुष्य ॥११ ५॥

कवि माध ने अपने महाकाव्य में सब ही रसों का समन्वेष किया है। कुछ स्पष्ट ऐसे भी हैं वहाँ एक ही श्लोक में तीन-तीन रसों की ध्वनि है। १. वें श्लोक में वीर, भयानक और शृङ्गार इन तीन रसों की ध्वनि एक साथ ही व्यक्त होती है। २१वें श्लोक में वीर और भयानक रस की ध्वनि है।

अंशे माध काव्य चरितकाव्यों के लिए एक स्रोत है, जैसी प्रकार उनके शृङ्गार वर्णनों का भी उत्तरवर्ती संस्कृत और हिन्दी कवियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। चन्द्रोदय प्रभात और सूर्यास्त का बण न बण विहार तथा जलविहार यात्रि के वर्णनों का सम्पन्न इस दृष्टि से किया जा सकता है।

भक्ति-भावना—

संस्कृत के साहित्य शास्त्रों में भक्ति को एक स्वतन्त्र रस नहीं माना गया है उसकी बराना एक भाव के रूप में की गयी है। जैसा पहले कहा जा चुका है इस महाकाव्य में वीर भावना शृङ्गारभावना और भक्ति-भावना तीनों ही स्पष्ट रूप में हैं। वीर भावना जाहे प्रबल है किन्तु शृङ्गार तथा भक्ति भावना भी अप्रबल नहीं हैं। बूझते रस और भाव तो मौल्य हैं। महाकवि माध भक्त कवि हैं। वह श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन करना चाहते हैं पर कमी ने नारद के रूप में श्रीकृष्ण के चरित का पुण्यागन करते हैं तो कमी पाण्डवों तथा उनके पक्ष के लोगों के माध्यम से अपनी भक्ति को व्यक्त करते हैं। नारद के मुख से श्रीकृष्ण के चरित का गाण करना अपने उद्देश्य की पूर्ति का एक अंग है, नारद स्तुति करते हैं—

“उदीर्णरागप्रतिरोधकजनैरभीक्ष्णमसुष्णतयासिचुर्गमम् ।

उपेयुपो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमस्रभूमिनिरपायसंशया ॥१,१२॥

उवाचितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमभ्यारमहृषा कर्बपन ।

बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुन्य पुराविदः ॥१३,१३३॥

निवेद्यमासिषहेलमोद्धत फणामुतां क्षादमैकमोकस ।

जगत्त्रयैकस्यपतिस्त्वमुक्त्वकैरहीश्वरस्तम्भधिरः सुभूतसम् ॥१,०४॥

चौदहवें अर्ध में श्रीकृष्ण की पूज्यता को सिद्ध करने के प्रसंग के बहाने भीष्म के रूप में आने कवि माध स्वयं श्रीकृष्ण के चरित का पुण्यागन करते हैं।

इसी भाँति श्रीकृष्ण की सीमा के प्रति जो कवि का भाव है और जिसे उसने पांडवपक्षीय लोगों के माध्यम से व्यक्त किया है वह भी बड़ा सुन्दर है।

भाव पक्ष के अतगत महाकवि की भक्ति का स्वरूप

प्रथिकांश रूप में देखा गया है कि शृङ्गार और भक्ति का योग होता है। जब शृङ्गार भावना अपने वाच्य के प्रति समर्पित हो जाती है तो वह भक्ति के रूप में परिणत हो जाती है। इसी तरह भुवावस्था की शृङ्गार भावना बहुत बड़ी हुई अवस्था में भक्ति के रूप में बदल जाती है। शृङ्गारी कवि पहुँचे हुए भक्त भी ऐसे पये हैं—

हमने इस बात को पाठकों के सम्मुख रखने का बार-बार प्रयास किया है कि महाकवि भाष का सिद्धांतमय महाकाव्य लिखने का एक उद्देश्य यह भी था कि वह श्रीकृष्ण के चरित्र का गुणगान करना चाहते थे इसीलिए “अंसवर्णनम्” के अन्तिम श्लोक में कृष्ण की पति विष्णु भगवान् के अवतार श्रीकृष्ण के सुन्दर-सुन्दर चरित्रों के गुणगान से भक्तों के लिए भी प्रार्थना हो गया है। महाकवि भाष की यह भक्ति किस प्रकार की थी ?

श्रीमद्भगवत् गीता में वर्णन की गई भक्त्या भक्ति के आदर्श स्वरूप प्रज्ञापित है। अपने पिता हिरण्यकशिपु से पूछे जाने पर कि मुझसे मे प्रान तक मुझको क्या पढ़ाया है उन्होंने उत्तर दिया—

अवर्णं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं वास्य सस्यमात्मनिवेदनम् ॥

इति पृथापिता विष्णो भक्तिश्चेन्नवमलाया ।

महर्षि भगवत्प्रसादा तन्मन्त्रेऽधीतमुत्तमम् ॥ भागवत ७-५-२३-२४ ।

पूजन वन्दन भगवान् में आदरात्मक सत्कारात्मक तथा अपने को समर्पण कर देने का भाव ये ही भक्त्या भक्ति के रूप हैं ।

१—भक्त्या भक्ति—जो भगवान् में पूर्ण प्रेम रखते हैं उन भक्तों के द्वारा कहे हुए भगवान् के नाम एवं गुण प्रमाण लीला तथा और रहस्य में पूर्ण समुत्तमयी कथाओं का श्रद्धा और प्रेमपूर्वक ध्यान करना तथा उन समुत्तमयी कथाओं का भक्त्या करके उनके प्रेम में मुग्न हो जाना भक्त्या भक्ति है ।

भाव काव्य में महाकवि भाष की भक्त्या भक्ति का तो प्रारम्भ ही स्पष्टीकृत नहीं हो सता है क्योंकि उन्हें भगवान् के नाम को लिखते द्वारा मुग्धता है। उनको तो सिद्धांत

के बच की कथा पाठक धनबा मोठाघों को सुनानी है । इसके धतिरिक्त वह स्वयं पंडित एवं ज्ञानी हैं । पुराणों एवं धास्त्रों के ज्ञाता हैं । अतः ज्ञान की वा शक्ति की बातें सुनने के लिए उनको प्रमत्त बाने की आवश्यकता नहीं हुई ।

२—कीर्तन भक्ति—भगवान् के नाम रूप गुण प्रभाव चरित्र, तत्त्व धीर रहस्य का बड़ा धीर बड़े प्रेम धीर उत्साह के साथ उच्चारण करते-करते शरीर में रोमांच कष्ट बरोच अनुपात हृदय की प्रफुल्लता एवं सुखता प्राप्ति का होना कीर्तन भक्ति कहलाता है ।

शिष्याभक्त महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य ही भगवान् के चरित्र का कीर्तन करना है । अतः जहाँ-जहाँ भी भगवान् से सम्बन्धित बातें आई हैं वहीं-वहीं पर कवि का हृदय प्रफुल्लित होकर भगवान् के तत्त्व धीर रहस्य को बड़ा के साथ प्रस्तुत करता है । कथानक में जहाँ कहीं भी विद्या का धनवर मिला वहीं पर हो सका तो भगवान् का अनुमान करना धारम्भ कर दिया । कहीं-कहीं तो माय ने एक कथावाचक के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के सगुणरूप का वर्णन किया है ।

भगवान् श्रीकृष्ण हस्तप्रस्थ की धीर प्रस्थान कर रहे हैं उस समय धृत्य वर्ग ने सूर्य की रूप का निवारण करने के लिए कम पर खड़ा तथा दिया । उनके दोनों धीर चक्रर हुल रहे हैं मानो आकाश मग की धारा दोनों धीर से प्रवाहित हो रही हो उनके मस्तक पर मुकुट की मस्तिष्क रंज बिरगी बानुवासी की कामों में मरकत मणि से बड़े हुए सुन्दर कुम्भन से जिनकी पीठ किरणें उनके पीले वस-स्वस पर पड़कर मधुरपिच्छ की प्राप्ति पैदा करती थी । उनकी दोनों भुजाओं के केन्द्र के वह मुक्ता मासा धारण किए हुए वे कौस्तुभ मणि भी उन्होंने धारण कर रखी थी पीताम्बर बारी के कोमोन्की लम्बक धाङ्ग पांचजन्य धारि को अपने हाथों में धारण करके रथ पर विराजमान हुए प्रस्थान कर रहे थे । इस मति तुषीव सर्व में धनोक संख्या हो से स्तोत्र संख्या २२ तक भगवान् श्रीकृष्ण की उस साकार मूर्ति का वर्णन कवि ने किया है जो पढ़ने योग्य है । रथ पर चढ़कर श्रीकृष्ण अपनी सेना के सहित द्वारकापुरी से बाहर निकल रहे हैं उसी में अल कवि को भगवान् द्वारा बनाई हुई तथा वेधों पुराणों व धास्त्रों में वर्णित सृष्टि का स्मरण हो जाता है वह प्रत्यक्षबिभोर होकर कह बैठता है—

प्रजा इवांगादरविन्दनामे दाम्भोर्जटाकूटतटादिबाप ।

मुखादिबाप द्युतयो विधातु पुराणिरोयुमु रजित्स्वर्जिन्य ॥६६॥

‘मतो वा इमानि भूतानि जायते’ ‘ब्राह्मणोऽयं मुक्तमासीत् बाहुराजस्य कृत इत्यादि धृतियों का निचोड़ कवि ने यहाँ सुन्दरता पूर्वक प्रस्तुत कर दिया है ।

रैवतक पर्वत से हस्तप्रस्थ की धीर श्रीकृष्ण अपनी सेना के साथ चले जा रहे हैं । कवि माय में चलती हुई उस सेना के नार्य-नरार्यों मनोविनोदों का वर्णन करता है । धनकों अटी रसों धारि के चलने के साथ-साथ गर्जों के चलने पर व्याकुल रमणियों का वर्णन करते हुए ही कवि श्रीकृष्ण के गुणवान में जग जाता है । धामे चलते हैं वो गोपमंजरी गणें लवा

रही है। मोनों के साथ श्रीकृष्ण के साहचर्य का स्मरण हो जाता है। मोने के श्लोकों में श्रीकृष्ण का कीर्तन बड़ा सुन्दर हुआ है—

प्रागव्यतोऽनूचि गजस्य घण्टयो स्वनं समाकर्ण्य समाकुसुमिता ।
 दूरादपावतितमारवाहणा पयोश्चस्रस्तवर्तित भ्रमूचरा ॥१२३॥
 भोजस्त्रिवर्णोज्ज्वलवृक्षशालिन प्रसादिनोऽनुजिम्भसगोत्रसविद ।
 रसाकानुपेन्द्रस्य पुर स्म भूयसा गुणान्समुद्दिष्य पठन्ति बदिन ॥१४॥
 निशेपमाक्रान्तमहीतलोचसीधमन्समुद्रोर्ध्व समुज्जति स्थितिम् ।
 ग्रामेषु सन्धरकरोदवारितै किमव्यवस्थां चसितोर्ध्व कथय ॥१५॥
 गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमण्डपसुसतान्समादयुत्थाय भुक्तुं सवत्सरा ।
 ग्राम्यान्पश्यत्कपिषा पिपासत स्वगोत्रसंकीर्तनमाविशारमन् ॥१६॥

श्रीकृष्ण के इन्द्रमत्स्य में प्रकट हो जाने पर तो कवि बुधधिर के रूप वनक मुर्गों का गायन करता हुआ प्रयाता नहीं है। फिर श्रीकृष्ण की पूज्यता को सिद्ध करने के लिये भीष्म के रूप में भी कवि अष्टि में विभोर होकर कीर्तन करने में लसीन है। चौदहवीं गण इस कीर्तन से भरा पड़ा है। कुछ श्लोक यही प्रस्तुत किये जाते हैं—

धादितामजननाय देहिनामन्तरां च दक्षतन्त्रपायिने ।
 विभ्रते भुवमथ सदाय च ब्रह्मणोऽप्युपरिसिद्धतेनम ॥१७॥
 केवलं दधति कतु बाचिन प्रत्ययानिह न जातु कमलि
 घातवः सुकृति संवृष्टास्तथा स्त्रीतिरत्र विपरीत वाग्व ॥१८॥
 पूर्वमेव किम सुष्टवानपस्तासु वीर्यमनिवायमादधी ।
 तच्छकारणमभूद्विरमय ब्रह्मणोऽभुवदसाविद वदन् ॥१९॥
 सतमवृत्तमपि मामिने जगद्भूतमप्युचितनिद्रमकम् ।
 जम विभ्रतमज तमं बुधा य पुराणपुरुष प्रवदन् ॥२०॥

फिर कवि राम सभी अवतारों का समाहार श्रीकृष्ण में करता है और भीष्म के रूप में ही बुधधिर को साधुवाद देता है। जिसके लिये कवि का कवि रूप अत्यन्त ही प्रसन्न है।

धन्योर्ध्वस यस्य हरिरेव समस्त एव, दूरादपि कृतुषु यत्नं कृतुषु द ।
 दत्तव्यमत्रमवते भुवनेषु यावत्संसारमण्डलमवाप्नुहि ॥२१॥

विशुद्धात्मा जैसे हुए का वन कर लेते थे ही श्रीकृष्ण के लिये ही भक्ति नहीं है। बाती नर रूप के धरिद्रिक्त उनका एक रूप और भी है। जिसके लिये कवि का कवि रूप अत्यन्त ही प्रसन्न है। श्लोकों में प्रतीयमान चर्च के रूप में हुई है—

न महानय न च विमर्ति गुरुसमलया प्रधानताम् ।

स्वस्य कथयति चिराय पुनश्चमता जगत्पनमिमानता दधत् ॥१५ २ प्रक्षिप्त॥

क्षणमेव राजसतमव जगदुदयवर्षाद्यतोद्यति ।

सत्त्वहितकृतमति सहसा तमसा विनाद्ययति सर्वमावृत् ॥१५ १५ प्रक्षिप्त॥

अर्थ—यह कथन न तो सर्वोत्कृष्ट है और न गुणों के समूहों से युक्त होने के कारण ही कोई प्रमुखाता रखता है । अपने को अहंकार विहीन बतलाकर अपव में भिरकान तक यह अपनी हीनता को ही प्रमुखाता प्रकट करता है ।

प्रतीतिमान अर्थ—न तो यह महान् या महत्त्व है और न प्रधान ही है । अहंकार से रहित होने के कारण यह इस अवस्था में साधारण जनों से पूर्ण अपनी सत्ता रखता है एवं पंचतन्मात्रा तथा पञ्चभूतों से भी यह परे है । यर्थात् न तो यह महान् है न प्रधान है न सूक्ष्म है न तन्मात्रा है न अहंकार है प्रत्युत इन सब से (बीबीछों से) परे पञ्चिखे परार्थ परम पुरुष है ।

दूसरे श्लोक में भी प्रतीयमान अर्थ में बहुत विप्लव और विषय रूप में इन्हें बताया है ।

कीर्तन के रूप में गुरुपान का एक और व्यवहार भी आया है । चिन्तुपान सेना सहित श्रीकृष्ण के साथ राण सभाम में मड़ना आया है । किन्तु युद्ध के निर्वर्णों के अनुसार दूत के द्वारा संवाद तो भेजना चाहिए । इसी अवधारित परंपरा के पालन के लिए चिन्तुपान सत्त्विक को दूत बनाकर भेजता है । वहाँ पहुँचकर सत्त्विक का दूत-कृत्य एक संवाद में बन जाता है । कवि को कीर्तन का यह एक अत्यंत व्यवहार मिल जाता है । कवि भी इस संवाद में स्तुति निर्यात में पर्यवसित होती है । स्तुति रूप अर्थ कीर्तन ही है । उदाहरणार्थ—

अधिविह्वल पतमजसो नियतस्वान्तसमयकर्मणः ।

तव सर्वं विधेयवर्तिन प्रकृति विम्रति केन भूमूव ॥१६ ५॥

जनता मदधूम्यभी परैरभिभूतामवसम्भसे यतः ।

तव कृप्य गुरुतास्ततो नरैरसमानस्य वक्षत्यगम्यताम् ॥१६ ६॥

युद्धभूमि में श्रीकृष्ण को बुद्ध कराते हुए भी कवि उन्हीं के कीर्तन में इस भाँति नम जाता है—

चतुरम्बुधिगर्भधीरकुलकपुपः सधिषु क्षीनसप्तसिन्धोः ।

उदगुः सत्सिंहात्मनस्त्रिभाम्नो असवाहावसयः शिरोरुहेभ्यः ॥२० ६६॥

पार्श्वोक्त बात है—

यस्य केरोषु बीभूतानघः सर्वांगसन्धिषु ।

मुत्थीसमुद्राक्षरवारस्वस्मै तोयारमने नमः ॥

यह तो हुषा शाका ईश्वर का कीर्तन । इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण का कीर्तन प्रथम अर्थ में निराकार रूप में इस भाँति कवि गारर के मुख से हुषा है—

उदोर्णरागशतिरोधक जनैरभोक्षणमकुण्ठतयासि दुर्गमम् ।
 उपयेषुषो मोक्षपथ मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपाम संश्रमा ॥३२॥
 उदासितारनिगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मवृक्षा कथञ्चन ।
 बह्विधकारं प्रकृते पृथग्विधु पुरातन त्वां पुण्य पुराविद ॥३३॥

इस भाँति माय निराकार रूप का कीर्तन करते हुए फिर साकार रूप (समुल रूप) का कीर्तन करने लग जाते हैं—

निवेशयामासिष हेलमोद्य तं फणामुतां द्यादनमेवमोकस' ।
 जगत्त्रयकस्यपतिस्त्वमुष्णकैरहीश्वरस्तम्भश्चिदुमुभूतसम् ॥१३३॥
 अनन्यगुवस्तिव केन देवस' पुराणभूर्तेर्महिमावगम्यते ।
 मनुष्यजमापि सुरासुरागुणैर्भवाभवाब्धेदकर करोत्यम ॥३५॥

३—स्मरण भक्ति—प्रभु के नाम रूप, गुण प्रभाव, लीला तत्त्व और रहस्य का प्रेम में भुग्ध होकर मनन करना और इस भाँति मनन करते-करते भगवान् के स्वरूप में वस्तीन हो जाना ही स्मरण भक्ति है ।

महाकवि माय के कीर्तन में स्मरण भी समाविष्ट है । भगवान् श्रीकृष्ण को बारम्बार स्मरण करने का तो मानो उनका स्वभाव ही बन गया था । वह सबब सर्वगुणसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के पट्टत रूप सावध्य समुक्त स्वरूप का विशेष रूप से स्मरण किया करते थे ।

४—पाद-सेवन (१) धर्जन, (२) बन्धन इन भक्ति प्रेम्हों का इस काव्य में प्रसंग नहीं आया ।

५—दास्य भक्ति—प्रभु को स्वामी और अपने को सेवक समझना दास्य भक्ति के समान है । माय की भक्ति कुछ-कुछ इसी रूप की है । (८) श्रीकृष्ण के प्रति दुर्बिष्टार प्रादि पाँदवों का जो भाव है वह कुछ-कुछ दास्य भक्ति से मिलता मिलता है ।

६—आत्मनिवेशन भक्ति—इसमें तन-मन-बन सहित अपने आपको तथा कर्मों को मत्तापूर्वक और प्रेमपूर्वक भगवान् के समर्पण कर देना है ।

कवि ने वहाँ श्रीकृष्ण को पूज्यतम भक्ति बताया है वहाँ यम की निबिध्य समाप्ति का सारा श्रेय श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया है । पाँदवों ने श्रीकृष्ण के परामर्श को स्वीकार करके अपना सारा चित्रण भीति धर्म प्रादि ई-व्यपित कर दिये हैं ।

भक्ति में जैसा इसकी जीवनी से बिबित होता है ईश्वर की विभूतियों के रूप में प्राये हुए घटितियों तथा यात्राओं को अपना सबस्व समर्पित कर दिया है ।

उपर्युक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी भक्ति का जो स्वरूप प्रदर्शित किया है वह प्रमुखतया दूसरी और तीसरी प्रकार की भक्ति के चत्तर्ध है ।

इस भाँति हम देखते हैं कि चाहे महाकाव्य में कलापक्ष मुखरित है तब भी भावपक्ष ही प्रबल है ।

प्रकृति-वर्णन

“प्रकृति ईश्वरीय विभूति है। उसकी सुपमा नवमनोगोपसाविनी है। मानवीय कल्पना तो प्रकृति के बीच भिन्नस्थ होती ही है साथ ही साथ मानवीय अनुभूतियों के लिए भी प्रकृति एक प्रेरक शक्ति के रूप में काम करती है। कवित्व अनुभूतियों पर आधारित कल्पना के द्वारा प्रसारित होता हुआ प्रकृति की गोप में संकुचित पक्षधित पुष्पित एवं फली भूत होता है। वास्मीकि से लेकर आज तक बितने भी कवि हुए हैं उन्होंने प्रकृति का वर्णन कई कर्मों में किया है। कभी उसे मानवीय रूप में देखा है वह उसे विराट् पुरुष के रूप में प्रतिभासित करता है तो कभी वह उसे अपने वर्तनीय विषय के अप्रस्तुत विधान के लिए उपयोगी समझता है। जिस कवि की जितनी पहुँच है प्रकृति उसके लिए उतनी ही ऊँचाई के साथ अपनी ओर खींच सकती है। इसीलिए प्रकृति विमल की प्रशान्तियों भी विभिन्न हैं। विमलात्मक प्रणाली कवि प्रकृति के रूप का विस्तृत विवरण विधित करता है संवेदनात्मक प्रणाली में प्रकृति और पुरुष की एकात्मकता ध्वनित होती है। इसमें कवि की भावना प्रकृति के नाता रूपों को रंग में रंग देती है और कवि को प्रकृति के रूप में अपनी प्रतिफलित दिखाई पड़ती है। प्रकृति और पुरुष का यह सामंजस्य याव है वहाँ प्रकृति पुरुष पर आक्रान्त होकर रीभ्यती है तो पुरुष प्रकृति पर। अलंकारात्मक प्रणाली में प्रकृति का अप्रस्तुत के रूप में प्रयोग होता है। अलंकार योजना प्रभाव प्रस्तुत के साथ और प्रस्तुत के साम्य के आधार पर की जाती है। प्रकृति केवल वैद्य के ही वस्तु हो ऐसा तो नहीं है उससे तो विभिन्न प्रकार की घिसा भी प्राप्त की जा सकती है। यत कभी-कभी प्रकृति को कवि उपदेशक के रूप में प्रस्तुत करता है।

प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों का विमल कवि इसी प्रकार की प्रणालियों से करता रहा है। यह विमल कभी मानव सापेक्ष और मानव निरपेक्ष होता है। प्रकृति के वचार्थ रूप का वर्णन करना एक बात है तथा उसको भावों से संश्लिष्ट करना दूसरी बात है।

महाकवि माघ ने बाह्य प्रकृति तथा अन्तः प्रकृति का बड़ा ही मार्मिक विमल किया है। बाह्य प्रकृति के विमल में कवि की अन्तरात्मा मानो अत्येक हृदय के साथ रम सी गई है। इन्हीं का ऐसा व्योरेचार और सहस्रष्ट विमल है कि जिस हम व्योरे के सम्मुख नृत्य सा करने लगता है। नीचे ऐसा ही एक हृदय प्रस्तुत है—

उदय शिखरि शृङ्ग प्राणरोधेन रिगन् सक्रमसमुत्तहासं वीक्षित पद्मिनीभिः
विठलमुदु कराग्रं शम्भयन्त्या वयोभिः परिपलति दिवोऽंके हेमया भाससूर्यः ॥११॥

जैसे कोई बालक प्रांगण में खेल रहा है स्नेहपीस भी उसे पुकार रही है, और वह हँसते हुए अपने कोमल हाथ फैलाकर उसकी गोद में जा गिरता है, उसी भाँति यह बाल सूर्य उदयावस के शिखर कपी धीमग में गिरता हुआ, लिले कमल-मृषों से हँसती हुई पक्षियों को देखते-देखते अपने कोमल करों (किरणों) को फैलाकर पक्षियों के कसरत के व्यास से पुकारती है। अपनी आकाश कपी माता की गोद में सीमा-मूर्च्छक उषक रहा है।

जबव होते हुए बाल सूर्य का यह वर्णन कितना अजीब सार्वाकार है। प्रस्तुत प्रकृति प्रप्रस्तुत मानवीय सम्बन्धों की स्नेहमयी धनुमृति की कैंसी सीव संवेदना कराती है। अतुर्वं सर्व में जहाँ दैवतक पर्वत को एक विधान हाथी का रूप दिया है वह भी माननीय है—

उदयति बिततोर्ध्वरदिमरञ्जनावहिमरुची हिमधाग्नि माति वास्तम् ।

महति गिरिरथ बिलाम्ब घटा-त्रय-परिवारित-वारणेन्द्र-सीलाम् ॥४२०॥

दैवतक पर्वत की प्रातःकालीन सुषमा का यह सजीव वर्णन है। ऊपर फैली हुई किरण कपी रज्जु से मुक्त सूर्य एक भार उचित हो रहा है और दूसरी ओर जम्जमा मस्त हो रहा है। जान पड़ता है कि यह दैवतक उस यजेन्द्र की घोमा बारण कर रहा है जिसके दोनों ओर दो जम्जम बटे सटक रहे हों।

पर्वत की हाथी से तथा उसके दोनों ओर बटकने वाले सूर्य तथा जन्द्र की बटा से तुलना कितनी सुन्दर है। आलोचकों को यह कल्पना इतनी अधिकर लगी कि मुग्ध होकर उन्होंने नाम को 'चंद्रमास' की उपाधि दे डाली।

रूप चित्रण का एक उदाहरण भी प्रस्तुत किया जाता है। आकाश से फैले काले काले मैलों के नीचे कर्पूर पांडुर महति नारद का यह रूप-चित्र है—

नवानधोम्बो बृहत् पयाधरान् सगूढ कर्पूरपरयम पांडुरम् ।

धाणं क्षणोत्क्षिप्तगजैन्त्रकुत्सिता स्फुटोपमं भूतिविधेयं धंभुना ॥

नवीन और विस्तृत काले-काले बादलों के नीचे के नारदजी कर्पूर के बूलों की ढेर की भाँति धसपत गौरवों के दिखाई पड़ रहे थे। उस समय (काले-काले बादलों के धसपत निकट होते समय) धण भर के लिए उनकी घोमा तांडव मूल्य के समय हाथी का बाला जमड़ा पीठ पर धोई हुए एवं शरीर पर लेश मस मपेटे हुए रंकर के समान दिखाई पड़ रही थी।

तृतीय सर्व में स्तोत्र संख्या ४ से ११ तक श्रीहृष्य का रूप चित्र है जिसमें वह मुहुटधारी है। उनकी शवाम काया पर मोतियों की माता है तथा पैरों पर सज्जती हुई संधी माता है वह पद्मोपवीत धीर पीताम्बर धारण किये हुए हैं कानों में वृद्ध मस्तक पर ममूर पंच तथा भुजाओं पर कमूर।

पाच में रूप चित्रों को बड़ी सावधानी से चित्रित किया है।

संवेदनात्मक रूप में भी महाकवि ने मानव सापेक्ष प्रकृति-चित्रण का चित्रण किया

है। रैबतक से प्रभावित होने वाली नवियों के वर्णन में एक प्रेमी हृदय की अभिव्यक्ति वर्धनीय है।

अपस्रंक्रमक परिवर्तनोचिताश्चसिताः पुरः पतिभुपंतुमारमभा

अनुरोदितीव कश्येन पत्रिणा बिस्तेन वस्त्रसतयेप निम्नगा ॥ ५ ४७ ॥

पञ्चमीय नवियाँ कम-कम घबड़ करती हुई प्रभावित हो रही हैं। ये निर्मम होकर उसी की गोश में सोट-सोट होती चली हैं। अतः वे रैबतक की पुनियाँ हैं। भाव ने अपने पति समुद्र से मिलने के लिए जा रही हैं। इस कारण रैबतक चित्रियों के कश्येन स्वर से रोता हुआ मानो अपने वात्सल्य को प्रकट कर रहा है। कस्या के पति पूह जाने के समय पिता का हृदय भारी हो ही जाता है चाहे वह भित्ति भी कठोर क्यों न हो 'पीडयन्ते संहित कर्षं नु तनया विस्तेप कुक्षेर्नन' रैबतक भी पतियों के वरण स्वर से नव्याघों के वसन के धक्कर पर स्वन कर रहा है।

अतुर्न सर्ग में प्रकृति की नैसर्गिक ज्ञान के बिना एक स्वान पर नहीं अनेक स्वानों पर है। कही पर बिभ्रात्मक प्रणाली का धामय लेकर कवि प्रकृति के बाह्य रूप का वितरुत वर्णन करता है तो कहीं संवेचनात्मक प्रणाली से पाठक को भावों में विभोर कर देता है। प्रसकारात्मक प्रणाली का धामय तो कवि ने इसी सर्ग में नहीं अतिष्ठ सभी सर्गों में किया है। इनके प्रकृति वर्णन में कल्पना की रंपीन छाया के साथ ही प्रसकारों के सौन्दर्य की छटा है। कल्पना और प्रसकारों के मध्य वह प्रकृति के सहज सौन्दर्य को कभी आविष्ट नहीं होने देते।

अतु-वर्णन भी प्रकृति-वर्णन का ही एक रूप है। अतुर्न सर्ग के रैबतक वर्णन में छठे सर्ग में छहों अतुर्गों का सविस्तार वर्णन हुआ है। मनुष्य सौन्दर्योपासक प्राणी है। कला सौन्दर्य की अनुमृति ही नहीं करती अतिष्ठ नवीन सौन्दर्य की सृष्टि भी करती है। कविता सौन्दर्य का मूर्तिमात्र रूप है। सौन्दर्य को अपनी कविता का मूर्त रूप देना कवि अपने और समस्त संसार के एकत्र की स्थापना करते हैं। एक अर्थ में कविता विस्म-व्यापिनी सौन्दर्योपासना है। जन साधारण के वचन की अपेक्षा कवियों के वचन में कुछ विलक्षणता होती है। जिन भाषों से कवि प्रकृति को देखते हैं वे भाषें कुछ और ही होती हैं। देखिये महाकवि माध ने पर्वतों पर वर्षा का आगमन कुछ पहले ही हो जाता है इस बात को कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। जैसे कोई बचल नमना एवं उलतलतना नायिका प्रियतम की प्रतीक्षा करने में समर्थ न होकर निद्रिष्ट समये पूर्व ही अभिसरण करती है उसी भाँति बमकरी हुई बिजली और उसके हुए व्यामकाय भिषों से युक्त वर्षा अतु भी अपने प्रियतम रैबतक पर्वत के समीप समय के कुछ ही पूर्व आ पहुँची है। इसका अयोमिश्रित श्लोक देखिए—

स्फुरदधीरतडिम्लयना गृह प्रियमिवागसितोरुपयोधरा ।

जसधरावसिरप्रतिपासितस्वसमया समयाज्जगतीभरम् ॥ ६ २५ ॥

हिन्दी के कवियों ने भी जिसमें सेनापति और बिहारी प्रमुख हैं अत्येसा ढाया इस प्रकार का वर्णन किया है। बिहारी 'दू' का वर्णन करते हुए कहते हैं—

है। रैवतक से प्रवाहित होने वाली नदियों के बर्णन में एक प्रेमी हृदय की अभिव्यक्ति वर्णनीय है।

अपशङ्कमक परिवर्तनोभितापचलिता पुरः पतिमुपेतुमात्मजा

अमुरोदितोय करुणेन पत्रिणा विस्तेन वससतयेप निम्नगा ॥ ५-४७ ॥

पश्चिमी नदियाँ बल-बल ध्वज करती हुई प्रवाहित हो रही हैं। ये निर्भय होकर उसी की गोद में जोट-जोट होसी जाती हैं। अतः ये रैवतक की पुत्रियाँ हैं। आश्व ने अपने पति समुद्र से मिलने के लिए जा रही हैं इस कारण रैवतक विधियों के कारण स्वर से रोता हुआ मागो घरने वास्तव्य को प्रकट कर रहा है। कन्या के पति यह जाने के समय पिता का हृदय भार हो ही जाता है चाहे वह कितना भी कठोर क्यों न हो 'भीह्यन्ते इहिण' कर्म मु तनया विस्तेप दुर्जनं रैवतक भी पश्चिमों के कारण स्वर से नव्याभों के गमन के अवसर पर कल कर रहा है।

चतुर्ध्व सर्ग में प्रकृति की नैसर्गिक छटा के बिना एक स्थान पर नहीं घनेक स्थानों पर है। कहीं पर विनाशक प्रणाली का आघव लेकर कवि प्रकृति के बाह्य रूप का विस्तृत वर्णन करता है तो कहीं संवेदनात्मक प्रणाली से पाठक को भावों में विमोह कर देता है। अलंकारात्मक प्रणाली का आश्रय तो कवि ने इसी सर्व में नहीं अपितु सभी सर्गों में किया है। इनके प्रकृति वर्णन में कल्पना की रंगीन छाया के साथ ही अलंकारों के सौन्दर्य की छटा है। कल्पना और अलंकारों के मध्य वह प्रकृति के सहज सौन्दर्य को कभी अछिन्न नहीं होने देते।

अनु-वर्णन भी प्रकृति-वर्णन का ही एक रूप है। चतुर्थ सर्ग के रैवतक वर्णन में छोटे सर्ग में छोटी अनुध्वों का संविस्तार वर्णन हुआ है। अनुप्य सौन्दर्योपासक प्राणी है। कन्या सौन्दर्य की अनुभूति ही नहीं करती अपितु गभीर सौन्दर्य की सृष्टि भी करती है। कविता सौन्दर्य का मूर्तिमान् रूप है। सौन्दर्य को अपनी कविता का मूर्त रूप देना कवि अपने और समस्त संसार के एकरूप की स्थापना करते हैं। एक धर्म में कविता विश्व-व्यापिनी सौन्दर्योपासना है। जन साधारण के कलन की अपेक्षा कवियों के कलन में कुछ विलस्यता होती है। जिन भावों से कवि प्रकृति को देखते हैं वे भावों कुछ और ही होती हैं। ऐकिये महाकवि माघ ने पर्वतों पर वर्षा का आनन्दन कुछ पहले ही हो जाता है इस बात को कितने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। जैसे कोई बचस नममा एवं सप्रतस्तना नायिका प्रियतम की प्रतीक्षा करने में समर्थ न होकर निविष्ट समये पूर्व ही अभिसरण करती हैं, उसी भाँति 'नमकटी हुई विजयी और जमके हुए श्यामकाम मैलों से युक्त वर्षा अनु भी अपने प्रियतम रैवतक पर्वत के समीप समय के कुछ ही पूर्व या पहुँची है। इसका अशोभितित श्लोक देखिए—

स्फुराधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागसितोरुपयोधरा ।

जसधरावसिरप्रतिपासितस्वसमया समयाज्जगतीधरम् ॥ ६-२५ ॥

हिन्दी के कवियों ने भी जिसमें सेनापति और बिहारी प्रमुख हैं छन्दोबा द्वारा इस प्रकार का वर्णन किया है। बिहारी 'मू' का वर्णन करते हुए कहते हैं—

धरी न यह पावक प्रबल छुई भसति चहुँ पास ।

मानहुँ बिरह बसन्त के शीपम सेति उसाँस ॥

कवि माध का यह वर्णन देखिए—

अवचित कुसुमा विहाय वत्सीर्युवतिषु कोमलमास्यमासिनीषु ।

पदमुपदर्धिते कुसाम्पसीना न परिचयो मलिनारममां प्रथमम् ॥ ७-६१ ॥

अमरकुन्द जन (रिक्त) मठाओं को जिनसे युवतियों ने सब कूल चुन लिए वे छोड़कर कोमल माताओं के धारण करने वाली युवतियों के ऊपर धाकर बैठ गए । साथ है मलिन मात्स्या प्रथमा काली देह वालों से बिरहका का भी परिचय व्यर्थ होता है । हिन्दी साहित्या कथ के पूर्व तुलसी को यह पंक्ति सबसे मिलती चुकती है—

“हामिनि वमन रही यम माही सन की प्रीति यथा पिर नाही ।”

महाकवि माध ने घरह ऋतु का वर्णन करते हुए एक सुन्दर उपदेश भी दे जाला है देखिए—

समय एव करोति बसावसं प्रणिगदन्त इतीव सरीरिणाम् ।

सरदि हंसरवा पक्षीकृतस्वरममुरममुरमणीमताम् ॥ ६-४४ ॥

इस पद्य में कथेला हास कहा गया है कि समय ही शरीर धारियों को बसनाई और निर्बल बनाता है । ऐसे वर्णन माध ने अन्यत्र भी किये हैं—जैसे घरह होते हुए पूर्व में जयदी बुझावसा के सलल बैचकर अनामि होना शर्म ६, ३ में नदियों के बहकर जाने में पुष्पी के मुसपल जाने का बुझ, धारि । अन्य जरीपनों की भाँति शू पार के भी जरीपन को धारि के होते हैं एक मानव व्यापारों में मुस्कटाहूट, पीत बाध, दूरी धारि की बेठा में है और प्राकृतिक सुपना में चन्द्र चारनी, नदी, पुलिन कमल, बकुल भीषसपी कोयल की झूक, पलास के पुष्प, पाटल पुष्प, मेघ का धनयजन, चपला की चपक धारि है । हिन्दी के कवि पतिपाव ने प्राकृतिक जरीपनों को इस भाँति विभाया है—

चन्द्र कमल चमल अगर, ऋतु जन बाग विहार ।

जरीपन शू पार के ये सज्जवस शृंगार ॥

ऋतुओं का सम्बन्ध शू पार के संबन्ध विनोदात्मक दोनों पक्षों में है । महाकवि माध के ऋतु वर्णन में ये सब मिलते हैं ।

दत्तितकोमलपाटलकुन्दमसे निबधपूरुषसितानुविधायिनी ।

मदतिवाति विसासिभिदम्भदभ्रमदयो मदसोन्यमुपादये ॥ ६-२३ ॥

अदणितालिन धौसवना मुहु विदधतीपधिकात्र परितापिन

विकचकिमुनसंहातरुधर्षरदधहृदयहृदय्यहाधियम् ॥ ६-२१ ॥

गजकदम्बमेघकमुषकनैमसि वीर्य मवाम्बुदमम्बरे ।

भमिससार न बसभयगना न चकमे न कमेजरसं रू ॥ ६-२६ ॥

शब्दु बर्णन के साथ-साथ यमकादि सांस्कृतिक चमत्कार भी कवि ने बिखारा है —
जगद्गुणीकूर्तुमिमाः स्मरस्य प्रभावनीके तमवी जयगती ।

हरयस्य तेने कदस्त्रीर्मधुनी प्रभावनी केतनवैजयन्ती ॥ ६ १६ ॥

यमकों का ऐसा चमत्कार तो श्लोक संख्या ६६ से सूर्य की समाप्ति तक मिला है ।
इसी तरह शब्दु बर्णन के साथ सृष्टियों का योम भी श्लोक संख्या ४१ ४४ ४२ में है ।

माघ की प्रकृति संश्लेष शृंगार के छद्मपन पक्ष की है किन्तु कहीं-कहीं पर वियोग के चित्र भी हैं । कवि ने प्रकृति पर मानवोचित शृंगारी चोटियों का आरोप अधिक किया है ।
देखिए ६ सूर्य का १०वाँ श्लोक और ११वें सूर्य का ४२वाँ श्लोक । किन्तु माघ के अधिकतर प्रयोग संश्लेष पक्ष के ही हैं । माघ के प्रकृति को अप्रस्तुत विधान के रूप में बर्णन करने के प्रसंग बड़े सुन्दर बन पड़े हैं ।

प्रकृति बर्णन के भन्तर्गत महाकवि माघ का प्रभाव बर्णन —

कवि ने प्रभाव के हव्यों को अपनी कुलम लुप्तिका से चित्रित किया है । स्वाभाविकता एवं सरसता के कारण इन बात काशीन रंजीत हव्यों में अपूर्व सौन्दर्य है—

स्फुटसर मुपरिष्ठादस्वसूतैर्ध्रुवस्य, स्फुरति सुरभृतीनां मङ्गलं व्यस्तमेतत्
शकटमिव महीयाः सैख्ये शार्ङ्गपाणोदधपलचरयकाब्जप्रेरणोत्तुगिताग्रम् ११।

रात जब बहुत ही जोड़ी रह गई है । रात-काव होने में कुछ ही क्षण शेष हैं सन्तपि
माकाय में लम्बे पड़े हुए हैं । उनका पिछला भाग तो नीचे की भुका सा है और धक्का ऊपर
को । प्रयोगों की ओर छोटा सा अन्तराष्ट्र कुछ-कुछ चमक रहा है । सन्तपियों का आकार
पाड़ी के सहज है ऐसी गाड़ी के सहज जिसका धुना ऊपर उठ गया हो । इसी से उनके और
प्रवृत्तारे के हस को देखकर श्री कृष्ण के वाक्यकाल की एक बटना स्मृति पटल पर चित्रित
हो जाती है । धिपु श्री कृष्ण को मारने के लिए एक बार पाड़ी का रूप बनाकर शकटासुर
नाम का एक दानव उनके निकट आया था । श्री कृष्ण ने पासने में पड़े हुए खेलते-खेलते
उसके नाव मार दी । उसके आघात से उसका मग्नभाग ऊपर को उठ गया और पश्चात् पाव
नीचे की ओर झुक गया । श्री कृष्ण उसके लगे आ गये । यही हस इस समय सन्तपियों
की अवस्थिति का है । उपमा द्वारा एक वीर्यशक्ति कथा को कवि ने यहाँ विश्व के समान
सामने ला दिया है—

प्रहरकमपनीम स्व निविद्रासतोऽप्ये प्रतिपद्युपहृतं केनचिज्जागृहीति ।

मुहूर्तविद्यदवर्णा निग्रहा शून्यधूम्यां यदपि गिरमस्तुष्यते नो मनुष्यम् ।

यह कैसा सरस हस है । कथाचित् चार बज चुके हैं रात अपने पहरे के समय को
बिताकर घुमन करने के इच्छुक किसी पहरेदार ने जब अपने जोड़ीदार को सठे जागो ऐसा
बार-बार ऊँचे स्वर से पुकारा तब वह प्रयाङ्ग निद्रा के कारण घस्पष्ट स्वर में (जागने के
समान) कुछ सोमता तो रहा किन्तु वास्तव में जाग नहीं सका । कैसा यथार्थ चित्र है । इससे
कवि का सूक्ष्म प्रवेक्षण अभिव्यक्त होता है ।

प्रातःकाल होने पर भक्तिरों तथा राज प्रासादों में वाक्य-विशेष मधुर-मधुर शब्द से बज रहे थे । समूची सुरीली व्यक्ति इस बात का संकेत करती थी कि प्रातःकाल का समय हो गया है, मयबाम् उठ गये हैं । नगर निवासियों को भी अब बाह्य गृह में उठ जाना है । संगीत के माध्यम से यह वर्णन बड़ा मधुर हो गया है—

श्रुतिसमधिकमुष्णैः पञ्चम पीडयन्त सततमुपभूतं भिन्नकीकृत्यपञ्चम् ।
प्रणिबगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकठं परिणतिमिति रात्रेर्मगिषा माधवाम् ।

॥ ११११ ॥

यतमनुगतबीरैरेकतां वेणुनाथ कसमविकसतास गायकैर्बोधहेतो
असकृत नवगीतं गीतमाकर्णयन्त सुखमुकृतिसमेना यान्ति निन्दां नरेन्द्रा

॥ ११० ॥

पूब विद्या में ज्योति फूट रही है । परिचयाकाश में चन्द्रमा की प्रभा कुछ फीकी सी पड़ी हुई है क्योंकि सबेरा हो रहा है । इसको लेकर कवि ने कहा है—

उदयमुदितदीप्तर्यासिभ्यः सगती मे पतति न वरमिन्नु सोऽप्यरामेपगरवा ।
स्मितस्वर्जरिव सद्यः साभ्यसूय प्रमेति, स्फुरति विषादमेपा पूवकाष्ठांगनाया

पूब विद्या क्षयिणी स्त्री की प्रभा इस समय बहुत ही मनी प्रतीत हो रही है । वह हँस सी रही है । वह यह सोचती सी है कि यह चन्द्रमा जब तक मेरी सक्ति में रहा तब तक उदित ही नहीं रहा इसकी शीप्ति भी खूब बढ़ी । परन्तु अभी चन्द्रमा अब पश्चिम विद्या क्षयिणी स्त्री की ओर जाते ही शीप्तिहीन होकर पतित हो रहा है । पूब विद्या इस धरती में चन्द्रमा को देखकर प्रभा के बहाने हँस से मुसका सी रही है । परन्तु चन्द्रमा को उसकी हँसी की कुछ भी परवा नहीं । वह अपने ही रंग में मस्त भासूय होता है । अस्त समय होने के कारण उसका बिम्ब तो नाश है पर फिरलें उसकी पुराने कमल की नास के कटे हुए टुकड़ों के तुल्य सकेत हैं । स्वयं सकेत होकर भी बिम्ब की अस्पष्टता के कारण वे दुःख-दुःख नाश भी हैं । कुंडल मिश्रित सकेत वर्णन के द्वारा उन्हीं सतिमा मिली हुई सकेत किरणों हैं चन्द्रमा पश्चिम दिक् बधु का शृंगार सा कर रहा है । उसे प्रसन्न करने के लिए उसका मुख पर चन्दन का लेप सा लगा रहा है ।

भक्तिरों के स्वाद को प्राप्त करने वाली रसिकियों का मुख नाश हो जाता है । वे निर्मल्य हो जाती हैं तथा धूँपट हटा देती हैं । प्रकृति की ओट में कवि ने इस हस्य का भी स्मरण दिलाया है—

मदश्चिमरुणेनोद्यच्छता सम्भितस्य त्यजत इव विरायस्यायिनोमाद्यु सज्जाम् ।
वसनमिव मुखस्य स सते संप्रतीद सितकरकरजास वासवाद्यायुवस्या ॥ ११-१६ ॥

मद्यपान करने से मद्य के कारण स्त्रियों के मुख पर चामिका धा जाती है । इस दशा में मद्यमायी स्त्रियों की स्वाभाविकी लज्जा जाती रहती है । वे अपने मुख से धूँपट हटा देती

है। प्रसन्नोद्यम हो जाने के कारण पूर्व दिशा रुगिणी स्त्री का भी मुख इस समय मरमाती स्त्री ही के मुख के सदृश मान हो रहा है। जूँट हटाने का काम अन्नमा ने कर दिया।

इसी के ठमर के श्लोक संख्या १३ में कवि ने प्रातःकाल का अपूर्व रूप दिखसाया है—
 दधवसुकलमेक खंडितामानमङ्गि-भियमपरमपूरणमुष्णसदृशः पसाधे

कसरखमुपगीते पदपदोद्येन घस कुमुदकमलपदे तुल्यरूपामवस्थाम् ॥ ११ १५

यह तो मानी हुई बात है कि कमल के शोभित होने पर कुमुद शोभित नहीं होते तथा कुमुद के शोभित होने पर कमल नहीं। इस भाँति दोनों की बसा बहुधा एक ही नहीं रहती किन्तु इस समय प्रातःकाल दोनों में तुल्यता देखी जाती है। कुमुदबन्ध होने की है पर घसी पूरे बन्ध नहीं हुए। अथवा कमल खिलने की है पर घसी पूरे नहीं खिले। एक की सोभा घापी ही रह गई है और दूसरे को घापी ही सोभा प्राप्त हुई है। रहे अमर से घसी दोनों पर ही बँट रहा है और गूँथित स्थिति के बहाने दोनों ही की प्रशंसा के वीर से बा रहे हैं। इसी से इस समय कुमुद और कमल दोनों ही समता को प्राप्त हो रहे हैं।

माय कवि रसिक को ठहरे इनको प्रकृति के उपकरणों में श्रु गार भावना उचित हो जाती है। समासोक्ति के द्वारा अभिचार का बर्णन नीचे के श्लोक में दर्शनीय है—

धिसिरकिरणकान्तं वासरान्ते अमिसार्यं स्वसनसुरभिगणिषां साम्प्रत सत्त्वरैव।
 अजति रजनिरेषा तन्मयूखांगरागी परिमलितमनिम्वैरम्बरान्तं बहुमती ॥ ११ २१ ॥

यह रचनी विवश की समाप्ति पर अन्नमा कभी धंगराय से ज्ञाप्त अपने बन्ध की सम्मानती हुई आकाश की ओर धीग्रता के साथ बनी बा रही है।

जो अभिचारिका रात्रि के समय अपने प्रियतम के साथ अभिचरण करती है वह प्रातःकाल होने के पूर्व ही अपने धंगराय से ज्ञाप्त सुगन्धित वस्त्रों को सम्मानती हुई धीग्र हो अपने घर की ओर वापस लौटती है इसका यह विश्व है। अब एक और समासोक्ति को प्रस्तुत की जाती है—

मदकुमुदवनधीहासनेभिप्रसंगादधिकरुचिरखेयामप्युषां आपरित्वा
 अयमपरविशोके मुञ्चति सस्तहस्तं सिद्धमिपुरिष पाण्डु म्लानमात्मानमिन्दु

॥ २२ ॥

सार्धकाल जिस समय अन्नमा का उदय हुआ था उस समय वह बहुत ही जावज्ज-यम था। कम-कम से उसकी दीप्ति उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई। वह ठहरा रसिक। उसने सोचा यह इतनी बड़ी रात जैसे ही कैसे कटेगी क्यों न खिली हुई नवीन कुमुदवर्णों (कोका विलियों) के साथ हास्य विमोह किया जाय। अतएव वह अपनी सोभा के साथ हास परिहास करके उनका विकास करने लगा। इस भाँति जैसे जैसे बूझते समस्त रात्रि बीत गई। वह एक भी नवा घटीर पोसा पड़ गया कर (किरणपात) सस्त अर्थात् सिद्ध हो गए इससे वह दूसरी दिग्गना (परिधम विद्या) की पोंद में आ गया। वह कथाविद् उसने इसलिये किया कि रात्रि भर के बने हैं। चापों उसकी नीच में धाराय से हो कार्य। अतुर नाचक रात्र भर

अपनी प्रवृत्ति के साथ बिहार कर जब तक जाते हैं तो इसी प्रकार प्रातः दूसरी के संक में जाकर सो जाते हैं ।

सन्तोष संख्या २३ और ४० में प्रमातृकालीन संख्या का विवरण इस प्रकार किया गया है—

अन्धकार के लिए भयंकर शत्रु महाशय अंधुमासी अभी तक दिखाई भी नहीं दिये फिर भी उनके धारिणी धरण ही न उनके धनवीर्य होने के पूर्व ही, मोड़े ही नहीं समस्त अन्धकार का समुद्र नाश कर दिया है । क्यों न हो प्रतापी पुण्य अपने तब से अपने शत्रुओं का पराभव करने की शक्ति रखते हैं । उनके धनपामी सेवक भी कम पराक्रमी नहीं होते, स्वामी को भय न देकर वे स्वयं ही उसके विपक्षियों का नाश कर डालते हैं । इस भाँति अन्धकार के द्वारा समस्त अन्धकार का नाश होते ही बेचारी रात पर यह सब पड़ाइँ सहसा टूट पड़ता है । इस दशा में वह ठहर ही कैसे सकती थी । निश्चय होकर वह भाग्य ली । वह नयी दिन और रात की संधि धर्मात् प्रातःकालीन संख्या । अन्धकार ही मानो इस अन्ध अन्धकार मुता सहस्र संख्या के जाल और परिधय कोमल हाथ से । मधु माता से छूटे हुए नीच कमल ही मानो काजल लयी हुई इसकी धारें थी । पक्षियों का कम-कम अन्ध मानो इसकी ठोठनी बोलो थी । ऐसी संख्या ने जब देखा कि रात्रि इस लोक से प्रस्थान कर रही है उस पक्षियों के कोलाहल के बहाने यह कहती हुई कि अन्ध में भी माटी है यह भी उसी के पीछे दीड़ गई । प्रकृति के द्वारा मानवीय संवेदना का कँसा सुन्दर प्रकाश हुआ है ।

निम्न लिखित स्लोक भी अपने डेव का एक ही है—

बिहत पुषुवरमातुस्य कर्मैर्मूलैः कस्य इव गरीमान् दिग्मिराकृत्यमाण
कृत अपसविहंगासापकोसाहसामिर्जसमिभिजसमध्यादेव उत्तार्यतेर्ज ॥४४॥

बारों घोर जैनी हुई, मोटी रस्तियों के समान किण्वों के द्वारा खाया जाता हुआ बड़े भारी कमल के पुष्प यह सूर्य सिखा कपी गारियों ने समुद्र के जल से निकाला जा रहा है । जिस भाँति कमल रस्तियों की सहायता से बाहर निकलता जाता है उसी भाँति पूर समुद्र में डूबे हुए सूर्य को विषाघ किण्व कपी रस्तियों से चींच कर निकाल रही है । जिस भाँति बड़े को जल से निकालने के समय महान् कल-कल होता है उसी भाँति प्रातःकाल होते ही चिड़ियाँ चहचहाते लपटी हैं ।

सूर्योदय का यह सुन्दर वर्णन है । सूर्य का बिम्ब मानो एक मड़ा है दिग्बुधों कोर लपकाकर समुद्र के भीतर से उसे चींच रही हैं । मूय की किरणें लंबी-लंबी मोटी रस्तियाँ हैं । चींचते समय पक्षियों के कलरव के बहाने वे बह-बह कर घोर मचा रही हैं कि चींच लिया है चींच लिया है कुछ ही बाकी है ऊपर माना ही चाहता है, जहाँ घोर कोर मयाना ।

सूर्य घर ऊपर निकला है । उसका वर्ण लाल है । किन्तु दिवांगमाघों न द्वारा चींच चींच कर प्योरी भाँति छावर की लमिल राशि से बाहर निकाले जाने पर यह सूर्य बिम्ब इन भाँति का क्यों है । कवि ने कल्पना की है । वह समस्त रात्रि भर समुद्र के जल के

भीतर जब यह पड़ा था तब बाह्याग्नि की ज्वाला ने इसे जल तपामा होगा । यही तो कारण है कि खैर (खिर) के बसे हुए कुम्भे के धरंगार के सहस्र भागिमा सिपे हुए यह इतना ठाम बिबाई दे रहा है । अग्न्या इसके ऐसा होने का धीर क्या कारण हो सकता है पही मात्र इस स्मोक में है—

पयसि समिधराधेनैकतमस्तनिमन्नाः स्फुटमनिधमतापि ज्वालयन् बाह्याग्ने ।
यदयमिदमिदानीमगमुद्भ्यन्दधाति ज्वसितखदिरकाष्ठांगारगौर विवस्मन्नात् ॥४५॥

नीचे के स्तोक में प्रकृति का वास्तव्य मात्र अनुभूति के योग्य है । उदयाचम के धिखर रूप धांपन के बाल सूर्य को लेकते हुए धीरे धीरे रेंपते देव पद्मिनीयों को बड़ा प्रमोद हुआ । सुन्दर बासक को धांपन में बाधु पाणि चलते देव स्त्रियों का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है अतएव उन्होंने अपने कमल मुख के विकास के बहाने हँस हँसकर उसे बड़े ही प्रेम से देखा । यह हस देसकर माँ के सख्त अन्तरिक्त देवता का हृदय भर गया । वह पक्षियों के कलरन के बहाने जोस उठी माँ का धाधा धा बैठ गया । फिर क्या था बास सूर्य बास-सीमा बिबाटा हुआ तुरन्त ही अपने मुकुट कर (किरणें) फैलाकर अन्तरिक्ष की गोद में डूब गया । उदयाचम पर उचित होकर कुछ ही क्षणों में वह आकाश में आ गया । स्तोक यह है—

उदयसिखरिभू गग्रांगणोष्वेय रिगन सकमलमुसहासं बीक्षित पद्मिनीभिः
विततमुकुकरागः शब्दयन्त्या वयोभिः परिपतित विबोकिहेमया बालसूय ॥११४७॥

सूर्योदय का एक चर्चन धीर है—

परिणतमदिरामं भास्करेणांमुवाणै स्तिमिरकरिषट्पायां सर्वविक्षु कतायां
खदिरमिवबहन्त्यो भाम्नि बासात्पेनञ्छुरितमुमयरोधीनारितं वारि नद्य ॥११४८॥

आकाश में सूर्य के बिबाई देते ही नदियों ने निखसस्य ही रूप बारण किया है । दोनों तटों या कगारों के मध्य से प्रवाहित होते हुए जल पर सूर्य की लाल-लाल प्रातःकालीन रूप को पड़ी तो वह बस मदिरा के रस सख्त हो गया अतएव ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे सूर्य ने अपने किरखबाणों से अग्निकार कपी हथियों की बटा को सर्वत्र मार गिराया हो उन्हीं के नाचों से निकला हुआ खदिर बह-बह कर नदियों में आ गया हो धीर लची के मिश्रण से उनका जल लाल हो गया हो । यहाँ कवि ने एक धीर तो मदिरा का मध्याह्न बिभण कर बिबा डुसरी धीर रणभूमि का भी एक वृक्ष उपस्थित कर दिया । दोनों ही कल्पनाओं का आधार उसकी स्वयं की अनुभूति है । निम्न स्मोक में सूर्य देव का पचसी ठठ वर्णनीय है—

धारुमयमुपविष्टः कमातसम्यस्तपादः प्रणतिपरमवेदय प्रीतमङ्गायसोकम् ।
भुवनतलमशेषं प्रत्यवेक्षिष्यमाण शितिधरतटपीठाकुत्स्थितः सप्तसप्तिः ॥११४८॥

जिस भाँति कोई महापद्म सिंहासन पर बैठकर बोड़ी देर तक प्रणतजनों को आदर देकर तुरन्त ही अपने सम्पूर्ण राज्य को देखने के लिए बस पड़ता है उसी भाँति सूर्य ने भी

पहले परती पर अपने पैर रखे (किरणें फैल गयीं) और फिर प्रणत सोर्षों को समुद्र कर समग्र बरातल को देखने की प्रतिभाषा से उदगाधन के सिंहासन से उत्थान कर दिया । बिछने राज्य बरबार में रहकर बाँटे देखी हो वह पुनः ही ऐसे भाव प्रदर्शित कर सकता है । इससे ज्ञात होता है महाकवि नाम राज्याधारी थे । राजानोग प्रातः सार्य मुखर विभा करते थे फिर अपने प्रातः समग्र के परिचाय को सुनने सबका किसी ऐसे कार्य में व्यस्त हो जाते थे जिसका जनता से संबंध होता था । कवि ने प्रकृति बर्णन के साथ-साथ राजा के वैयक्तिक जीवन की एक कड़ी की प्रस्तुत कर दी है । कुशल वही है जो प्रजा को समुद्र रखे । राजा होगा वहाँ पर सन्तुष्ट ही तो होंगे यत्न उसके साथ बना नीति होनी चाहिए इसका बर्णन नीचे के श्लोक में है—

अवतमसमिदायै भास्वताम्बुदगतेन प्रसममुहुगणोऽमी दर्शनीयोऽप्यपास्त ।
निरासितुमरिमिच्छोर्मे तदोपास्येण भियमधिगतवन्तस्तेऽपिबुन्तभ्यपक्षे ॥११ ५७॥

तारों का समुदाय देखने में बहुत सुन्दर वास्तु होता है यह सत्य है । यह भी सत्य है कि भले व्यक्तियों को न कष्ट ही होगा चाहिए और न उनकी सम्यक् स्थिति से झूठ ही करना चाहिए । परन्तु सूर्य का उदय अन्धकार का नाश करने ही के लिए होता है और तारों की भीवृद्धि अन्धकार ही के कारण है । इसीसे दुखी होकर सूर्य का अन्धकार के साथ ही तारों का भी विनाश करना पड़ा उसे उसको भी बसात् निजात बाहर करना पड़ा । बात यह है कि सन्तुष्ट के साथ उसके धारणीयों का भी विनाश करना ही पड़ता है । न करने से भय का कारण बना ही रहता है । समनीति वही कहती है ।

कवि का ज्ञान अपरिचीम है । जैसे प्रकृति बर्णन में पौराणिक प्रसंगों की उद्भावना के उदाहरण पहले भी दिये जा चुके हैं । एक और वही दिया जाता है—

महा महिमा भगवान् मधुसूदन विषय समय कल्पान्त में समस्त लोकों का प्रलय बात की बात में कर बैठे हैं उस समय अपनी समाधि की अनुसूचकती श्री (लक्ष्मी) को बारण करके उन्हें साथ लेकर और सागर में अकेले ही बिछावते हैं । दिन चढ़ जाने पर महिमाभय भगवान् मास्कर भी उसी भाँति एक लण में समस्त ताराशोक का संहार करके अपनी प्रतिष्ठापिनी श्री (योगा) के सहित और सागर ही के समान आकाश में अकेले ही मौज कर रहे हैं । श्लोक है—

प्रसयमक्षिसतारा सोकमह्माय नीत्वा भियमनतिदामधी सानुरागा दधानः
नगनसमिन्नराशि रात्रिकल्पानसाने मधुरिपुरिष भास्वानेय एकोऽपिद्येते ॥११ ६६॥

प्रकृति बर्णन के अन्तर्गत प्रजात का यह रंजीत हरम किता सखीय तथा वचार्थ है । इसमें वही व्यवहारों का बर्णन प्रकृति के क्रिया कलाओं से कराया गया है जो वही पर मान नीय सम्बन्धों की पहुँच (एप्रोच दू द्युर्मेय रिनेयन्त) प्रकृति तक प्रदर्शित की है किन्तु वह एक महान् धारण्य की बात है कि प्रकृति के इस कमनीय बर्णन में कवि ने क्या बतलाने प्रकृति क्या बतलाने प्रकृति का बर्णन करने तथा के प्रवाह में किसी भाँति भी बाधा उपस्थित नहीं होने दी ।

अवतक यागवेत्तर प्रकृति के सुन्दर रसीम बिज प्रस्तुत किये गए । कवि के मानवीय प्रकृति के वर्णन भी उसी तरह बड़े सुन्दर हैं । कवि ने मागव के भावों उनके सुख पुच्छ, कछुआ हर्ष विवाद धादि को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है ।

चतुर्थ सर्ग के १७वें श्लोक को पहले उद्धृत किया जा चुका है इसमें कवि ने कछुआ पूर्ण वात्सल्य प्रदर्शित किया है । पति जब अपनी बच्ची को उसके पितृगृह से साथ लेकर बसने लगता है तो पिता का वात्सल्य खलक पड़ता है । कवि ने नयी रीबतक धीर पक्षियों के कुंजन के माध्यम से पिता पुत्री पति तथा मात समय पिता का खल्वन इन सबका एक कछुआमय भोग बँटा दिया है । रीबतक पर्वत कभी पिता अपनी नयी स्त्री पुत्री के सबसुर सह जाने पर स्वयं कर रहा है । ११वें सर्ग के ४७वें श्लोक में जो प्रभात का वर्णन है उसमें भी वात्सल्य भाव बड़ी विचित्रता से अभिव्यक्त हुआ है ।

सपदि कुमुदिनीमिमीलित हासपाजपि क्षयमगमवपेतास्तारकास्ता समस्ता
इति दयित नमत्रविधतयन्नगमिन्दुर्वहति कुसमद्योप भ्रष्ट क्षोम शुषेव ॥ ११ २४ ॥

इस श्लोक में बताया गया है कि पत्नियों को माताओं के तुल्य प्रेम करने वाला पति उनकी मृत्यु पर दुःख से परिपूर्ण होकर मुचमसीन एवं भीषण हो ही जाता है । पत्नियों को परती के न रहने पर जो कष्ट भा पड़ता है उसे मुक्त्योगी धार्मिक धम्मी तरह समझ सकते हैं । अन्तःपरा के ऐसे ही दुःख सुख का वर्णन जब कवि करता है तो किंचित् सहृदय का चित्त उस धोर मार्कण्डेय नहीं होता । कवि का प्रभात वर्णन बाह्य प्रकृति अन्तः प्रकृति वर्णन का घनूटा स्याहुरण है जिसमें अर्थ-याम्बीर्य का छटा अपूर्व है ।

इन श्लोकों में अतिरिक्त कवि ने अष्टम और नवम सर्गों में भी प्रभात को मानवीय रूप में (मानवीय भावनाओं से भोत प्रोत) प्रस्तुत किया है—

प्रतिकूलतामुपगतेहि विधौ विफसत्स्वमेति बहुसाधनता ।

भवसम्बन्धमाय विनभतु रभून्न पतिष्यत् कर-सहस्रमपि ॥ १६ ॥

अनुरागवन्तमपि सोचनयोर्दधत् अपुः सुखमतापकरम् ।

निरासयद्रविमपेतबभू विमदाययावपरविम्भणिका ॥ १७ ॥

दक्षिधाम्नि मर्तेरि भूय विमसा परलोकमभ्युपगते विविशु

ज्वसनरिक्म वधमिवेतरया सुखभोज्यजन्मनि स एव पति ॥ १८ ॥

हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक एवं कवि व्याचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 'बाह्य' प्रकृति के बाद अनुप्य अपने अन्तर्जगत् की ओर दृष्टिपात करता है । उसार से ही प्रकृति वर्णन के लिए द्विवेदी जी की यह चर्चा ठीक उतरती है । उनके प्रकृति वर्णन में बहिर्जगत् के साथ अन्तर्जगत् के गंगटन का निर्वाह हुआ है और उसके साथ-साथ भी धादि करने का सफल मिश्रण गया है गह्वर और गम्भीरगति से । एक बुद्धत कोटोपाकर त्रिष मांति केपरे की सहायता से बिज उतारने में समर्थ होता है महाकवि माव ने भी प्रकृति

विशेष से समय-समय ही कार्य किया है। अन्तर इतना ही है कि उनमें भाव-स्वप्न को मिये हुए सजीवता मौजूद है। कुछ भाषे-सर्पों में भाषना प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है।

इसी तरह उनके पशु प्रकृति के वर्णन भी सूक्ष्म पर्यवेक्षण के कारण मर्यादा से कुछ हुए हैं। उँट का जो राजस्थान का एक विशिष्ट प्राणी (पशु) है वर्णन देखिये—

साध कयंश्चिदुचिष्य पिबुमदपत्ररास्यान्तरासगतमाग्नदलं अवीय

दासेरक सपथि संवसित निपादैर्विप्र पुरा पतगराजिव निर्जगार ॥५-६६॥

उँट घास का पत्ता नहीं खाता है यह बात साध को उनके यह सूक्ष्म निरीक्षण से ही मिली हुई है। पौराणिक कथा ने इस वर्णन का संश्लेषण में कृत्रिम कर दी है।

उत्तोरुमारकधुनाप्यसधूसपोष सीहित्यनिःसहसरेण सरोरंघस्तात्
रोमन्धमन्यर चमद् गुह साम्नमासी चक्रे निमीसदल सेखणमोक्षकेण ॥५-६२॥

जख्खीर्वधानरवतस्य कंधराश्चसावपूङ्गा कसचर्यरारवैः ।

भूमिर्महत्प्यविमम्बितकम क्रमेसकैस्तस्मैव विचिन्त्ये ॥१२-१८॥

अभ्याजतोऽभ्यागततूणतर्णकान्निर्गोणहस्तस्य पुरो दुपुमस
वर्गाद्वर्गा हुंकुसिचार निर्वतीमरिर्मघोरैस्त योमतस्त्रिकाम् ॥१२-४१॥

उरक्षाय वर्चसितेन सहैवराज्या कीर्त्तं प्रयत्नपरमानवकुप हेण ।

प्राकृत्यकारि कटकस्तुरगेण तूर्णमवधेति विश्रुतमनुद्रवतास्त्रमम्यम् ॥५-५८॥

मेदस्त्रिन सरभसोपमसानमीकाम् भंकरवा पराननहुक्षो मुहुराध्वेन ।

ऊर्ध्वस्वसेन सुरभीनु नि सपत्नं जग्मे जमोद्धु रविशासविपाणमुद्धा ॥५-६४॥

इन श्लोकों में पशुजगत की प्रकृति व्यापारों का यथार्थ चित्रण हुआ है। चित्र स्पष्ट कर रहे हैं देखिये—

उपजीवतिस्म सततं वयत परिमुग्यतां वाणिगिवाहुपसे

घनवीचिवीचिमवतीर्णवतो निधिरम्भसामुपचमाम कसा ॥६-३२॥

मानवीय व्यापारों का चित्रण भी कवि ने बल रख किया है। उसका मानवीय प्रकृति से निकट का सम्बन्ध होने से यहाँ संकेत कर देना समीचीन है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। व्यापारियों के शोचक व्यापार का परिचय इसमें है।

रजनीमवाप्य रुचमाप दासीसपदि व्यसूपयसमावपिताम् ।

धविसम्भितक्रममहा महतामिसरेतरोपकृतिमकपरितम् ॥६-३३॥

इस श्लोक में बहानुपर्ण के उपकारी स्वभाव की ओर संकेत है।

न च तं सदैव दापमानमपि यदुनूपा प्रभुभुधु ।

दीरितमयनिगुहीत धियः प्रभुचित मेव हि जमोन्नुवर्त्तते ॥१५-४१॥

भूतघातासयः प्रज्ञा-प्रातिष्ठन्त सामासुताम्

द्यौरानुरागनिकय सा हिवेसामुजीविनाम् ॥१२-०॥

सैव्य-सेवक माव सम्बन्ध का यहाँ अन्तर्गत वर्णन हुआ है। इसी भाँति राजा प्रजा का वि पति का तथा स्वजनों का सम्बन्ध बताकर कवि ने अपने व्यापक ज्ञान का परिचय दिया है।

मानव प्रकृति के वर्णन के इन विवरणों को पढ़ने से यह कहा जा सकता है कि कवि प्रकृति का सर्वांगीण वर्णन किया है और यह वर्णन अपने सीमित क्षेत्रों में एक काव्योचित विधिपूर्वक को सिद्ध हुआ है।

माव की विद्वता एवं व्यापक बहुज्ञता —

यहाँकवि माव की कविता को लेकर हमने उनके काव्य सौष्ठव पर प्रकाश डालते हुए सव्य योजना पर-योजना तथा अलंकार योजना भाँति पर विचार किया—सक्ति का अल्प प्रकृति विवरण के प्रसंग को लेकर प्रस्तुत किया। यहाँ पर हम उनकी विद्वता एवं व्यापक बहुज्ञता के विषय में कुछ लिखेंगे। महाकवि माव की कविता एक पंक्ति के रूप में जितनी ईर्ष्या है उतनी कविता एक कवि के रूप में नहीं। उन्हें पंक्ति कवि कहना अधिक उपयुक्त है। कवि के लिये शास्त्र-ज्ञान आवश्यक है। किसी विद्वान् का कथन है कि कवि प्रकृति का पुरोहित होता है। पुरोहित के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह वर्तमान के समस्त कुशाचारों को जानता हुआ विधि-विधान का मर्मज्ञ हो। यही बात कवि के लिए भी है। उसका अनुमन्य धर्म प्रकृति तथा जाह्न प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण में बनता है। इस सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्रकृति का सँसा स्वरूप वह अंकित कर सकता है सँसा दूसरे विद्वान् धर्मवा ब्रह्मज्ञान नहीं कर सकते। इसमें सहस्रों का मानस प्रमाण है। विविध कलाओं तथा शास्त्रों में पारंगत संवेदनाशील कवि जब रचना करता है तो इसमें उसकी बहुज्ञता का परिचय स्वतः मिल जाता है। ऐसे ही कवियों के लिए कहा गया है—

“न स स्रज्जो न तदवाच्य न स मायो न सा कल ।

जामले यन्त काव्यांगमहो भारो महाम् कवे ॥’

न ऐसा कोई स्रज है न ऐसा वाद्य है न ऐसा कोई व्यास है और न कोई ऐसी कला है जो काव्य का रस न बन सके। कितना बड़ा भार है उसपर। रामसेखर ने कहा है—
“सकल-विद्या-स्वार्थनापत्तं पंचवर्षा विद्यास्थानं काव्यम् । अर्थात् काव्य पन्द्रहवीं विद्या-स्थान है। इस सब भार को अनुरता के साथ अपनी सेखनी की नीक पर उठाने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति ही महाकवि हो सकता है।

जो कुछ हमने ऊपर लिखा है वह सब माव पर बटित होता है। उनके महाकाव्य विष्णुपाल रूप की धारि से जन्म तक पढ़ने पर हमको ज्ञात होता है कि इस व्यक्ति का संस्कृत भाषा एवं साहित्य पर कितना गंभीर अध्ययन अधिकार रहा होगा। वह न केवल मानव प्रकृति को ही समझने से, अपितु धर्म, यज्ञ, धारि पशुओं की प्रकृति के भी ज्ञाता थे। यही

उन प्रकृति में चेतना का स्फुरण कराने की अद्भुत शक्त तो उनके प्रकृतिवर्णन के प्रसंग में बता ही बी गयी है। मन्त्रसमं गते मासे मन्त्र-सम्पन्ने न विद्यते' अथवा 'काम्येषु माष' कवि कासिदास' ये सत्तियाँ मिराभार नहीं हैं। इनसे उनकी शास्त्रज्ञता सम्बन्धी लोकमान्यता प्रकट होती है। महाकवि माष की प्रतिभा बहुमुखी थी। उस प्रतिभा का उपयोग जिस विद्या में भी हुआ वही विद्या कवित्व के अद्भुत आभूषण से प्रतिभासित हो गयी। 'मित्र चर्चिहिलोक' किसी को महाकवि माष की यमक योजना सुन्दर प्रतीत होती है तो किसी को उनके धर्मासंसार। कोई उनके बहाने वैचित्र्य पर आकर्षित होता है तो कोई उनके भाव सौष्ठव पर। कोई उनकी किसी कल्पना से मुग्ध होता है तो किसी को उनके पांडित्य पर आश्चर्य होता है। यहाँ उनकी बहुज्ञता का परिचय अभीष्ट है।

महाकवि माष का धुति-विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रचंसनीय है। प्रातःकाल के समय इन्होंने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन किया है। नीचे का पसोक देखिये—

प्रतिस्तरणमस्त्रीर्णं ज्योतिरगन्याहितानां । विधिविहितविरिम्बं सामधेनीरधीत्य
कृतं गुरुदुरितौघध्वसमध्वयुवर्षेर्हुं तमयमुपसीठे साधु सान्नाम्यमग्निः ॥ ११ ४१ ॥

अग्नि का आवाहन करने वाले अग्निहोत्रियों के प्रत्येक घर में प्रचंड ज्वाला के साथ अग्नि जलने लगी है। उसमें सेठ पुरोहित ब्राह्मण कोष उद्यात अनुशात स्वरित स्वरों के उच्चारण के साथ रम्यीर पापों के नाश करने वाले, समिधा झोड़ने के यन्त्रों का पाठ करके आराधानुमोदित विधि से हवि डालने लगे हैं और अग्नि की लपटें उसका आस्वादन करने लगी हैं।

उपर्वुक्त में हवन कर्म में आवश्यक सामग्री की विशेषता वाली ऋचाओं का उल्लेख किया गया है। उनका वैदिक स्वरों की विशेषता का ज्ञान भी इससे मनी भाँति प्रकट होता है। स्वरेभेद से किसी प्रकार अर्बभेद हो जाया करता है इसे बौद्धर्षे सग के १४वें पदोक्त में देखा जा सकता है।

संशयाम दधतो सकृयतां दूरमिन्नफलयो क्रियां प्रति

सम्बध्वासनविदं समासयोविग्रह्यवससु स्वरेण से ॥ १४ २४

इसका तात्पर्य यह कि संदिग्ध समासों से विपरीत अर्थ की संभावना बनी रहती है जैसे बृषामुर के यज्ञ में पुरोहितों ने इन्द्र धात्रु, सम्ब के लिये पशुत स्तुत्य समास तथा बहुव्रीहि समास में स्वर भेद करके अपने यजमान का विनाश ही कर दिया है। अतः व्याकरण शास्त्र के पंडित पुरोहित लोग अपने यजमान सुविष्टर के अनुकूल पढ़ने वाले धर्म के अनुसार स्वर का पाठ कर रहे थे। यज्ञ सम्बन्धी बातों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था तथा वेद की ऋचायें स्वर सहित कैसे बोली जाती थीं इससे भी वे पूर्ण परिचित थे। अमोलिधित्र पसोकों से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

सप्तभेदकरवत्पित स्वर साम सामविदसंगमुज्जगी ।

तत्र सूनुत गिरदध सूरय पुष्य मुग्यमुपमध्यगीपत ॥ १४ २१ ॥

धृतवीतासयः प्रष्टाः प्रातिष्ठन्त क्षमासुताम्

सीर्यागुरागनिकय सा हिवेसानुजीविनाम् ॥११-३०॥

सैम्य-सेवक भाव सम्बन्ध का यहाँ अच्छा दर्शन हुआ है। इसी भाँति राजा प्रजा का पति पति का तथा स्वयंसेवी का सम्बन्ध बताकर कवि ने अपने व्यापक ज्ञान का परिचय दिया है।

मानव प्रकृति के बर्लम के इन विवरणों को पढ़ने से यह कहा जा सकता है कि कवि ने प्रकृति का सर्वोपीत बर्लम किया है और यह बर्लम अपने सीमित क्षेत्रों में एक काव्योचित वैशिष्ट्य को लिये हुए है।

भाष की विद्वता एवं व्यापक बहुज्ञता —

महाकवि भाष की कविता को लेकर हमने उनके काव्य सँछुब पर प्रकाश डालते हुए धर्म योजना पर-योजना तथा सनकार योजना भाँति पर विचार किया—छक्ति का स्वरूप प्रकृति विमल के प्रलय को लेकर प्रस्तुत किया। यहाँ पर हम उनकी विद्वता एवं व्यापक बहुज्ञता के विषय में कुछ बिचोवे। महाकवि भाष की कविता एक पंक्ति के रूप में जितनी ठोसी है उतनी कविता एक कवि के रूप में नहीं। उन्हें पंक्ति कवि कहना अधिक उपयुक्त है। कवि के लिये शास्त्र-ज्ञान आवश्यक है। किसी विद्वान् का कथन है कि कवि प्रकृति का पुरोहित होता है। पुरोहित के लिए वह आवश्यक हो जाता है कि वह समस्त के समस्त कुभाचारों को जानता हुआ विविध-विधान का गर्भज हो। यही बात कवि के लिए भी है। उसका अनुभव अंत प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण से बनता है। इस सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्रकृति का बीसा स्वरूप वह पंक्ति कर सकता है बीसा सूखे विद्वान् सबका बीसात्मिक नहीं कर सकते। इसमें सहस्रकों का मानस प्रयास है। विविध कलाओं तथा शास्त्रों में पारंगत संविदनाशील कवि जब रचना करता है तो इसके जयकी बहुज्ञता का परिचय स्वयं मिल जाता है। ऐसे ही कविओं के लिए कहा गया है—

“न स द्रष्टा न तदवाच्य न स न्यायो न सा कलः।

आपते यन्न काव्यायमहो भारो महात् कवे ॥”

न ऐसा कोई द्रष्टा है न ऐसा दर्श है न ऐसा कोई न्याय है और न कोई ऐसी कला है जो काव्य का धर्म न बन सके। कितना बड़ा भार है उसपर। राजसेनर ने कहा है—
“सकल-विद्या-स्वार्थ-कायतनं पंचदशं विद्यारत्नार्थं काव्यम्। यस्मात् काव्यं पन्ध्रहो विद्या-स्थान है। इन सब भार को अनुरता के साथ अपनी लेखनी की मौँठ पर पठाने की दमता रखने वाला व्यक्ति ही महाकवि हो सकता है।

जो कुछ हमने ऊपर लिखा है वह सब भाष पर पटित होता है। उनके महाकाव्य विमलान बच को भाँति से चला लट पड़ लेते पर हमको ज्ञात होता है कि इस व्यक्ति का संवृत्त भाषा एवं साहित्य पर जितना अभावधारण अधिकार रहा होगा। वह न केवल मानव प्रकृति की ही समझी न अपितु मरन बच, भाँति पशुओं की प्रकृति के भी ज्ञाता थे। यही

उन प्रकृति में चेतना का स्फुरण कराने की अद्भुत क्षमता तो उनके प्रकृतिबर्णन के प्रसन्न में बता ही थी गयी है। गजसर्प गते माघे गज-सम्बो न बिछते' अथवा 'काव्येषु माप कवि कामिदास ये उत्तिमां निराधार गही हैं। इनसे उनकी शास्त्रज्ञता सम्बन्धी भोक्तृमायता प्रकट होती है। महाकवि माघ की प्रतिभा बहुमुखी थी। उस प्रतिभा का उपयोग जिस विधा में भी हुआ वही विधा कवित्व व अद्भुत आसक्त से प्रतिभासित हो गयी। 'निम्न कविहिंसोक्त किसी को महाकवि माघ की समक योजना सुन्दर प्रतीत होती है तो किसी को उनके पार्श्वकार : कोई उनके बल्लभ वैचित्र्य पर आकर्षित होता है तो कोई उनके भाव सौष्ठव पर। कोई उनकी किसी कल्पना से मुग्ध होता है तो किसी को उनके पांडित्य पर आश्चर्य होता है। यहाँ उनकी बहुज्ञता का परिचय अभीष्ट है।

महाकवि माघ का श्रुति-विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रसन्ननीय है। प्रातःकाल क समय इन्होंने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन किया है। नीचे का स्तोत्र वैचित्र्य—

प्रतिधरणमधीर्णं ज्योतिरगन्याहितानां । विधिविहितविरिध्वं सामयेनोरधीर्य
कृतं पुष्टदुरितोषध्वसमम्भमुवर्धेत्समयमुपसीदे साधु सान्नाय्यमग्निः ॥ ११ ८१ ॥

अग्नि का आवाहन करने वाले अग्निहोत्रियों के प्रत्येक घर में प्रबंध ज्वाला के माघ अग्नि बलने लगी है। उसमें श्रेष्ठ पुरोहित ब्राह्मण भोग उदात्त अनुदात्त स्वरित स्वरों के उच्चारण के साथ गंभीर पापों के नाश करने वाले, समिधा छोड़ने के यन्त्रों का पात्र करके सारस्वानुमोदित विधि से हवि आगने लगे हैं और अग्नि की सपटें उसका आत्मादन करने लगी हैं।

उपर्युक्त में हवन कम में आश्चर्यक सामयेनी की विधेयता वाली आवाहनों का उत्सव किया गया है। उनका वैदिक स्वरों की विधेयता का ज्ञान भी इससे भली भाँति प्रकट होता है। स्वरेण से किसी प्रकार अर्थभेद हो जाया करता है इसे श्रोतृजनों से के १०वें श्लोक में देखा जा सकता है।

सद्यमाय दधतो सस्यतां दूरभिमन्पत्यया क्रियां प्रति

शब्दसाधनविद समासयाविग्रहव्यवससु स्वरेण ये ॥ १४ २४

इसका तात्पर्य यह कि मंदिरक समासों से विपरीत अर्थ की नमावना बनी रहती है जैसे ब्रह्मानुर के यज्ञ में पुरोहितों ने इन्द्र बाहु राज्य क मिय पशुसत् स्तुत्य समास तथा बहुव्रीहि समास में स्वर भेद करके अपने यज्ञमान का विनाश ही कर लिया है। अतः व्याकरण शास्त्र के पंडित पुरोहित भोग अपने यज्ञमान सुविष्टर के अनुदात्त पढ़ने वाले अथ के अनुदात्त स्वर का पात्र कर रहे थे। यज्ञ सम्बन्धी बातों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था तथा वेद की आवाजें स्वर सहित कैसे बोली जाती थी इससे भी वे पूर्ण परिचित थे। अयोनिनिष्ठ स्तोत्रों से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

सप्तभेदकरकल्पित स्वरं साम सामविदसगमुजग्री ।

तत्र सूनृत गिरदध सूर्यः पुष्यं मुष्यमुपमध्यगोपथ ॥ १४ २१ ॥

‘उदात्त स्वर अनुदात्तपश्चेकबर्णम्’ इस परिभाषा से अनुदात्त और स्वरित स्वर को एक ही पद में नीचा कर देता है। अर्थात् एक पद में होने वाली उदात्त स्वर अन्य स्वरों को अनुदात्त बना समता है। एक स्वर के उदात्त होने से अन्य स्वर निपात हो जाते हैं। इस स्वर विषयक प्रसिद्ध नियम का प्रतिपादन भाव ने सिधुपास के वर्णन में कितनी सुन्दर रीति से किया है। आचार्य की तरह एक नियम को ही समझा है और भाव सीत्सर्य तो बड़ ही गया है।

श्रीकृष्ण सर्व में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का जैसा विस्तृत वर्णन मिलता है इससे तो पूर्णतया स्पष्ट है कि महाकवि भाव एक अन्धे कर्मकांडी पंडित से भीर हो सकता है जम्होंने अपने जीवन में किसी विशाल यज्ञ का समारम्भ एवं समावर्तन समारोह सम्पन्न किया हो। राजसूय यज्ञ में शत धादि पुष्प कुर्यों के प्रसवों को लेकर भाव ने अपनी छद्मपता से युधिष्ठिर के चरित्र का विकास किया है।

कवि का दर्शन विषयक ज्ञान का आरम्भ साक्ष्य से किया जाता है। साक्ष्य के तत्वों का उत्प्रेक्ष्य तत्वों पर किया गया है।

प्रथम सर्व में नारद ने श्रीकृष्ण जन्म की इस प्रकार स्तुति की है—

उदासितारनिगृहीतमानसैगृहीतमध्यात्महृद्या कबचस

बहिर्बिकारं प्रकृते पुष्पक विदुः पुरातनं त्वां पुंस्यं पुराविद ॥ १ ३३ ॥

योकी शेष अपनी जित वृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अध्यात्म दृष्टि से किसी भीति ध्यापका दर्शन करते हैं। वे ध्यापको संसार उदासीन महत्त धादि विकारों से मुक्त सत्त्व, रजस् और तमम् इन तीनों गुणों में निष्ठ फिर भी त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न विज्ञानजन धादि पुंस्य के रूप में जानते हैं। इस प्रकार का मठ कपिल धादि ऋषियों का है। साक्ष्य-सिद्धान्त का उल्लेख वहाँ भी मिलता है जहाँ राजसूय यज्ञका वर्णन है। युधिष्ठिर के निम्ने बताया है कि वह स्वयं कुछ कार्य नहीं कर रहे थे पुरोहित ही उनका सब कार्य कर रहे थे। स्वोक है—

तस्य साक्ष्यं पुष्पेणानुन्यतां विभ्रतं स्वयमकुर्वतं क्रिया

कृता तनुपसम्मतोऽभवद् वृत्तिभाजी करणे मयात्विजि ॥ १४ १६ ॥

जिस भीति साक्ष्य मठ में पुंस्य अपने ध्याप पुष्प पाप धादि कोई काम नहीं करता बुद्धि ही सब काम करती है तब भी पुंस्य उन सब कार्यों का साक्षी होता है और वही कर्ता कहलाता है उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर उस राजसूय यज्ञ में यद्यपि कोई कार्य नहीं कर रहे थे पुरोहित साग सब कार्य कर रहे थे और युधिष्ठिर उन सब क्रियाओं की देख भास ही कर रहे थे फिर भी वही उस यज्ञ के कर्ता थे।

बभ्रपय की उक्ति में साक्ष्य शास्त्र का प्रतिपादन कितना स्पष्ट है—

विजयस्त्वमि सेनायां साक्षिमानेऽपदिद्यताम्।

पद्मभाजि समोक्ष्योक्ते बुद्धमौग्य ह्वारमनि ॥ २ ५६ ॥

साक्ष्य मठ में जिस भीति धारणा साक्षी रहकर फल का भागी होता है और बुद्धि पुष्प

हुआदि का मांग करती है उसी प्रकार तुम (श्रीकृष्ण) छापी मांग बने रहकर फल के भागी बनोगे और मादनों की सेना विजय साध करेगी । तुम उद्योगप्रणामान कर दो ।

मीमांसा दर्शन का परिचय राजसूय यज्ञ के प्रसंग में मिलता है । वहाँ एक श्लोक पाया है—

धर्मितामनपथाद्भुजवर्धकासखाणविवोऽनुवाक्यया ।

याज्यया यजनकर्मिणाऽत्यजन्ध्वजातमपदिष्य देवताम् ॥१४ २० ॥

योग-शास्त्र की जहाँ नीचे लिखे श्लोक में है यहाँ सांख्य दर्शन की बात आगयी है—

मन्यादिचित्त परिकर्मविवो विधाय क्लेशप्रहाणमिह मत्तघसवीजयोगा ।

क्याति च सत्त्वगुणान्यतयाऽधिगम्य वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम् ॥४ ५५॥

इस श्लोक में प्रयुक्त मनयादि चित्त-परिकर्म-सवीर्जयोग सत्त्वगुणान्यतया क्याति-क्लेश आदि योगशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली है । मंत्री कष्ट मुहिता और उपेक्षा ये चार चित्त की दोषक वृत्तियाँ हैं । पुष्पकर्ताओं के लिए मंत्री दुष्टियों के लिए कष्टा मुत्तियों के लिए मुहिता अर्थात् उनका अनुमोदन, एवं पापियों के लिए उपेक्षावृत्ति का विधान है ।

क्लेश पाँच हैं 'अभिधास्मिताराणद्वेषामिनिवेशा' पञ्च क्लेशा । अनित्य वस्तुओं में नित्यता का दोष अभिधा । ज्ञेय मन्त्रर दारौ में आत्मबुद्धि का भान । अहंकार का नाम धस्मिता है । अभिमत विषय में अभिगता राग है । अनभिमत विषयों में द्वेष द्वेष है । कार्य और अकार्य में आप्रह अभिनिवेश है ये पाँच क्लेश के कारण हैं । प्रकृति और पुरुष के मिलन को न जानने से सत्तार में भटकना पड़ता है । और जो इनके पार्ष्विक को जान लेते हैं उन्हें मोक्ष-प्राप्ति हो जाती है । तात्पर्य यह है कि यह रैवतक केवल योग विमोक्ष की ही भूमि नहीं प्रत्युत योग प्राप्ति की भी भूमि है । वहाँ पर समाधि आरंभ करने वाले योगी जन मंत्री कष्टा मुहिता और उपेक्षा इन चारों चित्त की दोषक वृत्तियों को मनी प्राप्ति जानकर अभिधा आस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश इन पाँचों क्लेशों को दूर कर देते हैं और फिर बीज युक्त योग को प्राप्त कर प्रकृति तथा पुरुष की क्याति (अर्थात् ज्ञान को पुनः रूप में जानकर) को भी दूर करने की अभिगतापा करते हैं ।

मंत्री आदि चित्तवृत्तियाँ पञ्चक्लेश अभिधा ज्ञान इत्यादि सांख्यदर्शन की अनेक रहस्यपूर्ण बातों का जानना इस श्लोक को समझने के लिए आवश्यक है ।

दूसरा श्लोक और है—

राजबेदिनमनादिमान्धितं देहिनामनुभिधुलया यपु

क्लेशा कर्म फल माग यजित पु विरोपममुमीदवर विदु ॥ १४ ६२ ॥

उपर्युक्त श्लोक में योग-शास्त्र के सिद्धांतों की दृष्टि से परमात्मा की विविध संज्ञाओं यथा विरोपणों की जहाँ नी गई है । यहाँ ज्ञानी पुरुष सं जनि का तात्पर्य योगी पुरुष से है ।

अर्थात् वेदान्त के तत्त्वों का प्रतिपादन भी कई स्थानों पर है । संसार को मिथ्या माना स्वीकार कर ब्रह्म यथा परमात्मा का ही एकमात्र सत्य ब्रह्मत्व की बात तथा केवल ब्रह्म

ज्ञान की प्राप्ति की साधना एवं मोक्ष प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा को माध ने अनेक स्थानों पर प्रकट किया है। वेदान्त के कुछ अस्याम्य सिद्धान्तों की भी उम-उम अवसरों पर चर्चा प्रायी है। नीचे एक श्लोक प्रस्तुत है—

प्राप्त्यभावमपह्नातुमिच्छन् यो योगमार्गपतितेम चेतसा ।

दुर्गवेकमपुननिवृत्तये यं विशन्ति वशिर्न मुमुक्षवः ॥ १४ ६४ ॥

नीचे के श्लोक में निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया है—

उदीर्युराग प्रतिरोधक जनैरमीक्ष्यमभुण्णतयातदुर्गमम् ।

उपश्रुयो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्न्युमिनिरपायसंभया ॥ १-३२ ॥

इसमें बताया है कि मोक्ष इच्छुओं को भी उसी एक ब्रह्म रूप की कृप्य की जरूरत में जाना पड़ता है। मृति का कथन है 'उदेव विशिष्टाऽतिगुप्तुमेति नाम्' पन्था विशिष्टेऽप्यमाय' तथा न स पुनरावर्तते ।

माध ने अपने समय के बीड़ तथा बीज वर्धन शास्त्रों का भी पूर्ण अध्ययन किया था। एक प्रसंग में उल्लेख हुआ है—

सर्व-कार्य-शरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्व-म-य-चकम् ।

सौगतानामिवात्माङ्ग्यो नास्तिमत्रो महीभृताम् ॥ २ २८ ॥

इसी श्लोक में बीड़ वर्धन मठ पड़ा है। बीड़ शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते। वे शरीर को पाँच स्कन्धों से युक्त मानते हैं। रज-स्कन्ध, वेदना-स्कन्ध, विज्ञान-स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध और संस्कार स्कन्ध। इस चरचर वपत् में हवमान सभी वस्तुओं का आकार रूप स्कन्ध है। आरा प्रवाह रूप का ज्ञान विज्ञान स्कन्ध है। वैतन्य प्रववा वस्तु समूह का नाम संज्ञा स्कन्ध है। वित्त पर पड़ी हुई आया संस्कार स्कन्ध है। इन पाँचों स्कन्धों के अतिरिक्त जिस भाँति शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु बीड़ों के लिए नहीं है उसी प्रकार राजाओं के लिए पंचाय वृत्त मंत्र के अतिरिक्त किसी भी कार्य में कोई अन्य मंत्र नहीं है। राजाओं के वे पंचाय मंत्र ये हैं कार्य के आरम्भ करने के उपाय कार्य को सिद्ध करने में उपयोगी इष्ट्य का संग्रह देण और काम का विचार, विपत्तियों को दूर करने के उपाय और कार्य की सिद्धि। बसराय में अपने कथन को पंच स्कन्ध के साम्य से बड़ी स्पष्टता से पुष्ट किया है।

महाकवि ने इसी तरह एक और जगह कहा है कि जिस तरह बींवात्मा पूर्व शरीर की पाँचों इन्द्रियों के साथ मबीन देह में प्रविष्ट करता है उसी भाँति पाँचों राजपुत्रों के साथ जयवान् भी हृत्प में इन्द्रप्रस्थ में प्रवेश किया—

इस श्लोक में पुनर्जन्म का एक सगावन रूप बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है।

मसहृद् गृहीत बहु देह सम्भवस्तदसौ विमच्छनबगोपुरान्तरम् ।

पुष्टय पुर प्रविशति स्म पञ्चमि सममिन्द्रियैरिव नरेन्द्रसूनुमि ॥ १५ २८ ॥

इत पोड़े उदाहरणों से यह निश्चित हो जाता है कि माध और वर्धनों के रहस्य को बापीकी से समझते थे।

पौराणिक ज्ञान

पौराणिक ज्ञान भी कवि का घसीम था । प्रतीत होता है कि कवि को समस्त पुराणों महाभारत, रामायण गीता आदि की पूर्ण जानकारी थी । काव्य को घाबि से घस्त तक पढ़ लेने पर ज्ञात होता है कि पौराणिक कथायें तो भाष की जिज्ञा पर नाचती सी हैं । पद-पद पर किसी न किसी कथा का उल्लेख है और इस तरह वहाँ घनेक पुराणों की कथायें पा गई हैं । सिधुपाल जब काव्य के पास-पास के कोई पाँच दशक बेत जाह्ये उनमें कोई न कोई पौराणिक कथा प्रबल मिलेगी । उदाहरणार्थ यह कहना है कि श्री कृष्ण ने नारद की ओर देखा तो भाव इस भाँति कहेंगे—'विराटन मुनि' हिरण्यमर्षाणमुर्ष' मुनि इत्यर्थ । विराटन मुनि कौन थे प्राचीन काल में विष्णु ने नाचण कर्म से बहरिका बम में उपस्था की थी । हिरण्यमर्ष कौन ? ब्रह्मा । क्यों ? देखिए उपनिषाद सरीरास्वास्तिससुविधिषा प्रजा । अथ एव ससर्वाही तासुबीजमबासुज ॥ उदयममर्षीं सहस्राभुसमप्रभं तस्मिन्वते स्वयं ब्रह्मा सर्वं लोक पितामह । उगका यंगमुल कौन ? नारद । क्यों ? क्योंकि उदयगाम्मारवो बजे यहाँ श्रुष्टास्वयंमुव ।

इसी भाँति सूर्य के लिए अनूदसारवि श्री कृष्ण के लिए मुरविद् सिधुपाल के लिए सात्वतीसुतु सुवसपस सुव., बभराम के लिए 'सीरपाणि' रौहिणेय रेवतीजानिः, राहु के लिए सौहिकेयो इत्यादि सर्वों का प्रयोग पौराणिक बातों की ओर संकेत करता है । यहाँ पर तो हम कुछ ही नमूने रख रहे हैं—

सार्धं कर्मविदुचितै पिभुमर्षपत्रैरास्यान्तरासगतमात्रदत्तं अवीय ।

दासेरकः सपदि संवसितं निपादै विप्रं पुरा पतगराडिब निर्जंगार ॥ १ ६६ ॥

इसमें पुराणों की एक कथा के अनुसार पूर्व काल में गरुड ने म्लेच्छों के अप्रसन्न होकर उन्हें जब निवसना प्रारम्भ किया तो सहसा उनका यत्न बनने लगा । जब उन्होंने जगता तो देखा कि वह म्लेच्छ नहीं एक ब्राह्मण था—

गतया विरम्भर निवासमभ्युर' परिनामि भूनममभ्युष्य वारिजम् ।

कुरराज निर्वयनिपीडनाभयाम्भुक्तमभ्यरोहि मुरविद्विष मिया ॥ १३ ११ ॥

इस श्लोक में भगवान् के नामि कर्म की कथा आई है तथा बदास्वर में निवास करने वाली लक्ष्मी की भी कथा है ।

धिरसि स्म जिघ्रति सुरारिवचने छलवामन विनयवामनं तथा ।

यद्यसेव वीर्यं विजितामरदुमप्रसवेन वासितधिराफहे नृप ॥ १३ १२ ॥

पौराणिक कथाओं के अनुसार पूर्व समय में भगवान् श्री कृष्ण ने सत्यमामा को प्रसन्न करने के लिए वनपूर्वक इन्द्रलोक से पारिजात को उखाड़कर अपने भवन में रखा लिया था ।

प्रबाहवांगादरविन्दनामे' संभोजेताजूटतटादिवाप

मुखादिरवाप भुतयो विधातुः पुराग्निरीयुर्मुंरजिदध्यजिन्य' ॥ ३ ६५ ॥

धर्म—कमलनाभि भगवान् श्रीकृष्ण के संग से प्रभा धर्म की भाँति सङ्घु के बटाबूट से (बंगा) जब की भाँति बिभाटा के मुख से श्रुतियों की भाँति भगवान् श्री कृष्ण की सेना प्रारकापुरी से बाहर निकली ।

समस्त बगत् के प्राणी भगवान् के धर्मों से उत्पन्न हुए हैं । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' यन्वा ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इत्यादि श्रुतियाँ इसकी साक्षी हैं ।

उपर्युक्त में कमलनाभि भगवान् की कथा या यही गंगा की उत्पत्ति की कथा प्रायसी बिभाटा के मुख से श्रुतियाँ जैसे आई इसकी भी कथा या बबी धीर इससे भी परे श्रुतियों में कही हुई बात परोस रूप में 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' के रूप में मानई । प्रस्तुत बिब भप्रस्तुत बिबों की पृष्ठभूमि में मानों खिन्न उठे ।

इस भाँति हम देखते हैं कि महाकवि ने पुष्पों की कथा का साम्य लेकर न केवल अपने पौराणिक ज्ञान का ही परिचय दिया है किन्तु उन कथाओं से धर्म को अभिव्यक्त करने में तथा उसमें समत्कार लाने में उनको सफलता मिली है ।

साहित्यिक ज्ञान—

महाकवि नाब को साहित्य के विभिन्न धर्मों का पूर्ण ज्ञान था यह क्या समत्कार साक्ष्य क्या अन्य साक्ष्य तथा क्या रस-विज्ञान सब ही साहित्यिक बातों की बर्णना उनके काव्य में आ गयी है । इस प्रसंग को महाकवि की काव्य प्रवृत्ति में विस्तार से सिद्ध सिद्धा किया गया है ।

सामयिक ज्ञान—

मुख—विषयक बातों की इस काव्य में आश्चर्यकारी बर्णना हुई है । कवि ने महाकाव्य में न केवल सैनिक प्रमाण के समान बर्णनों से युद्ध सम्बन्धी बातों का परिचय दिया है, किन्तु युद्धस्थल का भी रोमांचकारी तथा समान बर्णन किया है । इन इत्नों को पढ़ने से यह अनुमान होने लगता है कि कवि को रसभूमि का प्रत्यक्ष अनुभव है । युद्ध के ऐसे विपुल बर्णन काव्यों में अत्यन्त दुर्लभ हैं । जन बिहार जब बिहार, अन्धोऽस्य वर्णन नायिकाओं के अपातन आदि श्रु नार सम्बन्धी बातों से पाठकों को मुग्ध करके कवि उन्हें एक यज्ञ में सम्मिलित कर देता है धीरे धीरे सहसा एक युद्ध का दृश्य उनके सामने आ जाता है । बात ही बात में एक समाधान युद्ध हो जाता है जिसमें विभिन्न पक्षों-धर्मों धर्मों के सामने नाचने लगते हैं कवि की यह वर्णन वास्तव पाठकों को समझ कर देती है ।

समीत साक्ष्य का ज्ञान—

साहित्य साक्ष्य की अन्य बातों पर जैसे कवि का अधिकार था वैसे ही अधिकार संगीत एवं व्यंग्य उपबोधी सहित कलाओं पर भी था । नायक नायक स्वर, तास लय धारिक के सम्बन्ध में कवि की अधिकार पूर्ण उपमाएँ एवं छतियाँ छिड़ गयी हैं कि महाकवि संगीत प्रेमी थे । उनकी संगीत निपुणता निम्नलिखित श्लोकों से प्रकट होती है—

वचतस्तमिमाममानुपूर्व्यां बभुरक्षिध्ववसो मुने विशासा

मरतज्ञ कवि प्रणीत काव्य प्रचिताका इव नाटक प्रपञ्चा ॥२०-४४॥

नाटकों की मुक्त संधि को विस्तृत एवं ग्रन्थाम्य प्रतिमुक्त गर्भ विमर्श निबहूँस, संधियों को कमस-सूक्ष्म रचना चाहिए इसका वर्णन यहाँ पर बटाकर किंचित कमनीय रूप में किया है—

स्वादयन् रसमनेकसंस्कृतप्राकृतैरकृतपापसंभरे

मानवदुष्टिबिहितमूर्खजनो नाटकैरिव बभार भोजने ॥१४-५०॥

जिस भाँति दर्शक वरु नाटकों को देखते समय मृज्जार घादि नवों रसों का अनुभव करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं, उसी भाँति दुर्बिष्टिर के राजसूय यज्ञ में घाए हुए सोय भोजन करते समय मधुर भक्ष्य घादि सुहों रसों के ध्वंजनो का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे । नाटक में जिस भाँति संस्कृत प्राकृत अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है उसी भाँति उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी बहुत पदार्थ संस्कृत अर्थात् पकाये गये थे और कुछ प्राकृत अर्थात् बँटे ही रहे गये थे । जिस भाँति नाटक में एक पात्र का अभिनय कोई दूसरा पात्र नहीं करता उसी प्रकार भोजन के एक पात्र से दूसरा पात्र नहीं मिलता था । नाटक में बँटे सुख स्वामी मान रहता है, उसी प्रकार यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी स्वाभाविक दुष्टि थी ।

अपर्वस्त श्लोक से महाकवि की नाट्यविषयक जानकारी प्रामाणिक होती है ।

कवि का राजनीति विषयक ज्ञान—

कवि की राजनीतिज्ञता का परिचय संक्षेप में देना संभव नहीं है । द्वितीय सर्ग के बौद्धिमान सड्ड बभरान संवाद से तथा राजसूय यज्ञावसर पर दुर्बिष्टिर और भीष्म हाथ कहे पड़े बाक्सों से महाकवि माघ के रचना-राजनीतिक ज्ञान का पता चलता है । राजनीति पारंगत उस कवि ने अपने उस काव्य में बहुत से राजनीतिक तत्व हमारे सम्मुख रखे हैं । राजा के क्या क्या कर्तव्य होने चाहियें राजा की सेवा संबंधी नीति क्या होनी चाहिए अंधि बिग्रह घादि के प्रयोग किस तरह किने जाने चाहियें आदि सामान्य और विदेशियों को अपनी सुविधा देकर तर्क की कसौटी पर रखकर जगहूँनि पाठकों के लिए सुबोध तथा सरस बना दिया है । इनको पढ़ते समय आनन्द आता है । जिन अतिरिक्त राजनीतिक समस्याओं का समाधान करना अति कठिन है उनको इस भाँति स्पष्ट कर दिया है कि पात्र के इस रूप में भी वे बातें कार्य रूप में परिणत करने योग्य समझी जाती हैं । कवि की राजनीति महलों तक ही सीमित रहने वाली थी ऐसी कोई बात न थी किन्तु वह राजतंत्र की पूर्ण समर्थक थी । वह पाठकों के सम्मुख आकर राजा के उस प्रकार स्वल्प को व्यक्त करती है । जिस की आज्ञा सर्वसोमुखी हित-रक्षा से संबंध रखती है । महाकाव्य में बहिष्ठ राजनीति भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की वृष्टभूमि में ही विरचित हुई है । दैनिक कार्यों में भी राजनीति के ज्ञान की आवश्यकता को गुमावोक्तिओं के द्वारा वह तब समयमाया

गया है। राजनीति संबंधी विविष्ट ज्ञान का जैसा परिचय माघ काव्य में मिलता उसको देखकर ही हमने 'माघ की राजनीति' इस शीर्षक से एक अलग ही परिच्छेद लिखना आवश्यक समझा। यहाँ तो कुछ उदाहरण देकर कवि के राजनीतिक ज्ञान का संक्षिप्त परिचय दे देना पर्याप्त होगा।

स्वस्त्यस्त्युपचये केचित्परस्य व्यसनेऽपरे ।

यानमाहुस्तदासीन त्वामुत्पापयति द्वयम् ॥२-१७॥

कामन्दकीय नीति शार" में कामन्दक ने इस बात को यों कहा है—

प्रायेण सन्तो व्यसने रिपूणां यातव्यमित्येव समादिशन्ति ।

तथा बिपक्षे व्यसनानपेक्षी क्षमोद्विपन्त भुविष्ठः प्रतीयात् ।

मनु महाराज कहते हैं "तदा यायाद्विपक्षे च व्यसने चोत्पिष्टे रिपोः ।"

माघ के एक श्लोक को धीरे देखिये—

सर्व कार्यं शरीरेषु सुकृत्वाऽङ्गुष्ठा पञ्चकम् ।

सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मनो महीभुताम् ॥२-२७॥

कामन्दक ने भी कहा है—

सहायां साधनोपाया विभागो देशकालयो ।

विपक्षे च प्रतीकारो भद्रः पंचांग इष्यते ॥"

इसी प्रकरण में माघ ने कहा है—

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्य पश्यमिच्छता ।

समी हि शिष्टैराग्नावी बर्त्स्यस्तावामयः स च ॥२-१०॥

कैसी नीति बतायी है कि शत्रु की बुद्धि व्याधि की भाँति उपेक्षणीय नहीं है। मारवि कवि ने भी कहा है।

अस्पीयसोऽप्यरे बंदिर्महानयमि रोगवत् ।

अतस्तस्यामुपेक्ष्य त्वाबुमयामुत्तिष्ठः कृतः ॥

राजनीति के पारिभाषिक शब्दों में प्रयोग नीचे की पंक्ति में दृश्य है—

पटगुणां शक्त्यस्तिष्ठः सिद्धयदधोदयास्त्रयः ॥२-२६॥

चर्युक्त में छ. ब्रज तीन शक्ति और तीन उद्यम तीन सिद्धियाँ प्रावि पारिभाषिक शब्दों का सुन्दर प्रयोग है।

मामुर्वेद का ज्ञान—

मामुर्वेद अथवा वैदिक शास्त्र का महाकवि माघ को पूर्ण ज्ञान था क्योंकि उत्सव्यम्भी

स्रस्तांगसंधौ विगताक्षपाटये, दम्भा निकामं विकसीकृतो रथे ।

प्राप्येन सकृदा भिषग्वैव तत्क्षणं, प्रथकमे लघनपूर्वकं क्रमः ॥ १२ २५ ॥

भूमी के रोगी का चित्र भी दर्शनीय है—

प्रादिमष्टभूमि रसितारमुष्णैर्भोमदमुजाकारवृहत्सरंगम् ।

फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणुमाशयके ॥ १-७२ ॥

निम्न श्लोक में कवि यहाँ बैद्यराज के रूप में भी उपस्थित हैं—

इति भरपतिरस्त्र यद्यदाविषण्णकार प्रकुपित इव रोगं क्षिप्रकारी विकारम् ।

भिषगिव गुरुदोषच्छेदिनोपक्रमेण क्रमविवक्षु मुरारिः प्रत्यहस्तत्तवेव ॥ २०-७६ ॥

ज्योतिष ज्ञान—

कवि ने ग्राम्यजैव की तरह ज्योतिष शास्त्र का भी अध्ययन किया था। कुछ ब्रह्महरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

रराज सम्पादकमिष्टसिद्धं सर्वान्मु दिक्व प्रतिपिद्ध भागम् ।

महारथी पुष्परथ रथांगी क्षिप्र क्षपामाथ इवाधिरुद्धं ॥ १ २१ ॥

वर्ष—ब्रह्मरथी महारथी की कृपण जो सर्वत्र वनिजपित वस्तुओं का सम्पादन करते जाते हैं जिनका मार्ग सब विद्याओं में बाधा रहित है तथा जिनकी गति तीव्र है प्रात्र अपने पुण्य रथ में वही तरह अवस्थित हैं जैसे पुण्य मन्त्र में अवस्थित ब्रह्मा हों।

कवि ने अपनी कला से पुष्परथ को पुण्य मन्त्र बतसा कर कार्यसिद्धि की सूचना दी है। ज्योतिष शास्त्र का कथन है कि पुण्य मन्त्र में किया हुआ कार्य कभी निष्फल नहीं होता। यह वर्ष-सिद्धि सम्पादन करता है। इष्ट सिद्धि दायक तथा सर्व श्रेष्ठ गमन में प्रसस्त यह पुण्य मन्त्र कभी क्षीणरथ की रथा ही वा उसमें की कृपण चक्र के बैठते ही कार्य सिद्धि का विस्वास हो गया।

प्रथम वर्ष के अन्तिम श्लोक की अन्तिम पंक्ति में—

ज्योम्नीव भ्रुकुटिच्छेदना यदने केतुवचकारास्पदम् ।

यही श्लोक के मुञ्जाकाश पर शत्रुओं के नाश का भ्रुकुटि केतु का उदय होता है ज्योतिष शास्त्र कहता है 'अन्त्रमभ्युत्थित केतुः क्षितीयानां विनाशकृत्'।

ज्योतिष शास्त्र में जब अन्त्रया युग के अतिरिक्त किन्हीं दो ग्रहों के मध्य में स्थित होता है तब दुश्चरा योग होता है (घनफा मुनफा दुश्चरा)। इस बात को नीचे के श्लोक में दिया गया है—

पवनारमजैन्द्रसुतमध्यवतिना नितरामरोधि रुधिराण चक्षिणा ।

दबवेव योगभुमयग्रहान्तर स्थितिकारितं गुरुपरारस्यमिन्दुमा ॥ १३ २२ ॥

इस तरह अन्यत्र भी ज्योतिष सम्बन्ध कई प्रसंग पाये हैं जिनमें कवि के ज्योतिष होने का प्रमाण मिलता है। श्लोक २-८४, २-१३ २-१४ १२ २५ दृष्टव्य हैं।

पशु विद्याओं का ज्ञान

महाकवि माघ को पशु प्रकृति का बीड़ा निकट का परिचय या बीड़ा कवाचित् ही किसी और कवि का हो। उन्होंने हाथियों, घोड़ों ऊँटों साँडों आदि का यथावत् वर्णन किया है।

नीचे के श्लोक में वज्रविद्या का परिचय है—

सान्द्ररश्मिस्तत्पलाश्लिष्टकलाधायीं क्षोभामाप्नुवन्तदधतुषिम् ।

कल्पस्यान्ते मास्तेनोपशुनादधैमुदर्वन्तं गङ्गालीसा इवेभा ॥१८६॥

उपर्युक्त में हाथी की आयु कितनी मानी जाती है इस बात का पूर्ण ज्ञान धर्म की चतुर्थी घोषा धारण करने वाले कह कर कहा है। हाथियों की पूर्ण आयु १२० वर्ष की मानी जाती है। कुछ बसायें १२ होती हैं पर उसकी चतुर्थी तथा बीसवीं वर्ष की आयु में जाती है। इस श्लोक में यह भी स्पष्ट किया है कि चतुर्थी घोषा को धारण करने वाला यह महाकाव्य अत्यन्त सज्जन बनने वाला है इससे प्रतीत हो रहा है कि ४० वर्ष की आयु में हाथी मुनावस्था में जाता है। तब उसके धर्म प्रत्यंग का पूर्ण विकास होता है पर उसकी गति भी बहुत तीव्र होती है, इसी लिए कवि ने इस अवस्था का चित्र उसकी गति को बताकर चित्रित किया है। कवि कहता है जैसे प्रलयकाल के अवसर पर वायु से घेरित बड़ी-बड़ी शिखरों जलती हैं वही भाँति वे हाथी भी अत्यन्त तीव्रगति से चलने लगे।

इसी सम्बन्ध में एक दूसरा श्लोक और है—

मदात्मसा परिगमितेन सप्तमा गभाञ्जनं क्षमितरजदधयामध-

उपर्यवस्थितघनपाशुमङ्गलानलोक्यत्ततपटमङ्गपानिव ॥१७-६८॥

उपर्युक्त में हाथियों के यह टपकाने की बात कही गयी है। वे सातों स्थानों से यह बहाते हैं। वे सात स्थान जब विद्या के अनुसार वे हैं दोनों नभ दोनों कपोल सूँढ़ सूत्रन्द्रिय तथा मनेन्द्रिय। जब विद्या में इसी बात को यों कहा गया है—

अशुपी च कपीसी च करो मेढु शुदस्तथा ।

सप्त स्थानानि मार्तण्ड-मयस्य स्रुति हेतव ॥१७-६८॥

धर्म को देखकर हाथी को कैसे धर्मज्ञ द्वारा बध में किया जाता है यह बात नीचे के श्लोक में अंकित है—

प्रत्यस्यनाग क्षतितस्त्वाश्वता निरस्य मङ्कटं दधताप्यमङ्कुराम् ।

सूर्यनिभूर्ध्वायतदन्तर्मङ्गलं ध्रुवन्नरोधि द्विरदो निपादिना ॥१२ १२॥

दूधरे प्रतिदंभी हाथी की ओर दौड़ने पर दन्तर्मङ्गलों समेत मुख को ऊपर फँसाये हुए

मन्त्रराज को महावत ने सीधता के साथ पहले कृत्ति अक्षुष को भिक्षा कर जब अन्य तीर्थ
क्षुष से मारा तब वह रुक गया और अपने मस्तक को हिलाने लग गया । महावत के जब
पर चढ़ने का एक क्षण है—

उत्तिष्ठताग्रं स्म विद्वन्वयन्तमः समुत्पतिष्यन्तमग्नेभ्यमुच्यते-

आकृ चितप्रोह्निकपितकम् करेणुरारोह्यते निपादिनम् ॥१२ ५॥

अर्थ—घटीर के प्रथम भाग को ऊपर करके मानो आकाश को लाने का इच्छुक
एवं विशाल पर्वत का अनुकरण करके बासे विशाल यक्षराज अपने पिछले पैरों को झुका कर
अपने ऊपर चढ़ी के सहारे महावत को चढ़ाने लगा ।

गज विद्या की निपुणता का एक नमूना और है—

अज्ञ अनेभ्यं कुसिताक्षमनादवामे संरक्षहस्तिपकनिष्ठुरचोदनामि-

गंभीर वेदिमि पुरं कबलं करीन्ध्रे, मन्वोऽपि नाम न महामन्त्राणां साध्यं ॥५ ४६

अर्थ—एक कम्भीर बैरी गजराज कुपित महावत द्वारा अत्यन्त निपुणता पर्वत आकुल
लगाये जाने पर भी आँखें मूँचकर सब लड़ा ही रह गया और उसने अपना घाम भी नहीं
घृण किया तब लोगों ने आग लिया कि सम्भव तो महाज्ञ पुरुष होते हैं वे मन्त्रचिन्ति होने
पर भी बलात्कारपूर्वक बध में नहीं लाये जा सकते यद्यपि बलवान् व्यक्ति चाहे बहुमुख भी
हो तो भी कष्ट पहुँचाकर साध्य नहीं किए जा सकते ।

यही 'मन्वोऽपि नाम न महामन्त्राणां साध्यं' इस सुभाषित से जब विद्या का सुन्दर
मैल बँध गया था है । 'कम्भीरबैरी' यक्षराज वह है जो मन्त्र बुद्धि धरवा भवोन्मत्त होता है
और आकुल मारने पर लीचे नहीं जलता अथवा बहुत विद्याने पर भी नहीं सीखता । गज
विद्या में कहा गया है कि 'त्वमेवायं शोडितसायाय मांसस्य अयमावपि । आत्मानं यो न
आनाति तस्य कम्भीर वैरिता ॥ कम्भीर बैरी यक्ष का एक सख्त और मित्रता है—

चिरवासेन यो वेत्ति शिष्यां परिचितामपि ।

गम्भीरवैदी विज्ञेयः स गजो गजवैत्रिमि ॥

गज विद्या में गज के इतने भेद कहे गये हैं—'गजो मन्वो भूतप्रेति विज्ञेयमिविचि
गया' यदि मैं 'मन्व' का सख्त पाठकों के सम्मुख रखता हूँ । गम्भीर मन्व वेत्तीति गम्भीर
वैरी गम्भीर बैरी का लक्षण एक आचार्य ने यह कहा है—

त्वमेदाच्छ्रेणितसाबादामांसश्च्यवनादपि

संज्ञां न समते यस्तु प्रोक्तोयंभोरवैद्यसो ॥

गज प्रकृति के तो मात्र नाम्य में बीसियों प्रकारों का है । एकात्र यही भी प्रस्तुत
दिखा जाता है ।

शिष्टं पुरो न जगृहे महुरिदुकाह मावेक्षते स्म निकटोपमतां करेणुम् ।

सस्मार वारणपतिं परिमीमितादामिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम् ॥५ ५०॥

कंसा सुम्बर बिभ्र है । यजराज सामने बासे गये ईश के टुकड़े को बहण नहीं कर रहा है और न ही सामने आई हुई हविनि की अपेक्षा करता है वह तो निरन्तर घाँघ बन्द किए हुए बनबाध कालिक स्वेच्छा बिहार के महात्मा आनन्द का ही स्मरण करता रहा है ।

यह तो सिद्धान्त की बात कवि ने कहा जाती । वास्तव में ही गम में जाने वाले पक्षों को राक्षस (प्रसाद) से बच ही सुख्य होता है कहा भी है—

महावृष्ट्यवधृतस्य भुगयुषस्य भावत

पुष्टसोऽनुगमिष्याम कदानस्तथ भविष्यतीति ॥

एक दो श्लोक और हैं—

गङ्गाय सुगिम्हवता पयसं सरोयं नागेन लब्ध परवारण मास्तेन ।

अन्मोघिरोधसि पुष्टु प्रतिमान भागकृद्धोऽस्वन्त मुसल प्रसरं निपेते ॥३६॥

स्तंभं महान्तमुचितं सहसामुमोच दानं दवावतिरारो सरसाग्रहस्त

बद्धापरीणि परितो निगडाम्यलाविरस्तासभ्यमुज्ज्वलमवाप करेणुराज ॥

अथ विद्या ज्ञान—

तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा सम्यक् कसाप्रयविचारवता निमुक्त-

आरहजद्वदुलनिष्ठुरपातमुज्ज्वलितं चकार पदमर्षपुलायितेन ॥५१०॥

अर्थ—जब की रोकने वाली जगाम की बाधने में साधनाम तीनों प्रकार की—उत्तम, मध्यम और अधम जादुओं के प्रयोग जानने वाले कुड़वतारों से अभी बाँटि हुई गये ठीके पाट्ट (घरब) देश में उत्पन्न भोड़े अपने विविध पाद—विदीप द्वारा कभी जंगल और कभी कठोर भाव के मंडलाकार बलि विरोध से बल रहे थे ।

उपर्युक्त श्लोक के कहने से तो स्पष्ट रूप से कवि आत्मिहोषी से प्रतीत होते हैं । भोड़े की पति एवं जादुओं के प्रयोगों के वहाँ आरबीय जगल रिमे गये हैं । भोड़े की तीन बाँटि के जादुओं से जलाना जाता है । कभी तो वह कठोर जादुओं से जलाना जाता है तो कभी साधारण और कभी अति साधारण जादुओं से समेत मात्र से ही जलाना जाता है और इन्हीं के अनुसार बलि में भी मंद हो जाता है ये भोड़े कभी अत्यन्त बल पूर्वक टपटप करते हुए घामे की ओर धीकटे लपकते से चलते हैं तो कभी मध्य बलि का अनुसरण करते हैं और कभी अत्यंत ही मन्द गति से चलते हैं । आत्मिहोषद्वय में भोजराज नियते हैं—

तजो निष्ठगर्ज सरथ वाजिनां स्फुरण रज ।

कोयस्तम् इति श्रया स्वयोर्ग्रथ सहजा गुणा-

मुदुर्नैमपातेन दंडकामेपु तादयेत् ।

तीक्ष्ण मध्ये पुनर्दार्ढ्या अपम्य निष्ठुरैस्त्रिभिः ॥

बाध में एक जगह अथ मजाम का वर्णन करते हुए बस्या के दृढम प्रयोग की बात गयी है—

अभ्याकुल प्रकृतमुत्तरधेयकर्मधारा प्रसाधयितुमभ्यतिकीर्णक्या ।

सिद्ध मुने नवसु वीचिषु कश्चिदस्य वल्गाविभाग कुशलो गमयांसूय ॥५६॥

इसी संबंध में हल सीमासवती में कहा गया है—

उत्तिप्ता सिचिला तयोतरवती मदाथ बहायसी
विक्षिप्तेक करार्थम्कन्धरसमाकीर्णा विभक्ता तथा ।
अरपुत्तिप्ततसोदते लसु तथा व्यागूढगोकणिके
वाहानां कथितारुषतुर्वशविधा वल्गाप्रमेदा भमी ॥

भोज भी इस संबंध में लिखते हैं—

बाह्य प्रतिबाहानां पञ्चविध प्रेरण बिभु
रागवल्गाकण्ठपाणि प्रसोदरवमेवत ॥

रेवतोत्तर में कहा है—

स्रक्काधरोष्ठसिफेनलबामिरामफूत्कारवायुपदमुन्नतकम्बराग्रम् ।
नीत्वोपकु चित्तमुत्तं नवलोहसाम्यमस्य चतुष्कसमये मुचसिद्धमाहु ॥

बाराबति भेषा —

अश्वानां तु गतिर्धारा विभिन्मासा च पंचधा ।
आस्कन्धितं धौरितक रेचितं वस्त्रितं प्लुतम् ॥ ”

कवि ने अश्वों का जो वर्णन किया है वह सत्य है । केवल सत्य संभव ही नहीं परबायोहियों के अनुमात्रों से भी भंग है । इन वर्णनोंको पढ़कर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कवि नाम एक कुशल अस्वाचोही व धीर भी देखिये—

दन्तासिकावरणनिषवनपाणिमुग्धमर्षोदितो हरिरिबोदयशैलमूर्ध्नि ।
स्तोकैर्न नाक्रमत वृत्तमपासमुच्चैः श्री वृक्षकी पुख्यकोन्ममिताप्रकाय ॥५७॥

अस्य विद्या में इसी प्रसंग को नीचे सिद्ध श्लोक मिलते हैं—

पक्षिमेवाप्रपादेन भुवि स्थित्वाप्रपादयो
ऊर्ध्ववप्रेरणया स्थानमस्त्वानां पुरुष स्मृत ॥

श्री कृष्णजी के लिए कहा गया है—

यतोभवावर्तचतुष्टयं च बंठे भवेद्यस्य च रोजमानं
श्री वृक्षकीनाम ह्य स भतु श्रीपुत्रपौत्राविविवृद्धये स्यात् ॥

बीजयन्ती में कहा है—श्री कृष्णजी वदधि चेतोमानवों मुखेर्ष्य च ।

माय काव्य में कुछ दोहों के वर्णन बड़े सुन्दर हैं । एक श्लोक है—

यत्पूनमार्गयस्योऽपि गतोऽसमार्गः स्वैरं समाचक्रुषिरे भुवि वेत्सनाय ।
दर्पोदयोत्ससितफेनजसागुसारसत्सहस्रपत्न्यमनघ पवास्तुरगा ॥५५॥

घस्वारोद्गुण का बहुर नीचे के श्लोक में विशेषण हुआ है—

स्वैरंकृतास्फासगसासिताम्पुरः पुरतनून्दाधितसाचक्रिया
वंकावसग्नैकसवत्सपाण्यस्तुरंगमानाश्चक्रुस्तुरगिण ॥१२६॥

यहाँ स्वभावोक्ति ने वर्णन में लचीलता उत्पन्न कर दी है ।

ऊपर के विशेषण से स्पष्ट होता है कि गधों घोर घबराव के समय में कवि ने जो परिचय दिया है वह साधनानुमोदित अनुभव संश्लिष्ट घोर काव्योचित है ।

गधों घोर घबराव को ही क्यों लिया जाय उसने अपने काव्य में जगन्मर्त्य घोर जेटों से लेकर नीतों तथा गधों के स्वभावों तथा उनके कार्यों की भी बातें लिखी हैं । कहीं कहीं तो इन पशुओं जेटों घोर घबरावों साँझों घोर नीतों की प्रकृति का इतना बारीकी से स्वाभाविक तथा सुन्दर वर्णन किया है कि मार्गों कवि एक चित्रकार के रूप देखाचित्र पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हो जिस में केवल रंग भर कर प्राण प्रस्थित कर करना देय रह गया हो । कवि ने जो प्रमाण दिये उनके फलस्वरूप उनकी कवि-दृष्टि बड़ी पैनी घोर भिस्तील हो गयी, उसी से वह इन दुष्टी हुई म्यानिगियों जेटों की रजवासी करती हुई स्त्रियों वन अस्त्र जेट, घोर जगन्मर्त्य बलाने वाले शैलियों आदि के विषयों का यथार्थता के साथ वर्णन में समर्थ हो सका । उनकी स्वाभावोक्तियाँ बड़ी मार्मिक अनुभूतियों से सम्पन्न हैं ।

नीचे कुछ श्लोक दिये जाते हैं जिनमें कवि ने जेटों की दृष्टियों घोर उनके कार्यों का वर्णन कर अपने सूक्ष्म पर्ववैराग्य का परिचय दिया है ।—

उत्पातुमिच्छन्निभूतं पुरोवसान्निवीयमाने भरमाजि यत्तके ।
अर्धोऽग्निस्रोद्गारविस्फूर्जस्वरः स्वनाम जिन्ये रजणं स्फुट्टार्पताम् ॥१२७॥

उस हृदय में जेट की नफेस पिच्छते ही जेट आती बवाई हुई नीम आदि की पत्तियों के रस को बाहर निकालने के साथ-साथ घोर घोर से बलबलाने भगता है घोर अपने नाम रजण (जेट) को सार्बक कर रहा है ।

मह नाथ माधव्य जकार भूयसे निपेदिवासासनबन्धमप्यने ।

तीक्ष्णोत्थितास्तावदसह्यारहसो विमृक्षसं द्युक्षसका प्रतस्विरे ॥१२८॥

जेट पर जैसे ही बैठे के लिये पायड़े में एक पैर रखकर दूसरे पैर को दूधरी घोर रस करबटना ही चाहते हैं कि इती मध्य जेट कर नफेस की कोई चिन्ता न करते वेग से जाने के लिए तैयार हो जाता है ।

सार्धं वधंविदुषितैः विभुमर्दपवैरास्यान्तरासगतमाभ्रदसंभ्रदीय-

दासेरक सपदितां सपसितां निपादिविप्रं पुरा पतगरादिव निर्जगार ॥५६॥

जेट नीम के पत्तों को तो घाता ही है किन्तु मोचे से घायन वा जो कोमल पत्ता

उसके मुख में उन नीम के पत्तों के साथ जला गया कि उसने गुरग्त ही उसी प्रकार अपने मुख में जटपट उगल कर बाहर निकाल दिया जैसे गरुड़ ने पूर्वकाल में मोक्षों का भक्षण करते समय जब बोधे से ब्राह्मण भिक्षुने भगे वो गुरग्त ही उस ब्राह्मण को उगल कर बाहर ला पटक । स्वभाव का कितना सुन्दर वर्णन है । पौराणिक कथा के आशय से माव धीर भी निश्चर प्राया । एक दृश्य धीर प्रस्तुत है—

विभ्राणमायतिमसीमवुषा धिरोधि प्रत्यप्रतामतिरसामधिकदधमि

सोमोष्ठमोष्ट्रमुदग्रमुखं तक्षणाभ्र सिहामि सिमिहे भवपत्सवानि ॥६-६५॥

नव पत्तवों को स्पर्श करने समय होठों की क्रिया दर्शनीय है । नीचे बंस का वर्णन भी दर्शनीय है—

उत्तीर्णभारसधुनाप्यसधूलपौघसोहित्यनिःसहसरेण सरोरधस्तात्

रौम्यमन्परचसद् गुरुसास्नमासांचछे निमीलदससेसणुमौसवेण ॥५-६२॥

बंसों के घातस्थान बँटकर बुझाती करते का जुझाती करने समय उनकी विस्तृत पलकम्बस के धीरे धीरे हिलने का तथा दोनों घाँवों को घातस्थ के मार बन्द किये रहने का वह चित्र स्वमाकोटि का एक सुन्दर भिखन है । साँवों का यह दृश्य भी मनोरम है ।

मुत्तिङ्गवेत्ति काटिमिरर्धचन्द्र भुङ्क्ते शिखाग्रगतलक्ष्ममर्षं हसदिमः

सञ्छिञ्जिताः पवुपभा स्रष्टां नदन्तो रोषांसि दीरमवचस्कारिरे महोक्ता ॥५-६३॥

साँव पीली मिट्टी को घेरकर सींगों से उसको ऊपर उठाकर फेंका करते हैं । घासे छोटी पर उनके मिट्टी मगी रहती है । ऐसा अभिर्वास जब समय करते हैं जब दूसरा साँव दिखलाई पड़ता है धीर धीर धीर से गरबता है ।

कातिदास ने इस बघरकीड़ा का रजुबंद के त्रयोवध सर्ग में इस भाँति वर्णन किया है—

पारस्वनोद्मारिदरीमुखोष्ठी भृगाप्रसन्नाम्बुवप्रपंच

बभ्रासि मे वपुरगानि यदुह प्त ककुदमानिव विभङ्गटः ॥४७॥

एक चित्र धीर है—

मेदस्विनः सरमसोपगतानभौकान् भंजया परानभङ्गोद्गुहुराहवेन ।

ऊर्ध्वस्वसेन सुरमीरमुनिःसपत्नं जग्मे जयोदुरविशासविपाणमुदरा ॥५-६४॥

गायों के पीछे साँवों के भाग्ये का धीर एक साँव का दूसरे साँव को पराजित करने का यह एक चमत्कार चित्र है ।

घने का चित्र जैसे बाष्पोचिन नहीं माना जाता पर वह भी इस दृष्टि की विविधता में दृष्टि करता है, उसका अपना एक स्थान है एक काम है । यदि उसको नहीं भूमता धीर वर्णन करता है—

पस्तमस्त जमहायकृतः बरेखोस्तावत्पर प्रस्तरमुत्सर्जयायकार ।

यावच्चसासन तिस्रोसतितम्बविम्बविसस्तवस्त्रमवरोधबध्न पपात ॥५-७॥

दुसरी हुई बापों का यह एक मनोहायी दृश्य है—

प्रीत्या नियुक्तीस्त्रिहृती स्तनमयान्निगृह्य पारीभुमयेन आनुनो-
वर्मिष्णुधाराभ्रमि रोहिणी पयविचरं निदध्मी मुह्यतः स गोदुहः ॥१२-४०॥

ऐसा ही एक दूसरा दृश्य भी है—

अम्याग्रतो अम्यामततूरुणेतलुं कामिनिर्याहस्तस्य पुरो वुष्मसत-
वर्मावृगवां ह्रुतिचाप निर्वृतीमरिर्मघोरैकतगोमलस्त्रिकाम् ॥१२-४१॥

छोटे और मृदु किस प्रकार आकर्षण के केन्द्र बन जाते हैं ऐसे नीचे के श्लोक में देखा जा सकता है ।

स ग्रीहिणा यावदपासितु गता शुक्राभृगीस्तावदुपद्रुतमिमाम् ।

केदारिकाणामभितः समाकुला सहासमानोकथयति स्म गोपिका ॥१२-४२॥

इत श्लोक में छोटों और बृगों का पाश के चेतों में जाकर भग्न होने का दृश्य देख कर गोपिका उन्हें भगाने के लिए दृढ़ होती गयी है । नीचे के श्लोक में स्तम्भ होकर स्निग्धों के वादन को सुन रहे हैं उन्होंने चेत को हानि पहुँचाना छोड़ दिया है—

व्यासेदुमस्मानवमानतः पुरावसतयसाविर्युपवर्णयमसी
गीतानि गोप्याकसम मुगधमो न नूनमसीति हरिष्यंतीकथय ॥१२-४३॥

मधु मक्षिका भी कवि की दृष्टि से मोक्ष न हो सकी—

ममयुयमाणे मधुजालके तरोर्गमैर्न गच्छे कथता विपूनिने ।

सुत्राभिरदुव्रतराभिराकुलं विदस्यमानेन जनेन दुद्रुवे ॥१२-४४॥

मधु का छत्ता जालों बृज की बाड़ी है जो रास में लया हुआ है । मधुजाल ने जाकर अपना गच्छत्व बतले ही उस बृज से जुजमाया कि बरका लपके के कारण वह छत्ता हिल गया और उसने से निकल मधु की बड़ी बड़ी मक्षिका भिन भिनाती हुई लोपों को काटने लगीं सिता के लोग व्याकुल होकर हजर घर घर भागने लगे ।

मानव दृष्टि को छोड़ कर शेष जन्म दृष्टि का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ साय माय काम्य के शब्द और १९वें सर्गों में तो बिदेवकर हुआ ही है पर अन्य सर्गों में भी मन मन वह बिचर पड़ा है । विस्तारमय से यहाँ संकेत मात्र कर दिया गया है ।

व्याकरण शास्त्र के महापण्डित माध—

माध कवि व्याकरण के विवेक पण्डित थे । अपने समय में वे महा व्याकरण ब्रह्माले थे और इनमें संदेह नहीं कि इन पर के सर्वत्रा योग्य थे । शिक्षापाल बघ का एक-एक श्लोक उनके व्याकरण के वाग्मिर्य का साक्षी है । इसीलिए कुछ व्यासोक्तियों को वह भी भ्रम हुआ कि मही काम्य की नीति सिधुपावध भी व्याकरण के नियमों को समझने के लिए रचा गया है । वह एक सत्य है कि सिधुपावध व्याकरण सिखाने के लिये नहीं रचा गया । वह तो

पूर्वतया एक महाकाव्य है। व्याकरण सम्बन्धी श्लोकों की यहाँ देना प्रार्थन प्राप्त है। नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

उद्धतान् द्विपतस्तस्य निष्पत्तो द्वितयं ययुः ।

पानार्थं रुधिरं घातो रक्षार्थं भुवनं धरा ॥१९१०३॥

पर्वोद्धत धनुषों को मारने वाले उन भगवान् भी कृष्ण के बाण (या बाहु के) पान करने के धर्म में तो धनुषों के रक्त का पान कर रहे थे और रक्षा करने के धर्म में भूमि की रक्षा कर रहे थे।

उपसर्ग का प्रयोग क्यों किया जाता है इसका उत्तर नीचे के श्लोक में है—

सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वाद्यप्रकाशितमविद्युतदग्ने ।

विघ्नम मधुमद प्रमदानां चातुसीनमुपसर्ग इवार्थम् ॥१०१२॥

मदिरा के उत्कट मद्य ने दिव्यों के धर्मों में विघ्नमान किन्तु चिरकायक प्रमदुत्त होने के कारण प्रप्रकाशित विनाश को इस भाँति प्रकट कर दिया जैसे वातु में विघ्नमान धर्मों को उपसर्ग प्रकट कर देता है।

उपसर्ग श्लोक में कहा गया है कि प्रमदानों के लीन में प्रच्छन्न रूप से यद्यपि भुङ्गार वैष्टाएँ पहले ही विघ्नमान थीं किन्तु मधुमद (पराध का मद्य) का आशय प्राप्त करते ही वे भुङ्गार-वैष्टाएँ पहले ही प्रमदानों के धर्मों में विलीन हो गईं। जिस प्रकार वातुओं के धर्म तो पहले से ही वर्तमान रहते हैं क्योंकि उपसर्गों का साक्षिण्य निश्चय है, वे प्रकाशित होने लगते हैं। कवि भाव है इस पद में बड़े कीलक से 'उपसर्ग' शब्दका अर्थ न वाचक; इस व्याकरण नियम को समझाया है। व्याकरण भूषण में भी कहा गया है—

घोतका प्रादयो येन निपाताववाहयस्तथा ।

उपास्तेते हृदिहृदी लकारी हृदयते यथा ॥

उपसर्ग कारिका में प्राप्ति उपसर्गों के लीन होने में श्रुति भी गई है कि यदि उपसर्गों की धर्म विशेष का लीनक तथा वातु की धर्म विशेष का वाचक न माना जायगा तो 'उपास्तेते हृदिहृदी' इसमें कर्मणि लकार की धिष्टि न होगी। प्रथमतः यह है कि प्रकृत प्रयोग में कर्मवाची लट् लकार तब हो जब वातु वातु लक्ष्मण का लक्षण स्वार्थकल-व्यधिकरण व्यापार वाचकत्वम् 'यथा' विघ्न-विघ्न आशय वाले स्वतः धीर व्यापार का वाचक वातु लक्ष्मण होता है। प्रकृत में उपासना रूप फल यदि वाचक नहीं तो वातु लक्ष्मण धिष्टि न हो जाने पर कर्मवाची लकार भी नहीं हो सकेगा इस कारण से यह मानना चाहिये कि उपासना वातु का ही धर्म है। यह उपसर्ग केवल लीनक है वाचक नहीं। इसी बात लक्ष्मण में जाने के बाद पाठक 'आतुसीनमुपसर्ग इवार्थम्' का आशय प्राप्त कर सकते हैं।

नीचे के श्लोक में दिखाया गया है कि वह राजनीति किस काम की जिसमें सब कुछ रहने हुए भी पश्य (धर्मात् वर्णन करने वाला सर्वत्र प्रकट) नहीं है। इसमें धर्मविद्या धीर राजनीति दोनों का उपमानोपमेय भाव दिखाते हुए कवि ने अपने व्याकरण ज्ञान को प्रदर्शित

क्रिया ॥, देखिये 'अपस्पृश' के सम्बरत्तेष, 'सद्बुद्धि' 'सन्निबन्धना' के सम्बरत्तेष, 'अनुसूत्र पदव्यास' के सम्यक्त्वेष और 'शब्द विद्ये' के पुण्येष की छटा को—

अनुसूत्रपदव्यासा सदबुद्धि सन्निबन्धना ।

शब्दविद्ये नो भाति राजनीतिरपस्पृश ॥२१२॥

शास्त्रीय विद्वान्त के विरुद्ध एक चरण भी जिसमें नहीं रक्ता गया है एवं राजकर्मचारियों के दिये शब्दी-शब्दी वृत्तियों तथा (सन्निबन्धना) शब्दे-शब्दे निबन्धनों (पारितोषिक प्रादि) की भी जिसमें व्यवस्था है फिर भी यदि वह राजनीति (अपस्पृश) समर्थ बर्णन करने वाले समस्त पुण्यचरों से सुप्य है तो उसकी शोभा उसी भाँति नहीं होती जैसे (अनुसूत्र पदव्यासा) पाणिन्यादि सूत्र के विरुद्ध शब्द विन्यास जिसमें है और (सद्बुद्धि) काविकादि शब्दे-शब्दे प्रत्येक जिसमें बने हैं तथा (सन्निबन्धना) पार्ष्णिक महाभाष्यादि जैसे निबन्धनों वाली है ऐसी सद्बुद्धि (व्याकरण विद्या) अपस्पृश पस्पृश रहित होने पर शोभा नहीं देती है। यहाँ पर पस्पृश का अर्थ व्याकरण रहस्य है और महा भाष्य के उस प्रकार का नाम है जो प्रारम्भिक है तथा प्रथम दिन में बड़े उत्साह से महर्षि परब्रजि द्वारा लिखा गया है। 'व्यास' काविका और 'महाभाष्य' पाणिनीयव्याकरण के प्राचीन ग्रंथ हैं।

निपातितसुहृत्स्वामिपितृव्यभ्रातृमातुलसम् ।

पाणिनीयमिवासोकिबीरस्तत् समराजिरम् ॥१३-७५॥

अर्थ—जिस पर मित्र स्वामी भावा, भाई तथा माया सभी छवे सम्बन्धी मारे गये ऐसी उस रघुसूक्ति को और बुद्धिमान लोगों ने पाणिनि के उस अष्टाध्यायी व्याकरण की भाँति देखा जिसमें सुहृद् स्वामी पितृव्य भ्रातृ तथा मातुल ये सब निपात संज्ञात्म्य में माने गये।

नीचे परिभाषा का मसाल काव्योपयोगी रूप से प्रस्तुत हुआ है—

परित प्रमिताक्षरापि सर्वं विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठासु ।

न गन्तु प्रतिहन्मते कुतश्चिद् परिभाषेव गरीयसी मवाज्ञा ॥१६-८०॥

जिस भाँति व्याकरण शास्त्र के "हकीमुल्लुहदि" इत्यादि परिभाषा सूत्र यद्यपि बोढ़े असरों वाले होते हैं तथापि जनता अर्थ बहुत होता है उसकी सभी परबर्ती सूत्रों में अनुवृत्ति चलती है और उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है कहीं उसका व्यवहार नहीं होता उसी भाँति हमारे राजा सिधुलाल जी आज्ञा यद्यपि स्वल्पासरों वाली होती है तथापि उसका अर्थ बहुत प्रभावकारी होता है सब स्थानों में वह प्रतिष्ठा पाती है और कहीं भी प्रतिहत नहीं होती।

इस भाँति नहीं पर कावियों को समझाया है तो नहीं पर काविका वृत्ति को सा कर रखा है। देखिये—

नाजसा निगदितु विभक्तिविध्यं विभक्तिरूप विधिसाभिरात्म ।

तत्र कर्मणि विपर्ययीनम् अन्तर्गृह्यज्ञाना प्रयोगिण ॥ १४ २३ ॥

- सप्तमया दधती सरूपता दूरमिन्नफलयो क्रिया प्रति ।

शब्दसाधनविदः समासयोर्विग्रहः व्यवससुः स्वरेशु ते ॥१४ २४॥

व्याकरण शास्त्र का इतना पक्का ज्ञान था कि अभीसर्गे शर्ग में ही कहीं दधत्तर श्लोक लिखे हैं तो कहीं एकाकार में ही समाप्त होने वाले कहीं पूरक धर्ष वाले हैं तो कहीं कुम्भों और मुक्तकों का प्रयोग है । व्याकरण शास्त्र के ज्ञान के बिना इस प्रकार की रचना नहीं हो सकती । व्याकरण शास्त्र के परिचय का एक दूसरा दृष्टान्त और है—

स्वकसाररम्य परिपूरणसम्पत्तिरस्मिन्नसी मुदितपक्षमसरस्सकांगः ।

कस्तूरिकामुगविमर्षमुगम्भिरेति रागीव सक्तिमधिकारि विपयेषु बाधुः ॥४ ६१॥

“उपर्वक श्लोक में कस्तूरिकाविमर्षमुगम्भिरेति” पंक्ति विचारणीय है । वास्तविक “गम्भस्येत्ये तदैकान्तसङ्गणम्” के अनुसार “ह” न होकर सुबन्ध होना चाहिये । कैमट, माधोजी भट्ट भट्टोजि धारि बैयाकरणी की “गम्भस्येत्ये” में निज विग्रह समितियाँ हैं । कविगण निरंकुश होते हैं । वे अपनी इच्छानुसार जब जैसा चाहें शब्द बना भी सकते हैं । पर यहाँ मात्र कवि के ऐसा नहीं विन्यास है । यही कल्पप्रवेश का कथन है कि— “गम्भसम्बन्धेन मुक्तकबन्धो न प्रप्या मिवासी इति इत्थं धर्षयेत्” “गम्भस्येत्येतुत्तुतिमुत्तुतिमिष्य इति ।

मीचे का श्लोक भी इस दृष्टि से विचारणीय है—

केवल दधति कर्तृवाचिनः प्रपयानिह न बाधुः कर्मणि ।

घातनं सृजतिसङ्घातयः स्तोत्रिरत्र विपरीतकारकः ॥१४-६६॥

सृजन करना संहार करना तथा घातन करना धर्षात् वाक्यता करना ये तीनों ही क्रियाएँ इन भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में केवल कर्तृवाच्य में ही प्रयुक्त होती हैं, कर्म वाच्य में नहीं । किन्तु इनके विषय में स्तुति करना यह क्रिया सर्वत्र कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होती है ।

उपपुच्छ का प्रमिप्राय यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सदा सृजति संहर्षति घातति ये क्रियाएँ भगती हैं जिसका धर्ष यह होता है कि यही एक मात्र स्वयं सृजन करते हैं संहार करते हैं तथा नाश करते हैं । दूसरे शब्दों में वही ब्रह्मा बिम्ब, तथा विष्णु स्वप्न हैं । किन्तु स्तुति करना यह क्रिया कर्मवाच्य में धर्षात् इनके साथ “स्तुयते” ही क्रियापद उचित होता है जिसका धर्ष है कि सभी के द्वारा इनकी स्तुति की जाती है और यह किसी की स्तुति नहीं करते ।

इस भाँति का दूसरा श्लोक और है—

दर्शनानुपदमेव कामतः स्वं वनीयकजमेप्रसिद्धमस्ति ।

प्रापनापरहितं सदाभवत् दीयतामिति वनीर्मतसर्जने ॥१४ ४८॥

(पाञ्चरूपण राजा मुभिष्ठिर का दर्शन करने के पश्चात् बिना भवि ही) जब यनेन्द्र जन प्राप्त कर सेठे थे तब “वीयताम्” धर्षात् मुझे दीजिये यह शब्द वाचना के धर्ष में ही

नहीं रहा जाता या प्रस्तुत वह त्याग के अर्थ में (अर्थात् इनसे अधिक जन का क्या होगा दूसरों को व बीजिये याचकों में भी ऐसा विचार) हो जाता था ।

यहाँ, 'श' वातु का याचना परक अथ धोर त्याग परक अर्थ इन दोनों अर्थों को निभाया है ।

व्याकरण नाम से कुछ उच्चारण था जाता है मन्त्रों में कुछ उच्चारण अति भावश्यक है । आचार्य पाणिनि ने मन्त्रों के उच्चारण के सम्बन्ध में बड़ी चेतावनी देते हुए कहा है—

मन्त्रो हीन स्वरतो बलातो वा मिष्या प्रयुक्तो न समर्थमाह ।

स वाम्बज्जो यजमान हिनस्ति ययेन्द्रशत्रु स्वरतोऽभरायात् ॥ पाणिनीय शिक्षा

मात्र ने इसी लिये इस व्याकरण सम्बन्धी बात को समझ रखते हुए कहा है—

सम्बितामनपदाव्ययमुच्चकवाक्यसंज्ञाविदोऽनुवाक्यया ।

; याज्यया यजनकर्मणोऽयमनुब्रूम्यन्तामपदिश्य देवताम् ॥ १४-२०॥

इस तरह मात्र काव्य में स्थान-स्थान व्याकरणनिरु प्रयोगों के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं यहाँ पर कुछ ही के उदाहरण संकेत रूप में धीर प्रस्तुत हैं—

(पर्वपुत्रत) (१ १४) अमिष्यसीमिषत् (१ १५) अङ्गुष्ठरत् (१ १९), पारेषाम् (१ ७०) मय्ये समुद्रं (३ १३), पारे मय्ये यज्मा वा सस्मार वारणपति परिमीतिताम मिच्छाविहारवनास महोत्सवानाम् (१ ५०) अवीगर्धद्वेषा कर्मणि ॥

पुटीमवस्कन्व जुनीहि नन्दनमुपाण रत्नानि ह्यमरांगना ।

विगृह्य चके नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिव ।

क्रियासमभिहारे सद्

ऊपर के विवेचन से हमको मात्र के महा व्याकरण होने के विषय में कोई संदेह नहीं रहता । उनके नवीनतम प्रयोगों तथा सिद्धान्तों के अन्तर्द्वेषों को देख कर सहज ही अनुमान होता है कि व्याकरण उनके लिए एक सरल एवं प्रिय विषय रहा होगा । व्याकरण की परिभाषाएँ अतिनीरस हुमा करती हैं किन्तु उन्होंने उन परिभाषाओं का अपनी मनीहर् उपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है और उनका उपयोग भी अति मनीहर् बन पड़ा है । व्याकरण के सूत्रम से सूत्रम नियमों का उन्होंने कहीं अर्थनयन नहीं किया । अदाचित एक घाव ही रसत ऐसा करना पड़ा हो यह तो स्पष्ट हो है कि व्याकरण कर्षा अग्रस्तुन विधान के रूप में आयी है । अर्त्तकार रूप में उसके रहने से काव्य की घोषा बड़ी हो है, पटी नहीं ।

महाकवि माप का आचार्यत्व —

कई स्थानों पर इस बात का अस्तेय किया गया है कि महाकवि माप पवित्र थे । उनका आभिरूप अयाय था । वह मात्र भी कवि के रूप में रहने इच्छात नहीं है बितने पवित्र

घबस्त है किन्तु मात्र अनेक शास्त्रों में पारंगत होने से इन से कहीं आगे बढ़ जाते हैं। क्या हिन्दू दर्शन क्या बौद्ध दर्शन क्या नाट्य शास्त्र अर्जुनकार शास्त्र, व्याकरण, संगीत, काव्य मानुबेद अथर्व विद्या, यजुर्विद्या सामाजिक विज्ञान मनोविज्ञान अथवा क्या पुराण, ज्योतिष स्मृति वैद वेदांग, आदि शास्त्र इन सबका उत्कृष्ट उन्हें ज्ञान प्राप्त था। मात्र मे अपने सम्पूर्ण ज्ञान को कविता शैली के चरणों में अर्पित कर दिया था। इस समर्पण का जो परिणाम निकला वह एक महाकाव्य के रूप में सङ्ख्य-समाज के समक्ष प्रस्तुत है।

उन्होंने पांडित्य को कवित्व का रंग बनाया कवित्व को पांडित्य का नहीं इससे यह कहना अधिक बुद्धि-संगत होगा कि कवित्व की प्राप्ति के लिए उन्होंने एक बड़ी साधना की वह कवि प्रबल से और आचार्य बाह में।

नहीं रहा चाटा या प्रस्तुत वह त्याग के धर्म में (अर्थात् इनसे अधिक धन का क्या होगा दूसरों को वही जितने याचकों में भी ऐसा विचार) हो जाता था ।

यहाँ 'बा' चातु का याचना परक धर्म और त्याग परक धर्म इन दोनों धर्मों को निमाया है ।

व्याकरण ज्ञान से कुछ उच्चारण या चाटा है मन्त्रों में कुछ उच्चारण यदि मात्र स्पष्ट है । आचार्य पाणिनि ने मन्त्रों के उच्चारण के सम्बन्ध में बड़ी चेतावनी देते हुए कहा है—

मन्त्रो हीनं स्वरतो वर्णतो वा भिक्ष्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यथमानं हिनस्ति यमेन्द्रसधु स्वरतोऽपराधात् ॥ पाणिनीय शिक्षा

मात्र ने इसी लिये इस व्याकरण सम्बन्धी बात को समझ रखते हुए कहा है—

सम्बितामनपशब्दमुञ्चकैर्वाक्यसंक्षेपविदोऽनुवाक्यया ।

वाक्यया यजनकर्मणोऽप्यत्रानुब्रवीज्जातमपदिश्य देवताम् ॥ १४ २० ॥

इस तरह मात्र काव्य में स्थान-स्थान व्याकरणादि प्रयोगों के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, वहाँ पर कुछ ही के उदाहरण संकेत रूप में और प्रस्तुत हैं—

(पर्वप्रयुक्त) (१ १४) अभिम्यगीविणत् (१ १५) यच्छुत्त (१ १६) पारेजान् (१ ७०) मध्ये समुद्रं (३ १३) पारे मध्ये पञ्चा वा सत्मार बारणपति परिमीसिवाज निष्कविहारवनवास महोत्सवानाम् (३ ३०) अचीगर्वदयेषां कर्मणि ॥

पूरीमवस्कन्द सुनीहि नम्यनमुपाण रत्नानि ह्यमरांगना ।

विमृष्टा चके नमुचिद्विपा बली य इत्यमस्वास्वमहदिवं दिव ।

क्रियासममिहारे सद्

अनर के निवेदन से हमको मात्र के महा बेदाकरण होने के विषय में कोई संशय नहीं रहता । उनके नवीनतम प्रयोगों तथा सिद्धांतों के उल्लेखों को देख कर स्पष्ट ही अनुमान होता है कि व्याकरण उनके लिए एक सरल एवं प्रिय विषय रहा होगा । व्याकरण की परिभाषाएँ धितीरस हुआ करती हैं किन्तु उन्होंने उन परिभाषाओं का अपनी मनोहर उपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है और उनका संयोग भी यदि मनोहर बन पड़ा है । व्याकरण के सूत्र से सूत्रम नियमों का उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया । बदाधिक एक प्राय ही रसम ऐसा करना पड़ा हो यह तो स्पष्ट ही है कि व्याकरण जहाँ प्रस्तुत विज्ञान के रूप में पायी है । धर्मकार रूप में उसके रहने से काव्य की रोमा बड़ी ही है, पटी नहीं ।

महाकवि मात्र का आचार्यत्व —

कई स्थानों पर इस बात का उल्लेख किया गया है कि महाकवि मात्र पण्डित थे । उनका वाचस्पत्य दायक था । वह मात्र भी कवि के रूप में इतने प्रख्यात नहीं हैं जितने पण्डित

- सदायाम दधती सरूपतां दूरमिग्नफलमयो क्रियां प्रति ।

सम्बन्धासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यञ्जयन्तु स्वरैश्च ॥१४-२४॥

व्याकरण शास्त्र का इतना पक्का ज्ञान था कि जसीसर्वे वर्णों में ही कहीं दूसर-
रसोक मिले हैं तो कहीं एकाक्षर में ही समाप्त होने वाले, कहीं ब्रूह धर्म वाले हैं तो कहीं
मुष्मों धोर कुसकों का प्रयोग है । व्याकरण शास्त्र के ज्ञान के बिना इस प्रकार की रचना
नहीं हो सकती । व्याकरण शास्त्र के परिचय का एक दूसरा दृष्टान्त धीरे है—

स्वकसाररम्य परिपूरणसम्भगीति रस्मिन्नसौ भुदितपद्मलरस्मकांग ।

कस्तूरिकामुगबिमर्तमुगम्बिरेति रागीव सक्तिमधिका विपयेषु बाधु ॥४ ६१॥

उपपुक्त श्लोक में कस्तूरिकाविर्यन्तमुगम्बि' पंक्ति विचारणीय है । वास्तविक 'गम्ब
स्वेत्वे तदेकान्तपदार्थम्' के अनुसार 'ह' न होकर सुपम्ब' होना चाहिये । कौट, नापोदी
भट्ट भट्टोजि आदि व्याकरणों की 'गम्बस्वेत्वे' में निम्न निम्न संमतिप्राप्त हैं । कविमल्ल निर्दुष्ट
होते हैं । वे अपनी इच्छानुसार जब जैसा चाहे छन्द बना भी सकते हैं । पर यहाँ मात्र कवि
ने ऐसा नहीं किया है । श्री ब्रह्मभवेव का कथन है कि—'गम्बस्योऽत्र गुणवचनो न इत्या
मिवासी इति इत्वं बभूवेव' "गम्बस्वेदुत्तुतिमुत्तुतिम्य इति ।

भीषे का रसोक भी इस दृष्टि से विचारणीय है—

केवल दधति नतु वाचिन प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि ।

भातव सूत्रसिंहशास्त्रम स्तोत्रिरव विपरीतकारक ॥१४ ६६॥

सृजन करना संहार करना तथा शासन करना धर्मात् प्राप्त करना ये चीजों ही
क्रियाएँ इन जगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में केवल कर्तृवाच्य में ही प्रयुक्त होती हैं, कर्म
वाच्य में नहीं । किन्तु इनके विषय में स्तुति करना यह क्रिया सर्वत्र कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त
होती है ।

उपपुक्त का समीप्य यह है कि जगवान् श्रीकृष्ण के साथ सदा सजति संहारति
शास्त्रीति ये क्रियाएँ लगती हैं जिसका धर्म यह होता है कि यही एक धाम स्वयं सृजन करते
हैं संहार करते हैं तथा धामन करते हैं । दूसरे शब्दों में यही ब्रह्मा विभ तथा विष्णु स्वयम्
हैं । किन्तु स्तुति करना यह क्रिया कर्मवाच्य में धर्मात् इनके साथ "स्तुयते" ही क्रियापद
पश्चित होता है जिसका धर्म है कि सभी के द्वारा इनकी स्तुति की जाती है, धीरे यह किसी
की स्तुति नहीं करते ।

इस भाँति का दूसरा श्लोक धीरे है—

दर्शनानुपदमेव कामत एवं वनीयकजनेप्रियगच्छति ।

प्रायनार्थरहितं तदामबद्ध दीयतामिति वचोर्मतसजने ॥१४ ४८॥

(पाश्चात्य राजा मुनिष्ठिर का दर्शन करने के पश्चात् बिना भाँये ही) जब वनेच्छ
पत्र प्राप्त कर लेते थे तब "दीयताम्" धर्मात् मुझे दीजिये यह छन्द वाचना के धर्म में ही

नहीं रह जाता या प्रस्तुत बहु त्याग के धर्म में (धर्मात्) इनसे अधिक धन का क्या होगा, दूसरों को व दीनिये याचकों में भी ऐसा विचार) हो जाता था ।

यहाँ, 'वा' वातु का याचना परक धर्म और त्याग परक धर्म इन दोनों धर्मों को निमाया है ।

व्याकरण ज्ञान से कुछ उच्चारण था जाता है, मन्त्रों में कुछ उच्चारण प्रति धाम तक है । आचार्य पाणिनि ने मन्त्रों के उच्चारण के सम्बन्ध में बड़ी चेतावनी देते हुए कहा है—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वणतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न समर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यजमान हिनस्ति ययेन्द्रसन्तु स्वरतोऽपराधात् ॥ पाणिनीय शिक्षा

मात्र ने इसी विषये इस व्याकरण सम्बन्धी बात को समझ रखते हुए कहा है—

संविदामनपद्यव्यमुष्मकेर्वाक्यसंज्ञाविदोऽनुवाक्यया ।

। यजमया यजनकमिणोऽयजन्नुद्रव्यजातमपविश्य देवताम् ॥१४-२०॥

इस तरह मात्र काव्य में स्थान-स्थान व्याकरणनिष्ठ प्रयोगों के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं यहाँ पर कुछ ही के उदाहरण संकेत रूप में और प्रस्तुत हैं—

(पर्यपुत्रत) (१ १४) समिन्धवीविद्यत् (१ १५) अष्टद्वार (१ १६), पारेजानं (१ ७०) मध्ये समुद्रं (३ ११), पारे मध्ये पृथ्वा वा सस्मार वारणपतिं परिमीजितां मिच्छाविहारवनवास महोत्सवानाम् (१ १०) अमीमर्थव्येषां कर्मणि ॥

पुत्रीमवस्कन्द भुनीहि मन्दनमुपाय रत्नानि हरामराजना ।

विगृह्य चके ममुषिष्ठिया वसी य हृष्यमस्वास्थ्यमहृदिवं दिव ।

क्रियासममिहारे नद्

ऊपर के विवेचन से हमको मात्र के महा बेवाकरण होने के विषय में कोई सन्देह नहीं रहता । उनके महीनतम प्रयोगों तथा शिक्षाओं के सस्तेजों को देख कर सहज ही अनुमान होता है कि व्याकरण उनके लिए एक सरल एवं प्रिय विषय रहा होगा । व्याकरण की परिभाषाएँ अतिनीरव हुआ करती हैं किन्तु उन्होंने उन परिभाषाओं का अपनी मनोहर छपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है और उनका संयोग भी यदि मनोहर बन पड़ा है । व्याकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों का उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया । कदाचित् एक मात्र ही रसत ऐसा करना पड़ा हो यह तो स्पष्ट ही है कि व्याकरण बर्षा धमस्तुत निषाग के रूप में धारी है । धसंकार रूप में उसके रहने से काव्य की योग्य बड़ी ही है, पटी नहीं ।

महाकवि मात्र का आचार्यत्व —

कई स्थानों पर इस बात का उल्लेख किया गया है कि महाकवि मात्र पण्डित थे । उनका पाण्डित्य अथाप्य था । वह मात्र भी कवि के रूप में इतने प्रख्यात नहीं हैं जितने पण्डित

के रूप में। राजस्थान में “माचणी पण्डितजी” का प्रयोग “कवि माच” यथवा “माच कवि” के प्रयोग से अधिक व्यापक है। ‘काव्येषु माच कवि काशिदास यह उक्ति साहित्यज्ञों में प्रसिद्ध है। शास्त्र-मुक्त बातों से कविताबद्ध किया हुआ कथानक काव्य कहलाता है। काव्य में एक और सेवक कवि-पदाति को सुव्यवस्थित रूप में रखता है तो दूसरी ओर उसको पुष्ट, शुद्ध, वेद, वेदांग व्याकरण श्लोतिष आदि के ज्ञान से उसे परिपुष्ट करता है। इस शक्ति के अनुसार कितने भी काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं उन सब में प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रदर्शन माच काव्य में है जैसे कवित्व का स्वाभाविक विकास काशिदास के काव्यों में है। हमें वहाँ माच के आचार्यत्व के विषय में कुछ कहना है।

माच एक उच्च कोटि के कवि तो वे ही किन्तु उनके कवित्व से कहीं अधिक ठंडा वा उनका पाण्डित्य। कवि तो इनसे उच्चकोटि के और भी मिलते हैं पर विद्वत्ता में भी उन्हें कौ छोड़ कर और कोई इनकी बराबरी करने वाला नहीं। मोक्ष प्रबन्ध और प्रबन्ध चिन्तामणि से काशिदास को कवि और महाकवि की पदवियाँ दी गई हैं पर माच के लिये कहीं पर कवि शब्द का प्रयोग न करके पण्डित शब्द का ही प्रयोग किया गया है। इससे तो यही विदित होता है कि उक्त ग्रन्थकारों की दृष्टि में माच की विद्वत्ता उनकी कवित्व शक्ति की अपेक्षा कहीं बड़ी बड़ी थी।

माच जैसा कहा गया है, कवि ही नहीं हैं, आचार्य भी हैं। जैसे रसों के विषय में माच से पूर्व के विद्वानों ने भी बहुत कुछ लिखा है किन्तु काव्य मत्तण में रस-सिद्धान्त का समावेश ग्रन्थ इनके पास हुआ। हम नीचे के श्लोकों को देखें तो उनके यह बात और भी स्पष्ट होती—

स्वामिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा ।

रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुमहीमृत ॥२-८६॥

इस श्लोक में ‘सरसी’ यह विशेषण निकलता है। ‘अव्याचीं स्तुतिरिव इयं विद्वान्-पेक्षते’ इससे अन्वयाची ‘यह विशेषण निकलता है।’ नैकमोक्ष प्रसारो वा कामकृत्य महीमते’ “इस श्लोक से मध्यन्तर से ‘समुणी’ इस विशेषण को निकाला जा सकता है। निम्नलिखित श्लोकों के द्वारा कवि ने प्रकाशान्तर से काव्य मत्तण में “यथोपा” विशेषण की सूचना दी है—

“स्वेष्टमामज्वरं प्राप्तं कोऽभ्रमसा परिसिञ्चति’

“प्रसाध्य” कुरुते कोपं प्राप्य कासे गदा यथा’

समी हि सिष्टेराम्नातो बर्त्स्यन्त वामय स च’

“यद्वासुदेवेनादीनममादीनबभीरितम् ।

वचसस्तस्य सपदि क्रिया कैवसमुत्तरम् ॥२ २२॥

इस भाँति माघ के यत्न से काव्य का सञ्चल "अदोषी संपुष्टी सात्कारो सरसो ब्रह्माधी काव्यम्" बन जाता है। इसके अनुसार माघ ने अपने काव्य की रचना भी की। सर्व प्रथम मंत्राक्षररत्न में जगन्नाथ विषयक रसाक्षय भाव अग्नि स्पष्ट रूप में सप्रतिष्ठ है, फिर आगे चल कर नारद विषयक रसाक्षय भाव अग्नि है। फिर आगे प्रथम सर्ग के स्तोक संख्या ४८, ४९ में भीर रस और १० में भीर, भयानक, शृङ्गार, १२ में भयानक ११ में भीर और भयानक रस हैं। इस भाँति माघ में भाव अग्नि व रस अग्नि, रसवशादि धर्माकार पुण्योपलब्ध अर्थ इन सब का पर्याप्त समीक्षण है। माघ का जो स्वयं का काव्य-सञ्चल है उसका अपने महाकाव्य में उन्होंने उचित रीति से निर्वाह किया है। यह हो सकता है कि माघ के समय में काव्य सञ्चल की चर्चा में दोष कुछ, धर्माकार, रस अर्थ और धर्म आदि की चर्चा होने लगी हो, पर वह निश्चित ही धान्यवर्धन आदि के पूर्ववर्ती हैं मगर इस दिशा में उनके पद-अवसर्ग भी हैं। इसके प्रतिरिक्त प्राचीन काममादि में जो सम्बन्ध और अवसर्ग २० कुछ पाये हैं वे हमारे आचार्य माघ को समीष्ट नहीं हैं। माघ केवल तीन ही पुस्तों को स्वीकार करते हैं इसीलिये दो पुस्तों का तो उन्होंने स्पष्ट रूप से निर्वोध भी कर दिया है— "नैकमोक्ष प्रसारो वा रक्तमात्र विद्यः कवेः"। तीसरा माघुर्ध्वं पुण्य प्रकारान्तर से कवि के सुचारु रूप से स्वीकृत किया है, "वाचवर्धनो वाचमेवमाशय माघवः"

इसी भाँति "सात्कारो" वह भी काव्य सञ्चल में माघ को उपार्जित है यत्न काव्य सरस की सुचारुता के लिए यत्न उन सम्बन्धकार, धर्माकार तथा उपसात्कारों का प्रयोग उन्होंने किया है।

इन्होंने काव्य के तीनों पैर माने हैं उत्तम, मध्यम, और अधम और एक ही महाकाव्य में तीनों प्रकार के काव्य की रचना उन्होंने की है।

जहाँ जहाँ रस-अग्नि अथवा भाव-अग्नि है वहाँ वहाँ उत्तम काव्य है। जहाँ भावा प्रभावता अथवा असकार प्रभावता है वहाँ मध्यम काव्य है और जहाँ यमकादिकों तथा बंधों का प्रारम्भ है वहाँ अधम या निम्न काव्य है।

यम्मटाचार्य ने भी काव्य के यही तीन पैर निरूपे हैं।

श्री ३ पाण्डित्य से उनका आचार्यत्व और भी समझ हुआ है। बहुमता के प्रकरण में उनके पाण्डित्य पर वर्णित प्रकाश ज्ञान दिया गया है। संगीत धातुर्ध्वं ज्योतिष व्याकरण आदि सभी विषयों में से सारभूत तथ्यों को काव्योपयोगी ढंग से प्रस्तुत करना यह उनका काम है। यह काम एक आचार्य का ही हो सकता है। इस तरह साहित्य धान्य के दोष में उनका नाम पूर्ववर्ती आचार्यों के साथ दिया जा सकता है।

माघ के सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुँचना ठीक ही है कि वह न केवल एक तरल कवि थे किन्तु उनके आचार्यों के सर्वमान्य विद्वान् भी थे। ऐसी विद्वत्ता दूसरे संस्कृत कवियों में बहुत कम देखने को मिलती। मार्टन में राजनीति वदता और भी हर्ष में दार्शनिक पद्धता

अवश्य है किन्तु माय अनेक शास्त्रों में पारंपर्य होने से इन से कहीं आगे बढ़ जाते हैं। न्याय, हिन्दू दर्शन तथा बौद्ध दर्शन तथा मादय शास्त्र अनेकार शास्त्र व्याकरण संगीत, काव्य, प्रायुर्वेद अथर्व वेदा, यजुर्वेद सामाजिक विज्ञान मनोविज्ञान अथवा न्याय पुराण, ज्योतिष स्मृति वेद वेदांग, आदि शास्त्र इन सबका उत्कृष्ट उन्हें ज्ञान प्राप्त था। माय ने अपने सम्पूर्ण ज्ञान की कविता देवी के चरणों में अर्पित कर दिया था। इस समर्पण का जो परिणाम निकला वह एक महाकाव्य के रूप में सङ्गठित-समाज के समक्ष प्रस्तुत है।

उन्होंने पांडित्य को कवित्व का धर्म बनाया कवित्व को पांडित्य का नहीं इससे यह कहना अधिक युक्ति-संपन्न होगा कि कवित्व की प्राप्ति के लिए उन्होंने एक बड़ी साधना की वह कवि प्रथम से और साधारण बाद में।

माघ की संज्ञा

संज्ञा की भाषा के व्यक्तिगत प्रयोग का जिसमें वह अपने भाव विचार और कल्पना को दूसरों पर प्रकट करना चाहता है, संज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा ही रचयिता की रचना का चमत्कार है।

प्रकाश पंडित और महाकवि की रचनाओं की संज्ञा में विचार प्रकट करना सरल कार्य नहीं है। उसके लिए आलोचक स्वयं जब तक कुछ उनसे भी अधिक विषयों का समझ न हो और साथ में कवि-हृदय न हो तब तक भाव जैसे महाकवि के प्रति वह सहाय्य नहीं हो सकती जिसके आधार में आलोचना एक विवशता बन जाया करती है। भाषा की संज्ञा का ठीक ठीक मूल्यांकन जो सब तक नहीं हो पाया है उसके पीछे आलोचकों की यही धनुष खिंची है। संज्ञा के कुछ और दोष एक परम्परा के अनुसार गिनाये जा सकते हैं। पर ऐसी विनयी संज्ञा का विवेचन नहीं हो सकती। फिर कुछ और दोष जिसमें नहीं होते। दोषों के सहारे ही तो मानवीयता ऊपर की उठती है। व्यक्तित्व का विकास होता है। इसीलिए तो

जड़ चेतन गुण-दोष मय विषय कीन्ह करतार ।
सन्त हूँ गुण गहहि पय परिहरि वारि-विकार ॥

सब तक भाषा के सम्बन्ध में जो बातें कही हैं उनका सम्बन्ध उनकी कविता के बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के स्वभावों से है। उनका कला-मूल और वाच-मूल दोनों उनकी संज्ञा को एक रूप देते हैं। उसी रूप का हमें यहाँ विचार करना है।

संज्ञा में कवि का व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। यदि व्यक्तित्व की झलक उसमें न हो तो फिर संज्ञा नाम की वस्तु का कवि के साथ प्रयोग हो ही नहीं सकता। जैसे तो अनुकरण और दोषों के भी अनुकरण भाव है अथवा अनुवाद भाव। जैसे तो अनुकरण और अनुवाद दोनों में भी अनुकरण और अनुवाद का अपना पूर्ण या अपूर्ण रूप सामने आता है और सब धर्म में हम अनुवाद अथवा अनुकरण की सत्यता असत्यता की बर्णन करते हैं फिर भी कवि न तो अनुवाद ही कर सकता है और न अनुकरण ही।

भाषा में प्रकटित काव्य-परम्पराओं को अपने महाकाव्य में आने का प्रयत्न किया। यह एक ऐसा वास्तविक तथ्य है जिसके लिए जो धर्म नहीं हो सकती। इसमें भी सचाई है कि आदर्श का आदर्श ही नहीं उनका समूचा महाकाव्य शिराधाराभूत भाषा ने लिए एक श्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में काम करते रहे हैं। कला का बाँधा बर्णन की प्रणालियाँ चरित्र का

विकास और भावना के साथ भक्ति का योग सभी चीजें वही की वही है। पर इस साम्य को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि भाव काव्य किरातापुत्रीय का अनुकरण प्रथम अनुवाद मात्र है। यही अनुवाद का प्रचलित धर्म अपेक्षित नहीं है।

भाव की धँसी को समझने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उस काव्य के छाह्रितिक स्वस्व को समझ लें। मौलिक कविता का बिस्तेरूखरे छन्दों में कुछ कविता सहज कविता प्रतिभा-प्रधान कविता का बुध समाप्त हो चुका था। कवि ने भी राज्यप्राप्त्य स्वीकार कर लिया था। राज्यप्राप्त्य का धर्म या कवित्व के साथ समतलता का योग। यह समतलता पांडित्य काव्य होता था। पांडित्य के साथ विविधता का योग होता है। इसी युग में इस पांडित्य के प्रभाव से ही कविता के तत्त्वों का विस्फोट हुआ काव्य के वर्णनीय विषय छोटे बड़े काव्य के नायक नायिका और उनके प्रतिस्पर्धी प्रतिनायक और दोनों के सहायक कौल कौल हो सकते हैं। इनका स्वस्व कैसा होना चाहिए और कैसा नहीं होना चाहिए इसकी सीमांका हुई। सब धीरे धीरे पर बम्बीर बिबेचना की गई। इसी तरह विषय की दृष्टि से भाव की दृष्टि से कला की दृष्टि से तथा विस्तार की दृष्टि से कुछ सिद्धान्त स्थिर होते धीरे धीरे इन सिद्धान्तों ने काव्य की मर्यादाएँ बंधी। फिर कैसा ऊपर कहा गया है कवित्व से पांडित्य का योग हुआ छन्द को कुछ धीरे धीरे को निष्कट बनाया गया। बहुवचन का अनेक विषयों की जानकारी का सहायक पाकर यह सरलता गुरुता और निष्कटता कवित्व के योग से उत्पन्न उत्तर समतलता बनी गई। उस की अपेक्षा समतलता को समतल मिलने लगा। प्रसंग की सम्भावना उचित और मुक्ति दोनों का मोता को अपनी धीरे धीरे करने में उपयोग होने लगा। सब मोताधों की बाह्यवाही स्वान्त सुख का साधन बन गयी। राज दरबारों में कवि समाएँ चुड़ैली इन समाधों में राज-समाहृत रत्न होते कवि अपनी अपनी रचना सुनाते उस पर किसी की कविता उत्तम रही और किसी की नहीं इस प्रकार के निर्णय होते। यह सब होता।

ऐसे युग में भाव कवि हुए थे। भाव युग के निर्माता कवि नहीं थे। वह तो पुनः-पुनः कवि थे। फिर भी एक युग के निर्माता बन ही गये। वह कैसे? इसी में उनकी धँसी की उत्कृष्टता का रहस्य है।

ऊपर युग की कविता सम्बन्धी जिन बातों की चर्चा आयी है वह सब भाव-काव्य में एक एक करके हैं। महाकाव्य के सद्यः का धादि से अन्त तक निर्वाह हुआ है। कथानक सहज छोटा सा है। वर्णनों के सहारे वह बड़ा है। नीति राजनीति की चर्चा उसमें है। और उस प्रधान काव्य होते हुए भी शृङ्गार की उसमें प्रमुखता है। शृङ्गार के पालन-पहोपन अनुभाव साहित्यिक भाव तथा संघर्षी भावों का सम्मिश्रित और पृथक् पृथक् रूप से उसमें वर्णन है। नायक और नायिकाओं के विविध स्वस्व उसमें प्रकट हैं। अनुवर्णन समविहार, अन्तविहार धादि सभी के दृश्य वहाँ हैं। स्वाधर और जयम प्रकृति का मानवीय भावों के साथ अपने कुछ रूप में तथा मानवीय रूप में वहाँ संगम हुआ है। यह भी है। धर्मों की उद्घन दूर धर्म्ययोगना के लेन धर्मों बंध थे भी वहाँ हैं। और और शृङ्गार के साथ भक्ति का योग करके महाकाव्य को एक बहिन रूप भी मिल गया है। इन वर्णनों को

पुनर् प्रवृत्त करने पड़ा बाप तो मुक्तक काव्य का सा धान्य मिलता है और मिलाकर पढ़ने से तो वह प्रबन्ध काव्य है ही। इन सब बातों से प्रायोगिकों की यही धारणा बनी है कि भाष की उत्तम प्रकार प्रशान्त होती है।

अब यदि हम इस दृष्टि से देखें कि इस सबके बीच कवि की अपनी दृष्टि क्या है तो उसकी दौरी का रहस्य समझ में आ जायेगा। कवि के जीवन को प्रायोगिक पढ़ने के परभाव हुए इस बात को समझने में देर नहीं लगेगी कि वह किस बीच के लिए लड़ता रहा वह बहुत उसकी सारी ही सम्पन्नता और स्वायत्तगीर्वाण के होने पर भी उसे अपने जीवन काल में न मिली। इसलिए शृङ्गार और और दोनों ही एक तरह से कवि के जीवनोद्भव को प्राप्त करने में असफल रहे। उसे इन दोनों की शक्ति की सरिता में डूबा देना पड़ा। वह शक्ति प्रधानता कवि की अपनी बीच है जो जीवन भर की साधना के फल स्वरूप उसे मिली है। इसलिए भाष की रचना में अस्कारमयता के होते हुए भी भाष की प्रधानता है।

जितने भी बर्तन हैं उनमें कवि की अपनी अनुभूतियाँ बोल रही हैं। कल्पना की उड़ान और अनुभूति की सहनता कवि की अपनी है। बाहे काव्य का बाँधा दूसरों का है। इन दोनों बातों के सम्बन्ध में पहले काफी विचार से प्रकाश डाला जा चुका है।

जिस भाष में कविता उद्भूत हुई है वह भाषा भी कवि की अपनी है — उसका उस पर अधिकार है, नवीन शब्दों की प्रशंसानुसार रचना का उसमें बाहुल्य है फिर पदपोषण का शौहन भी उसका अपना है।

अप्रस्तुत विषय परंपरागत है फिर भी उद्भाषना उसकी अपनी है। विषय में जो रंग भरे गये हैं उसमें भाष की अपनी छाया है। कीमती रंग कहीं छिपना होना चाहिए इसका निर्णय भाष ने स्वयं किया है।

दुर्बलमय भाष में शृङ्गार का जो स्वरूप लिखा वह समीप शृङ्गार है। संयोग पदा में अनुभूति की सीधता अभिव्यक्त नहीं होती सबिबना मानिक नहीं बन पाती उसमें खलि कटा अधिक रहती है, इसीलिए उसका शृङ्गार बर्तन कामिदास और भक्तसूति के समकक्ष नहीं हो सका। यदि इन्हीं कवियों के संयोग पदा ही को देखें और इस दृष्टि से भाष के शृङ्गार बर्तन की तुलना करें तो भाष का पसक निदबध रूप से भारी पड़ जायेगा। इसे भाष के विषय भवन का शेष भाग आ सकता है।

जिन प्रकारों में पंक्तिगत की शीर्ष हुई है शीर्ष बहुर कवि सामने आया है, वही पर प्राप्त की हुई विषय भी सहृदयता के प्राण में कराही हार के रूप में ही प्रकट हुई है। कविता की दृष्टि से उसका समाधान नहीं होता और न उसका समाधान करना ही चाहिए।

बहुत सी बातों को एक बगल जोड़ देने से जो विकृता धारणा है अनुमान का साम होजाता है वह भी भाष काव्य में है।

इस सबके साथ सबसे बड़ा शेष यह उसकी दौरी का है तो वह यह है कि उसका समझने वाला सहृदय भाष न होकर मातृका विद्वान् ही हो सकता है। जिस विषय को वहाँ देखा है या जिस विषय का बहारा लेकर कवि अपने बर्तनीय को प्रस्तुत करता है उसे

समझने के बाद उसकी कविता आत्मव्यक्तिनी बन जाती है, ऐसा हृदयों का अनुभव है।

इस तरह से उपर्युक्त तीन दोषों से समवेत भाव कवि की रचना धर्मनी में के प्रवृत्त हैं बिनाका बर्तन उत्तर दिया जा सकता है। भाव कवि ने सारा काव्य भोक्तृमानस को संतुष्ट करने के हंस से लिखा पर उसके साथ स्वात्म सुख को मिलाया इस विषय में उसने अपने व्यक्तिगत स्वात्मन्य की रक्षा की जिससे उनका व्यक्तिगत व्यक्तित्व व्यक्तप्रतिष्ठत उनकी धर्मनी में मुखरित हुआ।

इसके साथ ही साथ धार्य धार्य जाने संस्कृत तथा हिन्दी कवि समाज के लिए बर्तनों की दृष्टि से भाव ने जो धार्य रक्षा यह धार्य प्रेरणा का धार्य जोर बनकर सामने आया।

भाव के धार्यधर्मों की यह भाव्यता है कि परमर्त संस्कृत काव्य पर भाव कवि का प्रभाव है। वे हासोम्युक्त काल के काव्यों के पद्यप्रवर्धक रहे हैं। उनकी कविता धार्यकारिक धर्मनी की धार परभाव के रहे यये महाकाव्य बितने धार्य हुए, उसने उनकी सुन्दर काव्य-व्यक्ति की धार नहीं। धी हृदय के नैपथ्यव्यक्ति को देख देने पर भाव की बहुत सी धारें मस्तिष्क में धार काटती रहती हैं। भाव का प्रभाव धार पर स्पष्ट है। धार्य का स्मरण दिलाकर यह बताया जाता है कि भाव पर उसका प्रभाव है जबकि भाव कवि के विषय में इस प्रकार के स्मरण दिखाने की आवश्यकता नहीं है। उन धर्मनी के धर्मियों के होते हुए भी धार्य कोई धर्म तो भाव की धर्मनी है जो धार्यवाच ही उन्हें धार्य धार्यवाने धार का निर्माता धारवा कम से कम पद्य-प्रवर्धक तो बना ही गयी। यह धर्म क्या है—धर्म में इसका उत्तर है उनके जीवन के संवर्धन धार्यों की धर्म्य धर्म्यवर्धनी जो उनकी रचना में धर्म बर्तन के धर्म में धार्य धर्म्य धर्म्यों के धर्म में यह धर्म धार्य हो गयी है। उन्होंने महाकवि को धर्म बना दिया है।

यही है यह दृष्टि जो उनकी धर्मनी को समझने धार्य समझने में सहायक हो सकती है।

विश्वपालवध काव्य में प्रतिबिम्बित राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन

(क) राजनैतिक जीवन

सर विनसेंट स्मिथ का कहना है कि हर्ष भारत का पश्चिम महान् सम्राट् था । पुनः काल के परचाय् उत्तरी भारत को साम्राज्यवादी विचारवाय के द्वारा एक सासनतन्त्र में बाँध देने वाले तथा भारत और चीन के मध्य सांस्कृतिक एवं आर्थिक सम्पर्क को स्थिर रखने वाले सम्राट् हर्ष का बीसे ही इस संसार से प्रस्थान हुआ । इस देश की राजनैतिक एकता फिर विच्छिन्न होवती । पृथक्त्व और विभेद का युग पुनः प्रवृत्त हुआ । इसका विधायकत्व साम्राज्य उनकी युद्ध के परचाय् ही उनके मंत्रियों के हाथ में पड़कर आन्तरिक कलह से अराजक-प्रवस्था की प्राप्ति हो गया । चीन का हस्तक्षेप नेपाल और तिब्बत की सहायता से कुछ समय तक भारत पर रहा । इन सब के भी ऊपर भारतीय सम्मता और संरुद्धि के धनु मुसलमानों के आक्रमण फिर से भारत भूमि पर होने लगे । अरब की सेनायें भारत के उत्तर और पश्चिम की सीमा में प्रवेश कर गयीं । हर्ष के समय में ईसाब्द ५५५ में अरब और महीना में इस्लाम धर्म का उपदेश दिया । उनकी मृत्यु ६४२ ई० में हुई । उनकी युद्ध के परचाय् १०० वर्षों में ही अरबों ने भारत के बहुत से प्रदेशों पर विजय प्राप्त करली थी । आश्चर्य है कि इस आन्तरिक आन्तरिक कलह से सन् ७११ में इस्लाम का साम्राज्य चीन की सीमा से लेकर अटलांटिक तक फैल गया था । सातवीं शताब्दी के मध्य भाग में अरब उत्तरी भारत में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे पर उस समय में अवसर न्ये । तिब्बत में जब का राज्य था फिर उसके पुनः चीन बाहिर का राज्य रहा । बाहिर भी आधिपत्य था किन्तु हर्ष के परचाय् आठवें मंत्रियों में राज्य के लिए कलह हुआ, उससे पृथक्त्व की भावना को पोषण मिला । फिर पड़ोसी राज्यों के आक्रमणों ने और आठवें राज्य के प्रति बीज संघर्षियों की बदामी मता ने अरब के तिब्बत पर आक्रमण की प्रवृत्ति में उत्पत्तीपूत कर ही दिया । बाहिर बेचार करता भी गया ? मोहम्मद बिन कासिम के साथे उसको वरचित होना पड़ा । सन् सन् अरब मध्य एशिया और पश्चिमी सोमा की ओर बढ़ते गये । चीन की सहायता से यद्यपि कारमीर ७५१ ई० तक स्वतन्त्र बना रहा किन्तु चीन के अन्तर (चीन की) की प्रवृत्ति में परामप से अरबों का मान और भी मुख्य हो गया ।

अरबों की इस विजय ने भारत की राजनैतिक स्थिति पर तो अधिक नहीं पर सामाजिक स्थिति पर गहरा प्रभाव डाला । अरब और आधित रूप में भिन्न होने लगा । सन् सन् लोगों की आध-विधि में भी अन्तर पड़ा । सन् सन् ये लोग भारत के रहनेवालों में

मिल चुक गए और इन विदेशियों ने भारतीय स्त्रियों के साथ विवाह करना प्रारंभ कर दिया। घाबे बजकर तो इन्होंने भारत की वैद्यभूषा और रीति रिवाज भी ग्रहण लिये। पर हिन्दू इन्हें भारतसाध नहीं कर सके जिसका फल यह हुआ कि भारत में भारतीय मुसलमानों की गरीबी काटि का उदय हुआ। समुद्री बंदरगाहों से मध्य एशिया जंका और चीन को वस्तुओं का आना जाना प्रारंभ हुआ। जिससे इस देश का व्यापार बढ़ा। अरबों ने भारत की ज्योतिष विद्या और आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। चरक संहिता और पंचसंग का अनुवाद अरबी में हुआ।

निष्कर्ष निकला कि राजनैतिक दृष्टि से हिन्दू की धरम विषय का अधिक प्रभाव रहने में आया पर उसका सांस्कृतिक प्रभाव दोनों देशों पर पड़ा। भारत से धर्मों ने विभिन्न विचारों प्राप्त कौं और फिर पारश्चात्य देशों में उन का प्रसार किया। भारत में एक अजीब सी निराशा जर बनाने लगी जिससे वहाँ के समाज की सहिष्णुता का (पावनशक्ति का) प्रत्य सा हो गया। भारतीय मुस्लिम संस्कृति को अपनी संस्कृति का रंग नहीं बना सके। नवीन मुसलमानों का ज़दम आये बढ़ने वाली वास्तवता का संकेत-चिह्न था इसे भारतीय समाज नहीं पाये।

प्राकृतिक शक्तों का सबसे महान् राजनीतिक परिवर्तन जो हुआ वह है राजपूतों का उदय । अरबों की हस्तक्षेप का बर्णन हमने ऊपर किया है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इस्लामी सेना के शिकार वे भारतीय बड़ी मासानी से नहीं हुए । विदेशी आक्रमणों के साथ टकराते-सेते बाली एक नवीन शक्ति का उदय हुआ और वह थी राजपूत शक्ति । राजपूतों ने अपने राज्य बनाने प्रारम्भ किये । इनके चार बड़े राज्य थे । प्रतिहार गुर्जर ही इन शक्तियों में सबसे अधिक शक्तिशाली थे । ये पंजाब की सीमा तथा भारत के मैदान तक के स्वामी हो चुके थे । समय-समय पर सत्ताशियों तक इन्होंने मुसलमानों के आक्रमणों से टकराती तथा भारत के मध्य तथा पश्चिमीय भाग पर अपना आधिपत्य बनाए रखा । इन चारों शक्तियों की परस्पर में प्रतिस्पर्धा रहती जिससे आपस में युद्ध होते रहते । इससे छोटे राज्य परस्पर म लड़ कर अपनी सहायता उस राजा की देते रहते जो सबसे अधिक शक्तिशाली प्रमाणित होता । गुर्जर प्रतिहार मुसलमानी आक्रमणों को रोकने में श्रद्धा इत्य रहते । उनके हाथ के बाद ही भारत में मुसलमानी सत्ता बनने लगी ।

इस तरह हर्ष की मृत्यु के कुछ काम बरबाद ही रैद्य छोटे मोटे धनेक पतिव्रताओं राज्यों में बिबल हो गया । इन राज्यों की सख्या बहूती यमी जिससे भारत की राजनैतिक एकता को बहूती शक्ति पहुँची । इसका तुरन्त परिणाम यह हुआ कि निराश जनता ने अपने जीवन की बायबोर राजाघों के हाथों में सौंप दी । इस तरह जनजीवन का मानो मोप ही हो गया । यह राजा का जीवन ही जनता का जीवन बन गया राजा की भीत प्रजा की भीत पीर राजा की हाट, प्रजा की हार बन गयी । इसलिये राजा का हास के साथ ही साथ राजा और उसके साथ ही प्रजा के लीन हो गया । इसी कारण ही प्रादि भक्त्यात्मिक दुर्गुण फैल गये ।

राजनीति के पतनावस्था पर पहुँचने पर भरितक शक्ति का भी पतन हुआ फिर तो इसका प्रभाव सामाजिक व धार्मिक भावनाओं में भी स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होने लगा। चारों ओर से धन भारत में संकीर्ण प्रवृत्तियाँ बर करने लग गयीं। प्रगतिशीलता नीमिच्छा एवं नवीनता तथा जटिलता की भावनाओं के स्थान पर प्रतिपत्नी भावनाएँ बर करने लगीं। इसका प्रभाव भारतीय काम्य पर भी पड़ा।

अपनी अपनी इच्छा की ओर अपना अपना राय जाने इस युग में केवल प्रतिहार पुर्नरों के शासन की रीति ही सहाय्य की जो प्रजा की नसाई के लिए प्रयत्न करती। इन प्रतिहार पुर्नरों में प्रतिहार नोन सबसे महान रहे हैं।

अनर विधि की हुई राजनीतिक प्रवृत्ति में माय काम्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वह युग ही संघर्ष एवं युद्धों का था जिसमें प्राचीन राजवत्तों को समाप्त हो रहे थे और उनके स्थान पर नवीन नवीन राज्यों का तथा नवीन वर्गों का अस्त्युदय हो रहा था। कई छोटे मोटे राजे एक एकस्थानी राजा के आधीन रह कर चली की नसाई में रहते और चली के द्वि की बातें सोचा करते। जनता की कोई स्वतंत्र भावना न थी। राजा के अनुसार जनता बसती। राजा के कष्ट होवाने पर बेचारे व्यक्ति का कोई परित्यक्त न रहता। युद्ध में स्वामि भक्ति दिखाने के ही लिए वह अपने प्राणों तक को न्योछावर कर देता। उस समय के राजा और जनस्य होते और और होने के लगे उनमें या तो कोष भावा ही नहीं और यदि कोष नष्टक उठता तो फिर उस कोष को धान्य करना कठिन होता। राज्य युद्ध-राजनीति के सहारे ही चलते हैं। माय-काम्य की राजनीति-नर्वा धाने धाने वाले युद्धों को उत्पन्न करने तथा दिला देने वाली हैं। इस राजनीति में जो विचार विमर्श हुआ है वह अपने युद्ध रूप में हुआ है। दोनों पक्षों के वर्क सही तरीके से रहे गये हैं। निर्णय सही लिया गया है और सब निर्णय से दोनों पक्ष ही सम्येय सुनाते हैं। विमुपान भरी तथा में कोष करके अपने आबियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ के राज भागों को पार किया हुआ निकल जाता है। कोषाहल हो जाता है कि धन कुछ न कुछ होने वाला है। विमुपान बाह्य तो बिना किसी भीति से सावधान किए भी वह पीछे पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ता और पीछे पीछे भी बाह्य तो उसे वहाँ से जाने ही नहीं देते। नियमानुसार हूत जाता है और अपने स्वामी का सम्येय विष्टता पूर्णक कहता है। उस सम्येय को न मानने पर युद्ध छिड़ जाता है। युद्ध में रानी के साथ रानी वंदन के साथ वंदन आदि का करना तो प्राचीन युद्धनीति के अनुसार है। युद्ध का वह समय था जब नगरी के भी परकोटे हैं। पहल भी वहाँ पर तथा रहता है। निमत समय पर प्रहरी बन्दे पाते हैं बाह्यपूर्ण में बाह्यपूर्ण को सूचित करने वाली पहनाई, मूर्धन्य गुराई आदि बना करती थी पायक माया करते थे सप्त स्वर्णों को मिलाकर। मर्मस बाध मुनकर राजा लोभ पात्र जटते थे। फिर से यदि युद्ध का समय न हुआ तब प्रथम अपने दरबारियों से मिलते और सलाह, आधीन विमुपान आदि स्वीकार करते।

छोटे मोटे मांडसिक राजा थे। गणतन्त्र राज्य था। युद्ध की विभीषिता भी ही किन्तु फिर भी द्वि विधान तथा व्यापार की समस्या उत्पन्न थी। ग्राम नगर व देव बनी था। राजनीतिक मतभेद भी रहा करते थे किन्तु फिर जचित बात स्वीकार करनी पानी थी।

मित चुन गए और इन विदेशियों ने भारतीय स्थितियों के साथ बिबाह करना प्रारंभ कर दिया। प्राये जनकर तो इन्होंने भारत की वैद्यभूषा और रीति रिवाज भी अपना लिये। पर हिन्दू इन्हें भारतवास नहीं कर सके जिसका फल यह हुआ कि भारत में भारतीय मुसलमानों की नवीन जाति का उदय हुआ। समुद्री बंदरगाहों से मध्य एशिया संका और चीन को वस्तुओं का प्राना जाना प्रारंभ हुआ। जिससे इस देश का व्यापार बढ़ा। धरतों ने भारत की ज्योतिष विद्या और धातुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। शरक संहिता और पंचतन्त्र का अनुबाह धरती में हुआ।

निष्कर्ष निकला कि राजनैतिक दृष्टि से तिब्ब की धरत विजय का अधिक प्रभाव देखने में आता पर उसका सांस्कृतिक प्रभाव दोनों देशों पर पड़ा। भारत से धरतों ने विभिन्न विद्याएं प्राप्त कीं और फिर पारंपार्य देशों में उन का प्रसार किया। भारत में एक प्रजीव ही निराशा कर बनाने लगी जिससे यहाँ के समाज की सहिष्णुता का (पावनशक्ति का) प्रत्यक्ष हो गया। भारतीय मुस्लिम संस्कृति को अपनी संस्कृति का अंग नहीं बना सके। नवीन मुसलमानों का उदय आने बड़ने वाली दासता का संकेत-चिह्न था इसे भारतीय समझ नहीं पाये।

पाठवीं शताब्दी का सबसे महान् राजनैतिक परिवर्तन जो हुआ वह है राजपूतों का उदय। धरतों की हस्तक्षेप का वर्णन हमने ऊपर किया है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इस्लामी सेना के चिकार से भारतीय बड़ी आसानी से नहीं हुए। विदेशी आक्रमणों के साथ टक्कर लेने वाली एक नवीन शक्ति का उदय हुआ और वह भी राजपूत शक्ति। राजपूतों ने अपने राज्य बनाने प्रारम्भ किये। इनके चार बड़े राज्य थे। प्रतिहार गुर्जर ही इन शक्तियों में सबसे अधिक शक्तिशाली थे। ये पंजाब की सीमा तथा भारत के मेरान तक के स्वामी हो चुके थे। लपमन को शताब्दियों तक इन्होंने मुसलमानों के आक्रमणों से टक्कर भी तथा भारत के मध्य तथा पश्चिमीय भाग पर अपना आधिपत्य जमाए रखा। इन चारों शक्तियों की परस्पर में प्रतिस्पर्धा रहती जिससे आपस में युद्ध होते रहते। दूसरे छोटे राज्य परस्पर म लड़ कर अपनी सहायता उस राजा की देते रहते जो सबसे अधिक शक्तिशाली प्रमाणित होता। गुर्जर प्रतिहार मुसलमानी आक्रमणों को रोकने में सिद्ध हस्त रहे। उनके हस्त के बाद ही भारत में मुसलमानी सत्ता अमने लगी।

इस तरह हर्ष की मृत्यु के कुछ कास पश्चात् ही देश छोटे मोटे अनेक शक्तिशाली राज्यों में विभक्त हो गया। इन राज्यों की संख्या बढ़ती गयी जिससे भारत की राजनैतिक एकता को गहरी छति पहुँची। इसका गुरुत्वा परित्याग यह हुआ कि निराश जनता ने अपने जीवन की बागडोर राजाओं के हाथों में सौंप दी। इस तरह जनजीवन का मानो मोप ही हो गया। सब राजा का जीवन ही जनता का जीवन बन गया राजा की जीत प्रजा की जीत और राजा की हार प्रजा की हार बन गयी। इसलिए भारतीय राजनीति का ह्रास के साथ ही साथ राजा और उनके साथ ही प्रजा के जीवन में अविच्छिन्नता जटिलता ईर्ष्या, कलह आदि घनामात्रिक दुर्गुण फैल गये। जनता की शक्ति के हट जाने से राजाओं की शक्ति बड़ी दो धरत पर वह देश के राजपूतों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकी।

राजनीति के समावेश पर पहुँचने पर अतिरिक्त शक्ति का भी पतन हुआ फिर तो इसका प्रभाव सामाजिक व धार्मिक भावनाओं में भी स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होने लगा। चारों ओर से जब भारत में अंग्रेजी प्रभुत्वों पर करने लग गयीं। प्रगतिशीलता, सीमितता एवं नवीनता तथा व्यवस्थितता की भावनाओं के स्थान पर प्रतिपक्षी भावनाएँ बर करने लगीं। इसका प्रभाव भारतीय काव्य पर भी पड़ा।

अपनी अपनी इच्छा और अपना अपना राय माने इस युग में केवल प्रतिहार पुर्वों के वाचन की रीति ही सहाय्यीय थी जो प्रथा की प्रसाई के लिए प्रयत्न करती। इन प्रतिहार पुर्वों में प्रतिहार भोग सबसे महान रहे हैं।

ऊपर लिखिए की हुई राजनीतिक वृत्तधुमि में भाव काव्य के सम्भव से स्पष्ट होता है कि यह युग ही संघर्ष एवं युद्धों का था जिसमें प्राचीन राजवंश तो समाप्त हो रहे थे और उनके स्थान पर नवीन नवीन राज्यों का तथा नवीन वर्गों का समुदाय हो रहा था। कई छोटे छोटे राजे एक साम्राज्यीय राजा के आधीन रह कर उसी की प्रसाई में रहते और उसी के हित की बातें सोचा करते। जनता की कोई स्वतंत्र भावना न थी। राजा के अनुसार बनना पड़ती। राजा के कष्ट होजाने पर बैचारे शक्ति का कोई अस्तित्व न रहता। युद्ध में स्वामि शक्ति विजाने के ही लिए वह अपने प्राणों तक को त्यागकर कर देता। उस समय के राजा और व्यवस्था होते और और होने के बावें जनमें या तो क्रोध आता ही नहीं और यदि क्रोध बहक उठता तो फिर उस क्रोध को शांत करना कठिन होता। राज्य युद्ध राजनीति के बंधारे ही पतते हैं। भाव-काव्य की राजनीति-वर्षा प्रायः अपने अपने युद्धों को उत्पन्न करने तथा विधा देने वाली है। इस राजनीति में जो विचार विमर्श हुआ है वह अपने युद्ध रूप में हुआ है। दोनों पक्षों के वर्क सही तरीके से रहे बने हैं। निर्लभ सही लिया गया है और उस निर्लभ के दोनों पक्ष ही समीक्ष सुमाते हैं। विधुपाल मरी जमा में क्रोध करके अपने शक्ति की लेकर इन्द्रप्रस्थ के राज मार्गों को पार करवा हुआ निकल जाता है। कोताहल हो जाता है कि अब कुछ न कुछ होने वाला है। विधुपाल बाह्य तो बिना किसी शक्ति से सावधान किए भी वह धीकृष्ण पर आक्रमण करने के लिए तैयार पड़ता और भीकृष्ण भी पड़ते तो उसे नहीं के जाने ही क्यों बैठे। विधुमानुसार बूझ थाता है और अपने स्वामी का समीक्ष धिक्का पूर्वक कहता है। उस समीक्ष को न मानने पर युद्ध छिड़ जाता है। युद्ध में रणों के साथ रानी, पैदल के साथ पैदल आदि का लड़ना तो प्राचीन युद्धनीति के अनुसार है।

युद्ध का वह समय या घण्टा अपनी के भी परकोटे हैं। पहल भी वहाँ पर तथा रहता है। निरत समय पर झूठी बदले जाते हैं बाह्ययुद्ध में बाह्ययुद्ध को नृषिप करने वाली घड़नाई, युद्धन तुरई प्राति बधा करती थी, मायक माया करते थे तथा स्वर्ण को निताफर। मंत्रत बाध मुनकर राजा तोय प्राय उठते थे। फिर से यदि युद्ध का समय न हुआ तब प्रथम अपने दरबारियों के निरत और सभास, प्राचीनार्थ मुनक प्राति स्वीकार करते।

छोटे छोटे नाविक राजा थे। अणुतण्ड राज्य था। युद्ध की किमीविधा भी ही किन्तु फिर भी हथि, गोपालन तथा व्यापार की व्यवस्था जगत थी। प्रायः नगर व देश घनी था। राजनीतिक व्यवस्था भी रहा करते थे किन्तु फिर जगत बाध स्वीकार करती जाती थी।

मिल चुक नए और इन विदेशियों ने भारतीय स्त्रियों के साथ विवाह करना प्रारंभ कर दिया। पापे बनकर तो इन्होंने भारत की वैद्यभूषा और रीति रिवाज भी अपना लिये। पर हिन्दू इन्हें धारमसाध नहीं कर सके जिसका फल यह हुआ कि भारत में भारतीय मुसलमानों की नवीन जाति का उदय हुआ। समुद्री बंदरगाहों से मध्य एशिया संका और चीन को वस्तुओं का आना जाना प्रारंभ हुआ। जिससे हम देश का व्यापार बढ़ा। घरबों ने भारत की प्यो ठिय बिद्या और प्रायुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। अरब संहिता और पंचतन्त्र का अनुबाद घरबी में हुआ।

निष्कर्ष निकला कि राजनीतिक दृष्टि से विश्व की अरब विजय का अधिक प्रभाव देखने में आया, पर उसका सांस्कृतिक प्रभाव दोनों देशों पर पड़ा। भारत से घरबों ने विभिन्न विद्याएं प्राप्त की और फिर पाचपात्य देशों में उन का प्रसार किया। भारत में एक अजीब सी निराशा पर आने लगी जिससे वहाँ के समाज की सहिष्णुता का (पाचनशक्ति का) अन्त सा हो गया। भारतीय मुस्लिम संस्कृति को अपनी संस्कृति का रंग नहीं बना सके। नवीन मुसलमानों का उदय आगे बढ़ने वाली वास्तवता का संकेत-चिह्न था इसे भारतीय समझ नहीं पाये।

आन्धी शताब्दी का सबसे महान् राजनीतिक परिवर्तन जो हुआ वह है राजपूतों का उदय। घरबों की हस्तक्षेप का कर्णन हमने ऊपर किया है किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि इस्लामी सेना के चिकार ने भारतीय बड़ी आवाजी से नहीं हुआ। विदेशी आक्रमणों के साथ टकरा लेने वाली एक नवीन शक्ति का उदय हुआ और वह भी राजपूत शक्ति। राजपूतों ने अपने राज्य बनाने आरम्भ किये। इनके चार बड़े राज्य थे। प्रतिहार मुर्जर ही इन शक्तियों में सबसे अधिक शक्तिशाली थे। ये पंजाब की सीमा तथा भारत के मैदान तक के स्वामी हो चुके थे। लगभग दो शताब्दियों तक इन्होंने मुसलमानों के आक्रमणों से टकरा ली तथा भारत के मध्य तथा पश्चिमीय भाग पर अपना आधिपत्य बनाए रखा। इन चारों शक्तियों की परस्पर में प्रतिस्पर्धा रहती जिससे आपस में युद्ध होते रहते। इससे छोटे राज्य परस्पर न लड़ कर अपनी सहायता उस राजा को देते रहते जो सबसे अधिक शक्तिशाली प्रमाणित होता। मुर्जर प्रतिहार मुसलमानी आक्रमणों को रोकने में विव्र हस्त रहे। उनके ह्रास के बाद ही भारत में मुसलमानी सत्ता आने लगी।

इस तरह ईर्ष की मृत्यु के कुछ काम परचाह ही इस छोटे मोटे अनेक शक्तिशाली राज्यों में बिभक्त हो गया। इन राज्यों की संख्या बढ़ती गयी जिससे भारत की राजनीतिक एकाता को गहरी क्षति पहुँची। इसका तुरन्त परिणाम यह हुआ कि निरास एकाता ने अपने जीवन की आगडोर राजाघों के हाथों में सींग दी। इस तरह जनजीवन का मानो तोप ही हो गया। अब राजा का जीवन ही एकाता का जीवन बन गया, राजा की जीत प्रजा की जीत और राजा की हार, प्रजा की हार बन गयी। इसलिए भारतीय राजनीति का हास कि साथ ही साथ राजा और उसके साथ ही प्रजा के जीवन में अविच्छिन्नता अवासीनता ईर्ष्य कलह आदि प्रणामाधिक दुर्गुण फैल गये। एकाता की शक्ति के हट जाने से राजाघों की शक्ति बड़ी तो घररय पर वह देश के राज्यों को दूर करने में समर्थ नहीं हो सकी।

राजनीति के पतनावस्था पर पहुँचने पर अस्तित्व शक्ति का भी पतन हुआ फिर तो एक प्रभाव सामाजिक व धार्मिक भावनाओं में भी स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होने लगा। चारों ओर से जब भारत में संकीर्ण प्रवृत्तियाँ पर करने लग गयीं। प्रगतिशीलता, भीतिभय, नवीनता तथा बदलावशीलता की भावनाओं के स्वान पर प्रतिवासी भावनाओं पर करने लगी। इसका प्रभाव भारतीय काम्य पर भी पड़ा।

अपनी अपनी अस्थि और अपना अपना राय वाले इस युग में कैवश प्रतिहार मुन्नों कावन की रीति ही सराहनीय थी जो प्रजा की यत्नाई के लिए प्रयत्न करती। इन प्रतिार मुन्नों में प्रतिहार लोक सबसे महान रहे हैं।

ऊपर निर्दिष्ट की हुई राजनीतिक पृष्ठभूमि में माय काम्य के अध्ययन में स्पष्ट होता है कि वह युग ही सर्वप्रथम युद्धों का वा प्रियमें प्राचीन राजवंश तो समाप्त हो रहे थे और उनके स्वान पर नवीन नवीन राज्यों का तथा नवीन बंधों का सम्मुख हो रहा था। कई छोटे छोटे राजे एक एकदूसरे राजा के प्राचीन रह कर वही की यत्नाई में रहते और वही के हक की बातें सोचा करते। जनता की कोई स्वतंत्र भावना न थी। राजा के अनुसार जनता जाती। राजा के कष्ट होजाने पर बेचारे व्यक्ति का कोई अस्तित्व न रहता। युद्ध में स्वामि शक्ति विजाने के ही लिए वह अपने प्राणों तक को न्योछावर कर देता। उस समय के राजा तिर अवस्थ होते और और होने के नाते उनमें या तो श्रेष्ठ भावा ही नहीं और यदि श्रेष्ठ शक्ति उठता तो फिर उस श्रेष्ठ को सन्त करना कठिन होता। राज्य युद्ध-राजनीति के द्वारा ही चलते हैं। माय-काम्य की राजनीति-बर्षा घाये घाने वाले युद्धों को उत्पन्न करने का विज्ञान देने वाली है। इस राजनीति में जो विचार विमर्श हुआ है वह अपने युद्ध रूप में हुआ है। दोनों पक्षों के एक सही तरीके से रहे गये हैं। निर्णय सही लिया गया है और उस निर्णय से दोनों पक्ष ही समीक्ष मुलाते हैं। विधुपाल मरी समा में श्रेष्ठ करके अपने प्राणियों को लेकर इन्द्रप्रस्थ के राज मार्गों की पार करता हुआ निकल आया है। कोलाहल हो जाता है कि जब कुछ न कुछ होने वाला है। विधुपाल बाह्य तो बिना किसी भी सारवान किं भी वह भीकृष्ण पर साक्षमता करने के लिए चल पड़ा और भीकृष्ण भी बाह्य तो उसे वहाँ से जाने ही क्यों देते। निमामुसार हुए जाता है और अपने स्वामी का सम्येष्ट सिष्टता पूर्वक रहता है। उस सम्येष्ट को न मानने पर युद्ध सिद्ध जाता है। युद्ध में रवी के साथ रवी वैदल के साथ वैदल प्रादि कर लड़ना तो प्राचीन युद्धनीति के अनुसार है।

युद्ध का वह समय या अव अवली के भी परकोटे है। पहचान भी वहाँ पर लगा रहता है। नियत समय पर प्रहरी बने जाते हैं बाह्यगुह्य में बाह्यगुह्य की सूचित करने वाली पहचान, मूर्ख, गुराँध प्रादि बना करती थी मायक गाया करते थे सप्त स्वरों को निभाकर। बंभल पाठ सुनकर राजा लोक जाय चले वे। फिर से यदि युद्ध का समय न हुआ तो प्रथम अपने दरबारियों से मिलते और समाय, प्राधीर्वाद मुन्नों प्रादि स्वीकार करते।

छोटे मोटे मांडमिक राजा थे। गणतन्त्र राज्य का। युद्ध की विधीविधान की ही किन्तु फिर भी इति पोषामन तथा व्यापार की व्यवस्था समस्त थी। शाय नगर न देर करी था। राजनीतिक व्यवस्था भी रहा करते थे किन्तु फिर अधिक बात स्वीकार करनी जाती थी।

कूटनीति बेनी जाती थी। संघ संघासन होता रहा। संविधिग्रह के नियमों से राजा परिचित रहते थे। श्रीकृष्ण उद्यम और वनराज तथा युधिष्ठिर और भीष्म के संघर्षों से उस समय की राजनीति की बातों का पता चलता है। कहीं-कहीं माघ ने अपनी विद्वत्ता का परिचय भी दिया है। जैसे—

पद्गुणाः शक्यस्तिरु सिद्धयश्चोदयास्त्रियः ॥२२६॥

उदेतुमस्यजग्नीर्हो राजसु द्वादशस्वपि ।

जिमीपुरेको दिनकृत्वादिस्वेतिवकल्पते ॥२२७॥

सेना का विभाग छप विभाग पूर्ण रचना अभियान युद्धकला सरनास्त्र आदि बातों से कवि परिचित है।

इन सब बातों का निष्कर्ष यह निकला कि माघ काव्य में भारतीय राजनीति का प्रति सुन्दर वर्णन हुआ है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् देव, एक बहुत बड़ा साम्राज्य छोटे-मोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था और वे सब छोटे-मोटे राजा वनराजित्व के स्वप्न देखा ही करते थे। इस भाँति राज्यभ्रमरस्था में सर्वत्र अशांति थी किन्तु उस अशांति को दूर करने का तथा सब जगह शांति स्थापित करने वाले प्रतिहार बंधी उस समय बहो थे। उन्होंने समस्त उद्गर्षों को दूर करने का ठका जब जब शांति व नृप्यवस्था के रखने का पूर्ण प्रयास किया था। माघ काव्य में इसका अच्छा वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण शांति की व्यवस्था करत हुए द्वारिकापुरी में रहते थे। कहीं कोई उपद्रवकापी सिंधुपान बंधों का संकेत हुआ तो वे सेना सहित उस उपद्रवकापी पासक के पास को गए करने के लिए जब पड़ते प्रथमा सर्वत्र शांति विराजमान थी। यही व्यवस्था प्रतिहार भोज के समय में थी। नापनट्ट प्रथम के पूर्व समय तक तो इधर उधर के उपद्रव युद्ध अशांति तथा भ्रम्यवस्था भी रही जिसको दूर करने के लिए नागमट्ट ने भरसक प्रयत्न किया था। आगे चलकर जिस प्रकार साम्राज्य-विस्तार देव में हुआ उसी का प्रतिफल माघ काव्य में अंकित है। कही युद्ध है तो कही बंधियों को मुक्त किया था रहा है तो कहीं महापराजितराज के निकट शरणागती प्राप्त-काल मुक्य सत्ताम आशीर्वाद आदि के लिए था रहे हैं। मित्र और शत्रु के साथ बरती जाने वाली नीति का वर्णन शिरीष तथा व्यासहर्षे सगों में हुआ है। इन युद्धों के वर्णनों से पता चलता है कि सेना और प्रतिरक्षा की व्यवस्था राजा करता था। वह नगर में पहुँचे भगवाता नगर में पूर्ण परिरक्षा आदि का निर्माण करवाता। माघ काव्य में इन सबके वर्णन ब्यारबान आये हैं। द्वारका का वर्णन इस सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश डालता है। उस समय की युद्ध कला का विवरण १८वें और १९वें सर्गों में है। युद्ध के वास्तविक वर्णन को देखकर ऐसा लगता है जानो माघ कवि ने स्वयं किन्ने ही युद्ध अपनी आँखों से देखे हैं। यह भी हो सकता है किसी

१ सेना प्रयास के वर्णन में रंबतक पक्ष के लिए जब श्रीकृष्ण जा रहे हैं उस भाग को देखें। कारागार के पक्षक तोड़ कर परिवर्तनों को मुक्त करने की बात सर्ग ११ के १० और ६१ श्लोक में है। वनराजित्व की दृष्टा का उल्लेख इसी सर्ग के ४८वें श्लोक में है।

युद्ध में उन्होंने कोई भाग भी लिया हो। युद्ध कला का जो वर्णन है वह मिथित रूप का है जो कहीं कहीं वह महाभारत के युद्धों जैसा है। भाग के युग में ब्रह्मास्त्र, नागास्त्र, वरुणास्त्र आदि का कोई प्रयोग न था और जहाँ हानी, मोड़ों और जटों पर बँडकर और युद्धों के युद्ध का वर्णन हुआ है वह उस काल के युद्धों जैसा है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाग वाणीय राजनीतिक स्थिति का प्रतिबिम्ब विपुलास बन काव्य में है।

(ख) सामाजिक जीवन

बाहरी प्राकृतियों के उल्लंघन राजनीतिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक जीवन पर भी एक दूसरे ही प्रकार का प्रभाव संचित होने लगा था। भाग ने अपने काव्य में तत्कालीन भारतीयजीवन का तो एक सुन्दर चित्र उपस्थित किया ही है किन्तु साथ ही साथ स्वामीय जीवन की भी उन्नति कई सीकियों है। पता चलता है कि उस समय बर्त व्यवस्था पर बहुत बल दिया जाने लगा था। बर्तों सेकुरों का समाज में आदर नहीं होता था। अधिकांश घरों में संघ्या बंदना और हवन आदि धार्मिक कृत्य हुआ करते थे। मन्त्रों से प्राकृतियों की पाती भी और मन्त्रों के ज्ञान हुआ करते थे देखिये—

प्रतिशरणमग्नीशुभ्यातिरन्—राहितानां

विधिबिहितविरिच्यै सामिधेनोर्धीत्य । कृतयुध दुरितीयर्ध्वसमध्वयुर्बर्मे
तु तममधुपलीढे साधु सांताम्यमग्नि ॥११-४१॥

प्रकृत्यवधिधीनामास्त्रमुद्रस्मिदन्तं सुनुरपिहितमोष्ठ्यरक्षरलक्ष्यमग्नये ।

मनुकृतिमनुवेस दट्टितादट्ट एतस्य प्रवृत्ति नियममाज्ञां युष्मदुक्तापुटस्य ॥११-४२॥

यह वैदिक धारम का चित्र है। यद्य दक्षिणा आदि का विस्तृत वर्णन कवि ने राजसूय यज्ञ के प्रवर्ग में किया है। कुछ श्लोक यहाँ दिये जाते हैं—

तस्य सांस्वपुस्त्रेण तुस्यतां विभ्रत स्वयमकुर्वत क्रिया ।

कन्ता तुपुसम्मतो भवदवृत्तिभावि करणे ययत्विजि ॥१४-१६॥

धर्मितामनपद्यदमुष्यकैर्वाक्यसक्षणविदोन्नुवाक्यया ।

माग्यया यजनकर्मिणोश्चजन्द्रम्यजातमपदिद्य देवताम् ॥१४-२०॥

सप्तमेदवरकसितस्वर साम सामविदमङ्गमुज्जगो ॥

तत्र सुनुरतिरपद्य भूरयः पुष्यमुष्यनुपमध्यगीपत ॥१४-२१॥

वद्वर्धमयर्वाक्यदामया मोक्षितानि यजमानजायया ।

धुष्मणि प्रणयनादि संसृते तैहवीपि बुद्ध्वायमूर्ध्वरे ॥१४-२२॥

दक्षिणीयमवगम्य पक्षिना पीक्ष्याहममय द्विजव्रजम् ।

दक्षिणः क्षितिपतिर्धर्मिधणुहृष्टिणा सदसि राजभूयवी ॥१४-३३॥

मूटनीति सेही बाठी थी। सैन्य संघातन होता रहता। संघिकिग्रह के नियमों से राजा परिचित रहते थे। श्रीहृष्य उद्यम और बलराम तथा मुचिष्ठिर और भीष्म के संघर्षों से उस समय की राजनीति की बातों का पता चलता है। कहीं-कहीं माघ ने अपनी विद्वत्ता का परिचय भी दिया है। जैसे—

पद्गुणाः स्रक्त्यस्तिष्ठ सिद्धमन्वोदमास्त्रियः ॥२२॥

उदेतुमस्यजन्तीही राजसु ह्रावसस्त्रपि ।

जिगीपुरेको दिनकृपाविरथेष्विनकस्पते ॥२३॥

सेना का विभाग सप्त विभाग हुए राजा अभियान मुखकला शास्त्रास्त्र आदि बातों से कवि परिचित है।

इन सब बातों का निष्कर्ष यह निकला कि माघ काव्य में भारतीय राजनीति का प्रतिचित्रण बर्णन हुआ है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् देश एक बहुत बड़ा साम्राज्य छोटे-मोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था और वे सब छोटे-मोटे राजा अक्रान्ति के स्वप्न देखा ही करते थे। इस भाँति राज्यव्यवस्था में सबन अशांति थी किन्तु उस अव्यवस्था को दूर करने का तथा सब जगह शांति स्थापित करने वाले प्रतिहार बघी उस समय नहीं थे। उन्होंने समस्त राज्यों को दूर करने का तथा सब जगह शांति व सुव्यवस्था के रखने का पूर्ण प्रयास किया था। माघ काव्य में इसका अच्छा वर्णन मिलता है। श्रीहृष्य शांति की व्यवस्था करते हुए हारिकापुरी में रहते थे। कहीं कोई अपराधकारी विद्युपान बँतों का संकट हुआ तो वे सेना सहित उस अपराधकारी पातक के शासन को नष्ट करने के लिए चल पड़ते मगधवा सर्वत्र शांति विराजमान थी। यही अवस्था प्रतिहार भोज के समय में थी। सावद्रष्ट प्रथम के पूर्व समय तक तो इधर-उधर के उपरान मुख अशांति तथा अव्यवस्था थी रही जिसको दूर करने के लिए माघमहर्षि न भरसक प्रयत्न किया था। आगे चलकर जिस प्रकार साम्राज्य-विस्तार देश में हुआ उसी का प्रतिरूप माघ काव्य में अंकित है। कहीं युद्ध है, तो कहीं बहियों को मुक्त किया जा रहा है तो कहीं महापद्मविराज के निकट दरबारी प्राण-काम मुजरा सन्नाय आशीर्वाद आदि के लिए आ रहे हैं^१। मित्र और शत्रु के माघ बरती जाने वाली नीति का वर्णन द्वितीय तथा स्यारहवें सर्गों में हुआ है। इन मुखों के वर्णनों से पता चलता है कि सेना और प्रतिरक्षा की व्यवस्था राजा करता था। वह नगर में पहले लपकाठा नगर में दुर्ग परिषा आदि का निर्माण कराता। माघ काव्य में इन सबके वर्णन स्यास्यान आये हैं। हारका का वर्णन इस सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश मिलता है। उस समय की मुख कला का विवरण १८वें और १९वें सर्गों में है। मुख के वास्तविक वर्णन को देखकर ऐसा लगता है मानो माघ कवि ने स्वयं कितने ही मुख अपनी आँखों से देखे हैं। यह भी हो सकता है किसी

१ सेना प्रयाण के वर्णन में रीतिरूप वर्णन के लिए जब श्रीहृष्य आ रहे हैं उस माग को देखें। कारागार को काटक छोड़ कर परिजनों को मुक्त करने की बात सम ११ के ६० और ६१ श्लोक में देखें। अक्रान्तिय की हृष्टा का अन्तेज इसी सर्ग के ४८वें श्लोक में है।

पुत्र में जहाँ कोई शाय भी भिन्न हो। पुत्र कत्ता का जो बर्णन है वह विविध रूप का है तो कहीं कहीं वह महाभारत के युद्धों जैसा है। माय के युग में महाभारत, रामायण, ब्रह्माण्ड पारि का कोई प्रयोग न था और जहाँ हाथी घोड़ों और जैतों पर बैठकर और पुरुषों के युद्ध का वर्णन हुआ है वह उस काल के युद्धों जैसा है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि माय कालीन राजनैतिक स्थिति का प्रतिबिम्ब विष्णुपान्न का काल्य में है।

(ब) सामाजिक जीवन

बाहरी प्राक्रमणों के फलस्वरूप राजनैतिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक जीवन पर भी एक दूसरे ही प्रकार का प्रभाव लक्षित होने लगा था। माय ने अपने काल्य में तत्का सीन भारतीयजीवन का तो एक सुन्दर चित्र उपस्थित किया ही है किन्तु साथ ही साथ स्थानीय जीवन को भी उसमें कई भेद किया है। पता चलता है कि उस समय बर्लं व्यवस्था पर बहुत बल दिया जाने लगा था। बर्लं संकरों का सघात में घादर नहीं होता था। अधिकांश घरों में संघात बंधना और हवन आदि धार्मिक कृत्य हुआ करते थे। मन्त्रों से प्राकृतियों की जाती भी और मन्त्रों से आप हुआ करते थे देखिये—

प्रतिष्ठरसुमदीणज्यातिरग्नू—वाहितानां

विधिविहितविरम्भे सामिधनोरधीत्य । कृतगुरु वृरितीयर्ध्वसमभ्यर्चुं ययै

हु तमयधुपसीढे साधु सानाम्यभग्नि ॥११-४१॥

प्रकृतजपविधीनामास्यमुद्रादिमदन्तं मुद्रुरपिहितमोष्ठ्यरक्षरं संस्थमस्यै ।

धनुकृतिमनुवेस घट्टिताड्ड टतस्य प्रजति नियमभावां मुग्धमुष्ठापुटस्य ॥११-४२॥

यह वैदिक जीवन का चित्र है। यह दक्षिणा आदि का विस्तृत वर्णन कवि ने राज सुय दक्ष के प्रसंग में किया है। कुछ श्लोक यहाँ दिये जाते हैं—

तस्य सास्यपुरुषण सुस्यतां विभ्रतं स्वयमकुर्वत क्रिया ।

कदु ता तदुपमममतीऽभवदवृत्तिभाजि वरते ययत्विर्बि ॥१४-१६॥

अग्निदतामनपद्ममुग्धसंवायससाणविदोऽनुवाक्यया ।

याज्यया यजनममिणुऽभ्यजन्मयातमर्पादस्य देवताम् ॥१४-२०॥

सप्तमेदकरकस्त्रितस्वरं साम सामविदसङ्गमुज्जगौ ॥

तत्र सूतगिरदस सूरय पुण्यमुपमनुपमध्वगीपत ॥१४-२१॥

वठदर्ममयकाविदामया बीक्षितानि यजमानजायया ।

मुष्मणि प्रणयनादि संस्तुते तैर्हवीपि जुहवावभूविरे ॥१४-२२॥

दक्षिणीयमवगम्य पक्षिण पक्षिणावममय द्विजप्रजम् ।

दक्षिण दितिपतिष्यतिपण्डितिणा सदसि राजसूयकी ॥१४-२३॥

विक्रम संवत् का विधान था । यशोवर्धन द्विजयण चारण करते थे । प्रतिधि सत्कार जातीय जीवन का विशेष अंग था । बड़ों के आगमन पर अपने आसन से उठकर यथायोग्य सरकार के पश्चात् आसनासीन कराया जाता था फिर मन्त्रबाणी से उनकी कृपासिद्धि को पूछी जाती थी और अपने आपको सेवा के लिए समर्पित करने की बात कही जाती थी । प्रथम सर्ग में भारव के आगमन पर श्रीकृष्ण ने और इन्द्रप्रस्थ की सीमा पर श्रीकृष्ण के पहुँचने पर युधिष्ठिर ने जो आतिथ्य किया है उससे उनके समय के प्रतिधि-सत्कार का पता चलता है । जनता में कथावित्त सिद्ध और विष्णु दोनों के प्रति ही अधिक भक्ति थी यद्यपि एव देवताओं तथा अवतारों की भी बहु यथावसर पूजा करती थी । माघ ने श्रीकृष्ण को कहीं पर तो सिद्ध कहीं पर विष्णु, कहीं पर बुद्ध और कहीं पर महावीर आदि का रूप देकर जनता की समन्वयारिपिका भक्ति की ओर भी संकेत किया है ।

एहत्त्व शेष अपने धर्म का यथाविधि पालन करते थे । किन्हीं पुरुषों के पश्चात् राजा को खनन करने जाती थी और पुरुषों के पूर्व ही बाह्य मूर्ध्न में उठ जाया करती थी । वे अपने पारिव्रात्य का पूरुषतया पालन करती थी । सही प्रथा उस समय कथावित्त लोगों पर भी । माघ के वर्णनों से इस बात की पुष्टि होती है—

हस्तिरभाम्निभर्तारि भुवः विमला परलोकमभ्युपगते विविधुः ।

श्वसन स्विप कथमिवेतरया सुसभोऽप्यजग्मनि स एव पतिः ॥६१॥

बसावसेपावपुनापि पूर्ववत् प्रवाप्यते तेन अपञ्चिणीपुण्या ।

सतीव योपित्पुष्टि सुनिश्चला पुमांसमप्येति मयान्तरेष्वपि ॥१७२॥

जनता पौण्ड्रिक जाती में विश्वास करती थी । अवतार पूजा तो उस समय तक बढ चुक हो ही चुकी थी । तीर्थों का जल पवित्र भाग्य जाता था । उस समय अजुन अपचक्रुन का विचार भी लोगों में बहुत था । लोग पुनर्बन्ध में हूँ विश्वासी थे और वे यह भी मानते थे कि जब-जब भी पूज्य पर पाप यज्जर्म यज्जवा भयान्तर बढ़ता है तो किसी न किसी रूप में भगवान् का अवतार हो ही जाता है ।

एक बीच में विवाह नहीं होता था इसी लिए पति योनिभू कहलाता है । विवाह के समय जब विवाहिता पुत्री का पिता और नव-युव-युव को बन्धुर अपनी ओर से बैठ कर पहनने का मान्यपण दिया करते थे । माघ ने इस प्रथा का उल्लेख किया है—

रथान्जमर्त्रमर्जनव यथाय यस्या पितेव प्रतिपादितया ।

प्रेम्णोपवृष्ट मुहुरकभाजो रत्नावलीरम्भुजिरावयग्न ॥३३६॥

विवाहित लड़कियाँ जब पतिपुत्र जाती थीं तो विवाह के समय माता पिता सने संबंधी भाव भास के पड़ोसी भाई बहिन ये सब लगभग ग्राम की सीमा तक पहुँचाने आया करते थे । लड़की गने में बसा डालकर रोकर मिलती थी । माता पिता भी उसकी बिदाई पर रदन करते । एक कदलामय हृदय बन जाता । यह प्रथा आज भी हमारे यहाँ प्रचलित है । माघ ने एक स्थान पर इसी भाव को व्यक्त किया है—

अपलक्षकमंकरिवर्तनोचितास्थसिता पुर पतिमुपेतुमात्मजा ।

अमुरोदितिय कश्चोन पत्रिणा बिस्तेन वत्ससत्तयेय निम्मगा ॥४४७॥

वे स्त्रियों पतिव्रत में जाकर परे में रहती थीं। अश्वगुच्छन भी मुख पर हुप्पा करता था। सज्जा ही सनका सर्वोपरि सुपणु समझ जाता था। एक और पर्या-प्रथा का वर्णन माघ ने किया है और दूसरी ओर इन्होंने बताया है कि सम्राटगण में अपने पति की मृत्यु पर वीरगनाधी ने बीरता पूर्वक अपने प्राणों की प्राकृति दी है। राजस्थान के जोहर के हथों को माघ काव्य में पढ़कर स्त्रियों के एक अद्भुत कर्म का वर्णन होठा है। विवाह के इस प्रकार के प्रबन्धकर्म संसार में अत्यन्त बहुत कम देखने को मिलते हैं।

स्त्रियों को वास्तवकाश में शास्त्र-विद्या के साथ दृश्य-विद्या भी दी जाती थी जिससे वे समय पर अपनी तथा अपने कुल की मर्यादाओं की रक्षा कर सकें और यदि आवश्यकता हो तो मैदानों में धनु से भी मोर्चा लें। ऐसे सामाजिक व्यवहार भी होते थे जहाँ स्त्री-पुरुष मर्यादा का निर्वाह करते हुए मनोरंजन में निर्बाध रूप से प्रवृत्त हुप्पा करते थे। रैवतक की उपरसका के हथ इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

स्त्रियों की वेद्यभूषा का वर्णन माघ-काव्य में अनायास ही हो गया है। इस सम्बन्ध में पहले कावेरि सिन्हा का कृपा है। संक्षेप में यहाँ बूढ़ाया जा सकता है कि वे कानों में कर्ण पूल पहनती थीं तथा पैरों में नूपुर। करवनी मोतियों की माला तथा कंकण उनके धातुपुष्पों में प्रभुत्व थे। उस समय यह प्रथा अवश्य थी कि स्त्रियाँ पति के बिदेस जैसे ज्ञान पर अपना कंकण उतार देती थीं। (देखिये सर्ग ३ का ६६वाँ श्लोक)। पैरों में महावर का प्रयोग एक सामारण बात थी। घरीर पर कभी लाल जम्दन का शेष भी वे करती थीं। घरीर पर चंदन का जो वर्णन कई जगह पाया है। स्त्रियाँ ललाट पर तिलक लगाती थीं। होठों पर धसते का रंग कपोलों पर सोमप्रपुष्प की रज तथा नेत्रों में ध्वज लगाने की प्रथा दिखलाई पड़ती है (देखिये सर्ग ६ का ४६वाँ श्लोक) स्त्रियों का वेश भी सुन्दर था। वे कुमुद रत्न की बहुत ही बारीक साड़ियाँ पहिनना अधिक पसन्द करती थीं जो यही प्रथा राजमराने की होती। धाम्बून जाती तथा धूप से बचने के लिए कभी-कभी छाया भी लगाती। कंचुकी (काँचलियाँ) तथा महंगा पहिनतीं। लहंगे, घोड़नी काँचसी धातुपुष्प काजल टीकी धातुल कसकटी (करवनी) आदि की प्रथा राजपूत काल की ही है। स्त्रियों को इसी वेश भूषा में माघ ने चित्रित किया है। वैद्यपायन तथा भविरा-यान उस समय के विवाह का चिह्न माना जाता था। मुठ हुप्पा ही करते थे और इन मुठों में सेना के प्रयाण के समय देव्याएँ और भद्रिण अथवा नादियाँ भी बजा करती थीं। इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि देव्याओं का भारतीयों के सांस्कृतिक जीवन में एक विशेष प्रकार का योग रहा है। उस युग में बहु-विवाह की तथा अपरम्परी रखने की प्रथा प्रचलित थी और उच्चभूमिका एवं दासीनता का सामाजिक चिह्न माना जाता था।

माघ के काव्य को देखने से यह भी पता लगता है कि नगरों के रहने वाले लोग जमीन व्यापार करने थे या राज-सेवा पर व्यवसित थे किन्तु गाँवों में तो इति ही प्रधान थी। ग्रामीणों का जीवन उस समय धान-अन्न प्रब था। वे गोबरमृमि में मंडताकार बंटे हुए

विकास संस्था का विधान था। यशोपवीत द्विजगण चारण करते थे। प्रतिदिन सरकार राष्ट्रीय जीवन का विशेष ध्यान था। बड़ों के आगमन पर अपने आसन से उठकर यथायोग्य सरकार के पश्चात् आसनासीन कटवा जाता था फिर मञ्जुरवासी से उनकी कुशल लेम पूछी जाती थी और अपने आपको सेवा के लिए समर्पित करने की बात कही जाती थी। प्रथम सर्व में मारर के आगमन पर श्रीकृष्ण ने, और इन्द्रप्रस्थ की सीमा पर श्रीकृष्ण के पहुँचने पर युधिष्ठिर ने जो आतिथ्य किया है उससे उनके समय के प्रतिदिन-सत्कार का पता चलता है। जमता में कथाचित द्विज और विष्णु दोनों के प्रति ही अधिक भक्ति की मर्यादा थी। जमता में कथाचित द्विज और विष्णु दोनों की भी वह यथावसर पूजा करती थीं। माय ने श्रीकृष्ण को कहीं पर तो द्विज कहीं पर विष्णु कहीं पर कुठ और कहीं पर महावीर आदि का रूप लेकर जनता की सम्भव्यारिभका भक्ति की ओर भी संकेत किया है।

इहत्सव लोग अपने धर्म का यथाविधि पालन करते थे। स्त्रियाँ पुरुषों के पश्चात् रात्रि को शयन करने जाती थीं और पुरुषों के पूर्व ही बाह्य मूर्त में उठ जाता करती थीं। वे अपने पतिव्रत का पूर्णतया पालन करती थीं। सभी प्रथा उस समय कथाचित लोगों पर थी। माय के वर्णों से इस बात की पुष्टि होती है—

हविरभान्निमर्तरि सुय विमसा परसोकमम्पुपगते विविधुः ।

पुवसत स्त्रियः कथमिवेतरया मुक्तमोऽन्यजग्मनि स एव पतिः ॥६-१३॥

वसावसेवाहनुतापि पूर्ववत् प्रवाप्यते सेन जगज्जिगीषुणा ।

सतीव योपितप्रकृतिः सुनिदधता पुमांसमन्येति महास्तरेऽपि ॥१-७२॥

जनता पौराणिक बातों में विश्वास करती थी। अथवार पूजा से उस समय तक बढ मूल हो ही चुकी थी। तीनों का बल पवित्र माना जाता था। उस समय अशुभ अथपशुन का विचार भी लोगों में बहुत था। लोग पुनर्जन्म में हुई विस्वासी थे और वे यह भी मानते थे कि जब-जब भी पृथ्वी पर पाप अथवा अथवाचार बढ़ता है तो किसी न किसी रूप में अथवात् का अथवार हो ही जाता है।

एक गोत्र में विवाह नहीं होता था इसी लिए पति गोत्रभिद् कहा जाता है। विवाह के समय जब विवाहिता पुत्री का पिता और नव-युव-नव को दशसुर अपनी गोत्र में बँटा कर पहनने का आशुपण दिया करती थे। माय ने इस प्रथा का उल्लेख किया है—

रयाङ्गमर्त्रमनर्त्रं वराय यस्या पितेव प्रतिपादिताया ।

प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरंकाभाजो रत्नावसीरम्भुमिराजबन्ध ॥३-१६॥

विवाहित लड़कियाँ जब पतिव्रत जाती थीं तो पिता के समय माता पिता से संबंधी भाव प्राप्त के पड़ोसी भाई बहिन से सब सम्पन्न धाम की सीमा तक पहुँचाने जाता करते थे। लड़की गले में माला बाँधकर रोकर मिलती थी। माता पिता भी अचानक विदाई पर रुक करती। एक कल्याणमय हरण बन जाता। यह प्रथा आज भी हमारे माँही प्रचलित है। माय ने एक स्थान पर इसी बात को व्यक्त किया है—

अपराधकर्मकपरिवर्तनोचिताश्चलितः पुरः पतिमुपेतुमात्मजा ।

अनुरोदितीय कश्यपेन पत्रिणा विस्तेन वरसमतयेव निम्नगा ॥४-४७॥

ये स्त्रियाँ पतिपक्ष में जाकर पर्व में रहती थीं। अश्वपुष्प भी मुख पर हुंभा करता था। लज्जा ही उतका सर्वोपरि भूपण समझा जाता था। एक और पर्व प्रथा का वर्णन माघ ने किया है और दूसरी ओर इन्होंने बताया है कि समरंयण में अपने पति की मृत्यु पर बीरवंताओं ने बीरता पूर्णक अपने प्राणों की आहुति दी है। राजस्थान के बीहड़ के इस्वी को माघ काश्य में पढ़कर स्त्रियों के एक अश्वपुष्प कर्म का वर्णन होता है। बिस्वास के इस प्रकार के अश्वपुष्प संसार में अश्वपुष्प बहुत कम देखने को मिलते हैं।

स्त्रियों को वास्तविकता में शास्त्र-विज्ञा के साथ उत्तम शिक्षा भी दी जाती थी जिससे वे समय पर अपनी तथा अपने कुल की मर्यादाओं की रक्षा कर सकें और यदि आवश्यकता हो तो मैदानों में शत्रु से भी मोर्चा लें। ऐसे सामाजिक व्यवहार भी होते थे जहाँ स्त्री-मुख्य मर्यादा का निर्वाह करते हुए मनोरंजन में निर्वाचन रूप से प्रवृत्त हुंभा करते थे। रैवतक की उपरमका के इत्य इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

स्त्रियों की वेद्यभूषा का वर्णन माघ-काश्य में अनायास ही हो गया है। इस सम्बन्ध में पहले काशी भिखा का जुका है। संक्षेप में यहाँ बुझाया जा सकता है कि वे कानों में कर्ण कूल पहनती थीं तथा पैरों में मूषुर। करघनी मोतियों की माला तथा कंकण उनके मांसुपखों में प्रमुख थे। उस समय यह प्रथा अचरित थी कि स्त्रियाँ पति के विदेश जाने पर अपना कंकण उतार देती थीं। (वेदिये सर्ग ३ का ६२वाँ श्लोक)। पैरों में महाभर का प्रयोग एक साधारण बात थी। छरीर पर कमी माला अम्बन का सेप भी वे करती थीं। छरीर पर घंगराण का तो वर्णन कई जगह आया है। स्त्रियाँ ललाट पर तिलक लगाती थीं। होठों पर घसते का रंग कपोलों पर मोमपुष्प की रज तथा नेत्रों में ध्वज लपाने की प्रथा दिखलाई पड़ती है (वेदिये सर्ग २ का ४६वाँ श्लोक) स्त्रियों का बज भी सुन्दर था। वे कुमुद रस की बहुत ही बारीक साड़ियाँ पहिनती अधिक पसन्द करती थीं जो धनी अथवा राजघराने की होतीं। ताम्बूल खाती तथा भुप से अपने के लिए कमी-कमी छाया भी लगाती। कंबुकी (काँबलियाँ) तथा सहजा पहिनती। सहजे धोइनी काँबली आभूषण, काजल टीकी, ताम्बूल कणकटी (करघनी) आदि की प्रथा राजपूत काल की ही है। स्त्रियों को इसी वेद्य भूषा में माघ ने चित्रित किया है। वेदयागमन तथा मंदिर-यात्रा उस समय के विज्ञास का चिह्न माना जाता था। पुत्र हुंभा ही करते थे और हल युद्धों में सेना के प्रयाण के समय वेदयाई और मंदिर घरी माड़ियाँ भी पला करती थीं। इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वेस्वार्थों का भारतीयों के सांस्कृतिक जीवन में एक विधेय प्रकार का योग रहा है। उस युग में बहु-विवाह की तथा उपपत्नी रखने की प्रथा प्रचलित थी और अश्वपुष्पगीता एवं धार्मिकता का सामाजिक चिह्न माना जाता था।

माघ के काश्य की देखने से यह भी पता लगता है कि नगरों के रहने वाले लोग उद्योग व्यापार करने से या राज-सेवा पर अलग-अलग थे किन्तु गाँवों में तो कृषि ही प्रधान थी। ग्रामीणों का जीवन उस समय आनन्द प्रद था। वे गोबरधूमि में मज्जाकार बैठे हुए

विभिन्न रूप से मनोविनोद किया करते थे । आपस में गप्पें लगाते या नाच-गुनघीर संकीर्त मोष्ठि में भाग लेते थे । भजन बादि का भी शौचों को बहुत प्यार था ।

पुरुषों की वैद्यभूषा के लिए माय ने कहा है कि वे कन्धे पर कुपट्टा रखते और घघोबरन में एक बोली होती थी । पुरुष भी घाघ्रुपण चारण करते थे । उनके गले में मोष्ठियों की माला होती । शिख यज्ञोपवीत चारण करते थे । घरीर पर चिता हुआ बदन चारण करते थे या नह्नी इसका कहीं पर भी भाव कवि ने छल्लेख नहीं किया है और न ही घिरोबरन (पनड़ी या साफे) का वर्णन किया है । उन दिनों पुरुष दाही मूँछ रखाया करते थे और सिर पर चिन्ना (बोटी) होती थी ।

जैसे स्त्रियों में सती प्रथा थी वही भाँति पुरुष भी वामप्रस्थ ब्राह्मण में ऊँचे चिन्ना से चिता पर झूठ कर इस कामना से प्राण त्यागते थे कि उन्हें स्वर्ग में अपसंयमों से बिहार मिलेगा । अतुल्य स्वर्ग के २३वें स्लोक में इस प्रथा का संकेत है ।

उस समय राजस्वसा स्त्री की घोर पुन्य देखा तक नहीं करते थे, स्पष्ट करना तो बुरा रहा । राजस्वसा स्त्री को उन चार-पाँच दिनों प्राय एकान्त जीवन व्यतीत करना पड़ता था ।

इस सबसे मठा चलता है कि समाज में पुरुष का जीवन स्वतन्त्र था वे स्त्रियों पर कस धर्य में निर्भर नहीं थे, जिस रूप में स्त्रियाँ पुरुषों पर निर्भर थीं ।

आशान प्रदान

(क) महाकवि माध पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव

माध माध आशान प्रदान के सहारे अपना विचार करता है। विचारकर वे लोग को सामाजिक होते हैं समाज के लिये बिना समाज को कुछ दे भी नहीं सकते। इन लोगों की आशान-प्रदान की सुविधा निरासी होती है। इनका आशान प्रदानोन्मुख होता है। कवि तो समाज से ही संबन्धना को पाता है यह संबन्धना उसकी अनुभूति बनती है और अपनी अनुभूति को वह समाज की संबन्धना बनाता है। माध तो कवि ही नहीं महाकवि थे। मठ उन पर हमने पूर्व के शार्मिकों तथा कवियों का प्रभाव होना ही चाहिए। वह पण्डित भी थे कवि भी नहीं। इसका अर्थ यही है कि वह दूसरों के विचारों और भावनाओं को यथोचित रूप में अपने विचारों और भावनाओं का अंग बनाते थे उनका यथावसर प्रकाश भी करते थे। हमने तो स्पष्ट है कि माध पर अपने पूर्ववर्ती विचारकों और कवियों का प्रचुर परिमाण में प्रभाव था। यही इसी प्रभाव को बतलाना हमारा प्रयोजन है।

कालिदास के परचात कवियों में भारवि, भट्टी तथा कुमारदास के ही नाम प्रमुखता से लिये जाते हैं। उनमें माध के साथ भारवि और भट्टी का ही नाम अधिक लिखा जाता है। कालिदास के रीति पक्ष (कला-पक्ष) को उनके पीछे जाने वाले प्राय सब ही कवियों ने अपनाया है बस उनकी अनिवार्यता से ही वे तो सभी प्रभावित रहे हैं। माध न कालिदास भारवि दोनों की रचनाओं का सम्मिश्रण अपनाया है। इस सम्मिश्रण की छाया उनकी रचनाओं पर पड़ी है। कहीं-कहीं तो उन्होंने संशोधन भी करना चाहा है। उदाहरणार्थ माध का संशोधन है 'किमु मुहुर्मुहुर्गर्तमर्तु' वा। व्याकरण प्रयोग में वे भट्टी से अधिक प्रभावित हुए हैं।

माध कालिदास से पूर्ववत् प्रभावित है। विष्णुपाल बघ क ११वें और १२वें सर्गों में यह प्रभाव स्पष्टता से लक्ष्य को मिल सकता है। रघुवंश का पाँचवाँ सर्ग जिस किसी ने देखा है उसको सहसा माध के प्रभावपूर्ण को पढ़ते ही रघुवंश का २वाँ सर्ग स्मृतिपथ में प्रतीत हो जाता है। ऐसा लगता है मामो प्रभाव बघ न प्ररणा का श्रोत रघुवंश का पाँचवाँ सर्ग है। (१) १३वें सर्ग में पुर मुन्दरियों का जो वर्णन आया है उसको देखकर कुमार सम्भव और रघुवंश के सातवें सर्ग की स्मृति हो जाती है जहाँ पर विव तथा अय

देखिये—माध ११ ७ तथा रघुवंश २. ७२ ७३।

के वर्णनों की उत्तुल्ल विद्ययां छाई हुई हैं। इनमें मायी में ही समानता हो ऐसा नहीं है किन्तु पदों की भी समानता है। भारवि धीर मर्दि के तो माघ ज़रूरी है ही। भारवि मर्दि माघ को कसापल की धीर प्रवृत्त कर सके तो मर्दी ने उन्हें काव्य में बहुजता के प्रकाश की धीर झुका दिया। यदि हम इन तीन महाकवियों के प्रमाण तक ही सीमित रहें तो यह सरलता से कह सकते हैं कि माघ पर काव्यशास्त्र की उस प्रकृतता का भारवि के भाषा-सौन्दर्य का, धीर मर्दि की बहुजता का प्रमाण है। इस प्रमाण की चर्चा माघ की तुलनात्मक समीक्षा में स्वतः हो जायगी परन्तु यहाँ इतना ही सिखाना पर्याप्त है।

[क] महाकवि माघ का परबर्ती संस्कृत तथा हिंदी काव्य पर प्रमाण—

(१) महाकवि माघ की विस्तारप्रतिमा यम्भीर अभ्यसन सारदाहिंसी प्रवृत्ति तथा माघ का सौन्दर्य इन सबका परबर्ती कवियों पर आश्चर्यकायी प्रमाण पड़ा है।

नरम घटी के प्रसूत में तथा रघवीं घटी के पुर्वांश में काश्मीर में संस्कृत कवियों की एक बाढ़-सी आ गयी थी। मातृमुक्त को स्वयं कवि ने उनके समय में मर्दुमेष्ठ ने हमरीपक्ष सिखा। भीमक को मेष्ठ के कुछ ही समय परकाए हुए जगहोने मर्दि काव्य की रीसी पर राजछाबु नीय महाकाव्य सिखा तथा शिव स्वामी ने कण्ठलाभ्युदय महाकाव्य सिखा। इन्हीं शिव स्वामी के समकालीन हरविजय महाकाव्य के रचयिता रत्नाकर हुए हैं। इन उपर्युक्त कवियों पर भारवि धीर माघ दोनों की छाप स्पष्ट रूप में है। महाकवि माघ की प्रसिद्धि उनकी जीवितकाल में ही पश्चिम्य कवित्व एवं राजसीलता की कथाओं के कारण हो चुकी थी। काश्मीर के पश्चिम तो माघ से परिचित इसलिये भी वे कि वे काश्मीर में बड़े दिन रहे कुंहे ने। रत्नाकर का स्वयं का कहना है कि माघ के काव्य को पढ़ लेने पर भारवि विष्णु भी कवि हो सकता है धीर कवि तो महाकवि बन ही सकता है (यदि विष्णु कवि कविः प्रसादाद्भवति कविरत्न महाकविः ज्ञेयः)। प्रसन्नकार विमर्श के रचयिता ने रत्नाकर की प्रशंसा करते समय माघ के सम्बन्ध में भी यह सिखा है—

माघं विष्णुभानुवर्धं विदधत् कविमदसम् विदधे ।

रत्नाकरः स्वविजयं हरविजयं वर्णयन् व्यवृणोत् ॥

मुण्डरि कवि ने अन्तर्भाव्य नाटक की सात श्रृंखलें में लिखा है जिसमें राजका बंध से लेकर राज्याभिषेक तक की बातें ही गई हैं। इस नाटक में पश्चिम्य का प्रामाण्य है। मुण्डरि महाकवि भवभूति के अनुकामी थे किन्तु उन्होंने भवभूति से परविश्वास ही लिया वे तो महाकवि माघ से ही इनको विनी हैं। माघ उच्च श्रेणी के कवि-हृदय से भरा इस क्षेत्र में वे भारवि को परास्त कर सके। उनके नाटक को पढ़कर कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि माघ की ही भाँति मुण्डरि कवि भी व्याकरणविद पदों का तथा गीतात्मक चन्द्रार्णकारों का प्रयोग करते हैं।

रघु ७ ७ व माघ ११ ११ । रघु ७ ६ तथा माघ ११ ४४ रघु ६ ११ तथा माघ १४ १० । किरत १ १ तथा माघ १ १ ।

छिन्नस्वामी के कण्ठलाभ्युदय (बीड़ महाकाव्य) में काव्यकला का पूरा प्रसार माघ के सिन्धुपालवध में है। माघ की कृति की मानों वह एक प्रतिष्ठावादी ही है। सिन्धुपालवध ने सामान्य के कारण जैसे इस युग के अन्य साहित्यकारों के काव्यों को प्रभावित किया है वैसे ही और और बीड़ काव्यों को भी प्रभावित किया।

हरिश्चन्द्र कवि के 'जीवननगर चम्पू' का जो कथानक है उस पर भी माघ का प्रत्यक्ष प्रभाव देखने में आता है। हरिश्चन्द्र के 'धर्मसर्गाम्बुधय' पर भी इसी तरह माघ की शैली का पूर्ण प्रभाव है। इस काव्य के १६ वें सर्ग में माघ की ही भाँति मित्रासकारों की मरमार है। राहुदूत राजा इन्द्रराज के समसामयिक मित्रिकमन्द ने 'नलचम्पू' तथा महालसा चम्पू' लिखे हैं। इन चम्पू ग्रन्थों में साप्ती छीड़ा बिछेप है। इस छीड़ा पर माघ का प्रभाव दिखाई पड़ता है। श्री हर्ष का नैपथीय चरित २२ सर्गों में नल दयमन्ती के प्रेम और विवाह की कथा का वर्णन करता है। इस महाकाव्य की गणना बृहद्वयी म की जाती है। इनकी रचना शैली माघ की शैली से मिलती जुलती है। उचित नपथे काव्ये नव माघ नव न माघि इस उक्ति से भी माघ का प्रभाव झलकता है। श्री हर्ष के पश्चात् भी माघ का प्रभाव चलता आ रहा है। कलावादी कवियों की सफलता माघ काव्य के अध्ययन से ही हुई है।

माघ भी महाकवि माघ से प्रेरणा पाते हैं। उवाहरणार्थ डाक्टर भोलाचंदर व्यास के मुम्मवध काव्य को देखा जा सकता है।^१

(२) माघ काव्य का प्रभाव हिन्दी काव्य पर भी पड़ा है। हिन्दी के कवियों ने जो संस्कृत साहित्य के अच्छे विद्वान् ने माघ की देखा है सो अपने काव्यों में वैसे ही माघ और शैली ही शैली का सागा प्रारम्भ कर दिया। नीचे हम उन कवियों की कविताओं को उद्धृत करते हैं जिससे उन पर माघ काव्य का प्रभाव उनके काव्य पर बिदित होता है। माघ कवि ने स्त्रियों की कनर के लिए कहा है—

भामृगदमिरमिथो वसिधोचिलोत्तिमानविततांगुलिहस्त ।

सुभ्रुवामनुमवारप्रतिपेदे मुष्टिमेयमिति मध्यममोष्ट ॥१० ५६॥

नायिका की कटि इतनी सूक्ष्म है कि दिखलाई नहीं पड़ती। जिसकी को चारों ओर से जब दूँदा तब कही शिथलों को जाप हुआ कि यह तो मुट्ठी बराबर है।

नीचे के दोहे में बिहारी महाकवि माघ की ही भाँति कनर को प्रसंग बता कर कहते हैं—

सुधि अनुभास प्रभासयुति नियो नीति ठहराई ।

सूक्ष्म कटि पर ग्रहालों प्रसंग सखी नहि जाई ॥

महाकवि कैशवदास यमाजय तथा सैनापति पर माघ शैली का शूब प्रभाव पड़ा है। रामचन्द्रिका का एक कविता है—

१ काशीर-जामुपमदोत्सलितं शरीरं मोक्षा मुदं पनपते पुहिणीमुबेरम् ।

हिल्ला कुबेरमनुरङ्गपति स्म शू लोचनं वरं युगपाशिरता रमय्य ॥१ १५॥

शम्भुचम्पू डा० भोला चंदर व्यास ।

दीरघ दरीन बसे केशोदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बनकरी ज्यों नपत है ।
बासर की सम्पति उसूक ज्यों न भितवस

सिधुपाल जब काव्य के इस श्लोक से इसका भाव मिलता है—

अद्यकनुवन् सोढुमभीरलोचन सहस्ररसमेरिष यस्य दर्शनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निमाय विभ्यद्भिन्नसानि कीदृशकः ॥१५३॥

‘कीदृशक’ शब्द को महाकवि ने व्यर्थक किया है महेन्द्र और उसूक परक धर्म स्वर प्राया हुआ भाव साम्य हो जाता है ।

सेना-पति पर भी भाव का प्रभाव है—

कुचसब रस करि गाह सुर घुनि कहि, गाह मन सतम के त्रिभुवन जानी है ।
वेबन उपाय कीनों यहै भी उसारन की विसँव बरन जाकी सुभा सम बानी है ।
मुबपति रूपगारी पुल्ल सीसहरि, आई सुरपुर से धरनि सियरानी है ।
तीरय सब घिरोमणि सेनापति जानी राम की कहानी गमाभारासी बसानी है ।

उपर्युक्त में सेनापति कवि ने राम की कथा को यंगा जी की बारा के समान वर्णन किया है । एक धर्म तो रामकथा की तरफ समता है और दूसरा धर्म यंगा के पक्ष में है ।

महाकवि भाष ने भी उपर्युक्त धर्म के ११वें श्लोक में रैवतक पर्वत की बड़ी-बड़ी भील का साम्य बास्मीकि की बाणी रामायण से किया है ।

सेना-पति का एक और कवित्त है—

द्विजन की जाये मरजाद झुटिजात मेप, पहिले बरन कीन तन को निधान है ।
धंय छवि सीन झुटिघुनि सुनिये न भुस, सागो जब सार है म नाकहूँ को ज्ञान है ॥
देखिये जवन घोभा धनी जुगसीन माँझ, नामहूँ सौनाते हृदय के सो कों जहान है ।
सेनापति जाये जग आसा ही सौ अटकत, याहि तें बुझापो बसिकास के समान है ॥

उपर्युक्त में बुझाये की बसिकास के पुस्य बटजाया है भाव ने निम्न श्लोक में तटी को बुझावना का रूप दिया है—

अयमति जरठा प्रकामगुबीरसधुविसंविपयोधरोपकटा ।
सततमसुमतामगम्यरूपा परिणत दिगकरिकारतटीबिभर्ति ॥ ४२६ ॥

उपर्युक्त में तटी के किनारे के विशेषणों से बुझावना की भी प्रतीति एक ही साध हो जाती है ।

भाष कवि का नीचे का श्लोक देखिये—

धूमाकारं दधति पुर. सीबर्णं वरुणामैः सहस्रतटे पदयात्री ।
दयामीभूता क्रुसुम समूहेऽप्लीना सीनामासीमिह तरजो बिभ्राणा ॥४-३०॥

घोर उस सेनापति के इस कविता से पित्तवादे—

सास सास टेरू फूँसि रहे हैं विसाल संग, स्वाम रंग भटि मानों मसि में मिसाए है ।

वहाँ मधु काज घाह बैठे मधुकर पूँज मसय पयन उपवन बन घाए हैं ॥

सेनापति माधव महीना में पमास तब देखि देखि भाव कविता के मन घाए हैं ।

घाधे धनुमुसगि मुसगि रहे घाधे मानों विरही वहन काम बवेसा पर चाए हैं ॥

विहारी कवि ने भी फिर 'घर की नूतन पबिक' कृत्यों देखि पमास बन समूह समुझे बचावि । कह कर धाय का जयना बताया है ।

अब पाप कवि के इस श्लोक को देखिये—

रजसेन हारपददल काँधय प्रातसूर्यज निहितकर्णपूरका ।

परिर्वातिसाम्बरयुगा समापतस्वसबीकृतथयणपूरका स्त्रिय ॥ १३ ३२ ॥

यही कृष्ण को देखने की सीधला में किसी स्त्री ने मुखा भासा के स्थान पर करघनी पहनली थी । किसी ने चेहरे पर काम के आभूषण पहिन लिए थे किसी ने घोंघने के हुएदंटे को पहन कर पहनने की छाड़ी छोड़ ली थी किसी ने रत्नों को डकने वाली बोली को जूँबों में पहिन मिया था तो किसी ने काम के कुण्डल को कंघरा के स्थान पर पहन मिया था । अब मही माधव हिन्दी कविता में देखिए—

कोठ कचुकि धँचल छोड़ि यहीं, कोठ जाति धनचलहून लज्जी ।

घर मैसला मारि कसे कटि हार, बपोंसन धवन रेल धँजी ॥

मन मोहिन मोहिनी सी कुवली, मइ मोहित मोहन रूप रंजी ।

कुलकानि लज्जी सब जातिभजी जब कामूर की बन बेनुबजी ॥

कहना न होना कि ऐतिहासिक हिन्दी कवियों ने जो आभूषणों के तथा आभूषणों के वर्णन किये हैं उन पर माधव कवि का ही विशेष प्रभाव है ।

आधुनिक काल में भी अत्यन्तकर प्रसाद ने माधव कवि के समाग ही विजयती में पुष्प की समता कराई है देखिए माधव में—

द्रुतसमीरवली क्षणसलिल व्यवहृता विटपेरिव मंजरी ।

नयनमासनिमस्य नमस्तरोरचिररोचिररोचत बारिदै ॥ १ २८ ॥

प्रसादजी ने अपनी कामायनी में भी यज्ञा के सीन्धु का वर्णन करते हुए कहा है कि नीचे करव में मिपटा हुआ उसका वह नायक घोर सुन्दर धर्बस्फुरित सरीर इस भाँति झीक रहा था जैसे बारलों के कागज में विजयती का गुसाबी फूँन खिला हो ।

नीलपरिचाय

‘अविषाय (देविने कामायनी)

इस तरह परवर्ती संस्कृत और हिन्दी के कवियों पर महाकवि माधव की छाया अत्यन्त रूप से पड़ी है । जिस तरह माधव ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों तथा कवियों से विचार और भाव प्राप्त किये उससे उत्तरवर्ती साहित्यकों को भी अपनी रचना का ज्ञान दिया । इस प्रकार के साक्षात्-अज्ञान का साहित्य-रचना के क्षेत्र में बड़ा भूख है ।

धीरघ वरीन भसे केसोदास केसरी ज्यों,
केसरी को देखि बनकरी ज्यों चपल है ।
बासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत

दिशुपाल जब काव्य के इस श्लोक से इसका भाव मिलता है—

असक्तुबन्धु सोढुमधीरसोचन सहस्ररखमेरिय यस्य दशनम् ।
प्रविश्य हेमाद्रिगुहागुहान्तरं निमाय विम्वह्वितानि कौशिक ॥१२१॥

‘कौशिक’ शब्द को महाकवि ने व्यर्थक किया है महेन्द्र धीर उलूक परक प्रर्थ
ऊपर धाया हुआ भाव साम्य हो जाता है ।

सेना-पति पर भी भाव का प्रभाव है—

कुसुमव रस करि गाह सुर घुनि कहि, भाइ मन सतन के त्रिभुवन जानी है ।
देवन उपाय कीनों यहै भौ उतारन की, विसैंव वरन जाकी सुधा सम बानी है ।
सुवपति रूपधारी पुन सीसहरि, घाई सुरपुर सं धरनि सियरानी है ।
धीरघ सब शिरोमणि सेनापति जानी, राम की कहानी गंगाधारासी बखानी है ।

उपर्युक्त में सेनापति कवि ने राम की कथा को गंगा जी की चारु के समान वर्णन
किया है । एक प्रर्थ तो रामकथा की तरफ लपटा है धीर दूसरा प्रर्थ गंगा के पक्ष में है ।

महाकवि भाव ने भी चतुर्थ सर्ग के १२वें श्लोक में रंगरक्त पर्वत की बड़ी-बड़ी शीत
का साम्य वास्तविकी की बाली रामायण से किया है ।

सेना-पति का एक धीर कवित्त है—

द्विजन को जाये मरजाव छुटिजात भेष, पहिसे वरन बीन तन को निदान है ।
अंग छवि सीन झुतिघुनि सुनिये न मुख, सागी अब सार है न नाकहूँ को ज्ञान है ॥
देखिये जवन शोभा धनी अगसीन मांझ, नामहूँ सोनाते कृष्ण के सो कौं अहाम है ।
सेनापति जाये जग आसा ही सौ भटकत, याहि तैं बुझापो कसिकास के समान है ॥

उपर्युक्त में बुझाये को कसिकास के तुल्य बतलाया है भाव ने निम्न श्लोक में तटी
को बुझावना का रूप दिया है—

अयमति अरठाः प्रणामगुर्वीरसधुविसंविपयोधरोपरुद्धा ।

सततमसुमतामगम्यरूपा परिणत दिवकरिकारतटीविमर्ति ॥ ४२६ ॥

उपर्युक्त में तटी के किनारे के बिसेयणों से बुझावना की भी प्रतीति एक ही छाप हो
जाती है ।

भाव कवि का नीचे का श्लोक देखिये—

भूमाकारं दधति पुर सोबलें वणेंनाम्ने सहस्रतटे पद्मामी ।

रपामीभूता नुसुम समूहेप्सीमां, सीनामासीमिह तरबो बिआणा ॥४३०॥

धीर उस सेनापति के इस कवित से मिलाये—

लाम लाम टेसू फूँति रहे हैं बिसाल संग, स्वाम रंग मटि मानों मति में मिलाए हैं ।

उहाँ मधु काज भाइ बैठे मयुकर पूँज मलय पवन उपवन बन भाए हैं ॥

सेनापति माधव महीना में पसास सर, दसि देखि भाव कविता के मन भाए हैं ।

भाये अनुसुमनि सुसमि रहे भाये मानों बिरही रहन काम बनेवा पर भाए हैं ॥

बिरही कवि ने भी फिर 'बर को गूँजन पथिक' पुस्तो देखि पसास बन समुह समुझे बनावि । कह कर राम का संगना बठाया है ।

अब माधव कवि के इस श्लोक को देखिये—

रमसेन हारपददस कांचय प्रातःसूर्यज निहितकर्णपूरका ।

परिवर्तिताम्बरमुगा समापतन्वसयीकृतयवणपूरका स्त्रिय ॥ १३ ३२ ॥

भी कुण्ड को देखने की पीछता में किसी स्त्री के मुखा माता के स्थान पर करवनी पहननी थी । किसी ने केशों पर काम के धातूपर पथि लिए थे । किसी ने धोवने के रुपट्टे को पहन कर पहनने की छाड़ी छोड़ भी थी । किसी ने रत्नों को इकट्ठी वाली पोसी की जॉनों में पहिन लिया था तो किसी ने काम के कुण्डल को कंकणा के स्थान पर पहन लिया था । अब यही बात हिन्दी कविता में देखिए—

कोठ कपुकि भंषम छोड़ि चमीं, कोठ जाति अनचलहू न सजी ।

गर मेसला जारि कसे कटि हार, कपोलन भजन रेख धंजी ॥

मन मोहिन मोहिनी सी कुवली, मइ मोहित मोहन रूप रंजी ।

कुलकानि लकी सब जातिभजी, जब कान्हूर की बन वेनुचजी ॥

कहना न होया कि ऐतिहासीक हिन्दी कवियों ने जो नायिकाओं के तथा ऋतुओं के वर्णन किये हैं उन पर माधव कवि का ही विशेष प्रभाव है ।

साधुनिक काल में भी जयचंकर प्रसाद ने माधव कवि के समान ही बिजली में पुष्प की समता करवाई है, देखिए माधव में—

द्रुतसमीरचमै दण्डमदित व्यवहिता विटपरिव मजरी ।

नवतमासनिभस्य नमस्तरोरचिररोचिररोधत बारिदै ॥ १ २८ ॥

प्रसादजी ने अपनी कामायनी में भी पछा के सौम्य का वर्णन करत हुए कहा है कि नीले वदन में सिपटा हुआ उसका वह 'नाजुर' धीर सुन्दर अर्धस्फुटित शरीर इस भाँति झोक रहा था जैसे बादलों के कानन में बिजली का गुताली फूँट गया हो ।

बीतपरिमाण

छविपाम (देखिये कामायनी)

इस तरह परवर्ती संस्कृत धीर हिन्दी के कवियों पर महाकवि माधव की छाया व्यापक रूप से पड़ी है । जिस तरह माधव ने अपने पूर्ववर्ती प्राचायों तथा कवियों से विचार धीर भाव प्राप्त किये उससे उत्तरवर्ती साहित्यकों को भी अपनी रचना का साज दिया । इस प्रकार के प्रादान-ग्रहण का साहित्य-रचना के क्षेत्र में बड़ा मूल्य है ।

माघ काव्य पर तुलनात्मक दृष्टि

माघ और प्रबोध

बैते कई स्थानों पर इससे भी पूर्व भी दूसरे कवियों से माघ कवि की तुलना के प्रसंग उपस्थित हुए हैं पर वहाँ जगद्वृत्त कर संक्षेप से इसलिए काम लिया गया कि हमें माघ कवि की दूसरे कवियों की तुलना के लिए एक घटक ही ज्ञान प्राप्त करना था। इस माघ में हम माघ के समकाल कवियों के साथ उसकी तुलना करते। इन कवियों में हमने प्रबोध कालिदास भारवि भट्टी कुमारदास और भीहर्ष को विशेष रूप से लिया है। हम इसी क्रम से यहाँ अपनी समीक्षा प्रस्तुत करते।

प्रबोध का कुछचित २५ सतों में विभक्त एक महाकाव्य है। इसमें भगवान् बुद्ध के जीवन चरित को उनके जन्म तथा शिक्षाओं का आधाय लेकर लिखा गया है। काव्य की दृष्टि से इसका प्रथम पाँच सर्ग और फिर प्रथम और चतुर्थ सर्ग के कुछ संक्षेप हैं। तुल्य और महत्त्वपूर्ण हैं। वेप सर्गों में आत्मिक बातें हैं।

सौन्दर्य १५ सर्गों का एक महाकाव्य है। इसमें काव्य कुछचित की प्रथमा अधिक भावमय है। इस काव्य में भी आत्मिक बातें अधिक हैं।

प्रबोध में इन दोनों ही महाकाव्यों की रचना की थी।

काव्य के क्षेत्र में प्रबोध की स्थिति कालिदास भारवि माघ और भीहर्ष से निम्न प्रकार की है। कालिदास कुछ रसवादी कवि है भारवि तथा उनके वक्ता के कवि माघ को छोड़कर कलावादी सत्कारवादी या समतत्कारवादी है। प्रबोध इन दोनों कवियों में नहीं पाते। इसके काव्यों का उद्देश्य आत्मिक है। कालिदास की भाँति वे काव्यात्मक को काव्य न मानकर साधन ही स्वीकार करते हैं। बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को साधारण से साधारण व्यक्ति तक उपमत्ता से पहुँचाने के लिए उन्होंने काव्य रीति का आधाय लिया है। सौन्दर्य में यह निरुद्ध है इसलिए सीमा १५ १६ वीं मोक्ष के सिद्धान्तों को काव्य के व्यास से इसलिए प्रस्तुत किया है कि साधारण व्यक्ति भी सरल काव्य के सहारे आत्मिक बातों को ग्रहण कर सकें। कट्ट प्रोप को महात्मा में पिनाकर दाने से यह सरलता से घटोर में पहुँच कर रोग को दूर कर देती है। यद्यत् प्रबोध के काव्य का लक्ष्य ही 'अपुण्यमप्ये' है न कि 'रतये'। रीति यन्त्र ही कालिदास जैसी है किमिह हि मधुपर्ण पण्डित नाकटीना'। इससे स्पष्ट है कि प्रबोध सत्कार तथा कलात्मक रीति में अधिक कवि रचने वाले कवि नहीं हैं।

इनकी कसा उपदेशमयी अवस्था भी किन्तु वह कोई नीति के समीकों अवस्था सृष्टियों जैसी नहीं थी। उन्होंने कवि का हृदय धाया था। काव्य में जीवन का जैसा उदात्त दृष्टिकोण होना चाहिए वह इनके महाकाव्यों में है। बौद्ध-मर्यादाओं के कारण इन्होंने जीवन के कुछ भाग को ही एक विशेष प्रकार का रंग देकर अपने काव्य में स्थान दिया है। इस पृष्ठ भूमि में माघ के साथ इनकी तुलना सब धर्मों से नहीं हो सकती।

अश्वमेध की रीति ब्राह्मीक की रीति की भाँति अति सरल है और जगही की भाँति उन्होंने अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग अधिक किया है। माघ की रीति सरल तो है पर समान नहीं। उन्होंने भी द्वितीय और उन्नीसवें सर्गों में अनुष्टुप् छन्दों का ही प्रयोग किया है। सम्पूर्ण विदुषामन्त्र में अन्य छन्दों की अपेक्षा अनुष्टुप् छन्द की श्लोक संख्या अधिक है। वह संख्या २२० है। अश्वमेध के महाकाव्यों के कथानक प्रवाह विस्तीर्ण एवं समुष्ण है। किन्तु माघ का कथानक छोटा है और बल्लियों तथा विजयों के विस्तार को प्राप्त हुआ है। अश्वमेध की मूलतः साम्प्रदायिक रस का ही कवि समझ जाता है, दूसरे रस भी उनके काव्य में अंग बनकर भाये हैं। बुद्धचरित के तृतीय सर्ग के आरम्भ में तथा अनुर्ध्व और पंचम सर्गों में, इसी तरह सोमरस के अनुर्ध्व सर्ग तथा अष्टम सर्गों में शृंगार रस का प्रभाव है। इनके शृंगार रस के बिना बड़े प्रभावोत्पादक है। इन चित्रों में शृंगार का साध्यात्मिक पक्ष अधिक मुखरित है। माघ के शृंगार के बिना ऐन्द्रिय विस्तारमय की लिये हुए है।

अश्वमेध के बुद्धचरित तथा सोमरस दोनों में कदल रस का वर्णन है। माघ के विदुषामन्त्र में कदल रस के लिए कुछोत्तरकाल ही एक अवसर है। इस अवसर का उन्होंने कदल रस के लिए अपेक्षित उपयोग नहीं किया। और रस के वर्णन दोनों के काव्यों में प्रायः समान है।

अश्वमेध की भाषा कोमल तथा सरल है। उसमें बार पाँच छन्दों के अधिक सम्यक् समावेश नहीं है। माघ के समावेश भी प्रायः बार पाँच छन्दों के हैं, कहीं-कहीं ८१० छन्दों के भी हैं, पर उनकी पदरचना अपेक्षाकृत कठिन है। जिस तरह अश्वमेध को प्रहसित और धिक्कृत छन्दों के प्रयोग में अधिक सफलता मिली है उसी तरह माघ को मानिनी छन्द के प्रयोग में विशेष सफलता मिली है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार अश्वमेध महाकाव्य के क्षेत्र में पार्थिव परम्पराओं के प्रवर्तकों में गिने जाते हैं, उसी तरह माघ भी कुछ नई परम्पराओं के प्रवर्तकों में से एक है।

माघ और कालिदास

महाकवि कालिदास अनुर्ध्वहार, मेघदूत कुमारसम्भव रघुवंश आदि रचनाओं के निर्माता हैं। इनमें कुमारसम्भव और रघुवंश में दोनों महाकाव्य हैं। कुमारसम्भव में १७ सर्ग हैं जिनमें अन्तिम ६ सर्गों की प्रागाण्विकता के विषय में कुछ विद्वानों का संदेह है। रस महाकाव्य में कवि ने मानवी रूप में चित्त-मार्बती की प्रणय गाथा गायी है। रघुवंश में २५ सर्ग बताये जाते हैं किन्तु १६ सर्ग ही देखने को मिलते हैं।

माघ और कालिदास दोनों को पौराणिक मान्यताएं प्रथिमत हैं। बरगुप्तिम यम में इनकी यास्वा है। पौराणिकों के अनुसार विष्णु, शिव और ब्रह्मा तीनों एक ही सम्प्रत्य सत्ता के अंग हैं। विष्णु और शिव क यत्त होते हुए भी ये दोनों सर्वदेवमयी सदाय रूपा भक्ति के विरवासी थे। इसी प्रकार की भक्ति कवि में हो भी सकती है। उसमें अपने आराध्य को नमष्टि में व्याप्त देखने की तथा समष्टि को एक व्यक्ति में निहित करने की विद्यामता तथा समता होनी है। जिस प्रकार कालिदास ने राम विष्णुत्व को अवतीर्य दिया है देखिये रघुवंश का अष्टम सर्ग तथा रघुवंश के सिरहों सर्ग का प्रथम श्लोक—‘रामाभिधानो हरि रित्युवाच उवाच प्रकार माघ ने भी बीहृष्ट्य में विष्णुत्व की अवतारण की है देखिये पद्य पासवप में नारद तथा भीष्म की विसृताएं। कालिदास ने जैसे नरहृष्ट्य आदि अवतारों का यथावसर वर्णन किया है, माघ ने भी मुनिहृष्ट्य बराह और राम आदि अवतारों का यथावसर वर्णन किया है।

दोनों कवियों का अध्ययन गम्भीर वा घट दोनों ही के काव्यों में बहुकता का परिचय मिलता है। दोनों की रचनाओं में अतिव्यय पद्युण आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है देखिये रघु १ १३ = १६ २१ माघ २ २६ अन्तर इतना ही है कि कालिदास में बहु प्रयोग सहज प्रतीत होता है और माघ में प्रयत्नगात्र। कालिदास कुछ समबारी हैं किन्तु माघ रसामदारवादी हैं। कालिदास का वस्तुमयान में समुलन है माघ का वस्तु संविधान काव्य कीर्तन का सहायक है। एक में स्वाभाविकता अधिक है तो दूसरे में कृत्रिमता अधिक।

माघ और कालिदास दोनों का प्रकृति वर्णन अपने-अपने ढंग की सुन्दरता को निवे हुए है। दोनों ने ही प्रकृति को धारनवन उदीपन तथा अमस्तुव विधान के रूप में चित्रित किया है। कालिदास के रघुवंश के द्वितीय सर्ग तथा कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग का हिमासय वर्णन प्रकृति के धारनवन रूप का अच्छा उदाहरण है। माघ ने भी रैवटक तथा प्रयाग के वन धारनवन के रूप में किये हैं। कालिदास और माघ में अन्तर यह है कि कालिदास के प्रकृति वर्णनों में अमलंकृत शौन्दर्य का गिहार है और माघ के प्रकृति वर्णनों में अमलंकृत शौन्दर्य का अपमनाहट है। इसके अतिरिक्त माघ के वर्णनों में कहीं-कहीं अधिक स्वानों पर प्रकृति वर्णन कुछ और अमलगाओं तथा यमक अल्प तथा वाच्यों के प्रयोगों से क्लिष्टता का पैदा है पर रघुवंश के नवमसर्ग में जो अलंकृत वर्णन है उसमें कालिदास भी यमक के प्रयोगों में बोझी ढेर के लिए फँस से गये हैं। माघ अधिक फँस गये।

माघ और कालिदास के काव्यों में संवादों का भी अपना एक स्थान है। माघ ने नारद बीहृष्ट्य संवाद प्रथम सर्ग में कुल-सारवर्ग संवाद तथा युनिष्ठिर-भीष्म संवाद, धर्म दान के समय में कराये हैं। कालिदास ने रघुवंश में द्वितीय सर्ग में सिंह-विनीय संवाद सृतीय में रघु-नन्द संवाद पंचम में कौल-रघु संवाद सीताहृष्ट्य में कुल-धयोप्या संवाद है और कुमार सम्भव के द्वितीय सर्ग में ब्रह्मा-देव संवाद तथा पंचम सर्ग में शिव-पार्वती संवाद है। कालि दास न केवल कवि ही हैं किन्तु वह एक सर्वश्रेष्ठ नाटककार भी हैं अतः उनके संवादों में नाटकीयता का जो आकर्षण है वह अग्रिम है। माघ के संवादों में वह आकर्षण नहीं है।

दोनों ही कवियों के समय में काव्य स्त्रियाँ कवि-समय स्थिर हो चुकी थीं। पुर स्त्रियों का वर्णन जैसे अश्वमेध के काव्यों में मिलता है वैसे ही कासिदास तथा माघ के काव्यों में मिलता है।^१

रघुचर के सप्तम सर्ग में हंजुमती का स्वयंवर प्रकरण है। स्वयंवर के परचाह घास न बिबि से बिवाह के लिए बर यात्रा के अवसर पर राजमार्ग से जाते हुए महाराज माघ को समस्त कुवटियाँ अपने गहनों के झरोखों से देखने लगीं। कोई मुग्धा अपनी दाती से मर्बकूट किये जाते जुने केशपाश को झुड़वाकर उन्हें देखने के लिए बस पड़ी। कोई धीमत्ता से मासी लगी मेंहनी को छोड़कर बस पड़ी तो भी तुरन्त ही उसको त्याग कर कोई एक धोप में धोवन पयामे हुए सामने आ जाती हुई। श्लोक है—

प्रसाधिकात्ताम्बिलमधपादमाक्षिप्य काचिद् इवरागमेव ।

उत्सृष्टनीलागतिरागवाक्षादसक्तकाकां पदवीं सतात ॥७-७॥

जासाम्तरप्रपितहृष्टिरन्या प्रस्यामभिन्ना न ब्रह्मन् नीवीम् ।

नामिप्रबिष्टाभरण प्रमेण हस्तेन तम्बापबलम्ब्य वास ॥७-८॥

अर्धांनित्ता सरवरमुत्थिताया पदे पदे दुर्निमित्ते गसन्ती ।

कस्यादिषदासीप्रसन्ना तदानीमंगुष्ठ सूसापितसूत्रदोषा ॥७-९॥

माघ काव्य में अथवा श्रीहृण्ण रैरुक्त पर्वत से प्रस्थान कर यमुना पार हो चुके हैं। सुविधिर अपने भाइयों सहित श्रीहृण्ण की यागमयी के लिए संसार हैं। श्रीहृण्ण वहाँ जाते हैं। उनके साथ सब सोय इन्द्रप्रस्थ में प्रविष्ट हो रहे हैं। श्रीहृण्ण को देखने के लिए समस्त काव्यों को त्याग कर स्त्रियाँ प्रत्येक राजमार्ग तथा बस्ती में एकत्र हो गयीं। उनमें कुछ स्त्रियाँ तो आवा ही शृङ्गार लिए हुए श्रीहृण्ण का देखने के लिए बस पड़ी थीं। उनकी साड़ी बिछफी जा रही या बिछे संभालने के लिए वे अपने हाथों से भीबी पकड़े हुए थीं। अति धीमत्ता के कारण किसी स्त्री ने मुतामासा के स्थान पर करपनी पहनली थी किसी ने केपों पर बान के आभूषण पहन लिए थे किसी ने धोखे के रुपट को पहन कर पहनने की साड़ी छोड़ ली थी किसी ने स्तनों को ढकनेवासी बोली को अर्धों में पहन लिया था। एक मुन्दरी तो अथवा श्रीहृण्ण को देखने की धीमत्ता में अपना शृङ्गार करनेवासी दूती के हाथों से अपने पैर को छुड़ाकर अथवा रंकर की अर्धांगिनी पार्वती की भाँति पीछे ही महावर से रहे हुए एक पैर से भरपीयस पर बिह्व बगाती हुई आकर लड़ो हो गई थी। कुछ स्त्रियाँ तो करपनी के ऊपर ऊपर हिलने धीर बजने से परेताम होती हुई ऊपर चढ़ गई थीं दिये, विमुनाबध—११३ सर्ग से श्लोक १० से १४ तक। माघ ने भी वासिदान की ही भाँति इन्द्रजादू का एक हरय पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है—

अथतोदपास्य चरण प्रसाधिकाकरपन्सवाद्रसबधेन काचन ।

द्रुतायामकपदक्षिप्रिताचनि पदवीं गतेव निरिजा हरापताम् ॥१३-१३॥

१ यह माघ भी बिबाह का विषय है कि अश्वमेध वासिदास के पुत्रवती हैं अथवा वासिदास अश्वमेध के।

कालिदास ने भी महाभारत जयाने की बात कही है और माघ ने भी किन्तु पौराणिक जया का आशय देने से माघ की रचना अधिक ब्यक्त हो गयी। अर्थ का समझना यहाँ अधिक है। दूसरा श्लोक और देखिये—

अग्निवीर्य सायिकृतमङ्गलं यती करकङ्कनीविगमदंशुकाः स्त्रिय ।

दक्षिणैर्भित्ति पटहप्रतिस्वन स्फुटमट्टहासमिव सोमपञ्चम ॥१३ ११॥

कालिदास के 'म बभूव भीमीम्' से माघ के यह 'करकङ्कनीविगमदंशुका स्त्रिय' में कहीं अधिक सौन्दर्य है। एक और देखिये—

रमसेन हारपद्मदत्तकाञ्चन प्रतिमूपखं निहित कणपूरकाः ।

परिवर्तिताम्बरमुग्ध समापतम्वलवीकृतयवणपू का स्त्रिय ॥१३ ३२॥

इस श्लोक में हड़बड़ाहट का बड़ा सुन्दर चित्र है। कवि ने यहाँ माघ के अनुकूल वातावरण भी उपस्थित कर दिया है जिसका कालिदास में अभाव है।

कालिदास घब के पुरी में प्रविष्ट होने का वर्णन कर रहे हैं और तब माघ ने भी कीवृत्त का इन्द्रप्रख नदी में प्रविष्ट होने का वर्णन किया है। इन दोनों के वर्णनों में महाकवि माघ का वर्णन अपेक्षाकृत अच्छा है। कालिदास ने इस वर्णन में ७ श्लोकों का आश्रय लिया है, जहाँ केवल उपर्युक्त तीस ही श्लोकों में इसका वर्णन है और उसमें भी वह यह कह कर समाप्त कर रहे हैं—

ता रायबहुष्टिमिरापिबन्धनो नायों न अश्रुविषयान्तराणि ।

तथा हि शेषेऽग्नयवृत्तिरासां सर्वात्मना बभूवि प्रविष्टा ॥७-१२॥

किन्तु महाकवि माघ ने पुरी प्रवेश के वर्णन को १८ श्लोकों में समाप्त किया है। प्रत्येक श्लोक में ब्यावृत्त चित्रांकन तथा भावार्थ है। स्त्रियों की सहस्र प्रवृत्तियों का यहाँ कुछ मौलुख्य को लेकर वर्णन है। माघ में पूरा समर्थन होता है अपूर्ण नहीं। महाकवि माघ महाकवि कालिदास से इस तरह वर्णन कीछल में पीछे नहीं पड़ते।

कालिदास की उपमाएँ सुन्दर हैं। 'उपमा कालिदासस्य' इस कथन में जरा भी प्राप्ति नहीं। महाकवि माघ भी कहीं-कहीं बड़ा सुन्दर अपरिपुष्ट विधान करते हैं। कालिदास स्फुर्य के द्वितीय तर्ग में मिलते हैं—

तस्याः पुरण्यास पवित्रपांशुपांशुसार्गां पुरि कीर्त्तनीया ।

मार्ग मनुष्येदवरधर्मपत्नी श्रुतेरिवायं स्मृतिरम्वगच्छत् ॥२ २॥

इसकी तुलना में महाकवि माघ के विष्णुप्राप्तव महाकाव्य के तृतीय सर्ग का यह श्लोक प्रस्तुत है।

उदरयमेधंस्तत एव सोममर्षं मुनीर्द्वारिव संप्रणीताः ।

आमोषणामाग हरि पतन्तीर्गदीः समृन्तीर्दमिषाम्बुराणिम् ॥३-७२॥

मैत्रों की मुनियों के साथ, बस की वेदार्थ के साथ नदियों की स्मृतियों के साथ और समुद्र की वेदों के साथ इस इसोक में कितनी सुस्पष्ट एवं सुन्दर लपका है। मुनियों ने भिन्न भिन्न स्मृतियों को मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि वेदों में जो कुछ वर्णन किया गया है उसी के अर्थों के आधार पर ही तो रखा है। जिस भाँति उनकी अन्तिम परिणति वेदों में ही होती है उसी भाँति मैत्रों के समुद्र से ही बल से लेकर वर्षा द्वारा जिस नदियों की रचना की है वे भी अन्त में उसी समुद्र में लीन हो जाती हैं। यही माय कामिदास के ग्रामे बह गये हैं।

इस भाँति न केवल उपमा के प्रयोग में कहीं-कहीं पर माय कवि कामिदास की सम शक्ती रहते हैं किन्तु यमज व स्वभावोक्तिओं के प्रयोग में भी वह अपनी अप्सुप्त कुशलता दिखाते हैं। सब भिन्नाकर कामिदास निश्चय ही माय से बढ़कर हैं पर माय नवित्ता के क्षेत्र में उनसे सर्वथा हीन हों यह कहना माय के प्रति अन्याय है।

कामिदास ने भी महाकर लगाये की बात कही है और माय ने भी किन्तु पौराणिक कथा का प्राप्य सेने से माय की रचना अधिक कमलकृत हो गयी । धर्म का कमलकार यहाँ अधिक है । दूसरा श्लोक और देखिये—

अभिबीक्ष्य सामिहृतमङ्गमं यती करकङ्कनीवीगलसंयुक्ता स्त्रिय ।

दधिरेर्ध्वभिस्ति पटहप्रतिरञ्जने स्फुटमट्टहासामिव सौषण्ड्य ॥१३३॥

कामिदास के 'न बबन्ध मीवीम्' से माय के यह 'करकङ्कनीवीगलसंयुक्ता स्त्रिय' में कहीं अधिक सौन्दर्य है । एक और देखिये—

रमसेन हारपञ्चसकापय प्रतिभूचञ्च निहित कर्णपूरका ।

परिवर्तिताम्बरयुगा समापतम्बसयीकृतश्रवणपू का स्त्रिय ॥१३३॥

इस श्लोक में हृदयकाहट का बड़ा सुन्दर चित्र है । कवि ने यहाँ माय के अनुकूल बातावरण भी उपस्थित कर दिया है जिसका कामिदास में धमाक है ।

कामिदास मन्त्र के पुरी में प्रविष्ट होने का वर्णन कर रहे हैं और उधर माय ने भी बीहप्प के इन्द्रप्रस्थ मणरी में प्रविष्ट होने का बणन किया है । इन दोनों के बणनों में महाकवि माय का वर्णन अपेक्षाकृत अच्छा है । कामिदास ने इस वर्णन में ७ श्लोकों का प्रामय लिया है, उनमें केवल उपर्युक्त तीन ही श्लोकों में इसका बणन है और उधर भी यह यह कह कर समाप्त कर रहे हैं—

ता रामबंहट्टिभिरापिबन्धो मार्यो न अमुविषयमास्तरणि ।

तमा हि शोपेन्द्रियवृत्तिरासा सर्वात्मना अक्षुरिव प्रविष्टा ॥७-१२॥

किन्तु महाकवि माय ने पुरी प्रवेश के वर्णन को १५ श्लोकों में समाप्त किया है । प्रत्येक श्लोक में धर्मावत् विचारक तथा भावार्थ है । स्थियों की सहज प्रवृत्तियों का यहाँ कुछ धोरमुनय को लेकर वर्णन है । माय में पूछ, समर्थन होता है प्रयुक्त नहीं । महाकवि माय महाकवि कामिदास से हम तरह वर्णन कौशल में पीछे नहीं पड़ते ।

कामिदास को उपमार्ग सुन्दर है । 'उपमा कामिदासस्य' इस कथन में जरा भी प्रायुक्ति नहीं । महाकवि माय भी कहीं-कहीं बड़ा सुन्दर अप्रस्तुत विचार करते हैं । कामिदास रघुवंश के द्वितीय सर्ग में लिखते हैं—

तस्या गुरम्यास पवित्रपांशुमपांशुसामां धुरि बीर्त्तनीया ।

मार्ग मनुष्येन्द्वरधमपत्नी युतेरिषार्ये स्मृतिरम्बगच्छत् ॥२२॥

इसकी तुलना में महाकवि माय के धिगुपामवध महाकाव्य के तृतीय सर्ग का यह श्लोक प्रस्तुत है ।

उडयमेधमस्तत एव तोयमर्थ मुनीर्द्धरिव संप्रणीता ।

प्रासोक्त्यामास हरि पतन्तीर्दसी रघुवीर्ध्वमिबाम्बुरादिम् ॥३-७७॥

मेघों की मुद्रियों के साथ, जल की वेदार्य के साथ, नदियों की स्मृतियों के साथ और समुद्र की वेदों के साथ इस वसोक में कितनी सुस्पष्ट एवं सुन्दर उपमा है। मुद्रियों के विभिन्न स्मृतियों को समुद्रमुद्रि या जलवस्त्र स्मृति धारि मेघों में जो कुछ वर्णन किया गया है उन्हीं के घर्षों के आधार पर ही सो रचा है। जिस भाँति उनकी सन्निध परिस्थिति वेदों में ही होती है उसी भाँति मेघों में समुद्र से ही जल से फैलकर वर्षा द्वारा विभिन्न नदियों की रचना की है वे भी वास्तव में जहाँ समुद्र में सीम हो जाती हैं। वहाँ मात्र कानिवास से धावे बढ़ गये हैं।

इस भाँति न केवल उपमा के प्रयोग में कहीं-कहीं पर मात्र कवि कानिवास की समझाया रखा है किन्तु यमक व स्वभावोक्तियों के प्रयोग में भी वह अपनी अद्भुत कुशलता दिखाते हैं। अब निम्नांक कानिवास निरूपण ही मात्र से बढ़कर है, पर मात्र कविता के क्षेत्र में उनसे सर्वथा हीन हों यह कहना मात्र के प्रति अन्याय है।

कालिदास ने भी महाभर लगाने की बात कही है और माघ ने भी किन्तु पीछाछिछा कथा का आशय लेने से माघ की रचना अधिक समझल हो गयी। अर्थ का समझदार यहाँ अधिक है। दूसरा श्लोक और देखिये—

अग्निवीक्ष्य सामिहृतमहमं यती करकृन्मोविगलस्युका स्त्रिय ।

दधिरेर्द्राभस्ति पटहप्रतिस्वनं स्फुटमट्टहासमिव सीमर्षक्य ॥१३॥ ३१॥

कालिदास के 'न बभन्ध मीवीम्' से माघ के यह 'करकृन्मोविगलस्युका स्त्रिय' में कहीं अधिक सौन्दर्य है। एक और देखिये—

रमसेन हारपद्मस्तकीचय प्रतिमूषज निहित कर्णपूरका ।

परिचिताम्बरयुगा समापतग्वसयीकृतश्रवणधू का स्त्रिय ॥१४॥ ३२॥

इस श्लोक में हृदयहाट का बड़ा सुन्दर चित्र है। कवि ने यहाँ माघ के अनुकूल बातावरण की उपस्थिति कर दिया है जिसका कालिदास में अभाव है।

कालिदास अज के पुरी में प्रविष्ट होने का वर्णन कर रहे हैं और उधर माघ ने भी भीरुपक्ष के इन्द्रप्रस्थ नगरी में प्रविष्ट होने का वर्णन किया है। इन दोनों के वर्णनों में महाकवि माघ का वर्णन अत्यन्त श्रेष्ठ है। कालिदास ने इस वर्णन में ७ श्लोकों का आशय लिया है, उनमें केवल उपर्युक्त तीन ही श्लोकों में इसका वर्णन है और उसमें भी वह यह कह कर समाप्त कर रहे हैं—

ता रायवंदृष्टिमिराविबन्धो मार्यो न जग्मुर्विषयास्तराणि ।

तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासौ सर्वात्मना जगुरिव प्रविष्टा ॥७॥ १२॥

किन्तु महाकवि माघ ने पुरी प्रवेश के वर्णन की १७ श्लोकों में समाप्त किया है। प्रत्येक श्लोक में अथावत् विनाशक तथा भावोक्त है। स्थियों की सहज प्रसूतियों का यहाँ कुछ भीतुल्यता का नकर वर्णन है। माघ में पूरा अमर्षक होता है अपूर्ण नहीं। महाकवि माघ महाकवि कालिदास से इन तरह वर्णन कीशल में पीछे नहीं पड़ते।

कालिदास की उपमाएँ सुन्दर हैं। 'उपमा कालिदासस्य' इस कथन में बरा भी प्राप्त नहीं। महाकवि माघ भी कहीं-कहीं बड़ा सुन्दर अश्वस्तुत विमान करते हैं। कालिदास रघुवीर्य के द्वितीय सर्ग में लिखते हैं—

तस्याः पुरभ्यास पवित्रपासुमर्षामुमानां पुरि कीलमीया ।

मार्गं मनुष्येद्वारपर्मपत्नी श्रुतेरिवार्यं स्मृतिरम्बगच्छत् ॥८॥ २॥

इसकी तुलना में महाकवि माघ के विमुपासक महाकाव्य के तृतीय सर्ग का यह श्लोक प्रस्तुत है।

उठश्यमेधैस्तत एव सीममय मुनीर्द्रविष संप्रखोता ।

प्राप्तोकयामास हरि पठन्पीडंती रघुनीर्वैमिवाम्बुराशिम् ॥१॥ ७४॥

भैरों की मुद्रियों के साथ, लल की वैद्यार्थ के साथ, गरिबों की स्मृतियों के साथ और समुद्र की बैरों के साथ इस लोक में कितनी सुस्पष्ट एवं सुन्दर उपमा है। मुद्रियों ने मित्र मित्र स्मृतियों को मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति आदि बैरों में जो कुछ वर्णन किया गया है उन्हीं के धरों के आधार पर ही तो रचा है। जिस भाँति समकी अन्तिम परिणति बैरों में ही होती है उसी भाँति भैरों ने समुद्र से ही लल के लेकर वर्षा द्वारा जिन गरिबों की रचना की है वे भी अन्त में उसी समुद्र में लीन हो जाती हैं। यहाँ मात्र कामिदास से माने बढ़ गये हैं।

इस भाँति न केवल उपमा के प्रयोग में कहीं-कहीं पर पाप कवि कामिदास की सम रक्षता रहते हैं किन्तु समक व स्वभावोत्तिष्ठों के प्रयोग में भी वह अपनी अद्भुत कुशलता दिखाते हैं। सब भिन्नकर कामिदास निरर्थक ही पाप से बढ़कर हैं, पर पाप कविता के क्षेत्र में उनसे सर्वथा हीन हों यह कहना पाप के प्रति सम्पाद्य है।

माघ और मारवि

'माघरत्न औरवय' इस कृति के साथ महाकवि मारवि संस्कृत काव्य क्षेत्र में प्रविष्ट हैं। किरातार्जुनीय महाकाव्य मारवि की कृति को माघ भी प्रशस्त किये हुए हैं। किरातार्जुनीय जिस कृति मारवि का एक मात्र काव्य है उसी कृति सिधुपालवध भी माघ का एक मात्र काव्य है। इन दोनों काव्यों को आलोचना पड़ जाने पर पाठक के हृदय में स्वतः यह भावना उभित होती है कि माघ कवि पर मारवि का बिठना प्रभाव पड़ा है, उसमा घोर किनी कवि का नहीं पड़ा।

माघ का सम्बन्ध बहुत था। मुक्ति कृति के दम्पक माघ ने पूर्वाचार्यों से कीर्तन दर्शन, कामिदास से माघ राजमा मारवि से जापा हीतुव यष्टि से पांडित्य बंदी से पद साहित्य की प्रेरणा प्राप्त की और इस प्रेरणा के उत्पन्नरूप इन पुण्यों से समन्वित सिधुपाल वध महाकाव्य की रचना की। इस कार्य में माघ मारवि के भी ऋणी हैं। मारवि भी प्रकाश पंडित से। उनकी कविता में पांडित्य का जो स्वस्व विस्मयी पैदा है वह माघ की कविता में वर्य विकास को प्राप्त हुआ है।

यह बात समझने योग्य है कि माघ मारवि को अप्रत्यक्ष करना चाहते थे और इसी लिए उन्होंने मारवि की कला का सम्बन्ध मुखाव रूप से किया। कवि अपने समय की स्थिति सामाजिक वा राजनैतिक का एक मुखर चित्रकार होता है। यद्यपि इन दोनों कवियों के काव्यों में तरकामीन सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति का प्रतिबिम्ब है। उसे देखने से ज्ञात होता है कि मारवि के समान ही व्येता माघ का समाज अधिक विभाषी है। दोनों के समय की राजनैतिक स्थिति में भी थोड़ा ना समतल है। मारवि में पांडित्य प्रदर्शन के पदरे नहीं हैं जो माघ के काव्य में हैं। मारवि की कवि सम्बन्धियों की ओर है। किरात के पौरवों से भी यमकों की तथा पम्पहों से भी योमूत्रिकादि जग्यों की रचना में कवि ने अपना बंदुत्व निज साया है। कवि के मूल के विना मनुष्य माघ से जो शब्दार्थकार रचना में आ जाते हैं उनके छोटे रन का स्थापना नहीं होता पर जहाँ यमकादि रचना प्रयत्न साम्य होती है वहाँ इसकी प्रयुगता नहीं रहती। मारवि की रचना में दोनों ही बातें मिलती हैं। इसलिए कुछ माघ में इसकी प्रयुगता है ता कुछ में उसकी गोलता ही नहीं विमुक्ति भी। महाकवि माघ के विषय में भी यही बात है। रीतगुरु पर्वत के बर्णन का कुछ माघ यमकों में है। यद्यपि यो पूरा यमक है। उन्मीगरीं उर्ध्व चित्रबंध काव्य के मन्मनों में जरा पड़ा है। ऐसे रक्तों में या तो माघ कवि ने मारवि से होड़ लगा कर बाजी जीतने का ना प्रयत्न किया है और सम्भूति

मुख भी तो करना था। अतः यदुर्बलियों का जो रैतक पर पड़ाव वाला वह पहले तो प्रायः माने बिन घोर एक रात का है। और इस पड़ाव में संभिकों के मनोबिन्दु से सम्बन्ध रखने वाली बातें अधिक हैं। इन बातों की उस समय की मनःस्थिति को देखते हुए एक सामरिक महत्त्व है। फिर इन सबसे प्रबन्ध काव्य के लक्षणों की संगति हुई है। इन्हीं वर्णनों के सहारा माय भारवि को दीखे हकेलने में भी समर्थ हुए हैं। इस विषय में विस्तृत प्रकाश पहले वाला था चुका है।

माय और भारवि दोनों ने और रस को प्रधान और शृङ्गार रस को मौख रूप में लिया है। विष्णुपान बच में वाचनामय शृङ्गार का रस संभिकों के मनोबिन्दु की दृष्टि से अधिक उपयुक्त है जबकि भारवि का शृङ्गार वर्णन परिस्थिति के अनुसार बितना आवश्यक था उससे कहीं अधिक विस्तार था था है। वह धर्मन को लक्ष्यभट्ट करने के उद्देश्य से बिलत सा भी हो गया जान पड़ता है। दोनों काव्यों के सम्बन्ध से इन शृङ्गार चित्रों में भारवि की अपेक्षा माय की अनुसूति की सीधता अधिक स्पष्ट हुई है। चित्रांकन की दृष्टि से जैसा पहले कहा गया है माय का प्रकृति वर्णन न केवल भारवि से बल्कि दूसरे और भी बड़े कवियों से अधिक सूक्ष्मता को लिये हुए है।

‘माने सति बयो मुलाः। महाकवि माय में कामिवास और भारवि के दोनों के गुणों का होना कुछ विद्वानों ने बतलाया है। यही नहीं किन्तु दोनों में माय को ही विभिन्न भी कहा है। महाकवि माय के जैसे उज्ज्वल कोटि का परलानिरय अन्ध नही मिलता। माय के संयोग शृङ्गार के वर्णन बनका वैविध्य उनमें व्याप्त बिलासों की व्यञ्जना पर-शंकुति आदि ऐसी बातें हैं जिन्हें भारवि की रचना में ढूँढना व्यर्थ था है। हाँ महाकवि भारवि का सा सर्व पाम्मीर्य को विशेषकर पहले तीन सर्गों में है महाकवि माय में अधिक नहीं मिलता। शोषरी भीम एवं मुनिष्ठिर के से संवाद उच्चमूख ही अन्ध बहुत कम देखने को मिलते हैं। केवल इस बात को छोड़कर दूसरी बातों में माय भारवि से कहीं आगे बढ़े हुए हैं।

इसी प्रसंग में माय और भारवि के साम्य की ओर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। चित्रातार्जुनीय में पाण्डवों के निकट बेदम्यास घाते हैं और पाण्डवों को कर्तव्य का पाठ पढ़ाते हैं विष्णुपान बच काव्य में भी माय के गारुड रूप के समीप घाते हैं और विष्णुपान को मारने की बात कहते हैं। किरात में शोषरी मुनिष्ठिर और भीम के संवादों में राजनीति भर दी है तो विष्णुपान बच काव्य में भी कृष्ण बजराम और उद्यम के संवाद में राजनीति भी ही वर्णन है। भारवि ने हिमालय पर्वत के वर्णन में यमक की छटा बिखलाई है तो महा कवि माय ने भी रैतक पर्वत के वर्णन में एक से एक निरासे यमकों का प्रयोग किया है। विष्णुपान बच में भारवि वृत्त किरात की ही गति सभी ऋतुओं का एक ही साथ प्रावृत्ति हुआ है। किरातार्जुनीय काव्य में धर्मन के निकट किरातवेपथारी सिव का वृत्त संवेद्यार्थ भाता है तो विष्णुपान बच में भी कृष्ण के निकट विष्णुपान का वृत्त भाता है इस बात का संदेह बने के लिए कि आपकी कुछ धमीष्ट है अथवा विष्णुपान में साथ साथ करना। किरात का पन्धरी और विष्णुपान बच का उज्ज्वलता सर्व दोनों ही चित्रकाव्य हैं। किरातार्जुनीय के आरम्भ में ‘धियः बुक्कणामधिपस्य पासनीम्’ और विष्णुपान बच के आरम्भ में ‘धिय पति भीमति

साहित्य बचत् लिखकर दोनों ने 'श्री' नाम को अपनाया है। यही नहीं भारवि की ही भाँति महाकवि माघ ने भी प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में सवनीयायक छन्द 'श्री' का प्रयोग किया है। इसी तरह दोनों महाकाव्यों में शत्रु वर्जन भय वर्जन प्रवासवर्जन, वर्षत सौन्दर्य वर्जन पुष्पाक्षत वर्जन वसन्तपेड़ा वर्जन साकशाभ वर्जन रात्रि वर्जन गुरुतपेड़ा वर्जन वासना प्रमान ही हैं। इन वर्णनों को लाभानुसार दोनों महाकाव्यों में इस तरह देखा जा सकता है।

१ किरात १ १ २५ श्लोक शिशुपाल १

२ किरात १ १ २, ३ शिशुपालवध २

३ किरात ४, ६ शिशुपाल ४

४ किरात ५ शिशुपाल ४

५ किरात ८ से २६ श्लोक शिशुपाल ७

६ किरात ८ २ से ३७ श्लोक शिशुपाल ८

७ किरात २ १ से ५० श्लोक शिशुपाल ८

८ किरात ६ ५१ से ७८ श्लोक शिशुपाल १०

इस साम्य^१ से यह पता चलता है कि माघ भारवि को इनहीं के जैसे प्रकरण लेकर अपने वर्णन बीजब से श्रीविहीन करना चाहते थे। इसे नकल न कहकर प्रविस्तरा कहना ही अधिक संभव होगा। भारवि जैसे कवि की रचना को हस्तगत करना माघ जैसे अनुमनी और विद्वान् कवि के लिए ही सम्भव था। नीचे के कुछ श्लोक इसी कथन की पुष्टि में प्रस्तुत किये जाते हैं जिनमें जैसे तो ऐसा विचाराई पड़ता है मानों माघ ने भारवि से आशय ही ग्रहण नहीं किया किन्तु योंही से हैर-केर के साथ भारवि की पदावली को अधिगत रूप में बैठा ही रत दिया है। रसम ही कहा सकते कि इस हैर-केर में बमत्कार है, घोरित्व है तथा प्रस्तुत करने की चेत्ती भी कुछ और ही है—

विशोकनेनैव तयामुना युने कृतं कृतापरोक्षिनिर्वाहतां ह्यसा ।

तथापि धुमपुच्छं मरीमसीनिरोज्ज्वाला श्वेयसि केन तुप्यते ॥ माघ १ २६ ॥

निरास्पदं प्रवक्तुं ह्यस्मिन्मस्मात्स्वधीनं किमु निस्पृहाणाम् ।

तथापि कस्मात्करीं गिरं ते मां श्रोतुमिच्छा मुखरी करोति ॥ भारवि ३-६ ॥

हस्तमम सम्प्रति हेतुरेप्यत धुमस्य पूर्वाधिरिते कृतं धुमे ।

क्षीरोरमाभा भवदीय वर्धनं व्यनक्ति कालनित्यैरपि योग्यताम् ॥ माघ १ २६ ॥

भियं विकर्षत्यपहृस्यमानि श्वेयं परिस्तोति तनोति कीर्तिम् ।

सर्वतनं सोकगुरोरमाध तवात्मयोनेरिव किं न वसे ॥ भारवि ३ ७ ॥

विगतसस्यविषयसमपट्टमत्कसमगोपदधूर्तं भृगवजम् ।

धुतठदीरितकोमसगीतकम्पनिमिषेर्नमिषेक्षणावधत ॥ ६-४६ माघ ॥

१ कालिदास के कुमारतंजय से भी शिशुपालवध के कुछ श्लोक भारवि-माघ के श्लोकों के अंशों की भाँति मिल रहे हैं देखिये—कुमार ३ ५७ और माघ १ ११ कुमार ६ २२ और माघ १ २३, कुमार ६-७७ और माघ १ ३६ ।

कृतावधानं जितब्रह्मण्यनी सुरक्तगोपीजनगीतमिन्स्यने ।

इदं जिबत्सामपहाय भूयसीं न शस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम् ॥भारवि ३॥

माघ और भारवि दोनों की तुलना में कम इस बात पर दिया जाना चाहिए कि भारवि के देश में प्रवेश करके कवि ने जो कुछ किया है उसका क्या और कितना मूल्य है कवित्व की दृष्टि से कलाकार की दृष्टि से और एक महापंडित की दृष्टि से माघ भारवि से माये बढ़ने से कितने और कहाँ तक सफल हुए हैं। वस्तुसाम्य और विषय-साम्य तो एक आधार है जिसे महाकवि माघ ने जान बूझकर अपनाया है ।^१

माघ और भट्टि

हमने पहले कहा है कि जिन कवियों से माघ को प्रेरणा मिली उनमें सबसे बड़ा महाकाव्य के रचयिता भी एक थे। इसलिये माघ की रचना में भट्टि की रचना का प्रतिबिम्ब पड़ा है जो बिल्कुल स्वाभाविक है। नीचे इसी बिम्ब प्रतिबिम्ब को स्पष्ट किया गया है। भट्टि का एक श्लोक है—

नव स्त्री विपद्मां करजां नवबलो दैत्यस्य खैसेन्द्र सिन्धुविशासम् ।

संपश्यतेतद् सुसदां सुनीतं विमेव तैस्तन्नरसिंहभूर्ति ॥१२ ५६॥

मर्म—स्त्रियों से खड़े जा सकने वाले नव कहाँ ? और बहुत पर्वत के पत्थर के तुल्य हिरण्यकशिपु की छाती कहाँ ? फिर भी देवताओं की इस योजना को देखो नृसिंह की भूर्ति माने हरि ने जैसे नर्तकों से जैसे बल-स्पर्ध को विधीर्ण कर जाला ।

माघ ने भी इसी बात को नीचे के श्लोक में प्रकट किया है —

सटाच्छटाभिन्नधनेन विभ्रता नृसिंह संहीमतनु तनु रवया

स मुग्य काम्नास्तनसग मंगुरदरोविदार प्रतिचस्क्रे नखे ॥१ ४७॥

मर्म—हे नृसिंह ! आपने भट्टि विद्याल सिंह का शरीर धारण कर अपनी जटाओं से बालों को सिद्ध-भिन्न करके अपने गर्कों से उन गर्कों के जो विशास समय में स्त्रियों के कठोर स्तनों के मर्दन करने पर हुए बाँटें वे उस दैत्य के बल-स्पर्ध को जीत जाला ।

इन दोनों श्लोकों में माघ-साम्य है। इस साम्य के होते हुए भी उपस्थापन यही एक बिम्ब ही प्रकार की है। भट्टि में हिरण्यकशिपु के बल का भेद्य उन हारे हुए देवों की योजना को दिया जबकि माघ ने जिसको भेद्य प्राप्य है उसी को पूरी यथा के साथ दिया है। माघ में बल न से भीदृष्ट की घनत्व शक्ति की ध्वजना होती है। जो भी दृष्ट विनाश में विमोह रह सकते हैं वही समय पहले पर उस रूप धारण कर दैत्यों का सहार भी नर सकते हैं वही मर्तों को उस शक्ति से अधिक विश्वास होता है उनको अपने प्राप्य की महामहिमता का बोध होता है ।

१ बाप्य के दोष वाले प्रकरण में दोनों की तुलना के योग्य पर्याप्त सामग्री है ।

यह कहना ठीक ही है, भट्टि सहज कवि न थे। वह तो महावीर्यकरण थे। उन्होंने भट्टिकाव्य की रचना भी इसी उद्देश्य से की थी कि विद्यापीं सरसता से व्याकरण को सीख सें। उनकी रचना से कुछ उपायार्थ प्रस्तुत किने जाते हैं—

प्रयास्यतां पुण्यवनाय जिहयो रामस्य रोक्षिष्णु मुनस्य धृष्णु ।

प्रेमातुर कृत्स्नजितास्त्रधास्त्र सध्यङ् रतं धर्मसि सकमण्डपम् ॥१-२५॥

सोऽप्येष्ट वेदास्त्रिदशानयस्य पितुनताप्सीत् सममस्त बभूवुः ।

एवमेष्ट पश्यन् भरस्त नीलो समूलघातं म्यवसीदगीदृष ॥१-२॥

वति ब्रह्मणे ब्रह्मणिर्मममे, ब्रह्मेभ्युनं वेत्यकुलं विजिग्ये ।

कल्पान्तदु स्या वसुधा तबोहे, येनैव भारोऽर्थि शुक्ल सस्य ॥२-२६॥

सत्तु जङ्गाम् ममानुवच ममृमुत्तव परस्वघान् ।

असंभक्तं समासेभेवचसे भूमुजे पये ॥१३-२२॥

रामस्य क्षयितु भुक्त अभिपत हसित स्थितम् ।

प्रकान्तं च मुहु घृष्टा ह्यूमन्त व्यसर्जयत् ॥१८-१२५॥

अमुडिवा सहस्राक्षं क्लिप्तित्वा वीतार्त्तनिवे ।

उदित्वाल चिरं परमात् सेवा घाता विनिमिता ॥७-२६॥

मुदित्वा धमदं पापो मां गृहीतवानसद् द्विदत् ।

तां वरित्वेव दाक्रेण घात संकामुपेक्षिताम् ॥७-२७॥

अनर जिह्योः जिह्यु का पटी ए.ब रोक्षिष्णु कृष्ण रूप ब्रह्माधुसार नि कम् घृष्ण पातुओं के साथ मनु इच्छुष् तथा प्रकृत्यों से हुये हैं। इन तीनों का प्रयोग वाक्छीत्य अर्थ में किया जाता है। वास्तविक भेद को दिखाने में लिए ही कटाक्षित् भट्टि ने ऐसा किया है। यही इस श्लोक का व्याकरण के अनुसार मिलाने का भट्टि का बौध्दिक है। 'तामाम्ब्रूते मुक्' का प्रयोग भी दूसरे श्लोक में देखने ही योग्य है जहाँ पर मन् धीर रम् घातु एक धीर ध्यात घाकृष्ट करते हैं क्योंकि घातु धीर त्रिह् प्रत्यय के मध्य 'ह' का प्रयोग न होने से न् धीर म् दोनों अनुस्वार में परिणत हो जाते हैं। इसी भीति मन् घातु के यक्षित न होकर व्यष्ट होमा। 'यताप्सीत्' रूप हुआ। जबतीसवें श्लोक में सभी क्रिया रूप कर्मवाच्य के 'परोत्तमृते तिद्' हैं। प्रत्ययों का प्रयोग भी करके किया गया है जहाँ पर तुमुन क धीर तथा के प्रयोग पाये हैं।

इस भीति महाकवि भट्टि के महावीर्यकरण होने की बात पाठकों के सम्मुख रखी है। भट्टिकाव्य में इस भीति स्थान स्थान पर व्याकरण संबंधी बातों के नाम प्रवृत्ति प्रत्यय नाम वातु तथा समास आदि उदाहरण दिये। यह प्रयत्न की बात है कि इस तरह व्याकरण को मुख्य स्थान देकर तथा क्या को मोल रखते हुए भी भट्टि ने अपने काव्य में गौरवता नहीं माने थी। भट्टि ने तो व्याकरण के बौध्दिक का ही अपने महाकाव्य में अधिक प्रयोग किया है किन्तु माघ ने सिन्धुपातत्रय काव्य में उन्ने प्रयत्न प्राप्त करके व्याकरण का ही नहीं धनक

प्रम्य घात्यों का प्रयोग किया है। सभीघर्षों सर्व में बिज काव्य में उनको घात्यों के बनाने में व्याकरण को व्याकरण का आशय देना पड़ा है। अर्थात् भट्टि की भाँति व्याकरण को समझाने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि समझा उद्देश्य भिन्न था। वह था एक ऐसे महाकाव्य की रचना करना जो बिज तरह धीरे कवियों की रचना से प्रसस्त हो उसी तरह भट्टि जैसे कवियों की रचना से भी उत्तम हो। भाष की भट्टि से यह निष्पत्ति और है कि वहाँ भट्टि ने किसी प्रयोग को किया कर दिया, उसके सम्बन्ध में कोई बात नहीं रही जबकि भाष ने काव्य शैली में उसे समझाया है उदाहरणार्थ—

उद्धतान्ध्रियतस्तस्य निघ्नतो द्विसयं ययुः ।

पानार्थं क्षिरं घातौ रक्षार्थं भुवनं घरा ॥१६१०३॥

यहाँ 'पानार्थ' इस शब्द से घाटी बीच समझ दी गयी है।

निपातित सुहृत्स्वामिपितृभ्यः भ्रातृ मातुभ्यम् ।

पाणिनीयमिदमासौकि धीरस्तत्समराधिरम् ॥१६७२॥

इसी तरह यहाँ 'निपातित' शब्द घाटी बीच को समझाया है। इस प्रसंग में कवि के व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उसको यहाँ पर भी जोड़ा जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भट्टि महाकाव्य सिख कर भी व्याकरण ही कहता है जबकि भाष व्याकरण होते हुए भी महाकवि के प्रसस्त पद पर घाटी है।

भाष और कुमारदास

जानकी-हरण काव्य के रचयिता कुमारदास के जीवन में सम्बन्ध में अभी इतिहासज्ञ ठीक-ठीक जानकारी नहीं दे पाये हैं। कहा जाता है वह कालिदास के मित्र थे। सिंहरी अनुश्रुति के अनुसार कुमारदास इसी नाम का सिंहल का एक राजा था। कुमारदास नाम के एक राजा ने गिस्दिह वहाँ पर ११७ से १२९ ई० तक राज्य किया था। यह भी अनुश्रुति है कि कालिदास का वैशाखान सिंहल में हुआ और इस मित्र-शाय के पतनम्बन्ध कुमारदास ने सजीव चित्राटोहरण किया।

कुमारदास के महाकाव्य जानकी-हरण पर महाकवि कालिदास की काव्यकला का प्रभाव स्पष्ट है। उनकी शैली तथा वस्तु-विन्यास कालिदास की शैली और वस्तु-विन्यास से मिलते हैं। जानकी-हरण के अनेक स्थल रघुर्वंश के १२ वें सर्ग से मिलते हुए हैं। इस बात में भी कोई सन्देह नहीं है कि कुमारदास को नाटिकावृत्ति का ज्ञान था जो ११० ई० के घाट नाथ लिखी गई थी। ज्ञान को कुमारदास का ज्ञान था क्योंकि बाण ८०० ई० के लगभग ने कुमारदास के काव्य में मिलने वाले 'अनु' शब्द के प्रारम्भ में प्रयोग की निम्ना की है। उसने जिस श्लोक को उद्धृत किया वह अर्थात् जानकी-हरण के उस भाग का है जो घट मिलता नहीं है। यह संभव है कि कुमारदास भाष का पूर्ववर्ती हो क्योंकि भाष का एक स्मृति में

जानकी-हरण के एक श्लोक की प्रति-ध्वनि है,^१ पर काल कल्पना से यह बात संभव नहीं मान्य होती। राजसेखर को समय २०० ई० तक वे अपने काव्य में लिखते हैं—

जानकीहरणं कृतुं रघुबरो स्थिते सति । कवि कुमारदासस्य रावणस्य यदि क्षमः ।

राजसेखर ने अपनी काव्य जीर्वासा में कुमारदास को धन्य लिखा है।

जानकी-हरण २० सर्गों में बीहर्मी सेनी में लिखा गया है।

२ जानकी-हरण में कुमारदास ने संयत होकर अनुप्रासों का प्रयोग किया है। माघ कवि की भाँति यही शब्दार्थकारों का बाहुल्य नहीं है। बयक के एक प्रयोग का उदाहरण है—

अतनुनातनुना धनदाक्षमि स्मरहितं रहित प्रदिषक्षुणा ।

हचिरभाचिरभासितवर्त्मना प्रसञ्चिता क्षयिता ननुबोपिता ॥ कुमारदास ॥

माघ के नीचे के दो श्लोकों में धाये बयकों से इसकी तुलना की जा सकती है—

क्रान्तबचा कांचनप्रमाणा नवप्रभाबाभभूता मणीनाम् ।

यितं शिलास्यामसताभिराम सताभिरामात्रितपदपद्माभिः ॥ ४३ माघ ॥

राजीवराजीवससोसमृषे मुप्यन्तमुप्यं सतिभिस्तक्षुणाम् ।

क्रान्तसवान्ता सलना सुराणां रक्षोभिरक्षाभितमुद्धन्तम् ॥ ४६ माघ ॥

कुमारदास का काव्य-शौचवं कहीं-कहीं घटि चकट है। उनकी सेनी में प्रदुग्ध सरिता तथा धन्य में अनुपम रमणीयता है। पहले पर ऐसा बयता है मानो रघु की बर्बा हो रही हो। राम के बालकपन का चित्र है—

न स राम इह क्व यात इत्यनुयुक्तो बनिताभिरयतः ।

निज हस्तपुटावृतागतो विषयेष्ठीक निसीममर्मकः ॥

नीचे के श्लोकों में कानिदास की छाया दर्शनीय है—

पुष्परत्नाभिभवैर्येन्येति स विभूषयति राजनन्दने ।

दर्पणं तु न अकाशं यापितां स्वामिसम्भव फलं हि मण्डनम् ॥

कैतवेन कसहेषु मुप्यता स क्षिपन्वसनाभातसाध्यसः ।

ओर इत्युदित हासविभ्रमं सप्रयस्मपत्तद्वितोऽधरे ॥

कुमारदास के चित्रक का एक उदाहरण है—

पदपङ्क्तौ मम्मपवाणपातं दाक्षो विधातु न मिमीस चक्षुः ।

ऊरु विधात्रा हि कृतौ कथं ताविरपात तस्यां सुमतेवितकः ॥

नीचे के श्लोकों में भारवि का प्रभाव है—

१ जानकी हरण ३ ३४ माघ २ २८ । ११११वाँ सर्ग की ४३वाँ श्लोक ।

सम्यग् वाचों का प्रयोग किया है। सभीसर्वे सर्व में बिना काव्य में उनको वाचों के बनाने में व्याकरण को व्याकरण का आशय देना पड़ा है। उन्होंने मट्टि की जाति व्याकरण को समझने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उनका बहुस्य भिन्न था। वह था एक ऐसे महाकाव्य की रचना करना जो बिना छन्द और कवियों की रचना से प्रचलित हो सही तरह मट्टि जैसे कवियों की रचना से ही चलता हो। माघ की मट्टि से यह निष्कर्षता और है कि वहाँ मट्टि ने किसी प्रयोग को किया कर दिया, उसके सम्बन्ध में कोई बात नहीं रही जबकि माघ ने काव्य शैली में उसे समझाया है अष्टाहरखार्च—

उद्यतान्द्रिपतस्तस्य निम्नतो द्वितयं ययुः ।

पानार्थं चधिरे घाटी रक्षार्थं सुवर्णं चरा ॥१६१०३॥

यहाँ 'पानार्थ' इस वाक्य से सारी चीज समझ दी गयी है।

निपातित सुहृत्स्वामिपितृभ्य भक्तु मातुमम् ।

पाणिनीयमिवाभौकि धीरैस्तत्समरुचिरम् ॥१६१०३॥

इसी तरह वहाँ 'निपातित' वाक्य सारी चीज को समझाया है। इस प्रसंग में कवि के व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश आता गया है। उसको यहाँ पर भी जोड़ा जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मट्टि महाकाव्य लिख कर भी बँबाकरल ही कह सकते हैं जबकि माघ बँबाकरल ही है हुए भी महाकवि के प्रचलित पर पर प्राचीन है।

माघ और कुमारदास

बानकी-हरण काव्य के रचयिता कुमारदास के जीवन के सम्बन्ध में अभी इतिहासज्ञ ठीक-ठीक जानकारी नहीं दे पाये हैं। कहा जाता है वह कामिदास के भिन थे। बिहारी प्रभु कुंठि के अनुसार कुमारदास इसी नाम का सिहन् था एक राजा था। कुमारदास नाम के एक राजा ने निम्नलिखित वहाँ पर ११० के १२६ ई० तक राज्य किया था। यह भी अनुसूति है कि कामिदास का देहावसान सिहन् में हुआ और इस भिन-व्यय क कलम्बकम् कुमारदास ने सजीव चित्राचोहल किया।

कुमारदास के महाकाव्य बानकी-हरण पर महाकवि कामिदास की काव्यकला का प्रभाव स्पष्ट है। उनकी वंसी तथा वस्तु-विन्यास कामिदास की वंसी और वस्तु-विन्यास से मिलते हैं। बानकी-हरण के अनेक स्थल रघुवंश के १२ में सर्व से मिलते हुए हैं। इस बात में भी कोई शन्देह नहीं है कि कुमारदास को कामिकावृत्ति का ज्ञान था जो १५० ई० के बाद प्राप्त मिला गई थी। कामन को कुमारदास का ज्ञान था क्योंकि वाचम् ५०० ई० के लगभग ने कुमारदास के काव्य में मिलने वाले 'चलु' शब्द के धारम्भ में प्रयोग की निम्ना की है। पहले निम्न श्लोक को उद्धृत किया वह वराहमिह बानकी-हरण के उस माघ का है जो घन मिलता नहीं है। यह संभव है कि कुमारदास काव्य का पूर्ववर्ती हो क्योंकि माघ क एक श्लोक में

जानकी-हरण के एक श्लोक की प्रति-रूपि है, पर काम कल्पना से यह बात संगत नहीं मान्य होती । राजदेवर को समय २०० ई० तक से अपने काव्य में मिलते हैं—

जानकीहरणं कृतुं रघुवशे स्थिते सति । कवि कुमारदासद्वय रावणद्वय यदि क्षम ।

राजदेवर ने अपनी काव्य मोर्चा में कुमारदास को धन्य भिजा है ।

जानकी-हरण २० सर्गों में बीसवीं शैली में भिजा गया है ।

२ जानकी-हरण में कुमारदास ने संयत होकर अनुशासों का प्रयोग किया है । भाव कवि की भाँति वही शब्दांतकारों का बाहुल्य नहीं है । यमक के एक प्रयोग का उदाहरण है—

प्रतनुनातनुना धनदाक्षिन् स्मरहितं रहितं प्रदिपसुणा ।

अभिरभाधिरभासितवरमना प्रक्षयिता खयिता ननुदापिता ॥ कुमारदास ॥

भाव के नीचे के दो श्लोकों में भाये यमकों से इसकी तुलना की जा सकती है—

कान्तिकृपा कांचनवप्रभाजा नवप्रभाजासभृता मणीनाम् ।

श्रितं क्षितास्थामसताभिराम सताभिराममितयदपदाभिः ॥ ४३ माध ॥

राजीवराजीवसलोमय य मुष्पन्तमुष्पं सतिभिस्तद्वृणाम् ।

कान्तसकान्ता ससना सुराणां रक्षाभिरक्षोभितमुद्रहन्तम् ॥ ४४ माध ॥

कुमारदास का काव्य-शौचवै कहीं-कहीं घटि सकता है । जानकी शैली में अद्भुत सरलता तथा छन्द में अनुपम रमणीयता है । पढ़ने पर ऐसा लगता है मानो रस की वर्षा हो रही हो । राम के बालकपन का चित्र है—

न स राम इह नम यात इत्यनुमुखो वनिताभिरप्रत ।

नित्र हस्तपुटावुत्ताननो विदधेभ्नीक मिसीनमर्मक ॥

नीचे के श्लोकों में कालिदास की छाया सर्वगीम है—

पुष्परत्नाविभवययेप्सितं सा विभूषयति राजनमन्दने ।

दर्पण तु न चकोश योयिता स्वामिसम्भव ध्वं हि वन्दनम् ॥

कैतवेन कमहेषु सुप्तया स क्षिपम्बसनामातसाध्वस ।

भोर इत्युदित हासविभ्रम सप्रमत्तमवलङ्घितोऽधरे ॥

कुमारदास के विलोक का एक उदाहरण है—

पदपद्महरो मम्मयबाणपातैः धाको विधातु न मिमीम यतु ।

ऊरू विधात्रा हि कृतौ कथ तावित्यास तस्या सुमधवितक ॥

नीचे के श्लोकों में भारवि का उदाहरण है—

१ जानकी हरण १ ४४ माध ४ २६ । ११११वीं सर्ग की ४२वाँ श्लोक ।

प्राप्तेयकामप्रियविप्रयोगक्षानेव रात्रिः क्षममागसाव ।
जगाम मन्दं विवसो वसन्तकूरातपश्चात्स्म इव क्रमेण ॥
वासन्ति कस्माद्युक्थयेम भानोर्हेमन्तमासोवयं हृत्प्रभावम् ।
सरोरुहामुखतः कंठकेन प्रीत्येव रम्यं बहसे वनेन ॥

बसु घोर इव का प्रयोग पंक्ति में प्रथम ही साणा दोष पूर्ण माना गया है। वामन ने बसु के प्रयोग के लिए इस भांति लिखा भी की है।^१

दूसरे, छठे घोर वसवें में जानकी-हरण में अनुष्टुप् का प्रयोग है। ग्यारहवें में द्रुत विलम्बित दैर्घ्य में प्रमिताक्षर। इन्द्रवज्रा की उपचाति साक्षात् पहले तीसरे घोर छठवें में प्रयुक्त है। पाँचवें नवें, बारहवें घोर तीसरे में वसन्त वीतालीय बीधे घोर रबोद्धता आठवें में है। इनके प्रतिरिक्त छांदस विक्रीडित वसन्तसिमका प्रविष्टि विस्तरिणी, झगड़, पुष्पिवाधा, धर्हियाणी सम्पादकान्ता भामिनी का भी इतर छपर प्रयोग है।

कुमारदास माधुर्य और रस के प्रवाह में वामिदास के प्रति निकट हैं किन्तु बंटे देखा जाये तो मारवि से परचात् के घोर माध के पूर्व के हैं।^२ यम-तम सम्बन्धकारों का प्रयोग तथा छन्दों की विविधता में तो माध का कुमारदास से साम्य है। जो सरसता और सरसता कुमारदास में है वह माध में नहीं है, घोर जो पांडित्य तथा रसातकारमयता माध में है उसका कुमारदास में अभाव है।

माध और भी हर्ष

भी हर्ष के सम्बन्ध में यह सूक्ति संस्कृतियों के मुख पर रखी है—जड़िते नैपथे काव्ये नव माधः नव न मारवि । भी हर्ष महाकवि माध के बहुत ही परचात् के कवि हैं।

इनके मुख के विषय में किसी भांति की उत्तमन नहीं है। उन्होंने अपने काव्य में काव्यकुम्भेरवर राजा जयचन्द्र राठीर के लिये लिखा है कि 'सावृत्तव्यमासनं न सज्जते यः काव्यकुम्भेरवरदा' इससे मही सिद्ध होता है कि भी हर्ष कवि सन् ११९६-१२ ई० तक तो थे ही। महाकवि माध के लगभग ३०० वर्ष परचात् यह काव्य जगत में प्रविष्ट हुए थे। इनकी म ६ रचनायें हैं। यह अश्लेष पंक्ति से। इनका यद्यपि काशीर में इनकी जीवितावस्था में ही प्रसारित हो चुका था।

नैपथ में २९ शर्ष में नव वसवों की प्रेम और विवाह की कथा सरस रीति में बड़ी गयी है। नैपथ में दम्भ और शर्ष की विविधता है। काव्य में मुख्य नियम भी अपेक्षा धानु र्षिक विषयों के वर्णन की घोर कवि का ध्यान अधिक रहा है। वहीं-वहीं को भावों की पुनरावृत्ति दो-दो बार भी हुई है। काव्य प्रकाश के दिक्कत सम्मत में इस काव्य के विषय में

१ जानकी हरण १३ का ३६ किन्तु माध २ का ७० में प्रयोग बिभ्रुल डीक है क्योंकि वहाँ पर बसु का रूप बसव के रूप है।

२ वास्टर इन्दिया ३ का ३३ माध २० का ४७ : जानकी-हरण १ का ४।

एक बार कहा जा कि यदि काव्य प्रकाश के सपथ सत्तासत्रिसमें दोषों का वर्णन है, को सिसने के पूर्व यह बन्ध मित बना होता तो दोषों के उदाहरण ब्रह्म में मुख्यो इतना प्रवास नहीं करना पड़ता । उदाहरण सरलता से मित चाते । इस कथन में व्युत्पत्ति है । यह बात धरदय है कि नैयय काव्य की बहुत सी भुटियों के कारण धार्य महाकाव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि उसमें तो शृङ्गार का एकाधी स्वरूप ही ब्रह्म का मितता है । मानव जीवन के बहुविध स्वरूपों की धर्मिकता उसमें नहीं है । कथावस्तु तथा धर्मिक विषय भी उच्च कोटि के नहीं हैं । मौलिकता उसमें नहीं के बराबर है । धर्मिकता तथा दुर्लभ कल्पनाओं से यह काव्य धीरे भी बहिन हो गया है । इन भुटियों के हटते हुए भी इस महा काव्य को ब्रह्मत्व में मितता उसकी विद्याकायता का प्रभाव ही माना जाना चाहिये ।

इस महाकाव्य पर माय काव्य को धार स्पष्ट है । इस विषय में बड़ी सिध्दा भीष्ट है । महाकवि माय ने पदनामित्य का र्वसा स्वरूप छठे सर्ग में सिद्धावा है प्रथम मितता कटिन है । भी हर्ष के भी पद-विषय धीरे धीरे कौसस सिद्धावा है । ब्रह्म विद्या 'वर्धित पदनामित्य' न कह कर 'नैयय पदनामित्य' कह कर इनके पद नामित्य की बड़ी प्रशंसा करते हैं । यह कुछ धर्मों तक नहीं भी है । धर्मप्राप्त का चमत्कार तो वास्तव में नैययधर्मिक में ही रहने को मितता है । धार्यमें सर्ग से तीन श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

तत्रावनीन्द्रधर्मचन्दन शङ्खसेपनेपथ्य गन्ध बहुगन्धबह्वप्रदाहम्
धासीमिरापतदर्मपराशनुसारी सकृन्ध सौरभमगाहस भु गवय ॥११ ५॥
उत्तु गमगममृदगनिनादर्भगीसर्वाधुवाद विधिबोधितसाधामेधा ।
सौधस्रज प्लुतपताकतयामिनित्युर्मन्त्रे धनेषु निजतोद्वयद्वितत्वम् ॥११ ६॥
सोकेषकेसव सिक्कामापि यद्वधकार शृङ्गारसान्तरमृगान्तरदान्तरमावान् ।
पचैन्द्रियाणि जगतामिपुपचकेन संक्षोभयन्वितनुता वितनुमु द व ॥११ २५॥

इन श्लोकों के पद साहित्य की तुलना माय के पद नामित्य से नहीं हो सकती । यह धनुषापन नहीं है । माय के सम्मुख यह पद नामित्य कीका पद जाता है । इस विषय में पहले विस्तार से चर्चा की जा चुकी है । माय का समासात्पदविषय इनकी धर्मों की धीरे धर्मिक बन्धीर तथा उदात्त बना देता है । नैयय काव्य के २६ वें सर्ग में धर्मिकों का जो बहान है वह माय के ११ वें सर्ग के वर्णन से मितता है । माय धीरे भी हर्ष दोनों श्लोक के बड़े श्रेणी हैं । पर नहीं भी माय के श्लोकों में ही वैशिष्ट्य है ।

उदाहरणार्थ—

हस्तविषयासहितधर्मकामिनं द्विजैन्द्रकान्तं मितवसासं प्रिया ।
सत्यानुरक्त मरकस्य जिह्वाभा गुरुगुणा शार्ङ्गिणाम्बवातिषु ॥१२-३॥ माय
देव पतिविदुषि । नैययराजगत्या मिर्षायिते न किमु न प्रियते भवत्या ।
माय मम सखु तथाति महानसामो यद्येनमुग्धसि यर कतर परस्ते ॥

॥ १३ ३४॥ नैयय

इन दोनों स्त्रियों में माघ के स्तेय का स्वल्प कुछ घोर ही है । माघ में सम्य विन्यास का भगना वृषक ही चीन्मय है जिसे भी हर्ष में बूझना व्यर्थ है । माघ के धनकार प्राय स्तेय का सहारा लेकर धाते हैं फिर भी माघ में कुछ स्त्रियों के भी पर्याप्त उपाहरण मिलेंगे ।

प्रभात बर्णन में माघ ने जैसी कवित्व शक्ति का परिचय कराया है नैषध के प्रभात बर्णन में वह बात नहीं । राजाओं के यहाँ पर बंदीगण किस रूप से प्रभात बेता का बर्णन करते हैं वैसा बर्णन नैषधकार ने किया है । माघ भी रूप बड़ी उपस्थित कर रहे हैं किन्तु दोनों की मिथता तथा श्रेष्ठता को तो सहस्रम मात्रक ही जान सकते । तुलना के लिए वो कथाहृत्स है—

निमि दशमितामासिगन्त्या विषबोधिचित्सुभिनिपद्यवसुधामीनांस्य प्रियांकनुपेयुप-
श्रुति मधुपदसम्बैरङ्गो विभावितभाषिकस्फुटरसमुद्राभ्यक्षा वैतासिकैर्जगिरे यिर.

॥ १९ १ ॥ नैषध ।

श्रुतिसमधिकमुष्णं पंचमं पीडयन्त सततमूपमहीमं भिन्नकीकृत्य पद्मम् ।

प्रणिजगदुरकाकुभाषकस्निग्धकंठा परिणतिमिति गजेमागवा माघबाय

॥ ११ १ ॥ माघ

श्री हर्ष मूल में शृङ्गार-रत्ना लज्जा के कवि हैं । माघ में विलासिता के दो बासना मय शृङ्गार के बिज हैं जिनमें माघ का आधिपत्य है । श्री हर्ष ने वात्स्यायन के कामसूत्रों का पूरा धक्की तरह अध्ययन किया है वह तो उनकी रचना से स्पष्ट हो जाता है पर उसके जीवन में कुछ तरह उतार कर रखा जाता है इसमें वह कम कुशल है । नैषध के १८ वें सर्ग में दत्त कीदारी के प्रतिरिक्त काम विमोह के बहुत से बिज हैं और सप्तम सर्ग में मन्मथिष्ठ बर्णन भी प्रायः इसी प्रकार का है । सोनहूँ से मैं धक्कीलता अधिक है । नैषध काव्य में विमलमशृङ्गार का बर्णन हुआ है पर उसकी खबरना मर्मस्पर्शी नहीं करती । माघ में तो विमलम के धक्का है ही नहीं ।

श्री हर्ष के प्रथम सर्ग के बीड़ों का बर्णन माघ के धनक बर्णन से नीचे ढंग का है । धनक धातक का वही परिचय अधिक है और भदनों का बर्णन बहुत कम । माघ की स्वभावोत्पत्ति और सुलिया दोनों ही श्री हर्ष से ऊँची हैं । इसी तरह श्री हर्ष ने १९ वें सर्ग में सुवीरव तथा २२ वें सर्ग में सुवीरव बर्णन जो किया है उससे स्पष्ट है कि इन बर्णनों में वह माघ के आली है । २१ वें सर्ग में दयावतार का जो वर्णन है वह माघ के १४ वें सर्ग में भीष्म द्वारा की गयी कृष्ण की स्तुति प्रत्यय में किये गये धनकरी के बर्णन का अनुकरण सा है ।

उत्तेय में चाहे माघ की धपेता भी हर्ष का कथानक बहुत बड़ा है और धनमें शृङ्गार के संदीप और विषय दोनों पक्षों के लिए पर्याप्त धक्का है फिर भी श्री हर्ष उसका लाभ नहीं उठा पाये । माघ रत और धनकार दोनों ही दोनों में श्री हर्ष से कहीं अधिक ऊँचे पड़े हुए हैं ।

माघ पर अनुकरण का बोध

कुछ प्रासंगिकों की सम्मति में महाकवि माघ की रचना मौलिक न होकर अनुकरणत्मक है। यह सम्मति विचारणीय है।

महाकवि माघ विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने साहित्य शास्त्र के प्रतिष्ठित पुराण, महाभारत, गीता आदि अनेक ग्रन्थों का सविधि अध्ययन किया था। माघ के युग में कवि बनने के पूर्व कवि को अनेक शास्त्रों अथवा शास्त्रों या महाकाव्यों का गहन अध्ययन या अवलोकन आवश्यक होता था तभी कोई कवि पंडित समाज में आदर पा सकता था। कवियों में कामिदास का नाम अग्रगण्य है और काव्यों में माघ काव्य विष्णुपातबच का नाम। एक अन्धे कवि में जिन-जिन गुणों की आवश्यकता होती है कदाचित् उन्हीं गुणों से युक्त होने के कारण कामिदास ही कवि विरोमणि अथवा कविकुल गुरु बहुमाये और काव्य में जिन गुणों का होना अनिवार्य है वे सब गुण माघ कवि के काव्य में हैं अतः माघ काव्य की प्रसिद्धि हुई।

जब शास्त्रज्ञता एक कवि से अपेक्षित हो तो उसके काव्य में उसका परिचय स्वाभाविक रूप से होगा। काव्य में इस प्रकार का परिचय अनुकरण नहीं कहलाता। विष्णुपातबच में महाकवि माघ की अध्ययनशीलता का परिचय है। भारवि के किरातानु गीप को तो उन्होंने मलरघु पड़ा है। उनकी शैली उनकी ही कथावस्तु लेकर उनकी अवस्था करना उनका ध्येय था माधुर्य होता है। वह भारवि का अनुकरण नहीं भारवि का एक प्रकार में संशोधन था है। भारवि के उन्हीं अथवा अर्थों भावों अथवा धर्मकार्यों को लेकर माघ ने उनमें एक अपूर्व चमत्कार पैदा किया है। यदि केवल इतीति माघ को भारवि का अनुकर्ता कहा जायगा तो फिर वह बोध तो बड़े-बड़े कवियों के सिर पड़ेगा। क्या संस्कृत क्या हिन्दी क्या उर्दू तथा क्या बिदेसी भाषाएँ सभी भाषाओं के कवि इस बोध से भाषित न होंगे? तुलसी के रामचरितमानस में अयोध्या रामायण, भीमदमागवत्, प्रसन्नरामचंद्र, गीता प्रसन्नरामायण आनन्द रामायण उत्तर रामचरित कुमारसंभव चंपूरामायण आदिभ्यः नीति अर्चुहरिपठक गुणनीति हितोपदेश आदि ग्रन्थों के अनेक श्लोकों का अनुवाद सा है। उदाहरणार्थ—

सद्यः पुरीपरिसरेऽर्ष निरोपमृदो, सोढा जवाद् त्रिजगुणसि पदानि गत्वा ।

गन्तव्यमद्य किमदित्यसहृद् ब्रूवाणा, रामाश्रुणु कृतवती प्रथमावधारम् ॥६३४॥

बासुरामायण

इन दोनों स्तोत्रों में माघ के स्तोत्र का स्वल्प कुछ और ही है। माघ में धर्म विम्वार का घटना पूरक ही सौम्य है जिसे श्री हर्ष में बूढ़ता व्यर्थ है। माघ के धर्मकार प्रायः स्तोत्र का सहाय लेकर धाते हैं फिर भी माघ में कुछ स्तोत्रों के भी पर्याप्त उदाहरण मिलेंगे।

प्रभात वर्णन में माघ ने जैसी कवित्व शक्ति का परिचय कराया है नंदन के प्रभात वर्णन में वह बात नहीं। राजाओं के यहाँ पर बंदीगण किस हंसे से प्रभात वेला का वर्णन करते हैं वेला वर्णन नंदनकार ने किया है। माघ भी कम नहीं उपस्थित कर रहे हैं किन्तु दोनों की मित्रता तथा श्रेष्ठता को तो सहज मान्य ही जान सकते हैं। तुलना के लिए दो उदाहरण हैं—

निधि दशमितामासिगन्त्या विषवोविधिरसुभिनिपद्यबसुधामीनाकस्य प्रियाकमुपेयुः।
श्रुति मधुपदस्रग्बेदवो बिभाषितमाविकस्फुटरसमृणाभ्यक्त बंतासिकर्जंगिरे गिर.

॥ १६ १ ॥ नंदन ।

श्रुतिसमयिकमुक्त्वा पंचमं पीडयन्त सततमुपमहीनि भिन्नकीकृत्य पद्मम् ।

प्रणिजगदुरकाकुप्रावकस्मिन्वकंठा परिणतिमिति गन्धमागवा भाषणाय

॥ ११ १ ॥ माघ

श्री हर्ष मूल में शृङ्गार-कला सज्जा के कवि हैं। माघ में विलासिता के वे वाचना-मय शृङ्गार के विन हैं जिनमें माघ का भाषिक है। श्री हर्ष ने वात्स्यायन के कामसूत्रों का पूर धरती तरह धर्मयन किया है यह तो उनकी रचना से स्पष्ट हो जाता है पर उसके जीवन में किस तरह उतार कर रखा जाता है इसमें वह कम कुशल हैं। नंदन के १५ वें सर्ग में रति प्रीति दोनों के प्रतिरिक्त काम विम्वार के बहुत से विन हैं और सप्तम सर्ग में नवविन वर्णन भी प्रायः इसी प्रकार का है। सोमहर्षे स विन वसतीसता अधिक है। नंदन काव्य में विम्वार-शृङ्गार का वर्णन हुआ है पर उसकी संवेदना नर्मस्पर्शी नहीं करती। माघ में तो विम्वार के धर्मकाय है ही नहीं।

श्री हर्ष के प्रथम सर्ग के चौदहों का वर्णन माघ के धर्म वर्णन से नीचे हंसे का है। धर्म धारण का नहीं परिचय अधिक है और धर्मों का वर्णन बहुत कम। माघ की स्वभावोत्थिता और श्रुतियाँ दोनों ही श्री हर्ष से ऊँची हैं। इसी तरह श्री हर्ष ने १६ वें सर्ग में सूर्योदय तथा २२ वें सर्ग में सूर्यास्त वर्णन जो किया है उससे स्पष्ट है कि इन वर्णनों में वह माघ के ऊँची हैं। २१ वें सर्ग में वसन्ततार का जो वर्णन है वह माघ के १४ वें सर्ग में भीष्म द्वारा भी गयी दृष्टि की श्रुति प्रसंग में किये गये धर्मतारों के वर्णन का अनुकरण सा है।

संक्षेप में जाहे माघ की धर्मता श्री हर्ष का कथानक बहुत बड़ा है और उसमें शृङ्गार के संदीप और विम्वार दोनों बातों के लिए पर्याप्त धर्मकाय है फिर भी श्री हर्ष उसका जान नहीं पाये। माघ उस और धर्मकार दोनों ही क्षेत्रों में श्री हर्ष से नहीं अधिक ऊँचे पड़े हुए हैं।

माघ पर अनुकरण का दोष

कुछ शास्त्रिकों की सम्मति में महाकवि माघ की रचना मौलिक न होकर अनुकरणात्मक है। यह सम्मति विचारणीय है।

महाकवि माघ विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने साहित्य शास्त्र के प्रतिष्ठित पुरुष, महाभारत, सीता आदि अनेक ग्रन्थों का समीक्षित अध्ययन किया था। माघ के युग में कवि बनने के पूर्व कवि को अनेक शास्त्रों अथवा काव्यों या महाकाव्यों का गहन अध्ययन या अवलोकन आवश्यक होता था तभी कोई कवि पंथित सभा में भावर या सकता था। कवियों में कालिदास का नाम अवश्य है और काव्यों में माघ काव्य सिधुपासबध का माघ। एक अच्छे कवि में जिन-जिन गुणों की आवश्यकता होती है कदाचित् उन्हीं गुणों से युक्त होने के कारण कालिदास ही कवि चिरोत्तर अथवा कबिष्ठुम गुण कहनाये और काव्य में जिन गुणों का होना अनिवार्य है वे सब युक्त माघ कवि के काव्य में हैं अतः माघ काव्य की प्रतिष्ठा हुई।

जब शास्त्रज्ञता एक कवि से अपेक्षित हो ती उसके काव्य में उसका परिचय स्वाभाविक रूप से होगा। काव्य में इस प्रकार का परिचय अनुकरण नहीं कहलाता। सिधुपासबध में महाकवि माघ की अध्ययनशीलता का परिचय है। भारवि के किरावाबु नीय को तो उन्होंने भ्रमरघा पड़ा है। उनकी घौसी, उनकी सी कबाबस्तु लेकर उनको अपयस्य करना उनका ध्येय था मान्य होता है। यह भारवि का अनुकरण नहीं, भारवि का एक प्रकार से संघो बन सा है। भारवि के शब्दों अथवा अर्थों माघों अथवा अर्थकारों को लेकर माघ ने उनमें एक अपूर्व चमत्कार पैदा किया है। यदि केवल इसीलिए माघ को भारवि का अनुकर्ता कहा जायगा तो फिर यह दोष तो बड़े-बड़े कवियों के लिए पड़ेगा। क्या संस्कृत क्या हिन्दी, क्या उर्दू तथा क्या बिदेसी भाषाएँ सभी भाषाओं के कवि इस दोष से भाक्षित न हों ? तुलसी के रामचरितमानस में अम्माराम रामायण, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मरामायण, हनुमन्नाटक, गीता, अगस्त्यरामायण आनन्द रामायण उत्तर रामचरित, कुमारसंभव चंपूचमामय, बाणेश्वरी गीति, भर्तृहरिसूक्त, धुक्नीति, द्वितीयपरेषा आदि ग्रन्थों के अनेक रसों का अनुवाद सा है। उदाहरणार्थ—

सद्यः पुरीपरिसरैर्जपि चिरीपमृदौ, सीता जवात् त्रिचतुराणि पदानि गवता ।

गन्तव्यमद्य किमधिरवसङ्गद्वद् बूबाणा, रामाश्रुण कृतवती प्रथमावतारम् ॥१-३४॥

आनन्दरामायण

इन दोनों स्तोत्रों में माय के शेष का स्वल्प कुछ और ही है। माय में शब्द विन्यास का धपना पृथक् ही सौम्य है जिसे भी हृदय में बूझना व्यर्थ है। माय के धर्मकार प्रायः शेष का सहारा लेकर पाते हैं फिर भी माय में कुछ स्तोत्रों के भी पर्याप्त उदाहरण मिलेंगे।

प्रभात बर्णन में माय ने बीसी कवित्व शक्ति का परिचय कराया है नैपथ्य के प्रभात बर्णन में वह बात नहीं। रामार्थों के यहाँ पर बड़ीगण किस ढंग से प्रभात वेला का बर्णन करते हैं वैसे बर्णन नैपथ्यकार ने किया है। माय भी कम नहीं उपस्थित कर रहे हैं किन्तु दोनों की निष्ठता तथा ओष्ठता को तो सहज भावुक ही जान सकते हैं। शुभना के लिए वो उदाहरण है—

निधि दधमितामामिगम्यो विषयोविधिरसुभिर्निपथवसुधामीनांकस्य प्रियांकमुपेयुपः।
धृति मधुपदज्ञग्वदग्धो विभावितभाविकस्फुटरसमुधाम्यक्षा वैतासिकैर्जगिरे गिरः

॥ १६ १ ॥ नैपथ्य ।

धृतिसमधिकमुच्चैः पथमं पीडयन्त सततमुपमहीनं भिन्नकीकृत्य पद्मम् ।

प्रणिजमदुरकाकुभाक्कस्मिन्धकंठा परिणतिमिति रात्रेमागवा माधवाम

॥ ११ १ ॥ माय

भी हृदय मूल में शृङ्गार-रत्ना सज्जा के कवि हैं। माय में विभावितता के वे वाचना मय शृङ्गार के विषय हैं जिनमें माय का धाबिक्य है। भी हृदय ने वात्स्यायन के कामसूत्रों का सूत्र पकड़ी तरह धम्मयन किया है यह तो उनकी रचना से स्पष्ट हो जाता है पर उसके जीवन में किछ तरह उतार कर रखा जाता है इसमें वह कम कुशल हैं। नैपथ्य के १८ वें सर्ग में रति स्त्रीधर्मों के प्रतिरिक्त काम विभाव के बहुत से विषय हैं और सप्तम सर्ग में नवविध बर्णन भी प्रायः इसी प्रकार का है। सोनहमें स वेव धरतीसदा धविक है। नैपथ्य काव्य में विप्रलम्भशृङ्गार का बर्णन हुआ है पर उसकी संवेदना मर्मस्पर्शी नहीं करती। माय में तो विप्रलम्भ के प्रकाश ही हैं नहीं।

भी हृदय के प्रथम सर्ग के जोड़ों का बर्णन माय के धरम बर्णन से नीचे ढंग का है। धरम धारम का बड़ा परिचय धविक है और धरमों का बर्णन बहुत कम। माय की स्वभावोक्तियाँ और सूक्तियाँ दोनों ही भी हृदय से ढँबी हैं। इसी तरह भी हृदय ने १६ वें सर्ग में धूर्योप तथा २२ वें सर्ग में सुमिस्त बर्णन भी किया है उससे स्पष्ट है कि इन बर्णनों में वह माय के श्रेणी हैं। २१ वें सर्ग में दण्डवत्कार का जो बर्णन है वह माय के १४ वें सर्ग में भीष्म द्वारा दी गयी हृष्टता की स्तुति प्रसंग में किये गये अवतारों के बर्णन का अनुकरण सा है।

संदेह में जाहे माय की उपेक्षा भी हृदय का कथानक बहुत बड़ा है और उसमें शृङ्गार के संवीर और वियोग दोनों पलों के लिए पर्याप्त प्रकाश है फिर भी भी हृदय उसका जान नहीं उठा पाये। माय उस और धर्मकार दोनों ही दोनों में भी हृदय से कहीं धविक ढँबे पड़े हुए हैं।

माघ पर अनुकरण का दोष

कुछ धानोषकों की सम्मति में महाकवि माघ की रचना मौलिक न होकर अनुकरणत्मक है। यह सम्मति विचारणीय है।

महाकवि माघ विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने साहित्य शास्त्र के प्रतिष्ठित पुराण, महाभारत, मीरा आदि अनेक ग्रन्थों का सविधि अध्ययन किया था। माघ के मुख में कवि बनने के पूर्व कवि को अनेक शास्त्रों अथवा काव्यों या महाकाव्यों का गहन अध्ययन या अवलोकन आवश्यक होता था तभी कोई कवि पंडित समाज में छापर या सकता था। कवियों में कालिदास का नाम अवश्य है और काव्यों में माघ काव्य सिधुपालवध का नाम। एक अच्छे कवि में बिन-बिन गुणों की आवश्यकता होती है क्योंकि उन्हीं गुणों से कुछ होने के कारण कालिदास ही कवि शिरोमणि अथवा कबिकुल गुरु कहलाये और काव्य में बिन गुणों का होना अनिवार्य है वे सब गुण माघ कवि के काव्य में हैं अतः माघ काव्य की प्रतिष्ठा हुई।

जब शास्त्रज्ञता एक कवि से अपेक्षित हो तो उसके काव्य में उसका परिचय स्वाभाविक रूप से होगा। काव्य में इस प्रकार का परिचय अनुकरण नहीं कहलाता। सिधुपालवध में महाकवि माघ की अध्ययनशीलता का परिचय है। भारवि के किराटार्जुनीय को भी उन्होंने प्रशंसा पढ़ा है। उनकी सीसी उनकी सी कथावस्तु लेकर उनकी अवस्था करना उनका ध्येय सा माधुर्य होता है। यह भारवि का अनुकरण नहीं भारवि का एक प्रकार से संश्लेषण सा है। भारवि के शब्दों अथवा अर्थों भावों अथवा अंशकारों को लेकर माघ ने उनमें एक अपूर्व चमत्कार पैदा किया है। यदि केवल इसीलिए माघ को भारवि का अनुकर्ता कहा जायगा तो फिर यह दोष तो बड़े-बड़े कवियों के लिए पड़ेगा। क्या संस्कृत क्या हिन्दी, क्या उर्दू तथा क्या बिदेसी भाषाएँ सभी भाषाओं के कवि इस दोष से त्राणित न होंगे? तुमसी के रामचरितमानस में अध्यात्म रामायण बीमङ्गलायन, प्रसन्नराज्य हनुयभाटक, गीता, वनस्तपरामायण आनन्द रामायण, उत्तर रामचरित कुमारसम्भव अंगूरामायण आणन्य भीति भट्ट हरिणटक, चुकनीति, हितोपदेश आदि ग्रन्थों के अनेक दस्तकों का अनुवाद सा है। असाधारण—

सद्यः पुटीपरिसरेर्ष्यं शिरीषमृदो, सीता जवात् त्रिभतुराणि पदानि गत्वा ।

गन्तव्यमद्य कियदित्यसङ्गद्वं ब्रूवाण, रामाभ्रं कृतवती प्रथमावतारम् ॥६-३४॥

वासिरामायण

मोस्वामी तुलसीदासजी ने भी यही बात लिखी है—

पुरतेनिबसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग में डग ड ।

भ्रमकी भरि भासकनीं असकी पुट सूख गये मधुराधर ह्वै ॥

फिर धूम्रति है बलनो ब्रह्म केतिन ? परां कुटी परिहौं किठ ह्वे ?

विय की सति प्रातुरता पिय की भोसियां अति चारु पसों अस ध्ये

॥ कवितावली ॥

यहाँ भाव साम्य है किन्तु जैसा श्रीचित्प तुलसी के भाव में है वह भाव रामायण में कहाँ ? यहाँ पर श्रीचित्प ने ही मौलिकता प्रदान की है ।

अमरघटक का एक श्लोक है—

बद प्रस्मितासि करमोद घने निघीये, प्राणाधिपो वसति यथ निज प्रियो मे ।

एकाकिनी बद कर्षं न विमेषि वासे ! नन्वस्ति पु क्षितस्सरो मदनस्सहाम् ॥

कवि पद्माकर ने इसी श्लोक के भाव तथा पंक्तों को अपनाते हुए कविता प्रस्तुत की—

कौन है तू जसी जाति कितै, बसि बीति निशा अधि राति प्रमाने ।

हौं पद्माकर भावति म निज भावते रं अब ही मोहि जाने ॥

तौ अमवेलि अकेली करे किन क्या करू मेरी सहाय न घाने ।

है मम सग मनोभव सौ भट, कान सी बान सरासर ताने ।

भीषे एक भीर श्लोक है जिसका भाव साम्य सूरदास ने एक दोहे में है —

निर्बलं मे महाबाहो वरमुच्छिद्य निगड ।

हृदयाद्यदि निर्यासि पौख्यं गणयामि ते ॥

बाहू छुड़ाये जात हो निवस जान के मोयि ।

हिरदे से जब आवेंगे मरद बढोंगे तोय ॥

वेदव्यास जी के दोहे भीर साथ बाने श्लोक में भी भाव-साम्य है—

‘केदाव केदान अस करी अस धरि है न कराहि ।

अन्त्र बहनि मृग सोचनी बाबा कहि कहि जाय ॥’

‘भापांडुरा शिरसिजास्त्रिबसी कपोसे

दंतावसी बिगसितान च मे विापव ।

एणादृष्टो युवतयः पथि मां बिसोकय

तातेति भाषणपरा इति वक्ष्यपान् ॥’

संस्तुत क कवियों के भाव उक्त कवियों की रचनाओं में भी मिलते हैं—

अपरोक्षमपीरादया बन्धुजीव प्रमाहर ।

अभ्यभीष्ट प्रभा हन्त हरतीति किमदमुत्तम् ॥

मधु जीब को दुसरा है, असन अघर पब बास ।

दास देत यह क्यों डरे पर जीवन दुस जास ॥

इतने भीठे हैं तेरे सब कि रकीब ।

गासियाँ खाके बेमजा न हुआ ॥ गासिब ॥

He feels no scars that never felt a wound

ही थयस्स प्रैट स्कार्स दैटनेवर फयस्स धै बुण्ड-येकसपियर ने रोमियो से कहाया वा ।

'Teacher Comrade wife a fellow farer true through life'

गीबर, कामरेड, वाइफ अ फेलो फेरर टूथू साइस

कासिबास ने अज से कहाया—'घुहिली सचिव सखी मिष प्रिय सिप्या सनिटे कसाविनी ।

एक घेर है—

मन तू शुद्धम् तू मन शुद्धी, मन जाँ शुद्धम् तू मन शुद्धी ।

तां कस न गोमद बाँ अर्द्ध, मन बीगरम् तू बीमरी ॥ फारसी

मैं तू हुआ तू मैं हुई मैं जाँ हुआ तू तन हुई । अब तो न कोई फिर रहे मैं दूसरा तू दूसरी ।

संस्कृत के कवियों का और भी निकटता का है—

तां सुन्दरीं चैन्न समेत मदः सा वा निषेवेत न त मत्तम् ।

इदं ध्रुव तद्विहस न सोमेगान्योन्यहीनाविष शान्तिर्ध्रौ ॥ ४-७ ॥ कुमारसम्भव

परस्परैण स्पृहणीयशोभ न चेद्विद्वं हन्धमयोऽविष्यत् ।

अस्मिन्धमे रूपविद्यानयत्न पर्यु प्रजानां विसृष्टोऽमविष्यत् ॥ कुमार ७ ६६ ॥

तं गौरवं बुद्धगत्तं क्षप्य भायानुराग पुनराक्षय्य ।

गो निदधमान्नापि ययो न तस्यी तरस्तरोग्निव रात्रहम् ॥ ४ ४२ ॥ सोमदन्द

मार्गाक्षय्यविषराट्टित्तर्कसम्पु दीसाधिराजतनया न ययो न तस्यो ॥ ५ ८१ ॥

कुमार

आन्तिमपूर्वं विपुलं पुनः च नव ययो दीप्तमिवं सपुद्व ॥ १० २३ ॥ सु० ५०

एकान्तं जगत् प्रभुत्वं, नव यय कान्तमिदं सपुद्व ॥ २ ४७ ॥ रघु

मोषं अमं नाहमि मारं ननु ॥ १३ ५७ ॥ सु० ५०

पत्नं महीनात् तन श्रमेण ॥ ४ ३४ ॥ रघु

प्रमदात्तामगतिम् विद्यते ॥ ८ ६४ ॥ सो० मं०

पनारमानामयतिर्न विद्यते ॥ १ ६४ ॥ कुमार

पुणः पूजा स्थानं, गुणेषु न च सिगं न च यय ॥ उत्तर ४ ॥

पुण हि सर्वत्र परं निधीयते ॥ रघु० ३ ॥

योस्वामी तुमसीबासबी ने भी यही बात लिखी है—

पुरस्तेनिकसी रघुवीर बधू, धरि धीर वसे मग में डग द ।

मस्तकी भरि भासकभी बसकी, पुट सूख गय मधुराधर ह्म ॥

फिर ब्रूमति है, बसगो भव केतिव ? पर्ण कूटी बरिहीं कित हू मे ?

तिय की सखि आतुरता पिय की अस्तियाँ अति आर पसों बस ज्ये

॥ कवितावली ॥

यहाँ बाब साम्य है किन्तु जैसा श्रीचित्त तुमसी के भाव में है वह बाब रामायण में कहाँ ? यहाँ पर श्रीचित्त ने ही मौलिकता प्रधान की है ।

ममस्मृतक का एक श्लोक है—

भव प्रस्मितासि करभोर घने निखीये, प्राणाधिपो बसति यत्र निज प्रियो मे ।

एकाकिनी वद कथं न विमेषि वासे ! मन्वस्ति पुंस्त्रितयरो मदनस्सहाय ॥

कवि पद्याकर ने इसी श्लोक के भाव तथा पदों को अपनाते हुए कविता प्रस्तुत की—

कौन है तू बसी आठि कितै, बसि बीति निद्या अधि राति प्रमाने ।

हौं पदमाकर भावति मे निज भावते पै सब ही मोहि जाने ॥

तौ प्रसवेसि अकेसी बरे किन, क्यों डक मेरी सहाय न माने ।

है मम सग मनोभव सी भट, कान सी बान सरसर तान ।

तोथे एक धीर श्लोक है जिसका भाव साम्य दूरदास के एक बोध में है —

निर्बल मे महाबाहो बरमुचिछल निर्गन ।

हृदमाद्यधि निर्वासि पौरुष गणयामि ते ॥

बाँह छुड़ाये जात हो निबस ज्ञान के मोयि ।

हिरदे ते जब आवेंगे मरद बढोंगे तोय ॥

केशवदास जो के बोधे धीर साब वाले श्लोक में भी भाव-साम्य है—

‘केशव केशन अस बरी बस धरि हूँ न कराहि ।

बम्ह बदन मृग सोबनी बाबा कहि कहि जाय ॥’

‘प्रापोदरा धिरतिजास्त्रिबली कपोसे,

दंतावली बिगलितान ज मे विपद ।

एणाहपो युवतय पथि माँ बिसोबय

ठाठेति भापणपरा इति वन्यपात ॥

संस्कृत के कवियों के भाव जहाँ कवियों की रचनाओं में भी मिलते हैं—

अधरोऽश्रमधीरादया यः कुजीव प्रमाहुरः ।

धम्मवीर प्रभां हन्त हरतीति किमदुमुत्तम् ॥

बहु जीव को बुलाव है, भसन घमर पय मास ।

वास देत यह क्यों करे पर जीवन बुल जास ॥

इसने मीठे हैं तेरे सब कि रकीब ।

ग़स्तिमी लाके बेमजा न हुआ ॥ ग़ालिब ॥

Ho jests at scars that never felt a wound'

ही कपट्स घोट स्कार्स दैटनेवर फगस्ट वी कृष्-शिवसचिवर ने रोमियो के कहवाया था ।

'Teacher Comrade wife a fellow farer true through life

टीचर, कामरेड वाइफ व फेलो फेरर टूथ्रू लाइफ

कमिदास ने श्रवण के कहवाया—'बहिनी सचिव सही मित्र मित्र सिध्या ललिते कलाविनी ।'

एक घेर है—

मन तू बुद्धि तू मन बुद्धी मन का बुद्धि तू मन बुद्धी ।

छो कस न मोमद बाध बर्है, मन बीगरम् तू बीगरी ॥ फारसी

मैं तू हुआ तू मैं हुई मैं का हुआ तू तब हुई । एक छो न कोई फिर रहे, मैं दूसरा तू दूसरी ।

संस्कृत के कवियों का घोर भी निश्चयता था है—

तां सुन्दरीं चेन्न भग्नैर्न नन्द मा वा निपेक्षत न त ननुभू ।

इन्द्रं ध्रुवं तद्विक्रम न मोमेनाम्योन्यहीनाश्चि रात्रिचंद्रौ ॥ ४७ ॥ कुमारसम्भव

परस्परैस्त्वं स्पृहणीमद्योम न केदिदं हृष्टमयोजयिष्यत् ।

अस्मिन्द्वये वपविद्यानयस्त पत्यु प्रजानो वितथोम्मविष्यत् ॥ कुमार ७ ६६ ॥

तं गीरवं बुद्धमत्तं वक्य भार्यानुरागं पुनरावधप ।

सा निदधयान्नापि ययौ न तस्थौ तरंस्तरौग्विज राबर्हस ॥ ४४२ ॥ सोन्दर्नद

मार्गावलम्बतिवराकृतितर्वासिधुः सैनाधिराजसतया न ययौ न तस्थौ ॥ ५ ८५ ॥

कुमार

घादित्यपूर्वं विपुल कुस ते नव बयो दीप्तिमिदं वपुश्च ॥ १० २३ ॥ सु० ५०

तवाजात्र जगत् प्रभुत्व, नवं यय कान्तमिव वपुश्च ॥ २ ४७ ॥ रघु

मोषं यमं नार्हसि मार कुरु ॥ ११ ५७ ॥ सु० ५०

यसं महीपाल ताव श्रेयेण ॥ ४ ३४ ॥ रघु

प्रमदानामगतिम निघते ॥ ८ ४४ ॥ सो० ५०

मनोरमावामगतिर्म विघते ॥ १ ६४ ॥ कुमार

गुणा पूजा स्थानं, गुणेषु न च सिगं न च वय ॥ उत्तर ४ ॥

गुण हि सर्वत्र पदं निधीयते ॥ रघु० ३ ॥

शरीर निर्माण सहस्रो नमु अस्य धनुभाव ॥ धीर० १ ॥

न ह्याकृतिः सुसदृशं विमहाति कृतम् ॥ मुञ्चकटिक २ ॥

इस तरह छत्र-साम्य और भाव-साम्य दोनों ही कवियों की रचना में मिलते हैं। फिर ये कवि भी साधारण नहीं हैं, महाकवि हैं। इस सम्बन्ध में शास्त्रीयवर्णन में जाना भी समीचीन होगा।

महाकवि केवल अपनी औचित्यविचार वर्णन में औचित्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

उचित स्थान विन्यासावमङ्गलितरत्नकृतिः ।

औचित्याद्युत्तानित्यं भवत्येव गुणा गुणा ॥

किं तदा औचित्यं इति ग्राह—

उचितं प्राहुराचार्याः सहस्रं किस यस्य यत्

उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रवक्षते ॥

पदेवाक्ये प्रवर्धायें गुणैः संकरणे रते ।

क्रियायां कारके तिगे वचने च बिद्येपणे ।

उपसर्गे निपाते च काले दैवे कुमे वते ।

तत्रैव सस्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे ।

प्रतिमायामवस्थायां विचारे नाम्न्यवाशिपि ।

काम्यस्याग्निषु च प्राहुरौचित्यं व्यापजीवितम् ॥

ऊपर जिस औचित्य का विवरण दिया गया है उसका महाकवि भाव की रचना में क्या स्थान उद्भाव है। भारतीय और भाव के साम्य की बात दूसरे प्रकार की है इसका स्पष्टीकरण पहले भी दो बगह हो चुका है। महाकवि भाव स्वयं औचित्य के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अपने विद्युत्काल काम्य में लिखा है—

तेजः क्षमा वा मैकान्तः कामजस्य महीपतेः

नैकमोऽत्र प्रसादो वा, रसमावर्जितः कवेः ४-८३ ॥

बल्लभ देव के धनुषार काष्ठान्तर 'रसमावर्जित' है, यहाँ 'भाग' का धर्म है 'विषय'। रस ने विषय का माता कवि एक ही गुण वा आशय नहीं लेता प्रत्युत विषय के औचित्य से सभी धीर वा धीर कभी प्रभाव का उपयोग करता है।

साहित्याचार्य डॉ० बलदेव उपाध्याय अपने भारतीय साहित्य सास्त्र में इस श्लोक की पुष्टि इस भाँति करते हैं। राजा को रस काल वा माता होना चाहिए। उचित रस और काम वा निरीक्षण कर बने अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिए। उसे एक ही नीति का बाध बनकर बचपनि धोमा नहीं देता। तेज और क्षमा बराबर और दया दोनों निर्विवाद गुण हैं परन्तु इनमें से एक ही को स्वीकार करना ठीक नहीं है। कवि की भी ऐसी ही दया

है। उसे रस और भाव का मर्मज्ञ होना चाहिए। रस के परिपोषक होने पर ही कवि को चाहिए कि भोजगुण या प्रसाद गुण को स्वीकार करे। यदि से भ्रष्ट तक यदि भोज ही भोज या प्रसाद ही प्रसाद गुण लायेगा तो वह कवि कहसकने योग्य नहीं है। मृत्कार की प्रधानता होने पर रचना भी कोमल सुकुमार हो तो ठीक है जो प्रसाद गुण है। धीर तथा रौद्र के लिए भोज और शीघ्र।

यही नहीं, भाव कवि ने वस्तु औचित्य और असकार औचित्य पर भी जो रस मानस प्राप्त के केवल बाह्य परिधान है, ध्यान दिया है। उनका स्वयं सम्म भी औचित्य स्मारकें वर्ग में देखने ही योग्य है। औचित्य ही काव्य को स्थिर जीवनी शक्ति प्रदान करता है। यह ठीक ही है कि आत्मा के बिना जीवन जिस भाँति असम्भव है वही भाँति रस के बिना औचित्य की सत्ता धर्म नहीं रखती क्योंकि काव्य की आत्मा रस है और औचित्य काव्य का जीवन है। क्षेत्रज्ञ ने औचित्य को भाँति सूक्ष्मतत्त्व तथा उसके विचार को महाकवियों को भी अत्यन्त हर्ष देने वाला स्वीकार किया है—

महाकवेरप्यति सूक्ष्मतत्त्व विचार ह्यप्रदमेतदुक्तम् ॥ सुदृष्टितिसक ३ ३४ ॥

यह तो हुई औचित्य की बात जब मौलिकता पर भी विचार कर लिया जाय। विज्ञान वाले मौलिकता का दूसरा नाम महीन जड़भावना बताते हैं किन्तु साहित्य में तो दृष्टि कोण धर्मवा विवेचन की गवीनता ही मौलिकता कहसकती है। केवल भाव साम्य धर्मवा प्रभाव ग्रहण से मौलिकता नष्ट नहीं होती। साहित्य के प्राचार्यों ने इस विषय में पर्याप्त लिखा है। उनमें मानसवर्धन अमिनवपुत्र तथा राजेश्वर प्रमुख हैं। कौन नहीं जानता कि भाव और विचार तो सार्वजनिक वस्तु हैं। उनकी अभिव्यक्ति कवि की अपने ढंग की होती है। भव यदि कोई कवि इतने धार्मिक धर्मों व समसामयिक पुस्तकों को देखकर अपने पूर्ववर्ती कवियों के भाव ग्रहण कर उनको अपनी अनुभूति के अनुसार अभिव्यक्त करता है तो उससे उसकी मौलिकता ही व्यक्त होती है। ऐसा भी होता ही है कि समान परिस्थितियों में घनेक व्यक्तियों की किसी बात के प्रति एक ही प्रतिक्रिया होती है। इसका कारण यह है मानव में मानवीयता का मूलतत्त्व समान है। भाव साम्य उस अवस्था में भी अवश्य मिलेगा जहाँ सामाजिक बाधाकरण तथा परिस्थिति के साथ हम लोगों के संस्कार व विचार-व्यक्ति भी मिलती-जुलती होगी फिर काव्य विषय और काव्य सामग्री ने निश्चित होने पर तो भाव साम्य अवश्य ही मिलेगा। किसी गुण में कोई निश्चित रीति धर्मवा कोई काव्य धर्म प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेते हैं तो उस काल की रचना में उनके भावों का साम्य होगा ही। धारणा बमोक्त तथा धर्मों के अध्ययन बिना जब सत् कवि बनना सम्भव नहीं तो पूर्ववर्ती साहित्य का मन्मीरता से अध्ययन करने वाला व्यक्ति अपनी साहित्य के विचारों और भावों से संस्कार बाध भी बनेगा ही। विद्वानों की सम्मति में कवि नहीं है जो दूसरों के काव्यों की छाया को स्वीकार करता है धर्मान् उनके उत्पन्न को ग्रहण करता है और भवत् पदा को छोड़ देता है। कवि धर्म या भाव का अपहरण करता है वह कुरुषि है जो पद वाक्यादि का अपहरण करता है वह चोर है। कवि कटाकरण में भी सिगा है—

छापोपजीवी पदकोपजीवी, पादापजीवी सबसोपजीवी।

भवदेय प्राप्त कविरजजीवी स्वोन्मेपतो वा भुवनोपजीव्य ॥

शरीर निर्माण सहस्रो ननु अस्य अनुमाय ॥ वीर० १ ॥

न ह्याह्वि सुसहस्रं विजहाति वृत्तम् ॥ मुष्ककटिक ६ ॥

इस तरह शब्द-साम्य और भाव-साम्य दोनों ही कवियों की रचना में मिलते हैं। फिर ये कवि भी साधारण नहीं हैं महाकवि हैं। इस सम्बन्ध में सास्त्रीयवर्णा में जाना भी समीचीन होया।

महाकवि जेमेन्द्र अपनी शोचित्यविचार वर्णा में शोचित्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

उचितं स्यात् विभ्यासादसंकुतिरसंकुतिः ।

शोचित्याद्यभ्युत्थानित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः ॥

किं तदा शोचित्यं इति ब्राह्—

उचितं प्राहुराचार्याः सहस्रं किं यस्य यत्

उचितस्य च यो भावस्तदोचित्यं प्रचक्षते ॥

पदेवाक्ये प्रथमार्थे गुणोत्संकरणे रते ।

क्रियायां कारके जिगे वचने च विशेषणे ।

उपसर्गे निपाते च कामे वैषे कुमे व्रते ।

तत्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे ।

प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्न्यप्राप्तिषु ।

काव्यस्यांगेषु च प्राहुरीचित्यं व्यापजीवितम् ॥

अगर जिस शोचित्य का विवरण दिया गया है उसका महाकवि भाव की रचना में क्या स्थान सम्भाव है। भारवि और माघ के साम्य की बात दूसरे प्रकार की है इसका स्पष्टीकरण पहले भी हो चुका है। महाकवि भाव स्वयं शोचित्य के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अपने पित्रुपाल काव्य में लिखा है—

तेज क्षमा वा नैकातं कासजस्य महीपते

नैकमौत्रं प्रसाधो वा रसमावबिदं कवे ४-८३ ॥

बल्लभ देश के अनुसार पाठान्तर 'रसमागविकः' है, यहाँ 'भाव' का अर्थ है 'विषय'। रस के विषय का शाब्दिक ही गुण का प्राप्य यहाँ मिलता अत्युत विषय के शोचित्य से कभी शोक वा घोर कभी प्रसाद का उपयोग करता है।

साहित्याचार्य डा० जगदेव उपपाध्याय अपने भारतीय साहित्य शास्त्र में इस श्लोक की पुष्टि इन भाँति करते हैं। राजा को देश काय शाब्दिक होना चाहिए। उचित देश घोर काम का निरीक्षण कर उसे अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिए। उसे एक ही नीति का बाध बनकर कबमति घोभा नहीं देता। तेज घोर क्षमा पराक्रम घोर क्या दोनों निस्संदेह सुन्दर गुण हैं वस्तु अपने से एक ही को स्वीकार करना ठीक नहीं है। कवि की भी ऐसी ही रचना

। उसे रस और भाव का मर्मज्ञ होना चाहिए । रस के परिपोषक होने पर ही कवि को चाहिए कि भोजनगुण वा प्रसाद गुण को स्वीकार करे । यदि से भन्त तक यदि भोज ही भोज या प्रसाद ही प्रसाद गुण सादेगा तो वह कवि कहलाने योग्य नहीं है । मृन्महार की प्रशानता होने पर रचना भी कोमल सुकुमार हो तो ठीक है जो प्रसाद गुण है । और तथा रीति के लिए भोज और दीप्ति ।

यही नहीं, भाव कवि में वस्तु बोधित्य और प्रसकार बोधित्य पर भी जो रस आनन्द प्राप्ति के केवल बाह्य परिचय है, ध्यान दिया है । उनका शब्द सम्बन्धी बोधित्य प्यारहों सँ में देखने ही योग्य है । बोधित्य ही काव्य को स्वर और नीचनी यदि प्रदान करता है । यह ठीक ही है कि आत्मा के बिना जीवन जिस गति प्रसन्न है उही गति रस के बिना बोधित्य की वृत्ता धर्म नहीं रखती क्योंकि काव्य की धारणा रस है और बोधित्य काव्य का जीवन है । क्षेत्र ने बोधित्य को यदि सुखमय तथा उसके विचार को महाकविओं को भी अत्यन्त हर्ष देने वाला स्वीकार किया है—

महाकवेरप्यति सुखमयस्य विचार हर्षप्रदमेतदुक्तम् ॥ सुसुप्तिविमल ३ ३४ ॥

यह तो हुई बोधित्य की बात, जब बोधित्य पर भी विचार कर लिया जाय । विज्ञान वाले मौलिकता का बुरा नाम गनीम सदाबना बताते हैं किन्तु साहित्य में तो दृष्टि कोण भयना विवेचन की गनीमता ही मौलिकता कहलाती है । केवल भाव साम्य प्रभाव प्रभाव से मौलिकता मृदु नहीं होती । साहित्य के भाषायों में इस विषय में पर्याप्त लिखा है । उनमें आनन्दवर्धन अतिनवमुक्त तथा राजेश्वर प्रमुख हैं । कौन नहीं जानता कि भाव और विचार तो सार्वजनिक वस्तु हैं । उनकी अभिव्यक्ति कवि की अपने ढंग की होती है । अतः यदि कोई कवि अपने शास्त्रों अर्थों व समकालिक पुस्तकों को देखकर अपने पूर्व कवी कविओं के भाव ग्रहण कर उनको अपनी अनुभूति के अनुसार अभिव्यक्त करता है तो उससे उसकी मौलिकता ही व्यक्त होती है । ऐसा भी होना ही है कि समान परिस्थितियों में घनेक व्यक्तियों की किसी बात के प्रति एक ही ही प्रतिक्रिया होती है । इसका कारण यह है मानव में मानवीयता का मूलतत्त्व समान है । भाव साम्य जब प्रवृत्ता में भी प्रवृत्त मिलेगा वही सामाजिक बाधावरण तथा परिस्थिति के साथ हम लोगों के संस्कार व विचार-प्रवृत्ति भी मिलती-जुलती होती फिर काव्य विषय और काव्य सामग्री के निश्चित होने पर तो भाव साम्य प्रवृत्त ही मिलेगा । किसी क्षण में कोई विविध रीति भयना कोई काव्य शब्द प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेते हैं तो उस काम की रचना में उनके भावों का साम्य होना ही । शास्त्रात्मक तथा अर्थों के अध्ययन बिना जब वह कवि बनना सम्भव नहीं तो पूर्वकवी साहित्य का गम्भीरता में अध्ययन करने वाला व्यक्ति अभीष्ट साहित्य के विचारों और भावों से उत्सार मान भी बनेगा ही । विज्ञानों की सम्मति में कवि नहीं है जो दूसरों के काव्यों को छाया को स्वीकार करता है भर्त्ता उनके सत्य को ग्रहण करता है और सत्य वस्तु को छोड़ देता है । यदि धर्म या भाव का व्यक्त कर रहा है वह भुक्त है जो पर बाध्यादि वा व्यक्त कर रहा है वह भोर है । कवि कंठावरण में भी लिखा है—

छापोपजीवी पदकोपजीवी, पादोपजीवी मयसोपजीवी ।

महदेय प्राप्त कविशजीवी स्वाम्येयतो वा भुवनोपजीव्य ॥

घरीर निर्माण सहयोग ननु यस्य अनुभावः ॥ शीर० १ ॥
न ह्याकृतिं सुसहणं विब्रह्मि कृतम् ॥ मूच्छकटिक २ ॥

इस तरह सम्-साम्य और माय-साम्य दोनों ही कवियों की रचना में मिलते हैं। फिर ये कवि भी समारण नहीं हैं, महाकवि हैं। इस सम्बन्ध में शास्त्रीयचर्चा में जाना भी समीचीन होगा।

महाकवि जेमेन्स अपनी श्रीचित्तविचार चर्चा में श्रीचित्त पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

उचित स्थान विन्यासादलंकृतिरसंकृतिः ।
श्रीचित्त्यावप्युक्तमित्यं भवत्येव गुणा गुणा ॥

किं तदा श्रीचित्तं इति चाह—

उचितं प्राहुराचार्या सहणं किं यस्य यत्
उचितस्य च यो भावस्त्वदीचित्यं प्रचसते ॥

पदेबाधये प्रबंधार्थे गुणैर्लंकरणे रसे ।
क्रियायां कारके सिंगे वचने च बिसेषणे ।

उपसर्गे निपाते च काले देसे कृते वते ।
तावे सत्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे ।

प्रतिभायामवस्थायां विचारे माम्भ्यवाधियि ।
काव्यस्यांगेषु च प्राहुरीचित्यं व्यापजीवितम् ॥

अगर जिस श्रीचित्त का विवरण दिया गया है उसका महाकवि माय की रचना में क्या स्थान सद्भाव है। शरीर और माय के साम्य की बात दूसरे प्रकार की है इसका स्पष्टीकरण पहले भी हो चुका है। महाकवि माय स्वयं श्रीचित्त के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने अपने विमुक्तकाल काव्य में लिखा है—

तेजः क्षमा वा नैकाग्रता वासनास्य महीपतेः
नैकमीत्रं प्रसादो वा रसभावविद्य-बन्धे ४ ८३ ॥

बसन्त देव के अनुसार पाठान्तर 'रसभावविद्य' है, यहाँ 'माय' का अर्थ है 'विषय'। रस के विषय का ज्ञाता कवि एक ही गुण का आश्रय नहीं लेता, प्रत्युत विषय के श्रीचित्त से सभी ओर वा शरीर कभी प्रभाव का उपयोग करता है।

साहित्याचार्य डा० बसन्त उपाध्याय अपने भारतीय साहित्य शास्त्र में इस श्लोक की पुष्टि इन शीर्ष करते हैं। रस को रस काल वा ज्ञाता होना चाहिए। उचित देय और काल वा निरीक्षण कर उसे अपनी नीति निर्धारित करनी चाहिए। उसे एक ही नीति का दाव बनकर बचपन घोषा नहीं देता। तेज और क्षमा पराक्रम और दया दोनों निरसदेह सुन्दर गुण हैं परन्तु इनमें से एक ही को स्वीकार करना ठीक नहीं है। कवि की भी ऐसी ही क्या

भमदीर्गगुणवसस्य वसति भयेऽप्युपस्थिते ।

बंधविततिषु विपक्ष पुष्टप्रियवासवासिभिरावधे भूति ॥१२ ४७॥ किरात

मात्र में बमरिबों के बहने का कारण कुछ विशेष बताया है, जबकि भारतीय में अपने बाबों का मोह बताया है । एक भयजनक स्थिति का भी संकेत कर दिया है ।

हराप्य सम्प्रति हेतुरेभ्यत* शुभस्य पूर्वान्वरित कृतं शुभे ।

वादीरमावा भवदीय दद्यान् व्यनक्ति कासत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥१ २६॥ मात्र

द्विष्य विकर्षत्यपहस्त्यघानि येन परिस्नोति तनोति कीर्तिम् ।

संदर्शनं लोफसुरोरमोक्षं तवात्ममोनेरिष किं न भवेत् ? ॥३-७॥ किरात

मात्र में दर्शन का इस अर्थ में तथा विकास व्यापी बताया है जबकि भारतीय में कुछ कम विचार ही संतोष या लिया है ।

वित्तोक्तेनैव तवाधुना युने कृत् कृतार्थोऽस्मि निर्वर्तिताह्वसा ।

तथापि क्षुद्रपुरुहं गरीयसीमिरोऽपवा योयसि केन तुष्यते ॥१ २६॥ मात्र

निवास्यदं प्रस्तकुतूहलित्वमस्मास्वधीनं किमु निःस्पृहाणाम् ।

तथापि वत्स्याण । वी गिरं ते मां धीतुमिच्छा भुत्तरीकरोति ॥१३ २॥ किरात

मात्र में यहाँ नारद के दर्शन मात्र से संतुष्ट हो दिया है तथा एक अमानिदरम्पास से नारद को कुछ कहने का अवसर भी दे दिया है जबकि भारतीय में व्यास को निःस्पृह कह कर एक तरह से उनके भाषयन की अवस्था ही बता दी है । हाँ, दूसरी शक्ति में फिर उनको कुछ कहने के लिए अवसर प्रकट हो दिया है ।

इस तरह मात्र के कथन की मौलिकता तथा मौलिकता स्पष्ट ही सामने आ जाते हैं । दूसरे कविबों के साथ मात्र के साथ साम्य के भी एक-दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

पर्यायैवाभुत्सुग्ध, पुष्पसम्प्रादतत्परा ।

उद्यानपालसामान्यमुत्तवस्तमुपासते ॥२-३६॥ कुमारसम्भव कान्तिदास

तपेनवर्षा धरदा हिमाममो वसम्भलदम्पा सिधिर. समेत्य च ।

प्रसूनकमुत्तिं दधत् सदत्तव पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः ॥१ ६॥ मात्र

जब कान्तिदास ने बहुत विचार्य करके तारनामुर के वास्तव की चर्चा की है, तो मात्र ने बहुत कम को बनाये रखते हुये एक वास्तविक भाव को व्यक्त किया है—

वीज्यत स हि संसृप्त* द्वागयाधारणानिसे ।

भामरे*सुरबन्दीनाम् वादाली*र वपिभि ॥२ ४२॥ कुमारसम्भव-कान्तिदास

स चन्दनाम्भ कण्ठोमस्तथा मयुर्जसाद्रिबर्मेन निर्वेवो ॥१-६२॥ मात्र

प्रकरण के हिसाब से दोनों स्थलों में बीजना जाती हुई स्थलों की भी चिन्ता है जन्म या मरण एक मौलिक है । अवर्तुल में भाव साम्य है पर उसके प्रतिपादन के अन्तर

उपर्युक्त में ६ प्रकार के कवि कहे गये हैं । दूसरे के काव्य की छाया माथ लेकर जो कविता करे, एक पाथ पथ लेकर, श्लोक का एक पाथ लेकर और समग्रश्लोक को लेकर । इस तरह कवि विद्या प्राप्त करके उसके सहारे कविता करे । अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के बल कविता करे ।

मानव सनातन है । उसके भाव और विचार भी सनातन हैं । पर्वत, नदी प्रादि प्रकृति के स्वल्प सनातन हैं । इनका वर्णन भी सनातन है । वर्णन की दृष्टियों में भेद होते हुए भी जनमें का भवेव सनातन है । यदि यह भवेव न हो तो किसी कवि की, किसी विचारक की बात जानकों को—समाज को—सहृदयों को ग्रहण ही कैसे होगी । कवि के लिए सामाजिक होना पहली शर्त है । साधारणीकरण कविता का माध्यामक मुख है । जब संसार में वस्तुएँ सनातन हैं और उनके प्रत्यक्ष से होने वाली प्रतिक्रिया सनातन है नवीन बात होती ही नहीं है ही बहिष्कारी हुई, सुनी हुई वैसी हुई धनुसूल बातें होती हैं तो कवि नई नींव क्या सादेगा । कवि तो इन्हीं सब चीजों को अपनी प्रतिभा बल से अपनी व्युत्पत्ति और प्रत्यास से अपने हृदय से प्रस्तुत करते पावे हैं । हृदय की विविधता नवीनता कहलाती है । कवि की कला का विचार, जहाँ पुरानी बातों में सक्ति वैधिम्य से अपने हृदय से प्रवर्धित करना, कहलाता है । मानवधर्मनाथार्य का यह कहना युक्तियुक्त है—

दृष्टपूर्वा प्राणि ह्यर्था काम्ये रस परिग्रहात् ।

सर्वज्ञत्वाद्वा भाति मधुमास इव प्रभा ॥

जब—वे ही पुराने वृक्ष हैं पर वसन्त के रस-संभार से उन्हें नवीन रूप मिल जाता है । किसी में नवीन जीवन निकल आती है, किसी में पुष्पों का विचार हो जाता है किसी में फल देने लगते हैं, किसी का रूप रंग ही विस्तारपूर्ण हो जाता है तो किसी में मनोमुग्ध काटी सुगन्ध महकने लगती है । यह प्रकृति का नवीन रूप है । ठीक वही अवस्था कवि की है । वह भी तो प्रकृति कभी उद्यान को विकसित करने बाधा वसन्त ही है । वह किसी पुराने कविता-ग्रन्थ में रस ध्वनि, रूप मधुर फल साकर धर्मकार ध्वनि रूप सुन्दर पुष्प तथा कर वस्तुध्वनि के मनोहारी रूप रंग का चित्र खींच कर सब चीजों-बीरुं पुष्क कविता कालन को प्रस्तुत करके ऐसा समीच कर देती है कि सहृदय कभी कोकिल उस पर बैठकर बूकने लगते हैं—माथ बिघोर हो जाते हैं ।

धौविरय और मौनिकता पर विचार करने के बाद उसको माथ काम्य पर पठित करने के उद्देश्य से नीचे कुछ ऐसे उद्धरण दिये जाते हैं जिसमें माथ साम्य होते हुए भी धौविरय है मौनिकता है ।

मिथुनाक्षय के जगुर्ब रथ में माथ का एक श्लोक है—

सरीसृप मो मटवनस्मामिनेकवास विष्णुदेवताप्रतिधमरधसितु चमयं ।

मस्मिन् मृदुवसनगमसुग्रीय रम्यनिर्वरसनयुतिमुक्ताबिज नोरसहन्ते ॥४४३ माथ॥

टिप्पण के द्वारा जर्म में माथ का एक श्लोक है—

धमरीयणैर्मण्डलस्य वलवति मयेऽप्युपस्थिते ।

बंशविततिषु वियक्त पुषुप्रिववाप्तवासिभिःरावदे धृतिः ॥१२-४७॥ किरात

मात्र में बपरियों के रूपों का कारण कुछ विशेष बताया है, जबकि भारवि ने अपने भावों का बोझ बताया है । एक समयजनक स्थिति का भी उल्लेख कर दिया है ।

हृत्सप्यं सम्प्रति हेतुरेष्यत शुभस्य पूर्वचरितं कृतं शुभे ।

क्षरीरमात्रं भवद्योय दृष्टानं ध्यमभित कालावितयेऽपि योम्यताम् ॥१ २९॥ मात्र

अपि विकर्षत्यपहृत्यपानि ध्येयं परित्नीति तनोति कीर्तिम् ।

संदर्शनं लोकमुदरोरमोर्न तवारमयोभैरिव किं न भवेत् ? ॥३-७॥ किरात

मात्र में दयन का फल भीचित्य तथा विकास आशी बताया है जबकि भारवि ने कुछ फल बिनाकर ही संतोष वा किया है ।

विसोकनेनैव तथायुता मुने कृता कृतार्थोऽस्मि निर्वाहताहसा ।

तथापि शुभपुरुषः शरीरसौमिरोऽपवा ध्येयसि केन लुप्यते ॥१ २९॥ मात्र

निरास्पदं प्रसन्नकुतूहलित्वमस्मात्स्वधीनं किमु निःस्पृहाणाम् ।

तथापि कस्याणः शी गिरं ते मां श्रोतुमिच्छा मुखरीकरोति ॥१३ २॥ किरात

मात्र ने यही कारण के दर्शन मात्र से संदेह दे दिया है तथा एक अर्थात्तरव्याप्त से कारण को कुछ कहने का व्यवहार भी दे दिया है जबकि भारवि ने व्याप्त को निःस्पृह कह कर एक तरह से उनके मानमन की व्यर्थता ही बता दी है । हाँ कुछी वंक्ति में फिर उनको कुछ कहने के लिए व्यवहार व्यवह दे दिया है ।

इस तरह मात्र के कवय की मौलिकता तथा भीषित स्वप्न ही सामने आ जाते हैं । दूसरे कवियों के साथ मात्र के मात्र साम्य के भी एक-दो उदाहरण और दिये जाते हैं—

पर्यापसेवामुत्सृग्ध, पुष्पसम्भारतत्परा ।

उद्यमवानसामान्यमृतवस्तमुपासते ॥२ ३९॥ कुमारसम्भव-वासिदास

सपेनवर्षा धरदा हिमागमो नसम्भलवम्या विधिरः समेत्य च ।

प्रसूनकमुपि दयत सदत्तवः पुरेऽन्य वास्तव्याकुतुम्बिता ययुः ॥१ १॥ मात्र

यदि कामिदास ने जगु विपरीत करके तारकामुर के धातक की वर्षा की है, तो मात्र ने जगुलम को बनाये रखते हुये एक पारिवारिक धाक को व्यक्त किया है—

वीम्यते स हि संसृष्टः द्वापमसाधारणामिते ।

पामरैःपुनरन्दीनाम् काकासीर वर्षाभिः ॥२ ४२॥ कुमारसम्भव-वासिदास

स चन्दनाम्न कसुकीमत्तस्तथा सपुर्जसाद्रपिवमैर्न निर्बन्धी ॥१-६३॥ मात्र

प्रकरण के हितार्थ से दोनों स्थलों में बीजना करती हुई स्त्रियों की भी चिन्ता है बनाया करना एक भीषित है । कर्तव्य में मात्र साम्य है पर इसके प्रतिपादक के व्यवहार

घीर कोलियाँ विभिन्न हैं । कुमारसम्भव में बताया हरण कर कीर्ति में रखी हुई देवगमायें विपद्यम् विषय के बुद्ध से गरम-गरम निश्वास को छोड़ती हुई, बाँलों से घाँसू टपकाती हुई सोये हुये तारकामुर को आपरों से हवा करती है । माघ काव्य में कामधर से सतप्त उस राखण की बेह, ईशराज इन्द्र की बंदिनी स्थियों के घायल पण्य निश्वास की बापु है जिस प्रकार छोटस छोटा वा उस प्रकार अग्न निमित्त जल के कणों से युक्त होने के कारण सूक्ष्म एवं जल से सिंचित ताक क पंखों से की जाती हुई हवा से छीशन नहीं होता वा । वैव विजय का अभिवान जो है ।

रघुवंश घीर विधुपासक का माघ-साम्य—

स कीचकर्मक्षिपूणाग्ध्रं कृजद्भिरापादितवसकुरयम् ।

पुथाय कृत्वेपु यथा स्वमुखचक्षुर्गोयमानं वनदेवताभिः ॥२१॥ रघुवंश

संगीण कीचकवनस्त्रक्षितैकवास, बिच्छेदकातरविषश्चक्षितु भयम् ।

अस्मिन् मृदुद्वसमगमनवीय रग्ध्र निर्वस्वनयुतिमुखादिव नोत्सह्यते ॥४४॥ माघ

सम्भाष्यन्तं मधुरमनिस कीचका पूयभाणा, संसक्तभिः त्रिपुर विजयोगीयते

किन्नरीभिः ।

निह्नादस्ते सुरज इव चेत् कन्दरेपु ध्वनि स्यात्

संगीतापौ ननु पद्यपठे तत्र भावी समग्र ॥६०॥ मेघ पूर्व

यः पूरयद् कीचकरग्ध्रमागाम् दरोमुक्तोत्पेन समीरणेन ।

उद्भास्यतामिच्छति किन्नराणां तान प्रदायित्वमिषोपगम्य ॥१-८॥ कुमार

भमरोगणैर्मण बसस्यबसवति भयेत्पुपस्थिते ।

बंधविततियु विपक्षतपुष्ट प्रिय बालबालविभिरादवे दूति ॥१२४७॥ किरात

उद्भूतमेवैस्तत एव तामयव मुनीन् रिव संप्रलीताः ।

आमोक्तयामास हृदि पतन्ती नदी स्मृती बंधमिवाम्बुराधिम् ॥३-७५॥ माघ काव्य

तस्याः पुरस्ताद पवित्र वांसुमपांसुसामां धुरि कीर्त्तनीया ।

मार्गं मनुष्येदवर धमपत्नी भुते रिवायै स्मृतिरम्बगच्छत् ॥२२॥ रघुवंश

इत स्तोत्रों का भाव साम्य घीर उसके उपस्थापन की विभिन्न पुस्तियाँ स्वतः संकेत हैं ।

रघुमारचरित घीर माघ काव्य का भाव साम्य—

परस्परस्पर्धपरार्थ्यरूपा पौरस्त्रियो यत्र विधाय वेधाः ।

श्रीनिर्मितिप्राप्त पुण्यतैश्चक्षुर्गोपमावाच्यमसं समार्ज ॥३-५८॥ माघ काव्य

इमं सप्तना जनें स्रजता विधाया भूगमेपापुणाशरम्यामेन मिमिता ।

नोचेत् वाग्ममूरेबन्धिय निर्माण त्रिपुणो यदि स्यात् तद्दि समान काव्यं ध्यायां तस्मिन् किं न करोति—रघुमार चरित

पुण्यारम्भ को दोनों कविओं ने अपने-अपने ढंग से बड़ी सुन्दरता से प्रमुख किया है ।

चतुर्थ सर्ग में माघ—

फलसमिरप्लुङ्गकयामिमर्शात्काशानिधं धाम पतंगकाशैः ।

ससंस यं पाप पुण्यपुण्यानां संक्रान्तिमाकान्तपुण्यतिरेकाम् ॥४॥ १६॥ माघ

मानविकानिवाहक में काशिराज—

पात्र निक्षेपेभ्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाघातो ।

जलमिव समुद्रमुच्छी मुञ्चाफमतां पयोदस्य ॥

मभिमान छात्रुन्तव में—

‘स्पर्शान्द्रुक्ता इव सूर्यकान्तास्तदन्वतेजोर्ग्रसिमवाद्भवन्ति ।’

किरात के तृचम सर्ग में भारवि—

प्राप्यते गुणवतापि गुणानां व्यक्तमाभ्यवश्येन निक्षेपः ।

तत्तयाहि दयिताननवत्तं व्यामथे मधु रसातिशयेन ॥५॥ १७॥

वैराग्यचटक में श्री भट्टहरि—

यत् प्रचेतन मपि पार्श्वे स्पृष्टं प्रव्यसति सवितुरिकान्तः ।

चत्तर रामचरित के बहु भंज में बभ्रूति—

न तेजस्तेजस्वी प्रसन्नमपरेषां प्रसहते, स तस्य स्वोमावः प्रकृतिं नियतात्वादकृतकः ।
मयूखैरभ्यास्तं तपति यदि दैवो दिनकरः, किमान्येयोषावा निकृष्ट इव तेजोसि

बभति ॥१४॥

चतुर्थ दत्तकों में गुण पात्र में जाकर किस भाँति देखीप्यमान हो जाता है यह भाव साम्य है, किन्तु प्रत्येक कवि के कहने की शैली भिन्न है । प्रत्येक का लीन्य अपने-अपने ढंग का है ।

ऐसे उदाहरण कइनों दिये जा सकते हैं । इन उदाहरणों में यह स्पष्ट होता है कि भावसाम्य एक मानवीय प्रक्रिया है । इसे काव्य में आने से रोका नहीं जा सकता । मार्गदर्शक माचार्य ने इस भाँति के भाव साम्य के तीन भेद बतलाये हैं—

क प्रतिबिम्बवत् ग तुल्यदेहिबत् ग प्राप्तेक्यवत् ।

छन्दोहर के लीनों को स्वीकार करते हुए एक बीया में चरपुच्छवेपप्रतिम छीर बनाया है । उनमें से बीज उपादेय है छीर बीज है ही इसका निर्णय तो प्राचीन शास्त्रकार भी न दे सके । उन शास्त्रकारों ने उपादा का परिचय देते हुये कहा दिया—

नास्त्यक्षीरं बभ्रुजनो नास्त्यक्षीरो बणिग्जम् ।

स मन्दति बिना बाष्पं यो जानाति निपूहितम् ॥

सम्बन्धोक्तिषु यः पश्येदिह किञ्चन मूतनम् ।

उत्तिष्ठेत् किञ्चनवाक्यं मम्यतां स महाकविः ॥

प्रपहरण कवि और बणिक् व्यापारी कम परार्थापहरण पराह मुख होते प्रायः देखे नहीं पड़े । ध्वन्यालोक के निर्माता ने भी यही निर्णय देते हुए, कहा है—

यद्यपि तद्यपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्,

स्फुरितमिहमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते ।

अनुगतमपि पूर्वव्यायया वस्तु साहकं,

सुकविरूपनिबध्नन् निश्चतां नोपयाति ॥४१६॥

ध्वन्यालोक में एक और बात इसी विषय में सुन्दरता से कही गयी है—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्तुवस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।

यत्तद्वसिद्धावयवातिरिक्तं, विभाति सावध्यमिवांगनासु ॥१४॥

अन्नित्यपुस्तपादाचार्य ने महाकवीनाम् पर की इस रूप में व्याख्या की है—

प्रतीयमानानुप्राणित काव्य निर्माण निपुण प्रतिभाभाजनत्वेनैव महाकवि व्यपदेशो भवतीतिभावः ।

इन निर्णयों के बाव माव जैसे आत्माविभाजी महाकवि पर अनुकरण प्रवृत्ति प्रपहरण का दोष बनाना एक बुराग्रह मान है । भाषा का भाव साम्य मात्र में अधिक है इसका कारण फिर से बुरा होना आवश्यक है वह यह है कि भाषा भाषा से अधिक प्रसिद्धि पाना चाहते थे ।

भाषा की समता अत्युत्तम है, उनकी रचना में मौलिक अनुभावना है तथा शास्त्रधर्मपर मौलित्व है ।

माघ के विषय में प्रचलित सम्मतियाँ

- १ नवसर्गयते माघे नवशब्दो न विद्यते ।
- २ माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।
- ३ मेघे माघे वर्तं वयः ।
- ४ काव्येषु माघ कवि कासिदासः ।
- ५ पुष्पेषु जाती नगरीषु कांची, मारीषु रत्ना पुरुषेषु विष्णुः ।
नदीषु गंगा नपती च राम काव्येषु माघ कवि कासिदासः ॥
- ६ माघेन विष्णोस्साहा मोत्सहन्ते परक्रमे ।
- ७ मुपरिपद्विन्ता चेतसा माघे रतिं कुच ।
- ८ तावद् भा रवेर्भाति माघ-माघस्य नोद्य
- ९ माघेनैव च माघेन कम्पः यस्य न जायते ।
- १० माघः शिमुपालं विवधन् कविमद्वचं विदधे ।

प्राचीनकाल में साधुनिक ढंग की प्रामोचनाओं का प्रभाव था। साहित्यशास्त्र की चर्चा, विद्वानों की समीक्षा तो हुआ करती थी पर किसी कवि विशेष की सर्वांगीण विपद प्रामोचना एक समय के रूप में प्रवृत्ति प्रवृत्ति के रूप में नहीं होती थी या तो किसी कवि की विशेषता को लेकर कृति के रूप में सम्मति प्रकट कर दी जाती थी या काव्य-विद्वानों के उदाहरणों के रूप कवियों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते थे। उदाहरित्वित्व कृतिमा माघ कवि की विशेषताओं की ओर संकेत करती है जो सम्मतिवर्तों के रूप में विद्वानों ने समय समय पर कहा है। ये सम्मतिवर्त एकान्ती हैं और किसी संघ में प्रचलित भी। इन सम्मतिवर्तों के सम्बन्ध में नीचे कम से विवेचना की जाती है।

१ नवसर्गयते माघे नवशब्दो न विद्यते

महाकवि माघ का संस्कृत भाषा पर पूर्णरूप से स्थाविरत्व था। वे बसते-निरते एक रूप से शब्द कोष से थे। उनकी रचना में एक शब्द के कई पर्यायवाची शब्द उस प्रसंग विशेष में फलते हुए मिलते। एक शब्द से सन्तुष्ट कहीं-कहीं पर एक वाक्य का काम लिया और उनके शब्दों की ध्वनता शक्ति अद्भुत रही है। व्याकरण के प्रकोपविध होने के कारण उन्हें किसी शब्द के लिए रुकना नहीं पड़ा। नवीन शब्दों की आवश्यकतानुसार सृष्टि की ओर इस तरह संस्कृत भाषा को लुप्त किया। यमक और श्लेष सम्बन्ध तो शब्दों की सर्व

यहिया के सहारे ही चलते हैं । बराबरणार्थ 'नोचभिद्' इन्द्र ने लिख आता है किन्तु 'नोच' को भेदने वाला' यदि भी तो होता है अथवा नोचभिद् का अर्थ यदि हुआ । लकारार्थ प्रक्रिया के बराबरण इन स्तोत्रों में लीजिये । १ ३७ १ ३८, १ ४७, १ २१ । पाप काम्य के लक्ष्य सर्व तक घाटे-झाटे पाठक के पास पर्याप्त शब्दावली का संग्रह हो जाता है । उसे ऐसा जान हीन लगता है यानों धन लगे राज्य रहे ही न होंगे । कविता के क्षेत्र में भाव ही संभव-ऐसे कवि हैं जिनकी रचना में नवीन शब्दों की भरमार है । जोरों के इस कथन में थोड़ी धारुणिक है पर अभिप्राय यह है कि स्तेय-यमक तथा चित्रवर्णों धारि में शब्दों की अनेकार्थता व्युत्पत्तिगम्य शब्दता शब्दों के नये रूपों का निर्माण करती है । शब्दों के जो प्राचीन अर्थ हैं उनके स्थान पर नवीन अर्थ उनसे निकलते हैं । यही इस सम्मति से समीप है ।

२ भाषे सन्धि जयो गुणा

वीर सम्मतिशो की श्रवणा यह सम्मति विद्वानों में अधिक प्रचलित है । कानिदास की शरणाधिक प्रसिद्धि उनकी उपमाओं से है महाकवि नाटिक अपने अर्थ वीरव को लेकर इस संहार में घिरे हो चुके हैं वीर परमाश्रित्य का मानन्द महाकवि दण्डी की रचना में मिलता है । भाव में इन दोनों का समन्वय है । सब कुछ भाव तो कानिदास-कानिदास ही हैं । भाव काम्य में उन बीबी उपमाएँ सामान्यतः नहीं मिलती । फिर भी महाकाम्य में तुम्हारे उपमाएँ हैं तो सबस्य । कुछ यहाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

विद्वद्भिन्नरागमपरेविवृतं कर्णचिह्नं स्थापितुं हननिदिबतधौमिरस्यै ।
 श्रेयान् द्विजातिरिव ह्यनुमयाणि ददा गुह्यार्थमेव निविमज्जयणं विभति ॥४ ३॥
 हपानमम्भोरह केसरपुतीर्जटा सरस्वत्प्रमरीचिरोचिपद् ।
 विपाकपिणास्तुहिनस्थनीच्छो घराघरेन्द्र छटतीततीरिव ॥१ ४॥
 सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुनिसाधिभि सोषमिवाथ सभयम् ।
 द्विजावसिम्बाजनिष्ठाकर्णमुनि गुणिस्मिता वाचमनोचरपुष्ट ॥१ २५॥
 अनुत्सृज्यदन्त्यासा सङ्घृष्टि सन्निर्बचना ।
 दास्यविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पृष्टा ॥२ ११२ ॥
 प्रजा इवांगादर्शित्वनामे सम्मोजटाकूटतटाविषाय ।
 मुलादिवाय मृतपो विषातुः पुराम्निरीयुम् उजिद् भवजिन्य ॥३-६२॥
 सार्धं कर्णचिह्नधिते पिपुमर्दपनैरास्यान्तरासगतमाभ्रवर्त्त शरीय-
 दासरुद्रः सपदि संकलितं निपादेविप्र पुरा पतगराजिव निर्जगार ॥५ ६६॥
 उभो यदि व्योम्नि पुष्पक प्रवाहावाकादागगापयस पतेताम् ।
 तैनोपमोयेत तमासनीसमायुक्तयुक्ततामस्तमस्य बस ॥६ ८॥
 उदुपुत्रमेवैस्तत एव सोयमर्थं मुनीश्वरिव संप्रणीता ।
 धामोक्तयामास हरि पतन्तीर्जवी स्मृतीवैदमिवाभुरातिम् ॥६-७५॥

विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकाविभिः ।

पसोकरिय महाकाव्यं व्यूहैस्तदभद्रवसम् ॥१२४॥

अथर्षुक्त १२ में श्लोक में 'यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते' अथवा 'वाह्यलोऽयं मुक्तमासीद्' की प्रसङ्ग स्पष्ट है। इसी भाँति श्लोक ७२ में 'मं कानिराठ का मुतेरिबार्ध स्मृतिरन्वगच्छिद्' अथवा 'तत् प्रतस्थे कीबेरी' का स्मरण हो जाता है।

व्याख्या में सर्ग का छठा बीसवाँ तीसरा तथा सप्तम सर्ग का द्वाविंशतीसवाँ भी उपमा के लिए देखिए। एक स्थान पर तो भाष्य कवि प्रातःकाल की चिकित्सा का जो कथन होता है उसको जल में डूबे बड़े के दाँव के समान बताते हैं—

विततपुष्पवरणा तुल्यरूपैर्मयूखैः कलत्रं ह्यत्र गरीयात् दिग्भिराकृष्यमाणः ।

कृतचपनं विहंगास्तापकोसाहसाभिजसनिधिं जलमध्यान्तेप उताम्यतेऽकम् ॥११४॥

उदयसिद्धिरिच्छुः प्रागण्येष्वेव रिगन् सकमसमुत्तहासं बी दातुं पद्मिनीभिः ।

विततमुदुकराग्रं सन्ध्यस्त्या वयामि परिपतति दिवोऽकं हेयया वाससूय

॥ ११४७ ॥

साम्प्रतः मूलक सर्तकारों का प्रयोग करने में भाष्य की कुशलता सर्व विदित है। भाष्य के सर्व बीज के उदाहरणों की भी कमी नहीं है—

प्रतिहस्ततामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता ।

अवर्तबलाय दिनमनु रभून् पतिष्यत् करसहस्रमपि ॥११५॥

अनुरागवन्तमपि सोचनयोदधतं वपुः सुसमतापकरम् ।

निरकासयद्दविमपेत् वसु विषदासयादपरदिगाणिका ॥११६॥

शब्दिधाम्नि भर्तारि मृष्टं विमला परलोचनममुपगते विविधुः ।

उदसनं स्वपः कर्षमिवेतरया मुलमोन्मज्जममि स एव पतिः ॥११७॥

अरुणजसज्जराजीमुग्रहस्ताग्रपादा बहुसमपुपमासा नञ्जसन्दीपराक्षी ।

अनुपपति विराजः पत्रिणो व्याहरन्ती रजनिमभिरजाता पूर्वं सम्प्रा मुतेव

॥ ११४० ॥

अपदि कुमुदिनीमिमीमित हा सपापि जयमगमदपेतास्तारकास्ताः प्रमस्ता ।

इति दमित कलत्रदिबलतयमममिन्दुर्वहति कृशमरोपं अष्टशोभं युज्यते ॥११८॥

इन श्लोकों में प्रत्येक पद अथवा विधिष्ट पद रचता है।

पद सामिर्य के कई श्लोकों की हमने महान्वि भाष्य का काव्य सीमन्त चकरण के उद्धृत किया है। यहाँ पर फिर कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

पत्रोष्मितामिमु हुरम्पुवाहै,

समुन्नमर्द्धिर्न समुन्नमर्द्धिः ।

पश्चिमा के सहारे ही चलते हैं। उदाहरणार्थ 'ओजसिधू' इन्द्र के लिए बना है किन्तु ओज को वेदने वाला पति भी हो होता है अथवा ओजसिधू का धर्म पति हुआ। मकारार्ण प्रकृत्या के उदाहरण इन श्लोकों में लीजिये। १ ३७ १ ३८, १ ४७ १ ४९। माय काव्य के नवम सर्ग तक पाठे-पाठे पाठक के पास पर्याप्त सम्भावना का संशय हो जाता है। जैसे ऐसा धान होने लगा है धानों अब नये राज्य रहे ही न होंगे। कविता के शेष में माय ही संभवतः ऐसे कवि हैं बिनाकी रचना में नवीन शब्दों की भरमार है। शोभों के इस कथन में जोड़ी धारुणिक है पर अभिप्राय यह है कि श्लेष, यमक तथा चित्रशब्दों यात्रि में शब्दों की अनेकार्थता व्युत्पत्तिपथ्य धर्मता शब्दों के नये रूपों का निर्माण करती है। शब्दों के जो प्राचीन धर्म हैं उनके स्थान पर नवीन धर्म लपके निकलते हैं। यही इस सम्मति से बनीष्ट है।

२ माये सन्धि जयो पुराण

श्रीर सम्मत्तियों की अपेक्षा यह सम्मति विद्वानों में अधिक प्रचलित है। कालिदास की अत्यधिक प्रसिद्धि उनकी उपमाओं से है महाकवि भारवि अपने धर्म औरव को लेकर इस संसार में सिद्ध हो चुके हैं श्रीर पदकालित्य का आत्म्य महाकवि बन्धी की रचना में मिलता है। माय में इन सीमा का सम्मन्ध है। सब पुछा जाय तो कालिदास-कालिदास ही हैं। माय काव्य में उन जैसी उपमाएँ सामान्यतः नहीं मिलती। फिर भी महाकाव्य में सुन्दर उपमाएँ हैं तो अवश्य। कुछ यहाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

विद्वद्भिन्नगमपरिविवृतं कर्मचिच्छ्रुत्वापिपुष्टं ह्यमनिश्चितधीमिरन्त्यै ।

अधोदाम् द्विजादिरिव हस्तुमभानि दत्तं युद्धार्थमेव निविर्ममणं विमति ॥४ ३८॥

दधानमम्भोद्धु केसरपुष्पीर्जटा धरन्वन्मरीचिपचिपम् ।

विपाकपिपास्तुहिनस्पसीच्छो बराधरेभ्यः क्षततीक्ष्णतीक्ष्ण ॥१२ ५॥

सिद्धं सिद्धिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्बिसारिमं क्षीपमिवाय सभयम् ।

द्विजावलिष्यावनिष्ठाकरांशुनि क्षुचिस्मितां वाचमवोचदध्युत ॥१२ २५॥

अनुसूत्रपदगता सङ्क्षुतिः सन्निबधना ।

शब्दविशेषो नो भाति राजनीतिरपस्पष्टा ॥२ ११२॥

प्रजा इवांगादरविन्दनाये चम्भोजताकुटसदाविबापः ।

मुद्रादिपाव भूतयो विपातुः पुराग्निरीयुमु रजिष्व ध्वजिष्य ॥३-१५॥

सायं कर्मचिदुपितैः पिबुमर्षपनेरास्यान्तरासगतमाग्नदलं प्रदीयः

वासराः सपदि संवसित निपादैर्विप्रः पुरा पतगराजिब निजंगार ॥५ ६६॥

जमो यदि व्योम्नि वृषक प्रबाहावाकाशार्गगापयसः पतेताम् ।

तेनोपमीयेत समाननीलमामुक्तमुक्ततासतमस्य वसः ॥३ ८॥

उद्गूरपमेपेस्तत एव शोयमयं मुनीर्म्हं रिम संप्रणीताः ।

आलोकाभास हरिः पतन्तीर्नरी स्मृतीर्बधमिवाभ्युरादिम् ॥३-७५॥

विषम सर्वसोमद्रव्यक्रान्तिसूत्रिकादिभिः ।

स्तोत्रैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवदुत्तमम् ॥१६-४१॥

अपुनः १२ वें स्तोत्र में 'यतो वा इमानि भूतानि जायते' अथवा 'वाहसोम्य मुलमासीत्' की मूलक स्पष्ट है । इसी भाँति स्तोत्र ७५ व में कालियास का 'मृदेरिवार्चं स्मृतिरन्वयश्चिद्' अथवा 'ततः प्रतस्ये कौबरी' का स्वरण हो जाता है ।

प्यारह्वें सर्व का स्रष्टा भीसर्वा सीसरा तथा प्रथम सर्व का जनताभीसर्वा की उपाय के लिए देखिए । एक स्थान पर ही माय कवि प्रातःकाल की विधिवा वा जो कसरत होता है उसकी बात में झूठे घड़े के शब्द के समान बताते हैं—

विततपुष्पवरना तुल्यकर्ममयूखः कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः ।

कृतवपस्रं विहंवासापकोमाह्माभिजसनिभिः जलमभ्यादप्य उत्तायते क ॥११-४४॥

उदयविस्तरिभूक्तं प्रागण्येष्वेव रिगन् सक्रमसमुपहास्य बी दत पद्मिनीभिः ।

विततमृदुकराय सद्यदयन्त्या वयामि परिपतति विर्बोऽके हेलया भससूर्य

॥ ११-४७ ॥

साम्ब मूलक भक्तकारों का प्रयोग करने में माय की कुशलता सर्व विदित है । माय के सर्व वीरव के उदाहरणों की भी कमी नहीं है—

प्रतिक्लमतामुपगते हि विषी विफलस्त्वमेति बहुसाधनता ।

भवर्त्तवमाय दिनमर्तुं रक्षुन् पतिप्यत् करग्रहसर्पिः ॥६-६॥

मनुरागवन्तमपि साधनयोर्दधतं अपु सुखमतापकरम् ।

निरदासयद्रविमपेत वसु विषदासयादरदिगणिका ॥६-१०॥

विविधाम्नि भवति मृदा विमसा परलोकमभ्युपगते विविशुः ।

यवसत त्विषः कयविनेतरया सुसमोभ्यवमनि स एव पतिः ॥६-१३॥

प्रदण्डजसजराजीमुग्धहस्ताप्रपादा बहुसममुपयाना नृजलेन्दोवराज्ञी ।

अनुपतति विरादैः पत्रिणो व्याह्वरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वं सध्या ६-१४

॥ ११-४८ ॥

सपदि कुमुदिनीभिर्भीसित हा तपापि सपमगमदपत्राभ्यारवा—

इति दीपित कलत्रदिक्षन्तयान्नेयमिन्दुर्बेहति कुरन्त्येव अटन्तं दुःखम् - ११-४९

इस स्तोत्रों में प्रत्येक शब्द अत्यन्त विदित रूप रखता है ।

यदि सामान्य के कई स्तोत्रों को हमने मूलक के रूप में देखा है—
यत्तु किन्ना है । यहाँ पर फिर कुछ उदाहरण दे दिये हैं—

यमोजिमतानिमुहुरमुवाह—

अमुमनह—

वनं वनाये विपपात्रकोत्पा,

विपम्नगानामविपम्नगानाम् ॥४ १५॥

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजपण्डं ,

त्यजतिमुदमुसुका प्रीतिमावयकवाक-

उदयमहिमराविमयीति वीर्यागुरस्तं,

हृत विमिससितानां ह्री विचित्रो विपाक ॥११-१४॥

नीचे के श्लोकों में वपमा की वैचित्र्य के साथ सोकोत्तर पदविन्यास है—

रणांगपाशोऽपदमेन रोचिषामुपित्विषाः संवसिता विरेचिरे ।

असत्सत्ताक्षान्तरगोचरस्तरोस्तुषारमूर्त्तिरिव नक्तमस्रक ॥१ २१॥

प्रफुल्लता पिच्छनिर्भरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छवपांशुपांशुभिः

परस्परेण च्छुरिताममच्छवी तदेकवर्णाविव त्री वसूवतु ॥१ २२॥

छंदे सर्व में वृत्त और बीसवां श्लोक साहित्य के लिये प्रसिद्ध है पहले सिद्ध किया गया है । उन्हें वहाँ पर देखें । प्यारहमें छंद का उल्लेख तथा प्रथम का भी उल्लेखों पर साहित्य के लिये देखें ।

यतः इस कथन में सचाई है कि माघे सन्ति वयो गुणा ।

(३) मेघे माघे गत वयः—

माघ साधारण खेती के कृषि एवं विद्वान् शो के नहीं जिससे उनकी कविता बिना किसी प्रयास या विद्वत्ता के ही सरलता से समझ में आ जाय । माघ की वांछितपूर्ण रचना का परिपोषण करने में बहुत समय लगता है । पाठक तथा सहृदय व्यक्ति इस काव्यकृषी महा-सागर में पहरे उतर कर ही बहुमुख्य रत्नों को प्राप्त कर सकते हैं । कालिदास का मेघदूत भी वैसे एक छोटी-सी रचना है, पर उसकी समझने के लिए जीवन का अनुभव चाहिए । मेघदूत की समझ वहाँ माघ के महाकाव्य के साथ इसीलिए दी गई है उनके समझने के पूर्ण विद्वत्ता अध्ययनशीलता और साहित्य और इन सबसे अधिक जीवन व्यापी अनुभव अपेक्षित है । यतः माघकथन को समझने के लिए तो पाठक में बहुमत्ता भी होनी चाहिए । बहुमत्ता के लिए वयों के अध्ययन की और अध्ययन के पश्चात् मनन की आवश्यकता है । स्पष्ट है कि यह सम्मति माघ के बहुमत्त होने की ओर इंगित करती है ।

(४) काव्येषु माघः कवि कालिदासः

यह सम्मति साधारण विद्वानों की नहीं है । इसमें काव्य और कवि का भी सूच्य भेद किया गया है । कवि कालिदास का धर्म है कविपु कालिदास । सब ही कवि विद्वत्ता पर जैसे काव्यकार नहीं हो सकते और न कालिदास जैसे कवि ही । कवियों के बहुत गुणों की वहाँ सब की जाय और किसी एक व्यक्ति में इन गुणों की स्थिति खूबी जाय तो ऐसा व्यक्ति संस्कृत साहित्य में तो क्या विश्वसाहित्य में कालिदास के समान धायर ही मिले ।

इसी तरह काव्य-चंगलों की सपूर्ण अभिवृत्ति यदि किसी एक ही काव्य में हुई जाय तो संस्कृत साहित्य में तो सिद्धुपासक के अतिरिक्त दूसरा काव्य नहीं मिल सकता । जिस प्रकार कवित्व क्षेत्र में माघ काविदास का स्थान वही से सकते उसी प्रकार सास्त्रधम्मत्त लक्षणों से युक्त महाकाव्य के क्षेत्र में सिद्धुपासक का स्थान काविदास नहीं ले सकते ।

इस सम्मति में कई उपमाओं से माघ के सिद्धुपासक का काव्य क्षेत्र में जो स्थान है उसे निर्धारित करने का प्रयत्न किया है । व्याकरण तथा साहित्य शास्त्र की दृष्टि से इस उक्ति में दोष अवश्य है पर उसके पीछे जो समझ है वह ठीक है । काव्योपमा-कवि काविदास" किसी पद्योक्त का एक भाग है । इसकी व्याख्या नहीं कर दी गई है ।

(६) मुरारि पद चिन्ता चेतदा माघे रतिं कुस—

यह सम्मति बड़ी स्पष्टि दे सकते हैं जिन्होंने माघ के जीवन का अध्ययन करने के साथ-साथ उनके काव्य का भी अध्ययन किया है । हमने देखा है कवि ने घोर घोर शृङ्गार दोनों को भक्ति में पर्यवर्तित किया है । राजाधरा होते हुए भी महाकवि माघ धर्म में एक महान् मूल्य के रूप में सामने आये हैं । सारा का सारा काव्य जिसको बनाने में या पूर्ण करने में उनकी बुद्धिबल घोर कृदावस्था का मुख्यबल समय तथा धी दृष्टि के चरलों में समर्पित है । मुषिष्ठिर क रूप में, धीप्स क रूप में कवि ने अपने मूल स्वरूप का परिचय दिया है और जिस प्रकार एक भक्त अपने धारम्य के विरोधियों को सहन नहीं कर सकता उसी प्रकार वह सिद्धुपास का कम उनके भक्त हृदय की बहुत बड़ी विजय है । यक्ति के जो स्वरूप उनके महाकाव्य में आये हैं उनकी कर्त्ता सम्पन्न हो चुकी है ।

(७) तावद्मा भारवेर्भाति यावन्माघस्य मोदय —

यह सम्मति तुलनात्मक है, तुलनात्मक आलोचना का सर्वथा प्रयोग भारत में इसी प्रकार से था । भारवि घोर माघ की तुलना के प्रसंग में वह बात स्पष्ट दी गयी है कि माघ काव्य की रचना के पीछे भारवि की चैती हुई कीर्ति प्रशंसा के रूप में (प्रतिस्पर्धा के रूप में भी) काम कर रही थी । भारवि के वस्तु विन्यास, उमरी घंटी तथा उनके ही पात्रों के द्वारा माघ ने सिद्धुपास के रूप में मानो किरातार्जुनीय का एक संशोधन प्रस्तुत किया ऐसा संशोधन जो विद्वानों को आनन्द हुआ । इस सम्मति में एक उपमा के द्वारा भारवि की भी विहीनता की ओर संकेत किया गया है । वह उपमा है—मूर्ख की शीघ्रि माघ माघ के पूर्व ही प्रसर होती है, माघ के आने पर वह मन्द पड़ जाती है । सहृदय अनुमान कर सके हैं कि इस उपमा का अर्थित्य माघ और भारवि की रचनाओं के साथ ठीक बैठता है अथवा नहीं ।

(८) माघेर्नय च माघेन कम्प-कस्य न जायते—

इस सम्मति में माघ की उद्भट विद्वता की ओर संकेत है । सामान्य कवि उनके सामने टिक नहीं सकते सामान्य विद्वान् अपनी कविता को समझने का दम्भ अधिक देर तक नहीं रख सकते । वहाँ माघ पहुँच जाते वहाँ विद्वानों में नवियों में एक चलवती सी मज आता है ।

(२) मायेनविघ्नोत्साहानोत्सहन्ते पदक्रमे—

माय का पदसाहित्य अपनी प्रौढता और तीव्र पति से काव्य के धारम्भ से अन्त तक चलता है। माय की शक्ति के कारण कोई विघ्न भाषा सामने आने का भी साहस नहीं करती। इस सम्मति में सचाई है। वही पदसाहित्य का विचार किया गया है वही इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश मिल सकेगा। यह सम्मति माये समित्त चयो युगा के एक अंश का विवेक रूप से कथन है।

(१०) माय शिष्टुपासवधं विदधन् कविमयवधं विदधे—

इस सम्मति में वही माय को कवियों में विजयी बताया है, वही माय काभीन कविता की ओर भी संकेत किया गया है। माय के युग में कवि प्रायः प्रतिभाहीन विद्वत्ता से दूर और अदम्य होते के लीए तो इस युग में कवि यानी तो मिलते हैं पर कवि नहीं। जब माय कविता के क्षेत्र में आये तो जैसा 'मायेनैव मायेन कव्यं कस्य न आवते' इस सम्मति की व्याख्या में कहा गया है कवियों को कंप कपी होने लगी। उनके सामने नतमस्तक होकर रहने में ही उनको अपना भला बीजने लगा।

इन दोनों सम्मतियों से माय के सम्बन्ध में विद्वान् धातोषकों ने ये बातें बतायी हैं—

क—माय की रचना से औपम्य अर्थवाच्यीर्य और पदसाहित्य के कुन्दर सम्बन्ध है।

ख—माय बड़े परिवर्तनी कवि है वह विघ्नों से बचाना नहीं जानते।

ग—माय अकृत कवि है।

घ—माय काव्य धारम-सम्मत लक्षणों से युक्त है।

च—मायिक की तुलना से ही नहीं दूसरे कवियों की तुलना में भी माय का स्वान् प्रशंसनीय है।

छ—माय के पाणिग्रय से कवि और विद्वान् पटभूत हैं। माय को समझने के लिए विद्वत्ता और जीवन व्यापी अनुभव चाहिए।

ज—माय का भाषा पर शक्ति अधिकार है।

संस्कृत के महाकवियों में माघ का स्थान

संस्कृत का कविता-साहित्य एक महासागर है। सपत्न्य तीन सहस्र वर्षों में हमारे कवियों की रचनाएँ इस महासागर में धाकर मिलती रही हैं। आश्चर्य तो यह है कि सपत्न्य महाकाव्यों की संख्या अधिक से अधिक तीन शकों में बिनी जा सकती है। भारतवर्ष जैसे महान् और पुराना देश उसकी ऊँची संस्कृति, वैज्ञानिक भाषा, ऐसी भाषा जिसमें मानव के सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार, भाव तथा कर्म के प्रकाशन के लिए न केवल बहुत सभ्य भंडार ही है, बल्कि नवीन शब्दों की निरन्तर रचना करते रहने की पूरी क्षमता भी है और एक ओर इस बात को देखकर और दूसरी ओर महाकाव्यों की कमी को देखकर केवल यही कहा जा सकता है हमारे काव्य साहित्य के सहस्रों वर्ष ऐतिहासिक घटनाओं के बड़े-छोटे से गह्वरे में। पर फिर भी तो कुछ हमारे पास बचा है वह हमारे अतीत के आभास स्वरूप की एक ऐसी शक्ति को प्रस्तुत कर ही देता है, जिससे हम अपने आपको दूसरी बातों के सामने कम-से-कम हीन तो नहीं मान सकते। हमारे धारम सम्मान के लिए प्राप्त यह चीज़ी सी सावनी भी पर्याप्त है।

वही एक काव्य के क्षेत्र में महाकवि माघ के स्थान का सम्बन्ध है महाकाव्यों की संख्या की कमी इस स्थान के निर्धारण में विशेष कठिनाई नहीं है। प्राप्त महाकाव्यों में पाँच महाकाव्यों के नाम विद्वानों के हाथ बड़े धावर के साथ लिए जाते हैं। वे महाकाव्य हैं—रघुपथ कुमारसम्भव किष्किर्णमीय, धिमुपान बध और नैषधीय भरिष्ठ। इनमें दो महाकाव्य महाकवि कालिदास के एक महाकवि भारवि का, एक महाकवि माघ का और एक महाकवि श्री हच का है। कालिदास की रचना शैली में और दोष तीन की रचना शैली में भेद है, उसी भेद को ध्यान में रखते हुए काव्य में माघ-वच के स्थान पर कलापरा की प्रमुखता को पक्ष्य करने वाले विद्वानों ने इन पाँच महाकाव्यों में से भी किष्किर्णमीय धिमुपान बध और नैषधीय भरिष्ठ को छुटकर इनको कृष्णमी की संज्ञा दी है।

एक तरह से तो विद्वानों ने ये भी खोली बनाकर माघ को उनमें से एक खोली में स्थान दे दिया है। सरलता और रस-अमानता इन दो आधारों से मिलकर पहली श्रेणी बनती है और अटिगता तथा अनन्तर प्रमाणता दूसरी श्रेणी के प्रमुख आधार हैं। अटिगता का सम्बन्ध विद्वता तथा बहुमता के प्रीति प्रकाशन से है। स्पष्ट है कि माघ के महाकाव्य में दूसरी श्रेणी की रचना का सम्मान है।

जब भारतीय माघ और भीरुप इन तीनों में महाकवि माघ का स्थान कीजता है वह

(६) माघेनविघ्नोत्साहानोत्सहन्ते पदक्रमे—

माघ का पदलाभित्य अपनी मौजस और तीव्र गति से काव्य के धारम्भ से भक्त तक चलता है। माघ की शक्ति के कारण कोई विघ्न बाधा सामने आने का भी साहस नहीं करती। इस सम्मति में सच्चाई है। जहाँ पदलाभित्य का विचार किया गया है वहाँ इस सम्मत्य में पर्याप्त प्रकाश मिल सकता है। यह सम्मति माघे सन्निध बयो गुणा के एक अंश का विशेष रूप से कथन है।

(१०) माघ विदुषाभिवर्धं विदधन् कविमयवर्धं विदधे—

इस सम्मति में जहाँ माघ को कवियों में विजयी बताया है वहाँ माघ कावीन कविता की ओर भी संकेत किया गया है। माघ के युग में कवि प्रायः प्रतिभाहीन विद्वत्ता से दूर और मनवीर होते थे तभी तो इस युग में कवि मानी तो मिलते हैं पर कवि नहीं। जब माघ कविता के क्षेत्र में आये तो वैसे माघेनैवम माघेन कस्य कस्य न बाधते इस सम्मति की व्याख्या में कहा गया है कवियों को कंप कपी होने लगी। उनके सामने नतमस्तक होकर रहने में ही उनको अपना भला बीछने लगा।

इन दसों सम्मतियों से माघ के सम्मत्य में विद्वान् धारोचकों ने ये बातें बतायी हैं—

क—माघ की रचना में औपम्य अर्बपाम्भीर्य और पदलाभित्य के सुन्दर सम्मत्य है।

ख—माघ बड़े परिमयी कवि हैं वह विघ्नों से परझाना नहीं जानते।

ग—माघ बहुत कवि हैं।

घ—माघ काव्य धारम-सम्मत लक्षणों से युक्त हैं।

च—भारवि की तुलना में ही नहीं दूसरे कवियों की तुलना में भी माघ का स्थान प्रथमणीय है।

छ—माघ के पाणित्य से कवि और विद्वान् पराभूत हैं। माघ को सम्मत्य के लिए विद्वत्ता और बीरन व्यापी अनुभव चाहिए।

ज—माघ का भाषा पर अधिकार अधिकार है।

संस्कृत के महाकवियों में माघ का स्थान

संस्कृत का कविता-साहित्य एक महासागर है। समय-समय पर तीन चार सौ वर्षों से हजारों कवियों की रचनाएँ इस महासागर में धाँक कर मिसती रही हैं। बाद-वर्ष तो यह है कि उपसम्प्रा महाकाव्यों की संख्या अधिक से अधिक तीन सौकों में गिनी जा सकती है। भारतवर्ष जैसे महान् धीरे-पुछाना देश उसकी छोटी संस्कृति वैज्ञानिक मापा ऐसी भाषा जिसमें मानव के सुख से सुख तथा दुःख से दुःख विचार, भाव तथा कर्म के प्रकाशन के लिए न केवल बहुत शब्द संसार ही है, बल्कि नवीन शब्दों की निरन्तर रचना करते रहने की पूरी समझ भी है और एक ओर इस बात को देखकर धीरे-धीरे महान् महाकाव्यों की कमी को देखकर केवल यही कहा जा सकता है हमारे वाक्य साहित्य के सहस्रों वर्ष ऐतिहासिक घटनाओं के बड़े-बड़े से गूढ़ हो गए। पर फिर भी तो कुछ हमारे पास बचा है वह हमारे घटीत के सामान्य स्वरूप की एक ऐसी छीन्नी तो प्रस्तुत कर ही देता है, जिससे हम अपने आपको दूसरी जातियों के सामने कम-से-कम हीन तो नहीं मान सकते। हमारे धार्य सम्मान के लिए प्राप्त यह योग्यी ही सामग्री भी पर्याप्त है।

वहीं तक काव्य के क्षेत्र में महाकवि माघ के स्थान का सम्बन्ध है महाकाव्यों की संख्या की कमी इस स्थान के निर्धारण में विशेष कठिनाई नहीं है। प्राप्त महाकाव्यों में पाँच महाकाव्यों के नाम विद्याओं के द्वारा बड़े धाँवर के साथ लिए जाते हैं। वे महाकाव्य हैं—रघुवच, कुमारवच, किरातार्जुनीय विष्णुपाल वच और नीचनीय वच। इनमें दो महाकाव्य महाकवि कालिदास के, एक महाकवि भारवि का एक महाकवि माघ का और एक महाकवि भी होंगे हैं। कालिदास की रचना सीमा में धीरे-से तीन की रचना सीमा में भेद है, घटी भेद की ध्यान में रखते हुए काव्य में भाव-वच के स्थान पर कलापत की प्रमुखता को पश्य करने वाले विद्वानों ने इन पाँच महाकाव्यों में से भी किरातार्जुनीय विष्णुपाल वच और नीचनीय वच को कुनकर इनको बृहन्मयी की संज्ञा दी है।

एक तरह से तो विद्वानों ने ये दो खेती बनाकर माघ को उनमें से एक खेती में स्थान दे दिया है। सरसता और इस प्रमाणता इन दो साधारणों से मिसकर यही भली बखती है, धीरे-घटिसता तथा धर्मकर प्रमाणता दूसरी खेती के प्रमुख साधारण हैं। घटिसता का सम्बन्ध विद्वता तथा बहुमता के प्रोढ़ प्रकाशन से है। स्पष्ट है कि माघ के महाराम्य में दूसरी भली की रचना का सम्बन्ध है।

यह भारवि माघ और भीहूँ इन तीनों में महाकवि माघ का स्थान कीन का है यह

(६) मायेनविष्णोस्साहानोत्सहस्ते पदक्रमे—

माय का पदसाहित्य अपनी प्राञ्जल और तीव्र शक्ति से काव्य के धारम्भ से अन्त तक चलता है। माय की शक्ति के कारण कोई विष्णु बाधा सामने आने का भी साहस नहीं करता। इस सम्मति में सच्चाई है। जहाँ पदसाहित्य का विचार किया गया है वहीं इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश मिल सकेगा। यह सम्मति माने सन्निवृत्तियों के एक प्रसंग का विशेष रूप से कथन है।

(१०) मायः शिशुपान्नवर्षं विदमन् कविमदवधं विदधे—

इस सम्मति में जहाँ माय को कवियों में विजयी बताया है वहीं माय कालीन कविता की और भी संकेत किया गया है। माय के युग में कवि प्रायः प्रतिभाहीन विद्वत्ता से दूर और अवसीर होते थे तभी तो इस युग में कवि मानी तो मिलते हैं पर कवि नहीं। जब माय कविता के क्षेत्र में आते तो जैसा 'मायेनैव मायेन कस्य कस्य न जायते' इस सम्मति की व्याख्या में कहा गया है कवियों को कप कपी होने लगी। उनके सामने तत्त्वतः होकर रहने में ही उनको अपना भला बीछने लगा।

इन दोनों सम्मतियों से माय के सम्बन्ध में विद्वान् घासोचकों ने धे धाँसे बताया है—

क—माय की रचना में औपम्य अर्थव्याप्तीय और पदसाहित्य के सुन्दर सम्बन्ध है।

ख—माय बड़े परिश्रमी कवि हैं वह विष्णो से पदकाना नहीं जानते।

ग—माय बहुत कवि हैं।

घ—माय काव्य शास्त्र-सम्मत लक्षणों से युक्त हैं।

च—माय की तुलना में ही नहीं दूसरे कवियों की तुलना में भी माय का स्थान प्रचलनीय है।

छ—माय के पाण्डित्य से कवि और विद्वान् पराभूत हैं। माय को समझने के लिए विद्वत्ता और जीवन व्यापी अनुभव चाहिए।

ज—माय का भाषा पर अमित अधिकार है।

(परिशिष्ट भाग)

१

महा काव्य की परम्परा

विश्व-साहित्य में संस्कृत-साहित्य ही प्रति प्राचीन है। इस साहित्य में सर्व प्रथम यदि कही पर हमको काव्य की असक रिक्तताई पड़ती है तो वह आर्य में है जिसमें मन्त्र के रचयिता कहीं-कहीं कवि का रूप वा लेते हैं। वैदिक साहित्य, बाह्य आरम्भिक तथा उपनिषदों में भी कहीं-कहीं पर काव्य का सा आनन्द पाता है। इतिहास और पुराणों के प्रास्वानों में सर्वत्र तो नहीं पर कई स्थलों में कविता का स्वरूप प्रकट हुआ है। जैसे पुराणों की रचना छन्दों में हुई है पर उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता। उनका उद्देश्य दूसरा है। संस्कृत वा प्रादि काव्य वा महाकाव्य तो वास्वीभि ह्युत रामायण ही है। रामायण की प्रति महाभारत में भी कहीं-कहीं पर काव्य दोषों की धामा देखने को मिलती है किन्तु उसका भी मुख्य विषय काव्य न होकर इतिहास ही है। इतिहास में महाभारत की गणना की गयी है। महाभारत में महा काव्य के समस्त लक्षण चटित नहीं होते हैं किन्तु फिर भी वह एक महा काव्य जैसा है और अपने धाम में पूरा एक समग्र साहित्य है।

(१) महाकाव्य के लक्षण अथि पुराण के अनुसार—

सर्वबन्धो महाकाव्यं आरम्भं संस्तुतेन यत् ।

इतिहासकथोद्भूत इतरं वा लक्षणयम् ॥

संस्कृतप्रपाठाभि निवर्त नातिविस्तारम् ।

शब्दवर्णानि चमत्कारानिचर्या प्रियुमा तथा ॥

पुष्पिताप्राविर्निर्वाचनार्थवर्णनः सौ- ।

पुष्पता तु मित्तुताया नातिस्तोत्रसर्पकम् ॥

अतिप्रवरिकाहाम्यामेकतोर्ये पर- ।

मात्रमाप्यपर सर्वे प्रास्तयेतु च वरिचम- ॥

कम्पोरितिविभक्तस्ततिमन्विषोयानादरः सताम् ।

पुती वचनविन्यासरसतीवरितापुती ॥

समस्त भरताप्यमविमार्दतिविर्नी- ॥

सर्ववृत्ति प्रपुल च सर्वमात्रमावितम् ॥

विचार करना है। भारवि पूर्ण के कवि हैं और हय बाह के। बताया जा चुका है कि भारवि माघ से बढ़कर हैं और यह भी बताया जा चुका है कि श्री हर्ष की रानी पर माघ का पर्याप्त प्रभाव है। जिस प्रकार भारवि से आगे बढ़ सकने के लिए माघ की प्रवृत्ति या श्री हय को श्री माघ से आगे बढ़ने के लिए बैठा ही प्रवृत्ति या। इस प्रवृत्ति का उपयोग एक विद्यास महाकाव्य की रचना में तो हो गया पर यह रचना श्री हर्ष की मौलिक प्रतिभा को प्रकाशित न कर सकी।

अतः यह भी सरलता से निष्कर्ष निकल आता है कि महाकवि माघ बृहत्कवी में सर्व श्रेष्ठ हैं।

इस निर्णय पर आगे में विद्वान् आलोचकों की सम्मतियाँ जिनका जम्मा इससे पूर्व के प्रकरण में हो चुका है, बड़ी सहायक है। सबसे पहली बात तो यह है कि कवियों में कालिदास का सर्वप्रथम स्थान निश्चित होने के साथ ही साहित्य-शास्त्र द्वारा सम्मत लक्षणों से पूर्ण माघ का ही महाकाव्य है। लक्षणों की इसी सम्पूर्णता दूसरे महाकाव्यों में नहीं है। दूसरी बात यह है कि माघ अपने युग के सबसे बड़े चाहे न हों पर बड़े प्रतिनिधि प्रवृत्ति हैं। उनका महा काव्य तो निश्चय उस युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है। ऐसी रचना जिसमें रस पलकता पत्र और पाण्डित्य पल लीनों की बड़ी चर्चरत ध्वनि है उनके कवि-मन से बढ़ाने वाली न होकर अपने प्राण्य के प्रति समर्पण के भाव से लिखे हुए हैं। तीसरी बात यह है कि आगे आने वाले संस्कृत कवि हो नहीं अपना लो तथा उत्तर भारतीय प्राकृतिक आर्य भाषाओं के प्राथमिक महा कवियों की रचना रानी पर बिना व्यापक प्रभाव महाकवि माघ का पड़ा है उतना किसी दूसरे महा कवि का नहीं पड़ा।

इन सब बातों को अनुमति दृष्टि से देखने पर यदि कोई यह निर्णय दे-दे कि महाकवि माघ कवियों में महा कवि कालिदास के बाद प्रथम स्थानीय है तो इसमें हमारी दृष्टि में कोई अनौचित्य नहीं है। जैसे आलोचकों ने उनके महा काव्य को प्रथम स्थान भी दिया है, उसके लिए उनके पास सबसे प्रमाण और प्रबल युक्तियाँ भी हैं, पर कालिदास के काव्यों की आभा कुछ और ही है नहीं-कहीं कालिदास की कृतियों से चाहे माघ की कृतियाँ बिछिड़ें हैं, पर सर्वांगीण दृष्टि से (महा-काव्य की आलोचना के लिए तो उसके स्वयं के अनुकूल सर्वांगीण दृष्टि की आवश्यकता है।) यदि देखें तो माघ को कालिदास से बढ़कर कह देना न केवल कालिदास के प्रति अश्रम्य है बल्कि यह तो सहृदयता से प्राप्तचित मानवता का भी विरुद्ध है। ऐसा विरुद्ध जो अत्यन्त प्रवृत्ति से प्रसूत होकर आत्मवात् के महा पाप में प्रवृत्ति होता है।

प्रसूत विवेचना के आधार पर यह स्थिर होता है कि महाकवि कालिदास के बाद मंडल के महा कवियों में महा कवि माघ का स्थान न केवल सर्व प्रथम है, अपितु सर्वश्रेष्ठ भी है।

चाहे महा कवि माघ युगानुसारी के युग-निर्माता नहीं पर समय और परिस्थितियों ने उन्हें युगान्तरकारी बना ही दिया।

(परिशिष्ट भाग)

१

महा काव्य की परम्परा

विश्व-साहित्य में संस्कृत-साहित्य ही अति प्राचीन है। इस साहित्य में सर्व प्रथम यदि कहीं पर हमको काव्य की मूलक शिक्षा दी पड़ती है तो वह ऋग्वेद में है जिसमें मन्त्र के रचयिता कहीं-कहीं कवि का रूप पा लेते हैं। वैदिक साहित्य बाह्यण धारम्यक तथा उपनिषदों में भी कहीं-कहीं पर काव्य का सा आनन्द पाता है। इतिहास और पुराणों के धारम्यकों में सर्वत्र तो नहीं पर कई स्थानों में कविता का स्वरूप प्रकट हुआ है। जैसे पुराणों की रचना छन्दों में हुई है पर उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता। उनका सर्व रूप ब्रह्म है। संस्कृत का प्रादि काव्य या महाकाव्य तो वास्वीनि कृत रामायण ही है। रामायण की भाँति महाभारत में भी कहीं-कहीं पर काव्य चीनी की धामा देखने को मिलती है किन्तु उसका भी मुख्य विषय काव्य न होकर इतिहास ही है। इतिहास में महाभारत की गणना की गयी है। महाभारत में महा काव्य के समस्त साराण^१ पटित नहीं होते हैं किन्तु फिर भी वह एक महा काव्य वैया है और अपने आप में पूर्ण एक समग्र साहित्य है।

(१) महाकाव्य के लक्षण अग्नि पुराण के अनुसार—

सर्पबन्धो महाकाव्यं धारम्यं ससृष्टेन यत् ।

इतिहासकथोद्भूतं इतरं वा सबाधयम् ॥

मन्त्रभूतप्रपाणानि निषत् नातिविस्तरम् ।

अथवर्षाति अथवातिअथवर्षा शिष्ट्युमा तथा ॥

बुध्पिताप्रादिभिर्ब्रह्माभिर्गर्भैश्चादिभिः समैः ।

मुक्ता तु निम्नमुक्तास्ता नातिर्लपितसर्गवत् ॥

अतिगर्भविकाष्टाम्यामेकसंकोलकैः परः ।

मात्रपाप्यपरः सर्गः प्राग्रस्त्येषु च परिचयः ॥

कल्पोऽतिनिम्बितस्तस्मिन्विशेषाद्वाहः सताम् ।

दुती बचनविम्यासरततीचरिताद्भुतः ॥

तमसा मप्राप्यप्यविमार्भरतिनिर्भरैः ॥

सर्वपुति प्रवृत्त च सर्वबाधप्रभाहितम् ॥

चाहिए कवि वास्मीकि से ही भारतीय महाकाव्यों की परम्परा का बीजण हो जाता है। इस रामायण द्वारा भारतीय जीवन में असीम रस और जीवन का संसार हुआ है। रामायण राम राज्य का आदर्श विम पाठकों के सम्मुख उपस्थित करती है। इसमें रामायण से जो वाक्य बाध निकली उसमें विभिन्न काव्यों का तथा महा काव्यों की ओरों में विभक्त होकर न केवल संस्कृत कविता को किन्तु प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की कविता का रस-सिक्त किया है।

महाभारत के कर्ता व्यासदेव के भी प्रायः समस्त काव्य खड़ी हैं जिससे विभिन्न काव्यात्मिकाओं को लेकर काव्यकार अपने काव्य के लिए कथावस्तु भेटी रहे हैं। महाभारत में व्यासजी ने जीवन के मौलिक पक्ष की असीम शक्ति को अभिव्यक्त करके उसकी महत्ता तथा व्यर्थता को प्रवर्धित किया है। हिन्दू समाज की नैतिक, धार्मिक सामाजिक आदर्शों का इस महाभारत में बहुत सूक्ष्म तथा विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ को भारतीय संस्कृति का विरचकोप भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। महाभारत में मानव जीवन की सुन्दरतम तथा पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

अर्चरीतिरसं स्पृष्टं गुणं गुणविभुषणं ।

अतएव महाकाव्यं तत्कर्ता च महाकविः ॥ (अ १३, २४।१२)

महाकाव्य के लक्षण बड़ी के काव्यावर्ण के अनुसार:

सर्ववर्णो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।

आशीर्वात्क्यावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुद्रम् ॥

इतिहासकथोद्भूतमप्यपि लक्षणम् ।

अतुर्बर्णकलोपेत् अतुरोवातगमकम् ॥

ममराज्यवर्णस्तु चन्द्राकोपमवर्णम् ।

उद्यानसलिलद्वीपमनुष्यान्तरात्सर्वः ।

विमलमर्मावर्णम् कुमारोदयवर्णम् ।

मन्त्रभूतप्रपातादिनायकाभ्युदयरविः ॥

अर्चवृत्तमर्चसिद्धं रसभावविराजितम् ॥

अर्चवृत्तविराजितं वाच्यम् ॥ गुणविभुषिः ॥

अर्चवृत्तविराजितं वाच्यं लोकरं जनम् ।

काव्यं कस्योत्तररामायि जायते लक्षणम् ॥

महाकाव्य के लक्षण विवरणार्थ इति साहित्यपर्यटन के अनुसार—

सर्ववर्णो महाकाव्यं तत्रकी नायकः पुरः ।

सर्वं लक्षणं वापि यीरोवातगुणान्वितः ॥

एक वर्णवत्तु वाः गुणज्ञा बहुवर्णं वा ।

नृ पार वीरतास्तानामेकोऽप्यु रस इत्येते ॥

रामायण और महाभारत—

भारतीय महाकाव्यों की परम्परा का रामायण तथा महाभारत से होता है। संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की जो रचना हुई वह प्रायः उपन्यस नहीं है। कई शताब्दियों बाद ब्रह्मघोष की रचना हमारे सामने आती है। ब्रह्मघोष को कामिवास का परवर्ती कवि माना जाता रहा है किन्तु अब अधिकांश विद्वान् उन्हें कामिवास से पूर्ववर्ती मानते हैं। यह मान्यता अभी तक पूर्णतया अविद्य नहीं हो सकी है कि वह कामिवास के परवर्ती महाकवि हैं।

महाकवि ब्रह्मघोष ने जो महाकाव्यों की रचना की है। सोमशतक में १५ सर्ग हैं जिसमें बुद्ध के उपदेश से उनके कनिष्ठ भ्राता नन्द अपनी शिव पत्नी कुम्भरी तथा सांसारिक सुखों की त्यागकर बौद्धधर्म की दीक्षा लेते हैं। इस नाति एक रोचक काव्य शैली में महाकवि ने बौद्धधर्म के सब सिद्धान्तों को समझाया है।

बुद्धचरित २८ सर्गों का महाकाव्य है जिनमें केवल १७ ही उपलब्ध हैं। इनमें भीतम बुद्ध के जीवन चरित्र का विस्तृत वर्णन है जब तक बौद्ध उपदेश तथा सिद्धान्तों का भी प्रकाश है। काव्य की दृष्टि से इस महाकाव्य के पहले बीच तथा आठवाँ सर्ग और ठेकरुवें सर्ग के मार-विजय का कुछ भाग बहुत ही सुन्दर है। छेप अंश पार्थिक तथा दार्शनिक बातों से इतना दब गया है कि वह खीनकरनन्द को नहीं प्राप्त कर सका। ब्रह्मघोष निःशन्देह एक महाकवि हैं।

अङ्गानि सर्वत्रिपरिष्ठा सर्वे नादकस्तंभकः ।

हतिहासोद्भूतं वृत्तनन्वा सज्जनभामयः ॥

आचारस्तस्य वर्गः स्तुतौत्येवं च परं नैवैत् ।

आदौ नमस्त्रिप्राप्तौर्वा वस्तुनिर्वेद्य एव वा ॥

वचनप्रिया कलावीना कला च पुण्योत्तमम् ।

एकवृत्तमये- पदोत्तरानेय्यवृत्तकी ।

नातिभक्त्या नातिवीर्याः सर्वे भद्राविका इह ।

नामावृत्तमयः वचापि सर्वे करचन हरन्ते ॥

सर्पाभ्योवाधितपश्य कथम्या- सूचनं नयेत् ।

संध्यासूर्येन्दुर जभीप्रयोपवासावातरः ॥

प्रातर्नम्याह्नमृगया रीक्षतु वचसागराः ।

संयोगविप्रतीकं च मुनिस्वर्गपुराण्वराः ॥

एतुप्रपालोपयननगपुत्रोदयादयः ।

कर्त्तव्या यथायोग्यं सौवापांगा समी इह ॥

कवेरु तस्य वा नाम्ना धन्यकान्येतरस्य वा ।

नामास्य सर्वोवादेयकथया सर्वनाम तु ॥

प्रादि कवि शास्त्रीय से ही भारतीय महाकाव्यों की परम्परा का बीजपात हो जाता है। इस रामायण द्वारा भारतीय जीवन में धार्मिक एवं धीरे जीवन का संचार हुआ है। रामायण राम राज्य का मार्ग प्रशस्त करने के सम्मुख उपस्थित करती है। इसमें रामायण से जो काव्य धारा निकली उसने विभिन्न काव्यों अथवा महाकाव्यों की श्रृंखला में विभक्त होकर न केवल संस्कृत कविता को किन्तु प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की कविता का एक संचार दिया है।

महामारुत के कर्ता व्यासदेव के भी प्रायः समस्त काम्य ज्ञासी हैं जिससे विभिन्न ब्राह्म्यादिकाओं को लेकर काम्यकार अपने काम्य के लिए कथावस्तु सेते रहे हैं। महामारुत में व्यासजी ने जीवन के भौतिक पक्ष की असीम उन्नति को विधित करके उसकी नस्वरता तथा तथ्यहीनता को प्रकटित किया है। हिन्दू धर्मावलम्बी की नैतिक, आर्थिक सामाजिक आदर्शों का इस महामारुत में बहुत सूक्ष्म तथा विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इस ग्रन्थ को भारतीय संस्कृति का विश्वकोष भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। महामारुत में मानव जीवन की सुन्दरता तथा पूर्ण सन्तुष्टि हुई है।

सर्वरीतिरसं स्पृष्टं पुष्टं गुरुविशुद्धम् ।

अतएव महाकाव्यं तात्कर्त्ता च महाकविः ॥ (पृ ३६, पृ४।३२)

महाकाव्य के लखन बंगी के काव्यादर्श के अनुसार

सर्वद्वन्द्वो ब्रह्माकाम्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ।

प्राचीर्नमस्तिभ्यावस्तुनिर्वेष्टो वापि तस्मिन् ॥

इतिहासकपीरसूतमन्यद्वापि सदाध्ययम् ।

अथर्ववेदोपनिषत् अथर्वोपनिषत् ॥

नयराणं यद्यन्तर्गन्त्राकोप्यवर्णने ।

ब्रह्मवैवर्तसिंहजीभाष्यपालएवोत्तर्यः ।

विप्रलम्भे विद्यते इव कलारो यप्यवर्तते ।

संज्ञातप्रपञ्चाविनायकाश्चर्यैरपि ॥

पञ्चदशप्रतिष्ठापितं चतुर्विंशत्युपरित ॥

सर्वमन्त्रिष्विस्तीर्णं श्रम्यन्तः सप्तभिर्भिः ॥

सर्वं हि मयि स्यात्ताम्रं ह्येतत् सोऽहम् ।

पुनर्यं पश्योतु इह ध्यायि ज्ञापेत् सगर्हकृति ॥

महाकाव्य के लक्षण विद्यमान इस साहित्यपर्यटन के माध्यम—

सर्वबन्धो महाभाष्यं तत्रैको नायकः सः ।

समंघं शत्रियो वापि पीडोदात्तपानाभितः ॥

एक वीरदत्ता भूषाः कुलमा बाहोऽपि वा ।

१७ सार श्रीरामायणमैत्रोऽन्दी एव इष्यते ॥

रामायण और महाभारत—

राष्ट्रीय महाकाव्यों की परम्परा का रामायण तथा महाभारत से होता है। संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की जो रचना हुई वह प्रायः उपलब्ध नहीं है। कई घटावियों बाद परबोध की रचना हमारे सामने आती है। अरबबोध को काबिबास का परवर्ती कवि माना जाता रहा है किन्तु अब अभिकाश विद्यान् उन्हें कासिदास से पूर्ववर्ती मानते हैं। यह मान्यता अभी तक पूर्णतया संश्लिष्ट नहीं हो सकी है कि यह कासिदास के परवर्ती महाकवि हैं।

महाकवि अरबबोध ने दो महाकाव्यों की रचना की है। सौम्यराम्य में १८ सर्ग हैं जिनमें बुद्ध के उपदेश से उनके कनिष्ठ भ्राता नन्द अपनी प्रिय पत्नी सुन्दरी तथा सांसारिक सुखों को त्यागकर बौद्धधर्म की दीक्षा लेते हैं। इस भाँति एक रोचक काव्य रानी में महाकवि ने बौद्धधर्म के उच्च सिद्धान्तों को समझाया है।

बुद्धचरित २५ सर्गों का महाकाव्य है जिनमें केवल १७ ही उपलब्ध हैं। इनमें भीतम बुद्ध के जीवन चरित का विस्तृत वर्णन है जब तक बौद्ध उपदेश तथा सिद्धान्तों का भी प्रकाश है। काव्य की दृष्टि से इस महाकाव्य के पहले पाँच, तथा आठवाँ सर्ग और तेरहवें सर्ग के मार-विजय का कुछ भाग बहुत ही सुन्दर है। शेष अंश धार्मिक तथा शार्ङ्गिक भावों से इतना दब गया है कि यह सौम्यराम्य को नहीं धाँप कर सका। अरबबोध निःसन्देह एक महाकवि हैं।

अङ्गानि सर्वेऽपिरस्ता सर्वे नाहकसंभवः ।

इतिहासोद्भूतं कृतमभ्यज्ञा सम्भवाचयम् ॥

आचारस्तस्य सर्वाः : स्तुतोप्येकं च कर्तुं शक्नुते ।

आदौ नमस्त्रिभुवानीर्वा वस्तुनिर्देशो एव वा ॥

व्याधिभिन्ना असादीनां सर्वा च गुणदीर्घतमम् ।

एकवृत्तमयै पदोद्वेगान्तेऽप्यवृत्तम् ।

नातिशयान्ता नातिदीर्घाः सर्वा अष्टादशिका इह ।

नामावृत्तमयः व्याधि सर्वे कश्चन दृश्यते ॥

सर्वाभ्योमावित्तस्य कथायाः सुखं भवेत् ।

संख्यामुपैतुर अनीग्रहोपमानावाधरा ॥

प्रार्थनार्थमात्रमुपया दीप्तनुबनमाधरा ।

संनोपविप्रार्थनो च मुनिस्त्वर्गपुराधरा ॥

एतन्मयालोपवदमन्त्रपुत्रोदधाराधरा ।

वर्तनीया मयाधर्मो सर्वाधारा आदौ इह ॥

कवेरु तस्य वा नाम्ना अम्यवस्थैतस्य वा ।

नामाधरा सर्वोपादेयकथा सर्वाधारा नृ ॥

यदि प्रबोधन के पूर्ववर्तित्व की बात पूर्णतया संदिग्ध हो जाए तो कालिदास ही प्रथम राजा सर्वप्रमुख महाकवि हैं। कालिदास का स्वविकास प्रायः एक भी विद्वानों के लिए एक बटिल एवं विचारवस्तु विषय है।

रघुवंश और कुमारसंभव कालिदास के दो महाकाव्य हैं। कुमारसंभव की रचना रघुवंश के पूर्व की है। कुमार संभव में १७ सर्ग हैं किन्तु ऐसा भी माना जाता है कि कालिदास ने केवल ८ सर्व ही बनाये दिए नवसर्ग किसी बाद के कवि के द्वारा जोड़ दिये गये हैं। कुमारसंभव में कवि ने चित्र पार्वती की भागवीय रूप में प्रत्यक्ष-सीला दिखावटी है। इसमें हिमालय का चर्चित वर्णन हुआ है, फिर सीतरे सर्व का वसन्त वर्णन, नीचे सर्व का रति विभाव और पौषर्ग सर्ग का पार्वती ब्रह्मचारी संवाद बहुत ही मार्मिक है। इस महाकाव्य में कविकालिदास ने योवन की सरस क्रीडा का वर्णन किया है।

रघुवंश का क्षेत्र विद्याल है जिसमें कालिदास की सम्पूर्ण कला की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें राजा दिलीप से लेकर अजितवर्ण तक के इतिहास के कई दृश्य पाठकों के सम्मुख आये हैं। कहा जाता है रघुवंश में २५ सर्ग थे किन्तु आज १२ सर्ग ही प्राप्त हैं।

प्रबोधन और कालिदास के महाकाव्यों की शैली परस्पर सरस तथा मधुर है। अपमार्द बड़ी सुन्दर और रोचक है। स्थान-स्थान पर प्राकृतिक वर्णन बड़े शरीर है। भाषा की सरसता, भावों की कोमलता वर्णन की शरीरता देखने योग्य है। ये महाकाव्य बँदरों की शैली के हैं जिनमें भाव और भाषा दोनों का मधुर सामंजस्य है। कथानक समुचित रूप से आगे बढ़ता है।

कालिदासीतर महाकाव्य—

प्रबोधन तथा कालिदास के परात् के महाकाव्यों का कथानक अधिकतर समान है प्रथम महाकाव्य से लिया गया है। महाकाव्य में सभी एक ही मानव-जीवन का विस्तृत चित्रण के आधार पर ये विद्वानों के नजरों में से थे—

बन्धनारिक्तपलकामरार्तिहर्षाङ्गुनेतामनुजर्षर कालिदासाः ।

क्यातो बाराहमिहिरो नृपतेः सामाया रत्नानि चै वरपथिर्नरं विक्रमक्य ॥

कालिदास के माटकों से जो इस बात की पुष्टि होती है। अपने द्वितीय माटक विक्रम-बोर्षीय के नाम द्वारा तथा प्रसकी कतिपय छन्दों, जैसे विष्णु या महेश्वरीयकार पर्यायिक विक्रम महिम्ना बर्तते अथान् अनुत्पुक्तः अन्तु विक्रमासंकारः । के द्वारा कालिदास अपने प्राथमिकता विक्रमादित्य का नाम ध्वजित करते हैं। अतः कालिदास के स्वविकास का प्रथम अन्तर्गत विक्रमादित्य के स्वविकास से पूर्णतया सम्बद्ध है। पर यह विक्रम कीन से इसमें सभी तक सम्बद्ध है। विभिन्न मतों से कालिदास की सत्ता छठी शताब्दी में प्रथम शताब्दी ईसवी के बीच में नहीं है। कालिदास नामवारी कवि अनेक हुए हैं इनमें से कौन से कालिदास विक्रम के साथ के हैं यह भी एक विचारणीय विषय है। यहाँ हमारा तात्पर्य यह कालिदास से है जिन्होंने रघुवंश और कुमारसंभव महाकाव्यों की रचना की थी। मुना जाता है यह कालिदास अज्ञानता के समकालीन थे।

सर्वांगीण विमल की प्रमुखता से होता था किन्तु अब महाकाव्य केवल पौरंदर्य प्रपञ्च कला प्रदर्शन का साधारण बन गया। बाह्य के महाकाव्यों में शृङ्गारिकता धारणिक बढ़ी और भाषा भी विकट तथा दीर्घ समासों से युक्त हो गयी। पूर्व के महाकाव्यों की सरलता तथा स्वाभाविकता के स्थान पर पीछे के महाकाव्यों में क्लिष्टता और कृत्रिमता अधिकतर जमिष्ठ होने लगी। धर्मकार, वेष-योजना एवं राज्य-विन्यास जातुरी प्रदर्शित करना ही मानो उनका कार्य रहा। काव्य में धीरे-धीरे बहुशता का प्रदर्शन फैलता गया। राजाओं के यहाँ कवियों का पम्पाधित होना इसका कारण था। राजाओं की रक्षि के अनुसार उनके दरबारियों की रक्षि भी बरती। काव्यों के रचयिता राजाओं के अधिष्ठित कवियों ने भी अपने राजाओं को प्रमत्त करने के लिए कविता के स्थान पर वीरगम्य का प्रदर्शन करना आरम्भ कर दिया। राजा स्वर्ग विद्या और साहित्यिक रक्षि के होते थे अतः उनमें वास्तविक युद्धों की परीक्षा करने की क्षमता होती थी। धीरे-धीरे कविता के लक्षण और विषय बढ़ने लगे। उनका कड़ाई से पालन होने लगा। कविता का स्वरूप बदलता गया। काव्य मानों सृष्टियों के मंडल बनने लगे।

एक और बात देखने योग्य हुई। साधारणतः संस्कृत कवियों की दृष्टि अब वर्तन प्रधान हो गई। वे कथानक के उस पहलू को लेने लगे जो उनको चन्द्रोदय का नम विहार का वसन्त प्रभा या स्त्रियों की मुखरता का या केसि कलाप का ज्ञान करने में सहायक हो सके। भारवि और भास तक संस्कृत-काव्यों में धर्म—प्राचीन का प्रयत्न बना रहा परन्तु भाषोत्तर कालीन कवियों में क्रमशः व्याकरण और धर्मकार साधन आदि का ज्ञान प्रधान होना लगा। बाह्य रूप प्रधान बनता गया। वस्तुतः वस्तु शीघ्र बाह्य रूप अधिक धारणक बनता गया और आन्तरिक सौन्दर्य की दृश्यता होने लगी। प्राचीन कवियों में औपम्य रक्षा की विन्यास रहती थी परन्तु कवियों में वह उत्तरोत्तर कम होती गई।

कासिका के बाद भारवि का नाम महाकवियों की शृङ्खला में आता है। भारवि की प्रसिद्धि का कथानक महाभारत के नम पूर्व से लिया गया है। संस्कृत काव्यों की दृष्टान्त (किरात, विष्णुपानथ और नैगम) में इसका नाम ऐतिहासिक क्रम से प्रथम आता है। यह महाकाव्य शीघ्र प्रधान है। इसमें १८ सर्ग हैं। किरातार्जुनीय में प्रथम रस धीर है। यह पार तथा धर्म रस भी है। इस महाकाव्य का आरम्भ 'धी' शब्द से हुआ है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिमश्लोक में 'सर्ग' शब्द प्रयुक्त है। यह महाकाव्य धर्म धीरस्य (धर्म धर्मों में) (१) भारवि के धर्म धीरस्य धीर धर्म धीरस्य के प्रदर्शनार्थ कुछ 'उत्तर' भी है के श्लोकों में दिये जा रहे हैं—

राजा की कुलक्षता का परिचायक श्लोक देखिये—

इतप्रमाराज्य ग्रीष्महीमुखे जितं तपानैव निवैरिष्यत् ।

न विष्ये तस्यग्रीव न हि प्रियप्रवचतुमिच्छति मुपाहर्तवित् ॥

भीष्म के श्लोक में दुर्गोपन की सुश्रुता प्रतीति है—

न तेन तज्यं वचिदुत्तं यत्तु इत् न वा कीच विविहमानमम्

पुलाहुरोग्रा मिरीमिरकृते नराविषैर्मांसमिहास्य शासनम् ॥

विष्णु धर्म का प्रतिवेद्य) के लिए प्रसिद्ध है। महाकाव्य का कथानक छिन्न है पाशुपतात्म प्राप्त करने—एन्द्र तथा शिव के लिए की गई समस्या है। किरातार्जुनीय के आठव, नवें तथा दसवें सर्ग के कई सरल स्वस हैं। आत्मन्वन तथा उद्दीपन दोनों कर्मों में प्रकृति का सुन्दर वर्णन हमसे है। इस काव्य में सुविशेष ध्यान तथा पौरुष भरपूर है। भारवि का स्थिति काय ६० ई के आस-पास है।

सट्टिकाव्य—महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य की रचना श्रीवर्धन के राज्य काल में सौराष्ट्र की अस्तमो नगरी में की। भट्टि महाकाव्य में २२ सर्ग हैं जिसमें रामायणी कथा का सारगमित रूप से दिग्दर्शन कराया गया है। यद्यपि व्याकरण के नियमों का बिसरीकरणा ही महाकाव्य का प्रधान उद्देश्य है फिर भी इससे कथा में कहीं छिद्रमिठाया या घरोपकृता आई हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। कविता का भी अभाव नहीं। अक्सर घात होते ही कवि की कविताशक्ति ने भी अपना अमरकार प्रदर्शित किया है। अर्धकार्यों के अन्तर्भाव १०वें सर्ग में है। यह एत आत्म काव्य है।

शिव दर्शन से विवृत आत्मवेष्टा का रमणीय वर्णन कैंसा है—

त्रिमेधरा दधति वाक्पुष्पुणी निवद्धहृदि शिविताकुमोक्षया ।

तामारेषां कांशुस्माद्विशं कृपा विवेर कुलेषु न पालिपन्नवत् ॥

संस्तुत दण्डोत्तमगणपतस्तथा का यह दोषक देखिये—

मुनेरसौ विश्वमन्त्रोहितो गिर्या सिद्धिं कलमस्य विद्यती ।

सुमनसिर्वाक्पुष्पुणी कोमला यनुमिषं पोत्रमिदोमुपकृति ॥४१॥१॥

दिन का अन्त समय है रात्रि का अन्त आगमन है। सूर्यास्त और अग्रोदय का यह वर्णन—

अमुपलिभिर्यथोप विपासु रंजितं यनुमिषं रसमिषा ।

वसोवतामिष यत् नितिमैव्यं तोहितं यनुवहाह पतंगः ॥

रात्रि और अग्रोदय का दूसरा और अन्तमिषम हम देखिये—

संविपासुमिदं यनुवहाहो यन्ममस्य सत्तर्कनुवसोय ।

यान्ति नमिषया सतविष्णु संसपतो रजतकृपदेव्युः ॥

शिवदर्शन में यदु रंजित का स्मरण हो जाता है—

वतिषय सत्कार मुष्परम्भस्यमुष्पुद्गिभोऽयं विविधसिमुधार ।

मुष्पुद्गिभोऽयं यन्ममस्य सत्तर्कनुवसोय सत्तर्कनुवसोय ॥

यत्तविष्णु का वर्णन भी कैंसा योमनीय है—

निरोहितास्तानि नितास्तमाकुसेरवा विपाहवत्तर्क प्रसारिषि ।

यनुवहाहो यन्ममस्य सत्तर्कनुवसोय सत्तर्कनुवसोय ॥४४॥

भारवि ने योपम सत्तर्कों का प्रयोग नहीं किया है। योपम के प्रति अज्ञता की राज भक्ति रंजितो को उभका गुणोप वर्णन है न लीजिये—

यदुःखो मानयना यन्ममस्य यनुमिषं यन्ममस्य सत्तर्कनुवसोय ।

न संहृतास्तमय न वैदयुक्तय विपासि वाग्दन्तयुधिः सतीद्विमुद् ॥११॥१॥

मट्टि को यौमर्तुहरि के नाम से भी लोग कहते हैं। इनका स्थितिकाल १२० ई० के समयमाना जा रहा है। चित्तालेखों में श्रीधर सेन नाम वाले चार राजाओं का उल्लेख आया है, प्रथम २०२ ई० के है, द्वितीय ११० ई० के है जिनके चित्तालेख में किसी मट्टि नामक बिहान् को कुछ भूमि देने का उल्लेख है और अन्तिम राजा का सन् १३१ ई० का उल्लेख है। यह सब बातें घटो के उत्तरार्द्ध में धनरूप होये।

जानकीहरण—कुमारदास ही जानकीहरण महाकाव्य के रचयिता हैं। निहल की जनपति के साधार पर ११७१२२६ ई० तक ये वहाँ के राजा रहे। इनके महाकाव्य में काविकावृत्ति (१२० ई०) का उल्लेख है और वायन ८०० ई० में अपने राज्य में जानकी हरण से उद्धरण दिये हैं, यहाँ इनका स्थितिकाल १५० ई० से ७५० ई० के मध्य ही होना चाहिये।

जानकीहरण महाकाव्य २१ सर्गों में है किन्तु उपलब्ध केवल १५ सर्ग ही हैं। बर्णन यौगी सुन्दर है। बँदरों कीति में है। अनुप्रास इनको प्रिय प्रवीण होते हैं। कुमार दास ने कालिदास को अपना आदर्श माना है।

विद्युत्तलवध—विद्युत्तलवध महाकाव्य के रचयिता महाकवि माध हैं। उनका स्थिति काल सन् ७८४ से ८८० तक का हो सकता है। इनका जन्म सन् ७४४ से ८८० ई० के मध्य में होना चाहिये। महाकवि माध एक छोटे छोटे महाकाव्यों के स्वरूप में परिवर्तन-सा दीप्त करने लगा। काविकामोत्तर काव्य में जो पांडित्य प्रदत्त प्रकृति और कलात्मक छंद का पक्ष दीप्त बढ़ता है वह माध के युग में आकर पूर्ण विकास को पा गया। मट्टि बँदाकरण तथा अमंकार सास्त्री थे। महाकवि माध ने अपने महाकाव्य में कालिदास की सावतारमता आर्य की कलाप्रवीणता और मट्टि के व्याकरण पांडित्य तथा अमंकार की छंद तीनो का प्रस्तुत समन्वय प्रस्तुत किया।

विद्युत्तलवध में २० सर्ग हैं। कथानक मधुर छोटा है किन्तु २० सर्गों में जो तजोब बर्णन हुए हैं उनमें अमंकारों की छंद तथा कलात्मक की उद्गार देने में योग्य हैं। यह और रस का काव्य है शृङ्गार इसका अर्थ बनकर आया है तथा अन्य रसों के भी छोटे बरत हैं। और रस की अंशना को देने पर अष्टिकाव्यों का स्मरण हो आता है। माध परित-कवि तो नहीं हैं किन्तु अरित काव्यों (विक्रमांक देव अरित, नवछाहृष्टांक अरित, छट्टीहृष्टांक महा काव्य) की वर्णन बरम्परा के बीच इसमें विद्यमान हैं।

विद्युत्तलवध महाकाव्य में प्रकृति का बर्णन आर्यिक से बहुत ही अधिक सुन्दर बन पड़ा है। कवि ने मानवोचित शृङ्गारी चैष्टायें प्रकृति के अन्तर्गतों में सा कर भरदी है। अमंकार विधानों में भी उन्होंने अपने शृङ्गारी पांडित्य का तथा अमंकार उल्लेखों का प्रयोजन परित्यक्त दिया है। माध का कोई स्तोत्र ऐसा नहीं है जिसमें अमंकार न हो और कोई अमंकार ऐसा नहीं है जिसमें अमंकार न हो रस न हो आचार न हो।

माध के समय तक छोटे छोटे कविता अमंकार प्रमाण हो गयी थी। वे कवि अमंकार के अमंकार पर अधिक ध्यान देने लगे थे। महाकवि माध ने अपने अपने कवियों का पद प्रदर्शन इस रूप में किया। यही हर्ष जिन्होंने वैषयीय अरित लिखा है वह ने बाँते अमंकार यही। यही हर्ष के अमंकार महाकाव्य की बरम्परा माध-शुभ्र हो गयी।

विष्णुन प्रथम का समीप) के लिए प्रसिद्ध है। महाकाव्य का कथानक छिन्न से पाद्युपतास्त्र प्राप्त करने—एक तथा छिन्न के लिए की गई तपस्या है। किराताकुलीन के पाठकों, नये तथा दसवें सर्ग के कई सरस स्वस हैं। आसम्भन तथा उद्दीपन दोनों रूपों में प्रकृति का सुन्दर वर्णन हमारे है। इस काव्य में सुविशेषी व्यंग्य तथा पांडित्य भरपूर है। भारवि का स्थिति काल ६०० ई० के आस-पास है।

महिकाव्य—महाभारत भट्टि ने अपने महाकाव्य की रचना भीमरसेन के राज्य काल में खोटाख की बस्ती नगरी में की। भट्टि महाकाव्य में २२ सर्ग हैं जिसमें रामायणी कथा का सारसहित रूप से दिग्दर्शन कराया गया है। यद्यपि व्याकरण के नियमों का विधिवीकरण ही महाकाव्य का प्रधान उद्देश्य है फिर भी इससे कथा में कहीं विविधता या घरोबकता आई हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। कविता का भी प्रभाव नहीं। प्रचुर प्राप्त होते ही कवि की कविशक्ति में भी घणना कमरकार प्रदर्शित किया है। अक्षरारों के प्रदीपने १०वें सर्ग में है। यह एक शास्त्र-काव्य है।

प्रिय दर्शन से विहृत आरुचिहा का रमणीय वर्णन करता है—

प्रियेवरा दण्डति बाधमुन्दुजी निबद्धहृदि तिविस्तारुतोन्मया ।

तमापि नापुनमाहितं कृपा पितेव पुण्येण न पाणिपल्लवम् ॥

सप्रित्त रूपयोगारम्भरूपमा दा यह दसोक देखिये—

मुडेरतो विड ममोत्तोलित शिष्या पित्रवी कलमस्य विप्रती ।

मुद्राजलिन्यरुद्धशिरीष कोमला धनुर्विष योत्रनिरोद्धुवच्छति ॥१३६॥

दिन का प्रकाश समथ है रात्रि का डहर घायन है। सुरास्य और चन्द्रोदय का यह दर्शन—

घटुपल्लिमिरतबीव पिपासु पंचमं मनुमुग रक्षयित्वा ।

वसोव्तामिव गतं सिद्धिमेव्यन्तोहित कपुवबाह पतय ॥

रात्रि और चाद्रमा का दूसरा और नयनानिघाम हृदय देखिये—

सीवपातुममिदैकमुदाये ममपस्य रासबंशुजलोपा ।

यामिनी बगित्वा ललबिद्धो जीत्यतो रजतहंमवेमु ॥

तिमिरवर्णन में रक्तु घंटा का स्वरण हो जाता है—

कठिपय सहकार नुप्यरम्यस्तनुतुहिनोऽन्य विभिन्नसिन्धुवार ।

सुखिमुपल्लिप्तामममोत्तरी सधुपययो जिशिरा स्वरकज्जु ॥

प्रसदिहार का वर्णन भी करता प्रेमणीय है—

तिरोहितातानि नितामनासुरेया बिगाहावलकं प्रसारिषि ।

दुपुंशुमा यदगाहिदयता तिरोहदुग्धामरिती सरोद्धी ॥७४॥

भारवि ने शेषरस्य सप्तमों का प्रयोग नहीं किया है। कुर्योपन के प्रति अनन्ता की राज भक्ति वंशी को उठवा गुणोप वर्णन देख लीत्रिये—

परीमो मानयना यनाबिता धनुभु त संयति लव्यभीर्तय ।

न संहृतास्तस्य न नैववृत्तयः प्रियाणि बाग्दन्वधुभिः समीहितम् ॥१३६॥

भट्टि को श्रीमद्भट्टि के नाम से भी लोग कहते हैं। इनका स्थापितकाल १२० ई० के लगभग माना जा रहा है। चिन्तासेखों में श्रीधर देव नाम वाले चार राजाओं का उल्लेख आता है प्रथम ५०२ ई० के हैं द्वितीय ११० ई० के हैं जिनके चिन्तासेख में किसी भट्टि नामक विद्वान् को कुछ भूमि देने का उल्लेख है श्रीर भट्टिच राजा का उन् १४१ ई० का उल्लेख है। परन्तु यह बातची घाटी के उत्तरार्ध में सम्भव होवे।

जानकीहरण—कुमारदास ही जानकीहरण महाकाम्य के रचयिता हैं। निम्न की जनश्रुति के आधार पर ११७१२१ ई० तक वे वहाँ के राजा रहे। इनके महाकाम्य में काविकान्तवृत्ति (१५० ई०) का उल्लेख है और बालन ८०० ई० में अपने ग्रन्थ में जानकी हरण से उद्धरण दिये हैं, परन्तु इनका स्थापितकाल १५० ई० से ७२० ई० के मध्य ही होना चाहिये।

जानकीहरण महाकाम्य २५ सर्गों में है किन्तु उपलब्ध केवल ११ सर्ग ही हैं। बर्णन दीर्घा सुन्दर है। रीतिरिी रीति में है। अनुशास इनकी प्रिय प्रतीत होती है। कुमार दास ने कालिदास को अपना आदर्श माना है।

चिदुपासक—चिदुपासक महाकाम्य के रचयिता महाकवि माध हैं। इनका स्थापित काल उन् ७४४ से ८८० तक का हो सकता है। इनका जन्म उन् ७४४ से ८८० ई० के मध्य में होना चाहिये। महाकवि माध एक छोटे-छोटे महाकाम्यों के स्वरूप में परिवर्तन का शीक बढ़ने लगा। काविकाशोत्तर काम्य में जो पांडित्य प्रदर्शन प्रशंसित और बलात्मक सोप का वन दीर्घ पढ़ता है वह माध के युग में पाकर पूर्ण विकास को पा गया। भट्टि रंभाकरण तथा भर्षकार सात्वी थे। महाकवि माध ने अपने महाकाम्य में कालिदास की भावतरंगता मार्ग की कलाप्रवीणता और भट्टि के व्याकरण पांडित्य तथा भर्षकार की सत तीनों का समस्त समन्वय प्रस्तुत किया।

चिदुपासक बच में २ सर्ग हैं। कथानक यद्यपि छोटा है किन्तु २० सर्गों में जो सजीव बर्णन हुए हैं उनमें भर्षकारों की सजा तथा कल्पना की उद्गम देखने योग्य हैं। यह और रम का काम्य है शृङ्गार रसका संय बनकर आया है तथा ग्रन्थ रसों के भी छंद वन तक है। और रस की रचना को देखने पर चरितकाम्यों का स्मरण हो आता है। माध चरित-नरि तो नहीं है किन्तु चरित काम्यों (विजयार्क देव चरित, लवसाहसिक चरित राईदेव महा काम्य) की रचना परम्परा के बीच इसमें विद्यमान है।

चिदुपासक महाकाम्य में प्रकृति का बर्णन भारवि से बहुत ही अधिक सुन्दर बन रहा है। कवि ने मानवोचित शृङ्गारी केष्टों प्रकृति के ठाँकरणों में सा कर रानी है। भद्रलुग विधानों में भी उन्होंने धर्म शृङ्गारी पांडित्य का तथा समस्त उचितों का उल्लेख चरित्र किया है। माध का कोई विशेष ऐसा नहीं है जिसमें भर्षकार न हो और रंभाकरण ऐसा नहीं है जिसमें चरितरार न हो रम न हो भी-चर न हो।

माध के समय तक छोटे छोटे बहिरा चरितरार-प्रधान हो गये थे। चरितरार के चरितरार पर अधिक ध्यान देने लगे थे। महाकवि माध ने इन चरितरारों में प्रदर्शन इस रूप में किया। श्री हर्ष जिन्होंने नैषध चरित लिखा है उसमें चरितरार रहीं। श्री हर्ष के चरितरार महाकाम्य की परम्परा में कुछ ही हैं।

परिशिष्ट २

शिष्टोपासमय महाकाव्य के छन्द और अलंकार

महाकाव्य पाद्य का वैराग्य छन्दों के कुछ छ प्रयोग में भी स्पष्ट है। शिष्टोपासमय महाकाव्य में श्लोकों की कुल संख्या १६८४ है। यस्मिन्माय में पञ्चद्वयें सर्ग में ३४ श्लोकों को तथा कविर्बध वर्णन के ३ स्तोत्रों को प्रतिष्ठित माना है। इस सम्बन्ध में पहले विचार हो चुका है। प्रतिष्ठित स्तोत्रों को पूजक कर दिया जाय तो यह संख्या १६४५ रह जाती है। इस महाकाव्य में कौन-कौन से छंद कितनी बार पाये हैं यह नीचे दिये हुए विवरण के सम्बन्ध में संख्या का परिचय विना आश्चर्य की आवश्यकता है यह विवरण में सर्व बार संख्या का परिचय दितेगा—

क्रम	छन्द नाम	संख्या	क्रम	छन्द नाम	संख्या
१	अनुष्टुप	२२६	१६	मंजुमापिली	६५
२	अपराजित	१५३	१७	उत्पत्ता	१२६
३	स्वामता	६७	१८	शार्ङ्गविजयिणी	५
४	वसंतमित्रता	८६	१९	मंदारमन्दा	३
५	शबोद्धता	८६	२०	इन्द्रवज्रा	२
६	प्रमितामरा	८७	२१	मलममूर	२
७	श्रीपद्मद्विजय	८१	२२	दीवक	१
८	छातिनी	८१	२३	अतिपायिनी	१
९	वैरागीय	७६	२४	महापायिनी	१
१०	कुम्भिका	७८	२५	हरिणी	१
११	वसन्त	७१	२६	रत्नविजय	१
१२	अहंविजय	७१	२७	रत्नमरा	१
१३	मातिनी	७२	२८	वर्षातोमरा	१
१४	इन्द्रविजय	७१	२९	मुरवन्त	१
१५	वसन्त	१८	३०	श्रीपद्मविजय	१

परिशिष्ट ३

शिशुपालवध का अलंकार

कामिदास और सरवधोप के परचाए के कवियों में शृङ्गारिक वर्णन की ओर प्रवृत्ति घर्न घर्न बढ़ती गई। सोच ठाट-बाट से जैसे-जैसे रहते गये उनके प्रत्येक कार्य में भी जैसे ही ठाट-बाट और शान-शीकत का प्रदर्शन होने लगा। महाकवि माघ का मुख उज्ज्वल काष्ठ का या तिरमें मांडनिक गणपत्य राजाधों का आधियम शृङ्गारिक को ही प्रभावता ही पाठी थी। जनता में भी यह शृङ्गार भावना बढ़ने लगी। शान-शीकत के लिए एक विशेष प्रकार का मान प्रचलित हुआ। पसत कवियों की रचनाओं में भी अलंकारों का प्रयोग बढ़ने लगा। भारवि दण्डी और बाण कवियों ने अलंकृत रचना का मनोहर स्वरूप प्रस्तुत किया। माघ ने भी अपनी कविता काव्यिनी का अधिक से अधिक सुन्दर दिखाने के लिए और बातों के साथ साथ अलंकारों से सुसज्जित किया। बिकृत धयबा बोझिल नहीं। उनकी रचना में प्रायः सभी प्रकार के अलंकारों का समावेश हो गया है। साथ में बिधे हुए विवरण से स्पष्ट उनकी अलंकार-सज्जा का सगंवार परिचय मिल जायगा।

प्रथम सर्ग —

छन्द —

- (१) वसन्तवृत्त इति सम्पूर्ण सर्ग में है।
- (२) पुष्पिताश—७४
- (३) पार्श्वविक्रीडितम्—अन्त में है।

प्रसकार —

- (१) प्रथम और विरोध प्रसर्गकार वृत्तनुशास और द्विकानुशास सम्प्रदायकार—१
- (२) पदार्थ हेतुक काव्यमिति—३
- (३) व्यतिरेक—२ २७
- (४) उपमा—६, १६
- (५) तदनुष्ठ—६
- (६) द्विकानुशास व वृत्तनुशास की संसृष्टि—११
- (७) उत्प्रेक्षा—१२ १२, १०
- (८) प्रतिपद्योक्ति—१३, २३ १२, ६९
- (९) प्रसन्नान्तरम्यास—१४ १७ ६७, ७२
- (१०) निदर्शना—१९
- (११) पदार्थ हेतुक काव्यमिति तथा उपमा के संवागिभाव का संकर—२४
- (१२) उपमा और प्रतिपद्योक्ति की संसृष्टि—२५
- (१३) वाच्यार्थ हेतुक काव्यमिति—२६
- (१४) वसन्त—२७ ३३
- (१५) स्निग्ध परंपरित रूपक—३४
- (१६) द्विकानुशास—३५
- (१७) विरोधामास—३६
- (१८) प्रतिपद्योक्ति—३७
- (१९) स्निग्ध परंपरित रूपक तथा उपमा का संवागिभाव संकर—३८
- (२०) पदार्थ हेतुक काव्यमिति—४१
- (२१) वरिष्ठ—४०
- (२२) वसन्तवृत्त—४१
- (२३) वसन्त वसन्त—४३

परिशिष्ट ३

शिशुपालघ्न का अलंकार

कालिदास और धारवाण के पदवाच के कवियों में शृङ्गारिण वर्णन की ओर प्रवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ती गई। लोग ठाट-बाट से बँधे-बँधे रहते गये उनके प्रत्येक कार्य में भी जैसे ही ठाट-बाट और शान-शौकत का प्रदर्शन होने लगा। महाकवि माघ का सुय राजपूत काल का वा त्रिगुणें मानसिक गणतन्त्र राजाओं का आधिक्य शृङ्गारिक को ही प्रधानता दी जाती थी। जनता में भी यह शृङ्गार भावना बढ़ने लगी। शान-शौकत के लिए एक विशेष प्रकार का मान प्रचलित हुआ। पल्लव कवियों की रचनाओं में भी अलंकारों का प्रयोग बढ़ने लगा। मारुति दण्डी और बाण कवियों ने अलङ्कृत रचना का मनोहर स्वरूप प्रस्तुत किया। माघ ने भी अपनी कविता कामिनी को अधिक से अधिक सुन्दर दिखाने के लिए और बातों के साथ साथ अलंकारों से सुसज्जित किया। विद्वत् भयवा बोधित नहीं। उनकी रचना में प्रायः सभी प्रकार के अलंकारों का समावेश हो गया है। साथ में दिये हुए विवरण से स्पष्ट उनकी अलंकार-सज्जा का सम्यक् परिचय मिल जायगा।

प्रथम संग —

सूच्य —

- (१) बंलस्पृष्ट इस सम्पूर्ण सर्ग में है ।
- (२) दुष्प्रियाया—७४
- (३) पार्श्वविक्रीडितम्—अन्ध में है ।

प्रसंगिक —

- (१) भविक और विरोध प्रसंगिकार वृत्त्यनुशास और ऐकानुशास सम्पादकार—१
- (२) पदार्थ हेतुक काव्यमिति—१
- (३) व्यतिरेक—२ २७
- (४) उपमा—६, १६
- (५) तदनुप—६
- (६) ऐकानुशास व वृत्त्यनुशास की संवृष्टि—११
- (७) शरीरता—१२, २२ १०
- (८) प्रतिघयोक्ति—१३, २३, ६२, ६६
- (९) प्रसंगिकारम्भास—१४ १७, १७ ७२
- (१०) निवर्तना—१९
- (११) पदार्थ हेतुक काव्यमिति तथा उपमा के प्रयोगविभाज का संकर—२४
- (१२) उपमा और प्रतिघयोक्ति की संवृष्टि—२५
- (१३) वाच्यार्थ हेतुक काव्यमिति—२६
- (१४) श्लेष—२८, ४३
- (१५) स्तिष्ट परंपरित रूपक—३४
- (१६) ऐकानुशास—३५
- (१७) विरोधभास—३६
- (१८) प्रतिनस्तूपमा—३८
- (१९) रित्त परंपरित रूपक तथा उपमा का प्रयोगविभाज संकर—३९
- (२०) पदार्थ हेतुक काव्यमिति—४१
- (२१) वरिष्ठति—४०
- (२२) नमुचय—४१
- (२३) शब्द श्लेष—४३

- (२४) विषम—२६ ६५
 (२५) विरोध—५७
 (२६) समासोक्ति—५८ ६३
 (२७) अतिशयोक्ति तथा व्युत्पन्न प्राप्त—७४
 (२८) निदर्शना उपमा अपह्नव—७५ ।

दूसरा सर्ग —

छन्द —

- (१) इस सर्ग में अनुष्टुप् छन्द है ।
 (२) औपम्यन्धिक वृत्त—११६
 (३) वृत्तविनैविष्ट—११७
 (४) नासिनी छन्द अन्त में है ११८

प्रसङ्ग —

- (१) रूपक—१ ८८ ८२ ११७
 (२) उत्प्रेक्षा—४ ६७
 (३) उपमा—३, १० १८ २४ २८ २९, ३३ ३८ ३९ ३२ ७८ ८४ ८६ ८७ ८९
 (४) प्रतिबन्ध—८
 (५) अर्थान्तरम्यास—१२ १३ ३५, ४० ५१ ५२ ६१ ७० ८० ८५, १०० १०४
 (६) उपमा और अनुमास की संसृष्टि—१४
 (७) विरोधान्मास—१६
 (८) अस्वभाव में संबंध रूप अतिशयोक्ति—१७
 (९) निदर्शना—१८, ४२
 (१०) उपप्लव—२०
 (११) उपप्लव तथा अपह्नव का संकर—२१
 (१२) वृत्तान्त—२३ २७ ३४ ३४ ८३
 (१३) विशेष तथा अतिशयोक्ति—२३
 (१४) वृत्तान्त शब्द के आ आने से उपमा अस्वभाव हो गया है एवं अनुमास के होने से एकावली—३३
 (१५) रूपक तथा अर्थान्तरम्यास की संसृष्टि—३८
 (१६) व्यतिरेक ४६ ४८
 (१७) अग्रानुग्रह ४८, ५३
 (१८) समासोक्ति ५२
 (१९) पर्यायोक्ति, ६३
 (२०) व्येयानुप्राणित उपमा ७४ ८८, ८७

- (२१) परिणाम, ७७
 (२२) पूर्णोपमा ८०
 (२३) अविद्ययौक्ति ८२
 (२४) सिद्ध परंपरित रूपक ८३, १११
 (२५) काम्यलिय १०७
 (२६) बीपक, १०८
 (२७) रूपक और अनुवाद ११८

चौथी सूर्य—

सूत्र—

- (१) उपजाति (इन्द्रवज्रा और उर्वेन्द्रवज्रा का विषय) समस्त सर्व में है ।
 (२) पंचकावली वित्त भयवा वृत्त भी धन्य में ।

प्रलेकार—

- (१) उपमा, १४ ३६, ७३
 (२) निदर्शना और अविद्ययौक्ति, ३
 (३) उत्प्रेक्षा, ३, ७ ८, १०, २१, २८, ३८, ४० ४१ ४२ ४३ ४८, ७१ ७७ ८८
 (४) अविद्ययौक्ति, ६, ७ १२, १३ १४ २३, ३८ ४४ ५५ ५६
 (५) समानोक्ति और उत्प्रेक्षा का संकर, १३
 (६) काम्यलिय—१८, २२, ७८ ८१
 (७) स्वेवानुमाखित उपमा—२० ३६ ६२
 (८) समानोक्ति—२८
 (९) स्वभावोक्ति—३०
 (१०) अर्थात्तरम्यास—३१
 (११) काम्यलिय—३२, ६१
 (१२) उत्प्रेक्षा और रूपक का संकर—३८
 (१३) सामान्य और उत्प्रेक्षा का संकर—४३
 (१४) सामान्य और निदर्शना का संकर—४४
 (१५) प्रान्तिवाग् ४८ ५१
 (१६) विरोधाभास—५०
 (१७) सुस्वयौक्ति—५३ ५४ ६०
 (१८) अर्थात्तर—५७
 (१९) स्वेवानुमा—६१
 (२०) भावोपमा—६९

- (२१) स्वभाषोक्ति—६६ ६८
 (२२) सपथा तथा उत्पत्त्या का संकर—६९
 (२३) स्वेय संकीर्ण उत्पत्त्या—७१
 (२४) स्वभाषोक्ति और अनुप्रास—८०
 (२५) व्यतिरेक—८२

अतुल्य सर्ग—

छन्द—

- (१) सपथाति छन्द १ से १० श्लोक तक २७ ६१
 (२) वसन्तविलम्बा—१९ २२ २३ ४६, ४२ ६१ ६४
 (३) पुष्पिकाया—२० २६, २० ३६
 (४) दुर्लभविहित—२१, ६
 (५) घालिनी छन्द—२३
 (६) पथ्या छन्द—२४
 (७) प्रतियोगी—२६ ३३ ३९
 (८) जमवरमाला—३०
 (९) द्रुतविलम्बित ३४
 (१०) रसस्य—३६
 (११) प्रमितारा—३६
 (१२) प्रहृषिणी—३८
 (१३) मत्तमयूर—४४
 (१४) शीघ्रक—४५
 (१५) स्वयंय सपथा प्रहृषण घावांगीति—४८
 (१६) घावांगीति—५१
 (१७) अलोद्धतवति—५४
 (१८) रघोदत्ता—५७
 (१९) अमरविलम्बित—६२
 (२०) नाभिनी—६६, ६८
 (२१) गृष्ठी—६९
 (२२) रसपञ्चवति—६७

घर्मकार—

- (१) छात्रिका—२ ४ ७ २३, ३९ ४३ ४७ ५०
 (२) घर्मक—३ ६ १२, १३ १८ २१ २७ ३३, ४६ ४८, ६१
 (३) घर्मक और रसक का संकर—६

- (४) उपमा—३, ४, ११ ४६, ५१ ३६, ६१
 (५) प्रतिशयोक्ति—१० २२ ४१ ६७
 (६) शब्दशेषमूलक विरोधासंकार—१२
 (७) निर्बंधमा—१३ ३६ ६५, २० २८
 (८) तत्पुण्य—१४
 (९) कृत्यगुणास—१६ ६८
 (१०) काव्यलिङ्ग—१७
 (११) धर्मांतरभीकृद् ध्वनि है, तुल्ययोपिता समाशोक्ति धीर तसेप नहीं— १६
 (१२) तत्पुण्योत्पापित निदर्शना—२६
 (१३) समाशोक्ति—२६, ३४ ३७
 (१४) श्लेषोत्पापित तुल्ययोपिता—४०
 (१५) निदर्शना धीर काव्यलिङ्ग का संकर—४४
 (१६) प्रतिशयोक्ति से भ्रान्तिमान् की व्यंजना—४६
 (१७) रूपक धीर उत्प्रेक्षा ३०
 (१८) उत्प्रेक्षा रूपक धीर निदर्शना का संकर—५२
 (१९) भ्रान्तिमान धीर विभाजना—५३
 (२०) परिणाम—५४
 (२१) उदात्त धीर समक—६०
 (२२) व्यतिरक्त—६४
 (२३) निदर्शना से अनुप्राणित भ्रान्तिमान एवं उत्प्रेक्षा का संकर—६८

पाँचवाँ सर्ग—

सन्द—

- (१) वसन्ततिलका शब्द सम्पूर्ण सर्ग में है ।
 (२) पिबेरिणी शब्द वसन्त में ।

मसंकार—

- (१) उपमा धीर समक की संसृष्टि—१
 (२) निदर्शना उत्प्रेक्षा एवं श्लेष का संकर—२
 (३) उत्प्रेक्षा से अनुप्राणित समाशोक्ति—३
 (४) धर्माशेष धीर उपमा का संकर—४
 (५) स्वभाषोक्ति—५, ६८ ३६ ६१ ६३
 (६) धर्मांतरव्यास—६, १७ ४१ ४२, ४४ १४ ४७ ४८
 (७) उत्प्रेक्षा । १० ३८ ३६, २० ३१ ३२ ३४ ३६, ६६
 (८) काला—१६ ३६, ३६ ३७ ६८

- (२१) स्वभावोक्ति—६६ ६८
 (२२) उपमा तथा उपरोक्ता का संकर—६९
 (२३) श्लेष संकीर्ण उपरोक्ता—७१
 (२४) स्वभावोक्ति और अनुप्रास—७०
 (२५) व्यतिरेक—८२

चतुर्थ सर्ग—

छन्द—

- (१) उपमासि छन्द १ से १८ श्लोक तक १७ ६३
 (२) बध्नत्वविकका—१९, २२ २३ ४९, ५२ ६१ ६४
 (३) पुष्पिताया—२० २९, ३० ३६
 (४) कुल्लिंसंविता—३१ ३
 (५) धामिनी छन्द—२३
 (६) पद्मा छन्द—२४
 (७) प्रशिपगी—२६ ३३ ३९
 (८) जलधरमामा—३०
 (९) इ लक्ष्मिपति ३८
 (१०) बंधस्य—३३
 (११) प्रमिताधरा—३६
 (१२) ग्रहपिणी—३८
 (१३) मत्तमयूर—४४
 (१४) दोषक—४३
 (१५) रङ्गक उपमा बहुपाण धामिनीति—४८
 (१६) धामिनीति—३९
 (१७) अतोदण्डमति—४४
 (१८) रमोदता—४७
 (१९) अमरविलसित—६३
 (२०) धामिनी—६३, ६८
 (२१) पुष्पी—६९
 (२२) बंधपत्रपतित—६७

धर्मकार—

- (१) उपरोक्ता—२ ४ ७ १३, १४ ४३ ४७ ५४
 (२) यमक—३ ९, १२, १३ १८, २१ २७ ३३ ४२ ४३, ६३
 (३) यमक और उपमा का संकर—५

- (४) उपमा—१, ८, ११, ४६, ५१, ५६, ६१
 (५) प्रतिघयोक्ति—१०, २२, ४१ ६७
 (६) शब्दस्तेयप्रसक्त विरोधान्नकार—१२
 (७) निर्वचना—११, १६, ६५, २०, २८
 (८) तद्वस्तु—१४
 (९) वृत्त्यनुप्रास—१६ ६८
 (१०) काव्यलिङ्ग—१७
 (११) अर्थान्तरधीकृत्य ध्वनि है, तुल्ययोपिता समासादि धीरे स्तब्ध मदी— १६
 (१२) तद्वस्तुलेखापित निर्वचना—२६
 (१३) समासोक्ति—२६ ३४, ३७
 (१४) सम्योन्वापित तुल्ययोपिता—६०
 (१५) निर्वचना धीरे काव्यलिङ्ग का संकर—६६
 (१६) प्रतिघयोक्ति से आन्तिमान् की व्यञ्जना—४६
 (१७) कटक धीरे उत्प्रेक्षा ५०
 (१८) उत्प्रेक्षा कटक धीरे निर्वचना का संकर—५२
 (१९) आन्तिमान् धीरे विमादना—५३
 (२०) परिणाम—५६
 (२१) उदात्त धीरे वमक—६
 (२२) ध्वनिरक—६४
 (२३) निर्वचना से अनुप्रासित आन्तिमान् एवं उत्प्रेक्षा का संकर—६८

पाँचवाँ सर्ग—

छन्द—

- (१) वसन्तविलका छन्द सम्पूर्ण सर्ग में है।
 (२) पिसरिली छन्द अन्त में।

घटनकार—

- (१) उपमा धीरे वमक की संसृष्टि—१
 (२) निर्वचना उत्प्रेक्षा एवं स्तेय का संकर—१
 (३) उत्प्रेक्षा से अनुप्रासित समासोक्ति—१
 (४) अर्थान्तेय धीरे उपमा का संकर—४
 (५) स्वभाषोक्ति—५, २८ ३६, ६१ ६१
 (६) अर्थान्तरव्यास—६ १० ४१ ४२ ४४ ६४ ६० ४६
 (७) उत्प्रेक्षा १० १८ ३६, २० ३१ ३६, ३४ २३ ६६
 (८) उपमा—१६ ३५, ३६ ३७ ६८

- (१) उत्प्रेक्षा और अनांतरम्यास का संकर— ६
 (१०) तुल्ययोमिता—२१
 (११) हेतुत्प्रेक्षा और काव्यस्विय का संकर—२६
 (१२) समुच्चय और काव्यस्विय—२८
 (१३) काव्यस्विय—२९
 (१४) उत्प्रेक्षा और भाग्यमात्र का अनादिमात्र से संकर—३२
 (१५) परिपुष्टि ४०
 (१६) प्रकृतस्तेय—४३
 (१७) कपक—४६
 (१८) काव्यस्विय—५०
 (१९) विरोधाभास प्रथम चरण में—५३
 (२०) अतिव्याप्ति—५३

छन्द सङ्ग—

छन्द—

- (१) कुतबिलंबित छन्द पूरे सङ्ग में है
 (२) प्रमाकृत—३७
 (३) त्वावताकृत—६८
 (४) उपजातिकृत—६९
 (५) धीपञ्चमसिक कृत—७० ७२ ७३
 (६) छोटकृत—७१
 (७) छुटका छन्द—७३
 (८) उपजाति छन्द—७४
 (९) मत्तमपूरकृत—७६
 (१०) वसन्तिका—७७, ७८
 (११) कुतबिलंबित—७८

असंकार—

यमक का प्रयोग तो सम्पूर्ण सङ्ग में है ।

- (१) उपमा—४ ९, २४
 (२) उत्प्रेक्षा—२, ६ ७ ८ १४ १६ १९, ४४ ५३ ६२ ६४ ६५ ६६, ७८, ७९
 (३) भाग्यमात्र—११
 (४) उपमा अनुप्रास और यमक की विजातीय संसृष्टि—१२
 (५) यमक—१३ १५, २२ २३ २६ ६९
 (६) स्वभावीति तथा अनुप्रास और यमक की संसृष्टि—१४

- (७) अनुप्रास और यमक—२०
 (८) निदर्शना—२१
 (९) दो उपमानों से अनुप्राणित उपमा—३५
 (१०) मीसम—४०
 (११) धर्मांतरन्यास—४३ ६१
 (१२) पुण्ड्रित्वेणा तथा वारण से कार्य का समर्थन के धर्मांतरन्यास का संकर—४५
 (१३) उपमा और रूपक का संकर—४६
 (१४) समाधि—४६
 (१५) उत्प्रेक्षा और रूपक धर्मांतरन्यास का संकर—५० ५४, ५८
 (१६) उत्प्रेक्षा और रूपक की संसृष्टि—५१
 (१७) रूपक से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा—५२, ७०
 (१८) अविशयोक्ति—५३
 (१९) समुच्चय—७२
 (२०) प्रय—७४
 (२१) रमक धर्मांतरन्यास—७५

सातवीं सर्ग—

छन्द—

- (१) पुष्पिताम्रा छन्द पूरे सर्ग में है।
 (२) मन्दाक्रान्ता छन्द है—७४
 (३) मालिनी धन्त में

धर्मांतरन्यास—

- (१) धर्मांतरन्यास—१ २७ ३८ ४३ ५० ५२, ६१
 (२) काम्यसिध—२ ५४
 (३) तुल्ययोमिता तथा एकावली—३
 (४) अपहृन्मन्त्र—६
 (५) रूपक और उपमा का संकर—२३
 (६) वसिष्ठ—२३
 (७) धर्मांतरन्यास—२४
 (८) रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा—२५
 (९) मन्मोदप्रिया—२६
 (१०) काम्यसिध और उत्प्रेक्षा—२८
 (११) मन्मोदप्रिया—२८
 (१२) हेतुत्व—३१ ३० ६४
 (१३) व्यतिरेक—३३

- (१४) स्वभावोक्ति—४८
 (१५) काव्यमित्र तथा इमेपोटवापित अभेदक्याविद्ययोक्ति का संकर—५३
 (१६) तुल्ययोगिता—५६
 (१७) रूपकानुप्राणित विभावना का संकर—५७
 (१८) विरोधाभास—५९ ७०
 (१९) उत्प्रेक्षाओं की संसृष्टि—६२
 (२०) अर्थाति—६४
 (२१) पर्याय—६९
 (२२) इमेपानुप्राणित रूपक—७४
 (२३) वाक्याभिप्रेत काव्यमित्र—७५

घाठवां मग—

छन्द —

- (१) इत सर्व में ग्रहविही छन्द है ।
 (२) गतिमायिनीवृत्त यम में है ।

प्रलफार —

- (१) स्वभावोक्ति—१
 (२) अतिशयोक्ति—२
 (३) हेतुत्रया ३ = ६२
 (४) क्रियास्वरूपोत्प्ला—४ २३
 (५) विरोधाभास—५
 (६) अर्थान्तरम्यास—७ १० १२ ६०
 (७) पूर्णोत्प्ला—९
 (८) अर्थान्तर में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति—११
 (९) रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा की संसृष्टि—१४
 (१०) इमेप की प्रतिभा से उत्प्रापित अतिशयोक्ति से अनुप्राणित प्लोत्प्रेक्षा—१५
 (११) स्वरूपोत्प्ला—१६
 (१२) इमेप से उत्प्रापित उपमा—१७
 (१३) तात्पर्यातिशयोक्ति से अनुप्राणित अर्थान्तरम्यास और महेश्वरम्भभीमात्रा में निर्दिष्टा—१८
 (१४) अर्थान्तरम्यास—२० २३ ६९
 (१५) अभेदमूलक अतिशयोक्ति, रूपक समाश्लेषित और अर्थान्तरम्यास—२२
 (१६) अर्थाति—२४
 (१७) मति रूपक—२५, ४६
 (१८) प्रतीयमान अभेदानिशयोक्ति से अनुप्राणित समामोक्ति का संकर—२६

- (१९) प्रतिशयोक्ति तथा रूपक का संकर—२७
 (२०) स्नेपयुलक अभेदकपातिसंयोजित से अनुप्राणित अर्थान्तरमार्ग —२९
 (२१) सन्देश—२९
 (२२) मुख्ययोयिता—३०
 (२३) प्रतिशयोक्ति से उपजीवित सहायित—३१
 (२४) पदार्थहेतुक काव्यमिग—३२
 (२५) रूपकानुप्राणित प्रतीयमानोत्पत्ति का संकर—३३
 (२६) वातिस्वरूपोत्प्रेक्षा—३४
 (२७) प्रतिशयोक्ति से उत्पादित असंयति का संकर—३५
 (२८) निरवयव रूपक ३६
 (२९) मर्मोत्प्रेक्षा—४० ४०
 (३०) विषय—४१
 (३१) वाक्यार्थहेतुक काव्यमिग—४१ ३६
 (३२) स्नेपप्रतिशयोक्ति से अनुप्राणित विषयान्तर का संकर—४४
 (३३) स्नेपमूलभावेतिशयोक्ति से अनुप्राणित अर्थान्तरमार्ग —४५
 (३४) स्नेपयुलकातिशयोक्ति तथा हेतुत्व का संसृष्टि—४८
 (३५) उत्पत्ति—४९, ६६ ७१
 (३६) उत्प्रेक्षा और सामान्य अर्थान्तर का संकर—६१
 (३७) उपमा—६२ ६३
 (३८) स्नेपानुप्राणित प्रतिशयोक्ति से उपजीवित उत्पत्ति—६३
 (३९) स्नेपमूलकातिशयोक्ति तथा विशेष से सामान्य का समर्थनरूप अर्थान्तरमार्ग का संकर—६४
 (४०) उपमा और स्मरण—६४
 (४१) प्रतिशयोक्ति और विषय—६५
 (४२) काव्यमिग ७०
 (४३) विधिपाठ—६८

नवीं सर्ग—

छन्द—

- (१) प्रमितागच्छ पूरे गय म है ।
 (२) वृत्तम ८६
 (३) मृदाकाम्या अस्तिव दम् है ।

समंसार—

- (१) उत्पत्ति १ ४ ८ १७ २६ ३० ४० ६६ ८४
 (२) श्रेय १

- (१४) स्वभावोक्ति—४८
 (१५) वाक्यानिग तथा वसेपोरबापित अभेदरूपातिशयोक्ति का संकर—५५
 (१६) तुल्ययोगिता—५६
 (१७) रूपकानुप्राणित विभावना का संकर—५७
 (१८) विरोधान्वास—५९ ७०
 (१९) उत्प्रेक्षाओं की संसृष्टि—६२
 (२०) अर्थाति—६४
 (२१) अर्थाति—६६
 (२२) श्लेषानुप्राणित रूपक—७४
 (२३) वाक्यानिग का वाक्यानिग—७५

आठवां सर्ग—

छन्द —

- (१) इस सर्ग में प्रह्वितछंद छन्द है।
 (२) यत्किमापिनीकृत अन्त में है।

अलंकार —

- (१) स्वभावोक्ति—१
 (२) अतिशयोक्ति—२
 (३) हेतुत्व का १ ८, १२
 (४) क्रियास्वरूपोत्प्रेक्षा का—४ २३
 (५) विरोधान्वास—५
 (६) अर्थातिरूपवास—७ १० १२ १०
 (७) पूर्णोत्प्रेक्षा—८
 (८) अलंकार में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति—११
 (९) रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा की संसृष्टि—१४
 (१०) श्लेष की प्रतिभा में उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति में अनुप्राणित अलंकार—१५
 (११) स्वरूपोत्प्रेक्षा का—१६
 (१२) श्लेष से उत्प्रेक्षा अलंकार १७
 (१३) अलंकारानुप्राणित में अनुप्राणित अर्थातिरूपवास और अर्थातिरूपवास का अलंकार—१८
 (१४) अर्थातिरूपवास—२० २३ २३
 (१५) अलंकारानुप्राणित अतिशयोक्ति रूपक अलंकार और अर्थातिरूपवास—२२
 (१६) अर्थाति—२४
 (१७) अर्थाति—२५ २५
 (१८) अर्थाति अतिशयोक्ति में अनुप्राणित अलंकार का संकर—२६

- (१९) प्रतिघयोक्ति तथा कथक का संकर—२७
 (२०) स्नेपमूलक धमेदकपाठिघयोक्ति से अनुप्राणित अर्थांतरण्यास —२९
 (२१) सन्नेह—२१
 (२२) मुख्ययोपमा—३०
 (२३) प्रतिघपातित से उपबीधित सहोक्ति—३१
 (२४) पदार्थहेतुक काव्यसिग—३२
 (२५) कथकानुप्राणित प्रतीयमानोत्प्रेक्षा का संकर—३३
 (२६) वातिस्वकरोत्प्रेक्षा—३४
 (२७) प्रतिगयोक्ति से उत्थापित असंगति का संकर—३८
 (२८) निरवयव कथक ३९
 (२९) मय्योत्प्रेक्षा—४० ५
 (३०) विषय—४१
 (३१) वाक्यार्थहेतुक काव्यसिग—४३, ५६
 (३२) स्नेपप्रतिमोदशपित प्रतिघयोक्ति से अनुप्राणित विमर्शना का संकर—४४
 (३३) स्नेपमूलकपाठिघयोक्ति से अनुप्राणित अर्थांतरण्यास —४५
 (३४) स्नेपमूलकपाठिघयोक्ति तथा हेतुत्व का की संवृष्टि—४८
 (३५) उत्प्रेक्षा—४९, ५६ ७१
 (३६) उत्प्रेक्षा और सामान्य अर्थकार का संकर—५१
 (३७) उपमा—५२ ६१
 (३८) स्नेपानुप्राणित प्रतिघयोक्ति से उपबीधित उत्प्रेक्षा—५३
 (३९) स्नेपमूलकपाठिघयोक्ति तथा विशेष से सामान्य का समर्थनरूप अर्थांतरण्यास का संकर—५४
 (४०) उपमा और स्मरण ६४
 (४१) प्रतिगयोक्ति और विषय ६५
 (४२) काव्यसिग ७०
 (४३) विशेषोक्ति ६८

मही मग—

छ ५—

- (१) प्रमितागम गुर मग म है ।
 (२) बाग्य ८९
 (३) मंदावाप्ता अगित्य एम् है ।

प्रमंशर—

- (१) उत्प्रेक्षा १ ४ ८ १७ २९ ३० ४० ६६ ८४
 (२) हेतु १

- (३) इलोपानुप्राणित रूपक ३
 (४) धर्मान्तरन्यास ५६ १२, १३ २६, ४३ ५७ ६२ ६६
 (५) सयासोक्ति ७
 (६) उपमा—६, ७३
 (७) रूपक १० ११ २७
 (८) काव्यमिष १३
 (९) विरोधोक्ति १४
 (१०) स्तेप मूमातिद्योक्ति से धनुप्राणित धर्मान्तरन्यास १६
 (११) रूपकानुप्राणित उत्पत्ति का तथा उपमा का संकर १८
 (१२) मंदिर १६, २०
 (१३) वाक्यान्तरित काव्यमिष २१
 (१४) प्रतिधोक्ति और तुल्य धोयिता का संकर २४
 (१५) एकदेशविबन्धि रूपक तथा पुण स्वकपोत का का संकर २८
 (१६) स्तेपसंकीर्ण साध रूपक ३१
 (१७) स्तेपसंकीर्ण उपमा—३२
 (१८) धर्मोत्पत्ति तथा धर्मान्तरन्यास धर्मकार दोनों का धर्माध्याय से संकर—३३
 (१९) स्तेप रूपक और उत्पत्ति का संकर—३४
 (२०) प्राप्तिमान ३५
 (२१) रूपक और उपमा—३६
 (२२) प्रतिधोक्ति—३७ ३८, ७३ ८३
 (२३) धर्माध्याय—३८
 (२४) प्रतिधोक्ति उपमा और उत्पत्ति का संकर—३९
 (२५) तुल्यधोयिता—४० ४१
 (२६) साध रूपक—४२, ४७
 (२७) निरूपण—४३ ७६
 (२८) काव्यमिष तथा उपमाध्याय का संकर—४८
 (२९) प्रतिधोक्ति और रूपक की संसृष्टि—५०
 (३०) इलोपानुप्राणित धर्मान्तरन्यास—५१
 (३१) स्वभायोक्ति—५२, ७४
 (३२) निदर्शना यथासंकर तथा तुल्यधोयिता का संकर—५३
 (३३) रूपक तथा प्रेय—५४
 (३४) प्रत्यक्ष तथा हेतुत्वता का संकर—५५
 (३५) उत्पत्ति तथा धर्मान्तरन्यास—५७
 (३६) मूल—७६
 (३७) विरोधान्यास—७८ ८१

(१८) दोनों पदों में यमक की संसृष्टि तथा मतिप्रयोक्ति—८६

(१९) प्रथम दो पदों में समासोक्ति तथा उत्तरार्ध दो पदों में परिणाम—८७

सग—

—

(१) स्वागतवा छन्द पूरे सप्त में है ।

(२) माभिनीकृत सप्त में

रि—

(१) पदार्थहेतुक काव्यनिग—१ ८३

(२) तुल्ययोगिता—४ ८ ३९ ७१

(३) भ्रान्तिमान तथा स्नेहपूमातिप्रयोक्ति से उत्पन्नित धर्मान्तरम्यास का धंता
गिमास संकर ५

(४) स्नेहपूमातिप्रयोक्ति से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा तथा चर्चरति की ध्वनि—६

(५) उत्प्रेक्षा ७ ४५ ४८ ४९ ५२ ५३ ७४ ७५ ७७ ८४ ८५

(६) मतिप्रयोक्ति—१० ४७ ५७ ५९ ६३

(७) परिणाम से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा—११

(८) उपमा और समुच्चय का संकर—१३

(९) यथासक्य एवं सद्यः का संकर १४

(१०) उपमा—१५, १५, १६ ८१ ८२

(११) धर्मान्तरम्यास—१८ २१ २८ ३५ ७९

(१२) स्नेहपूमातिप्रयोक्ति से संकीर्ण उपमा—२५

(१३) समाधि—२०

(१४) पदार्थहेतुक काव्यनिग—२२ २३

(१५) स्नेहपूमातिप्रयोक्ति से संकीर्ण उपमा—२३

(१६) मीमांसा—२६ ४२

(१७) पुरार्च में विधेयोक्ति तथा उत्तरार्ध में विभावना—२७

(१८) सामान्य और निदर्शना की संसृष्टि—११

(१९) एकावली—३३

(२०) उत्प्रेक्षा और यथा संक्य का संकर—३४

(२१) समुच्चय—३६

(२२) परिणाम—३७ ६७

(२३) समासोक्ति—३८ ३९ ७२

(२४) स्नेह से अनुप्राणित यथासक्य—४०

(२५) धमनि से उत्प्रेक्षित उत्प्रेक्षा—४६

(२६) स्वरक—५७ ५८ ७८

- (२७) काव्यालिय—६१ ११ ८८
 (२८) प्रतिघयोक्ति से अनुप्रासित समुच्चय—६३
 (२९) विरोधाभास तथा समुच्चय—६८
 (३०) विरोधाभास—७० ८७ ८९
 (३१) पदार्थहेतुक काव्यालिय तथा प्रतिघयोक्ति का संकर—७१
 (३२) अतद्वृत्त—७६
 (३३) श्रेय—८०
 (३४) विरोधाभास तद्वृत्त श्लेष तथा प्रतिघयोक्ति का संकर—८६
 (३५) यमक और काव्यालिय—९०
 प्यारहवीं सर्ग —

छन्द —

- (१) इस सर्ग में भासिनी छन्द है ।
 (२) महाभासिका छन्द अन्त में है ।

अलंकार —

- (१) अनुप्रास—१ १० १९ ४१
 (२) पदार्थहेतुक काव्यालिय—२
 (३) उपमा—३ १४ ४० ४२ ६३, ६६
 (४) विरोधाभास—४
 (५) काव्यालिय और प्रतिघयोक्ति का संकर—५
 (६) पूर्णोपमा—६ ८
 (७) स्वभावोक्ति—७ ११
 (८) उत्प्रेक्षा—१२ १८ २४ ३ ४३ ४८, ५३ ६ ६१ ६२ ६३
 (९) काव्यालिय—१५ २३ ३४
 (१०) निदर्शना तथा उत्प्रेक्षा का संकर—१६
 (११) श्लेष—२०
 (१२) एकांशी रूपक—२१
 (१३) उत्प्रेक्षा और समासोक्ति का संकर—२२
 (१४) अर्थात्तरस्यास—२५ ३३ ३५, ३७ ५९ ६४
 (१५) ठर्रसी—२६
 (१६) व्यतिरेक—२७
 (१७) प्रतिघयोक्ति—२८ ५८
 (१८) विरोधाभास—२९ ३१
 (१९) सामान्य—३९
 (२०) उपास—४६

- (२१) रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर—३८
 (२१) प्रेय—३९
 (२३) निदर्शना—४
 (२४) उत्प्रेक्षा और आग्निमात्र—४१
 (२५) आग्निमात्र—४२
 (२६) काव्यमित्र और उपमा का संकर—४४
 (२७) उपमा, विरोधान्नास और काव्यमित्र का संकर—४३
 (२८) उपमा भी है और वस्तेय भी—४६

बारहवां सर्ग—

छन्द —

- (१) उपजाति छन्द पूरे सर्ग में है ।
 (२) हरिणी छन्द अन्त में ।

असंस्कार —

- (१) काव्यमित्र—१ २६ ४२ ७७
 (२) रूपक और उपमा का संकर—२ ६ ११
 (३) छन्दस्तेय—३
 (४) स्वभावोक्ति—५ ६ ७ ८ १० १२ १८ २२ ३१, ३४ ३८, ४० ४१ ४७ ७४
 (५) छन्दस्तेय एवं अर्थस्तेय—८
 (६) उपमा—२१ २३
 (७) व्यतिरेक—२३
 (८) काव्यमित्र और स्वभावोक्ति का संकर—२४
 (९) स्तेय—२५
 (१०) स्तेयमूलातिशयोक्ति और काव्यमित्र का संकर—२७ ६१ ६२ ६३
 (११) स्वभावोक्ति और काव्यमित्र का संकर—२८
 (१२) रसमूलाभदातिशयोक्ति से उत्पन्नित पदार्थ हेतु काव्यमित्र—२९
 (१३) संक्षेप—३
 (१४) अर्थान्तरम्याग—३७ ४२
 (१५) विरोधान्नास—३३
 (१६) अन्वयातिशयोक्ति मूल्ययोगिता—३५ ४५
 (१७) व्यतिरेक उपमा और स्वभावोक्ति का संकर—३७ ४६ ४८
 (१८) विषयोक्ति—३९
 (१९) उत्प्रेक्षा—४३ ४० ६३ ६४ ७५
 (२०) उपमा और काव्यमित्र का संकर—४४
 (२१) रूपक

- (२२) स्वभाषोक्ति और व्युत्पन्नार्थ की संसृष्टि—११
 (२३) स्नेयोत्पत्ति काव्यलिङ्ग—११
 (२४) उपमा और स्वभाषोक्ति की संसृष्टि—१४, ७१
 (२५) स्नेयमूलातिशयोक्ति से उत्पत्ति विरोधानाश का संकर—११
 (२६) अतिशयोक्ति—१० १८ ६० ७२
 (२७) स्नेयमूलातिशयोक्ति से उत्पत्ति समासोक्ति—१६
 (२८) विरोध—६७
 (२९) इत्येता और उपमा का संकर—६८

छेरहवां संग —

अन्ध—

- (१) मंथुमाविणी वृत्त पूरे कग में
 (२) रमणीयक वृत्त अन्ध में

असंकर —

- (१) उत्प्रेक्षा—२ १२ २५, २६ ६० ३६ (वर्ण्योत्प्रेक्षा), ३१ ३६ ३७ ४८ ५१, ५७ ६७
 (२) काव्यलिङ्ग—३
 (३) उपमा—३ ११, १८ २० २१ २२, २४ २७ २८, ३३ ३५ ४१ ५२ ६१
 (४) अर्थात्तरज्यास—६, १० ६७
 () विभिन्न विरोधानाश व्युत्पन्नार्थ की संसृष्टि—८
 (६) स्नेयमूलातिशयोक्ति से उत्पत्ति अर्थात्तर तथा उत्प्रेक्षा का संकर—११
 (७) विभावना और निदर्शना का संकर—११
 (८) उपमा और अतिशयोक्ति—१६
 (९) मातोपमा—२३ ६३
 (१०) स्नेह और उपमा का संकर—२८, ३८
 (११) आश्रित्यम्—३२ ४६ ६०
 (१२) व्युत्पन्नार्थ—३४
 (१३) अक्षिप्त—४०
 (१४) विभावना भाव और उपमा—४२
 (१) अतिशयोक्ति—४३ ५२, ६३ ६४
 (१६) विभावना भाव है । आश्रित्यम् की अर्थवत्ता—४४
 (१७) श्रेय से उत्पत्ति उत्प्रेक्षा—४५
 (१८) स्नेयमूलातिशयोक्ति से उत्पत्ति काव्यलिङ्ग का संकर—४८
 (१९) अन्तर्धानकार—१० १८ ३६
 (२०) गाना प—३३
 (२१) विरोध, स्नेह, एकांसी रूपक का संकर—५४

(२२) विरोधानास—५३

(२३) भ्रान्तिमान् और उल्लेखा का संकर—१९

(२४) रूपक—१६

चौहत्वां सर्ग —

छन्द —

(१) इस सर्ग में रसोद्धता छंद है।

(२) बसन्त विसका छन्द बसन्त से प्रथम।

(३) ग्रहविणी छन्द बसन्त में

मसंकार —

(१) उल्लेखा और ब्रह्मनुप्रास की संसृष्टि—१

(२) काव्यलिंग—४, २३, २४, २९, ३, ३८ ५७ ५८ ६१ ७६, ८२, ८७

(३) अतिशयोक्ति—६, १०, ४०, ४२

(४) हृष्टात्म—८, १३, १४, ४९

(५) अपह्नुनव—१२

(६) अतिशयोक्ति और काव्यलिंग का संगमिभाव का संकर—१३, २६

(७) रूपक—१९, १३

(८) उपमा—१६, ७३ ८३

(९) स्वभावाक्ति—२०

(१०) ब्रह्मनुप्रास—२१ ३१, ५३ ६७

(११) अनुप्रास—२२

(१२) काव्यलिंग तथा अतिशयोक्ति का संकर—२७

(१३) क्लोत्त ला—२४, ७१ (उत्प्रेक्षा)

(१४) काव्यलिंग अतिशयोक्ति तथा समुच्चय का संकर—११

(१५) काव्यलिंग और तुल्ययोगिता का संकर—३२

(१६) रूपक और उपमा का संकर—३४

(१७) उपमा और अनुप्रास की संसृष्टि—३९

(१८) स्नेह संकीर्ण सहाक्ति—१७

(१९) परिणाम एवं सहाक्ति—३६

(२०) परिमृष्टा—४१ ४८, ५४ ५८

(२१) व्यतिरेक—४३ ६३

(२२) स्नेह संकीर्ण उपमा—४४, ५०

(२३) विभाषा—६२ ४७

(२४) तुल्ययोगिता—४६, ५५, ५९ ८३ ५२

(२५) परार्थ हेतुक काव्यलिंग न ५१

- (२६) उपमा तथा उत्प्रेक्षा का संकर—५२ ७६, ७७
 (२७) विरोधामास—६० ७० ७२ ७४ ८१ ८८
 (२८) विरोधामास और काव्यमित्य का संकर—६२
 (२९) विरोध और रूपक का संकर—६९
 (३०) धमिक—७५
 (३१) प्रत्ययीक—७८
 (३२) स्तेप प्रतिमोत्पापित धमेपातिसयोक्ति से अनुपातित सांख्य रूपक—८०
 (३३) स्तेप प्रतिधयोक्ति तुल्ययोगिता यथासंख्य का संकर ८६
 पन्द्रहवां सर्ग :—
 छन्द—

- (१) उद्यता क्षन्त इस सर्ग में है।
 (२) सग्यरा संव भन्त में।
 प्रसकार—

- (१) धर्मान्तरम्यास—१ ४ ४३ ८९
 (२) उपमा—२४ ५, १३ १५, १३ १५, ४४ १० १५, १८ ६२ ७३ ७५, ८० ९२
 (३) उपमा और काव्यमित्य का संकर—६
 (४) उत्प्रेक्षा—७ ८ ४७ ५१ ५६ ९० ९४
 (५) उपमा और समासोक्ति का संकर—९
 (६) काव्यमित्य—११ १८ २१ २२ २३ ३१ ३२ ३६, ३८ ४२ ४५, ५१
 ५९, ७० ८१ ८१ ८५, ९३ ९५ ९६
 (७) सांख्य रूपक—१२
 (८) बाह्यार्थ हेतुक काव्यमित्य—१४ ७
 (९) विषय—१६
 (१०) इष्टान्त—१७
 (११) विधयोक्ति और काव्यमित्य का संकर—१९
 (१२) विभावना—२४ ८२
 (१३) प्रतिधयोक्ति—२५, २६ २७ २८ २९ ५४ ७६ ८४
 (१४) विरोध और प्रतिधयोक्ति का संकर—३०
 (१५) अनुपात और काव्यमित्य की संसृष्टि—३०
 (१६) यथारूप—१ (प्रतिष्ठित स्तोत्र)
 (१७) स्वभावोक्ति—३९
 (१८) धर्मान्तरम्यास और काव्यमित्य का संकर—४१
 (१९) उत्प्रेक्षा और उपमा का संकर—४८
 (२०) रूपक से संकीर्ण उत्प्रेक्षा—४९ ७९

- (२१) उपमा और अतिशयोक्ति का संकर—५२ ७४
 (२२) काव्यसिग और रूपक की संसृष्टि—५७
 (२३) रूपक और निदर्शना का संकर—६०
 (२४) समुच्चय—६१
 (२५) काव्यसिग और परिकर का संकर—६८
 (२६) उपमा से बलु की ध्वनि—६९
 (२७) उपमा और उत्प्रेक्षा का संकर—८६
 (२८) प्राप्तमान —६१

सालहवां सर्ग—

छंद—

- (१) वंतासीय छन्द इस सर्ग में ।
 (२) प्रहपिली छन्द—८२
 (३) चार्सबिक्रीडित छन्द—८४
 (४) औपच्यन्धसिक कृत्—८५ ८०
 (५) मालिनी छन्द—८३

अलंकार—

- (१) श्लेषा—२ इत्यर्थे १५ तक ८४
 (२) उपमा—१८ ४३ ५३ ८०
 (३) इष्टान्त—२० २१ ३१ ४५ ४७ ५१ ५७
 (४) अप्रस्तुतप्रशंसा—२१ २२ २३ २६ २८ २९ ३० ३२ ४०
 (५) इष्टान्त और अप्रस्तुतप्रशंसा का संकर—२७
 (६) काव्यसिग और अप्रस्तुतप्रशंसा का संकर—३६
 (७) अचान्तरम्यास—३४ ४१ ४४ ४६
 (८) उपमा और वाच्यार्थहितु काव्यसिग का संकर—५२
 (९) श्लेष से मधीर्ण निदर्शना—७८
 (१०) काव्यसिग—६० ८३
 (११) प्रतीप तथा अतिशयोक्ति का संकर—६१
 (१२) समासोक्ति—६२
 (१३) अतिशयोक्ति मूलक सहोक्ति—६३
 (१४) उत्तरा और उपमा का संकर—६४
 (१५) रस्य मंकीण उपमा—६५
 (१६) विरोधाभास—६६ ७९
 (१७) गिराष्ट परंपरित रूपक—६७
 (१८) व्यतिरेक—७० ८२

(११) श्लेष मूलाधियोक्ति से संकीर्ण व्यतिरेक—७१

(२०) श्लेषमूलाधियोक्ति से उत्थापित उत्प्रेक्षा से संकीर्ण व्यतिरेक—८३

सप्तह्यां सगं—

छन्द—

(१) सर्वे में वधिर छन्द है।

(२) चारुलक्षिकीकृत छन्द ग्रन्थ में है।

असंकार—

(१) उपमा—१, २४ १७, २१ ४४ ४६ ४८, ५६

(२) उत्प्रेक्षा—१ ४ ६, १४, १६ २६ ३१ ४६, ५१ ५५, ५८, ६०, ६५

(३) तत्पुरुष—४

(४) काव्यलिय—१, ३४

(५) धतिधयोक्ति—८, १५, ६२, ६३ ६४

(६) उत्प्रेक्षा हाण वस्तु की व्यति—१०

(७) निरुपमा—१२, ३०

(८) इष्टान्त—१८ ४०

(९) वरिकर—२१

(१०) तुल्ययोक्ति—२९

(११) समाधोक्ति—२४ ३७, ३८

(१२) श्लेष से संकीर्ण उपमा—२३

(१३) काव्यलिय और धतिधयोक्ति का संकर—३३ ३६

(१४) स्वभायोक्ति—३५

(१५) उत्प्रेक्षा और स्वभायोक्ति—३६

(१६) रूपक और उत्प्रेक्षा का संकर—४१

(१७) विरोधाभास, धिसेयोक्ति और विषम—४९

(१८) विरोधाभास—४५, ६७

(१९) धातु—४७

(२०) यथाशक्त्या—५० ५१

(२१) धतिधयोक्ति और उपमा का संकर—५२

(२२) काव्यलिय और विरोधाभास का संकर—५२

(२३) श्लेषोत्थापित व्यतिरेक—५४

(२४) घिष्ट वरपरित साध रूपक—५७ ६१

(२५) रूपक—६६

पठारहवीं सर्ग—

छन्द—

- (१) अत्र सर्वे शक्तिनी मृतम्
- (२) मन्वाक्रान्ता छन्द अंत में

असंस्कार—

- (१) उत्प्रेक्षा—१५, ७८, १०४, ४३, ४८, ६३, ६७, ६८, ६९, ७३, ७६, ७७, ७८, ७९
- (२) उपमा—२, ४, ६, १२, २०, २२, ३१, ३६, ४०, ५०, ५७, ७१
- (३) काव्यालिय और उपमा का संस्कार—३
- (४) तुल्ययोगिता—६, ५५, ६२
- (५) अनुप्रास—११
- (६) पदार्थहेतुक काव्यालिय—१३
- (७) समासोक्ति—१४, १६
- (८) परिचयि—१५
- (९) काव्यालिय—१६, १७, २१, ५६, ६१
- (१०) विरोधान्वास—२२
- (११) अर्थांतरव्यास—२३, ६४, ६६
- (१२) प्रतिशयोक्ति—२६, २८, ३०, ४५, ४७, ४९, ६०, ६२, ७६
- (१३) विरोधान्वास—२४
- (१४) स्वमासोक्ति—३२, ५२
- (१५) काव्यालिय और सामान्य का संस्कार—३४
- (१६) रूपक और श्लेष से संकीर्ण अरमा—३५
- (१७) प्रतिशयोक्ति और सहोक्ति का संस्कार—३६
- (१८) संशय—४२
- (१९) अनासक्ति और प्रतिशयोक्ति की संसृष्टि—४६
- (२०) आन्तिमान—५३
- (२१) प्रतिशयोक्ति और अनासक्ति का संस्कार—५८
- (२२) अरमा और रूपक का संस्कार—५९, ७२
- (२३) व्यतिरेक—७०
- (२४) श्लेष—७४
- (२५) अरमा और श्लेष—८०

उत्तीसवीं सर्ग—

छन्द—

- (१) सर्वोद्गीमन् अनुप्रास छन्द विनयपेन सहितम्

- (२) धार्मिकविवेचितम्—१२० उपेक्ष्यव्या ११८ ब्रह्मदेवी १ ६
 (३) सप्ततोयम्—२७
 (४) मुरजबम्—२६
 (५) धर्मप्रमक—७२
 (६) ब्रह्मवम्—१२०
 (७) समुद्रम्—११८
 (८) धर्मप्रमवाची—११६
 (९) एकाकार—११४
 (१०) सतालम्—११०
 (११) इयकार—१०८ १०९ १०४ १०२ १० ६८ ६९ ६४ ६७ ६४
 ६३, ६६
 (१२) ब्रह्मवम्—६६
 (१३) प्रतिलोम—६० ६४ ६६
 (१४) सप्त प्रत्यागतम्—६६ ६६
 (१५) सप्तमोम—६८
 (१६) समुद्रवम्—६८
 (१७) मोमुत्रिकावम्—४६
 (१८) प्रतिलोमानुलोमपाठ—४०
 (१९) प्रतिलोमार्थ—४४
 (२०) एकाकारपाठ—३

सप्तकार—

- (१) रूपक—१ १६
 (२) उपमा—२ ४ ६ १० १२ १२ ४१ ४३ ४३ ४३ ६१ ६३ ७६ ८३
 (३) अनुप्रास लेखने योग्य है—कार पर कम से क त म र सप्तों में ही है
 धीमनीम है।
 (४) यमक—१ ३, ६, १६ १३ १३ १७ १६, १६ ८२
 (५) यमक उपमा—७
 (६) रूपक—८ ७७
 (७) उपमा और रूपक की संयुक्ति निरीक्ष्य विचित्रम् (प्रोत्पन्ना कोई सम्य नहीं)
 —११
 (८) गुप्तोपमा और व्यतिरेक का संकर—१८
 (९) धर्मोपमा २०
 (१०) यमक और वाच्यार्थ हेतुक काव्यमिग सप्तकार की संयुक्ति—२१
 (११) निरोपमास और यमक की संयुक्ति—२३ २६
 (१२) उपमा—२४, २८ ६६

- (१३) उपमा और यमक की संसृष्टि—२३ ५४ ७४ ७६
 (१४) उपमा—२६
 (१५) सर्वतोमद्भित्र (चाहे जिस ओर से पढ़िये)—२७
 (१६) काव्यसिन्धु—३० ३८ ३७ ६६ १०१
 (१७) काव्यसिन्धु और यमक की संसृष्टि—३१ ७८ ८०
 (१८) तुल्ययोगिता—३२ ४६, ६३ ६७ १०३ ११३ ११५
 (१९) प्रतिमोम यमक—३३ ३४, ६०
 (२०) समासोक्ति और काव्यसिन्धु का संकर—३५
 (२१) विरोधाभास—३७ ६७ ७३ १०३ १०६
 (२२) प्रतिमोमानुलोमपाद यमक—४०
 (२३) अर्धप्रतिमोम यमक—४४ ८८
 (२४) निदर्शना—५
 (२५) उपमा व्यतिरेक और यमक का संकर—५२
 (२६) काव्यसिन्धु उपमा और स्तरेप का संकर—५३
 (२७) ध्रुवपद की परपद में धातुति—५८
 (२८) पादाभ्यास यमक—६०
 (२९) तुल्ययोगिता और यमक की संसृष्टि—६२
 (३०) धर्म्य अर्थ की प्रतीति के कारण इस श्लोक में केवल प्यनि है—६३ ८७
 (३१) उपमा और अनुप्रास का संकर है—६६
 (३२) अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा संकर संयुक्त प्रसार हीन होने से असंयोग विग्रह
 है—६८
 (३३) स्तरेपविच्छिन्न उपमा—६६, ६३
 (३४) अपहृन्व और गम्भोत्प्रेक्षा—७०
 (३५) उत्प्रेक्षा और रूपक का संकर—७१
 (३६) प्रसार अनुप्रास—८४, ८६ ८४ ८८ १०० १०२, १०४ १०६, १०८
 (३७) समासोक्ति अतिशयोक्ति उत्प्रेक्षा—८३
 (३८) दृष्टान्त—८६
 (३९) समासोक्ति—८१
 (४०) यमक विधाय—८२
 (४१) अपहृन्व—८६
 (४२) अतान्त्रिकबन्ध—११०
 (४३) कृष्णार्ध यमक—११२
 (४४) प्रसार अनुप्रास—११४
 (४५) उत्प्रेक्षा है उपमा नहीं स्तरेप हममें उत्प्रेक्षा का प्रयुक्त होकर आई है पा-
 र्श्वों का संकर है—११६

- (२) धातु-निबन्धितम्—१२०, उपेक्ष्यव्या ११८ बंस्तदेवी १ १
 (३) सर्वतोमह—१७
 (४) मूरजबन्ध—२६
 (५) धर्मप्रगल्भ—७२
 (६) यज्ञबन्ध—१२०
 (७) समुद्रम्—११८
 (८) धर्मव्यापारी—११६
 (९) एकाक्षर—११४
 (१०) अतालम्—११०
 (११) इयत्—१०५, १०६, १०४ १०२ १००, १८ १६, १४ ८६, ८७ ८४, ८३, ६६
 (१२) मूर्धन्यम्—११
 (१३) प्रतिज्ञा—१० ३४ ३३
 (१४) यत् प्रत्यापत्तम्—८८ ८६
 (१५) सप्तयोग—६८
 (१६) समुद्रमयम्—४५
 (१७) धर्मनिकाशम्—४६
 (१८) प्रतिज्ञागुणोपपाद—४०
 (१९) प्रतिज्ञागुणम्—४४
 (२०) एकाक्षरम्—३

प्रस्तावना—

- (१) रूपक—१ ११
- (२) उपमा—२ ४, १०, १२, ३२, ४१, ४३, ४४, ६१, ६५, ७८, ८३
- (३) धनुर्मास बैलमं योग्य है—चार पर कम से क स न र धर्मों मड़ी से योग्यनीय है।
- (४) समक—१, ३, ८, १८, १९, १३, १७, १८, ३६, ८२
- (५) समक, उपमा—७
- (६) रसप—८, ७७
- (७) उपमा और रूपक की संवृष्टि, निरीक्ष्य विषय (प्रोहबाला कोई सम नहीं) —११
- (८) तुल्योक्ति और व्यतिरेक का संकर—१८
- (९) व्यंग्य २०
- (१०) समक और काव्यार्थ हेतुक काव्यात्मित संस्कार की संवृष्टि—२१
- (११) निरोपमास और समक की संवृष्टि—५३, ५६
- (१२) व्यंग्य—३४, ३८, ८१

- (१३) उपमा और यमक की संसृष्टि—२३ ३४ ७४ ७६
 (१४) उपमा—२६
 (१५) सर्वतोमद्रश्मिन् (चाहे जिस ओर से पड़िये)—२७
 (१६) काव्यसिग—३० ३८, ५७ ६६, १०१
 (१७) काव्यसिग और यमक की संसृष्टि—३१, ७८ ८०
 (१८) तुल्ययोगिता—३२ ६६ ६९ ६७, १०३ ११३ ११५
 (१९) प्रतिशोम यमक—३३ ३४ ६०
 (२०) समासोक्ति और काव्यसिग का संकर—३५
 (२१) विरोधमास—३७ ३७ ७९, १०५ १०६
 (२२) प्रतिशोमानुशोमपाद यमक—४०
 (२३) अर्धप्रतिशोम यमक—४४ ८८
 (२४) निवर्धना—५
 (२५) उपमा, व्यतिरेक और यमक का संकर—५२
 (२६) काव्यसिग उपमा और स्तरेप का संकर—५३
 (२७) धूषण की परपक्ष म धातुति—५८
 (२८) पादाभ्यास यमक—६०
 (२९) तुल्ययोगिता और यमक की संसृष्टि—६२
 (३०) अर्थ अर्थ की प्रतीति के कारण इस श्लोक में केवल व्यंग्य है—६३ ८७
 (३१) उपमा और अनुपास का संकर है—६६
 (३२) अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा संकर, समुक्त अक्षर हीन होने से असंयोग चित्रण है—६८
 (३३) स्तरेपविधि उपमा—६६ ६९
 (३४) अपहृणव और यम्योत्प्रेक्षा—७०
 (३५) उत्प्रेक्षा और यमक का संकर—७१
 (३६) व्यंग्य अनुपास—८४ ८६ ९४ ९८ १०० १०२ १०४, १०६, १०८
 (३७) समासोक्ति अतिशयोक्ति उत्प्रेक्षा—८९
 (३८) हटाम्—८६
 (३९) समासोक्ति—९१
 (४०) यमक, विधेय—९२
 (४१) अपहृणव—९६
 (४२) अतालम्यचित्रण—११०
 (४३) अनुपास यमक—११२
 (४४) एकरूप अनुपास—११४
 (४५) उत्प्रेक्षा है उपमा नहीं उत्प्रेक्षा का संयोजन होकर आई है अतः दोनों का संकर है—११६

- (४६) गम्पोरखेला—११७
 (४७) प्रभास्तरम्बास—११८
 (४८) रूपक और बलबन्ध की संसृष्टि—१२०

बीसवीं सर्ग—

सूक्त—

- (१) प्रोत्पन्नचित्तं कृतं प्रस्थितम् सर्वं
 (२) भासिनीवृत्तम्—७६
 (३) वसन्ततिलकावृत्तम्—७७
 (४) धातुसंनिधीकृतं वृत्तम्—७८
 (५) वैभविकृतं वृत्तम्—७९

कविवचनार्णवम्—

सूक्त—

- (१) उपजातिवृत्तम्—१
 (२) धातुसंनिधीकृतं वृत्तम्—२
 (३) इन्द्रधनुषावृत्तम्—४
 (४) वसन्ततिलकावृत्तम्—२

प्रसंगिक—

- (१) काव्यसिद्धि—१, ३२ ३४ ३७, ३८
 (२) रूपक—२
 (३) उत्प्रेक्षा—४, १४ १६, २० ६८
 (४) प्रान्तिमान्—२
 (५) उत्प्रेक्षा और समासोक्ति का संकर—६
 (६) समासोक्ति—८, १० २४, ७९
 (७) रसिक विधिष्ट उपमा—११
 (८) उपमा—२ १२ १३, १७ १८ २१ २२, २७, ३१ ३२, ३५, ४१, ४३
 ४४ ४६ ४८, ५१ ५३, ५४ ५६, ६०, ६१, ६२ ७१ ७३ ७६
 (९) यथासंख्य और तुल्ययोगिता का संकर—१२
 (१०) स्वभाषोक्ति और उपमा का संकर—१८
 (११) स्वभाषोक्ति तथा उत्प्रेक्षा प्रसंगिक का संकर—२०
 (१२) प्रतिशयोक्ति—२९, ३९ ५५
 (१३) विरोधोपमा—२२
 (१४) प्रतियोगिता और उपमा का संकर—३०
 (१५) अनुप्रास उपमा रूपक की संसृष्टि—३३

- (१६) विरोधानास और काव्यशिक्षा का संकर—३६
 (१६) दृष्टान्त—४०
 (१८) स्वभावोक्ति—४२, ४२ ६७
 (१९) उत्प्रेक्षा—४३, ४८
 (२०) निदर्शना और उपमाका संकर—४४
 (२) निदर्शना—४०, ४६
 (२२) अतिशयोक्ति—६१
 (२३) अर्वाचिनाभ्यास—७४
 (२४) रूपक और निदर्शना—७५
 (२५) व्यतिरेक और रूपक—७७
 (२६) पर्यायोक्ति—७८
 (२७) भाविक—७९

कविबंध वर्यून में अलंकार—

(१) विरोध ४ ।

भाष के चित्रबन्ध

जहाँ पद्य रचना में अपनी निपुणता द्वारा कवि ऐसे अक्षर, शब्द तथा वाक्य रचता है जिनसे अनेक चित्र एवं चित्रवाचिका आदि अनेक प्रकार की मनोरंजक कविताएँ बन जाती हैं जो प्रसक्तारों में विशालकार के नाम से प्रसिद्ध हैं। साहित्यशास्त्री ऐसे विकट नामों में की गई कविता को घबन काव्य की संज्ञा देते हैं।

कविराज विश्वनाथ अपने साहित्य दर्पण में लिखते हैं—‘काव्यान्तर्बुधूतया तु मेह प्रपञ्चयते’ काव्य में यह सर्वतोभ्रम आदि शब्दचित्र तो ऐसा महा प्रदर्शन व गौरवमान है जैसे किमी के घने में भाँस फूलकर खरबूज की भाँति सटक पड़ता है। उस सटके हुए भाँस से उस पुरुष की कुछ छोमा नहीं हो पाती खसटी उस पुरुष की कुरूपता बढ़ जाती है और भार ऊपर न। अतएव यह सर्वतोभ्रम आदि विकटबंध काव्य का बहुत सा प्रतीक होता है। इसके विषय में काव्य प्रकाशकार मम्मट भट्ट ने भी ऐसी ही उपेक्षा की बातें की हैं। उस संभाव्य प्रयोग पर कविराज जयप्रकाश ने तो बहुत ही आड़े हाथों धिया है। हिन्दी के महाकवि देव ने इसके लिए कहा है—

सरस वाक्य पद सरस एजि शब्द चित्र समुहात ।

दधि भूत मधु पायस लज्ज, वायस धाम जबात ॥

नामों के निबन्धन हैं भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र बनाना नामों को किसी बाँधित कम से बँटाना समाज अक्षर कामे पद बनाना एकाक्षरी द्वयक्षर एतद्वत्पायत समुद्रावमक बूझ अतामव्य अक्षरबंध आदि कविता का रचना मानसिक कौशल बिलाना है क्योंकि ऐसा करने में नामों का बहुत कुछ छोड़ने मरोड़ने की भी आवश्यकता पड़ती है अतएव इसमें स्वभाव विवक्षा का बहुत कुछ नाश अवश्य हो जाता है किन्तु जब एक ही अक्षर में जो कवि समूचे भावों को भर दे सब फिर उस कवि की आप क्या प्रशंसा न करने? यद्यपि ऐसा करने में सब स्वभावों पर कवित्व उस का मुक्त प्रवाह बोधमय हो जाता है विसृष्ट कल्पनाओं और बस पूर्वक चतुर की जाने वाली अर्थसक्ति की सुन्दरता कुछ सीख हो जाती है किन्तु जब कवि के पाठित्व तथा अद्वय नविरव पाठित्व को हम समझ जाते हैं तब तो हमारी प्रशंसा और कवि के प्रति निष्ठता प्रशंसन करने से बार-बार के हमारे भाव हों उस कविता को सुन्दर करने में योग देते हैं।

जैना हमने भाष आरवि लिखते समय बताया है कि आरवि में जब ऐसी कसाबाजियाँ अपनी कविता में लगाईं तो आरवि के स्पर्शानु भाष क्यों जूबते। अतः है कि भाष में आरवि

से इसी कलाबाजी में होऊ क्यों सपाई ? इसका उत्तर वहाँ पर पूर्णतया दे दिया गया है । यहाँ संक्षेप में दे देना आवश्यक है । माय का समाज इसी दम्य विन को आहूता या क्योंकि राज दरबारों में बड़ी विद्वान् व पण्डित कहलाता था जिसकी कविता में दम्यों की आभूगरी हो घोर भाव भी हो । सोकरंजन के लिए माय को ऐसा करना पड़ा ।

आइये अब माय के इन चित्रों को देखते चाहिए—

१—सा सेना गमनारम्भे

रसेनासीदनारसा ।

तारनादबनामस

धीरनागमनामया ॥१६ २६॥

यह माय का मुखबंद नामक चित्र बच है । इसमें सैन्यों की चारों पंक्तियों में प्रसंग प्रसंग सिद्धकर फिर प्रथम, द्वितीय तृतीय घोर अनुर्थ पंक्ति के क्रमानुसार आदि स प्रथम, द्वितीय तृतीय घोर अनुर्थ प्रसार पड़ें तो 'सा सेना गमनारम्भे' पंक्ति बनेगी । इस भाँति यदि हम देखेंगे तो यह तीन वर्गाकार चित्र बनाता हुआ उन क्यों को प्राय पर काटता हुआ मुख था रूप धारण कर सता है । ब्रुचण चित्र देखिए—

२—सकारनानारबास

कामसावदसायका ।

रसाहवावाहसार

मादपाददवादना ॥१६ २७॥

यह सर्वतोभद्र वासा दमोच है । इस दमोच की चारों पंक्तियों की प्रसंग प्रसंग प्रसारों में भीषी निर्मो तत्पञ्चात् उत्तरो पंक्तियों को अनुर्थ, तृतीय द्वितीय प्रथम एवं तीस म निरों तो यह सर्वतोभद्र चित्र बन जाता है । इसे अब जाहे निम घोर से पड़िय बड़ी दमोच बनया । चार कोने के चीन्हा कोष्ठों से युक्त बंम में प्रथम एक एक प्रगर सिगकर पड़ने से इसका मधतोभद्र रूप समझ में आ जायेगा ।

तीसरा चित्र देखिये—

१—प्रवृत्तविनसठ वानं साधनेप्याविपादिभिः ।

यपूस्तेविनसदानुधमाप्याविपाणिभिः ॥ १६ ४६ ॥

- १ उत सेना के घोर सैनिक गए निहनाब कर रहे थे । पीड़ा जिस कारण का नाम है उसमें यह कोई जानता ही नहीं था । पुत्रार्थ गमन के प्रारम्भ में वे युद्ध व जन्ता में मरे हुए थे घोर उनके साथ निर्मोच विन्नु महीमपत हाथियों के समूह गए रहे थे ॥१६ २६॥
- २ उतमाह युद्ध घनेर प्रसार के समूहों की घनि एवं उनके घरीरों के नाग करने भाते बालों से युक्त यह सिधुपाल की सेना रण में प्रपुराण होकर थंड घोड़ों की हिन हिन एवं लक्ष्य के साथ विबाध करने वाली अपने विविध बाणों की चमकियों से व्याप्त थी ॥ १६-२७ ॥

यह घोरुनिका बंध है । ऊपर घोर नीचे के सोसहों कोहों में दोहों परिवर्तों के एक एक घोर को छोड़कर पढ़ने से भी यही श्लोक बन जाता है ।

बीषा विष देखिये—

२—अभीषमतिक्तेनेह, भीषामन्दम्यनाद्यने ।

कनरमकाममेमाके मन्दकामकमस्यति ॥१६-७२॥

यह धर्मप्रपञ्च बंध है । इसके धादि के चारों चरणों के धार कमानुसार बीषे पड़ें तथा धार के चारों चरणों के धार उठें पड़ें तो पढ़ना पढ़ बन जाता है और इसी प्रकार सब पढ़ कमानुसार धुपरे, तीसरे तथा बीषे धारों के पढ़ने से बन जाते हैं ।

माष के प्रतिशोभ यमक को भी देखिए जिसके धारों को छलट कर पढ़ने से वही धर्म फिर होता है । माष का यह श्लोक फिटना उष्ण कीट का कमत्कार है जिसके रखने पर कबा प्रवाह में भी कोई बाधा उपस्थित न हुई । सरस्वती कंठामरण में भी श्लोक संख्या २६ में इसी को लिया है—

३—विहितं द्विषि वेधोके त यातं निजिताविति ।

विगदं गवि रोद्धारो योद्धा यो मतिमेति न ॥१६-६०॥

नीचे का इकार माष विधित है जो सरस्वती कंठामरण का अनुबंध श्लोक है—

४ । मूरिभिर्मूर्तिभिर्मूर्तिभूमि मूर्तिभूमि मूर्तिभूमि ।

मेरीरेमिभिरभ्रामैरभीष्टभिरभिरभा ॥१६-६६॥

द्वारा चरण को छलट देने से दूधय चरण बन जाता है ऐसे माष के धर्मप्रतिशोभ को नीचे देखिये—

५ । बारणगममीरा सा साराभीमयणारवा ।

कारितारिषा सेना नाभसा बारितारिका ॥१६-६४॥

१ । भीषण ध्वनि को बाध धायात होने पर भी बिचलित न होने वाले हाथियों के बुद्धध्वनि में अपने रहकर प्रभुत्व महत्त्व की बर्षा की ॥१६-४६॥

२ । यह नवानक बुद्ध निर्मय बलित होते बीरों से सुधीमन या सधर्मियों के धान्य का भाग करने वाला था । बिजय की मावना से मरी हुई सेनाओं से बुद्ध का तथा लोगों के मन्द धायात को दूर करने वाला था ॥१६-७२॥

३ । जो चरणकोर मयभाष्य भीष्टय्य धनुषों के सम्मुख कभी बिजय नहीं हुए जो बुद्ध को जीतने वाले सैनिकों के साथ युद्धार्थ धाये थे और जो स्वर्ग में भी प्रख्यात हैं उन निरायण धर्मात् रोष-दोष रहित मयभाष्य भीष्टय्य को इत दृष्टि पर धारोप करने वाला दूसरा कौन का धर्मात् कोई नहीं ॥१६-६०॥

४ । धायात भार से युद्ध, मयानक, धुम्को के बार स्वदन धैरी की भाँति मयानक धार करने वाले बाधों के समान करते एवं निर्भीक हाथी प्रतिद्वन्द्वी हाथियों से निरुद्ध गये ।

५ । धनुषधियों की यह सेना हाथी कपो धर्मों से दुर्गम भी जलमें धायात बलवान एवं निर्भीक धनुषों के स्वर नून रहे थे यह धनुषों का लंहार करने वाली थी, बलकी मति

प्रतिशोमानुसोमपात्र का भी उपाहरण देखिये जिसमें एक चरण को उमटने में दूसरा चरण बन जाता है—

६ । नानाजावयवानाना सा जनीघघनीजसा ।

परानिहाऽहानिराप सायियातसयाम्निवता ॥१६४८॥

समुद्रग यमक और समुद्रग दसोहों—

७ । अयसोमिदुरालोक कोपघाम रणाहते ।

अयसोमिदुरा लोके कोपघा मरणाहते ॥ १६४८ ॥

८ । सदैव सपन्नवपू रणेपु रा दैव सपन्नवपूरणेपु

महो वषेऽस्तारि महामितास्त महोवषेऽस्ताग्निहा नितान्तम् ॥१६११८

इसकी पूर्वपद की पर पद में भावृत्ति है किन्तु नीचे समुद्रग ॥ प्रथम और तृतीय चरण ही मंमि के साक'द्वितीय और तृतीय चरण बन जाता है ।

इसमें कैवत एक घटार द' का प्रयोग है अथ एकाकार है देखिये—

९ । वावयो दुदुद्वादी वावायो दूददीददो ।

वुद्वाद् ददवे बुद्दे ववाद्दववोव्वव ॥ १६११४॥

नीचे का घटासम्प है—

१० । नामाक्षराणां मसमा मा भूदमतु रत स्फुटम् ।

अगृह एत परांगानामसूनस न मागणां ॥१६११०॥

बूढ़ यनुय' भी देखिये जिसके केषवज्जग नीरव' एक-एक घटार तीनों में दिये हैं—

को कोई रोक नहीं सकता या और वह अपने शत्रुओं में लड़ने की हो स्वयं इच्छा कर रही थी ।

१ लज्जित समूहों से युक्त सिन्धुपाल की वह सेना उठा अपने प्रचार से होने वाले विभिन्न युद्ध में अपने तैज द्वारा शत्रुओं की अकला कर निभयता एवं विंटाई के साथ अपने प्रति इन्द्रियों पर बाहर कुट गयी ।

७ भाग्यवान् एवं तैजस्वी होने के कारण कटिनाई से देखने योग्य तथा रण राम से बोधायन वीरों के लिए स्वामी द्वारा प्राप्त अनावर रूपी अययस को मिटाने के लिए द्वा समय प्राप्त स्थानों के तिका और सम्य उपाय ही क्या था ?

८ तर्जवा ही सम्पूर्ण घुमललालों से युक्त शरीर वाले एवं शत्रुओं के तज वा इतन करने वाले भागवान् भीदृष्ट ने उस ईषी सहायता से युक्त रण में वह प्रचण्ड तैज धारण किया जो महा समुद्र के पार तक बह्य गया था ।

९ शान्तीत दुष्टों को कुप्य हैने वाले संसार को विजित करने वाले दुष्टों का विनाश करने वाली घुमाओं को चारण करने वाले दाता तथा वधाता—दातों को देने वाले तथा वधगुर एवं पूजना भाँडि घाततापियों को नष्ट करने वाले अन्धान् भी दृष्ट ने करने शत्रुओं पर जीवण मात्र बनाना शुरू किया ।

मह बोधिका वन है । ऊपर धीरे नीचे के सोसहों कोहों में दोनों पक्षियों के एक-एक पक्षर को छोड़कर पड़ने से भी नहीं स्तोक बन जाता है ।

बीजा बिज देखिये—

२—प्रसीकमतिकेनेद भोतानन्दस्यमाद्यने ।

कनरमकाममेमाके मन्दकामकमस्यति ॥१६-७२॥

यह धर्मप्रमद वन है । इसके आदि के चारों तरफों के घहर क्रमानुसार सीधे पड़ें तथा पक्ष के चारों तरफों के घहर उड़ते हैं तो पहला पद बन जाता है धीरे इसी प्रकार सब पद क्रमानुसार हमारे सीधे तथा नीचे पक्षरों के पड़ने से बन जाते हैं ।

माप के प्रतिशोभ वनक को भी देखिए जिसके बायों को उलट कर पड़ने से नहीं धर्म फिर होता है । माप का यह स्तोक कितना उच्च कोटि का अमरकार है जिसके रखने पर कदा प्रवाह में भी कोई बाधा उपस्थित न हुई । सरस्वती कंठामण्डल ने भी स्तोक संख्या १६ में इसी को लिया है—

३—विहितं दिवि केभीने स मातं निजिताविति ।

विमदं गवि रोद्धारो योडा यो नतिमेति ॥ १६ ८०॥

नीचे का इसतर माप निहित है जो सरस्वती कंठामण्डल का अनुबं स्तोक है—

४ । भूरिप्रमदिरिभिभीरेभू भारेर भरेभिर ।

मेरीरेभिभिरभामैरभीहभिरभेरिभा ॥१६-८६॥

हमरा वरम को उलट देने से दूसरा वरम बन जाता है ऐसे माप के धर्मप्रतिशोभ को नीचे देखिये—

५ । वारणागमभीरा सा साराभीगमणारवा ।

वारितारिक्वा सेना मानेवा वारितारिक्वा । १६ ८७॥

- १ धीपल ध्वनि के साथ घाघल होने पर भी बिचलित न होने वाले हाथियों ने पुच्छध्वनि में जमे रहकर प्रभूत मन्त्राल की वर्षा को ॥१६-४६॥
- २ बहु मयानक पुच्छ निर्मल क्षित वाले कोरों से सुशोभित वा मयानीलों के शान्त का माप करने वाला वा । बिजय की मापना से नहीं हुई सेवाओं से पुच्छ वा तथा लोनों के बन्ध घलाह को दूर करने वाला वा ॥१६-७२॥
- ३ जो परमबोर मयवान् धीहृष्ट धनुषों के सम्मुख कभी विनम्र नहीं हुए, जो पुच्छ की ओतने वाले सेनिकों के साथ पुष्टार्थ धाये थे धीरे को स्वयं में भी प्रख्यात हैं, उन निरामय धर्मान् रोम-बीज रहित मयवान् धीहृष्ट को इस धृष्टी पर धररोप करने वाला दूसरा कोन वा धर्मान् कोई नहीं ॥१६-८०॥
- ४ घाघल बार से पुच्छ, मयानक, धृष्टी के बार स्वरूप मेरी की भाँति मयानक धर करने वाले बारलों के समान काने एवं निर्भीक हवा प्रसिद्धी हाथियों से निद्र पये ।
- ५ धनुषियों की बहु सेवा हावी कपो पर्वतों से पुष्पमय भी, उसमें घाघल बनवान एवं निर्मल धनुषों के स्वर वृक्ष रहे वे बहु धनुषों का संग्रह करने वाली धी । घाघल पति

प्रतिभोमानुलोमपाद का भी उच्चारण देखिये जिसमें ए० चरण को उतारने से
पुछा चरण बन जाता है—

६ । नानावायवजानाना सा अनोपपनोभसा ।

परानिहाहानिराप साग्वियाततयाप्रन्दिता ॥१६४८॥

समुद्रय ययक और समुद्रय लोको—

७ । अयमानिदुरालोको कोपघाम रणाहते ।

अयमोमिदुरा लोके कोपघा मरणाहते ॥ १६४९ ॥

८ । सदैव सपन्नवपू रणेपु स दैव संपन्नवपूरणेपु

महो दयेस्तारि महानितान्तं महोदयेस्ताग्मिहा नितान्तस्य ॥१६११॥

इसकी पूर्वपद की पर पर में आकृति है किन्तु नीचे समुद्रय में प्रथम और तृतीय
चरण ही मंथि के साथ द्वितीय और चतुर्थ चरण बन जाता है ।

इसमें केवल एक मात्र 'ब' का प्रयोग है यत् एकाग्र है देखिये—

९ । दाददो दुददुहादो दादादो दूददीददो ।

दाहादं दददे दुहे ददादववदोभ्यद ॥ १६११४॥

नीचे का प्रयामम्ब है—

१० । नामाधाराणां भक्तना मा भुक्भक्तु रत्त स्फुटम् ।

अग्रह एत परांगानामसूनस न मागणा ॥१६११०॥

शुद्ध चतुर्थ भी देखिये जिसके कैगबन्दन गीतक एक-एक प्रकार कीर्तियों में दिये हैं—

को कोई रौठ नहीं सफला का और वह अपने शत्रुओं में लड़ने की ही स्वयं इच्छा कर
रही थी ।

१. सैनिक समूहों से युक्त सिपुलाम की वह सेना या अनेक प्रकार से होने वाले विभिन्न युद्ध
में अपने सेना द्वारा शत्रुओं की शक्तता कर निर्मयता एवं दिखाई दे ताप अपने प्रति
इन्द्रियों पर आकर कुट गयी ।

७. साम्यवान् एवं तैजस्वी होने के कारण कठिनाई से देखने योग्य तथा रण राय से कोपाम्य
धीरों के लिए स्वामी द्वारा प्राप्त बनाकर कभी अथवा को मित्रों के लिए इस समय
प्राप्त योग्य के सिवा और अन्य उपाय ही क्या था ?

८. सर्वथा ही सम्पूर्ण गुणलक्षणों से युक्त परीर जाने एवं शत्रुओं के तन्त्र का हसन करने
वाले अथवा धीरुप्य से उन सभी सहायता से युक्त रण में वह प्रबल सेना धारण
रिया, जो महा शत्रु के पार तक पहुँच गया था ।

९. दानवीर युद्धों को युद्ध देने वाले संसार को विजय करने वाले युद्धों का विनाश
करने वाली युद्धों को धारण करने वाले अज्ञात तथा अज्ञात—दोनों दो देने
वाले तथा बकनुर एवं पुनरा आदि आततायियों को मार करने वाले अथवा ध
दृष्ट्य से अपने शत्रुओं पर भीतर अथवा अथवा युद्ध दिया ।

११ । सरवपी महानाथ स्फुरत्कारुं ककेतन ।

नीलचात्रविरसी रेखे केद्यच्चक्षुसनीरव ॥१११६॥

यही एक हमने भाग के विकट बंधों को लिया है । अब भारवि के विनय के
सवाहरण पाठकों के मनोविनोदार्थ तथा निर्णयार्थ रख रहे हैं एकाक्षर पद्य देखिये—

१ । स सासि सासुसू सासो येयायेयाययायय ।

ससौ सीसां ससोओस सासीसाशिषुशी सषान् ॥१५ ५॥

भारवि का नौमृगिका बंध भी देखिये—

२ । नासुरोऽयं न वा मागो धरसंस्यो न रादास ।

नासुखोऽयं नवाभोगो धरणिस्वो हि राखस ॥१५ १२॥

यह है भारवि का प्रसिद्ध एकाक्षर—

३ । न नोननुन्नो नुम्नो नो नाना मामानना ननु ।

नुन्नोऽनुम्नो नमुम्नो नानेमा नुम्ननुम्नमुत् ॥१५ १४॥

समुद्रगक और प्रसिद्धोमानुलोमपाव भी देखिये—

४ । स्यन्वना नो चतुरगा सुरेमा वाविपत्तय ।

स्यन्वना नो च तुरगा सुरेमा वा विपत्तय ॥१५ १६॥

१० हमारे प्रभु के नाम के धरत कहीं मिलिन न ही लाएँ मालो इसी कारण से भगवान्
की कृप्य के बाण अनुष्ठों के प्राणों को तो ले लेते थे किन्तु उनके रक्त को नहीं
पहुँच करते थे ।

११ जब समय बाणों की वृद्धि करते हुए, और से सिद्धान्त करने वाले, समकाले हुए
यनुव तथा पञ्चा से सुशोभित एवं नीले रंग के शरीर वाले भगवान् श्रीकृष्ण जब
की बर्षा करने वाले और से परजने वाले समकाले हुए इन्द्र यनुव से सुशोभित नीले
मेघ के समान सुशोभित हो रहे थे ।

१ तलवार, बाण तथा यनुव ॥ युद्ध होकर पानसाय्य तथा अपानसाय्य साम को
प्राप्त करने वाले शीमा सम्पन्न स्थिर प्रकृति वाले अर्जुन ने बिल्वे चक्र के स्वामी
के पुत्र को हरा दिया था पुनर्मति से युद्ध होकर अर्जुन शीमा को प्राप्त किया ।

२ यह पुण्य क्षत्रिय नाव, पहाड़ और रालत इनमें से कोई नहीं है । महान् पत्ताहटाली
होने की आशंका हो तो यह भी नहीं है किन्तु सुमिषारी रवोबुद्धी यनुव्य है अतएव
यह सरलतापूर्वक विजित किया जा सकता है ।

३ नीच यनुव्य द्वारा घायल किया जाने वाला पुण्य पुण्य नहीं और न नहीं पुण्य
बहुमाने योग्य है जो नीच यनुव्य को घायल करता है । यदि स्वामी को किसी
प्रकार की क्षति न पहुँचे तो घायल यनुव्य भी क्षत्रिय में पड़ता है । बुरी तरह से
घायल यनुव्य को मार डालने वाला भी क्षत्रिय नहीं है ।

४ इस युद्ध के पास बैगलाली रथ चपटी बास का छोड़ा सुन्दर धर्मनकारी देरावत
हाथी तथा गुणगिमत बैरात विपाही इन सबमें से एक भी नहीं है ।

५ । यमजाकृज्यै सीतेस्तेष्टीजेऽङ्ककथाप्रये ।

यात किं विदिता येसु तु जेसो विविक्तितया ॥१५-१८॥

यह है भारवि का सर्वोत्तम श्लोक देखिये—

६ । देवकानिनि कायावे बाहिकास्मस्वकाहि वा ।

काकारेममरे वावा नित्यमभ्यव्यमस्वनि ॥१५-२५॥

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारवि धीरे-धीरे नाम के इस प्रकार के विकटबंध वाले विशवात्म्य के प्रयोग से उन दोनों का काव्य कठिन पचस्य हो गया है जो मारिकेतकम के तुल्य है किन्तु जिसका प्रारम्भ भारवि से हुआ। महाकवि माघ ने उसको अपनाया और जिस दृष्टिकोण से कवि ने यह कठिन कार्य अपने हाथ में लिया उसमें उसकी ऐसी पराजिता सफलता प्राप्त हुई कि माघ के पश्चात् कवियों ने फिर ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे नामों के साथ धृष्ट शिखराङ्क करते हुए जनता के मन को धातु-साधित किया। जनता इस भाँति की कविता में अधिक रुचि रखने लगी। धृष्ट पश्चात् के कवियों की सीमा कुछ ऐसी हो गई जिसके प्रवर्तक हमारे महाकवि माघ हैं। कविता में अपाकार न हो तो वह कविता भी कौन-सी? धृष्ट किरपक, बक्रोक्तिमूलक रसैवात्मक कविताओं का भी जोर अधिक रहा। ऐतिहासिक के सम्बन्ध-हिन्दी कवियों तक यह प्रणाली चलती ही रही। केवल धीरे-धीरे सेनापति हिन्दी में प्रचलित हैं।

१. बाँध, पतघातो युवा और भी अनेक प्रकार के धर्म के पुरों से भरे हुए, रत्नमाला भी इस से भरा न करने वाले बहादुर पर बड़ी दानु युवा नहीं कर सकता क्या विविधाओं की भीतने के लिए तो नहीं भागे जा रहे हो? स्वयं में आप लोग के शीर्षों की भी बराबर किया है। इस समय बाघर बगों बन रहे हो।

२. रत्नमाला बैजताओं की भी प्रोत्साहित कर देता है। इसमें बाकबसह बहुत छोड़ा छोड़ा होता है। इससे लोग भी जी दीकुर इतने कार्य करते हैं। मरसादी हवियों की घटा से संजाम बसत व्याप्त रहता है। इसमें जलवाही निरस्ताही दोनों प्रकार के लोगों की भी नाम से लड़ना बढ़ता है।

११ । धरवर्षी महानाया स्फुरत्कामुं कपेतनः ।

नीलचन्द्रविरसी रेजे केशवच्छमनीरयः ॥१८६॥

यभी एक रुपये पाय के बिकट बंधों को लिया है। यव भारवि के पित्रबंध के कारण पाठकों के मनोविनोदार्थ तथा निर्णयार्थ रख रहे हैं। एकाधरपद देखिये—

१ । स सासि सासुसु सासो येयायेयाययाययः ।

ससो सीसां ससोऽसोस शशीशशिशुशोः शशन् ॥१५५॥

भारवि का गौमुनिका बंध भी देखिये—

२ । नांसुरोऽयं न वा नागो धरसंस्थो न राससः ।

नासुखोऽयं नबाभोगो धरसुस्थो हि राससः ॥१५६॥

यह है भारवि का प्रसिद्ध एकाधर—

३ । न नोननुन्तो मुन्तो नाना नामानना ननु ।

नुन्तोऽनुन्तो ननुन्तेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥१५७॥

समुद्रक घोर प्रतिभोमानुलोमपाव भीषे तिष्ठे हैं—

४ । स्पन्दना नो चतुरगा सुरेमा वाविपसयः ।

स्पन्दना नो च तुरगा सुरेमा वा विपसयः ॥१५८॥

१० हमारे प्रभु के नाम के प्रसार कहीं भ्रमिण न हो जाएं मालो इसी कारण से नागवान् भी कृष्ण के बाल धातुओं के प्रसंगों को तो ले लिये वे किन्तु उनके रक्त को नहीं चहल करते थे ।

११ जब समय बालों की वृद्धि करते हुए, जोर से विह्वल करने वाले कमकते हुए वन्य तथा प्यजा से सुश्रोमिष एवं नीले रंग के धारीर वाले मगवान् भीकृष्ण जल की वर्षा करने वाले जोर से गरजने वाले कमकते हुए इन्द्र वन्य हैं सुश्रोमिष नीले रंग के समान सुश्रोमिष हो रहे थे ।

१ सतबार, बाण तथा वन्य से युक्त होकर यामसाय्य तथा अपानसाय्य नाम को प्राप्त करने वाले घोमा सम्पन्न स्थिर प्रवृत्ति वाले धर्मन ने जिसने वन्य के स्वामी के पुत्र की हरा दिया था, पुत्रवर्ति से युक्त होकर उपर्युक्त घोमा को प्राप्त किया ।

२ यह पुण्य वाक्य जगत् पहाड़ और रासस इनमें से कोई नहीं है । पहाड़ उल्टाहवाली होने की भांका हो तो यह भी नहीं है किन्तु भूमिपारी राजोगुली वन्य है अतएव यह सरलतापूर्ण विज्ञित किया जा सकता है ।

३ भीष वन्य द्वारा घायल किया जाने वाला पुण्य पुण्य यहीं और न वही पुण्य बहाने घोम है जो भीष वन्य को घायल करता है । यदि स्वामी को किसी प्रकार की शक्ति न पड़ती तो घायल वन्य को वास्तव में शक्ति है । बुरी तरह से घायल वन्य की मार डालने वाला भी धररापी नहीं है ।

४ इस पुरा के पास बैगवाली एक धरती नाम का घोड़ा, सुन्दर धर्मनकारी देरावत हाथी तथा गुनजित बैल विवाही इन सबमें से एक भी नहीं है ।

परिशिष्ट—४

काम शास्त्र तथा उसका काव्य पर प्रभाव

प्राचीनमान को सुख की भावना रहती है। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त मनुष्य इसी सुख की प्राप्ति के विविध प्रयत्न करता रहता है। यह सुख क्या है उसकी प्राप्ति किस भाँति हो सकती है इन बातों पर प्राचीन ऋषि मुनि ज्ञानी एवं संन्यासी लोगों ने कई रीतियों से विचार किया है। उन प्राण्य पुरुषों का कहना है कि जीव की संसार यात्रा के दो ही मार्ग हैं एक है प्रवृत्ति मार्ग और दूसरा निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग के शास्त्र हैं— कर्मशास्त्र धर्मशास्त्र और कामशास्त्र। इनमें बताये मार्ग से चलकर मानव अमृत्यु की प्राप्ति करता है। इसी को सांसारिक सुख कहते हैं। निवृत्ति मार्ग का वर्णन वर्णन शास्त्र योगशास्त्र और भक्तिशास्त्र में मिलता है। इस मार्ग पर चलने से मानव को निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। इसे मुक्ति, निर्वाण, धनवा अपवर्ग भी कहते हैं। प्रवृत्ति मार्ग के शास्त्र में अमृत्यु के बाद निःश्रेयस की ओर ही मानव को समुप्य करते हैं। मनुष्य सांसारिक सुखों की प्राप्ति करता हुआ अन्त में मोक्ष द्वारा अपने जीवन का उद्देश्य प्राप्त करे यही सन्तों की अभिप्रेत है।

हम संसार के घटीरवारी जीवों में से वे जीव हैं जिनमें धन्य समस्त जीवों से ज्ञान अत्यधिक है। जीव मान का मुख और मुख भी इन्द्रियों के विषयों के द्वारा ही होता है। पर जिस जीव को इन इन्द्रियों के विषय का सम्यक् ज्ञान हो वह ज्ञान भाँति से आनन्द को भूतता हुआ इतना सुखी रहता है कि जिसकी सीमा नहीं है। जिस जीव को इस सुख की कोई कामना नहीं उसका तो इस संसार में रहने का कोई शास्त्र भी नहीं है। यह प्रवृत्ति मार्ग को अपनायेगा ही क्यों ? क्यों नहीं चुकनेवनी की भाँति प्रवृत्ति मार्ग को त्याग कर निवृत्ति मार्ग में ही अपने चरण रखेगा। पर ऐसे जीव संसार में विरले ही होते हैं। अधिकतर संसारी जीव ही हैं जो धर्म, धर्म और काम के सहारे मोक्ष की ओर जाना चाहते हैं। मानव को छोड़ कर रोप प्राणी भी संसारी ही हैं। जीववारी केवल मनुष्य ही नहीं होता। गाय बैल भेड़ सिंह गज घट्ट इवान कपोत कीर, मर्कट, चीटी घाँस छोटे से मोटे समस्त प्राणधारियों में काम मुख सामान्य है। धर्म और धर्म की ओर अधिक उन्मुखता मनुष्य में ही होती है। धर्म और धर्म मनुष्येतर प्राणियों का प्रयोजन नहीं के बराबर होता है। अपने निवास स्थान के लिये भोजन, शरण छोटी पेड़ चरने के स्थान प्रादि के लिए जब जब हम उनमें बड़ी-बड़ी सहाय्यों को देखते हैं और फिर अन्त में अत्यन्त रूप

में माना जाति की सम्बन्धी नियम मर्यादा धारि देखते हैं तब समझ पड़ता है कि इन श्राणियों में भी धर्म और धर्म की भावना है। धर्म पुरुषार्थ अर्थात् धार्मिक इच्छा धारि बातों में आता है। जो पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त जाय, माना जाय वही तो धर्म है। हमने देखा कि उन पशुओं तक में बिना उपायों धर्म कानून कायदा मर्यादा के धर्म और धर्म की ओर भी उनकी प्रवृत्ति होती है। अतः धर्म और धर्म की काम के साथ साथ परम प्रावश्यकता है। इसलिए प्रवृत्ति मार्ग का प्रचार धर्म काम सुख ही है। उसने लिए धर्म (साधन सम्पत्ति) और धर्म (उनकी सुखवस्था) अपने साथ प्रावश्यक हो जाते हैं। स्मरण रखना है कि मनुष्य के जीवन में उसमें इन्धन सुखों में संस्कार परिवर्तन अन्य जीवधारियों की अपेक्षा बहुत अधिक है। संस्कारों से संस्कृत मनुष्य वास्तविक मनुष्य है अन्यथा वह तो पशु है तब ही तो कहा है—

आहार निद्रा भय मेषुन च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।

धर्मो हि तेषां अधिको विषेपो धर्मेषु क्षीना पशुभिः समाना ॥

शारीरिक प्रावश्यकताएँ सबकी समान हैं पर मानव में धर्म ही अधिक होता है। यदि वह उसमें न हो, तो उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं है। काम स्वयं का एक धर्म तो है धर्म। किसी काम को नहीं। इसका विशेषण धर्मशास्त्र और धर्मशास्त्र के धर्मों में किया है। काम का दूसरा धर्म है स्त्री पुरुष विषयक रति। इसके अभाव में शारीरिक जीवन सुख का बन जाता है। यहाँ हमारा प्रयोजनीय धर्म यही रचनात्मक संबंध है। वास्तविक में कामसूत्र में इसका प्रकरण अनोखी भाँति दीया है। उनसे अनुसार पाँच शान्तिधर्मों के विषयों के उपभोग से जिस सुख की प्राप्ति होती है। काम-शास्त्रियों ने उस सुख का नाम काम कहा है। काम का नाम 'पंचसायन' है। इसका धर्म है स्त्री और स्त्री शरीर चित्त और देह दोनों के समस्त विषयों में स्त्री पुरुष के विषय का एक दूसरे के लिए अपने सर्वस्व का समर्पण। यह कामानन्द ही ब्रह्मानन्द से क्या कम है। ब्रह्म में तीन ब्रह्म ब्रह्म प्रकार करके जिस सुख की प्राप्ति करता है वही सुख पुरुष और स्त्री दोनों में एकान्वार होकर प्राप्त करते हैं। ब्रह्म ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में जो अनुभूति है न वही अनुभूति इस ध्यान में होती है। यहाँ भी व्यक्ति अपने व्यक्तिगत को दूसरे में गोवा दृष्टा जाता है। इन्द्रिय निग्रह प्रथम धारम समय रखना धर्म बलिन है अतः इसी काम को कर्तव्य (कर्तव्यधर्म) कहा गया है जो मर्यादा है क्योंकि इनके उत्पन्न हो जाने पर धारम समय का रस ममून नष्ट हो जाता है। तब इस धर्म ब्रह्म तब विवर्तित हो उठे तो फिर मनुष्यों को तो क्या क्या? यह वास्तव में ही कर्तव्य (कर्म कर्तव्यधर्म) है। यह सब ही के धर्म को धर्म धारम माना सम्भव है। जीवमान इसके मद में मग्न (मग्न) हो जाता है। यही मग्न (मदमग्न इति मग्न) संसार का सर्वस्व है। यह काम सुख उत्तरी का प्राप्ति हो गया है जो ब्रह्मधर्म के गुणों को जानकर उस धारम तक पूर्ण ब्रह्मपारी रहे। ब्रह्म का नाम पुरुष धर्म का भी है। ब्रह्म धर्म ज्ञान धर्म परमात्मा का भी धर्म है। जिनमें यही हमारा कोई उत्तर नहीं। अतः उस ब्रह्म (पुरुष धर्म का भी) की प्राप्ति ब्रह्म धर्म करने वालों पर हमको सुचारु बन में सम्भव में या जायगी तो हम पूर्ण ब्रह्मधर्म से रह कर फिर उत्तरधारम में

परिशिष्ट—४

काम शास्त्र तथा उसका काव्य पर प्रभाव

प्राणीमान को मुक्त की सामग्री रखती है। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त मनुष्य इसी मुक्त की प्राप्ति के विविध प्रयत्न करता रहता है। यह मुक्त क्या है, उसकी प्राप्ति किस भाँति हो सकती है इन बातों पर प्राचीन ऋषि मुनि ज्ञानी एवं संन्यासी लोगों ने कई टीकियों से विचार किया है। उन प्राप्त पुरुषों का कहना है कि जीव की संसार बाना के दो ही मार्ग हैं एक है प्रवृत्ति मार्ग और दूसरा निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति मार्ग के शास्त्र हैं—धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र और नामशास्त्र। इनमें बताये मार्ग से चलकर मानव सम्मुदय की प्राप्ति करता है। इसी को सांसारिक मुक्त कहते हैं। निवृत्ति मार्ग का वर्णन दर्शन शास्त्र योगशास्त्र और भक्तिशास्त्र में मिलता है। इस मार्ग पर चलने से मानव को निःस्पृह की प्राप्ति होती है। इसे मुक्ति निर्वाण अथवा अपवर्ण भी कहते हैं। प्रवृत्ति मार्ग के शास्त्र में सम्मुदय के बाद निःस्पृह की ओर ही मानव को सम्मुख करते हैं। मनुष्य सांसारिक मुक्तों की प्राप्ति करता हुआ अन्त में योग द्वारा अपने जीवन का वह रूप प्राप्त करे यही उन्नत भी अभिप्रेत है।

इस संसार के घटीरघारी जीवों में से वे जीव हैं जिनमें अल्प समस्त जीवों से ज्ञान प्राप्यक है। जीव मान का मुक्त और पुत्र भी इन्द्रियों के विषयों के द्वारा ही होता है। जिन जीव को इन इन्द्रियों के विषय का सम्यक् ज्ञान हो वह माना भाँति से मानव को प्राप्त होता हुआ सुखी रहता है कि जिसकी सीमा नहीं है। जिस जीव को इस सुख की कोई कामना नहीं उसका तो इस संसार में रहने का कोई ताल्पर्य भी नहीं है। वह प्रवृत्ति मार्ग को अपनावेगा ही क्यों? क्यों नहीं शुद्धदेवकी की भाँति प्रभु की भाँति प्रवृत्ति मार्ग का त्याग कर निवृत्ति मार्ग में ही अपने जीवन रखेगा। पर ऐसे जीव संसार में विरल ही होते हैं। अधिकांश संसारो जीव ही हैं जो धर्म धर्म और काम के चहारे मोह की ओर बाना बाहते हैं। मानव को छोड़ कर सब प्राणी भी संसारो ही हैं। जीववारी केवल मनुष्य ही नहीं होता। गाय बैल भत्त सिंह गज अथवा दान कपोत और मकड़, चीटी आदि छोटे मोटे समस्त प्राणधारियों में काम मुक्त सामान्य है। धर्म और धर्म की ओर अधिक सम्मुखता मनुष्य में ही होती है। धर्म और धर्म मनुष्यतर प्राणियों का प्रयोजन नहीं के बराबर होता है। अपने निवास स्थान के लिये जिस माँद लोगों पक्ष चलने के स्थान प्राणि लिए जब जब हम उनमें बड़ी-बड़ी सड़ाइयों को देखते हैं और फिर अन्त में सम्यक् रूप

प्रविष्ट कर अपने गृहस्थी के रूप से संसार के सुख को भोगते हुए सांसारिक सुख प्राप्त कर सकेंगे। कामशास्त्र में समय जीवन का बड़ा महत्त्व बताया है। समय ब्रह्मचारी ही काम सुख के वास्तविक भोगी होते हैं। गृहस्थ जीवन के गृहस्थ को समझने के लिए कामशास्त्र के पढ़ने की घटि आवश्यकता है। हमारे भारत में कामशास्त्र की शिक्षा कोई नहीं पाठ हो ऐसी कोई बात नहीं। प्राचीन काल में बचस्क ब्रह्मचारियों को काम शास्त्र की संपूर्ण कक्षाओं के साथ शिक्षा दी जाती थी। जो गार्हस्थ्य जीवन भोगना चाहता है तथा जिसको संसार के वास्तविक सुख की कामना है उन सभी पुरुषों के लिए काम-शास्त्र की शिक्षा उपादेय ही नहीं आवश्यक भी है। काम शास्त्र में वे सब ही बातें पा जाती हैं जिनसे हमारे शरीर का संबंध है। यह शास्त्र तीन ढंगों में विभक्त है। १ ज्ञानांग २ रसांग ३ कामांग। इसमें काम रति प्रीति सौन्दर्य योग बीज के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन शरीर स्थान स्त्री-पुरुष के प्रजनन इन्द्रियों का उनके सूक्ष्म अवयवों का एक एक के विशेष विक्षेप रसों का वर्तमान संतान उत्पत्ति में उपयोगों का वर्णन है तथा इनके रोगों के कारणों का रोगों से बचावे रखने के उपायों का भी वर्णन है। इस संबंध में औषधि वनस्पति मूल-गुच्छ गुल्म वृण प्रदानवस्ती रूप ऋतुवर्षा विषाद के प्रकारों बभ्रु वर के परस्पर आस्वादन अनुकरण प्रणयवर्धन अनुसूसन कामोद्दीपन और संभोग के उपायों और प्रकारों का वर्णन है। इस भाँति उन मिलाने से पूर्व भग्न मिलान को प्राथमिकता देकर फिर संबंध आसिग्न भ्रूङ्कार आदि-आदि विभिन्न विविधा आदि देकर इस शास्त्र को ऐसा पूर्ण किया गया है कि जिसके बिना पढ़े बिना मनन किये बिना कार्य रूप में परिणत किये बिना किसी सांसारिक सुख की उपलब्धि नहीं हो सकती।

प्राचीन विद्वान् कामशास्त्र का भी अध्ययन करके संसार में प्रविष्ट होते वे घट उनके ग्रन्थों में काम शास्त्र के सिद्धान्तों का समेकित जनायाव ही हो जाता है। उनकी कक्षा में विविध चित्रों चित्रकलाओं, मूर्तियों आदि में काम सौन्दर्य का प्रत्यक्ष वर्णन होता है। भास कालिदास आर्यभ माघ जैपल आदि सब ही विद्वान् कवियों ने अपने कामशास्त्र के अध्ययन का परिचय दिया है। महाकवि माघ सब शास्त्रज्ञ थे। कामशास्त्र का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था इसीलिए वे इस धर्मज्ञता को अपनी रचना में व्यक्त किए बिना न रह सके—

सीकृतानि मण्डित करुणोक्ति स्निग्ध मुक्तमममयवर्चांसि ।

हासभूपरवादच रमण्या कामसूत्र-पदतामुपजग्मुः ॥१०-७२॥

उपर्वुक्त में आत्म्यायन के काम सुख का स्पष्ट परिचय है। कवि ने नायक नायिकाओं का उनके हास परिहास कैलि प्रीड़ा संयोग वियोग आदि का घटा स्थान वर्णन कर अपनी अनुरता एवं दयता का पूर्ण परिचय दिया है। साहित्य में वे बातें भ्रूङ्कार के नाम से प्रामा करती हैं। हमने इन बातों का कवि के रस भाव पदा वाले तथा बहुमता वाले प्रकरणों में समावेश कर दिया है।

माघ काव्य में पौराणिक कथायें

प्रथम सर्ग—

- १ हिरण्यगर्भ
- २ मुनिम् (नारद के लिए)
- ३ मनुस्मृत्यारम्भे (सूर्य)
- ४ कृत्तिकासम् (गजवर्मनपारी सिंह)
- ५ नातवेदस (वडवानल)
- ६ कौटिल्य
- ७ हिरण्यकशिपु
- ८ दधमुष राजा
९. नमुचिद्विपः (हंस)
- १० कौणिक (हंस)
- ११ प्रवेतसा (बकुर)
- १२ राजकुमार
- १३ परेतमर्दु
- १४ यम के भैंसे के तीनों की राजकु ने लौकिक की कथा
- १५ एभ्यन्त (मण्डप)
- १६ निधुपामर्षज्ञया
- १७ नीलाम्बरपारी बभ्रुवर्मा कथा
- १८ दिग्गज नाम ।
१९. चिरन्तमुनि (नर नायक) कथा

द्वितीय सर्ग—

- १ मुरं द्विपम्
- २ जराध्व कथा कथा
- ३ रेवती कथा
- ४ राट्ट कथा
- ५ द्विनिम्बा
- ६ जराध्व कथा

प्रविष्ट कर सच्चे गृहस्थों के रूप से संसार के सुख को भोगते हुए सांसारिक सुख प्राप्त कर सकेंगे। कामशास्त्र में संयुक्त जीवन का बड़ा महत्त्व बताया है। समस्त ब्रह्मचारी ही काम सुख के वास्तविक भोगी होते हैं। गृहस्थ जीवन के रहस्य को समझने के लिए कामशास्त्र के पढ़ने की प्रति आवश्यकता है। हमारे भारत में कामशास्त्र की शिक्षा कोई नहीं बात हो ऐसी कोई बात नहीं। प्राचीन काल में बसस्क ब्रह्मचारियों को काम शास्त्र की संपूर्ण कलाओं के साथ शिक्षा दी जाती थी। जो गार्हस्थ्य जीवन भोगना चाहता है तथा जिसको संसार के वास्तविक सुख की कामना है उन सभी पुरुषों के लिए काम-शास्त्र की शिक्षा उपादेय ही नहीं आवश्यक भी है। काम शास्त्र में वे सब ही बातें पा जाती हैं जिनसे हमारे शरीर का संबंध है। यह शास्त्र तीन खंडों में विभक्त है। १ ज्ञानाय २ रसाय ३ कामाय। इसमें काम रति प्रीति सौन्दर्य यौन शीघ्र के सांख्यिक स्वस्व का वर्णन पटीर स्वान स्त्री-पुरुष के प्रजनन इन्द्रियों का उनके सूक्ष्म अवयवों का एक एक के विशेष विक्षेप रसों का गर्भाधान संतान उत्पत्ति में उपयोगों का वर्णन है तथा इनके रोगों के कारणों का रोगों का बचाव करने का उपायों का भी वर्णन है। इस संबंध में शीघ्रिण वनस्पति बुध-गुह्य गुह्य गुण प्रदानवस्त्री रूप अनुचर्या विचार के प्रकारों बभ्रु वर के परस्पर आत्मासन अनुबंधन प्रणयवर्धन धनुस्सुत कानोहीपन धीर समोय के उपायों धीर प्रकारों का वर्णन है। इस मांति उन मिसाने से पूर्व मन मिसाने को प्राथमिकता देकर फिर संयोग धानिगत शृङ्गार धादि-धादि विभिन्न विधियाँ धादि देकर उस शास्त्र को ऐसा पूर्ण किया गया है कि जिसके बिना पढ़े बिना मनन किये बिना कार्य रूप में परिणत किये बिना किसी सांसारिक सुख की उपलब्धि नहीं हो सकती।

प्राचीन विद्वान् कामशास्त्र का भी अध्ययन करके संसार में प्रविष्ट होते वे भक्त उनके ग्रन्थों में काम शास्त्र के सिद्धान्तों का उत्तरदायक बनायास ही हो जाता है। उनकी कला में निहित विभिन्न चित्रकलाओं मूर्तियों धादि में काम सौन्दर्य का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। मात कानिदास भारवि माध मयक धादि सब ही विद्वान् नवियों ने अपने कामशास्त्र के अध्ययन का परिचय दिया है। महाकवि माध सर्व शास्त्रज्ञ थे। कामशास्त्र का उन्होंने अष्टाध्ययन किया था इसीलिए वे इस अभिज्ञता को अपनी रचना में व्यक्त किए बिना न रह सके—

सीतूतानि भणितं कस्तुणोक्ति स्मिन्ध मुक्तमसमर्थवधासि ।

हासभूपणरबादध रमण्या नामसूत्र पयतामुपजग्मु ॥१०-७५॥

उपर्युक्त में वास्तव्यायन के नाम सूत्र का स्पष्ट परिचय है। कवि ने मादक नायिकाओं का उनके हास परिहास केनि क्रीड़ा संयोग विरोग धादि का क्या स्थान वर्णन कर अपनी अनुपमा एवं दयाता का पूर्ण परिचय दिया है। साहित्य में वे बातें शृङ्गार के नाम से धाया करती हैं। हमने इन बातों का कवि के रस भाव पदा भासे तथा बहुज्ञता जाने प्रकरकों में समावेश कर दिया है।

माघ काव्य में पौराणिक कथायें

प्रथम सर्ग—

- १ हिरण्यवर्ग
- २ मुनिम् (गारुड के लिए)
- ३ अनुष्ठारके (सूर्य)
- ४ कृतिवासम् (मन्त्रार्चनवादी शिव)
- ५ पातवेदस्य (बडवानस)
- ६ कंटमहिष
- ७ हिरण्यकशिपु
- ८ दधमुल रावण
- ९ नमुषिद्विपा (ईश)
- १० कौसिक (ईश)
- ११ प्रभेतसा (ब्रह्म)
- १२ रावणनाम
- १३ परेतमर्तु
- १४ यम के घँसे के तीनों को रावण ने लोड़ने की कथा
- १५ एरुन्ध (नखिल)
- १६ विष्णुपामर्शना
- १७ मीनाम्बरवादी बसराम कथा
- १८ दिगम्बर नाम ।
- १९ विरम्भमुनि (नर नाचमण) कथा

द्वितीय सर्ग—

- १ मुरं डिपम्
- २ जरासंध बध कथा
- ३ रेवती कथा
- ४ राहु कथा
- ५ हिडिम्बा
- ६ जरामग्न कथा

७ कास्यवन कथा

८ समुद्रमंथन पर अमृतपान कथा

तृतीय सर्ग—

१ कौबेर बिक और घायस्त्य बिक

२ बाणामुर संघाम में शम्भु की शक्ति के दाय की कथा

३ बाणामुर की तपस्या

चतुर्थ सर्ग—

१ रौतक पर्वत की कथा

२ हंसधर

३ बिष्णुपर्वत सूर्यमार्य में बाणक कथा

पाँचवाँ सर्ग—

१ पशु का पक्षधारी रूप

२ पक्ष मेषधर कथा

३ गोवर्धन पर्वत को ठप्पर छठाना

४ कङ्क और बिजठा की कथा

छाठवाँ सर्ग—

समुद्र मंथन से १४ रत्न निकालने की कथा

नवाँ सर्ग—

१ ब्रह्मा ने संख्या को धरणी मूर्ति बनाया भविष्य पुराण की कथा

२ कुर्य में विह्व की परधायी

३ कोनमिह (हम्भ)

बारहवाँ सर्ग—

१ रामरघु और नीला सागर की कथा

२ घोड़ों के पंख की कथा

तेरहवाँ सर्ग—

१ भीष्मपुत्र और सरयुभामा की कथा

२ पर्वत पक्षधारी ने

३ परगुराम के रक्त के पाँच सरोवर बनाने की कथा

४ गाँडव बाहु कथा और मय दानव

५ ब्रह्मा ने त्रिपुरासुर पर अभिमान करने वाले रक्षक के रूप के घोड़ों की लयाम पकड़ी जिसकी कथा

बीसहवाँ सर्ग—

- १ भाराहानवार कथा
- २ नरसिंहानवार कथा
- ३ बलि कथा
- ४ सहस्र बाहु कथा
- ५ कार्तवीर्य सत्रुंन कथा
- ६ कस्यप पुत्र कथा
- ७ त्रिपुरासुर की जन्म की तीन बात बाली कथा
- ८ कृष्ण का इन्द्र गव हरण कथा
- ९ कृत्वासुर बध कथा
- १० मधुकैटभ बध कथा
- ११ सती सत्रुम्रया कथा
- १२ कार्तवीर्य परशुराम कथा
- १३ सरयुमाता की प्रार्थना पर पारिजात के साने की कथा

पंद्रहवाँ सर्ग—

- १ गंधापुत्र भीष्म कथा
- २ मधुसूदन कथा
- ३ नलजित राजा की कथा सरयुमाता के साथ कृष्ण का प्रेम
- ४ राजा दयासि व यदु कथा
- ५ जरासन्ध व कृष्ण की कथा भूमि छीनने की
- ६ नरकासुर कथा
- ७ दमस्तूर्न कथा
- ८ पूतना की कथा
- ९ शकट्यासुर कथा
- १० कंस बध कथा
- ११ पर्वतमहोत्सव कथा
- १२ कुबलनापीड कथा
- १३ धन्वमेघ वध कथा
- १४ पांडव कुन्ती के दोनव संतान कथा
- १५ भीष्म कथा
- १६ मुहुरम्भ कथा
- १७ बामनाषवार कथा

१८ घोवर्चन धारण कथा

१९ धरिष्ठासुर कथा

२० केपी वध कथा

२१ बाणुर वध कथा

सोसह्रवीं सर्ग—

१ धरिष्ठासुर कथा

२ प्रलयकाल में भगवान् का शीर सागर समन कथा

३ मनाक पर्वत कथा

४ समुद्र मर्षादा हीन होने पर प्रलयकासीन कथा

सत्तरहवीं सर्ग—

चंद्र मंथा को सिर पर धारण करते हैं विष्णु चरणों में रखते हैं इसकी कथा

अठारहवीं सर्ग—

१ प्रलयकासीन बायु की कथा

२ वसुदेव की कथा

३ मार्कण्डेय भुवि की कथा

उननीसवीं सर्ग—

१ वन यज्ञ ध्वंस कथा

२ राम-बाली कथा

बीसवीं सर्ग—

१ कश्यपवत्सी एवं दश प्रजापति की कथा काशू धीर बिनसा की कथा

२ यदु के द्वारा अपनी माता बिनसा की दासता से मुक्ति कथा

३ समुद्र मंथन कथा

४ सुमेरु पर्वत कथा

५ प्रलय समय योग निद्रा वाले विष्णु भगवान् की कथा

६ यदु का घरती के भीतर प्रविष्ट होना

परिशिष्ट ३

शब्द परिचय

- १ अक्षतार—२४ माने गये हैं । (१) सनक सनमन सनत्कुमार सनातन । (२) बाराह (३) नारद देवायि, (४) नर-नारायण (५) कपिल (६) दत्तात्रेय (७) यज्ञ पुरुष (८) ऋषभदेव (९) पृथु, (१०) मत्स्य (११) कन्द्य (१२) मन्मन्तरि (१३) मोहिनी रूप (१४) नरसिंह (१५) बामन (१६) परशुराम (१७) व्यास (१८) रामचन्द्र (१९) कृष्ण (२०) बलराम (२१) बुद्ध (२२) कल्कि (२३) हंस (२४) हयग्रीव ।
- २ अग्नि—दाशानि (बगल व चर की) जठराग्नि (पेट), बडवाग्नि (जस) ।
- ३ अग्निजय—बशिष्ठाग्नि गाहपत्य, ग्राहवनीय ।
- ४ अयस्वा—आप्रत, स्वप्न सुषुप्ति और तुषीय या बाल, युवा और वृद्ध ।
- ५ अविद्या—ईश्वर की मोहमाया छवि ।
- ६ अष्टसिद्धि—अग्निमा, महिमा, सधिमा गरिमा प्राप्ति प्राप्ताप्य ईदित्य वधित्य ।
- ७ आकर—जलमुज (योनि से मनुष्य पशु) अण्डज (अंडे से प्राणी) स्वेदज (सील, घुएँ), उद्भिज (वृक्ष वनस्पति) ।
- ८ अधिरण—गुहुर, बुद्धी, हार कंकण, अंगूठी, बाजूबन्द, बैचर, बिरिया, टीका वीचकूल, ठाग १ कंठभी ।
- ९ आश्रम—ब्रह्मचर्य गृहस्थ व्रतव्रत संन्यास ।
- १० उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद वायव्यवेद, स्यापत्य वेद ।
- ११ ऋतु—पिशिर, बसन्त ग्रीष्म वर्षा, शरद, हेमन्त ।
- १२ कल्प—चार युगों की एक चौराही और हजार चौराहा का एक कल्प ।
- १३ गुण—रजोगुण, तमोगुण सतोगुण ।
- १४ गुरु—माता, पिता आचार्य (अध्यापक) ।
- १५ अतुरंगिणी सेना—हाथी रथ, घोड़ा पैदल ।
- १६ अतुरंग—साम राम, बट भे- ।
- १७ अतुरंग्य—उदयपुत्र पतापुत्र, हारर, कलिपुत्र ।
- १८ अतुरंग—धर्म अर्थ नाम मोक्ष ।
- १९ चार बल—आह्वय दानिय, वैश्य गुरु ।

१८ गोवर्धन धारण कथा

१९ अरिष्टासुर कथा

२० केसी वध कथा

२१ बाणूर वध कथा

सोमहवीं सर्ग—

१ अरिष्टासुर कथा

२ प्रलयकाल में भगवान् का क्षीर सागर स्रवण कथा

३ नैनाक पर्वत कथा

४ समुद्र मर्षावा हीन होने पर प्रलयकालीन कथा

सत्तरहवीं सर्ग—

संकर यन्त्रा को छिर पर बाध रख करत हैं, विष्णु चरणों में रखते हैं इसकी कथा

अठारहवीं सर्ग—

१ प्रलयकालीन वायु की कथा

२ वसुदेव की कथा

३ मार्कण्डेय मुनि की कथा

सन्नीसवीं सर्ग—

१ बदा यज्ञ ध्वंस कथा

२ राम-बासी कथा

बीसवीं सर्ग—

१ कालकप्रवर्ती एक ब्रह्म प्रजापति की कथा करू और विनता की कथा

२ गदड़ के द्वारा अपनी माता विनता की बाधता से मुक्ति कथा

३ समुद्र मन्थन कथा

४ सुमेरु पर्वत कथा

५ प्रलय समय योग निद्रा वाले विष्णु भगवान् की कथा

६ गदड़ का चरती के भीतर प्रविष्ट होना

परिशिष्ट ३

शान्ध परिचय

- २० विद्या—ईदिक, बीदिक, भीदिक, (माध्यात्मिक साधिभीतिक, साधिर्बेदिक) ।
 २१ विविधकर्म—सधित, प्रारब्ध क्रियमाण ।
 २२ विकपास—इन्द्र यम, वरुण कुबेर, अग्नि, वायु, धिष्ण ।
 २३ नवरस—शुक्लार, कफण, हास्य बीर, रौद्र बीमरस, भयानक घात, अस्तुत ।
 २४ पंचपवन—प्राण, अपान, उदान व्यान समान ।
 २५ मक्ति—अवण कीर्तन अर्चन वन्दन करणसेवा स्मरण, आत्मनिवेदन,
 दासत्व सस्य ।
 २६ अक्ष—आर्त्त, विज्ञान, अर्वाची विज्ञान निवास ।
 २७ वैद वेदांग—ऋक् यजु, साम, अथर्व पिप्पा वक्ष्य व्याकरण निबद्ध, स्रग्
 व्योतिष ।
 २८ शास्त्र—सांख्य योग वेदान्त, भीमांसा न्याय वीक्षेदिक ।

सहायक ग्रन्थों की सूची

- १ किष्किताभूमीय श्रीराम्या संस्कृत सिरीज
- २ सिद्धपासबम रामप्रताप शास्त्री त्रिपाठी
- ३ हिन्दी सिद्धपासक ग्रन्थालय दीक्षित
- ४ महामाख
- ५ श्रीमद्भागवत
- ६ पद्य महापुराण
- ७ अग्नि महापुराण
- ८ विष्णु महापुराण
- ९ ब्रह्मवैवर्त महापुराण
- १० भागवत
- ११ संस्कृत साहित्य का इतिहास श्रीवाचन जयराम बोधी
- १२ संस्कृत साहित्य की रूप रेखा
- १३ साहित्य विवेचन जेम्स सुमन मस्तिऊ
- १४ रीति काव्य की भूमिका तथा वेब और इनकी कविता डा० नरेश
- १५ भाषाशास्त्र डॉ० जाम २ ४ ५
- १६ कवि रहस्य महामहोपाध्याय योगानाथ झा
- १७ काव्य प्रकाश मम्मट
- १८ साहित्य दर्पण विश्वनाथ
- १९ कवि कल्याणरत्न जेम्स
- २० काव्यादर्श आचार्य हन्नी
- २१ दशकुमार चरित हन्नी
- २२ हिन्दी विद्वत्भारती
- २३ साहित्य दर्पण
- २४ विविध जनविस्तार विस्त २३ नं० १
- २५ हिन्दू पोमिटी एण्ड पोमिटीकल पिपरीज माग पहला और दूसरा नारायण चन्द्र बंध्योपाध्याय
- २६ संस्कृत कवि दर्शन डॉ० मोला चंकर व्यास

